





# BHAGAVANTABHĀSKARA

VOL. 2

















मीमांसक-श्रीनीलकण्ठभट्टविरचितः

## भगवन्तभास्करः

( द्वादशमयूखसंवलितः धर्मविद्यात्मकः ग्रन्थः )

द्वितीयः खण्डः

( दान-उत्सर्ग-प्रतिष्ठा-प्रायश्चित्त-शुद्धि-शान्ति-मयूखात्मकः )

मुसलगाँवकरोपनामकेन विधिवेत्ता डॉ० वेणीमाधवशास्त्रिणा  
लिखितया भूमिकया सहितः



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड,

दिल्ली ११०००७



प्रकाशक—

**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७

सर्वाधिकार सुरक्षित

पुनर्मुद्रित संस्करण १९८६

मूल्य १२०.०० ( १-२ खण्ड )

अन्य प्राप्तिस्थान—

**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

\*

प्रमुख वितरक—

**चौखम्बा विद्याभवन**

चौक ( बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे ),

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

द्वारभाष : ६३०७६

मुद्रक—

**श्रीजी मुद्रणालय**

वाराणसी



It is a reproduction of the earlier edition of  
"Gujarati Press" Bombay.

# BHAGAVANTABHĀSKARA

OF

SRI NĪLAKANTHA BHATTA

( *A treatise on Theology compiled in twelve Mayukhas* )

Volume II

( *Containing Dana-Utsarga-Pratishtha-Prayashchitta-  
Shuddhi and Shanti Mayukhas* )

*With an Introduction by*

**Dr. Venimadhav Shastri Musalgaonkar**



**CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN**

38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road

DELHI 110007



© CHAUKHAMBHA SANSKRIT PRATISHTHAN  
(*Oriental Publishers & Distributors*)

38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road

DELHI 110007

Telephone : 236391

Reprint Edition 1986

This Publication has been brought out with the financial assistance from Ministry of Education & Culture, Govt. of India).

If any defect is found in this book, please return the copy by V.P.P. for the cost of postage to the publishers for free exchange.

Printed in India

Published by Navanita Dass Gupta for Chaukhamba Sanskrit Pratishthan, 38 U.A., Jawahar Nagar, Bungalow Road, Delhi-110 007 and printed at Shriji Mudranalaya, K-37/117, Gopal Mandir Lane, Varanasi.

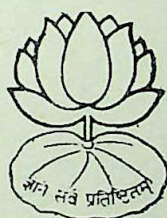


भगवंतभास्करे  
मीमांसकश्रीनीलकण्ठभट्टविरचितः

# दानमयूखः ।

( सप्तमः )

लेलेइत्युपाह्वयंकटेशशास्त्रि  
संशोधितः ।



## चौरवम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७







## अथ दानमयूखस्थविषयाणां अनुक्रमणिका ।

| अ. विषयः                        | पृष्ठम् | अ. विषयः                    | पृष्ठम् |
|---------------------------------|---------|-----------------------------|---------|
| १ मङ्गलम् ... ..                | १       | २८ होममन्त्राः ... ..       | ८१      |
| २ दानसामान्येति कर्तव्यता       | ३       | २९ दानानि ... ..            | ९४      |
| ३ पात्रम् ... ..                | ४       | ३० रजतादितुलाविधिः ...      | १०३     |
| ४ देयम् ... ..                  | ६       | ३१ नानारोगघ्नादिस्तुलाविधिः | १०४     |
| ५ कालाः ... ..                  | ८       | ३२ घृतादितुलाविधिः ...      | १०५     |
| ६ पुण्यदेशाः ... ..             | ९       | ३३ रूपादितुलादानप्रयोगः     | १०६     |
| ७ प्रतिग्रहे देशनिषेधः...       | १०      | ३४ हिरण्यगर्भदानम् ...      | ११३     |
| ८ रात्रिकृत्यम् ... ..          | ११      | ३५ प्रयोगाः ....            | ११८     |
| ९ प्रतिग्रहीतृकृत्यम् ...       | १३      | ३६ ब्रह्माण्डदानम् ...      | १२१     |
| १० द्रव्याणां प्रतिग्रहस्थानानि | १५      | ३७ कल्पतरुदानम् ...         | १२७     |
| ११ परिभाषा ... ..               | १७      | ३८ गोसहस्रम् ... ..         | १३१     |
| १२ द्रव्यप्रतिनिधिः ...         | २१      | ३९ हिरण्यकामधेनुः ...       | १३५     |
| १३ देवताप्रतिमाः ...            | २५      | ४० हिरण्याश्वदानम् ...      | १३८     |
| १४ दक्षिणाप्रमाणम् ...          | २७      | ४१ हिरण्याश्वरथदानम्...     | १३९     |
| १५ द्रव्यमानम् .. ...           | २८      | ४२ हेमहस्तिस्थदानम् ...     | १४२     |
| १६ धान्यादिमानम् ...            | २९      | ४३ पञ्चलाङ्गलदानम् ...      | १४५     |
| १७ भूमानम् ... ..               | २९      | ४४ धरादानम् ... ..          | १४७     |
| १८ मण्डपादिलक्षणम् ...          | ३१      | ४५ विश्वचक्रदानम् ...       | १५१     |
| १९ कुण्डानि ... ..              | ३६      | ४६ महाकल्पलतादानम्          | १५५     |
| २० ग्रहपूजाप्रकारः ...          | ५१      | ४७ सप्तसागरदानम् ...        | १५७     |
| २१ विनायकादिलक्षणानि            | ५५      | ४८ रत्नधेनुदानम् ...        | १५९     |
| २२ लोकपालरूपाणि ...             |         | ४९ महाभूतघटदानम् ...        | १६२     |
| २३ पुण्याहवाचनादि ...           | ५८      | ५० दश महादानानि ...         | १६४     |
| २४ वाल्पूजा ... ..              | ६३      | ५१ रजतदानम् ... ..          | १६६     |
| २५ द्वारपूजा ... ..             | ६७      | ५२ अश्वदानम् ... ..         | १६८     |
| २६ अधिदेवताः ... ..             | ७५      | ५३ तिलदानम् ... ..          | १६८     |
| २७ वस्वाद्येकादशदेवताः          | ७७      | ५४ तिलकुम्भदानम् ...        | १७२     |



| अ. विषयः                                | पृष्ठम् | अ. विषयः                      |     |
|---|---------|-------------------------------|-----|
| ५५ गजदानम् ...                          | १७३     | ८३ महिषी ...                  | २१५ |
| ५६ दासीदानम् ...                        | १७४     | ८४ मेधी ...                   | २१६ |
| ५७ स्थदानम् ...                         | १७५     | ८५ अजा ...                    | २१८ |
| ५८ महीदानम् ...                         | १७      | ८६ मेषः ...                   | २१९ |
| ५९ गृहदानम् ...                         | १७७     | ८७ पर्वतदानानि ...            | २२० |
| ६० मठदानम् ...                          | १८५     | ८८ लवणाचलः ...                | २२८ |
| ६१ प्रतिश्रयदानम् ...                   | १८      | ८९ गुडपर्वतः ...              | २२९ |
| ६२ कन्यादानम् ...                       | १८६     | ९० सुवर्णाचलः ...             | २३० |
| ६३ वैवाहिकदानम् ...                     | १८७     | ९१ तिलाचलः ...                | २३१ |
| ६४ कपिलादानम् ...                       | १८८     | ९२ अर्धोदये तिलपर्वतदानम्     | १८  |
| ६५ तिलधेनुः ...                         | १९१     | ९३ कार्पासाचलः ...            | २३४ |
| ६६ घृतधेनुः ...                         | १९२     | ९४ घृताचलः ...                | १९  |
| ६७ जलधेनुः ...                          | १९३     | ९५ रत्नाचलः ...               | २३५ |
| ६८ क्षीरधेनुः ...                       | १९४     | ९६ रौप्याचलः ...              | २३६ |
| ६९ दधिधेनुः ...                         | १९५     | ९७ शर्कराचलः ...              | २३७ |
| ७० मधुधेनुः ...                         | १९६     | ९८ शिखरदानम् ...              | २३९ |
| ७१ रसधेनुः ...                          | १९७     | ९९ भद्रनिधिदानम् ...          | २४१ |
| ७२ शर्कराधेनुः ...                      | १९८     | १०० आनन्दनिधिदानम् ...        | २४४ |
| ७३ कार्पासधेनुः ...                     | १९९     | १०१ देवतादानानि ...           | २४७ |
| ७४ लवणधेनुः ...                         | २००     | १०२ ब्रह्मविष्णुकद्रदानम् ... | २४८ |
| ७५ सुवर्णधेनुः ...                      | २०१     | १०३ द्वादशादित्यदानम् ...     | २५० |
| ७६ वन्यात्वहरं सुवर्ण-<br>धेनुदानम् ... | २०२     | १०४ चंद्रादित्यदानम् ...      | २५१ |
| ७७ स्वरूपतो गोदानम्                     | २०३     | १०५ लोकपालाष्टकदानम्          | २५२ |
| ७८ गोदानविधिः ...                       | २०४     | १०६ नवग्रहदानम् ...           | २५३ |
| ७९ गोः पूजनं दानं च ...                 | २०६     | १०७ वारदानानि ...             | २५५ |
| ८० हेमशृङ्गीदानम् ...                   | २११     | १०८ शूलदानम् ...              | ११  |
| ८१ उभयतोमुखीधेनुदानम्                   | २१२     | १०९ आत्मप्रतिकृतिदानम्        | २५७ |
| ८२ वैतरणी ...                           | २१४     | ११० धनदमूर्तिदानम् ...        | २५८ |
|   |         | १११ शालग्रामदानम् ...         | २५९ |



## विषयानुक्रमिका ।

३

| अ.  | विषयः                 | पृष्ठम् | अ.  | विषयः                  | पृष्ठम् |
|-----|-----------------------|---------|-----|------------------------|---------|
| ११२ | कालपुरुषदानम् ...     | २६०     | १३१ | गंधद्रव्यदानम् ...     | ॥       |
| ११३ | कालचक्रदानम् ...      | २६१     | १३२ | रत्नदानानि ...         | ॥       |
| ११४ | यमदानम् ...           | २६२     | १३३ | गलन्तिकादानम् ...      | २८०     |
| ११५ | आयुष्करदानम् ...      | २६३     | १३४ | प्रपादानम् ...         | ॥       |
| ११६ | सम्पत्करदानम् ...     | २६४     | १३५ | उदकदानम् ...           | २८१     |
| ११७ | कुष्णाजिनम् ...       | २६६     | १३६ | धर्मघटदानम् ...        | २८२     |
| ११८ | शय्यादानम् ...        | २६९     | १३७ | यशोपवीतदानम् ...       | २८३     |
| ११९ | शिवाय शय्यादानम्      | २७१     | १३८ | यष्टिदानम् ...         | ॥       |
| १२० | षष्ठदानम् ...         | ॥       | १३९ | इन्धनदानम् ...         | २८४     |
| १२१ | आसनदानम् ...          | २७३     | १४० | अग्नीष्टिकादानम् ...   | २८५     |
| १२२ | भाजनदानम् ...         | ॥       | १४१ | दीपदानम् ...           | ॥       |
| १२३ | स्थालीदानम् ...       | २७४     | १४२ | अभयदानम् ...           | २८७     |
| १२४ | आपाकदानम् ...         | २७५     | १४३ | मासेष्वनुक्रमेण दानानि | ॥       |
| १२५ | विद्यादानाख्यमतिदानम् | ॥       | १४४ | अश्वत्थसेचनम् ...      | ॥       |
| १२६ | वेददानम् ...          | २७७     | १४५ | पान्थोपचारः ...        | २८८     |
| १२७ | पुस्तकदानम् ...       | २७८     | १४६ | गोपरिचर्या ...         | २८९     |
| १२८ | छत्रोपानदानम् ...     | ॥       | १४७ | सहस्रादिविप्रभोजन-     |         |
| १२९ | अन्नदानम् ...         | ॥       |     | विधिः ...              | २९०     |
| १३० | तांबूलदानम् ...       | २७९     | १४८ | नानाद्रव्यदानमन्त्राः  | २९१     |

इति दानमयूखस्थविषयाणामनुक्रमिका ।







# दानमयूखः ।

सप्तमः ७

श्रीगणेशाय नमः ॥

यो लीलया सन्तनुतेऽत्र विश्वं  
तत्पालयत्यात्मनि विश्वरूपे ।  
लयं नयत्याशु च पूर्णरूपः  
शिवं तनोत्वाशु रविर्ममासौ ॥ १ ॥  
श्रुतीः स्मृतीर्वीक्ष्य पुराणजातं  
तत्तन्निबन्धानपि सन्निबन्धान् ।  
श्रीशङ्करस्यात्मज एष दाने  
श्रीनीलकण्ठो विवृणोति कृत्यम् ॥ २ ॥

परस्वत्वोत्पत्त्यन्तो द्रव्यत्यागो दानम् । 'व्यत्ययविनिमयादयस्त्वे-  
तद्व्याप्या एव दानपदप्रयोगात्' इति केचित् । परे 'प्रयोगस्य भाक्त-  
त्वान्तर्निबन्धत्वेनापि विशेषणीयम्' इत्याहुः । दामोदरठक्कुरस्तु 'क्रयादि  
वारयितुमदृष्टार्थत्वेन विशेषणीयं प्रीत्यादिदाने दानपदं गौणम्'  
इत्युच्ये । तन्न । सोमक्रयातिव्याप्त्यवारणात् । गौण्यां मानाभावाच्च ।  
दूरस्थिपाद्यदेशेन त्यक्तस्यापहर्ता तु प्रत्यवैत्येव । तादृशापहारे शिष्ट-  
विगानेन निषेधकल्पनात् । 'परस्वं नाददीत' इत्येवमाकारकः प्रत्य-  
श्चस्तु निषेधो न प्रवर्तते । अपहारदशायां कस्याऽपि स्वत्वाभावात् ।  
दातुः पुनरुत्पत्तौ तु मानाभावः । रक्षणं तु परकीयस्यापि प्रीत्यादिनो-  
पपद्यत एव । अन्युद्देशत्यक्तपुरोडाशादाविव । अन्यथा तत्राऽपि  
पुनरुत्पत्तिप्रयोजकस्त्रिष्टकृदादिविषयभावेऽपि पुनरुत्पत्तिप्रसङ्गः । त्रिष्ट-  
कृदादिविधिसत्त्व एव पुनरुत्पत्तिर्नान्यथा । त्यक्तोपादाने विगानादिति  
निर्णायितं तन्त्ररत्नादौ । न त्यागकाले स्वत्वापगमः, किं तु विप्रकर्तृ-  
कस्वीकारकाल इति तु कस्यचिद्वाह्यतः प्रलाप उपेक्षणीय एव । यदि  
केनचित् कश्चिद्वाह्यमुद्दिश्य किञ्चिद्द्रव्यं सुवर्णरजतादि ।



मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ।

दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक् ॥

इत्यादिवचनप्रतिपादितेन विधिनोत्सृज्य देशान्तरस्थायं तस्मै तद्व्यं प्रहितम् । तच्च यदि मध्येमार्गं नष्टं चौरैर्वाऽपहृतं तदा दातुर्न कोऽपि प्रत्यवायः प्रमाणाभावात् । दानफलं तु नैव जायते । ब्राह्मणस्वत्वापर्यवसानकस्योत्सर्गस्याजातत्वात् । नचानेन वचसा दानानु-कल्पेन पात्रोद्देश्यकः सङ्कल्प एव विधीयते, न तु पात्रस्वत्वोत्पत्तिपर्यन्त-ताऽपि, उद्देशमात्रश्रवणादिति वाच्यम् । प्रजापतिव्रतान्तर्गतोद्यदा-दित्यानीक्षणसङ्कल्पवदत्रापि फलपर्यन्तताया आवश्यकत्वात् । अन्यथा तत्रापि सङ्कल्पमात्रादेव फलं स्यात् । अस्त्विति चेन्मैवम् । ‘तस्य व्रतम्’ इति भावरूपव्रतोपक्रमेणाभावरूपाऽऽदित्यानीक्षणाद्युक्तिर्विरुद्धो-पक्रमानुरोधात्प्रतिपालनीयत्वार्थाऽव्यभिचारिणीं भावरूपां सङ्कल्पक्रियां लक्षयति । तत्र च परिपालितेऽनीक्षणादौ व्यभिचारात्सङ्कल्पलक्षणेव दुर्घटा स्यात् । अतो न सङ्कल्पमात्रात्तत्र फलम् । किञ्चात्र वैयदेशका-लावच्छेदेन पात्रहस्तप्रक्षेपासम्भवे तत्स्थाने मानसपात्रोद्देश्यको जला-धिकरणको जलप्रक्षेपो विधीयते । न तु पात्रस्वत्वापत्तिपर्यन्तताऽपि बाध्यते । पात्रदातृप्रतिग्राहीतृपदैस्त्यागप्रतिग्रहयोः प्रतीतेः । अतो न प्रतिग्रहीतृव्यापारं विनोद्देशविशिष्टजलप्रक्षेपमात्रात्फलमिति दिक् ।

यत्तु देवलः—

त्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।

दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानं तस्य कथ्यते । इति ॥

तद्भक्ष्यमाणसात्त्विकदानोत्तर्यर्थं, न दानसामान्यपरम् । इति दान-स्वरूपम् ।

एतत्प्रशंसा सामवेदोपनिषदि—‘दानेन सर्वान् कामानवाप्नोति चिरञ्जीवत्वम्’ इति ।

व्यासः—

यद्दासि विशिष्टेभ्यो यदश्रासि दिने दिने ।

तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥

ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ।

इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति । इत्यादि ॥



## दानसामान्येतिकर्तव्यता ।

३

तच्च दानं त्रेधा कृतं भगवद्गीतासु—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।  
 देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥  
 यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।  
 दीयते च परिहृष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥  
 अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।  
 असंस्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

तामसानां फलं भुङ्क्ते तिर्यक्त्वे मानवः सदा ।  
 वर्णसङ्करभावेन वार्द्धके यदि वा पुनः ॥  
 बाल्ये वा दासभावे वा नात्र कार्या विचारणा ।  
 अतोऽन्यथा तु मानुष्ये राजसानां फलं भवेत् ॥  
 सात्त्विकानां फलं भुङ्क्ते देवत्वे नाऽत्र संशयः ।

मात्स्ये—

येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम ।  
 पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम् ॥  
 कर्मणा प्राप्यते लोकान् राजसस्य तथा फलम् ।  
 कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥

हारीतः—

भुमूर्षुस्तामसं यच्चाप्रकृतो ददाति । इति ।

अप्रकृतोऽसावधानः ।

गारुडे—

अर्हते यत्सुवर्णादि दानं तत्कार्यिकं मतम् ।  
 आर्तानामभयं दद्यादेतद्धि वाचिकं स्मृतम् ॥  
 विद्यामादाय यज्जप्यैस्तद्दानं मानसं द्विजाः । इति ॥

## अथ दानसामान्येतिकर्तव्यता ।

तत्र दानाधिकारस्तु चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीणां च ।

वर्णानामाश्रमाणां च चातुर्वर्ण्ये युधिष्ठिर ।



दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ।

इति व्यासोक्तेः ।

स च निषादस्थपतिवद्वैदिकमन्त्रवत्स्वपि समन्त्रक एव स्त्रीशूद्रयो-  
रविरुद्धः ।

मदनरत्ने जातूकर्ण्यः—

अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्वधर्मे न वैदिके ।

पूर्वधर्मास्तत्रैव स्मृत्यन्तरे—

बहिर्वेदि च यद्दानं तत्पौर्तिकमुदाहृतम् ।

तत्रैव व्यासोऽपि—

अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टं तदभिधीयते । इति ॥

अथ पात्रम् ।

याज्ञवल्क्यः—

न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता ।

यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रचक्षते । इति ॥

व्यासः—

प्रथमं तु गुरोर्दानं दत्त्वा ज्येष्ठमतुक्रमात् ।

ततोऽन्येषां तु विप्राणां दद्यात्पात्रानुरूपतः ॥

भविष्यपुराणे—

सन्निधानस्थितान्विप्रान् दौहित्रं विद्वपतिं तथा ।

भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून्गृहागतान् ॥

नातिक्रामेन्नरस्त्वेतान्सुमूर्खानपि दीयते ।

अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

विद्वपतिर्जामाता ।

विष्णुः—

मातृव्रसा स्वसा चैव तथैव च पितृव्रसा ।

मातामही भागिनेयी भागिनेयस्तथैव च ॥

दौहित्रश्चैव जामाता तेषु दत्तमिहाक्षयम् ।

श्रीभ्रष्टेषु तथा दत्तं तदप्यक्षय्यमुच्यते ॥

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ।

दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥



व्यासः—

पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरेव च ।

अनन्तं दुहितुर्दानं सौदर्यं दत्तमक्षयम् ॥

एतत्प्रशंसामात्रम् ।

दक्षः—

समभ्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।

सहस्रगुणमाचार्ये त्वनन्तं वेदपारणे ॥

व्यासः—

ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कारवर्जितः ।

जातिमात्रोपजीवी च भवेद्ब्राह्मणः स तु ॥

गर्भाधानादिभिर्युक्तस्तथोपनयनेन च ।

न कर्मविन्न चाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥

तथा—

देवार्चनपरो नित्यं वित्तार्थी वत्सरत्रयम् ।

असौ देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ॥

यत्तु बृहस्पतिना—

शूद्रे समगुणं दानं वैश्ये तु द्विगुणं स्मृतम् ।

क्षत्रिये त्रिगुणं प्रोक्तं ब्राह्मणे षड्गुणं स्मृतम् ॥

इति शूद्रादीनामपि पात्रतोक्ता, साऽन्नाच्छादनपरा ।

अन्नाच्छादनदानेषु पात्रं नैव विचारयेत् ।

अन्नस्य क्षुधितं पात्रं विवस्वो वसनस्य च ॥

इति विष्णुधर्मोक्तेः । अपात्रायाऽमन्त्रकं दानम्—

मन्त्रपूर्वं तु यद्दानमपात्राय प्रदीयते ।

दातुर्निकृत्य हस्तं तु श्रोतुर्जिह्वां निकृन्तति ॥

इति शातातपोक्तेः ।

तथा—

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् ।

स वै दुर्ब्राह्मणो नाम यश्च वै वृषलीपतिः । इति ॥

अपात्रमित्यर्थः ।



## अथ देयम् ।

यथाविधेन द्रव्येण यत्किञ्चित्कुरुते नरः ।

तथाविधमवाप्नोति स फलं प्रेत्य चेह च ॥

तथाविधं शुक्लेन शुद्धं शबलेन दुःखसंमिश्रं कृष्णेनासुखोदयम् ।  
शुक्लादिस्वरूपं तु स्मृतौ—

श्रुतशौर्यतपःकन्यायाज्यशिष्यान्वयागतम् ।

धनं सप्तविधं शुक्लमुदयोऽप्यस्य तद्विधः ॥

कुसीदकृषिवाणिज्यशिष्यशुक्लानुवृत्तिः ।

कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम् ॥

पार्श्वकचूतचौर्यातिप्रतिरूपकसाहसैः ।

व्याजेनोपार्जितं यत्तत्सर्वेषां कृष्णमुच्यते । इति ॥

पार्श्वकं सर्वदा समीपस्थित्या सेत्रा । प्रतिरूपकं वेशान्तरग्रहणम् ।

शिवधर्मे—

तस्माद्भिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् ।

भागद्वयं तु धर्मार्थमनित्यं जीवितं यतः ॥

‘सर्ववित्तस्य भागपञ्चकं कृत्वा भागत्रयं जीवनार्थं, भागद्वयं धर्मार्थम्,’  
इति हेमाद्रिः । ‘भागत्रयं सर्ववित्तस्य तत्रैको भागो जीवनाय भागद्वयं  
धर्माय’ इत्यन्ये ।

कृपणाशक्तविषये तु भारते—

एकां गां दशगुर्दद्यादश दद्याच्च गोशती ।

शतं सहस्रगुर्दद्यात् सर्वे समफलाः स्मृताः । इति ॥

‘गोपदं वित्तमात्रोपलक्षणार्थम् । अन्यथा पञ्चगवादेः सहस्राधिक-  
गवादेश्च गोदानेऽनधिकारः स्यात्’ इति हेमाद्रिः ।

यमः—

सुवर्णं रजतं ताम्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति ।

न तत्फलमवाप्नोति तत्रैव परिवर्तते ॥

यतये काञ्चनं दत्त्वा दाताऽपि नरकं व्रजेत् ।

अपिशब्दात् प्रतिग्रहीताऽपि ।



देयम् ।

७

अङ्गिराः—

देवतानां गुरुणां च मातापित्रोस्तथैव च ।  
पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं चोदितं क्वचित् ॥

तथा—

पापदः पापमाप्नोति नरो लक्षगुणं सदा ।  
पुण्यदः पुण्यमाप्नोति शतशोऽथ सहस्रशः ॥

स्कान्दे—

आपस्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ।  
अन्वये सति सर्वस्वं दाराश्च शरणागताः ॥  
न्यासाधी कुलवृत्तिश्च निक्षेपः स्त्रीधनं सुतः ।  
यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तैर्विशुद्धयति ॥

अङ्गिराः—

बहुभ्यो न प्रदेयानि गोगृहं शयनं स्त्रियः ।  
विभक्तदक्षिणा हेता दातारं तारयन्ति हि ॥

विभक्तदत्तानि पृथग्दत्तानि ।

गौरेकस्यैव दातव्या न बहुभ्यः कथञ्चन ।  
सा हि विक्रयमापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम् । इति ॥

अग्राह्यं स्कान्दे—

अजिनं मृतशय्यां च मेषीं चोभयतोमुखीम् ।  
कुरुक्षेत्रे च गृहानो न भूयः पुरुषो भवेत् ॥

अग्राह्यं प्रकृत्य तत्रैव—

हस्त्यश्वरथयानानि मृतशय्यासनादयः ।

अग्राह्या इत्यर्थः । आसनं मृतस्यैव ।

पद्मपुराणे—

ब्रह्माण्डं भूमिदानं च ग्राह्यं नैकेन तद्भवेत् ।  
अश्वं च मणिमातङ्गतिललोहानि वर्जयेत् । इति ॥

वसिष्ठः—शस्त्रं विषं सुरा वाऽप्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य ।

हेमाद्रौ पाद्मे—

अतिदुष्टा प्रेतशय्या न ग्राह्या द्विजसत्तमैः ।  
गृहीतायां च तस्यां तु पुनः संस्कारमर्हति ॥



## दानमूलः

८

लोहं तिलाश्च महिषी तैलं लवणमेव च ।  
तिलधेनुर्मणिश्चैव घोराः सप्त प्रतिग्रहाः । इति ॥

मनुः—

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्धृतम् ।  
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत् ॥  
प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।  
प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मं तेजो विनश्यति ॥

इति देयद्रव्यम् ।

अथ कालाः ।

वाराहे—

दर्शे शतगुणं दानं तच्चतुर्त्रे दिनक्षये ।  
शतत्रं तच्च संक्रान्तौ शतत्रं विषुवे ततः ॥  
युगादौ तच्छतगुणमयने तच्छताहतम् ।  
सोमग्रहे तच्छतत्रं तच्छतत्रं रवेर्ग्रहे ॥  
तच्छतत्रं व्यतीपाते दानं वेदविदो विदुः ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

वैशाखी कार्तिकी माघी पूर्णिमा तु महाफला ।  
पौर्णमासीषु सर्वासु मासर्क्षसहितासु च ॥  
दत्तानामिह दानानां फलं शतगुणं भवेत् ।  
यस्यां पूर्णेन्दुना योगं याति जीवो महाबलः ॥  
पौर्णमासी तु विज्ञेया महापूर्वा द्विजोत्तम ।  
स्नानं दानं तथा जप्यमक्षय्यं वै तदा स्मृतम् ॥

शङ्खः—

अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह ।  
चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ॥  
चतस्रस्तितथयस्स्वेतास्तुर्याः स्युर्ग्रहणादिभिः ।  
सर्वमक्षयमत्रोक्तं स्नानदानजपादिकम् ॥  
अमावास्या व्यतीपातो ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।  
मन्वाद्यो युगादिश्च संक्रान्तिर्वैधृतिस्तथा । इत्यादि ॥



पुण्यदेशाः ।

९

भारते—

रात्रौ दानं न शंसन्ति विना त्वभयदक्षिणाम् ।

विद्यां कन्यां द्विजश्रेष्ठ दीपमन्त्रं प्रतिश्रयम् ॥

विनेतिपदं विद्यादिभिरपि सम्बद्धयते ।

तथा—

महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ।

स्नानं तत्र न कुर्वीत काम्यं नैमित्तिकादृते ॥

नेच्छन्त्येके स्नानदानं रात्रौ मध्यमयामयोः ।

नैमित्तिकं तदा कुर्यान्नित्यं तु न मनागपि ॥

उभयतोमुख्यातुरदानाभयदानान्नदानादिकं तु सर्वदा भवतीति  
अर्द्धप्रसूतां गां दद्यात्कालादि न विचारयेत्, इति तत्र तत्र स्पष्टम् ।

अथ पुण्यदेशाः ।

मनुः—

दृषद्वतीसरस्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।

तदेवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।

एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥

मत्स्यो विराट्देशः । पञ्चालाः कान्यकुब्जाहिच्छत्रादिदेशाः । शूर-  
सनिको मथुरादिदेशः ।

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।

प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशश्च कीर्तितः ॥

विनशनमन्तर्द्धानम् ।

भविष्यपुराणे—‘ वाराणसीकुरुक्षेत्रप्रयागपुष्करक्षेत्रगङ्गासमुद्रतीरनै-  
मिषामरकण्टकश्रीपर्वतमहाकालगोकर्णदेवपर्वतादीनि पुण्यानि ’ इति ।

पाद्मे—

लिङ्गं वा प्रतिमा वाऽपि दृश्यते यत्र कुत्रचित् ।

तत्सर्वं पुण्यतां याति दानेषु च महाफलम् ॥

भविष्योत्तरे—

कोशमात्रं भवेत्क्षेत्रं शिवस्य परमात्मनः ।



प्राणिनां तत्र पञ्चत्वं शिवसायुज्यकारकम् ॥  
 फलं दत्तहुतानां च अनन्तं परिकीर्तितम् ।  
 मनुजैः स्थापिते लिङ्गे क्षेत्रमानमिदं स्मृतम् ॥  
 स्वयम्भुवि सहस्रं स्यादार्घ्यं च तदूर्ध्वकम् ।

तथा—

गृहे दशगुणं दानं गोष्ठे चैव शताधिकम् ।  
 पुण्यतीर्थेषु साहस्रमनन्तं शिवसन्निधौ ॥

मात्स्ये—

शालग्रामसमुद्भूतः शैलचक्राङ्गमण्डितः ।  
 तिष्ठते यत्र वसुधे तत्क्षेत्रं योजनत्रयम् ॥  
 द्वारवत्याः शिला देवि मुद्रिता मम मुद्रया ।  
 यत्रापि नीयते तत्स्यात्क्षेत्रं द्वादशयोजनम् । इत्यादि ॥

काशीखण्डे—

अन्यत्र यत्कृतं कर्म व्रतं दानं तपो जपः ।  
 गङ्गातटेषु तत्सर्वं कृतं कोटिगुणं भवेत् ॥

मात्स्ये—

अग्निहोत्रगृहे चैव यदल्पमपि दीयते ।  
 तदनन्तफलं सर्वं भवतीति विनिश्चयः ॥  
 इति देशाः ।

प्रतिग्रहे देशनिषेधः ।

पाद्मे—

न तीर्थे प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ।

ब्रह्मपुराणे—

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ।  
 तत्र न प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

दानधर्मे—

भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम् ।  
 तावद्गर्भं विजानीयात्तदूर्ध्वं तीरमुच्यते ॥

मात्स्येऽपि—

सार्द्धहस्तशतं यावद्गर्भतस्तीरमुच्यते ।



स्कान्दे—

तीराद्रव्यूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यते । इति ॥

इदं च गङ्गायाम् । गर्भप्रतिग्रहनिषेधः प्रसिद्धनदीषु । प्रसिद्धतरा-  
ण्डक्यादिषु तु तीरेऽपि । गङ्गायां तु क्षेत्रेपीति सर्वशिष्टाचारः ॥

अथ दातृकृत्यम् ।

मनुः—

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ।

न सांपरायिकं तस्य दुर्भेदेर्विद्यते फलम् ॥

कात्यायनः—

कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना ।

देयं प्रतिग्रहीतव्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥

स्मृत्यन्तरे—

दद्यात्पूर्वमुखो दानं गृहीयादुत्तरामुखः ।

आयुर्विवर्द्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत् ॥

हेमाद्रौ—

नामगोत्रे समुच्चार्य सम्प्रदानस्य चात्मनः ।

संप्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंस्त्रयम् ॥

शाखामप्युच्चारयन्ति शिष्टाः । वस्त्रादिना विप्रवरणं च कुर्वन्ति  
सध्यदेशे ।

तथा—

नामगोत्रे समुच्चार्य सम्यक्श्रद्धान्वितो ददेत् ।

सङ्कीर्त्य देशकालादि तुभ्यं संप्रददे इति ॥

न ममेत्यपि कीर्तयन्ति शिष्टाः ।

वाराहे—

सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसन्ध्यादिकक्रियः ।

कामक्रोधविहीनश्च पाखण्डस्पर्शवर्जितः ॥

दद्यादिति शेषः ।

गौतमः—

अन्तर्जानुकरं कृत्वा सकुशं सतिलोदकम् ।

फलान्यपि च सन्ध्याय प्रदद्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥



तथा—

नामगोत्रे समुच्चार्य प्राञ्जुखो देयकीर्तनात् ।  
उदङ्मुखाय विप्राय दत्त्वा तं स्वस्ति कीर्तयेत् ॥  
सदेवताकदेयकीर्तनाऽनन्तरं दत्त्वेत्यर्थः ।

देवलः—

प्रदाय शाकमुष्टिं वा यस्तु श्रद्धासमन्वितः ।  
महते पात्रभूताय सर्वाभ्युदयमाप्नुयात् ॥

पात्राऽसन्निधाने नारदीये—

मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूमौ विनिक्षिपेत् ।  
विद्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते ॥  
'पात्राऽसन्निधानेऽन्यविप्रकरे दानं देयम्' इति धौम्यस्मृतौ ।  
पात्राऽसन्निधाने 'अप्सु देयं विनिक्षिपेत्' इति पट्त्रिशन्मते । देय-  
पात्रासंनिधाने तत्रैव विशेष उक्तः—

द्रव्यपात्रविकर्षश्चेत्परोक्षं दातुमुद्यतः ।  
तं ध्यायाद्वैभवं पात्रं द्रव्यमादित्यदैवतम् ॥

तथा—

परोक्षे कल्पितं दानं पात्राभावे कथं भवेत् ।  
गोत्रजेभ्यस्तदा दद्यात्तदभावेऽस्य बन्धुषु ॥

गोत्रजाः पात्रस्य ।

स्कान्दे—

तस्मात् प्रणवमुच्चार्य कार्यौ दानप्रतिग्रहौ ।

याज्ञवल्क्यः—

प्रतिग्रहे सूतिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः ।  
दुष्टा दशगुणं पूर्वात्पूर्वादेते यथाक्रमम् ॥  
राजा शास्त्रातिक्रमवर्ती । 'न राज्ञः प्रतिगृहीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रव-  
र्तिनः' इति स्मृतेः । तदपवादः—

अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ।  
अन्यत्र कुलटाण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥

तथा—

चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात् ।  
यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोऽपि वा भवेत् ॥



यज्ञोद्देशेन न याचेतेत्यर्थः । प्रकारान्तरेण लब्धेन यज्ञे कृते न दोषः ।  
अत एव ज्ञायते, वैश्यादेर्यज्ञोद्देशेनाऽपि याचनीयम्, इति ।

अथ प्रतिग्रहीतृकृत्यम् ।

ॐ कारमुच्चरन्प्राज्ञो द्रविणं सकुशोदकम् ।

गृहीयादक्षिणे हस्ते तदन्ते स्वस्ति कीर्तयेत् ॥

पुराणान्तरे—

प्रतिग्रहीता सावित्रं सर्वत्रैवानुकीर्तयेत् ।

ततस्तु कीर्तयेत्सार्द्धं द्रव्येण द्रव्यदेवताम् ॥

समापयेत्ततः पश्चात्कामस्तुत्या प्रतिग्रहम् ।

तदन्ते कीर्तयेत्स्वस्ति प्रतिग्रहविधिस्त्वयम् ॥

सावित्रो 'देवस्यत्वा' इत्यादिः ।

आदित्यपुराणे—

प्रतिग्रहं पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ।

मन्द्रं पठेत्तु राजन्यादुपांशु च तथा विशि ॥

मनसा तु तथा शूद्रे स्वस्ति वाचनमेव च ।

सोङ्कारं ब्राह्मणे कुर्यान्निरोङ्कारं महीपतौ ॥

उपांशु च तथा वैश्ये मनसा शूद्रजे तथा । इति ॥

प्रतिग्रहश्च दक्षिणहस्तमध्ये कर्तव्यः—

हस्तमध्ये ब्रह्मतीर्थं दक्षिणाग्रहणे च तत्' इति स्मरणात् ।

तथा—

प्रतिग्रहस्य यो धर्म्यं न जानाति द्विजो विधिम् ।

द्रव्यस्तैन्यसमायुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥

विधिं तु धर्म्यं विज्ञाय ब्राह्मणस्तु प्रतिग्रहे ।

दात्रा सह तरत्येव महादुर्गाण्यसौ ध्रुवम् । इति ॥

याज्ञवल्क्यः—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् ।

ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान् । इति ॥

अप्रत्याख्येयमाह स एव—

कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः ।

मांसं शय्यासनाधानाः प्रत्याख्येयं न वारि च ॥



तथा—

एधोदकं मूलफलं जलमभ्युद्यतं च यत् ।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाऽभयदक्षिणाम् । इति ॥

एषः काष्ठम्, अभ्युद्यतमयाचितागतम् ।

तथा चाङ्गिराः—

आममांसं मधु घृतं धानाः क्षौरमथोदितम् ।

गुडं तक्रं च सङ्गाह्यं निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥

खलक्षेत्रगतं धान्यं वापीकूपगतं जलम् ।

असाधोरपि तद्गाह्यं यच्च गोष्ठगतं पयः ॥

इक्षुः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्याणि सर्वतः ।

बृहस्पतिः—

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।

पूर्वं सङ्कल्पितं ग्राह्यं न दोषः परिकीर्तितः । इति ॥

अत्र विवाहोत्सवयज्ञेष्विति 'यजतिषु येयजामहं करोति नानुया-  
जेषु' इतिवदुद्देश्यविशेषणमपि विवक्षितम् । अन्यथा विवाहोत्सवयज्ञेषु  
इति परिगणनं व्यर्थं स्यात् । अतोऽन्यत्र पूर्वसंकल्पितस्य सूतकादौ  
दोष एवेति ।

द्रव्यदेवतास्तैत्तिरीये—सोमाय वासः । रुद्राय गाम् । वरुणायाऽश्वम् ।  
प्रजापतये पुरुषम् । मनवे तल्पम् । त्वष्ट्रेऽजाम् । पूष्णेऽविम् । निर्ऋत्या  
अश्वतरगर्दभौ । हिमवते हस्तिनम् । गन्धर्वाप्सरोभ्यः स्रगलङ्करणे ।  
विश्वेभ्यो देवेभ्यो धान्यम् । वाचेऽन्नम् । ब्रह्मण ओदनम् । समुद्रायापः ।  
उत्तानायाऽऽङ्गीरसायाऽनः । वैश्वानराय रथम् । इति ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता ।

कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः ॥

तथा चैकशफं सर्वं कथितं यमदैवतम् ।

महिषाश्वास्तथा याम्या उष्ट्रो वा नैर्ऋतो भवेत् ॥

रौद्री धेनुर्विनिर्दिष्टा छागमाग्नेयमादिशेत् ।

मेघं तु वारुणं विद्याद्वराहं वैष्णवं तथा ॥

आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदेवताः ।



जलाशयांस्तु सर्वास्तु वारिधानीं कमण्डलुम् ॥  
 कुम्भं च करकं चैव वारुणानि निबोधत ।  
 समुद्रजानि सर्वाणि वारुणानि द्विजोत्तमाः ॥  
 आग्नेयदैवतं प्रोक्तं सर्वलोहानि चाप्यथ ।  
 प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपि वै द्विज ॥  
 ज्ञेयास्तु सर्वगन्धा वै गान्धर्वाश्च विचक्षणैः ।  
 बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्या ज्ञेया रसास्तथा ॥  
 पक्षिणश्च तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्तिताः ।  
 विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपकरणानि च ॥  
 सारस्वतानि देयानि पुस्तकादीनि पण्डितैः ।  
 सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां विश्वकर्मा तु दैवतम् ॥  
 द्रुमाणामथ पुष्पाणां शाकैर्हरितकैः सह ।  
 फलानामपि सर्वेषां तथा ज्ञेयो वनस्पतिः ॥  
 मत्स्यमांसे विनिर्दिष्टे प्राजापत्ये तथैव च ।  
 छत्रं कृष्णाजिनं शय्यां रथमासनमेव च ॥  
 उपानहौ च यानं च यच्चान्यत्प्राणिवर्जितम् ।  
 तत्त चाङ्गिरसत्वेन प्रतिगृहीत मानवः ॥  
 शूरोपयोगि यत्सर्वं शस्त्रवर्मध्वजादिकम् ।  
 रणोपकरणं सर्वं विज्ञेयं सर्वदैवतम् ॥  
 गृहं तु सर्वदैवत्यं यदनुक्तं द्विजोत्तम ।  
 विज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्वं वा द्विजसत्तमाः ॥

हेमाद्रौ यजुःपाठानन्तरं—

‘राजा त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणे अमुकस्मै अमुकान्तेनाऽमृतत्व-  
 मश्यां वयो दात्रे मयो मह्यमस्तु प्रतिग्रहीत्रे’ ।

ततः कामस्तुतिः । ‘ॐ स्वस्ति’ इति विशेषः ।

अथ द्रव्याणां प्रतिग्रहस्थानानि ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

भूमेः प्रतिग्रहं कुर्याद्भूमिं कुर्वन्प्रदक्षिणम् ।

करे गृहीत्वा कन्यां च दासदास्योर्द्विजोत्तमाः ॥

)



करं तु हृदि विन्यस्य धर्म्यो ज्ञेयः प्रतिग्रहः ।  
 आरुह्य तु गजस्योक्तः कर्णे वाऽथस्य कीर्तितः ॥  
 तथा चैकशफानां तु सर्वेषां च विशेषतः ।

तथा कर्णः—

प्रतिगृहीत तान्शृङ्गे पुच्छे कृष्णाजिनं तथा ।  
 तान् एकशफान् । अत्र शृङ्गिणामेकशफानां शृङ्गे इतरेषां कर्णे इति  
 तु व्यवस्था ।

कर्णेऽजः पशवः सर्वे ग्राह्याः पुच्छे विचक्षणैः ।  
 गृहीयान्महिषं शृङ्गे खरं वै पृष्ठदेशतः ॥  
 प्रतिग्रहमथोष्टस्य यानानां चाधिरोहणात् ।  
 बीजानां मुष्टिमादाय रत्नान्यादाय सर्वतः ॥  
 वस्त्रं दशान्तादादद्यात्परिधायाऽथवा पुनः ।  
 आरुह्योपानहौ मञ्च आरुह्यैव तु पादुके ॥  
 वर्मध्वजौ तु संस्पृश्य प्रविश्य च तथा गृहम् ।  
 अवतीर्य च सर्वाणि जलस्थानानि वै द्विजाः ॥  
 ईषायां तु रथो ग्राह्यश्छत्रं दण्डे तथैव च ।  
 द्रुमांश्च प्रतिगृहीयान्मूलन्यस्तकरो द्विजः ॥  
 आयुधानि समादाय तथाऽऽमुच्य विभूषणम् ।

परिशिष्टे तु—

प्रतिगृहीत गां पुच्छे कर्णे वा हस्तिनं करे ।  
 मूर्ध्नि दासीमजं चैव पृष्ठेऽश्वतरगर्दभौ ॥  
 अश्वं कर्णे सटे वाऽपि अन्नमुद्दिश्य धारयेत् ।  
 शय्यासनं गृहं क्षेत्रं संस्पृश्यादाय काञ्चनम् ॥  
 उष्ट्रं च ककुदे स्पृष्ट्वा मृगांश्च महिषादिकान् ।  
 गोधामश्वविधानेन पुच्छे संस्पृश्य पक्षिणः ॥  
 दंष्ट्रिणो दंशिनश्चैव तथा क्षुद्रमृगाश्च ये ।  
 ओजस्विनां च सर्वेषामेष एव विधिः स्मृतः ॥  
 छत्रं च चामरं मूले फलं संगृह्य गौरवात् ।  
 प्रगृह्योपानहौ मन्त्रं वाचयेत्प्रतिमुच्य वै ॥  
 वासस्त्वथ समादाय कन्यां शीर्ष्ण्यथ वै करे ।  
 रतिभार्या परपूर्वा प्रतिगृहीत चाक्षताम् ॥



पुत्रमुत्सङ्गमारोप्य प्रतिगृहीत दत्तकम् ।  
 रथं रथमुखे स्पृष्ट्वा प्रतिगृहीत कूबरे ॥  
 कूबरो युगाधारं काष्ठम् । युग्यकाञ्चनवस्त्राणामङ्गयुक्ते प्रतिग्रहः ।  
 इति सामान्येति कर्तव्यतानिरूपणम् ॥

### अथ परिभाषा ।

वामनपुराणे—

सर्वमङ्गलमङ्गल्यं वरेण्यं वरदं शुभम् ।  
 नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥

भविष्ये—

सङ्कल्पेन विना विप्र यत्किञ्चित्कुरुते नरः ।  
 फलं वाऽल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत् ॥

वासिष्ठः—

जपहोमोपवासेषु धौतवस्त्रधरो भवेत् ।  
 अलङ्कृतः शुचिर्मौनी श्रद्धावान्विजितेन्द्रियः ॥

याज्ञवल्क्यः—

यदि वाग्यमलोपः स्याज्जप्यादिषु कथञ्चन ।  
 व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥

स एव—

गौद्रपित्रासुरान्मन्त्रांस्तथा चैवाभिचारिकान् ।  
 व्याहृत्यालभ्य चात्मानमपः स्पृष्ट्वान्यदाचरेत् ॥

कात्यायनः—

पित्र्यमन्त्रानुद्रवणे आत्मात्मभेऽवमोक्षणे ।  
 अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥  
 मार्जारमूषकस्पर्शे आकुप्रे क्रोधसंभवे ।  
 निमित्तेष्वेव सर्वेषु कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥

आत्मात्मभो हृदयस्पर्शः । स च कर्मणि विहित इति केचित् ।

स्मृत्यथसारं—

कर्त्रेङ्गानामनुक्तौ तु इक्षिणाऽङ्गं भवेत्तथा ॥

छन्दोगपरिशिष्टे—

यत्र दिङ्मनियमो नास्ति जपादिषु कथञ्चन ।



तिलस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्री सौम्याऽपराजिता ॥

तत्रैव—

आसीन ऊर्ध्वः प्रहो वा नियमो यत्र नेदृशः ।  
तदासीनेन कर्तव्यं न प्रहेन न तिष्ठता । इति ॥

तथा—

पञ्चाशद्भिर्भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः ।  
दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तु विष्टरः ॥

तथा—

अनन्तर्गभिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ।  
प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥

तथा—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।  
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

विष्णुवर्मोत्तरे—

मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः ।  
स्वाहावसाने जुहुयाद्धयायन्वै मन्त्रदेवताम् ॥

प्राज्ञे—

शमीपलाशन्यग्रोधप्लक्षवैकङ्कतोद्भवाः ।  
अश्वत्थौदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनः सरलस्तथा ॥  
शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः ।

कर्मप्रदीपे—

नाङ्गुलादधिका कार्या समित्स्थूलतया क्वचित् ।  
न वियुक्ता त्वचा चैव न सक्रीटा न पाटिता ॥  
प्रादेशान्नाधिका नोना न तथा स्याद्विशाखिका ।  
न सपर्णा समित्कार्या होमकर्मसु जानता ॥

तथा—

प्रागप्राः समिधो प्राह्या अस्वर्वा नोष्टपाटिताः ।  
काम्येषु वश्यकर्मादौ विपरीता जिघांसतः ॥  
विशीर्णा विदला हस्ता वक्रा बहुशिराः कृशाः ।  
दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशकाः ॥



वायुपुराणे—

कण्डनं पेषणं चैव तथैवोल्लेखनं तथा ।  
सक्रुदेव पितृणां स्याद्देवानां तन्निरुच्यते ॥

भविष्यत्पुराणे—

भूमौ स्थितेन पात्रेण विष्टब्धेन च पाणिना ।  
वामेन यदुशार्दूल नान्तरिक्षे तु हूयते ॥  
धनायुर्दाररेखासु सोमतीर्थं तु मध्यमम् ।  
लाजादिहवनं तेन कर्तव्यं वपनं तथा ॥

वपनं निर्वापः ।

कात्यायनः—

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका  
रसादिना चैत्सुचि पर्वपूरिका ।  
दैवेन तीर्थेन तु हूयते हविः  
स्वङ्गारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके ॥  
योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ।  
मन्दाग्निरामयावी च दग्निश्चैव जायते ॥  
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथञ्चन ।  
आरोग्यमिच्छताऽऽयुश्च श्रियमात्यन्तिकी तथा ॥  
जुहुयुश्च हुते चैव पाणिशूर्पसुवादिभिः ।  
न कुर्यादग्निधमनं कुर्यात्तु व्यजनादिना ॥  
मुखेनैव धमेदग्निं मुखाद्धयेषोऽध्यजायत ।  
नाग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयन्ति तत् ॥

बह्वचपरिशिष्टे—

मथानुधः सधूमे तु जुहुयाद्यो हुताशने ।  
यजमानो भवेदन्धः सपुत्र इति च श्रुतिः ॥

इति परिभाषाप्रकरणम् ॥

सात्स्थे—

होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।  
अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते ॥



## गृह्यपरिशिष्टे—

बह्वर्षं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रकीर्तितम् ।  
तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वं कृतं भवेत् ॥  
प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि होमात्कथञ्चन ।  
यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥

अन्यथाभूतं विपर्यस्तम् ।

## छन्दोगपरिशिष्टे—

यन्नाऽऽम्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि यत् ।  
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥  
समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् ।  
तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥  
प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियते पुनः ।  
तदङ्गस्याक्रियायां तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया ॥

तथा—

दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणा हविरग्नयः ।  
अथातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः ॥

लघुहारीतः—

चितौ दर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ।  
स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान्परिवर्जयेत् । इति ॥

ब्राह्मे—

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।  
यवानामिव गोधूमा ब्रीहीणामिव शालयः ॥  
आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ।  
मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥

अनादेशे अविधाने । 'प्राजापत्यमन्त्रः समस्तव्याहृतयः' इति मदनः ।  
स्मृत्यन्तरेऽपि—न व्याहृत्या समं हुते इति ।

गारुडे—

प्रणवादि नमोऽन्तं च चतुर्थ्यन्तं च सत्तम ।  
देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥

विष्णुधमात्तरे—

दध्यलाभे पयः कार्यं मध्वलाभे तथा गुडः ।



घृतप्रतिनिधिं कुर्यात्पयो वा दधि वा नृप ॥  
 'सर्वाभावे यवः प्रतिनिधिः' इति पैठीनसिनोक्तम् ।  
 'बौधायनः—'पलाशाश्वत्थखदिररौहितकौदुम्बरीणामिध्मास्तदला-  
 भे सर्ववनस्पतीनाम्' ।

आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्यमेव भवेद्घृतम् ।  
 तदलाभे महिष्यास्तु आजमाविकमेव च ॥  
 तदलाभे तु तैलं स्यात्तदलाभे तु जार्तिलम् ।  
 तदभावे तु कौसुम्भं तदभावे तु सार्षपम् ॥

याज्ञवल्क्यः—

आर्षश्छन्दश्च दैवत्यं विनियोगं तथैव च ।  
 वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणं च विशेषतः ॥  
 अविदित्वा तु यः कुर्याद्याजनाध्ययनं जपम् ।  
 होममन्तर्जलादीनि तस्य वाऽल्पं फलं भवेत् ॥

आदित्यपुराणे—

सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्तं प्रवालकम् ।  
 रत्नपञ्चकमाख्यातं शेषं वस्तु ब्रवीम्यहम् ॥

स्मृत्यन्तरे तु—

कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् ।  
 एतानि पञ्च रत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः । इति ॥

तत्रैव—

अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।  
 आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥  
 तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।  
 एभिस्तु पञ्चभिर्धुक्तं पञ्चगव्यमिति स्मृतम् ॥

मदनरत्ने कात्यायनः—

आज्यं क्षीरं मधु तथा मधुरत्रयमुच्यते । इति ॥

ब्राह्मे—

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्ष्मचूतन्यग्रोधपल्लावाः ।  
 पञ्चभङ्गा इति प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥



पञ्चभङ्गाः पञ्चपल्लावाः ।

चतुःसमं गारुडे—

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च ।

कुङ्कुमस्य त्रयश्चैव शशिनश्च चतुःसमम् ॥

शशी कर्पूरः ।

कर्पूरं चन्दनं दर्पं कुङ्कुमं च समांशकम् ।

सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तसुरवल्लभम् ॥

दर्पः कस्तूरी ।

तथा—

कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरी चन्दनं तथा ।

कङ्कोलं च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्मः ॥

छन्दोगपरिशिष्टे—

कुष्ठं मांसि हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम् ।

वचा चम्पकमुस्तं च सर्वौषधयो दश स्मृताः ॥

पाद्वे—

इक्षवस्तृणराजं च निष्पावाजाजिधान्यकम् ।

विकारवच्च गोक्षीरं कुसुमं कुङ्कुमं तथा ॥

लवणं चाष्टमं तत्र सौभाग्याष्टकमुच्यते ।

तृणराजस्तालस्तत्पात्रम् । अजाजी जीरकम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

मुक्ताफलं हरितकं वैडूर्यं पद्मरागकम् ।

पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा ॥

प्रवालमुक्तायुक्तानि महारत्नानि वै नव ।

स्कान्दे—

दधि क्षीरमथाज्यं च माक्षिकं लवणं गुडः ।

तथैवेक्षुरसश्चेति रसाः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥

भविष्यत्पुराणे—

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा ।

यवाः सिद्धार्थकाश्चेति ह्यर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः ॥

तत्रैव—

सुवर्णं रजतं ताम्रमारकूटं तथैव च ।



## देवताप्रतिमाः

२३

लोहं त्रपु तथा सीसं धातवः सप्त कीर्तिताः ॥

पञ्चरात्रे—

रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डलाऽर्थं हि कारयेत् ।

शालितण्डुलचूर्णेन शुक्लं वा यवसंभवम् ॥

रक्तं कुसुम्भसिन्दूरगैरिकादिसमुद्भवम् ।

हरितालोद्भवं पीतं रजनीसंभवं तथा ॥

कृष्णं दग्धयवैः, हरितं पीतकृष्णविमिश्रितम्, रजनी हरिद्रा ।

भविष्यत्पुराणे—

दूर्वा यवाङ्कुरश्चैव वालकं चूतपल्लवाः ।

हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः ॥

कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाऽऽख्या नव स्मृताः ।

इति नव कौतुकानि ॥

दशङ्गधूपो मदनरत्ने—

षड्भागकुष्ठं द्विगुणो गुडश्च

लाक्षात्रयं पञ्च नखस्य भागाः ।

हरीतकी सर्जरसः समांसी

भागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम् ॥

घनस्य चत्वारि पुरस्य चैको

धूपो दशङ्गः कथितो मुनीन्द्रैः ।

शिलाजं शैलेयम् । घनो मुस्ता । पुरो गुग्गुलुः ।

भविष्यत्पुराणे विशेषः—

अनुक्तद्रव्यतत्सङ्ख्या देवताप्रतिमा नृप ।

सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्तिकी तथा ॥

चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुरूपतः ।

आमाषात्पलपर्यन्ता कर्तव्या शास्त्रवर्जितैः ॥

अङ्गुष्ठपर्वप्रभृतिवितस्त्यवधिका स्मृता । इति ॥

तत्तद्दानाऽङ्गदेवताप्रतिमालक्षणानि तत्र वक्ष्यन्ते ।

तुलाधिष्ठितदेवताप्रतिमानां तु लक्षणानि—

त्रिनेत्रो वृषभन्धस्त्रिशूलधृक् । पाशपाणिश्चन्द्रार्द्धभूषण ईशः ।

१ कपाल इति केपाठः ।



श्वेताश्वरथगः सोमो गदापाणिर्वरप्रदः ।

धावद्धरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः ॥

रक्तवर्णास्त्रिनयना द्विभुजाश्चन्द्रमौलयः ।

जटिलाश्च प्रकर्तव्या रुद्रा बाणधनुर्द्धराः ॥

शुभश्मश्रुः सिन्दूरारुणसप्रभः पद्मासनः पद्मकरो भूषिताङ्गो  
रसनाधरः सूर्यः । श्मश्रुलो रसनाधरः, सन्दंशपाणिर्द्विभुजस्तेजो-  
मूर्तिधरो महान्, विश्वकर्मा ।

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी चतुर्भुजो देवगुरुः प्रशान्तो दण्डक-  
मण्डस्वक्षसूत्रधरगुरुः ।

कमण्डलुं सुवं चैव शक्तिं दर्भमपि क्रमात् ।

कलयत्यङ्घ्रिरोत्तामः कराग्राणि समन्ततः ॥

पाणयश्चाग्निनाम्नोऽपि कलयन्ति जपस्रजम् ।

शक्तिं च पुस्तकं चैव क्रमादेवं कमण्डलुम् ॥

यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवस्त्रश्चतुर्भुजः ।

अक्षं स्रजं सुवं धत्ते कुण्डिकां च प्रजापतिः ॥

विश्वे देवास्तु सर्वेऽपि दक्षिणे बाणपाणयः ।

कर्तव्या वामपाणौ तु सशरासनपाणयः ॥

ऋतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धुरिलोचनौ ।

पुरुषार्द्रवश्चेति विश्वे देवा दश स्मृताः ॥

जगद्विधातृरूपं प्रजापतितुल्यम् । चतुर्मुखत्वमात्रमस्याऽऽधिक्यं  
ज्ञेयम् ।

पर्जन्यनामा विज्ञेयो गजवक्त्रपान्वितः ।

यो धत्ते सर्वजीवात्मा वरं जीवं च शोषकम् ॥

कुठारं च पयोजं च चिन्तारत्नं महाशुचिम् ।

पाशं चक्रं किसलयं कुण्डलीं च दशभिः करैः ॥

शम्भुरीशतुल्यः ।

कुशविष्टरपद्मस्थाः पितरः पिण्डपात्रिणः ।

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी

चतुर्भुजो दण्डधरश्च हारी ।

चर्मासिधृक् सोमसुतः सदानः



सिंहाऽधिरूढो वरदो बुधश्च ।  
 चतुर्वक्त्रश्चतुर्बाहुः सितमाल्यः सिताम्बरः ।  
 सर्वाऽऽभरणवाञ्छेतो धर्मः कार्यो महावपुः ॥  
 चतुर्दन्तगजारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः ।  
 शचीपतिः प्रकर्तव्यो नानाभरणभूषितः ॥  
 द्विभुजौ देवभिषजौ कर्तव्यावश्रवाहनौ ।  
 तयोरौषधयः कार्या दिव्या दक्षिणहस्तयोः ॥  
 वामयोः पुस्तकौ कार्यौ दर्शनीयौ तथा द्विज ।  
 वरुणः पाशभृत्सौम्यः प्रतीच्यां मकराश्रयः ॥  
 मित्रः कमलपाणिश्च कमलासनसंस्थितः ।  
 द्विभुजः श्वेतमूर्तिश्च सर्वभूतहिते रतः ॥

वरुणस्तु पूर्ववत् ।

देवा एकोनपञ्चाशदेवेन्द्रसमतेजसः ।  
 भ्रातरः पुरुहूतस्य मरुतः सूर्यवर्चसः ॥  
 किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषिताः ।  
 खड्गचर्मधरा नित्यं शक्रस्यानुचराः सदा ॥  
 ह्रस्वमापिङ्गनेत्रं च गदिनं पीतविग्रहम् ।  
 पुष्पकस्थं धनाध्यक्षं ध्यायेच्छिवसखं सदा ॥  
 वरदो भक्तलोकानां किरीटी कुण्डली गदी ।  
 कार्यः सुरुपो गन्धर्वो वीणावाद्यरतस्तथा ॥

जलेशः पूर्ववत् ।

प्रदक्षिणं दक्षिणाधःकरादारभ्य नित्यशः ।  
 विष्णुः कौमोदकीपद्मशङ्खचक्रैरलंकृतः ॥

इति विष्णुलक्षणम् ।

ब्रह्मवैवर्ते—

दानकालेषु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्तितम् ।  
 धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः ॥  
 दातुर्वै दानकाले तु धेनवः परिकीर्तिताः ।  
 विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदितिनिश्चयः । इति ॥



विष्णुधर्मोत्तरे—

हैमराजतताम्राश्च सृण्मया लक्षणान्विताः ।

यान्नोद्वाहप्रतिष्ठादौ कुम्भाः स्युरभिषेचने ॥

पञ्चाशाङ्गुलवैपुल्या उत्सेधे षोडशाङ्गुलाः ।

द्वादशाङ्गुलमूलाः स्युर्मुखमष्टाङ्गुलं भवेत् ॥

पञ्च च आशाश्च पञ्चाशाः । पञ्चाधिकशतमङ्गुलानि वैपुल्यमिति  
केचित् । आशा दश. पञ्चाशदङ्गुलमित्यन्ये । पञ्चाधिका आशाः  
पञ्चदश तावान्वैपुल्यं व्यास इति तु युक्तम् ।

तथा—

कलशस्य मुखे ब्रह्मा ग्रीवायां च महेश्वरः ।

मूले तु संस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥

शेषास्तु देवताः सर्वा वेष्टयन्ति चतुर्दिशम् ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि कलशे निवसन्ति हि ॥

ग्रहाः शान्तिश्च पुष्टिश्च प्रीतिश्च मतिरेव च ।

ऋग्वेदश्च यजुर्वेदः सामवेदस्तथैव च ॥

अथर्ववेदसहिताः सर्वे कलशसंस्थिताः । इति ॥

षट्त्रिंशन्मते—

यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्कुस्तथैव च ।

श्यामाकं चीनकं चैव सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥

मार्कण्डेयपुराणे—

त्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाः कङ्कुकास्तिलाः ।

प्रियङ्गवः कोविदारः कोरदूषाः सतीनकाः ॥

माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ।

आढक्यश्चणकाश्चैव शणः सप्तदशः स्मृतः ॥

कोरदूषाः कोद्रवाः । सतीनकाः कलायाः ।

स्कान्दे—

यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्कुकुलत्थकाः ।

माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः श्यामसर्षपाः ॥

गवेषुकाश्च नीवारा आढक्योऽथ सतीनकाः ।

चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु ॥

श्यामाः श्यामाकाः ।



व्यासः—

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।

सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेभ्यते ॥

‘ परेत्युक्तेः पुरुषाहारौपयिकं तण्डुलादिकमपि दक्षिणा ’ इति हेमाद्रिः ।

यत्तु—

अन्येषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता ।

सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणेभ्यते । इति ॥

तन्मूलं मृग्यम् ।

सुवर्णं रजतं ताञ्जं तण्डुला धान्यमेव वा ।

नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेतदक्षिणम् ।

इति व्यासेन केवलसुवर्णदाने दक्षिणापर्युदासाच्च । अयं च पर्युदासः  
केवलसुवर्णदान एव, न तु सुवर्णब्रह्माण्डादिदाने इति मदनादयः ।

देयद्रव्यतृतीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत् ।

अनुक्तदक्षिणे दाने दशांशं वाऽपि शक्तिः ॥

तुलापुरुषदानादीन्यधिकृत्य लिङ्गपुराणे—

दक्षिणां च शतं सार्द्धं तदर्थं वा प्रदापयेत् ।

ऋत्विजां चैव सर्वेषां दश निष्कांश्च दापयेत् ॥

भविष्योत्तरे—

ज्ञेयं निष्कशतं पार्थ दानेषु विधिरुत्तमः ।

मध्यमस्तु तदर्धेन तदर्धेनाऽधमः स्मृतः ॥

मेष्ठ्यां च कालपुरुषे तथान्येषु महत्सु च ।

एवं वृक्षे रथेऽण्डे च धेनोः कृष्णाजिनस्य च ॥

अशक्तस्यापि क्लृप्तोऽयं पञ्चसौवर्णिको विधिः ।

वृक्षे कल्पपादपे । रथे हिरण्याश्वरथे हेमहस्तिरथे च । अण्डे  
ब्रह्माण्डे । धेनोः सुवर्णकामधेनोः ।

अतोऽप्यल्पेन यो दद्यान्महादानं नराधमः ।

प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखशोकावहं भवेत् ॥

अन्येषु महत्सु तिलगर्भादिषु जपाभिषेकमभिधाय,

लिङ्गपुराणे—

अष्टषष्टिपलोन्मानं दद्याद्वै दक्षिणां गुरोः ।



होतृणां चैव सर्वेषां त्रिशत्पलमुदाहृतम् ॥

अथ्येतृणां तदर्द्धेन द्वारपानां तदर्द्धतः ।

अयं च गुर्वुत्विग्जापकद्वारपालानामर्द्धार्द्धदक्षिणाविभागोऽनुक्त-  
विभागविशेषेषु दानान्तरेष्वपि द्रष्टव्यः । गृह्यपरिशिष्टे 'दक्षिणाऽलाम्ने  
मूलानां फलानां भक्ष्याणां दक्षिणां ददाति' इति ।

अथ द्रव्यमानम् ।

याज्ञवल्क्यः—

जालसूर्यमरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतः ।

तेऽष्टौ लिक्षास्तु तास्तिष्ठो राजसर्षप उच्यते ॥

गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यश्च ते त्रयः ।

कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वाऽपि प्रकीर्तितम् ।

द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते ॥

शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेव तु ।

निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः । इति ॥

धरणपुराणौ पर्यायौ । तथा शतमानपले । पूर्वोक्ताश्चत्वारः सुवर्णा  
राजतो निष्कः इति ।

'कार्षिकस्ताम्रिकः पणः' इति ताम्रस्योन्मानम् । पलचतुर्थांशेन  
कर्षेणोन्मितः कार्षिकस्ताम्रसम्बन्धी पणो भवति । कार्षापणसंज्ञश्च ।  
स्मृत्यन्तरेऽपि—षोडशपणः पुराणः । 'पणो भवेत्काकिणीचतुष्केण  
पञ्चाहतैश्चतुर्भिर्वराटकैः काकिणी चैका' इति । तथाच देशादिभेदेन  
पणादिव्यवहारो ज्ञेयः ।

अथ धान्यादिमानम् ।

भविष्यत्पुराणे—

पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम् ।

चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥

आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुधैः ।

कुम्भो द्रोणद्वयं शूर्पः खारी द्रोणास्तु षोडश ॥

द्रोणद्वयस्यैव शूर्प इति संज्ञा । गोपथे—

पञ्चकृष्णलको मापस्तैश्चतुःषष्टिभिः पलम् ॥



पलैर्द्वात्रिंशद्भिः प्रस्थो मागधेषु प्रकीर्तितः ।

आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणः स्याच्चतुराढकः ॥

विष्णुयमोत्तरे—

पलं च कुडवः प्रस्थ आढको द्रोण एव च ।

धान्यमानेषु बौद्धव्याः क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ॥

द्रोणैः षोडशभिः खारी विंशत्या कुम्भ उच्यते ।

कुम्भैस्तु दशभिर्बाहो धान्यसंख्या प्रकीर्तिता ॥

विंशत्येत्यत्र द्रोणैरिति संबद्धयते । तथाच, कुम्भो द्रोणद्वयमिति पक्षाद्विंशतिद्रोणमितः कुम्भ इति पक्षान्तरम् । पलसहस्रमितः कुम्भ इत्यपि पक्षान्तरं ज्ञेयम् ।

वाराहे—

‘पलद्वयं तु प्रसृतं मुष्टिरेकपलं स्मृतम् ।

अष्टमुष्टिं भवेत्किञ्चित्किञ्चिदष्टौ तु पुष्कलम् ॥

पुष्कलानि च चत्वारि आढकः परिकीर्तितः ।

चतुराढको भवेद्द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम् ॥

एतत्पक्षाणां शक्तिदेशकालाद्यपेक्षया व्यवस्था ।

उक्त्वा श्रीनीलकण्ठाख्यः परिभाषादिकं पुरा ।

दानाद्यौपयिकं कुण्डमण्डपादि वदत्यथ ॥

तत्र भूमानम् ।

आदित्यपुराणे—

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥

त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो अष्टौ ये परमाणवः ।

त्रंसरेणवस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः ॥

रथरेणवस्तु तेऽष्टौ च वालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ।

वालाग्राष्टकं लिखा तु यूका लिखाष्टकं तथा ॥

अष्टौ यूका यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम् ।

अन्यत्रापि—

यूकाष्टकं यवं प्राहुर्यवानामुदरैस्तथा ।

अष्टभिश्चाङ्गुलं तिर्यग्यवानामुत्तमं मतम् ॥



सप्तभिर्मध्यमं प्रोक्तं षड्भिः स्यादधमाङ्गुलम् । इति ॥  
 द्वादशाङ्गुलमात्रो वै वितस्तिः परिकीर्तितः ॥  
 अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते ।  
 तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥  
 कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुलमानकः ।  
 रत्निस्त्वङ्गुलपर्वाणि विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः ॥  
 चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु ।  
 किष्कुः स्मृतो द्विरतिस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ॥  
 षण्णवत्यङ्गुलिश्चैव धनुर्दण्डः प्रकीर्तितः ।  
 धनुर्दण्डयुगं नालिज्ञेया ह्येते यवाङ्गुलैः ॥  
 धनुषां त्रिशतं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः ।  
 धनुःसहस्रे द्वे चाऽपि गव्यूतिरपदिश्यते ॥  
 अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं परिकीर्तितम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

यदुत्पन्नमथाश्नाति नरः संवत्सरं द्विजः ।  
 एकगोचर्ममात्रं तु भुवः प्रोक्तं विचक्षणैः ॥

बृहस्पतिः—

दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशदण्डानि वर्तनम् ।  
 दश तान्येव गोचर्म ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥

इति भूमानम् ।

मार्जनखननाद्यन्यतमप्रकारेण यथोचितं भूमिः संशोष्या ।  
 तत्र मण्डपस्थलं सिद्धान्तशेखरे—

स्थलादर्काङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम् । इति ॥  
 मण्डपं प्रकृत्य कपिलपञ्चरात्रे—

उच्छ्रायो हस्तमानं स्यात्सुसमे च सुशोभनम् । इति ॥  
 ततो दण्डत्रयनिर्मितदीर्घत्रिकोणाकारयन्त्रे दण्डाग्राभ्यां भुवि न्यस्ते  
 यन्त्रमूलात्तिर्यग्दण्डोपरिलम्बितमधोभारवद्रूमिमप्राप्तं सूत्रं यथा तिर्य-  
 ग्दण्डमध्यचिह्ने पतेत्तथा निम्ना भूः पूर्वोक्ता उष्वा वा खननीयेत्यादिशि-  
 ल्पशास्त्ररीत्या तां समीकृत्य च मण्डपाद्युपयुक्तां प्राचीं साधयेत् । एवं



समायां भुवि द्वादशाङ्गुलव्यासार्द्धमेकं तन्मध्ये चापरं नवाङ्गुलं व्यासा-  
 र्द्धमिति वृत्तद्वयं कृत्वा तन्मध्ये द्वादशाङ्गुलं पृथङ्मूलं सूक्ष्माप्रमृजुं शङ्कुं  
 निधाय नवाङ्गुलवृत्तरेखायां चतस्रो दिशः प्रकल्प्य तासु चतस्रः ऋज्व्यः  
 पञ्चदशाङ्गुलाः शलाकाः शङ्कुप्रस्पृष्टाऽग्राः स्थाप्याः शङ्कुसमतार्थम् ।  
 तादृशशङ्कुप्रच्छाया च महद्वृत्तरेखां पूर्वाह्ने यत्र स्पशति सा प्रत्यङ् ।  
 यत्रापराह्ने सा प्राक् । सूक्ष्मप्राचीज्ञानार्थं तु परदिनेऽपि तस्मिन्नेव वृत्ते  
 शङ्कुच्छायानिगमप्रवेशयोश्चिह्नं कृत्वा पूर्वापरदिनच्छायाप्रदेशनिर्गमन-  
 चिह्नयोरन्तरालमिष्टैस्त्रिचतुराद्यैर्भागैर्विभज्य पूर्वदिनच्छायाप्रवेशनिर्गमा-  
 न्तरालघटीः पादच्छायाघटीर्यन्त्रादिना ज्ञात्वा ताभिर्वटिकाभिः कल्पि-  
 तान्भागान्गुणयेत् । षष्टिभिश्च हरेत् । ततो लब्धांशेन प्राच्यामेव  
 पूर्वदिनकृतापगमचिह्नादुत्तरायण उत्तरस्मिन्दक्षिणायने दक्षिणस्मिन्नङ्क-  
 येत् । तदुपरि पूर्वच्छायाप्रवेशचिह्नोपरि च धृते सूक्ष्मा प्राची भवति ।  
 दिग्ज्ञानोपायान्तरं च श्रुत्वे—

कृत्तिका श्रवणः पुष्यश्चित्रास्वात्योर्यदन्तरम् ।

एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रोदिते सति । इति ॥

अत्रायं गुरुप्रदेशः । ऋज्वीं सूक्ष्मरन्ध्रां नलिकां काष्ठादौ बद्ध्वा  
 तद्रन्ध्रेण युगमात्रमुपरिगतं कृत्तिकादिनक्षत्रं दृष्ट्वा नलिकां ताभ्यां  
 प्राक्प्रत्यग्देशयोः सूक्ष्मं पाषाणद्वयमवलम्ब्यद्वयं वा भूमौ प्रक्षिप्य  
 तच्चिह्नयोः प्राचीसूत्रं देयमिति । एवमेव श्रुत्वं दृष्ट्वादीची साध्या ।  
 चित्रास्वात्यन्तरालज्ञानार्थं तु नलिकाद्वयेनैकेन च दण्डान्तरेण व्यासा-  
 कारं यन्त्रं कृत्वा दण्डं च मध्येऽङ्कयेत् । नलिकाद्वयान्तौ तु तथा  
 तक्षणादिना परस्परं योजनीयौ । यथैकेनैव प्रयत्नेन युगपदत्र द्वयमपि  
 दृश्यते । एवं दृष्ट्वा मिलितान्नलिकान्तादण्डमध्याङ्काच्च पाषाणावलम्ब्यौ  
 प्रक्षेप्तव्यौ । इति ॥

अथ मण्डपादिलक्षणम् ।

तत्र पञ्चरात्रे—

कनीयान्दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः ।

तथा षोडशभिर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिहोत्तमः ॥

१ लाधिकव्या इति के पाठः । २ पृथु इति क पाठः ।



प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहे—

मण्डपः कलाहस्तो वा सर्वलक्षणसंयुतः ।

दशद्वादशहस्तो वा द्विद्विवृद्धया ततः क्रमात् ॥

लिङ्गपुराणे तु पुरुषदानप्रकरणे—

विंशद्वस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा ।

अथाष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः । इति ॥

विंशतिहस्तोऽप्युक्तः । मध्यस्तम्भवलिकोपरिगतैश्चतुर्भिरष्टभिर्वा मृद-  
ङ्गाऽऽकारकलशप्रोतैः काष्ठैर्मध्ये शिखराकारयुतः कूटः । कूटोऽस्त्री  
शिखरं शृङ्गमित्यभिधानानुसारात् । मध्यस्तम्भोपरि समतयाच्छा-  
दितो मण्डप इति हेमाद्रिः । संप्रति कूट एवादरो लोकानाम् । तत्रैव  
च मण्डपभ्रमः ।

‘दशहस्तमण्डपस्वेकमेखलकुण्डपक्ष एकाभिविधानपक्षे चोपयुक्तो  
भवति’ इति मदनरत्ने ।

पञ्चरात्रे—

कुर्याद्वैष्णवयागेषु चतुर्द्वाराँश्च मण्डपान् ।

सारदारुमयान्तम्भान्दृढान्कुर्याद्वज्रसमान् ॥

मण्डपाद्धोच्छ्रितान्वेदसङ्ख्यांश्चूडासमन्वितान् ।

वलिकामूर्ध्वतस्तेषां स्तम्भद्वादशकं पुनः ॥

बाह्यपीठप्रमाणेन तत्र सूत्रविधानतः ।

कल्पयेद्विकरं द्वारं चतुरङ्गुलवृद्धितः ॥

मध्यमोत्तमयोर्वेदी मण्डपस्य त्रिभागतः ।

चतुर्थांशोच्छ्रितस्तस्यास्त्रिसप्तपञ्चतोऽपि वा ॥

नवैकादशहीनं वा इष्टकाभिः प्रकल्पयेत् । इति ॥

चूडा शिखा । वलिकामिति । तेषां चतुस्तम्भानां शिखाभिः प्रोत-  
च्छिद्राण्युभयतश्छिद्रद्वयोपेतानि वलिकाख्यानि तिर्यक्काष्ठानि विधे-  
यानीत्यर्थः । बाह्य इत्यादि । आदौ मध्यस्तम्भचतुष्टयं विन्यस्य  
तद्बाह्यपरिधौ मण्डपक्षेत्रविस्तारपर्यायपीठपरिमितसूत्रतृतीयांशेन तुल्या-  
न्तरद्वादशचिह्नकरणपूर्वकं पञ्चहस्तप्रमाणा द्वादशस्तम्भा निखेया  
इत्यर्थः । तदेवं षोडशस्तम्भता संपद्यते । तेषु चत्वारो मण्डपायामार्द्ध-



मितोच्छ्राया अष्टहस्ता नवहस्ता वा भवन्ति । अधममध्यमोत्तमरूपे-  
ष्वष्टहस्ता एते चत्वारः ।

शारदातिलके—

षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यगाः ।

अष्टहस्तसमुच्छ्रायाः संस्थाप्या द्वादशाधिकाः ॥

पञ्चहस्तप्रमाणास्ते निच्छिद्रा ऋजवः शुभाः ।

इत्युक्तत्वादिति । तत्रापि मध्यमस्तम्भेषु चूडास्वेव तिर्यक्काष्ठनिवेश-  
नम् । बाह्येषु तु चूडासु स्तम्भकर्णेषु वेत्यनियमः । सर्वे च, 'पञ्चमांशं  
न्यसेद्भूमौ सर्वसाधारणो विधिः' इत्युक्तत्वात् सूत्रपञ्चमांशेन निखेयाः ।  
सर्वेऽपि दशाङ्गुलसूत्रवेष्टनयोग्यस्थौल्या विधेयाः ।

करपयैदित्यादि । कनिष्ठमण्डपे द्वारचतुष्टयं द्विहस्तविस्तारम् । तथा  
मध्यमे चतुरङ्गुलाधिकद्विहस्तविस्तारम् । एवमुत्तमेऽष्टाङ्गुलाधिकद्विहस्त-  
विस्तारम् । मध्यमोत्तमयोर्वेदीत्यादि । मण्डपमध्यत्रिभागमाना वेदिः  
स्वायामतृतीयचतुर्थपञ्चमसप्तमनवमैकादशाऽन्यतमेनोच्चा ।

तुलापुरुषे तु मात्स्ये—

सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकराऽथवा । इति ॥

सिद्धान्तशेखरे—

चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा ।

तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनीपद्मसन्निभा ॥

राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा वेदी राज्याभिषेचने ।

विवाहे श्रीधरी वेदी विंशद्व्यस्तेसमन्विता । इति ॥

'द्वारदेहल्या बहिर्हस्तमात्रे द्वारशाखा निखेया' इति निबन्धान्तरे ।  
व्रतखण्डे तु 'हस्तद्वयं बहिस्त्यक्त्वा तोरणानि निवेशयेत्' इत्युक्तम् ।

मात्स्ये—

द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि

चत्वार्यपि क्षीरवनस्पतीनाम् । इति ॥

अयमर्थः—पूर्वद्वारे अश्वत्थशाखे, दक्षिणे उदुम्बरशाखे, पश्चिमे  
प्लक्षशाखे उत्तरतो वटशाखे । शाखाश्च अधममध्यमोत्तममण्डपेषु  
क्रमात्पञ्चषट्सप्तहस्तोच्चाः । तासामुपरिकृतचूडासु तिर्यक्फलकमुभयतः  
सच्छिद्रं चूडान्यस्तच्छिद्रं निदध्यात् । तद्विहस्तमधममण्डपे । अङ्गुल-



षट्काधिकं द्विहस्तं मध्ये । सार्द्धं हस्तद्वयमुत्तमे । तिर्यक्फलकोपरि मध्ये  
मण्डपेषु क्रमाच्चतुरङ्गुलाः सार्द्धचतुरङ्गुलाः पञ्चाङ्गुलाश्च कीला निवे-  
श्याः । तिर्यक्फलकं कीलाश्च तत्तत्काष्ठजा एव ।

यद्वास्तुशास्त्रे—

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खचक्रगदाम्बुजम् ।

प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम् ॥

द्वादशांशोऽत्र फलकस्य चतुरङ्गुलादिरेवोक्तः । शङ्खचक्रगदाम्बुजक-  
रणं वैष्णवयागविषयम् ।

शैवयागे तु ते कीलास्त्रिशूलाः स्युः । त्रिशूलाकारत्वं चैवं—‘मध्य-  
कीलो नवाङ्गुलो वृत्तः सपादत्र्यङ्गुलविस्तारः । तमुभयतोऽन्यौ किञ्चि-  
द्वक्रौ । दैर्घ्यमध्ये शूलस्य मूलाङ्गुलद्वयं विले प्रविशति इत्यधममण्डपे ।  
मध्यमे त्वेकादशाङ्गुल उच्छ्रायः । पादोनत्र्यङ्गुलविस्तारः । त्र्यङ्गुलो  
विलप्रवेशः । उत्तमे त्रयोदशाङ्गुलमुच्छ्रायः सपादत्र्यङ्गुलो विस्तारश्च-  
तुरङ्गुलो विलप्रवेशः’ । इदं च पिङ्गलमते—

शूलेन चिहिताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके ।

शूलैर्नवाङ्गुलैर्दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः ॥

ऋजुर्वै मध्यशृङ्गः स्यात्किञ्चिद्वक्रं च पक्षयोः ।

प्रथमं तत्समाख्यातं त्र्यङ्गुलं रोपयेत्तथा । इत्यादिनोक्तम् ॥

एषामलाभे एकवृक्षजानि तोरणानि । तस्याप्यभावे शमीद्रुमजानि ।  
एतन्निवेशनमन्त्राश्च अग्निमीळे, इषे त्वा, अग्न आयाहि, शंनो देवी  
इत्यनुसन्धेयाः । मध्यस्तम्भवतुष्टयोपरि च मुरजाऽऽकृतिकाष्ठे दिग्वि-  
दिगतरन्व्राष्टकप्रोताग्रकाष्ठाष्टकेनोन्नतता कार्या । ‘कटैः सद्भिस्तु  
संछाद्या विजयाद्यास्तु मण्डपाः’ इत्युक्तत्वात् । द्वारवर्जं सर्वतो मण्डप  
आच्छाद्यः । जयविजयभद्रविश्वरूपसुरूपध्रुवधनदधन्वकसुप्रसन्नाः । एते-  
ऽष्टहस्तादयो द्विहस्तवृद्धितो ज्ञातव्याः । यदा मण्डपद्वयं क्रियते, तदा  
तत्र प्रथममण्डपपरिमितमन्तरमुत्सृज्य द्वितीयो मण्डपः कर्तव्य इति  
वास्तुशास्त्रे ‘एवं यदा धामाग्रे मण्डपः क्रियते तदा तद्धामपरिमाण-  
मन्तरमुत्सृज्य परतो मण्डपो विधेय’ इति ।

मण्डपे पताका उक्ताः । मात्स्ये—

लोकेशवर्णा परितः पताका



मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात् । इति ॥

सङ्ग्रहेऽपि—

सप्तहस्ताः पताकाः स्युः सप्तमांशेन विस्तृताः ।

लोकपालानुवर्णेन नवमी तुहिनप्रभा ॥

पीतरक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्ता ध्वजाः स्मृताः ।

द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैश्च वंशजैः संयुतास्तथा । इति ॥

लोकपालवर्णाः—

इन्द्रः पीतो यमः श्यामो वरुणः स्फटिकप्रभः ।

कुबेरस्तु सुवर्णाभो ह्यग्निश्चापि सुवर्णभः ॥

तथैव निर्ऋतिः श्यामो वायुर्धूम्रः प्रशस्यते ।

ईशानस्तु भवेद्रक्त एवं ध्यायेत्तमादिमान् । इति ॥

गारुडे तु पताकानां प्रकारान्तरमुक्तम्—

पञ्चहस्ता ध्वजाः कार्या वैपुल्येन द्विहस्तकाः ।

सप्तहस्ताः पताकाः स्युर्विंशत्यङ्गुलविस्तृताः ॥

दशहस्ताः पताकानां दण्डाः पञ्चांशवेशिताः ।

सिन्दूराः कर्पूरा धूम्रा धूसरा मेघसन्निभाः ॥

हरिताः पाण्डुवर्णाश्च शुद्धाः पूर्वादितः क्रमात् ।

एवं वर्णाः शुभाः कार्याः पताकाः पाकशासन । इति ॥

अत्र समचतुरस्रमण्डपसाधनम् । मण्डपादिव्यासप्रमाणां रज्जुं द्विगु-  
णीकृत्य तामेवोभयतः पाशाभ्यां सह अष्टधा विभज्य, पञ्चमांशान्ते  
कर्षणाय षष्ठांशान्ते शङ्कर्त्तुं च चिह्नद्वयं कृत्वा मण्डपादेः प्राचीसूत्रप्रा-  
न्तद्वये शङ्कुद्वयं निखाय, रज्ज्वन्तपाशौ तयोः शङ्कोरासज्य कर्षण-  
चिह्नं दक्षिणत आकृष्य शङ्कुचिहे शङ्कुं निखाय ततः कर्षणचिह्नमु-  
त्तरत आकृष्य शङ्कुचिहे शङ्कुं निखाय व्यत्यासं कृत्वा शङ्कोः  
पाशान्तावासज्य पूर्ववदक्षिणोत्तरयोः क्रमेण कर्षणचिह्नमाकृष्य शङ्कु-  
द्वयं निहन्त्यात् । तत ईशानामेयादिशङ्कुषु प्रादक्षिण्येन रज्जुवेष्टना-  
न्मण्डपादिचतुरस्रं क्षेत्रं सिद्धं भवति ।

मध्यवेदीसाधनम् । मण्डपसूत्रं प्रागायतं दक्षिणोत्तरायतं च त्रेधा  
विभज्य तेन नवभागो मण्डपः संपद्यते । मध्यमे नवमेशे तन्माना  
वेदिका यजमानहस्तोच्छ्राया च विधेया ।



मात्स्ये—

द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र कार्यं  
स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम् । इति ॥

मदनरत्ने—

गन्धपुष्पाक्षतोपेतान् कुम्भांस्तेषु निवेशयेत् ।  
घ्रुवं धरं वाक्पतिं च वित्रेशं तेषु पूजयेत् ॥  
मण्डपस्य तु कौण्डेषु कलशेषु क्रमादमी ।  
अमृतो दुर्जयश्चैव सिद्धार्थो मङ्गलस्तथा ॥  
पूज्या द्वारस्य कुम्भेषु शक्राद्यास्तु मनूत्तमैः ।  
इति मण्डपनिरूपणम् ।

अथ कुण्डानि ।

तत्र भविष्यपुराणे—

वेदीपादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नव पञ्च वा ।  
वेदास्त्रीण्येव तानि स्युर्वर्तुलान्यथवा क्वचित् ॥

आम्नायरहस्ये—

कुण्डानि चतुरस्राणि वृत्तनानाकृतीनि वा ।  
नव पञ्चाथ वैकं वा कर्तव्यं लक्षणान्वितम् ॥  
नवकुण्डविधाने तु दिक्षु कुण्डाष्टके स्थिते ।  
नवमं कारयेत्कुण्डं पूर्वशानदिगन्तरे ॥  
विधाने पञ्चकुण्डानामीशाने पञ्चमं भवेत् ।  
अत्र 'चतुःकुण्डीपक्षे खातं नास्ति' इत्युक्तं हेमाद्रौ ।

नारदीये—

यत्रोपदिश्यते कुण्डं चतुष्कं तत्र कर्मणि ।  
वेदास्रमर्द्धचन्द्रं च वृत्तं पद्मनिभं तथा ॥  
पीठवद्वर्द्धयेत्कुण्डं सुप्रमाणेष्वगर्तकम् ।  
कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः ॥  
कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसंमतम् ।  
विशाङ्गुलं प्रकर्तव्यमन्तरं कुण्डपीठयोः ॥



स्युत्यन्तरे—

वेदिभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशभिरङ्गुलैः ।

हस्तमात्राणि कुण्डानि चतुरस्राणि सर्वतः । इति ॥

सर्वतोऽष्टदिक्षु ।

काम्ये तु—

ऐन्द्र्यां स्तम्भे चतुष्कोणमग्नेर्भागे भृगाकृतिम् ।

चन्द्रार्द्धं मारणे याम्ये त्रिकोणं द्वेषनैर्ऋते ॥

वारुण्यां शान्तिकं वृत्तं षडह्युच्चाटनेऽनिले ।

उदीच्यां पौष्टिके पद्मं रौद्र्यामष्टासि मुक्तिदम् ॥

शारदातिलके—

विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते ।

वैश्यानामर्द्धचन्द्राभं शूद्राणां व्यसमीरितम् ॥

चतुरस्रं च-सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः ।

चतुरस्रसाधनं तु मण्डपसाधनावसर उक्तम् । तत्रैकस्मिन् हस्ते चतुर्विंशत्यङ्गुलानि व्यासः । द्वयोः खयस्त्रिंशदङ्गुलानि, सप्त यवाः, चतस्रो यूकाः, द्वे लिक्षे । त्रिष्वेकचत्वारिंशदङ्गुलानि, चत्वारो यवाः, चतस्रो यूकाः, चतस्रो लिक्षाः । चतुर्ष्वष्टाचत्वारिंशदङ्गुलानि । पञ्चसु त्रिपञ्चाशदङ्गुलानि, पञ्च यवाः, द्वे यूके, पञ्च लिक्षाः । षट्स्रष्टपञ्चाशदङ्गुलानि, षड् यवाः, द्वे यूके, चतस्रो लिक्षाः । सप्तसु त्रिषष्ट्यङ्गुलानि, यवत्रयं, सप्त यूकाः, सप्त लिक्षाः । अष्टसु सप्तषष्ट्यङ्गुलानि, सप्त यवाः, लिक्षाश्चतस्रः । नवसु द्वासप्तत्यङ्गुलानि । दशसु पञ्चसप्तत्यङ्गुलानि, षड् यवाः, यूकाश्चतस्रः, लिक्षाश्चतस्रः । एवं षोडशहस्ते षण्णवत्यङ्गुलानि ॥

अथ योनिकुण्डम्—इष्टचतुरस्रं व्यासं चतुर्विंशतिधा विभज्य सपादैः पञ्चभिर्भागैर्मध्यसूत्रं प्राच्यां विवर्ष्य चतुरस्रमध्ये प्रागुदकसूत्रपातजातोपरितन्नाल्पचतुरस्रयोः कोणसूत्रद्वयपातज्ञातमध्यादेतत्कोणसूत्रार्द्धमानेनेष्टचतुरस्रोदकसूत्रदक्षिणान्तात्प्राक्सूत्रपश्चिमान्तं यावद् भ्रामयेद्दृत्तार्द्धम् । एवमेवोत्तराल्पचतुस्त्रेऽपि इष्टचतुरस्रोदगन्तात्प्राक्सूत्रपश्चिमान्तं परिभ्राम्य वृत्तार्द्धद्वयं दक्षिणोदकोटितो वर्द्धितप्राक्सूत्रान्तं यावत् सूत्रद्वयं पातयेत् ॥ इति योनिकुण्डम् ।



तथाच शारदातिलके—

चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं पञ्चवा विभजेत्सुधीः ।

न्यसेत्पुरस्तादेकांशं कोणार्धार्धप्रमाणतः ॥

भ्रामयेत्कोणमानेन तथान्यदपि मन्त्रवत् ।

सूत्रयुग्मं ततो दद्यात्कुण्डं योनिनिभं भवेत् । इति ॥

अत्रोपपत्तिः । प्राग्दिग्गतत्र्यस्रलम्बः सप्तदशाङ्गुलानि, एको यवः, एका यूका लिक्षा पञ्च । भूस्तु इष्टचतुरस्रमध्या । उदक्सूत्रं चतुर्विंशत्यङ्गुलम् । उपरितनारूपयस्त्रेऽपि भूः सैव । आलम्बस्तु द्वादशाङ्गुलानि । वृत्तार्द्धव्यासार्द्धयोस्त्वङ्गुलानि अष्टौ यवाश्चत्वार इति । योनिमध्यसूत्रवृद्धयङ्गुलानि । एकहस्ते पञ्चाङ्गुलानि, एको यवः, एका यूका, पञ्च लिक्षाः । द्विहस्ते सप्ताङ्गुलानि । द्वौ यवौ, द्वे यूके, एका लिक्षा । त्रिहस्तेऽष्टावङ्गुलानि सप्त यवाः, तिस्रो यूकाः । चतुर्हस्ते दशाङ्गुलानि, चत्वारो यवाः, तिस्रो यूकाः द्वे लिक्षे । पञ्चहस्ते एकादशाङ्गुलानि, यवचतुष्टयम्, एका यूका । षड्हस्ते द्वादशाङ्गुलानि, चत्वारो यवाः, सप्त यूकाः, तिस्रो लिक्षाः । सप्तहस्ते त्रयोदशाङ्गुलानि, पञ्च यवाः, अष्टहस्ते चतुर्दशाङ्गुलानि, यवचतुष्टयम्, यूकाश्चतस्रः, द्वे लिक्षे । नवहस्ते पञ्चदशाङ्गुलानि, यवत्रयम्, यूकाचतुष्टयम्, सप्त लिक्षाः । दशहस्ते षोडशाङ्गुलानि, द्वौ यवौ । तिस्रो यूकास्तिस्रो लिक्षाः । एवं षोडशहस्ते विंशत्यङ्गुलानि यवचतुष्टयं षड्यूकाः, चतस्रो लिक्षाः ॥

रामस्तु—इष्टचतुरस्रक्षेत्रमध्यरेखाया द्विनवत्यधिकं शतमंशान्कृत्वाष्टात्रिंशदंशान् मध्यसूत्रं प्राच्यामेकोनविंशदंशैश्चोभयतः श्रोणि संवृद्धयं सवृद्धिश्रोणिचतुर्थीशककर्कटेन सूत्रेण वा पश्चिमभागे वृत्तार्द्धद्वयं प्राङ्मुखं श्रोणिसूत्रलग्नं विलिख्य वृत्तार्द्धद्वयबाह्यप्रान्तयोर्वद्वितप्राक्सूत्रे चिह्नं यावत् सूत्रद्वयान्तं योन्याकारं कार्यमित्याह । तत्फलसंवादेऽपि विरूपत्वादयुक्तम् ॥

इदं चोद्गमं कार्यम् । तच्च मध्यरेखापञ्चमांशवृद्धावुदीच्यां कृतायां भवति ।

इदमुदाहृतं मदनरत्ने 'योन्याख्यमुच्यते कुण्डमाभेय्यामुत्तरामुखम्' इति ॥



थार्द्धचन्द्राभं कामिके—

चतुरस्रे ग्रहैर्भक्ते त्यक्त्वाऽऽद्यन्तौ तदंशकौ ।

मध्ये सप्तांशमानेन कुण्डं खण्डेन्दुवद्भ्रमात् ॥

अयमर्थः—इष्टप्रमाणचतुरस्रमध्यरेखां नवधा विभज्याऽऽद्यन्तिमौ भागौ परिसृज्य तत्र चिह्नद्वयं कृत्वोपरिचिह्ने तिर्यद्वक्षिणोत्तरं सूत्रं दत्त्वोपरिचिह्नाथश्चिह्नं यावद्वृत्तेन सूत्रेण कर्कटेन वा भ्रमाद्वृत्तार्द्धं ज्यासूत्रजातकोटिकमर्द्धचन्द्रं कुण्डं कुर्यात् इति । अर्द्धेन्दौ व्यासार्द्धाङ्गुलानि । एकस्मिन्नेकोनविंशत्यङ्गुलानि एको यवः एका यूका पञ्च लिखाः । द्वयोः सप्तविंशत्यङ्गुलानि पञ्च यूकाः द्वे लिखे । त्रिषु त्रयस्त्रिंशदङ्गुलानि एको यवः द्वे यूके षड्विधाः । चतुर्षु अष्ट-त्रिंशदङ्गुलानि द्वौ यवौ तिस्रो यूकाः द्वे लिखे । पञ्चसु द्विचत्वारिंशदङ्गुलानि । सप्त यवाः । यूकाश्चतस्रः । तिस्रो लिखाः । षट्सु षट्चत्वारिंशदङ्गुलानि, सप्त यवाः द्वे यूके । सप्तसु पञ्चाशदङ्गुलानि, पञ्च यवाः, द्वे यूके चतस्रो लिखाः । अष्टसु पञ्चपञ्चाशदङ्गुलानि, एको यवः, द्वे यूके, तिस्रो लिखाः । नवसु सप्तपञ्चाशदङ्गुलानि, चत्वारो यवाः । दशसु षडङ्गुलानि, चत्वारो यवाः । एवं षोडशसु षट्सप्तत्यङ्गुलानि । पञ्च यवाः । अत्र रामेण—‘चतुरशीत्यधिकत्रिंशत्या विभक्तस्येष्टक्षेत्रव्यासस्यैकोऽंशोऽधिकस्त्याज्यः क्षेत्रफलसंवादाथम्’ इत्युक्तम् । स चैकांश इष्टक्षेत्रव्यासश्चतुर्विंशांशस्य षोडशांशो भवति । एकहस्तचतुरस्रे तु सार्द्धयवमितः । एवं द्विहस्तादिष्वप्यूहम् । इदं चोद-गग्रं कार्यम् । तदुक्तं मदनरत्ने—‘उदगप्रत्वं चोदङ्गमध्यरेखाया नवधा विभागेन संपादनीयम्’ इति ॥

यत्तु शारदातिलके—

चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं दशधा विभजेद्बुधः ।

एकमेकं त्यजेदंशमथ उर्ध्वं च तन्त्रवित् ॥

ज्यासूत्रं पातयेदग्रे तन्मानाद्भ्रामयेत्ततः ।

अर्द्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेत् । इति ॥

तत्र भूयान्क्षेत्रफलविसंवादः । कामिकोक्ते त्वल्पः ।

अथ त्रिकोणम् । ‘इष्टचतुरस्रमध्यसूत्रस्य चतुर्विंशतिरंशाः । तत्र



सूत्रं च प्राच्यामष्टमांशोनैकांशसहितान् सार्द्धसप्तांशान् श्रोणिं च पार्श्व-  
योः । प्रत्येकं सपादान् षडंशान् संवद्धर्थं वर्द्धितश्रोण्यन्तयोर्वर्द्धितप्राक्-  
सूत्रान्तं यावत्सूत्रद्वये दत्ते समभुजं व्यसं भवति ।

यथोक्तं शारदातिलके—

चतुर्धामोदिते क्षेत्रे न्यसेदुभयपार्श्वयोः ।

एकैकमंशतन्मानादग्रतो लाञ्छयेत्ततः ॥

सूत्रद्वयं बुधः कुर्यात्त्यसं कुण्डमुदाहृतम् । इति ॥

इदं तु किञ्चित्फलव्यभिचारि । अतोऽस्माभिरधिका वृद्धिरुक्ता ।  
राममते तु 'मध्यसूत्रं दशभिरंशैः संवद्धर्थं तत्रैकांशः स्वाष्टमांशोनः  
श्रोणिसूत्रस्योभयतः पञ्चपञ्चांशवृद्धिः' इति । तच्च विषमभुजत्वादुपे-  
क्ष्यम् । इदं च निर्कर्तौ प्रागग्रं पश्चिमयोनि व्यसंभुजाः । एकस्मिन्  
षट्त्रिंशदङ्गुलानि चत्वारो यवाः । द्वयोरेकपञ्चाशदङ्गुलानि पञ्च  
यवाः । त्रिषु त्रिषष्ट्यङ्गुलानि एको यवः । चतुर्षु त्रिसप्तत्यङ्गुलानि  
पञ्च यवाः । षट्सु एकोननवत्यङ्गुलानि त्रयो यवाः । सप्तसु चतुर्न-  
वत्यङ्गुलानि चत्वारो यवाः । अष्टसु व्युत्तरशताङ्गुलानि एको यवः ।  
नवसु नवाधिकशताङ्गुलानि यवत्रयम् । दशसु पञ्चदशाधिकशताङ्गु-  
लानि यवद्वयम् ।

अथ वृत्तं कामिके—

कर्णार्धाष्टांशसंन्यासाद्वृत्तं कुण्डमिहोच्यते । इति ॥

अयमर्थः—कर्णार्धस्य योऽष्टमांशोऽङ्गुलद्वययवाधिकमेकहस्ते तस्य  
सम्यङ्न्यासं त्यागं कृत्वा विशिष्टयवन्यूनपञ्चदशाङ्गुलात्मकव्यासार्धेन  
वृत्तं कुण्डं भवति ।

शारदातिलकेऽपि—

अष्टादशांशे क्षेत्रं न्यसेदेकं बहिर्बुधः ।

भ्रामयेत्तेन मानेन वृत्तं कुण्डमनुत्तमम् । इति ॥

अन्यत्रोभयत्रापि क्षेत्रफलविसंवादो बोध्यः । एकांशस्य पञ्चविंशां-  
शसहितव्यासषोडशांशाधिकव्यासार्धमितकर्कटेन सूत्रेण वा कृतं मण्डलं  
वृत्तकुण्डं भवति । 'इष्टचतुरस्रव्यासषोडशांशाऽधिकव्यासार्द्धमितेन  
कर्कटेन सूत्रेण वा कृतं मण्डलं वृत्तकुण्डम्' । प्रागग्रं पश्चिमयोनि  
प्रतीच्यां वृत्तव्यासार्द्धाङ्गुलानि । एकस्मिन्स्योदशाङ्गुलानि यव-



चतुष्टयम् । द्वयोरेकोनविंशत्यङ्गुलानि एको यवः । त्रिषु त्रयोविंशत्यङ्गुलानि यवचतुष्टयम् । चतुर्षु सप्तविंशत्यङ्गुलानि एको यवः । पञ्चसु त्रिंशदङ्गुलानि द्वौ यवौ । षट्सु त्रयस्त्रिंशदङ्गुलानि एको यवः । सप्तसु पञ्चत्रिंशदङ्गुलानि सप्त यवाः । अष्टस्वष्ट्रिंशदङ्गुलानि द्वौ यवौ । नवसु चत्वारिंशदङ्गुलानि पञ्च यवाः । दशसु द्विचत्वारिंशदङ्गुलानि सप्त यवाः ।

अथ षडसम् । 'इष्टचतुरस्रमध्यसूत्रस्य चतुर्विंशतिमंशान्कृत्वा तत्सूत्रं त्रिभिरंशैः प्राच्यं वर्द्धयेत् । तत्रकोऽंशः स्वाष्टमांशोनः तावच्च प्रतीच्यां संबद्धयेत् तद्वर्द्धनं वृत्तं कृत्वा तावदेव कर्कटेन उदीचीमारभ्य षट्सु स्थानेषु अङ्कयेत्' इति । अत्रैकहस्ते तावदेवं फलम् । मध्ये दीर्घचतुरस्रम् । तद्दीर्घभुजः पञ्चविंशत्यङ्गुलानि षड्यवाश्च । एवमन्योऽपि । अल्पभुजस्तु, चतुर्दशाङ्गुलानि सप्त यवाः सप्त यूकाश्च । तत्र फलं, पञ्चाशीत्यधिकानि शतत्रयमङ्गुलानि । 'चतुरस्रदीर्घभुजसंलग्ने त्र्यस्रे तु भुज एव भूः । लम्बस्तु वृत्तचतुर्थांशः सप्ताङ्गुलानि त्रयो यवाः पञ्च यूकाश्च इति । तत्फलं, पञ्चनवत्यङ्गुलानि चत्वारो यवाश्च । अपरत्र्यस्रेऽप्येवम् । फलत्रययोगे पञ्चशतषट्सप्ततिश्च । यत्तु विष्णुमूलप्रभृतिभिर्वहुभिः फलसंवाद्यपि त्र्यस्रद्वययोगेन बहिर्निर्गतास्त्रिकं षडसमुक्तम् । तदयुक्तम् । अन्तरबाह्यास्त्रयोगेन द्वादशास्रताद्वादशभुजतापत्तेः । बहिस्तना एवास्त्रा नान्तर्गता इति चेत् । तथापि वक्रभुजतायां मानाभावः । चतुरस्रत्र्यस्रादावपि फलसंवादेन कदाचित्तथापत्तेश्च । एतेन रामाद्युक्तमष्टास्रमपि प्रत्युक्तम् । षडस्त्रिभुजाङ्गुलान्येकहस्तादिक्रमेण दशहस्तपर्यन्तम् । चतुर्दशाङ्गुलानि सप्त यवाः । एकविंशत्यङ्गुलानि । पञ्च विंशत्यङ्गुलानि । षड् यवाः । एकोनत्रिंशदङ्गुलानि । षट् यवाः । त्रयस्त्रिंशदङ्गुलानि । द्वौ यवौ । षट्त्रिंशदङ्गुलानि । यवचतुष्कम् । एकोनचत्वारिंशदङ्गुलानि यवत्रयम् । द्विचत्वारिंशदङ्गुलानि एको यवः । चतुश्चत्वारिंशदङ्गुलानि पञ्च यवाः । सप्तचत्वारिंशदङ्गुलानि एको यवः ।

अथ पद्मम् । इष्टचतुरस्रमध्यसूत्रस्य चतुर्विंशतिरंशाः । तत्र द्वादशभिरंशैरेकं वृत्तं कृत्वा तदुपर्यंशपञ्चमांशाधिकान्सार्द्धान्त्रीनंशान्संबद्धर्याऽपरं वृत्तं कृत्वा तत्र दिक्षु विदिक्षु तदंतरालेषु च सूत्राण्यास्फालयेत् । ततोऽन्त-



वृत्तरेखाप्राक्सूत्रमत्स्यात्तदेकान्तरितमत्स्याच्च सूत्रद्वयं त्रिकोणाकारे-  
णाऽऽस्फालयेत् तदन्तरालमत्स्यसमसूत्रबहिर्वृत्तरेखागतमत्स्यं यावत् ।  
तत्रैकसूत्रं समांशतया मध्येऽङ्कयित्वा सूत्रार्द्धमितक कंटकोटिमैकां मध्याङ्के  
परां च सूत्रारम्भकमत्स्ये संस्थाप्य त्रिकोणमध्ये भ्रमणादेकमत्स्यं, बहि-  
र्वृत्तरेखागतत्रिकोणान्तात्तस्मादेव च सूत्राङ्कात्रिकोणाद्वहिरपरं मत्स्यं  
कृत्वान्तर्मत्स्यात्रिकोणाद्वहिरपरं मत्स्यं कृत्वाऽन्तर्मत्स्यात्रिकोणाद्वहिरुप-  
रिसूत्रार्द्धज्याकमेकं बहिर्मत्स्यात्रिकोणान्तः अधः सूत्रार्द्धज्याकमपरमिति  
संलग्नकोटिकमुपर्यधोभावेन धनुर्द्वयं कार्यम् । एवमपरसूत्रेऽपि कृत्वा  
सूत्रद्वयमार्जने वक्राग्रं पञ्चदलवत्पत्रं भवति । एवमन्यानि पत्राणि अधः  
कृत्वा इष्टचतुरस्रक्षेत्रकल्पितचतुर्विंशत्यंशमध्ये त्रिभिरंशैर्व्यासार्द्धेन मध्ये  
तद्वहिश्च षडंशव्यासार्द्धेनेति द्वे वृत्ते कार्ये । तत्रान्तर्वृत्ते विस्तारे तद्वृत्ते-  
नोच्चतायां तद्व्यासेन समा मृदा कर्णिका कार्या । बहिर्वृत्ते तु केसरा  
इति । तथा च कामिके—

चतुरस्राष्ट्रभागेन कर्णिका स्याद्विभागशः ।

तद्वहिस्त्वेकभागेन केसराणि प्रकल्पयेत् ॥

तृतीये दलमध्यानि चतुर्थदलकोटयः ।

भ्रमणात्पद्मकुण्डं स्याद्वलाग्रं दर्शयेद्वहिः । इति ॥

विभागशः सर्वदिग्भागेष्वित्यर्थः । भ्रमणात्सूत्रस्येति शेषः । एतत्  
पद्मकुण्डम् । अथैतत्फलम् । तत्रैकस्मिन् पत्रे उपरितने महति त्र्येक-  
हस्ते चतुर्थमहद्वृत्तव्यासार्द्धे पञ्चदशङ्गुलानि । पञ्च यवाः । तिस्रो  
यूकाः । तिस्रो लिक्षाः । द्वे वालाग्रे । द्विहस्ते विंशत्यङ्गुलानि । त्रयो  
यवाः । तिस्रो यूकाः । एका लिक्षा । षड् वालाग्राणि । त्रिहस्ते सप्तविं-  
शत्यङ्गुलानि । एको यवः । एका यूका । द्वे वालाग्रे । चतुर्हस्त  
एकत्रिंशदङ्गुलानि । द्वौ यवौ । षड् यूकाः ६ । षड् वालाग्राणि ६ ।  
पञ्चहस्ते पञ्चत्रिंशदङ्गुलानि ३५ तिस्रो यूकाः ३ । षट् लिक्षाः ६ ।  
पञ्च वालाग्राणि ५ । षड्हस्तेऽष्टत्रिंशदङ्गुलानि ३८ । यवद्वयम्  
२ । एका यूका १ । द्वे वालाग्रे २ । सप्तहस्ते, एकचत्वारिंशदङ्गु-  
लानि ४१ । यवत्रयम् ३ । सप्त यूकाः ७ । अष्टहस्ते चतुश्च-  
त्वारिंशदङ्गुलानि ४४ । द्वौ यवौ २ । यूकात्रयम् ३ । षट् लिक्षाः  
६ । नवहस्ते सप्तचत्वारिंशदङ्गुलानि ४७ । द्वे यूके २ । नव लिक्षाः



९ । दशहस्त एकोनपञ्चाशदङ्गुलानि ४९ । पञ्च यवाः । चतस्रो  
यूकाः । सप्त लिक्षाः । द्वयमेकं वा वालाग्रम् । पञ्च रथरेणवः । षट् त्रसरे-  
णवः । त्रयः परमाणवः इति । भूस्तु तृतीयवृत्ताष्टमांशस्य ज्यारूपा । सा  
चैकहस्तादिक्रमेण दशहस्तान्तम् । नवाऽङ्गुलानि । एको यवः । तिस्रो  
यूकाः । षड् लिक्षाः । त्रीणि वालाग्राणि ॥ १ ॥ द्वादशाङ्गुलानि ।  
सप्तयवाः । सप्तयूकाः लिक्षाद्वयम् ॥ २ ॥ पञ्चदशाङ्गुलानि । यवत्र-  
यम् । एका यूका । सप्तलिक्षाः । चत्वारि वालाग्राणि ॥ ३ ॥ अष्टादशा-  
ङ्गुलानि । यवत्रयम् । यूकात्रयम् । चतस्रो लिक्षाः । षड्वालाग्राणि ॥ ४ ॥  
विंशत्यङ्गुलानि । चत्वारो यवाः । द्वे यूके । तिस्रो लिक्षाः ॥ ५ ॥  
द्वाविंशत्यङ्गुलानि । त्रयो यवाः । सप्तयूकाः । षड् लिक्षाः । षड्वाला-  
ग्राणि ॥ ६ ॥ चतुर्विंशत्यङ्गुलानि । यवद्वयम् । यूकात्रयम् । एका  
लिक्षा । त्रीणि वालाग्राणि ॥ ७ ॥ पञ्चविंशत्यङ्गुलानि । सप्त यवाः ।  
षड्यूकाः । चतस्रो लिक्षाः ॥ ८ ॥ सप्तविंशत्यङ्गुलानि । चत्वारो यवाः ।  
तिस्रो यूकाः । तिस्रो लिक्षाः ॥ ९ ॥ एकोनत्रिंशदङ्गुलानि । एको  
यवः । एका यूका । लिक्षात्रयम् । षड्वालाग्राणि ॥ एतत्पद्मकुण्डम् ॥  
अथैतत्फलम् । तत्रैकस्मिन्पत्रे उपरितने महति त्र्यस्रे तावलम्बोऽङ्गु-  
लानि दश । त्रयो यवाः । सप्त यूकाः । त्रीणि वालाग्राणि ॥ पञ्च रथरे-  
णवः । पञ्च त्रसरेणवः । चत्वारः परमाणवः । इति ॥ भूस्तु नवाङ्गु-  
लानि । एको यवः । तिस्रो यूकाः । षड् लिक्षाः । त्रीणि वालाग्राणि ।  
द्वौ रथरेणू । त्रयस्त्रसरेणवः । सप्त परमाणवः इति ॥ लम्बेन तद्रूम्य-  
र्धगणने फलम् 'पञ्चाशदङ्गुलानि । सप्त यवाः । द्वे यूके । षड्वाला-  
ग्राणि ॥ द्वौ रथरेणू । एकस्त्रसरेणुः । चत्वारः परमाणवः । इति ॥  
अधस्तनेऽल्पत्र्यस्रे भूः सैव । लम्बस्तु चत्वार्यङ्गुलानि । चत्वारो  
यवाः । चतस्रो यूकाः । सप्त लिक्षाः । एकं वालाग्रम् । पञ्च रथरेणवः ।  
एकस्त्रसरेणुः । सप्त परमाणवः । इति । पूर्वोक्तभूम्यर्द्धेनैतल्लम्बगणने  
फलम् 'एकविंशतिरङ्गुलानि । पञ्च यूकाः । पञ्च लिक्षाः । एकं  
वालाग्रम् । पञ्च रथरेणवः । षट् त्रसरेणवः । त्रयः परमाणवः । इति ।  
त्र्यस्रद्वयफलैकीकरणे 'द्वासप्ततिरङ्गुलानि पत्राप्रवक्रतायां तु तावत्येव  
भूस्त्यज्यते, तावत्येव संगृह्यते इति गणितं क्षेत्रफलं विहितम् । अष्टाना-  
मपि पत्राणां क्षेत्रफलमेलनेऽङ्गुलानां षट्सप्तत्यधिका पञ्चशती ॥ ५७६ ॥



अथाष्टास्रम् ॥ इष्टचतुरस्रव्यासश्चतुर्विंशतिभागः । तत्र द्वाभ्यां भागाभ्यामेकभागचतुर्थीशाधिकाभ्यां मध्यसूत्रं संबद्धं मध्याद्वृद्धयन्त-भृतकर्कटेन वृत्तं कृत्वेशानपूर्वान्तरालमारभ्यैकादशभिरंशैर्मितेन सूत्रेणाष्टसु स्थानेष्वङ्कितेषु अष्टास्रं भवति । अत्र चैकादशांशः स्वाष्टमांशोनः कार्यः ॥ अत्रैकहस्तादावुपपत्तिः । मध्ये समचतुरस्रम् । तदभुजमानं तु विंशत्यङ्गुलानि । एको यवः । यूकात्रयं च । चतुरस्रचतुर्भागेषु चत्वारि त्र्यस्राणि । तत्र भुवश्चतुरस्रभुजा एव । एवं पूर्वोक्ताङ्कसूत्रमितावेव च द्वौ भुजौ । लम्बानां तु चत्वार्यङ्गुलानि । एको यवः । द्वे यूके इति । तत्र चतुरस्रफलं चत्वारि शतानि सप्त चाङ्गुलानि । ४०७ । यवाश्च सप्त । प्रत्येकं त्र्यस्रफलं द्विचत्वार्यङ्गुलानि ४२ । त्र्यस्रचतुष्टयफल-मष्टषष्ठ्यधिकं शतम् ॥ १६८ ॥ रामोक्तं त्वष्टास्रं विषमवक्रभुजत्वान् षोडशस्रतापत्तेश्चोपेक्ष्यमिति दिक् ॥

अष्टास्रभुजाङ्गुलानि । एकस्मिन् दशाङ्गुलानि सप्त यवाः । द्वयोः पञ्चदशाङ्गुलानि । त्रयो यवाः । त्रिष्वष्टादशाङ्गुलानि । सप्त यवाः । चतुर्विंशत्यङ्गुलानि । सप्त यवाः ॥ पञ्चसु चतुर्विंशत्यङ्गुलानि । यवत्रयम् । षट्सु षड्विंशत्यङ्गुलानि षड्यवाः ॥ सप्तस्वष्टाविंशत्यङ्गुलानि । सप्त यवाः । अष्टसु त्रिंशदङ्गुलानि सप्त यवाः । नवसु द्वात्रिंशदङ्गुलानि । षड्यवाः । दशसु चतुस्त्रिंशदङ्गुलानि । यवचतुष्टयम् । षोडशसु त्रिचत्वारिंशदङ्गुलानि । पञ्च यवाः ॥

अथ चतुर्विंशांशः ।

एकस्मिन् एकाङ्गुलम् । द्वयोरेकाङ्गुलम् । त्रयो यवाः । त्रिष्वेकाङ्गुलम् । षड्यवाः । चतुर्विंशत्यङ्गुलम् । पञ्चस्वङ्गुलद्वयम् । षट्सु अष्टस्वङ्गुलद्वयम् । षड्यवाः । यवत्रयम् । सप्तस्वङ्गुलद्वयम् । पञ्च यवाः । षट्सु अष्टस्वङ्गुलद्वयम् । षड्यवाः । नवस्वङ्गुलत्रयम् । दशस्वङ्गुलत्रयम् । एको यवः । षोडशसु चत्वार्यङ्गुलानि । एकहस्तादिषु चतुर्थांशः । एकस्मिन् षडङ्गुलानि । द्वयोरष्टाङ्गुलानि । चत्वारो यवाः । त्रिषु दशाङ्गुलानि । यवत्रयम् । यूकाश्चतस्रः । चतुर्ष्वष्टादशाङ्गुलानि । पञ्चसु त्रयोविंशाङ्गुलानि । एको यवः । षोडशसु चत्वार्यङ्गुलानि । एकहस्तादिषु चतुर्थांशः । एकस्मिन् षडङ्गुलानि । द्वयोरष्टाङ्गुलानि । चत्वारो यवाः । त्रिषु दशाङ्गुलानि । यव-



त्रयम् । यूकाश्चतस्रः । चतुर्षु द्वादशाङ्गुलानि । पञ्चसु त्रयोविंशाङ्गुलानि ।  
त्रयो यवाः । यूकाश्चतस्रः । षट्सु चतुर्दशाङ्गुलानि । षट् यवाः । सप्तसु-  
पञ्चदशाङ्गुलानि । सप्त यवाः । अष्टसु षोडशाङ्गुलानि । सप्त यवाः ।  
चतस्रो यूकाः । नवस्वष्टादशाङ्गुलानि । दशस्वष्टादशाङ्गुलानि । सप्त  
यवाः । षट् यूकाः । षोडशसु चतुर्विंशत्यङ्गुलानि ।

अथाष्टमांशाः । एकस्मिन्नङ्गुलत्रयम् । द्वयोश्चत्वार्यङ्गुलानि । द्वौ  
यवौ । त्रिषु पञ्चाङ्गुलानि । द्वौ यवौ । चतुर्षु षडङ्गुलानि । पञ्चसु  
षडङ्गुलानि । षट् यवाः । षट्सु सप्ताङ्गुलानि । यवत्रयम् । सप्तस्वष्टा-  
ङ्गुलानि । अष्टस्वष्टाङ्गुलानि । यवचतुष्कम् । नवसु नवाङ्गुलानि ।  
दशसु नवाङ्गुलानि । चत्वारो यवाः । षोडशसु द्वादशाङ्गुलानि ।

अथ षष्ठांशाः । एकस्मिन्नङ्गुलचतुष्टयम् । द्वयोः पञ्चाङ्गुलानि । पञ्च  
यवाः । तिस्रो यूकाः । त्रिषु षडङ्गुलानि । सप्त यवाः । चतस्रो यूकाः ।  
चतुर्विंशत्यङ्गुलानि । पञ्चस्वष्टाङ्गुलानि । सप्त यवाः । पञ्च यूकाः । षट्सु  
नवाङ्गुलानि । षट् यवाः । चतस्रो यूकाः । सप्तसु दशाङ्गुलानि ।  
चत्वारो यवाः । पञ्च यूकाः । अष्टस्वेकादशाङ्गुलानि । द्वौ यवौ । चतस्रो  
यूकाः । नवसु द्वादशाङ्गुलानि । दशसु द्वादशाङ्गुलानि । पञ्च  
यवाः । षोडशसु षोडशाङ्गुलानि ।

अथ द्वादशांशाः । एकस्मिन्नङ्गुलद्वयम् । द्वयोर्द्वे अङ्गुले । सप्त  
यवाः । त्रिष्वङ्गुलत्रयम् । यवचतुष्टयम् । चतुर्षु चत्वार्यङ्गुलानि । पञ्चसु  
चत्वार्यङ्गुलानि । चत्वारो यवाः । षट्सु चत्वार्यङ्गुलानि । सप्त  
यवाः । सप्तसु पञ्चाङ्गुलानि । द्वौ यवौ । अष्टसु पञ्चाङ्गुलानि पञ्च  
यवाः । नवसु षडङ्गुलानि । दशसु षडङ्गुलानि । यवत्रयम् ।  
षोडशस्वष्टाङ्गुलानि ।

अथ ध्वजायः ।

स्थापने सर्वकुण्डानां ध्वजायः सर्वसिद्धिदः । इत्युक्तत्वात्सर्वेषु चैतेषु  
प्रोक्तमानादर्धाङ्गुलयवादिन्यूनमतिरिक्तं वा कृत्वा ध्वजायः साधनीयः ।  
विस्तारे दैर्घ्यगुणितैरष्टभिर्विभक्ते यद्येकः परिशिष्यते तदा ध्वजाय इति ।

तदुक्तम्—

ध्वजो धूम्रोऽथ सिंहश्च सौरमेयः खरो गजः ।

ध्वाङ्गुश्चेति क्रमेणैतदायाष्टकमुदाहृतम् । इति ॥



अविष्यपुराणे—

मुनिमानं शताद्वे तु शते चारत्निमात्रकम् ।  
सहस्रे त्वय होतव्ये कुर्यात्कुण्डं करात्मकम् ॥  
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम् ।  
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम् । इति ॥

यत्तु शारदातिलके—

एकहस्तमितं कुण्डमेकलक्षे विधीयते ।  
लक्षाणां दशकं यावत्तावद्धस्तेन वर्द्धयेत् ॥  
दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि शस्यते । इति ॥

यत्तु स्कान्दे—

कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं समन्ततः ।  
योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम् ।

इति च लक्षादिहोमेस्वेकहस्तादिकुण्डविधानं, कोटिहोमे दशह-  
स्तस्य । तद्यथोचितब्रीह्यादिचिरदाहस्थूलद्रव्यविषयं घृतादिक्षिप्रदाहि  
द्रव्यविषयं च ज्ञेयम् ।

अथ खातम् ।

मोहचूडोत्तरे—

चतुर्विंशतिमं भागमङ्गुलं परिकल्प्य तु ॥  
चतुर्विंशाङ्गुलं हस्तं कुण्डानां परिकल्पयेत् ।  
हस्तमात्रं खनेत्तिर्यगूर्ध्वमेखलया सह ॥

पिङ्गलमते—

खातादेकाङ्गुलं त्यक्त्वा मेखलानां स्थितिर्भवेत् ।

तथा—

सर्वेषामेव कुण्डानामेका वा तिस्र एव वा ।

कुण्डलक्ष्मविवृत्तौ—

कण्ठाङ्गुलाद्वहिः कार्या मेखलैका षडङ्गुला । इति ॥  
चतुस्त्रिंशङ्गुला वाऽपि तिस्रः सर्वत्र शोभनाः । इति ॥

मेखलान्नितयं कार्यं कोणरामयमाङ्गुलैः ।

कोणाश्रित्वारः । रामाश्रयः । यमौ द्वौ । चतुस्त्रिंशङ्गुलत्वं च  
विस्तारे, उच्यतायां च । अत एव शारदातिलके मेखलामानं प्रकृत्य—



विस्तारोत्सेधनो ज्ञेया मेखलाः सर्वतो बुधैः । इति ॥

रामेण तु—

तिसृणामपि त्र्यङ्गुलोच्चैव । विस्तारस्तु चतुर्ध्विज्यङ्गुलः इत्युक्तम् ।

अथ योनिः ।

तत्र स्वायम्भुवे—

मेखलामध्यतो योनिः कुण्डार्द्धा त्र्यंशविस्तृता ।

अङ्गुष्ठमानोष्ठकण्ठा कार्याऽश्वत्थदलाकृतिः ॥

कुण्डार्द्धा दीर्घा । त्र्यंशविस्तृता मूले अग्नेऽश्वत्थदलवत्कुञ्चिता ।  
अङ्गुष्ठमानौ ओष्ठकण्ठौ यस्याः सा अङ्गुष्ठमानोष्ठकण्ठा । ओष्ठः कुण्ड-  
मध्ये प्रविष्टं योन्यग्रम् । कण्ठो योनिमेखलेत्येके । तथा च भुवि वेष्टिता  
योनिः कार्येत्यर्थः । मेखलात उच्चो भागः इत्यपरे ।

त्रैलोक्यसारे—

दैर्घ्यात्सूर्याङ्गुला योनिस्त्र्यंशोना विस्तरेण तु ।

एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा ॥

कुम्भद्वयसमायुक्ता वाऽश्वत्थदलवन्मता ।

अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिक्षमा । इति ॥

त्र्यंशोना योनिदैर्घ्यात् । अष्टाङ्गुलेति यावत् । कुम्भद्वयेन वृत्तार्द्ध-  
द्वयाकारेण मूलदेशे समायुक्ता ।

शारदातिलके—

मूलादारभ्य नालं स्याद्योन्या मध्ये सरब्धकम् । इति ॥

प्रागग्निश्याम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी ॥

पूर्वामुखाः स्मृताः शेषा यथा शोभासमन्विताः ।

प्रागग्निश्याम्यकुण्डानामिति पूर्वोक्तस्वायम्भुववचनाद्योनिकुण्डे योनिः  
कार्या इति केचित् । वस्तुतस्तु नवानां चतुरस्त्रादि पक्ष एतस्य साव-  
काशत्वाद्विशेषनिषेधाच्च योनिकुण्डे योनिर्नैव कार्या इति ।

त्रैलोक्यसारे—

नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदले स्थिता । इति ॥



तथा—

दक्षस्था पूर्वयामे तु जलस्था पश्चिमोत्तरे ।

दाक्षं दक्षिणम् । जलं पश्चिमम् । एवं च होतारोऽपि पूर्वदक्षिणकुण्ड-  
योरुत्तराभिमुखाः । पश्चिमोत्तरयोः पूर्वाभिमुखाः सिध्यन्ति ।

होतुरग्रे योनिरासामुपर्यश्वत्थपत्रवत् ।

इति तत्रैवोक्तेः । आसां मेखलानामुपरीत्यर्थः ॥ एवमेव रूप-  
नारायणादयः । शारदायाम्—योनिकुण्डे योनिमञ्जुकुण्डे नाभिं च  
वर्जयेत् । इति ॥

सिद्धान्तशेखरेपि 'योनौ योनिं न कुर्वीत' इति ।

शारदातिलके—

कुण्डानां कल्पयेदन्ते नाभिमम्बुजसन्निभाम् ।

तत्तत्कुण्डानुरूपां च मानमस्या निगद्यते ॥

मुष्टिरत्रैकहस्तानां नाभिरुत्सेधतो मता ।

नेत्रवेदाङ्गुलोपेता कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ॥

यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः । इति ॥

नेत्रवेदाङ्गुलोपेता उच्चतायां अङ्गुला विस्तारायामयोश्चतुरङ्गुलेत्यर्थः ।  
द्वित्रिहस्तादिकुण्डेषु द्विद्वियववृद्धिस्तु विस्तारायामयोः षष्ठांशविस्तार-  
परा । उच्चतायां द्वादशांशपरेति रामादयः ।

शारदातिलके—

एकमेव भवेत्कुण्डमीशान्यां वैष्णवाध्वरे । इति ॥

विश्वकर्मा—

खात्ताधिके भवेद्दोगी हीने धेनुधनक्षयः ।

वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले ॥

मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसङ्क्षयः ।

भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योन्या विना कृते ।

अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम् । इति ॥

सिद्धान्तशेखरे—

मानहीने महाव्याधिरधिके शत्रुवर्द्धनम् ।

योनिहीने त्वपस्मारो वाक्कुण्ठः कण्ठवर्जिते ॥



तत्रैव—

स्थण्डिलं वाऽपि कुर्वीत सुसिद्धैः सिकतैः सितैः ।

हस्तमात्रं प्रविस्तारं सुसमे व्यङ्गुलोज्जतम् ॥

ग्रन्थान्तरेऽपि—

नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिले वा समाचरेत् ।

हस्तमात्रेण तत्कुर्याद्वालुकाभिः सुशोभनम् ।

व्यङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः । इति ॥

इति श्रीशङ्करभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते दानमयूखे

कण्डमेखलानिर्णयः ॥

अथ षोडशारचक्रम् ।

तत्र गुरुर्वेद्यां मध्ये त्रिहस्तव्यासं चतुरस्रं प्रसाध्य प्रागपरदक्षिणो-  
त्तरनवनवरेखाभिस्तच्चतुःषष्टिकोष्ठकं कुर्यात् । तत्र कोष्ठानि प्रत्येकं  
नवाङ्गुलानि संपद्यन्ते । ततो बहिरन्त्यपङ्क्तिषु चतुर्दिक्षु मध्यकोष्ठानि  
चत्वारि चत्वारि मार्जयित्वा तदुपर्युपान्त्यपङ्क्तिषु पार्श्वयोस्तत्रयं त्रयं  
त्यक्त्वा प्रतिदिशं मध्यकोष्ठद्वयं मार्जयेत् । तेन चतुर्दिक्षु षट्षट्कोष्ठानि  
चत्वारि द्वाराणि सिद्ध्यन्ति । ततो मध्यस्थितषोडशकोष्ठानि मार्ज-  
येत् । ततो बाह्य एकैकं कोणकोष्ठं विहाय कोणकोष्ठद्वारपीठान्तगालव-  
र्तीन्यवशिष्टानि पञ्च पञ्च कोष्ठानि मार्जयेत् । तथाच मध्यचतुरस्र-  
पीठस्य पादाः सिद्ध्यन्ति । ततो मध्याच्चत्वारि वृत्तानि कुर्यात् । तत्राद्ये  
चत्वार्यङ्गुलानि व्यासः । द्वितीयेऽष्टौ । तृतीये चतुर्विंशतिः । चतुर्थं  
पद्भिश्चतुरिंशतिरिति । तच्चतुरङ्गुलं वृत्तं कर्णिकारूपं पीतेन रजसा पूरयित्वा  
कर्णिकावधिरेखां सितेन रजसा निर्माय तद्बहिरष्टाङ्गुलात्मके वृत्ते  
पीतरक्तसितरजोभिः संपादितमूलमध्याग्राणि षोडश केशराणि संपाद्य  
तत्केसरावधिरेखां सितेनैव रजसाऽङ्गुलोज्जतां संपाद्य चतुर्विंशाङ्गुलात्मके  
तद्बहिर्वृत्ते सितरजसा अष्टदिक्ष्वष्टौ पत्राणि रक्ताग्राणि कुर्यात् । ततो  
दलान्तरे रेखां सितेन रजसा विधाय दलान्तराणि कृष्णेन रजसा  
पूरयित्वा तद्बहिरेकाङ्गुलान्तरं बहिर्वृत्तरेखां सितेनैव रजसा संपाद्य वृत्त-  
द्वयान्तरं परितो दलाग्रतलात्सन्धिचिह्नैः षोडशधा विभज्य प्रतिभागं  
यवाकारान् षोडश कीटान्श्यामपीतारुणश्वेतरजोभिः कल्पयित्वा तद-  
न्तरा यथायोगं रजोभिः पूरयित्वा तद्बहिः सितपीतारुणश्यामहरिताः



पञ्च रेखा लिखेत् । तद्विहिः पीठक्षेत्रं चतुरस्रं यथाशोभं रजोभिरलं-  
कृत्य पीठाऽवधिरेखां सितेन रजसा चतुरस्रां रचयेत् । द्वारक्षेत्राणि  
पूर्वादितः पीतश्यामश्वेतहरितरजोभिः पूरयेत् । आग्नेयादिकोणकोष्ठ-  
चतुष्टयं लोहितहरितश्यामधवलैः पूरयेत् । आग्नेयादिपीठपादचतुष्टयं  
पञ्चकोष्ठात्मकं क्रमात्सितरक्तपीतकृष्णरजोभिः पूरयेत् । ततः सितेन  
रजसाङ्गुलोन्नतेन वहिश्चतुरस्ररेखां कुर्यादिति पितामहचरणाः, मद्-  
नाद्याश्च ।

ठक्कुरमते—

चतुर्हस्तं चतुरस्रम् । तत्र प्रत्येकं द्वादशाङ्गुलानि कोष्ठानि । वृत्तानि  
तु पञ्च । तत्राऽऽद्ये वृत्ते चत्वार्यङ्गुलानि व्यासः । द्वितीयेऽष्टौ,  
तृतीये विंशतिः, चतुर्थे चतुर्विंशतिः, पञ्चमे षट्त्रिंशदिति । पञ्चको-  
ष्ठात्मकं पीठपादचतुष्टयमाग्नेयादिक्रमेण रक्तहरितश्यामसितैः पूरणीयम् ।  
कोणकोष्ठचतुष्टयं त्वेकं त्रिभिस्त्रिभिर्वर्णैरिति विशेषः । इति षोडशा-  
रचक्रनिर्मितिः । इदमेव च वारुणं मण्डलम् ।

तथा—

वज्रं प्रागुत्तमे भागे आग्नेय्यां शक्तिमुज्ज्वलाम् ।

आलिखेदक्षिणे दण्डं नैर्ऋत्यां खड्गमालिखेत् ॥

पाशं तु वारुणे लेख्यं ध्वजं वै वायुगोचरे ।

कौबेर्यां तु गदां लिख्य ईशान्यां शूलमालिखेत् ॥

शूलस्य वामदेशे तु चक्रं पद्मं तु दक्षिणे । इति ॥

ततो महावेद्युपरि पञ्चवर्णफलपुष्पोपशोभितं वितानं वध्नीयादिति  
ततो महावेदीशानभागे आयामदैव्योच्छ्रायैर्हस्तमिता ग्रहादिस्थापनार्था  
परा वेदिर्या विहिताऽस्ति । हेमाद्रिमते वितस्त्युच्छ्राया वा तस्यां सर्व-  
तोभद्रं लिखेत् ।

तल्लेखनप्रकारोऽपीत्यम्—

प्रागुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिम् ।

खण्डेन्दुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पदैः ॥

एकादशपदा वल्ली भद्रा तु नवभिः पदैः ।

चतुर्विंशत्पदा वापी परिधिर्विंशकैः पदैः ॥

मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम् ।



श्वेतेन्दुः शृङ्खला कृष्णा वर्ली नीलेन पूरयेत् ॥  
 भद्राऽरुणा सिता वापी परिधिः पीतवर्णकः ।  
 बाह्यान्तरदला श्वेता कर्णिका पीतवर्णिका ॥  
 परिध्यावेष्टितं पद्मं मध्ये सत्त्वं रजस्तमः ।  
 तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरासुरान् । इति ॥

अथ ग्रहपूजाप्रकारः ।

तत्र ग्रहा मात्स्ये—

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः ।  
 शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहा नव ॥

स्कान्दे—

जन्मभूर्गोत्रमेतेषां वर्णस्थानमुखानि च ।  
 योऽज्ञात्वा कुरुते शान्तिं ग्रहास्तेनावमानिताः ॥

स्थानमधिष्ठानम् ।

एतद्विज्ञाय यः कुर्यात्तत्सर्वं सफलं भवेत् ।

वर्णजन्मनी आह बृहस्पराशरः—

रक्तः काश्यपजो भानुः शुक्रो ब्रह्मसुतः शशी ।  
 रक्तो रुद्रसुतो भौमः पीतः सोमसुतो बुधः ॥  
 पीतो ब्राह्मः सुराचार्यः शुक्रः शुक्रो भृगुर्बृहः ।  
 कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतेः ॥  
 कृष्णः केतुः कृशानूत्थः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी ॥

भुवमाह स एव—

उत्पन्नोऽर्कः कलिङ्गेषु यमुनायां च चन्द्रमाः ।  
 अङ्गारकस्त्ववन्त्यां तु मगधायां हिमांशुजः ॥  
 सैन्धवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा ।  
 शनैश्चरस्तु सौराष्ट्रे राहुर्वैराटिके पुरे ॥  
 अन्तर्वेद्यां तथा केतुरित्येता ग्रहभूमयः ।

गोत्रमाह स एव—

आदित्यः काश्यपो गोत्रादात्रेयश्चन्द्रमा भवेत् ।  
 भारद्वाजो भवेद्भौमस्तथाऽऽत्रेयश्च सोमजः ॥



शक्रपूज्योऽङ्घ्रिरोगोत्रः शुक्रो वै भार्गवस्तथा ।  
 शनिः काश्यप एवाथ राहुः पैठीनसिस्तथा ॥  
 केतवो जैमिनीयाश्च ग्रहा लोकहितावहाः ।

दामोदरीये ग्रहान् प्रक्रम्य—

वर्णरूपगुणैर्युक्तान्व्याहृत्याऽऽवाहयेत्तु तान् ।

तत्रैव—

भातुं तु मण्डलाकारमर्द्धचन्द्राकृतिं विधुम् ।  
 अङ्गारकं त्रिकोणं च बुधं वाणाकृतिं विदुः ॥  
 पद्माकारं गुरुं कुर्याच्चतुष्कोणं च भार्गवम् ।  
 दण्डाकृतिं शनिं राहुं मकराकारमेव च ॥  
 खड्गकारास्तथा केतून्स्थापयेदनुपूर्वशः ।

ग्रहादिरूपाणि मात्स्ये—

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।  
 सप्ताश्वरथसंयुक्तो द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥  
 श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः ।  
 गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥  
 रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः ।  
 चतुर्भुजो मेघवाहो वरदः स्याद्धरासुतः ॥  
 पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः ।  
 खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥  
 देवदैत्यगुरु तद्रूपीतश्वेतौ चतुर्भुजौ ।  
 दण्डिनौ वरदौ यौ हि साक्षमूत्रकमण्डलू ॥  
 इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः ।  
 बाणवाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा ॥  
 करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः ।  
 नीलसिंहासनस्थश्च राहुस्तत्र प्रशस्यते ॥  
 धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।  
 गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥  
 सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः ।  
 अङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा । इति ॥



केतूनां बहुत्वे एकमेव देवतात्वम्—

वृद्धपराशरः—

मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे ।  
दक्षिणेन धरासूनुं बुधं पूर्वोत्तरेण तु ॥  
उत्तरेण गुरुं विद्यात्पूर्वैर्गैव तु भार्गवम् ।  
शनैश्चरं पश्चिमस्यां राहुं दक्षिणपश्चिमे ॥  
पश्चिमोत्तरतः केतून्स्थापयेदनुपूर्वशः ।

मुखानि मात्स्ये—

देवानां तत्र संस्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका ।  
आदित्याभिमुखाः सर्वे साधिप्रत्यधिदेवताः ॥  
शुक्राकौ प्राङ्मुखौ ज्ञेयौ गुरुसौम्यावुदङ्मुखौ ।  
प्रत्यङ्मुखः शनिः सोमः शेषा दक्षिणतो मुखः ॥

इति स्कान्दात् । सूर्यः प्राङ्मुखः । पूजायां संमुखतानुरोधतः ।  
प्रत्यङ्मुखः इत्यन्ये ।

अविदेवताः प्रत्यधिदेवताश्च ।

मात्स्ये—

भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा ।  
स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्यापि तथा हरिम् ॥  
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम् ।  
शनैश्चरस्यापि यमं राहोः कालं तथैव च ॥  
केतूनां चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः ।  
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्रश्चैन्द्री च देवता ॥  
प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः ।

एतेषां लक्षणानि विष्णुधर्मोत्तरे—

पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः ।  
कपालशूलखट्वाङ्गी चन्द्रमौलिः सदाशिवः ॥  
अक्षसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलुम् ।  
उमा विभर्ति हस्तेषु पूजिता त्रिदशैरपि ॥  
कुमारः पण्मुखः कार्यः शिखण्डकविभूषणः ।  
रक्ताम्बरधरो देवो मयूरवरवाहनः ॥



कुक्कुटश्च तथा चण्डा तस्य दक्षिणहस्तयोः ।  
 पताका वैजयन्ती स्याच्छक्तिः कार्या च वामयोः ॥  
 विष्णुः कौमोदकी पद्मशङ्खचक्रधरः क्रमात् ।  
 प्रदक्षिणं दक्षिणाधः करादारभ्य नित्यशः ॥  
 पद्मासनस्थो जटिलो ब्रह्मा कार्यश्चतुर्मुखः ।  
 अक्षमालां सुवं बिभ्रत्पुस्तकं च कमण्डलुम् ॥  
 चतुर्दन्तगजारूढो वज्री कुलिशभृत्करः ।  
 शचीपतिः प्रकर्तव्यो नानाभरणभूषितः ॥  
 ईषत्रीलो यमः कार्यो दण्डहस्तो विज्ञानता ।  
 रक्तदृक्पाशहस्तश्च महामहिषवाहनः ॥  
 कालः करालवदनो नीलाङ्गश्च विभीषणः ।  
 पाशहस्तो दण्डहस्तः कार्यो वृश्चिकरोमवान् ॥  
 अपीच्यवेषस्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम् ।  
 दक्षिणे लेखनीं चित्रगुप्तं वामे तु पात्रकम् ॥  
 पिङ्गलश्मश्रुकेशाक्षः पीनाङ्गोजवरोऽरुणः ।  
 छागस्थः साक्षसूत्रोऽग्निः सप्तार्चिः शक्तिधारकः ॥  
 चिहितं चमरेणास्य करमन्यं प्रकल्पयेत् ।  
 आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ॥  
 दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ।  
 शुक्लवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ॥  
 चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चण्डांशुसदृशाम्बरा ।  
 रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ॥  
 पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन ।  
 दिग्गजानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥  
 विष्णोरिन्द्रस्य चोक्तम् ।  
 वामे शच्याः करे कार्या सौम्या सन्तानमञ्जरी ।  
 वरदा मण्डिता कार्या द्विभुजा च तथा सती ॥  
 यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।  
 अक्षं सुवं सुवं बिभ्रत्कुण्डिकां च प्रजापतिः ॥  
 अक्षम् अक्षमालाम्, कुण्डिकां कमण्डलुम् ।



अक्षसूत्रधराः सर्पाः कुण्डिकापुच्छभूषणाः ॥

एकभोगास्त्रिभोगा वा सर्वे कार्याश्च भीषणाः ।

ब्रह्मलक्षणमुक्तम् ।

ग्रहाणां दक्षिणे पार्श्वे स्थापयेदधिदेवताः ।

ग्रहाणामुत्तरे पार्श्वे न्यसेत्प्रत्यधिदेवताः ॥

अथ विनायकादिलक्षणानि ।

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च कर्तव्योऽत्र गजाननः ।

नागयज्ञोपवीतश्च शशाङ्कतशेखरः ॥

दक्षे दन्तं करे दद्याद्वितीये चाक्षसूत्रकम् ।

तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं तथा ॥

शक्तिं बाणं तथा शूलं खड्गं चक्रं च दक्षिणे ।

चन्द्रबिम्बमधो वामे खेटमूर्ध्वे कपालकम् ॥

सुकड्ढटं च विभ्राणा सिंहारूढा तु दिग्भुजा ।

एषा देवी समुद्दिष्टा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥

धावद्वरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः ।

वरदानकरो धूम्रवर्णः कार्यो विज्ञानता ॥

नीलोत्पलाभं गगनं तद्वर्णाम्बरधारि च ।

चन्द्रार्कहस्तं कर्तव्यं द्विभुजं सौम्यखण्डवत् ॥

द्विभुजौ सौम्यवरदौ कर्तव्यौ रूपसंयुता ।

तयोरोषधयः कार्या दिव्या दक्षिणहस्तयोः ॥

वामयोः पुस्तकौ कार्यौ दर्शनीयौ तथा द्विजाः ।

एकस्य दक्षिणे पार्श्वे वामे चास्य च यादव ॥

नारीयुगं प्रकर्तव्यं सुरूपं चारुदर्शनम् ।

रत्नभाण्डकरे कार्ये चन्द्रशुक्राम्बरे तथा ॥

अथ लोकपालरूपाणि ।

तत्रेन्द्राग्रियमश्वत्थरूपाणि प्रत्यधिदेवतोक्त्योक्तानि ।

खड्गचर्मधरो बालो निर्ऋतिर्नरवाहनः ॥

ऊर्ध्वकेशो विरूपाक्षः करालः कालिकाप्रियः ।

नागपाशधरो रक्तभूषणः पद्मिनीपतिः ॥



वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकरवाहनः ।  
वायुर्विनायकादिपञ्चके उक्तः । सोमो ग्रहेषु । अनन्तः प्रत्यभिदेव-  
तासु । विनायकादिस्थापनं ग्रहेभ्य उत्तरतः इति संप्रदायः । दक्षि-  
णपश्चिमवायव्योत्तरपूर्वेषु यथाक्रममित्यन्ये ।

राहुमन्ददिनेशानामुत्तरस्यां यथाक्रमम् ।  
गणेशदुर्गा वायुश्च राहुकेत्वोश्च दक्षिणम् ॥  
आकाशमश्विनौ चेति पञ्चैतान्स्थापयेद्विधुः ।  
इति वचनानुसारेणेति भट्टाः रूपनारायणश्च ।

पूजाप्रकारमाह याज्ञवल्क्यः—

यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ।  
गन्धाश्च वलयश्चैव धूपो देयोऽत्र गुग्गुलुः ॥  
मात्स्ये—

धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्ठाद्वितानकम् ।  
शोभनं स्थापयेत्प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम् ॥  
धूपे विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे—

रवेः कुन्दुरुकं धूपं शशिनस्तु घृताक्षताः ।  
भौमे सर्जरसं चैव अगरुं च वुधे स्मृतम् ॥  
सिंहकं गुरवे दद्याच्छुके विल्वागुरु स्मृतम् ।  
गुग्गुलं मन्दवारे तु लाक्षा राहोश्च केतवे ॥  
कुन्दुरुकं सलकीनिर्यासः । सर्जः शालः । सिंहकं इति मध्यदेशे  
प्रसिद्धम् । विल्वागुरु विल्वफलनिर्याससहितमगुरु । । मन्दवारे शनै-  
श्चराय । लाक्षा राहवे केतुभ्यश्च ।

गन्धे विशेषमाह—

दिवाकरकुजाभ्यां हि दापयेद्रक्तचन्दनम् ।  
चन्द्रे च भार्गवे चैव सितवर्णं प्रदापयेत् ॥  
कुङ्कुमेन च संयुक्तं चन्दनं जीवसौम्ययोः ।  
अगरुं चापि कस्तूर्या राहवे त्वर्कजेषु च ॥  
अङ्गदेवतानां तु—  
पुष्पाणि सितवर्णानि चन्दनं च विलेपनम् ।  
एतेषां गुग्गुलुधूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ॥



वासांसि शुक्लानीति संप्रदायः ।

ग्रहवलीनाह—

गुडौदनं रवेर्दद्यात्सोमाय घृतपायसम् ।  
अङ्गारकाय सैयावं बुधाय क्षीरपट्टिके ॥  
दध्यौदनं तु जीवाय शुक्राय च घृतौदनम् ।  
शनैश्चराय कृसरमाजं मांसं च राहवे ॥  
चित्रौदनं च केतुभ्यः सर्वभक्ष्यैरथार्चयेत् ।

अत्र सर्वभक्षैरथार्चयेत् इत्यन्यदपि मोदकादि देयम् इति दामोदर-  
ठक्कुरः । सैयावो गोधूमचूर्णसाधिनो वाटाख्य इत्यपि स एव । तण्डु-  
लमसूरान्नमिति रूपनारायणः । कृसरं तिलतण्डुलं दुग्धसाधितम् ।

चित्रौदनम्—

तिलतण्डुलमिश्रं स्यादजाक्षीरं तु शोणितम् ।  
कर्णनासागृहीतं स्यादेतच्चित्रौदनं स्मृतम् । इति दामोदरः ॥

याज्ञवल्क्यः—

शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।

पूजयन्तो ग्रहानेतौल्लभन्ते सकलं फलम् ॥

यत्तु पृथ्वीचन्द्रोदयादौ वर्णरूपगुणैर्युक्तान्व्याहृत्याऽऽवाहयेत्तु तानि-  
तिवचनात् ॐ भूरादित्यमावाहयामि ॐ भुवः आदित्यमावाहयामि  
ॐ स्वः आदित्यमावाहयामि ॐ मुर्भूवःस्वरादित्यमावाहयामि इति  
व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिरावाह्य, भगवन्नादित्य नक्षत्राधिपते काश्यपगोत्र  
कलिङ्गदेशेश्वर जपापुष्पोपमाङ्गशुते द्विभुज पद्माभयहस्त सिन्दूरवर्ण-  
माल्याम्बरानुलेपन ज्वलन्माणिक्यखचितसर्वाङ्गाभरण भास्वत्तेजोनिधे  
त्रिलोकप्रकाशक त्रिदेवतामयमूर्ते नमस्ते सन्नद्धारुणध्वजपताकोपशोभि-  
तेन सप्ताश्वरथवाहनेन मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छाऽग्निरुद्राभ्यां सहे-  
त्यादिविशेषणैरपि युक्तान्ग्रहान् आवाहयेदिति तन्मूलं विमृश्य कार्यम् ।

वामनग्रन्थे—

आचार्यप्रभृतिभ्यश्च ग्रहार्चनफलं ततः ।

समिदाज्यचरुणां च तिलहोमफलं ततः ॥

ब्रह्मत्वे कुम्भपूजायां चार्चनस्य फलं च यत् ।

लोकपालगणेशाद्यास्तत्र या अङ्गदेवताः ॥



तासां जपफले तद्गृहीयाज्जलपूर्वकम् ।  
ततस्तेभ्यो यथाशक्ति दातव्या दक्षिणा ततः । इति ॥  
इति ग्रहपूजाविधिः ।

अथ पुण्याहवाचनम् ।

त्रिकाण्डमण्डनः—

गर्भाधानादिसंस्कारेष्विष्टापूर्तक्रतुष्वपि ।  
वृद्धिश्चाद्धं पुरा कार्यं कर्मादौ स्वस्तिवाचनम् ॥

व्यासः—

संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्ब्राह्मणान्स्वस्ति वाचयेत् ।  
धर्मकर्मणि मङ्गल्ये सङ्ग्रामेऽद्भुतदर्शने । इति ॥

गृह्यपरिशिष्टे—

स्वस्तिवाचनमृद्धिपूर्तेषु तत्कर्मणश्चान्तयोः कुर्यात् ।

आश्वलायनः—

दैविके तान्त्रिके चादौ ततः पुण्याह इष्यते । इति ॥

तच्च रूपनारायणीये इत्थम् । त्रीनधिकान्ब्राह्मणान्भोजयित्वोदङ्मुखानुपवेश्य वस्त्रादिभिः परितोष्य पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु इति ब्राह्मणान्यजमानः प्राङ्मुखस्त्रिः श्रावयेत् । ततो ब्राह्मणाः ॐ पुण्याहमिति त्रिर्ब्रूयुः । ततः 'स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्ति' इति त्रिःश्रावयेत् । ॐ स्वस्तीति त्रिर्ब्रूयुः । ततः 'ऋद्धि भवन्तो ब्रुवन्तु' इति त्रिःश्रावयेत् । 'ऋद्धयताम्' इति त्रिःप्रतिवचनम् । एतच्च, 'ब्राह्मणानन्नेन परिविष्य पुण्याहं स्वस्ति ऋद्धिरित्योङ्कारपूर्वं त्रिस्त्रिरेकैकामाशिषो वाचयित्वा इत्यादिना बौधायनेनोक्तम् ।

यमः—

पुण्याहवाचनं दैवे ब्राह्मणस्य विधीयते ।

एतदेव निरोङ्कारं कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः । इति ॥

बह्वचगृह्यपरिशिष्टे तु 'अवनिर्कृतजानुमण्डलः कमलमुकुलसदृशमञ्जलिं शिरस्याधाय दक्षिणेन पाणिना स्वर्णपूर्णकलशं धारयित्वा, दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च तेनाऽऽयुःप्रमाणेन पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु । शिवा आपः सन्तु । सौमनस्यमस्तु । अक्षतं चारिष्टं चास्तु ।



गन्धाः पान्तु । सुमङ्गल्यं चास्तु । पुष्पाणि पान्तु । सुश्रियमस्तु । अक्षताः  
 पान्तु । आयुष्यमस्तु । तास्वूलानि पान्तु । ऐश्वर्यमस्तु । दक्षिणाः पान्तु ।  
 आरोग्यमस्तु । दीर्घमायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो  
 वित्तं बहुपुत्रं चायुष्यं चास्तु । यं कृत्वा सर्ववेदयज्ञक्रियाकरणकर्माग्भाः  
 शुभाः शोभनाः प्रवर्तन्ते तमहमोङ्कारमादिं कृत्वा ऋग्यजुःसामाग्नीर्वि-  
 चनं बहुभिमतं समनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुष्यं पुण्याहं वाचयिष्ये ।  
 वाच्यताम् । ॐ त्रिणिषोदा त्रिणिषस्तुरस्य, सविता पश्चातात्, नवो  
 नवो भवति जायमानः, उवा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः इत्येता ऋचः  
 पुण्याहे ब्रूयात् । व्रतनियमतपःस्वाध्यायक्रतुदमदानविशिष्टानां सर्वेषां  
 ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम् । समाहितमनसः स्मः । प्रसीदन्तु  
 भवन्तः । प्रसन्नाः स्मः । शान्तिरस्तु । पुष्टिरस्तु । तुष्टिरस्तु । वृद्धि-  
 रस्तु । अविघ्नमस्तु । आरोग्यमस्तु । आयुष्यमस्तु । शिवं कर्माऽस्तु ।  
 कर्मसमृद्धिरस्तु । धर्मसमृद्धिरस्तु । पुत्रसमृद्धिरस्तु । वनधान्यसमृद्धि-  
 रस्तु । इष्टसमृद्धिरस्तु । अरिष्टनिरसनमस्तु । यत्पापं तत्प्रतिहतमस्तु ।  
 यच्छ्रेयस्तदस्तु । उत्तरे कर्मण्यविघ्नमस्तु । उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धि-  
 रस्तु । उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः प्रवर्तन्ताम् । तिथिकरण-  
 मुद्भूतनक्षत्रसंपदस्तु । तिथिकरणमुद्भूतनक्षत्रग्रहलगाधिदेवताः प्रीयन्ताम् ।  
 तिथिकरणे मुद्भूतनक्षत्रे सग्रहे सदैवते प्रीयेताम् । दुर्गापाञ्चाल्यौ  
 प्रीयेताम् । अग्निपुरोगा विश्वे देवाः प्रीयन्ताम् । इन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः  
 प्रीयन्ताम् । वसिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयन्ताम् । माहेश्वरीपुरोगा  
 उमामातरः प्रीयन्ताम् । अरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम् ।  
 विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम् । ब्रह्मपुरोगाः सर्वे वेदाः प्रीयन्ताम् ।  
 विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम् । माहेश्वरीपुरोगा उमामातरः प्री-  
 यन्ताम् । वसिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयन्ताम् । अरुन्धतीपुरोगा एकप-  
 त्न्यः प्रीयन्ताम् । ऋषयश्छन्दांस्याचार्या वेदा देवा यज्ञाश्च प्रीयन्ताम् ।  
 ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्ताम् । शोभरस्वत्यौ प्रीयेताम् ।  
 अद्वामेधे प्रीयेताम् । भगवती कात्यायनी प्रीयताम् । भगवती माहेश्वरी  
 प्रीयताम् । भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम् । भगवती वृद्धिकरी  
 प्रीयताम् । भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम् । भगवती तुष्टिकरी  
 प्रीयताम् । भगवन्तो विघ्नविनायकौ प्रीयेताम् । भगवान्स्वामी महासे-



नः सपत्नीकः समुतः सपार्षदः सर्वस्थानगतः प्रीयताम् । हरिहरहिर-  
ण्यगर्भाः प्रीयन्ताम् । सर्वा ग्रामदेवताः प्रीयन्ताम् । सर्वाः कुलदेवताः  
प्रीयन्ताम् । हता ब्रह्मद्विषः । हताः परिपन्थिनः । हता अस्य कर्मणो  
विघ्नकर्तारः । शत्रवः पराभवं यान्तु । शाम्यन्तु घोराणि । शाम्यन्तु  
पापानि । शाम्यन्तु वीतयः । शुभानि वर्द्धन्ताम् । शिवा आपः सन्तु  
शिवा ऋतवः सन्तु । शिवा अग्नयः सन्तु । शिवा आहुतयः सन्तु ।  
शिवा ओषधयः सन्तु । शिवा वनस्पतयः सन्तु । शिवा अतिथयः  
सन्तु । अहोरात्रे शिवे स्याताम् । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।  
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् । योगक्षेमो नः कल्पताम् । शुक्राङ्गार-  
कबुधवृहस्पतिशनिराहुकेतुसोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः प्रीय-  
न्ताम् । भगवान्नारायणः प्रीयताम् । भगवान्पर्जन्यः प्रीयताम् । भगवा-  
न्स्वामी महासेनः प्रीयताम् । पुण्याहकालं वाचयिष्ये । वाच्यताम् ।  
उद्गातेन शकुने साम गायसि । याज्यया यजति । यत्पुण्यं नक्षत्रम् ।  
तद्भद्रकुर्वीतोपव्युपम । यदा वै सूर्य उदेति । अथ नक्षत्रं नैति ।  
यावति तत्र सूर्यो गच्छेत् । यत्र जघन्यं पश्येत् । तावति कुर्वीत यत्कारी  
स्यात् । पुण्याह एव कुरुते । तानि वा एतानि यमनक्षत्राणि । यान्येव  
देवनक्षत्राणि । तेषु कुर्वीत यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव कुरुते । मह्यं  
सहकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणायाशीर्वचनमपेक्षमाणायामुक्तं कर्मणे  
पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु इति ब्राह्मणान्प्रार्थयेत् । ॐ पुण्याहम्  
इति विप्रा ब्रूयुः । स्वस्तये वायुमुपत्रवामहै० आदित्य उदयनीयः०  
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः । स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति  
नमस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः । स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु इति । अष्टौ देवा  
वसवः सोम्यासः । चतस्रो देवीरजगाः श्रविष्ठाः । ते यज्ञं पान्तु रजसः  
परस्तात् । संवत्सरीणममृतं स्वस्ति । मह्यमित्यादिपूर्ववत् । स्वस्ति भवन्तो  
ब्रुवन्तु । आयुष्मते स्वस्ति । इति विप्राः । ऋध्याम् स्तोमम्० सर्वाभु-  
द्विमृशुयामिति० ऋध्याम् हव्यैर्नमसोपसद्य । मित्रं देवं मित्रधेयं नो  
अस्तु । अनूराधान् हविषा वर्धयन्तः । शतं जीवेम शरदः सवीराः ।  
त्रीणि त्रीणि वै देवानामृद्धानि । त्रीणि छन्दांसि त्रीणि सवनानि ।  
त्रय इमे लोकाः । ऋध्यामेव तद्वीर्यं एषु लोकेषु प्रतितिष्ठति । मह्यम्  
इत्यादि० ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु । इति विप्रान्प्रार्थयेत् ऋद्धयताम् ।



श्रिये जातः, श्रिय एवैनं० यस्मिन्ब्रह्माध्यजयत्सर्वमेतदमुं च लोक-  
प्रदमुंच सर्वम् । तन्नो नक्षत्रमभिजिद्विजित्य । श्रियं दधात्वहणीय-  
मानम् । अहेवुभ्रिय मन्त्रं मे गोपाय । यमृषयस्त्रयीविदा विदुः । ऋचः  
सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृता सताम् । मह्यं० श्रीरस्त्विति  
भवन्तो ब्रुवन्तु । अस्तु श्रीः । पुण्याहवाचनफलसमृद्धिरस्तु । भगवान्प्र-  
जापतिः प्रीयताम् । इति पुण्याहवाचनम् ।

ततो नीराजनमभिषेकं च यथाशास्त्रं कारयेदिति । पुण्याहवाचनं  
चादिमध्यान्तेषु कार्यम् । 'आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद्वाह्यवा-  
चनम्' इति वचनात् । ततोऽस्मिन्कर्मण्यमुकगोत्रममुकप्रवरममुकशर्माणं  
गुरुं त्वां वृणे इत्याचार्यं वृत्वा ऋग्वेदिनौ द्वौ पूर्वं कुण्डे होमं कर्तुं  
ऋद्विवस्त्वेन त्वामहं वृणे ।

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः ।

अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥

इति प्रत्येकं वृणुयात् ।

सर्वत्र प्रथमं ब्रह्मणस्ततो होतुरिति क्रमः । वृत्तोऽस्मीत्येव प्रति-  
वचनम् ।

यजुर्वेदिनौ दक्षिणे—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः ।

काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव । इति ॥

सामगौ पश्चिमे—

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः ।

भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव । इति ॥

अथर्वणानुत्तरे—

बृहज्जेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः ।

वैशम्पायनगोत्रस्तु ऋत्विक् त्वं मे मखे भव । इति ॥

ततो जापकानाम् । ते च अष्टौ इति कल्पतरौ । चत्वार इति रूप-  
नारायणादयः । एतन्मते अष्टौ ऋत्विजः चत्वारो जापकाः गुरुश्च इति  
त्रयोदश । अष्टौ ऋत्विजोऽष्टौ जापकाः गुरुश्चेति सप्तदश वा । वष्टौ  
ऋत्विजश्चत्वारो जापकाश्चत्वारो द्वारपालकाः गुरुश्चेति वा सप्तदश । एवं  
वरणानन्तरं तत्क्रमेणैवाचार्यादीनां तच्छाखया मधुपर्क इति



संपूज्य मधुपर्केण त्रस्विजः कर्म कारयेत् ।

अपूज्य कारयेत्कर्म किल्बिषैरेव युज्यते ॥

इति वचनात् । ततो यदावधन् इति मन्त्रेण,

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।

तेन त्वामभिवधामि रक्षे मा चल मा चल । इति ॥

अनेन च पीतसूत्रं यजमानतत्पत्नीगुर्वृत्तिगुद्रारपालानां हस्ते रक्षार्थं  
नम्रन्ति मध्ये देशे । ततो गौर्यादिषोडश ब्राह्म्यादिसप्त च मातृः श्रीश्च  
लक्ष्मीर्पूजित्वा स्वाहा प्रज्ञा सरस्वतीति वसोद्धारादेवताश्च संपूज्य  
सपिण्डमपिण्डं वा वृद्धिप्रादं कुर्यात् ।

तत्र रूपनारायणीये विशेषः—

अमौकरणमर्घ्यं चाऽऽवाहनं चावनेजनम् ।

पिण्डप्रादं प्रकुर्वीत पिण्डहीने निवर्तते ॥

तथा—

पिण्डनिर्वापरहितं यत्र प्रादं विधीयते ।

स्वभावाचनलोपोऽस्ति विकिरस्तु न लिप्यते ॥

अक्षय्यं दक्षिणा स्वस्ति सौमनस्यं यथास्थिति । इति ॥

तत्र संक्षिप्य प्रयोगः—

सत्यवसुसंज्ञका विश्वे देवाः । ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यम् । एवं सर्वत्र  
पाद्यम् । मातृपितामहीप्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः  
पाद्यम् । पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः  
पाद्यम् । मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः नान्दीमुखाः सपत्नीकाः  
भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यम् । आचमनम् । सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां  
भूर्भुवः स्वः इदमासनम् । सुखासनम् । नान्दीप्रादं क्षणौ क्रीयेताम् । ॐ  
तथा । प्राप्नुतां भवन्तौ । प्राप्रवावः । मातृपितामहीप्रपितामहीनां नान्दीमु-  
खीनां भूर्भुवः स्वः इदमासनम् । सुखासनम् । नान्दीप्रादं क्षणौ क्रियेताम् ।  
ॐ तथा । प्राप्नुतां भवन्तौ । प्राप्रवावः । पितृपितामहप्रपितामहानां  
नान्दीमुखानां भूर्भुवः स्वः इदमासनम् । सुखासनम् । नान्दीप्रादं क्षणौ  
क्रियेताम् । ॐ तथा । प्राप्नुतां भवन्तौ । प्राप्नवावः । मातामहप्रमातामहवृ-  
द्धप्रमातामहानां सपत्नीकानां नान्दीमुखानां भूर्भुवः स्वः इदमासनम् ।  
सुखासनम् । नान्दीप्रादं क्षणौ क्रियेताम् । ॐ तथा । प्राप्नुतां भवन्तौ ।  
प्राप्नवावः । ततो गन्वादिदानम् । सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य



इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो  
नान्दीमुखीभ्य इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । पितृपितामहप्र-  
पितामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्य इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ।  
मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः पत्नीसहितेभ्य इदं  
गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । ततः परिवेषणं कृत्वा गायत्र्या  
प्रोक्ष्य, 'पृथिवी ते पात्रम्' इति पात्रमालभ्य, सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो  
विश्वेभ्यो देवेभ्यो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तमन्नममृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां  
वृद्धिः । मातृपितामहीप्रपितामहीभ्यो नान्दीमुखीभ्यो युग्मब्राह्मणभो-  
जनपर्याप्तमन्नममृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः । पितृपितामहप्रपिताम-  
हेभ्यो नान्दीमुखेभ्यो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तमन्नममृतरूपेण स्वाहा संप-  
द्यतां वृद्धिः । मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः सप-  
त्नीकेभ्यो युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तमन्नममृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः ।  
'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः' इति पाठः । अनेन नान्दीश्राद्धेन कर्माक्षदेव-  
ताः प्रीयन्तां वृद्धिः । पुरुषसूक्तादिजपः । नान्दीश्राद्धं सुसंपन्नम् । सुप्रोक्षि-  
तमस्तु । शिवा आपः सन्तु । सौमनस्यमस्तु । अक्षतं चारिष्टं चास्तु । नान्दी-  
मुख्यो मातरः पितामहः प्रपितामहः प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखाः पितरः  
पितामहाः प्रपितामहाः प्रीयन्ताम् । नान्दीमुखा मातामहाः प्रमातामहा  
वृद्धप्रमातामहाः प्रीयन्ताम् । ततो गोत्रं नो वर्द्धताम् । वर्द्धता-  
मित्युक्ते दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा  
व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्तु । अन्नं च नो बहु भवेदतिथीश्च लभेमहि ।  
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन' इति संप्रार्थ्य, निप्रैः  
'दातारो वोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च वो मा व्यग-  
मद्बहु देयं च वोऽस्तु । अन्नं च वो बहु भवेदतिथीश्च लभष्म । याचि-  
तारश्च वः सन्तु मा च याचिद्वं कञ्चन' इति प्रत्युक्ते, द्राक्षामलकौस्तुभि-  
ष्कयं वा दक्षिणां दत्त्वा त्रिभ्यो देवाः प्रीयन्ताम्, इति देवे वाचयित्वा,  
वाजे वाजे इति मातृपूर्वं विसृज्य, आमा वाजस्येत्यनुज्जेत् ॥

इति नान्दीश्राद्धम् ।

अथ वास्तुपूजा ।

मात्स्ये—

यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारो भविष्यति ।



वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति । इति ॥

तथा—

वास्तुयज्ञः समुद्दिष्टस्तदाप्रभृति शान्तयः ।

इति ज्ञानरत्नावल्याम् ।

चतुःषष्टिपदं वास्तु देवानां परमं हितम् ।

एकाशीति पदं वास्तु ग्रहाणां तु प्रकीर्त्यते ॥

प्रपञ्चसारे—

कृत्वाऽवनिं समतलां चतुरस्रसंख्या-

मष्टादिकोष्ठकपदां च हि कोणसूत्राम् ।

तस्यां चतुष्पदसमन्वितमध्यकोष्ठे

ब्रह्मा तु साधकवरेण समर्चनीयः । इत्यादि ॥

अत्र प्रयोगः—

मण्डपनिर्कृतिभागे हस्तमात्रां वेदिं कृत्वा तस्यां तत्स्थापिते बस्त्रे वा सुवर्णादिशलाकया नव रेखाः प्राक्पश्चिमायता नव च दक्षिणोद-  
गायताः कृत्वा मध्यकोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य प्रतिकोणं त्रिषु त्रिषु पदेषु  
सूत्रं दद्यात् । तथाच चतुर्विंशतिरर्द्धपदानि संपद्यन्ते । अथ कालादि  
सङ्कीर्त्य 'प्रारोप्सितस्यामुककर्मणः साङ्गतासिद्धयर्थं वास्तुपूजां करिष्ये'  
इति सङ्कल्प्य वास्तुमण्डलस्याग्नेयादिकोणेषु शङ्खचतुष्टयम् ,

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः ।

मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्वलकराः सदा ॥

इति मन्त्रेण निधाय,

अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः ।

तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनसंयुतम् ॥

इत्याग्नेय्यां दत्त्वा नैर्ऋत्यां—

नैर्ऋत्याधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः ।

बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वे गृह्णन्तु मन्त्रितम् ॥

ॐ नमो वायुरक्षेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः ।

बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥

इति वायव्यां दत्त्वेशान्याम्—

रुद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चाऽन्ये तान्समाश्रिताः ।



वलिं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्णन्तु सततोत्सुकाः ॥

इति मन्त्रैः शङ्खपाशैश्च यथाक्रमं माषभक्तवलीन्दत्त्वा शान्तिर्यशोवती कान्तिर्विशाला प्राणवाहिनी । सती च सुमना नन्दा सुभद्रा नवमी मता । इति नव प्रागायतरेखादेवताः पूजयित्वा, हिरण्या सुप्रभा लक्ष्मी-विभूतिर्विमला प्रिया । जया काला विशोका च इति नव दक्षिणोत्तरायतरेखादेवताश्च संपूज्य, मध्ये समस्तव्याहृतिभिर्वास्तुपुरुषमावाह्य, वास्तोष्पते इति मन्त्रेण संपूज्य वलिं च दत्त्वा मध्यपदचतुष्टये वास्तोर्हृदये ब्रह्मणे नम इति ब्रह्माणमावाह्य पूजयित्वा, ॐ ब्रह्मणे नमो वलिं समर्पयामीति पायसादिवलिं दद्यात् । ततः पूर्वपदद्वये दक्षिणस्तने अर्यम्णे नमः, दक्षिणपदद्वये जठरदक्षिणभागे विवस्वते, पश्चिमपदद्वये जठरवामभागे मित्राय, उदरपदद्वये वामस्तने पृथ्वीधराय नमः, आग्नेयकोणसूत्रद्विधाकृतपदोत्तरार्द्धे दक्षिणहस्ते सावित्राय, दक्षिणार्द्धे सवित्रे च । एवं नैर्ऋत्यपदपूर्वार्द्धे वृषणयोर्विवुवाधिपाय, तत्पश्चिमार्द्धे मेद्रे जयन्ताय, वायव्यपदद्वयदक्षिणार्द्धे वामहस्ते राजयक्ष्मणे उत्तरार्द्धे रुद्राय च ईशानपदार्द्धे उरसि अद्भ्यः, दक्षिणार्द्धे मुखे आपवत्साय, ततोऽन्त्यपङ्क्तिगते ईशानपददक्षिणार्द्धे शिरसि शिखिने, तदक्षिणसार्द्धपदे दक्षिणनेत्रे पर्जन्याय, तदक्षिणपदयोर्दक्षिणश्रोत्रे जयन्ताय, दक्षिणपदयोर्दक्षिणांसे कुलिशायुधाय, तदक्षिणयोर्दक्षिणबाहौ सूर्याय, तदक्षिणयोर्दक्षिणबाहावेव सत्याय, तदक्षिणे सार्द्धे दक्षिणकूर्परे भृशाय, तदक्षिणपदार्द्धे दक्षिणप्रबाहौ आकाशाय, तत्पश्चिमार्द्धे दक्षिणप्रबाहावेव वायवे, तत्पश्चिमे सार्द्धे दक्षिणमणिबन्धे पूष्णे, तत्पश्चिमयोर्दक्षिणपार्श्वे वितथाय, पश्चिमयोर्दक्षिणपार्श्वे एव गृहक्षताय, तत्पश्चिमयोर्दक्षिणोरौ यमाय, तत्पश्चिमयोर्दक्षिणजानौ गन्धर्वाय, तत्पश्चिमे सार्द्धे पदे दक्षिणजङ्घायां भृङ्गराजाय, तत्पश्चिमे नैर्ऋत्यपदार्द्धे दक्षिणस्फिजि मृगाय, तदुत्तरार्द्धे पादयोः पितृभ्यः । तदुत्तरे सार्द्धपदे वामस्फिजि दौवारिकाय । तदुत्तरयोर्वामजङ्घायां सुप्रीवाय । तदुत्तरयोर्वामजानौ पुष्पदन्ताय । तदुत्तरयोर्वामोरौ वरुणाय । तदुत्तरयोर्वामपार्श्वे सुराय । तदुत्तरे सार्द्धपदे वामपार्श्वे एव शोषाय । तदुत्तरे वायव्यार्द्धे वाममणिबन्धे पापाय । तत्प्रागर्द्धे वामप्रबाहौ रोगाय । तत्प्राक्सार्द्धे वामप्रबाहावेवाहये । तत्प्राग्व्ये वामकू-



परे मुख्याय, तत्प्राग्वयं वामबाहौ भस्त्राटाय । तत्प्राग्वये वामबाहावेव  
 सोमाय । तत्प्राग्वये वामांसे सर्पाय । तत्प्राग्वये वामश्रोत्रे अदित्यै ।  
 तत्प्राग्वये वामनेत्रे दित्यै । तदुत्तरे वास्तोष्पते इति वास्तोष्पतिम्,  
 ततो मण्डलाद्वहिरीशानादिषु चरक्यै, विदार्यै, पूतनायै, पापराक्षस्यै ।  
 ततः पूर्वादिषु स्कन्दाय, अर्यम्णे, जूम्भकाय, पिलिपिच्छाय । पुनः  
 पूर्वादिषु इन्द्रादीनावाह्य ततो मण्डलादीशाने कलशं संस्थाप्य, तत्र  
 वरुणं, तत्त्वा यामि इत्यावाह्य पूजयेत् । 'यथा मेरुगिरिः शृङ्गं देवाना-  
 मालयः सदा । तथा ब्रह्मादिदेवानां मम यज्ञे स्थिरो भवेत्, इति प्राय-  
 येत् । ततः वदुम्बरादिसमित्तिलाज्यैः स्वतन्त्रस्य ण्डिलेऽष्टाविंशतिरष्टौ वा  
 प्रत्येकं तत्तन्नाममन्त्रैर्हुत्वा वास्तोष्पत इति चतुर्भिश्च ॐ वास्तोष्पते ब्रुवा-  
 स्यूणाम्, इत्यनेन च पञ्च बिल्वफलानि हुत्वा स्विष्टकृदादिपूर्णाहुत्यन्तं  
 कुर्यात् । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसबलिं दत्त्वा 'कृणुष्व पाजः' इति सूक्ता-  
 दिना मण्डपं त्रिसूत्र्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशोदकेन यजमानमभिषिच्य  
 पुनः संपूज्य यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणान्भोजयेदिति । शारदा-  
 तिलके तु होमो नोक्तः । तिलाज्यादिद्रव्याणां विकल्प इति ग्रन्थान्तरे ।

### इति वास्तुपूजा

मात्स्ये—

उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमधिवासनम् । इति ॥

पादो—

उपवासो भवेदेवमशक्तौ नक्तमिष्यते । सद्योऽधिवासनं वाऽथ  
 कुर्याद्यो विकलो नरः । इति । अधिवासनं चैवम् । शुक्लवेषः सपत्नीकः  
 सन्नस्त्रिको यजमानः पूर्णकलशं गृहीत्वा, भद्रं कर्णेभिः इत्यादि-  
 मन्त्रबोधेण मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण प्रविश्य देशका-  
 लादि स्मृत्वा करिष्यमाणैतत्कर्माङ्गतया मण्डपदेवतास्थापनादि करिष्य  
 इति सङ्कल्प्य गणपतिं संपूज्य मण्डपान्तः सर्वतः सर्वपान् विकिरेत् ।  
 तत्र मन्त्राः—

यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा ।

स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।

अर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे । इति ॥



ततः कुशैः पञ्चगव्येन सर्वत्र आपोहिष्टा इति तृचेन प्रोक्षयेत् ।  
ततः स्वस्ति न इति मन्त्रं पठेत् ॥

### अथ द्वारपूजा ।

पूर्वद्वारे द्वारश्रियै नमः ऊर्ध्वं देहल्यै० अथः । वामदक्षिणस्तम्भयो-  
र्गणेशाय० स्कन्दाय नमः । द्वारस्थितकलशद्वये गङ्गायै० यमुनायै० ।  
दक्षिणद्वारे द्वारश्रियै० ऊर्ध्वं देहल्यै० अथः । स्तम्भयोः पुष्पदन्ताय० ।  
कर्पूरिने० । कलशद्वये गोदायै० कृष्णायै० । पश्चिमे द्वारश्रियै० इत्यू-  
र्ध्वम् । देहल्यै० अथः । स्तम्भयोः नन्दिने० चण्डाय० । कलशद्वये  
रेवायै० ताप्यै० । उत्तरे द्वारश्रियै० ऊर्ध्वम् । देहल्यै० अथः । स्तम्भयोः  
महाकालाय० भृङ्गिणे नमः । कलशद्वये वाण्यै० धेन्यै० । इति द्वारपूजा ॥

ततः पूर्वे बहिर्हस्तमात्रे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुदृढनामकं सुशोभन-  
नामकं वा शङ्खाङ्कितं अग्निमीळे इति मन्त्रेण न्यस्य संपूज्य राहु-  
बृहस्पती तत्र न्यसेत्सम्पूजयेच्च । तत्रैकः कलशः स्थाप्यः । तत्र मही  
द्यौः इति भूमिप्रार्थना । ओषधयः सम् इति यवप्रक्षेपः । आजिघ्र  
कलशेषु इति कलशनिधानम् । इमं मे गङ्गे इति जलपूरणम् । गन्वद्रा-  
राम् इति गन्धं प्रक्षिपेत् । या ओषधीः इति सर्वोषधीः । काण्डात्का-  
ण्डात् इति दूर्वाः । अश्वत्थे वः इति पञ्चपलवान् । स्योना पृथिवि इति  
सप्त भृदः । याः फलिनीः इति फलम् । स हि रत्नानि इति रत्नम् ।  
हिरण्यरूपः इति हिरण्यम् । युवा सुवासाः इति वस्त्रादिना वेष्टयेत् ।  
पूर्णा दर्वि इति धान्यपूर्णपात्रमुपरि निदध्यात् । तत्र ध्रुवावाहनं पूजनं च  
ध्रुवाय नमः ध्रुवमा० । ततो दक्षिणे औदुम्बरं प्लाक्षं वा सुभद्रं विकटं वा  
चक्राङ्कितं तोरणम्, इषे त्वोज्जं त्वा इति निधाय चन्दनादिचर्चितं  
कृत्वा सूर्यं अङ्गारकं च तत्र न्यसेत् । ततः पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा  
तत्र धरामावाहार्चयेत् । ततः पश्चिमे प्लाक्षमौदुम्बरं वा सुकर्मसु  
भीमं वा गदाङ्कितं तोरणं अग्न आयाहि इति न्यस्य चन्दनादिना  
चर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत् । ततः पूर्ववत्कलशं स्थाप-  
यित्वा तत्र वाक्पत्यावाहनपूजनादि । तत उत्तरे नैयप्रोधमाश्वत्थं  
पालाशं वा सुहोत्रं सुप्रभवपद्माङ्कितं तोरणं शनो देवीरिति निधाय  
पूजितं कृत्वा सोमं केतुं शनिं च तत्र न्यसेत् । ततः कलशं स्थाप-



यित्वा तत्र विघ्नेशस्य आवाहनपूजनादि । ततः पूर्वद्वारे द्वारशाखा-  
द्वये कलशद्वयं दध्यक्षतादियुक्तं पूर्ववत्स्थापयेत् । ऐरावतं कलशद्वये  
न्यस्यार्चयेत् । तत्र पूर्वस्मिन् ऋग्वेदिनावृत्विजौ द्वावेकं वा शान्तिसू-  
क्तजपार्थत्वेन त्वामहं वृण इति प्रत्येकं वृत्वा—ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः  
सोमदैवतः । अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु । इति वृत्वाऽग्नि-  
मीले इत्यादिना पूजयेच्च । ततः—एह्येहि सर्वाऽमरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो  
वज्रधराऽमरेश । संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाऽध्वरं नो भगव-  
न्नमस्ते । भो इन्द्र, इहाऽऽगच्छेह तिष्ठ इतीन्द्रं साङ्गं सपरिवारं  
सायुधं सशक्तिकं द्वारकलशे आवाह्य, त्रातारमिन्द्रमिति पूजयित्वा,  
आशुः शिशान इति मन्त्रेण पीतां पताकां पीतं ध्वजं च समुच्छ्रयेत् ।  
ततः, ऐरावतस्थं पीतवर्णं सहस्राक्षं किरीटिनं । दक्षिणवामहस्तस्थवज्रोत्प-  
लमिन्द्रं ध्यात्वा, इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः । यतयज्ञा-  
धिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः । इति नत्वा, इन्द्राय साङ्गाय सपरि-  
वाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं मापभक्तवलिं समर्पयामि, इति बलिं  
दद्यात् । तत आचम्याऽऽग्नेयकोणे गत्वा पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा, तत्र  
पुण्डरीकममृतं च संपूज्य—एह्येहि सर्वाऽमरहव्यवाह मुनिप्रवरैरभि-  
ष्टुतोऽभिजुष्ट । तेजोवता लोकगणेन साङ्गं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्त । भो  
अग्ने इहागच्छेह तिष्ठ इति साङ्गादिकमग्निं कलशे आवाह्य, त्वंतो अग्ने  
इत्यग्निं संपूज्य, अग्निं दूतमिति रक्तां पताकां रक्तं ध्वजं चच्छ्रयेत् ।  
ततः, छागस्थं रक्तं दक्षिणवामकरधृतशक्तिकमण्डलं यज्ञोष्ठीतिनमग्निं  
ध्यात्वा—आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः । धूमकेतुरसोऽध्यक्षस्तस्मै  
नित्यं नमो नमः । इति नत्वा, अग्रये साङ्गाय इत्यादि एतं मापभक्तवलिं  
समर्पयामि, इति बलिं दद्यात् । ततः कृताचमनो दक्षिणे गत्वा प्रति-  
द्वारशाखं पूर्ववत्कलशद्वयं स्थापयित्वा वामनं द्विगजं तत्रार्चयेत् ।  
ततो यजुर्वेदिनौ द्वावेकं वा दक्षिणद्वारे शान्तिसूक्तजपत्वेन त्वां वृणे  
इत्युक्त्वा—कातराक्षो यजुर्वेदस्वैष्टुभो विष्णुदैवतः । काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र  
ऋत्विक् त्वं मे मखे भव । इति प्रत्येकं संप्राथ्म्यं, इषे त्वोर्जे त्वा इति  
पूजयेत् । ततः—एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वाऽमरैरर्चितधर्ममूर्ते ।  
शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते । भो यमेहाग-  
च्छेह तिष्ठ इति साङ्गादिं यममावाह्य, यमाय सोममिति संपूज्य कृष्णां



पताकां कृष्णं ध्वजं चायं गौरित्युच्छ्रयेत् । ततो महिषारूढं धृतदण्ड-  
पाशदक्षिणवामकरमञ्जनपर्वततुल्यरूपमग्निसमलोचनं यमं ध्यात्वा,  
महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं  
प्रतिगृह्यताम् । इति नत्वा, साङ्गाय यमायैतं माषभक्तवलिं समर्पयामि,  
इति बलिं दद्यात् । तत आचम्य नैर्ऋत्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा  
कुमुदगजं दुर्जयं च संपूज्य—एहोहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवे-  
तालपिशाचसङ्घैः । ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्न-  
मस्ते । भो निर्ऋते इहागच्छेह तिष्ठ इति साङ्गमावाह्य, असुन्वन्त-  
मिति संपूज्य नीलां पताकां नीलं ध्वजं च, मोषुणः इत्युच्छ्रित्य, नरा-  
रूढं खड्गहस्तं नीलवर्णं महाबलं महाकायं बहुराक्षसयुतं निर्ऋतिं  
ध्यात्वा—निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकपावनम् । आवाहयामि  
यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् । इति नत्वा, साङ्गाय निर्ऋतये एतं  
माषभक्तवलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । तत आचम्य पश्चिमे गत्वा  
प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं निधायाञ्जनदिग्गजं न्यस्यार्चयेत् । ततः साम-  
गावृत्तिजौ ऋत्विजं वा वृत्वा, पश्चिमद्वारे शान्तिसूक्तजपार्थत्वेन त्वां  
वृणे इत्युक्त्वा—सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदेवतः । भारद्वा-  
जस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुर्विति प्रार्थयित्वा, अग्नयाहि इति  
प्रार्थ्यततः—एहोहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः ।  
त्रिधाधरेन्द्राऽमरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते । इत्युक्त्वा  
भो वरुण इहागच्छेह तिष्ठ इति साङ्गं वरुणमावाह्य, तत्त्वा यामि  
इति संपूज्य श्वेतां पताकां ध्वजं च इमं मे वरुण इत्युच्छ्रित्य, मकरस्थं  
पाशहस्तं किरीटिनं श्वेतवर्णं वरुणं ध्यात्वा—पाशहस्तं च वरुणं  
यादसां पतिमीश्वरम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् वरुणाय नमो नमः  
इति नत्वा साङ्गाय वरुणायैतं माषभक्तवलिं समर्पयामीति बलिं  
दद्यात् । तत उपस्पृश्य वायव्यां गत्वा पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा पुष्पदन्तं  
सिद्धार्थं च तत्र पूजयित्वा—एहोहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह  
सिद्धसङ्घैः । प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते । भो  
वायो इहाऽऽगच्छेह तिष्ठ इति साङ्गादिं वायुमावाह्य, तत्र वायवृतस्यत  
इति संपूज्य, वायोः शतं इति धूम्रां पताकां ध्वजं चोच्छ्रित्य, मृगा-  
रूढं चित्राम्बरधरं युवानं वरध्वजधरं दक्षिणवामहस्तं वायुं ध्यात्वा,



वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवद्वतिम् ।  
 आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥  
 अनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि ।  
 तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि ते ॥

इति नत्वा साङ्गाय वायवे एतं माषभक्तवर्णिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात् । तत आचम्योत्तरे गत्वा प्रतिशाखं कलशद्वयं स्थापयित्वा सार्वभौमं दिग्गजं न्यस्य पूजयित्वा अथर्वविदौ ऋत्विजौ ऋत्विजं वा वृत्वा उत्तरद्वारे शान्तिसूक्तजपार्थत्वे नाहं त्वां वृणे इति उक्त्वा,

वृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः ।  
 वैशम्पायन त्रिप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥

इत्युक्त्वा प्रार्थ्य, शन्नो देवीरिति पूजयेत् ।

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां  
 विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।  
 सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव  
 गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

भोः सोम इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिं सोममावाह्य, वयं सोम इति संपूज्य हरितां पताकां ध्वजं चाप्यायस्वेति न्यस्य, नरयुतपुष्पक-विमानस्थं कुण्डलकेयूरहारशोभितं वरदगदाधरदक्षिणवामहस्तं मुकुटिनं महोदरं स्थूलकायं ह्रस्वं पिङ्गलनेत्रं पीतविग्रहं शिवसखं विमानस्थं कुबेरं ध्यात्वा ।

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः ।

तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः ॥

इति नत्वा साङ्गाय सोमायैतं माषभक्तवर्णिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । तत ईशान्यां गत्वाऽऽचम्य पूर्ववत्कलशं संस्थाप्य सुप्रतीकनामानं दिग्गजं मङ्गलं च तत्र पूजयित्वा,

एह्येहि विश्वेश्वर नखिशूल-  
 कपालखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।  
 लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्धयै  
 गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥



भो ईशानेहागच्छेह तिष्ठेति तमावाह्य, तमीशानमिति संपूज्य, श्वेतां सर्ववर्णां वा पताकां ध्वजं च, 'अभि त्वा देव सधितः' इत्युच्छ्रित्य, वृषारूढं वरदत्रिशूलयुतदक्षिणवामहस्तद्वयं त्रिनेत्रं शुद्धस्फटिकवर्णमीशानं ध्यात्वा ।

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम् ।

आवाहयामि यज्ञेऽग्निम् पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्ल ईश्वरः ।

शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा साङ्गायेशानायैतं मापभक्तवर्लि समर्पयामीति वर्लि दद्यात् । तत आचम्यशानपूर्वयोर्मध्ये गत्वा ।

एहोहि पातालधरामरेन्द्र

नागाङ्गनाकिञ्जरगीयमान ।

यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घ-

रनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥

भो अनन्त इहाऽऽगच्छेह तिष्ठेति साङ्गमनन्तमावाह्य, 'आयं गौः' इति संपूज्य, मेघवर्णां श्वेतां पताकां ध्वजं च 'आयं गौः' इत्युच्छ्रित्य,

अनन्तं शमनासीनं फणसप्तकमण्डितम् ।

पञ्चशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षिणकरद्वयं चक्रगदाधरोर्ध्वाधोवामकरद्वयं नीलवर्णमनन्तं ध्यात्वा,

योऽमावतन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।

पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा साङ्गायाऽनन्तायैतं मापभक्तवर्लि समर्पयामीति वर्लि दद्यात् । तत आचम्य नैर्ऋतपश्चिमयोर्मध्ये गत्वा,

एहोहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र

लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।

सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो

विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

भो ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठेति ब्रह्माणमावाह्य, 'ब्रह्मजज्ञानम्' इति संपूज्य, रक्ता पताकां ध्वजं च, 'ब्रह्मजज्ञानम्' इत्युच्छ्रित्य चतुर्मुखं



हंसारूढमक्षमालाकुशमुष्टिधरोर्ध्वाबोदक्षिणकरद्वयं सुवकमण्डलधरोर्ध्वा-  
धोवामकरद्वयं श्मश्रुलं जटिलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा,

पद्मयोनिश्चतुर्भुविर्देवावासः पितामहः ।

यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा साङ्गाय ब्रह्मणे एतं सापभक्तवलिं समर्पयामीति वलिं  
दद्यात् । 'नैर्ऋत्यपश्चिमान्तराले अनन्तबलिदानम्, ईशानपूर्वान्तराले  
ब्रह्मबलिदानं च' इति रूपनारायणः । तत आचम्य मण्डपमध्येऽत्युच्च-  
दण्डो दशहस्तदीर्घस्त्रिहस्तविस्तृतः पञ्चहस्तदीर्घोहस्तविस्तारो वा महा-  
ध्वजः किङ्किण्यादियुक्तः इन्द्रस्य वृष्ण इति स्थाप्यः । तत्रैव ब्रह्मपूजनं  
च । ततो मण्डपपोडशस्तम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, वंशेषु किमरे-  
भ्यो नमः, पृष्ठे पन्नगेभ्यो नम इत्यर्चयेत् । ततः पूर्वभागे उपलिप्तभू-  
मावुपविश्य-

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।

ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥

सर्वे ममाऽध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालो गणैः सह ॥

रक्षन्तु मण्डपं सर्वे व्रन्तु रक्षांसि सर्वतः ।

इति पठित्वा त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्त्रैलोक्यस्थे-  
भ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । 'ब्रह्मणे नमः विष्णवे० शिवाय० देवेभ्यो०  
दानवेभ्यो० गन्धर्वेभ्यो० राक्षसेभ्यो० पन्नगेभ्य० ऋषिभ्यो० मनु-  
ष्येभ्यो० गोभ्यो० देवमातृभ्यो नमः' इति प्रत्येकं संपूज्य भूमौ साप-  
भक्तवलिं दद्यात् । ततो यजमानः सर्वैर्ऋत्विग्भिः सह प्रक्षालितपादपाणिः  
प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दक्षिणद्वारपश्चिमभागे उपविश्य गुर्वादयो  
यथाविहितं कर्म कुरुष्वमिति वदेत् । प्रतिकुण्डमेकैकः कलशः स्थाप्य  
ऋत्विग्भिरिति केचित् । गुरुणा स्थाप्य इत्यन्ये । तत ऋग्वेदा-  
दिक्रमात्प्रागादिकुण्डेषु ऋत्विजोऽग्निं स्थापयेयुः । ततो 'गुरुर्यजमा-  
नान्वितो ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डलदेवताः स्थापयेत्' इति पित्ता-  
महचरणाः । यथा अद्यहेत्यादि मण्डलदेवतास्थापनं करिष्ये इति



सङ्कल्प्य स्थापयेत् । तत्र मध्ये ब्रह्माणं 'ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो  
 ब्रह्मा त्रिष्टुप् । ब्रह्मस्थापने पूजने च विनियोगः' एवमुत्तरत्र । 'ॐ ब्रह्म-  
 जज्ञानम्' तत उदीचीमारभ्य वायवीपर्यन्तं कुवेरादीन् वाय्वन्तानष्टौ  
 लोकपालान् । तत्र आप्यायस्व गौतमः सोमो गायत्री । ॐ आप्या-  
 यस्व । अभि त्वाऽजीगर्तः शुनःशेष ईशानो गायत्री । ॐ अभि त्वा देव  
 सवितः । इन्द्रं वो मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री । ॐ इन्द्रं वो विश्वतः ।  
 अग्निं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री । ॐ अग्निं दूतं वृणीमहे । यमाय  
 सोमं यमो यमोऽनुष्टुप् । ॐ यमाय सोमम् । मोषुणो वोरः काण्वो  
 निर्ऋतिर्गायत्री । ॐ मोषुणः । तत्त्वा यामि शुनःशेषो वरुणस्त्रि-  
 ष्टुप् । ॐ तत्त्वा यामि । वायोः शतं गौतमो वामदेवो वायुरनुष्टुप् ।  
 ॐ वायोः शतम् । वायुसोममध्येऽष्टौ वसून् । जमया अत्र मैत्रावरुणो  
 वसिष्ठो वसवस्त्रिष्टुप् । ॐ जमया अत्र । सोमेशानमध्ये एकादश-  
 रुद्रान् । आ रुद्रासः श्वावाश्च एकादश रुद्रा जगती । ॐ आरु-  
 द्रासः । ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशादित्यान् । त्यान्तु सामदो मत्स्यो द्वाद-  
 शादित्या गायत्री । ॐ त्यान्तु क्षत्रियान् । इन्द्राग्निमध्ये अश्विनौ,  
 अश्विना राहूगणो गौतमोऽश्विनावुष्णिक् । ॐ अश्विनावर्तिः । अग्नि-  
 यममध्ये विश्वेदेवान् सपैतृकान् । ॐ मासो मधुच्छन्दा विश्वेदेवा  
 गायत्री । ॐ मासः । यमनिर्ऋतिमध्ये सप्त यक्षान् । अभित्यं वामदेवः  
 सप्तयक्षाः प्रकृतिः । ॐ अभित्यं देवं सवितारमोण्योः कविकृतुमर्चामि  
 सत्यसवः रत्नयामभिप्रियं मर्ति कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदित्यु-  
 तत्सवीमनि हिरण्यपाणिरभिमीत मुक्तुः कृपास्वः । निर्ऋतिवरुण-  
 मध्ये भूतनागान् । आयं गौः सार्षपाङ्गी सर्पा गायत्री । ॐ आयं  
 गौः । वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः । अप्सरसामैतश्च ऋष्यशृङ्गो  
 गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्टुप् । ॐ अप्सरसां गन्धर्वाणाम् । ब्रह्मसोममध्ये  
 स्कन्दनन्दीश्वरशूलमहाकालान् । कुमारं कुमारः स्कन्दस्त्रिष्टुप् ।  
 ॐ कुमारं माता । ऋषभं ऋषभो वैराजो ऋषभोऽनुष्टुप् । ॐ ऋषभं मा ।  
 कद्रुद्रायेति वोरः कण्वः शूलमहाकालौ गायत्री । ॐ कद्रुद्राय० ।  
 ब्रह्मेशानमध्ये दक्षादीन्सप्तगणान् । अदितिलोकयोबृहस्पतिर्दक्षोऽनु-  
 ष्टुप् । ॐ अदितिर्ह्यजनिष्ट । ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गा विष्णुं च । ताम-  
 भिवर्णा सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् । ॐ तामभिवर्णाम्० । इदं विष्णुर्मेधाति-



थिर्विष्णुर्गायत्री । ॐ इदं विष्णुः । ब्रह्माग्निमध्ये स्वयाम् । उदीरतां  
 शङ्खस्वयान्निष्ठुम् । ॐ उदीरताम् ० सूनृताः । ब्रह्मयममध्ये मृत्युरो-  
 गान् । परं मृत्योः सङ्कुसुको मृत्युरोगान्निष्ठुम् । ॐ परं मृत्यो अनु-  
 परेहि । ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये गणपतिम् । गणानां त्वा गृत्समदो गण-  
 पतिर्जगती । ॐ गणानां त्वा । ब्रह्मवरुणमध्ये अपः । शंनोऽम्बरीष  
 सिन्धुद्वीप आपो गायत्री । ॐ शन्नो देवीः । ब्रह्मवायुमध्ये मरुतः ।  
 मरुतो यस्य रातूगणो गौतमो मरुतो गायत्री । ॐ मरुतो यस्य ।  
 ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाथः पृथ्वीम् । स्योना मेधातिथिर्भूमिर्गा-  
 यत्री । ॐ स्योना पृथिवि । तत्रैव गङ्गादिनद्यः । इमं मे सिन्धुक्षित्यै-  
 यमेधो गङ्गायमुत्तासरस्वत्यो जगती । ॐ इमं मे गङ्गे यमुने । तत्रैव सप्त  
 सागरान् । धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च । यदापो  
 अधन्या वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । मयि वायो  
 मोषधीर्हिंसीरतो विश्वयचा भूस्वेतो वरुण नो मुञ्च । तदुपरि मेरु  
 नाम्ना । बाह्ये सोमादिसमीपे क्रमेणाऽऽयुधानि । गदां त्रिशूलं वज्रं  
 शक्तिं दण्डं खड्गं पाशम् अङ्कुशम् । तद्बाह्ये उत्तरादितः । गौतमं  
 भरद्वाजं विश्वामित्रं कश्यपं जमदग्निं वसिष्ठम् अत्रिम् अरुन्धतीम् ।  
 तद्बाह्ये पूर्वादि ऐन्द्रीं कौमारीं ब्राह्मीं वाराहीं चामुण्डां वैष्णवीं माहे-  
 श्वरीं विनायकीम् इत्यष्टौ शक्तयः । एताः प्रतिष्ठाप्य प्रत्येकं सह वा  
 पूजयेत् । ततस्तस्यामेव वेद्यां वस्त्रलिखितवक्ष्यमाणमण्डलेषु आदित्या-  
 दिदेवताः स्थापयेत्पूजयेच्च । 'अस्मिन्कर्मणि ग्रहादिस्थापनं पूजनं च  
 करिष्ये' इति सङ्कल्प्य, प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः । परमात्माऽग्निर्देवता  
 देवी गायत्री छन्दः । व्याहृतीनां क्रमेण जमदग्निभरद्वाजभृगव ऋषयः ।  
 अग्निवायुमूर्त्या देवताः । देवी गायत्री देव्युष्णिग्कदैवीवृहत्त्यश्छन्दांसि  
 सूर्यावावाहने विनियोगः । केचित्तत्तन्मन्त्रानप्यावाहने आहुः । तत्र  
 ग्रहपीठमध्ये वर्तुले प्राङ्मुखं सूर्यं रक्तपुष्पाश्रितैः । आकृष्णेन हिरण्यस्तूपः  
 सविता त्रिष्ठुम् । सूर्यावाहने विनियोगः । 'ॐ आकृष्णेन रजसा' ।  
 'ॐ भूर्भुवः स्वः' कलिङ्गदेशोद्भव काश्यपसगोत्र सूर्य इहागच्छेह  
 तिष्ठेत्यावाह्य, इह तिष्ठेति स्थापयेत् । एवं सर्वत्र मन्त्रान्ते व्याहृती-  
 रुक्त्वा, 'इहागच्छेह तिष्ठेति' स्थापयेत् । तत आग्नेये चतुरस्रे प्रत्यङ्मुखं



सोमं श्वेतपुष्पाक्षतैः । आप्यायस्व गौतमः सोमो गायत्री । सोमा-  
वाह० । ॐ आप्यायस्व० यमुनातीरोद्भव आत्रेयसगोत्र सोम०  
ततो दक्षिणे त्रिकोणे दक्षिणामुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः । अग्निर्मूर्द्धा  
विरूपोऽङ्गारको गायत्री० । ॐ अग्निर्मूर्धा० अवन्तीसमुद्भव भारद्वा-  
जसगोत्र भौम० । तत ईशाने बाणाकारे बुधमुदङ्मुखं पीतपुष्पाक्षतैः ।  
उदबुद्धध्वं बुधः सौम्यो बुधस्त्रिष्टुप्० । ॐ उदुध्यध्वं० मगधदेशोद्भव  
आत्रेयसगोत्र बुध० । तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे उदङ्मुखं बृहस्पतिं  
पीतपुष्पाक्षतैः । बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप्० । ॐ बृहस्पते०  
सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र बृहस्पते० । ततः पूर्वे पञ्चकोणे प्राङ्मुखं  
शुकं शुक्लपुष्पाक्षतैः । शुकः पाराशरः शुको द्विपदा विराद० । ॐ शुकः  
शुशु० । भोजकदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक० । ततः पश्चिमे धनुषि  
प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः । शमग्निरिर्विदिः शनिरुष्णिक्० ।  
ॐ शमग्नि० सौराष्ट्रज काश्यपसगोत्र शनैश्चर० । ततो नैऋत्ये शूर्पा-  
कारे दक्षिणामुखं राहुं कृष्णपुष्पाक्षतैः । कया नो वामदेवो राहुर्गा-  
यत्री राह्वावाहने० । ॐ कयानश्चित्र० राठिनापुरोद्भव पैठीनसि-  
सगोत्र राहो० । ततो वायव्ये ध्वजाकारे दक्षिणामुखं केतुं धूम्रपु-  
ष्पाक्षतैः । केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री० । ॐ केतुं कृष्ण० । अन्त-  
र्वेदिसमुद्भव जैमिनिसगोत्र केतो० । सर्वे वा आदित्याभिमुखाः ॥

### अथाऽधिदेवताः ।

श्वेतपुष्पाक्षतैः क्रमात्सूर्यादीनां दक्षिणतः स्थाप्याः । 'त्र्यम्बकं  
वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप्' । विनियोगः सर्वत्र ज्ञेयः । ॐ त्र्यम्बकम् ।  
ॐ भूर्भुवः स्वः ईश्वरः 'गौरीमिमाय दीर्घतमा उमा जगती०' ।  
सोमदक्षिणे० 'ॐ गौरीमिमाय०' । 'यदकन्दो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रि-  
ष्टुप्' । 'ॐ यदकन्दः०' । विष्णोर्दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप् 'ॐ विष्णो-  
र्नुकं०' । ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् । 'ॐ ब्रह्मज-  
ज्ञानं०' । इन्द्रं वो मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री 'ॐ इन्द्रं वो०' ।  
'यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्टुप्' 'ॐ यमाय सोमं०' । मोषुणो  
घोरः काण्वः कालो गायत्री 'ॐ मोषुणः परा०' । उषोवाजं स्कण्वश्चि-  
त्रगुप्तो बृहती 'ॐ उषोवाजं०' । एवमेव शुक्लपुष्पाक्षतैर्ग्रहाणां वामतो  
मन्त्रान्ते व्याहृतीरुचार्थं 'इहाऽऽगच्छेह तिष्ठेति' चोक्त्वा प्रत्यधिदे-



वताः स्थापयेत् । 'अग्निं काण्वो मेधातिथिरभिर्गायत्री०' । 'ॐ अग्निं दूतम्०' । 'अप्सु मे मेधातिथिरापोऽनुष्टुप्' । 'ॐ अप्सुमे०' । 'स्योना मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री' । 'ॐ स्योना पृथिवि०' । 'इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री' । 'ॐ इदं विष्णुः०' । 'इन्द्रश्रेष्ठानि गृत्समद इन्द्रस्त्रिष्टुप्' । 'ॐ इन्द्रश्रेष्ठानि०' । 'इन्द्राणीं वृषाकपिरिन्द्राणी पङ्क्तिः' । 'ॐ इन्द्राणीमासु०' । 'प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप्' । 'ॐ प्रजापते०' । 'आयं गौः सारपराज्ञी सर्पा गायत्री०' । 'ॐ आयं गौः पृथ्वि०' । 'ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्' । 'ॐ ब्रह्मजज्ञानं०' । ततः शुक्लपुष्पाक्षतैर्विनायकादीन् पञ्च । 'गणानां त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती०' । 'ॐ गणानां त्वा०' राहोरुत्तरतो विनायकम् । 'जातवेदसे कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप्०' । शनेरुत्तरतो दुर्गाम् । 'तव वायोव्यश्वा वायुर्गायत्री०' । 'ॐ तव वायवृतस्पते०' । रवेरुत्तरतो वायुम् । एतान् मन्त्रान् पठन्ति सांप्रदायिकाः । तत्र केषुचिन्मन्त्रेषु मूलं चिन्त्यम् । 'आदित्यप्रत्नस्य वत्स आकाशो गायत्री०' । 'ॐ आदित्यप्रत्नस्य०' । राहोर्दक्षिण आकाशम् । 'एषो उषा प्रस्कण्वोऽश्विनौ गायत्री०' । 'ॐ एषो उषा०' । 'अश्विनाविहागच्छतमिह तिष्ठतम्' इति केतोर्दक्षिणेऽश्विनौ । 'एतानि विनायकादिस्थानानि' चिन्तामणौ । 'विनायकादीन्पञ्च उत्तरत एवेति संप्रदायः' इति । 'द्वात्रिंशदेवताः' इति रूपनारायणादयः । हेमाद्रौ तु लोकपालादीनामपि सूर्याऽभिमुखानां दिक्षु स्थापनमुक्तम् । तद्यथा—'इन्द्रं विश्वा जेता माधुच्छन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप्०' । 'ॐ इन्द्रं विश्वा०' । इन्द्र इहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वं इन्द्रमेवमुत्तरत्र 'अग्निं काण्वो मेधातिथिरभिर्गायत्री०' । 'ॐ अग्निं दूतं०' । 'यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्टुप्०' । 'ॐ यमाय सोमं' । 'मोषुणो घोरः काण्वो निर्ऋतिर्गायत्री०' । 'ॐ मोषुणः परा०' । 'त्वं नो अग्ने वामदेवो वरुणस्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ त्वं नो अग्ने०' । 'तव वायो व्यश्वा वायुर्गायत्री०' । 'ॐ तव वायवृतस्पते०' । 'सोमो धेनुं गौतमः सोमस्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ सोमो धेनुं०' । 'तमीशानं गौतम ईशानो जगती०' । 'ॐ तमीशानं०' । 'सहस्रशीर्षा नारायणोऽनन्तोऽनुष्टुप्०' । 'ॐ सहस्रशीर्षा०' । ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम् ।



वस्वाद्येकादश देवताः ।

७७

‘ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्०’ । ‘ॐ ब्रह्मजज्ञानं०’  
नैर्ऋत्यथश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणम् ।

अथ वस्वाद्येकादश देवताः ।

‘अमया अत्र मैत्रावरुणो वसिष्ठो वसवस्त्रिष्टुप्०’ । ‘ॐ अमया अत्र०’ ।  
इन्द्राग्निमध्ये ध्रुवाऽध्वरसोमावनिलानलप्रत्यूषप्रभासाख्यानष्टौ वसून् ।  
‘त्यानु सामदो मत्स्यो द्वादशादित्या गायत्री०’ । ‘ॐ त्यानुक्षत्रियां०’  
इन्द्रेक्षानमध्ये धात्र्यमभित्रवरुणांशभर्गेन्द्रविवस्वत्पूषर्जन्यत्वष्टृजघन्या-  
जवन्ययविष्ठाख्यान् द्वादशादित्यान् । ‘आरुद्रासः त्रयावाश्व एका-  
दश रुद्रा जगती०’ । ‘ॐ आरुद्रासः०’ अग्निमममध्ये वीरभद्रशस्त्रमुम-  
हाशयायुतगिरिशऽजैकपादहिर्बुध्न्याऽपराजितपिनाकिमुवनाधीश्वरवि-  
त्पतिकपालिस्थभगवद्भगाख्यान् एकादश रुद्रान् । ‘गौरीरिममा  
दीर्घतमा गौर्यादयो जगती’ । ‘ॐ गौरीमिमाय०’ । ‘गौरीपद्मा-  
शचीमेधासावित्रीविजयाजयादेवसेनास्वधास्वाहामातृलोकमातृधृतिपुष्टि-  
तुष्टात्मकुलदेवताख्याः षोडश मातृः । निर्ऋतिवरुणमध्ये मातृः ।  
तत्रैव गणपतिं, । ‘गणानां त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती०’ ।  
‘ॐ गणानां त्वा०’ । ‘मरुतो यस्य राहूगणो गौतमो मरुतो गायत्री०’ ।  
‘ॐ मरुतो यस्य’ । वायुसोममध्ये आवहप्रवहोद्बहसंवहविवहपरावहप-  
रिवहानिलाख्यान् सप्त मरुतः । वेद्यामेव यथावकाशं ब्रह्मादीन्  
पञ्च स्थापयेत् । ‘ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्०’ ।  
‘ॐ ब्रह्मजज्ञानं०’ । ‘इदं विष्णुर्मेधातिथिरच्युतो गायत्री०’ । ‘ॐ इदं  
विष्णु०’ कद्रुद्राय घोरः कण्व ईशानो गायत्री० । ‘ॐ कद्रुद्राय०’  
‘अग्निरस्मि विश्वामित्रोऽर्कस्त्रिष्टुप्०’ । ‘ॐ अग्निरस्मि०’ । ‘वनस्प-  
गर्गो वनस्पतिस्त्रिष्टुप्०’ । ‘ॐ वनस्पते शत०’ एवं प्रतिष्ठाप्य पूजये-  
त्षोडशोपचारैः । पूजा च तत्तद्गर्गेर्गन्धपुष्पवासोभिस्तत्तन्मन्त्रैः ।  
एवं सूर्यादिद्वात्रिंशदशदिक्पालान्ब्रह्मादीनेकादश चावाह्य संस्थाप्य  
पञ्चभिः षोडशभिर्वोपचारैः संपूजयेत् । तत्र वस्त्राणि ग्रहवर्णानि ।  
रविभौमयो रक्तचन्दनम् । चन्द्रशुक्रयोः श्वेतचन्दनम् । बुधगुर्वोः  
कुङ्कुमयुतम् । शनिराहुकेतूनां कृष्णागुरुम् । पुष्पाणि तद्गर्गानि ।  
धूपास्तु, सहक्रीनिर्यासम् । धृताक्षयवान् रालमगुरुम् । सिंहकम् ।



वित्त्वयुतागुरुम् । गुग्गुलुम् । लाक्षाम् । क्रमाद् गायत्र्या दत्त्वा,  
 'उद्दीप्यस्व' इति सर्वेभ्यो दीपान् दत्त्वा गुडौदनम्, पायसम्,  
 नीवारौदनं, क्षीरयुतपष्टिकौदनं, दध्यौदनं, घृतौदनम्, तिलमाषयु-  
 तमौदनम्, मांसौदनम्, चित्रौदनं च क्रमान्निवेदयेत् । अधिदेव-  
 तादिभ्यस्तु वासो गन्धपुष्पाणि श्वेतानि गुग्गुलुर्धूपः नैवेद्यं पायसादि  
 यथालाभम् । सूर्यादिद्वाविंशतामन्येषां च सर्वेषां पूजापदार्थानुसम-  
 येनैव । ततो ग्रहवेदीशान्यां कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणमावाह्यं संपूज्या-  
 भिमन्त्रयेत् । तद्यथा—

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।  
 मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥  
 कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।  
 ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥  
 अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ।  
 अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥  
 आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।  
 देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोद्भवौ ॥  
 उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भं विधृतो विष्णुना स्वयम् ।  
 त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ॥  
 त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।  
 शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥  
 आदित्या वसवो रुद्रा विश्वे देवाः सपैतृकाः ।  
 त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥  
 त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ।  
 सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा । इति ॥

ततः फलपुष्पमालाशोभितं वितानं बृहस्पतिदैवत्यं सूर्यादिभ्य इदं  
 न ममेति उत्सृज्य ग्रहवेद्युपरि वध्नीयात् । तत एको होता परो ब्रह्मे-  
 ति पूर्वकुण्डे द्वौ ऋत्विजौ दक्षिणादिकुण्डेषु यथाशाखं होमात्प्राक्तनं  
 कर्म कुर्युः । तत्र षोडशमहादानादौ प्रागादिक्रमेण ऋग्वेदादिविहितं  
 कर्मजलाशयोत्सर्गादौ पञ्चकुण्डीपक्षेऽप्येवम् । तत्राऽऽचार्यकुण्डं त्रीशा-  
 नपूर्वयोर्मध्ये वृत्तं चतुरस्रं वा तत्रैव नवकुण्ड्यामप्येवमेवाचार्यकुण्डम् ।



तस्मिन्विदिककुण्डेषु च 'चतुःपञ्चकुण्डीवद्वोमावृत्तिः' इति केचित् । युक्तं तु 'चतुःकुण्डीहोम एव विभज्य कार्यः' इति । तदा चैको होता परो ब्रह्मेति । विदिककुण्डचतुष्टये अष्टावधिका ऋत्विजः । 'तेत्वाग्नेयादिकोणक्रमेण ऋगादिशाखीयाः' इति केचित् । 'अनियताः' इत्यपरे । 'आचार्यकुण्डं तु प्रणयनयोग्याग्निस्थापनार्थम्' इति सांप्रदायिकाः । 'होमावृत्तिर्विभज्य होमानुष्ठानं वा' इति परे ।

अथ ऋक्शाखीयानामन्वाधाने विशेषः । तत्र 'चक्षुषी आज्येन इत्यन्तमुक्त्वात्र प्रधानं सूर्यसोमभौमबुधगुरुशुक्रशनिराहुकेतून् ग्रहान् समिञ्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यम् । अष्टसहस्राष्टशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्यया ईश्वरोमास्कन्दविष्णुब्रह्मेन्द्रयमकालचित्रगुप्ताख्या अधिदेवताः । अग्न्यम्भुमिविष्ण्वेन्द्रेन्द्राणीसर्पप्रजापतिब्रह्माख्याः प्रत्यधिदेवताः । विनायकदुर्गावाय्वाकाशाख्यान् पञ्च लोकपालान् । इन्द्राग्निमन्त्रिर्ऋतिवरुणवायुसोमेशानानन्तब्रह्माख्यान् दश दिक्पालान् । ध्रुवाध्वरसोमापानिला-नलप्रत्युषप्रभासाख्यान् अष्टौ वसून् । धात्र्यममित्रवरुणांशभगेन्द्रविवस्वत्पूषपर्जन्यत्वष्टृविष्ण्वाख्यान्द्वादशादित्यान् । वीरभद्रशम्भुगिरिशार्ङ्गकपादहर्तुर्धन्यपिनाकिभुवनाऽधीश्वरकपालविशास्पतिस्थाणुभगाख्यानेकादश रुद्रान्, गौर्यादिषोडश मातृः । गणपतिं प्रति होमो नोक्तः । आवहप्रवहोद्बहसंवहविवहपरावहपरिवहाख्यान्सप्त मरुतः । ब्रह्माच्युतेशार्ङ्गवनस्पतीन् पञ्च चामुकसंख्यया समिञ्चर्वाज्यैर्यज्ये' इति । 'वसून् आदित्यान् रुद्रान् मरुत इति समुदितानामेवोल्लेखो युक्तः' इति बहवः । अत्र 'ग्रहहोमसंख्यातोऽधिदेवताहोमेन्यूनसङ्ख्या' इति संप्रदायः । ततो यजमानो मण्डपमध्ये दक्षिणत उपविष्टः 'आधाराऽऽज्यभागदेवता अन्वाधानोक्तप्रधानदेवताः स्विष्टकृदाद्युत्तराङ्गदेवताश्चतुर्थ्यन्तेनादिश्यैताभ्य एतानि समित्तिलचर्वादिद्रव्याणि होतुमुत्सृज्ये' इति त्यजेत् । 'बहुकर्तृके होमे प्रत्याहुतित्यागस्याशक्यत्वादिति प्रयोगविदः' । ततो होतारः स्वस्वशाखीयैः प्रणवाद्यैः स्वाहान्तैस्तत्तन्मन्त्रैर्ऋषिदेवताछन्दःस्मरणपूर्वकं सूर्यादिभ्यः समिञ्चर्वाज्यादि जुहुयुः । 'तत्र बस्वादिखरुद्रमरुतां प्रत्येकं मन्त्राऽभावात्प्रणवादिना चतुर्थीस्वाहान्तेन प्रत्येकं होमः' इति केचित् । समुदितानामेव विधौ श्रवणान्मन्त्रानुरोधाच्चेति तु युक्तम् । तत्र प्रत्येकदेवतात्वपक्षे पञ्चाशीतिर्देवताः । समुदितपक्षे एकपञ्चाशत् ।



होमकाले ऋग्वेदिनौ द्वारपालौ पूर्वे द्वार उदङ्मुखौ रात्रिसूक्तं रौद्रं पवमानं सुमङ्गलं शन्न इन्द्राग्नी इति सूक्तानि पठेताम् । यजुर्विदौ दक्षिणे शाकं रौद्रं सौम्यं कौष्माण्डम् ऋचं वाचमित्यध्यायं च पठेताम् । पश्चिमे सामविदौ सुपर्णं विराजमाग्नेयं रुद्रसंहितां ज्येष्ठं सामं रौद्रं बोधयेति च पठेताम् । उत्तरेऽथर्ववेदिनौ सौरं शाकुनकं पौष्टिकं सुमहाराजं शन्न इन्द्राग्नी इति ऋक्त्रयं च पठेताम् । तत्र गुरुः सर्वकर्माध्यक्षो भवेत् ॥

अथ होममंत्राः । तत्र ऋग्वेदिनां स्थापनमंत्राएवर्षिदेवतायुक्ताः । अथ तत्तद्दैवत्यानि सूक्तानि जप्यानि । ह्यामीत्येकादशर्चस्य सूक्तस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः सविता देवताऽऽद्यायाः आद्यपादत्रयेऽग्निमित्रावरुणौ रात्रिश्च देवता त्रिष्टुप्छन्दः आद्यनवम्योर्जगती सूर्यप्रीतये जपे विनियोगः । ‘ॐ ह्याम्यग्निं देवं’ । त्वं सोमेति त्रयोविंशर्चस्य सूक्तस्य गौतमऋषिः सोमो देवता । पञ्चम्यादिद्वादश गायत्र्यः सप्तदश्युष्णिक् शेषास्त्रिष्टुभः सोमप्रीतये जपे विनियोगः । ‘ॐ त्वं सोमं गविष्ठौ’ । ‘समिधाग्निमिति त्रिंशर्चस्य सूक्तस्य विरूप अङ्गिरसोऽग्निर्गायत्री । भौमप्रीतये’ । ‘ॐ समिधाग्निं सोतिर’ । ‘उद्वुध्यध्वमिति द्वादशर्चस्य सूक्तस्य बुधो विश्वे देवा नवमी द्वादशी च जगती पञ्चमी बृहती चतुर्थी षष्ठी च गायत्री शेषास्त्रिष्टुभो बुधप्रीतये’ । ‘ॐ उद्वुध्यध्वमं पीतये’ । ‘यस्तस्तम्भेत्येकादशर्चस्य वामदेवो नवानां बृहस्पतिरन्त्ययोरिन्द्राबृहस्पती दश त्रिष्टुभ उपान्त्या जगती । बृहस्पतिप्रीतये’ । ‘ॐ यस्तस्तम्भं मरातीः’ । ‘शुकं त इति चतसृणां भरद्वाजः पूषा त्रिष्टुप् द्वितीया जगती शुक्रप्रीतये’ । ‘ॐ शुक्रं ते अन्यत् संस्वञ्चम्’ । ‘आपो हिष्ठेति नवर्चस्याम्बरीषसिन्धुद्वीप-आपः सप्त गायत्र्यः पञ्चमी वर्द्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठान्त्ये द्वे अनुष्टुभौ । शनिप्रीतये’ । ‘ॐ आपो हिष्ठां वर्चसा’ । ‘कया न इति पञ्चदशर्चस्य वामदेव इन्द्रो गायत्री तृतीया पादनिवृत् । राहुप्रीतये’ । ‘ॐ कया नश्चित्रं भिवोपरि’ । ‘युञ्जन्तीति दशर्चस्य मधुछन्दा आद्यानां तिमृणामन्त्ययोरिन्द्रश्चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीनां मरुतः पञ्चम्याः सप्तम्याश्चैन्द्रीमरुतः गायत्री । केतुप्रीतये’ । ‘ॐ युञ्जन्ति ब्रह्मं रजसं इति नवग्रहसूक्तानि ।



अथ होममन्त्राः । तत्र ऋग्वेदी ।

अथाधिदेवतानाम् । 'इमा रुद्रायेत्येकादशर्चस्य कुत्सो रुद्रो जगती अन्त्ये त्रिष्टुभे रुद्रप्रीतये०' । 'ॐ इमा रुद्राय ० तद्यौः' । 'आपो हिष्टेति नवर्चं पूर्ववत् । उमाप्रीतये०' । 'ॐ आपो हिष्टा० वर्चसा' । प्रातर्युजेत्येकविंशत्यृचस्य सूक्तस्य मेधातिथिराद्यानां चतसृणामश्विनौ चतसृणां सविता द्वयोरग्निरेकादश्या देव्यो द्वादश्या इन्द्राणीवरुणा-  
न्यामेय्यो द्वयोर्वावापृथिव्यौ पञ्चदश्याः पृथिवी षण्णां विष्णुर्गायत्री स्कन्दप्रीतये० । 'ॐ प्रातर्युजा० पदम्' । 'अतो देवा इति षण्णां मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री हरिप्रीतये०' । 'ॐ अतो देवा० पदम्' । 'अग्न आयाहीति विंशत्यृचस्य सूक्तस्य भर्गोऽग्निः प्रगाथः ब्रह्मप्री-  
त्यर्थे०' । 'ॐ अग्न आयाह्यग्निभिः० स्विनः' । 'इन्द्रं विश्वा इत्यष्ट-  
र्चस्य जेता माधुछन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप् इन्द्रप्रीतये०' । 'ॐ इन्द्रं विश्वा०  
यसीः' । 'आयं गौरिति तिसृणां सारपराज्ञात्मा गायत्री यमप्रीतये०' ।  
'ॐ आयं गौः पृथि० शुभिः' । 'परं मृत्योरिति चतसृणां संकुमुको  
मृत्युस्त्रिष्टुप् कालप्रीतये०' । 'ॐ परं मृत्यो० तेन' । 'सचित्रे-  
त्यस्य भरद्वाजो मरुतस्त्रिष्टुप् चित्रगुप्तप्रीतये०' । 'ॐ सचित्र  
चित्रं० युवस्व' ॥

अथ प्रत्यधिदेवतानाम् । 'अग्निं दूतमिति द्वादशर्चस्य मेधातिथि-  
रग्निः षष्ठ्या आद्ये पादे निर्मथ्याहवनीयौ गायत्री अग्निप्रीतये०' ।  
'ॐ अग्निं दूतम्० स्वनः' । 'कस्येति पञ्चदशर्चस्याऽऽजीगर्तः  
शुनःशेष आद्यायाः को द्वितीयाया अग्निस्त्रिष्टुणां सविता दशानां वरु-  
णस्तृतीयाद्यास्तिस्रो गायत्र्यः शेषास्त्रिष्टुभः अप्रीतये०' । 'ॐ कस्य  
नूनम्० स्याम' । 'स्योना मेधातिथिः पृथिवी गायत्री भूमिप्री-  
तये०' । 'ॐ स्योना पृथिवि० प्रथः' । 'सहस्रशीर्वेति षोडशर्चस्य  
नारायणः पुरुषोऽनुष्टुबन्त्यात्रिष्टुप् विष्णुप्रीतये०' । 'ॐ सहस्र-  
शीर्षा० देवाः' । 'इन्द्राय कश्यपः पवमानसोमो गायत्री । इन्द्र-  
प्रीतये०' । 'ॐ इन्द्रायेन्दो० सदम्' । 'इमां खनामीति षण्णामि-  
न्द्राणीन्द्राण्यनुष्टुभं त्वन्त्या पञ्चपदा पङ्क्तिः इन्द्राणीप्रीतये०' ।  
'ॐ इमां खनामि० धावतु' । 'प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप्  
प्रजापतिप्रीतये०' । 'ॐ प्रजापते० रयीणाम्' । 'कालिको वसिष्ठः



सर्पा अनुष्टुप् सर्पप्रीतये० । 'ॐ कालिको नाम सर्पः० हनः ।'  
 'ब्रह्मा देवानां देवोदासिः प्रतर्दनो ब्रह्मा त्रिष्टुप् ब्रह्मप्रीतये० ।'  
 'ॐ ब्रह्मा० रेभन् ।'

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । 'आतून इति नवानां कुसीदः कण्वो  
 गणपतिर्गायत्री विनायकप्रीतये० । 'ॐ आतून इन्द्र० रन्तो ।'  
 'जातवेदसे कश्यपो जातवेदास्त्रिष्टुप् दुर्गाप्रीतये० । 'ॐ जात-  
 वेदसे० त्यग्निः ।' क्राणा त्रितो वायुरुष्णिक् वायुप्रीतये० । 'ॐ क्राणा  
 शिशु० द्विता ।' 'आदिद्वत्स आकाशो गायत्री आकाशप्रीतये० ।'  
 'ॐ आदिद्वत्सस्य० । एषो उषा प्रस्कण्वोऽश्विनौ गायत्री अश्विनोः  
 प्रीतये० । 'ॐ एषो० हत् ।'

अथ दशलोकपालानाम् । 'इन्द्रं विश्वा इत्यष्टानां जेता मधुच्छन्दस  
 इन्द्रोऽनुष्टुप् इन्द्रप्रीतये० । 'ॐ इन्द्रं विश्वा० यसी ।' 'अग्निः सप्त-  
 मिति सप्तानां सौचीकोऽग्निर्वैश्वानरोऽग्निस्त्रिष्टुप् अग्निप्रीतये० । 'ॐ  
 अग्निः सप्तिः० जस्व ।' 'परेयिवांसमिति षोडशर्चस्य यमः पञ्चानां  
 यमः षष्ठ्या आङ्गिरसस्तिसृणां पितरस्तिसृणां श्वानौ चतसृणां यमो  
 द्वादशत्रिष्टुभौ द्वे अनुष्टुभौ पादनिवृत्तौ पञ्चदशी बृहती षोडशानुष्टुप्  
 यमप्रीतये० । 'ॐ परेयिवांसं० हिता ।' 'वेत्था हि विश्वमय्यना  
 वैश्वोनिर्ऋतिरुष्णिक् निर्ऋतिप्रीतये० । 'ॐ वेत्था हि० मेव ।'  
 'मोष्णिति पञ्चानां वसिष्ठो वरुणो गायत्री अन्त्या जगती वरुणप्री-  
 तये० । 'ॐ मोषु० वरुणरीरिषः ।' 'वात इति तिसृणां कातायन  
 उलो वायुर्गायत्री वायुप्रीतये० । 'ॐ वात आवातु० जीवसे ।'  
 'त्वं सोमेति महवत् ।' 'इमा रुद्राय इति पूर्ववत् ।' 'सहस्रशीर्षा इति  
 प्राग्वत् ।' 'त्वमिद्रभोऽग्निर्वृहती ब्रह्मप्रीतये० । 'ॐ त्वमिस्स-  
 प्रथा० वसः ।'

अथ वस्वादिनवानाम् । 'अमया अज' इति वसूनां होमवत् ।  
 'इमा गिर इति सप्तदशर्चस्य गार्त्समदः कूर्म आदित्यस्त्रिष्टुप् आदित्य-  
 प्रीतये० । 'ॐ इमा गिरः० वीराः ।' 'आत इति पञ्चदशर्चस्य गार्त्स-  
 मदः कूर्मरुद्रस्त्रिष्टुप् ईशानप्रीतये० । 'ॐ आतोपित० वीराः ।'  
 'मरुतो अयेति दक्षानां गौतमो गायत्री मरुप्रीतये० । 'ॐ मरुतो  
 यस्व० अमि ।' 'हिरण्यगर्भ इति दशर्चस्य हिरण्यः प्रजापतिः



कस्त्रिष्टुप् ब्रह्मप्रीतये० । 'ॐ हिरण्यगर्भः० रयीणाम् । 'सहस्रशीर्षा  
इत्यच्युतस्य प्राग्वत् । 'आतेपितः० इतीशस्य प्राग्वत् । 'चित्रमिति  
षण्णां कुत्सोऽर्कस्त्रिष्टुप् अर्कप्रीतये० । 'ॐ चित्रं देवानाम्० उत  
द्यौः । 'वनस्पत इति तिसृणां गगो वनस्पतिस्त्रिष्टुप् वनस्पति-  
प्रीतये० । 'ॐ वनस्पते वीड्वङ्गो० गृध्राय । आवाहितयोरपि  
मातृगणपत्योर्होमसूक्तजपौ न स्तः । एवं ऋग्वेदी हुत्वा खिष्टकृदादिप्रा-  
यश्चित्ताहुत्यन्तं पूर्णाहुतिप्राग्भावि कर्म कुर्यात् ॥

अथ यजुर्वेदिनः । कुशकण्डिकानन्तरं प्रधानहोममन्त्राः । 'आकृ-  
ष्णेन हिरण्यस्तूपः सविता त्रिष्टुप् सूर्यप्रीतये तिलाज्यहोमे विनि-  
योगः । 'ॐ आकृष्णेन० पश्यन्स्वाहा । 'इदं सूर्याय । एवं सर्वत्र ।  
'इमं देवा वरुणः सोमो यजुः । 'ॐ इमं देवानां० राजा । 'अग्नि-  
र्मूर्द्धाविरूपोऽङ्गारको गायत्री० । 'उद्वुध्यस्व परमेष्ठी बुधस्त्रिष्टुप्० ।  
'बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप्० । 'अन्नात्प्रजापतिरश्विसरस्व-  
तीन्द्राः शुक्रो जगती० । 'शन्नो दध्यङ्काथर्वणः शनिर्गायत्री० ।  
'कया नो वामदेवो राहुर्गायत्री० । 'केतुं मधुच्छन्दाः केतवो  
गायत्री० ।

अथाधिदेवतानाम् । 'अयस्वकं वसिष्ठो रुद्रस्त्रिष्टुप् । अत्र प्रणी-  
तोदकं स्पृशेत् । 'श्रीश्चेत्युत्तरनारायण उमा त्रिष्टुप् । 'यदक्रन्दो  
भास्करजमदग्निदीर्घतमसोः स्कन्दस्त्रिष्टुप् । 'विष्णोरराटमुतथ्यो  
विष्णुर्यजुः । 'ॐ विष्णोरराटम्० वेत्वा । 'आ ब्रह्मन् प्रजाप-  
तिर्ब्रह्मा यजुः । 'ॐ आ ब्रह्मन्० कल्पताम् । 'सजोषा विश्वामित्र  
इन्द्रस्त्रिष्टुप् । 'ॐ सजोषा इन्द्रः० तो नः । 'असियमो भास्कर-  
जमदग्निदीर्घतमसो यमस्त्रिष्टुप् । अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत् । कार्ष्णि-  
रसि दध्यङ्काथर्वणः कालोऽनुष्टुप् । अत्रापि प्रणीतोदकस्पर्शः । चित्रापि  
प्रणीतोदकस्पर्शः । 'चित्रावसोऽर्कषयश्चित्रगुप्तो जगती । 'ॐ चित्रा-  
वसोः० शीय ॥

अथ प्रत्यधिदेवतानाम् । 'अग्निं दूतं विरूपोऽग्निर्गायत्री । 'अप्स्व-  
न्तर्वृहस्पतिः आपः पुर उष्णिक् । 'स्योना मेधातिथिः पृथिवी  
गायत्री । 'इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री । 'त्रातारं गार्ग्य इन्द्र-  
स्त्रिष्टुप् । 'अदित्यै दध्यङ्काथर्वण इन्द्राणीयजुः । अदित्यैरास्ता । 'प्रजापते



वरुणः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् । 'नमोऽस्तु देवाः सर्पा अनुष्टुप्' । 'ब्रह्म प्रजापतिर्ब्रह्मा त्रिष्टुप्' ।

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । गणानां प्रजापतिर्गणपतिर्यजुः । 'ॐ गणानां त्वा० । 'अम्बे प्रजापतिर्दुर्गाऽनुष्टुप्' । 'वातो वा गन्धर्वा वात उष्णिक्' । 'ऊर्वा अस्य समिधो प्रजापतिराकाश उष्णिक्' । 'अश्विनो अश्विरश्विनौ यजुः' । 'ॐ अश्विनोर्भे० चामि ॥

अथ दिक्पालानाम् । 'त्रातारं गार्ग्य इन्द्रस्त्रिष्टुप्' । अग्निं दूतं विरूपोऽग्निर्गायत्री । 'असियमो भार्गवजमदग्निदीर्घतमसो यमस्त्रिष्टुप्' । अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः । 'एष ते वरुणो निर्ऋतियजुः' । 'ॐ एष ते निर्ऋते० पस्व' । 'प्रणीतोदकस्पर्शः' । 'इमं मे शुनःशेपो वरुणो गायत्री' । 'ॐ इमं मे वरुण०' । 'वातो वा गन्धर्वा वात उष्णिक्' । 'वयं बन्धुः सोमो गायत्री' । 'तमीशानं गौतम ईशानो जगती' । प्रणीतोदकस्पर्शः । 'नमोऽस्तु देवा अनन्तोऽनुष्टुप्' । 'ब्रह्मप्रजापतिर्ब्रह्मा त्रिष्टुप्' ॥

अथ वस्वादीनाम् । 'स्वर्गा देवा वसवस्त्रिष्टुप्' । 'यज्ञो देवानां कुत्स आदित्यस्त्रिष्टुप्' । 'य एतावन्तश्च परमेष्ठी रुद्रोऽनुष्टुप्' । 'मरुतो यस्य गौतमो मरुतो गायत्री' । 'आब्रह्मन्प्रजापतिर्ब्रह्मा यजुः' । 'इदं विष्णुर्मेधातिथिरच्युतो गायत्री' । 'मानस्तोके कुत्स ईशो जगती' । 'चित्रं देवानां कुत्सोऽर्कस्त्रिष्टुप्' । 'अयं हि प्रजापतिर्वनस्पतियजुः' । 'ॐ अयं हि त्वा० रुहेम' । इति होममन्त्राः ।

अथ जपसूक्तानि । 'विभ्राडिति सप्तदशर्चस्यानुवाकस्य आद्याया विभ्राट् । ततस्तिष्ठणां प्रस्कण्वः । पञ्चम्या अवत्सारः काश्यपः । षष्ठ्या वेनः सप्तम्याः कुत्सोऽष्टम्या अगस्त्यः नवम्याः श्रुतकक्षसुकक्षौ दशम्याः प्रस्कण्वः । अथ द्वयोः कुत्सः । अथ द्वयोर्जमदग्निः । पञ्चदश्या नृमेधः । षोडश्याः कुत्सः । अन्त्याया हिरण्यरूप आङ्गिरसः । पञ्चम्या विश्वे देवाः । षष्ठ्याः सोमोऽन्यासां सूर्यः । आद्या पञ्चमी जगती । द्वितीयादितिस्रो नवमी दशमी च गायत्र्यः त्रयोदशीपञ्चदश्यौ पञ्चावृहत्यौ । चतुर्दशी सतो वृहती । शेषाः सप्त त्रिष्टुभः । सूर्यप्रीतये जपे विनियोगः । 'ॐ विभ्राड्वृहन्० पश्यन्' । 'आषाढं युत्स्विति चतसृणां गौतमसोमस्त्रिष्टुप् सोमप्रीतये०' । 'ॐ आषाढं युत्सु० विश्वौ' । 'अग्नि-



मूर्त्ता विरूपाक्षोऽग्निर्गायत्री । ' उद्बुद्धयस्व परमेष्ठ्यग्निस्त्रिष्टुप् '   
 बुधप्रीतये० । ' वृहस्पते अतिगृत्समदो ब्रह्मा त्रिष्टुप् । वृहस्पतिप्रीतये० ' ।   
 ' अन्नात्परिस्तुतः प्रजापत्यश्विसरस्वतीन्द्रा इन्द्रो जगती ' । ' शन्नो देवी   
 दध्यङ्ङाथर्वण आपो गायत्री ' । ' कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री ' ।   
 ' केतुं कृण्वन् मधुच्छन्दा अग्निर्गायत्री ' । एते मन्त्रा एव सूक्तानि ॥

अथाऽधिदेवतानाम् । ' षट्पष्टिमन्त्रात्मकरुद्राध्यायस्य परमेष्ठी   
 ऋषिः । आद्यानां षोडशानामेकरुद्रस्ततो बहुरुद्र आद्यो गायत्री ।   
 तिस्रोऽनुष्टुभौ द्वे जगत्स्यौ । नमो हिरण्यवाहव इत्यन्तस्त्रिंशच्चजूंषि   
 द्वाप इत्युपरिष्ठाद्बृहती, इमा रुद्रायेति जगती, या ते रुद्रेत्यनुष्टुप् ।   
 ततो द्वे त्रिष्टुभौ । विकिरिदेत्याद्या द्वादशानुष्टुभः । शेषाणि त्रीणि   
 यजूंषि । रुद्रप्रीतये० ' । ' ॐ नमस्ते रुद्र० दध्मः ' । ' हवामह '   
 इत्यन्ताः षोडशैव रुद्रसूक्तमिति रूपनारायणीये । प्रणीतोदकस्पर्शः ।   
 ' श्रीश्च ते उत्तरनारायणो नारायणस्त्रिष्टुप् । उमाप्रीतये० ' । ' यद-   
 क्रन्दो भार्गवजमदग्निदीर्घतमसोऽश्वस्त्रिष्टुप् । स्कन्दप्रीतये० ' । ' सह-   
 स्रशीषेति षोडशानां नारायणः पुरुषोऽनुष्टुबन्त्या त्रिष्टुप् । विष्णुप्री-   
 तये० ' । ' आब्रह्मन्निति प्रजापतिर्ब्रह्मा यजुः । ब्रह्मप्रीतये० ' । ' आशुः   
 शिशानमिति द्वादशानामप्रतिरथ इन्द्रस्त्रिष्टुप् । इन्द्रप्रीतये० ' । ' यमाय   
 त्वा दध्यङ्ङाथर्वणो यमो यजुः । यमप्रीतये० ' । ' ॐ यमाय० स्वाहा ' ।   
 प्रणीतोदकस्पर्शः । ' कार्ष्णिर्रसि दध्यङ्ङाथर्वणे आपोऽनुष्टुप् । कालप्री-   
 तये० ' । प्रणीतोदकस्पर्शः । ' चित्रावसो ऋषयो रात्रिर्जगती ।   
 चित्रगुप्तप्रीतये० ' ॥

अथ प्रत्यधिदेवतानाम् । ' अस्या जरास इति सप्तदशर्चस्य आद्याया   
 वत्सप्री इन्द्रवायू त्रिष्टुप् । द्वितीयाया विरूप इन्द्रवायू गायत्री । तृती-   
 याया गौतमो मित्रावरुणौ गायत्री । चतुर्थ्या विरूप इन्द्रावरुणौ   
 गायत्री । पञ्चम्याः कुत्सः शुक्रस्त्रिष्टुप् । षष्ठ्या वामदेवोऽग्निर्जगती ।   
 सप्तम्या विश्वामित्र इन्द्राग्नी त्रिष्टुप् । अष्टम्या भरद्वाजोऽग्निस्त्रिष्टुप् ।   
 नवम्या भरद्वाजो विश्वेदेवा गायत्री । दशम्या मेधातिथिरग्निर्गायत्री ।   
 एकादश्याः शक्तयः पाराशरो मरुतस्त्रिष्टुप् । द्वादश्या अत्रिदुहिता   
 विश्वेदेवा मरुतस्त्रिष्टुप् । त्रयोदश्या भरद्वाजोऽग्निस्त्रिष्टुप् । चतुर्दश्या   
 वसिष्ठ आदित्यो बृहती । षोडश्या वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् । सप्तद-



इथाऽनुशोधातकः सविता त्रिष्टुप् । अग्निप्रीतये० । ' आपो हिष्टेति  
 तिसृणां सिन्धुद्वीप आपो गायत्री । अप्रीतये० । ' स्योना पृथिवि  
 दध्यङ्ङाथर्वणः पृथिवी गायत्री । पृथिवीप्रीत्यर्थे० । ' सहस्रशीर्षा  
 नारायणः पुरुषोऽनुष्टुबन्त्यात्रिष्टुप् । विष्णुप्रीत्यर्थे० । ' आशुः  
 शिशानो द्वादशानामप्रतिरथ इन्द्रस्त्रिष्टुप् इन्द्रप्रीत्यर्थम्० । ' अदित्यै  
 रास्ना दध्यङ्ङाथर्वण इन्द्राणी यजुः । इन्द्राणी प्रीत्यर्थे० । ' हिरण्यगर्भ  
 इति चतुर्णां हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् । प्रजापतिप्रीत्यर्थम्० ।  
 ' नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तृचस्य देवाः सर्पा अनुष्टुप् । सर्पप्रीत्यर्थे० ।  
 ' ब्रह्मजज्ञानं प्रजापतिरादित्यस्त्रिष्टुप् । ब्रह्मप्रीतये० ॥

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । ' गणानां त्वा प्रजापतिर्गणपतिर्यजुः ।  
 गणपतिप्रीतये० । ' अश्वे अश्विके प्रजापतिरश्वोऽनुष्टुप् । दुर्गाप्री-  
 तये० । नियुत्वान्वा यति षण्णामाद्याया गृत्समदो द्वितीयाथाः पुरुष-  
 मीढाजमीढौ तिसृणां प्रजापतिः षष्ठ्याव्यथ आङ्गिरसो वायुर्द्वि-  
 तीयाऽनुष्टुप् पञ्चमी त्रिष्टुप् शेषा गायत्र्यः । वायुप्रीतये० । ' ऊर्ध्वा  
 अस्य समिध इति द्वादशानां प्रजापतिरग्निरुष्णिक् । आकाशप्रीतये० ।  
 ' या वां कश मेधातिथिरश्विनौ गायत्री । अश्विनोः प्रीतये० ॥

अथ दिक्पालानाम् । ' आशुः शिशान इति द्वादशर्चमैन्द्रम्  
 प्राग्वत् । ' अस्या जरास इति सप्तदशर्चमाग्नेयं प्राग्वत् । ' यमाय  
 दध्यङ्ङाथर्वणो यमो यजुः । यमप्रीतये० । ' ॐ यमाय स्वाहा ।  
 प्रणीतोदकस्पर्शः । ' असुन्वन्तमिति तृचस्य प्रजापतिरग्निस्त्रिष्टुप् ।  
 निर्ऋतिप्रीत्यर्थम्० । ' प्रणीतोदकस्पर्शः । ' इमं मे वरुणेति द्वयोः शुनः-  
 शेषो वरुणो गायत्री त्रिष्टुभौ । वरुणप्रीतये० । ' नियुत्वा न्वायविति  
 षडर्चं वायवीयम् प्राग्वत् । आपादमिति सौम्यचतुष्टयं प्राग्वत् ।  
 रुद्राध्यायः षट्षष्टिमन्त्रावसानं प्राग्वत् । प्रणीतोदकस्पर्शः । नमोऽस्तु  
 सर्पेभ्य इति तृचमनन्तसूक्तं प्राग्वत् । ब्रह्मजज्ञानं प्रजापतिरादित्य-  
 स्त्रिष्टुप् । ब्रह्मप्रीतये० ॥

अथ वस्वादीनाम् । सुगा वो देवा वसवस्त्रिष्टुप् । वसुप्रीतये० । ' ॐ  
 सुगावो देवा० । ' इमा गिरो गृत्समद् आदित्यस्त्रिष्टुप् । आदित्य-  
 प्रीतये० । ' ॐ इमा गिरो० । रुद्राध्यायो सैन्द्रं प्राग्वत् । शुक्रज्यो-  
 तिश्चेति षण्णां सप्तर्षयो मरुत आचतुर्थी वोष्णिक् पञ्चमी जगती



शेषा गायत्र्यो मरुत्प्रीतये० । 'ॐ शुक्रज्योतिश्च०' । आब्रह्मन्  
प्रजापतिर्ब्रह्मा यजुः । ब्रह्माप्रीतये । 'ॐ आब्रह्मन्०' । 'सहस्रशी-  
र्वेति वैष्णवं' प्राग्वत् । 'रुद्राध्यायो रौद्रं' प्राग्वत् । 'विभ्राडिति  
सप्तदशर्चमार्कं' प्राग्वत् । 'वनस्पते वीडुङ्गः प्रजापतिर्वनस्पतिस्त्रि-  
ष्टुप् । वनस्पतिप्रीतये०' । 'ॐ वनस्पतेवीडुङ्गो०' । ततो व्याहृतिहो-  
मादिबलिहोमान्तं याजुषं पूर्णाहुतिप्राग्भावि कर्म कुर्यात् ।

अथ सामगानाम् । कुशकण्डिकानन्तरं प्रधानहोमे मन्त्राः । 'उदुत्यं  
प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री' । तिलाज्यहोमे विनियोगः । 'ॐ उदुत्यं० सूर्याय  
स्वाहा' । 'संते पयांसि सोमः सोमो गायत्री' । 'ॐ संतेप-  
यांसि०' । 'अग्निर्मूर्धा वरुणः भौमो गायत्री०' । 'ॐ अग्नि  
र्मूर्धा०' । 'अग्ने विवस्वन्मण्डो जमदग्निर्दुधो बृहती०' । 'ॐ अग्ने-  
विवस्वत्०' । 'बृहस्पते परिदीयाऽप्रतिरथो बृहतिस्त्रिष्टुप्०' ।  
'बृहस्पतेपरिदीया०' । 'शुक्रं ते भरद्वाजः शुक्रस्त्रिष्टुप्' । 'ॐ शुक्रं  
तेअन्यत्०' । 'शन्नो देवीः सिन्धुद्वीपः शन्तिर्गायत्री०' । 'ॐ शं नो-  
देवी०' । 'कया नो वामदेवो राहुर्गायत्री०' । 'ॐ कयानश्चि०' ।  
'केतुं कृण्वन्मधुच्छन्दाः केतुर्गायत्री०' । 'ॐ केतुं कृण्वन्०' ।

अथादिदेवतानाम् । 'आवो राजानं वामदेवो रुद्रस्त्रिष्टुप्०' ।  
'ॐ आवो राजानं०' । 'आपो हिष्ठा सिन्धुद्वीप उमा गायत्री०' ।  
'ॐ आपो हिष्ठा०' । 'स्योना पृथिवी मेधातिथिः स्कन्द उष्णिक्०' ।  
'ॐ स्योना पृथिवी०' । 'इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री०' ।  
'ॐ इदं विष्णु०' । 'त्वमित्सप्रथा गौतमो ब्रह्मा बृहती' । 'ॐ त्व-  
मित्सप्रथाः०' । 'इन्द्रमिहेवता उक्तस्तुगिन्द्रस्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ इन्द्र-  
मिहेवता०' । 'आयं गौः सार्वराज्ञी यमो गायत्री०' । 'ॐ आयं  
गौः०' । 'ब्रह्मजज्ञानं ब्रह्मा कालस्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ ब्रह्मजज्ञानं०' ।  
'चित्र इच्छिशोश्चित्रगुप्तश्चित्रगुप्तो जगती०' । 'ॐ चित्र इच्छिशो०' ।

अथ प्रत्यधिदेवतानाम् । अग्निं दूतं भरद्वाजोऽग्निर्गायत्री० ।  
'ॐ अग्निं दूतं०' । 'उदुत्तमं गौतम आपस्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ उदुत्तमं०' ।  
'पृथिव्यन्तरिक्षं विष्णुः पृथिव्युष्णिक्०' । 'ॐ पृथिव्यन्तरिक्षं०' ।  
'सहस्रशीर्षा नारायणो विष्णुरनुष्टुप्०' । 'ॐ सहस्रशीर्षा०' ।  
'इन्द्रो वृषो वृधीय इन्द्रो गायत्री०' । 'ॐ इन्द्र वृषो०' । 'एका-



ष्टका वसिष्ठ इन्द्राणी त्रिष्टुप्० । 'ॐ एकाष्टका०' । 'प्रजापते न त्वद्विरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप्' । 'ॐ प्रजापते न०' । तवेदिन्द्रावमं वसिष्ठः सर्पास्त्रिष्टुप्० । 'ॐ तवेदिन्द्रावसु०' । 'एष ब्रह्मा प्रजापतिर्ब्रह्मा द्विपदा गायत्री०' । 'ॐ एष ब्रह्मा०' ।

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । 'आतूनो गौरिवीतो गणपतिर्गायत्री०' । 'ॐ आतून०' । 'इमं स्तोमं कुत्सो दुर्गा जगती०' । 'ॐ इमं स्तोमं०' । 'क्राणाशिशुरिन्द्रो वायुरुष्णिक्०' । 'ॐ क्राणाशिशु०' । 'आदित्प्रत्नस्य निधनकाम आकाशो गायत्री०' । 'ॐ आदित्प्रत्नस्य०' । 'एषो उषा प्रस्कण्वोऽश्विनौ गायत्री०' । 'ॐ एषो उषा०' ।

अथ लोकपालानाम् । 'त्वामिद्धि भरद्वाज इन्द्रो बृहती०' । 'ॐ त्वामिद्धि०' । 'अग्निर्धृत्राणि श्रौतोऽग्निर्गायत्री०' । 'ॐ अग्निर्धृत्राणि०' । 'नाकेसुपर्णं यमो यमस्त्रिष्टुप्' । 'ॐ नाकेसुप०' । 'वेत्या हीत्यादित्यो निर्ऋतिरुष्णिक्' । 'ॐ वेत्याहि०' । 'इमं मे पुष्कलो वरुणो गायत्री०' । 'ॐ इमं मे वरुण०' । 'वातआवातु प्रातीचीनेकाशीतो वायुर्गायत्री०' । 'ॐ वातआवातु०' । 'स्वादिष्टया गम्भीरः सोमो गायत्री०' । 'ॐ स्वादिष्टया०' । 'तद्वो गायत्रीचि रुद्र ईशानो गायत्री०' । 'ॐ तद्वोगाय०' । 'समानो अध्वा उशना अनन्तस्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ समानो अध्वा०' । 'ब्रह्मजज्ञानं ब्रह्मा ब्रह्मा त्रिष्टुप्०' । 'ॐ ब्रह्मजज्ञानं०' ।

अथ वस्वादीनाम् । 'तमग्नि नमस्ते वामदेवो वसवो विराट्०' । 'ॐ तमग्नि नमस्ते०' । 'आदित्यैरिन्द्रभरद्वाज आदित्यो विराट्०' । 'ॐ आदित्यैरिन्द्र०' । 'आवो राजानं वामदेवो रुद्रास्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ आवो राजानं०' । 'पवमाना असृक्षत आदारसनमरुतो बृहती०' । 'ॐ पवमाना असृक्षत०' । 'ब्रह्मजज्ञानं ब्रह्मा ब्रह्मा त्रिष्टुप्०' । 'ॐ ब्रह्मजज्ञानं०' । 'इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री०' । 'ॐ इदं विष्णु०' । 'आत्वा सोमस्य सोम ईशानो बृहती०' । 'ॐ आत्वा सोमस्य०' । 'इन्द्रायमद्वने गौरीवितर्को गायत्री०' । 'ॐ इन्द्रायमद्वने०' । 'वनस्पते वीङ्गङ्गो वाभ्रव्यो वनस्पतिस्त्रिष्टुप्०' । 'ॐ वनस्पतेवीङ्गङ्गो०' ।



‘इति सामगानां होममन्त्राः होममन्त्राएव सामगानां जप्यानि सूक्तानि । विशेषस्तु ग्रहेषु सौम्ये प्रकीर्तितव्यमिति द्वादशर्चस्याद्यानां तिसृणां वाजस्निष्टुप् । शेषाणामादित्यो गायत्री सोमो देवता सोमप्रीत्यर्थं० । ‘ॐ प्रकाव्यमुश०’ । एकादशसामात्मिकायां रुद्रसंहितायाम् । आवो-  
राजानमिति वामदेवस्त्रिष्टुप् । तद्वो गायेति चतुःसाम्नो वर्गस्य रुद्रो गायत्री । त्रयाणामाज्यदोहसीम्नां वैश्वानरस्त्रिष्टुप् । त्रयाणां देवव्रतसाम्नां पूर्वयोरुद्रोन्त्यस्य विश्वेदेवा उत्कृतिः । सर्वेषां रुद्रो देवता । रुद्रप्रीत्यर्थम्० । ‘ॐ आवोराजा एकादशसामात्मिकायां स्कन्दसंहितायाम्’ । ‘आमन्द्रैरिति त्रयाणां त्वाप्रअनोविश्वा सुह-  
व्यमिति त्रयाणां शक्तयो बृहती । प्रसेनानीमिति त्रयाणां कुत्स-  
स्त्रिष्टुप् । पवित्रं त इति द्वयोरादित्यो जगती । सर्वेषां स्कन्दो देवता । स्कन्दप्रीत्यर्थम्०’ । ‘आमन्द्रे’ । नवसामात्मिकायां विष्णु-  
संहितायाम् । इदं विष्णुर्विष्णुर्गायत्री । प्रक्षस्य वृष्ण्यो विष्णुर्जगती । प्रकाव्यमुशने इति बराहस्य वाजिस्त्रिष्टुप्० । सहस्रशीर्षा शङ्करचगी-  
तयोः पुरुषव्रतयोः पुरुषोऽनुष्टुप् । सर्वेषां विष्णुर्देवता । विष्णुप्री-  
त्यर्थम्० । ‘इमे विष्णुः’ । विनायकस्य ‘अदर्दरिति दशसामा-  
त्मिकायां विनायकसंहितायाम् । अदर्दरिति द्वयो रुद्रद्वक्षस्त्रिष्टुप् । सुश्राणास इति द्वयोः पृथिवी त्रिष्टुप्’ । आतून इति चतुःसामवर्गे  
आद्ययोगैरिवीत अन्त्ययोरपालवैणवश्चतुर्णां गायत्री । मृडयमाणा इति  
द्वयोराद्यस्योक्षणोराध्वोद्वितीयस्य वर्गस्य षष्ठस्याऽग्निर्वृहती । सर्वेषां  
विनायको देवता । विनायकप्रीत्यर्थम्०’ । ‘अदरुपत्’ । ‘सोमस्य  
प्रकाव्यमुशनमिति प्राग्वत् । द्वादशर्चम्’ ईशानस्य रुद्राणाम् ‘आवो  
राजानमिति रुद्रसंहिता प्राग्वत् । अच्युतस्य वैष्णवीसंहिता प्राग्वत् ।  
अन्येषां तु होममन्त्रा एव’ इति भट्टचरणमदनोमापतिरूपनारायण-  
दानसागराद्याः । ‘येषां गीतिरस्ति ते गीतिसंहिता एव जप्या’  
इत्यपि एव । सूक्तजपानन्तरं व्याहृतिहोमादिबर्हिर्जुडिकाहोमान्तं  
पूर्णहुतिप्राग्भाविस्वशाखोक्तं सामवेदी कुर्यात् ।

अथाथर्ववेदिनः । प्रधानहोमे मन्त्राः । ‘विषासहिमथर्वादित्यो  
जगती । होमे विनियोगः’ । एवं सर्वत्र । ‘शकधूममथर्वा सोमोऽनु-  
ष्टुप्’ । ‘त्वया मन्यो ब्रह्मा भौमस्त्रिष्टुप्’ । ‘यद्वाजानो विभजन्त



विष्णुर्धुः पङ्क्तिः । 'बृहस्पतिर्नो ब्रह्मा बृहस्पतिस्त्रिष्टुप्' ।  
'शुक्रोऽस्यथर्वा शुक्रोऽनुष्टुप्' । 'सहस्रबाह्वर्नारायणः शनिस्त्रिष्टुप्' ।  
'दिव्यं वित्तं कौशिको राहुस्त्रिष्टुप्' । 'यस्ते पृथुरथर्वा केतव-  
स्त्रिष्टुप्' ॥

अथाग्निदेवतानाम् । 'मा नो विदन्ब्रह्मा ईश्वरोऽनुष्टुप्' । आपो-  
हिष्ठा सिन्धुद्वीप उमा गायत्री । 'अग्निर्विमन्यो ब्रह्मा स्कन्द-  
स्त्रिष्टुप्' । 'प्रतद्विष्णुरथर्वा विष्णुर्गायत्री' । 'ब्रह्मजज्ञानमथर्वा ब्रह्मा  
त्रिष्टुप्' । 'इन्द्रेमं ब्रह्मेन्द्रोऽनुष्टुप्' । 'यः प्रथमो ब्रह्मा यमस्त्रि-  
ष्टुप्' । 'रोहितः कालोऽथर्वा कालोऽनुष्टुप्' । 'यदाज्ञातं कौशिक-  
श्चित्रगुप्तोऽनुष्टुप्' ।

अथ प्रत्यग्निदेवतानाम् । 'सामस्त्वाम्ने ब्रह्माऽग्नि त्रिष्टुप्' । 'शंनो-  
देवी ब्रह्मा आपो गायत्री' । 'भूमैर्मातर्ब्रह्मा भूमिरनुष्टुप्' । 'इदं  
विष्णुरथर्वा विष्णुर्गायत्री' । 'इन्द्रा जुषस्व ब्रह्मेन्द्रोऽनुष्टुप्' । 'प्रेत-  
पादावथर्वेन्द्राप्यनुष्टुप्' । 'नक्तं जातास्यथर्वा प्रजापतिरनुष्टुप्' ।  
'सर्पानुसर्पाथर्वा सर्पाः पङ्क्तिः' । 'ये दिशामथर्वा ब्रह्मा त्रिष्टुप्' ।

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । 'निर्लक्ष्म द्रविणोदा विनायकोऽनु-  
ष्टुप्' । 'पृतनाजितमथर्वा दुर्गा त्रिष्टुप्' । 'अन्तरिक्षे वायवे ब्रह्मा  
वायुरनुष्टुप्' । 'शाम्यन्ताथर्वा आकाशस्त्रिष्टुप्' । 'संवेत्रपथ्यो-  
ऽङ्गिरा अश्विनावनुष्टुप्' ।

अथ दिक्पालानाम् । 'इन्द्रमिन्द्रब्रह्मेन्द्रस्त्रिष्टुप्' । 'अग्नेर्मन्येति  
ब्रह्माग्निस्त्रिष्टुप्' । 'परो मृत्युक्तब्रह्मा यमस्त्रिष्टुप्' । 'अभितं निर्ऋ-  
तिरथर्वा निर्ऋतिरनुष्टुप्' । 'ये पश्चाज्जुह्वत्यथर्वा वरुणस्त्रिष्टुप्' ।  
'वायोः सवितुरथर्वा वायुस्त्रिष्टुप्' । 'य उत्तरतो ब्रह्मा सोमस्त्रिष्टुप्' ।  
'धाता ददात्वङ्गिरा ईशानो गायत्री' । 'य अनन्तं विततमथर्वा अनन्तः  
पङ्क्तिः' । 'ब्रह्मा परं युज्यताम् । अथर्वा ब्रह्मा त्रिष्टुप्' ।

अथ वस्वादीनाम् । 'यानवहवस्त ब्रह्मा वसवस्त्रिष्टुप्' । 'आदित्यो  
ब्रह्मा आदित्यस्त्रिष्टुप्' । 'रुद्रं जलाप ब्रह्मा रुद्रस्त्रिष्टुप्' । 'मरुता-  
मत्वेऽथर्वा मरुतस्त्रिष्टुप्' । 'इमा ब्रह्मा ब्रह्मा ब्रह्मत्रिष्टुप्' । 'तद्वि-  
ष्णोर्ब्रह्माऽच्युतो ब्रह्मा गायत्री' । 'रुद्रजलाप ब्रह्मेशस्त्रिष्टुप्' । 'वत्सो



विराजो ब्रह्माऽर्कस्त्रिष्टुप् । 'वनस्पते वीड्वद्भोऽथर्वा वनस्पतिस्त्रिष्टुप् ।  
इत्यथर्वविदो होममन्त्राः ।

अथ सूक्तानि । 'विषासर्हि सनेहमामति षण्णाम् अथर्वा सूर्यो  
जगती । सूर्यप्रीतये जपे विनियोगः' एवमग्रेऽपि । 'शक्रधूममिति  
चतुर्णामथर्वा सोमोऽनुष्टुप्' । 'त्वया मन्यो इति सप्तानां ब्रह्मा  
भौमस्त्रिष्टुप्' । 'सोमस्यांशो इति चतुर्णामथर्वा बुधोऽनुष्टुप्' ।  
'भद्रादधिग्रेय इत्यस्य ब्रह्मा बृहस्पतिस्त्रिष्टुप्' । 'शुक्रोऽसीत्यथर्वा  
शुक्रोऽनुष्टुप्' । 'प्राणाय नम इति तिसृणां ब्रह्मा शनिस्त्रिष्टुप्' ।  
'राहुराजानं ब्रह्मा राहुस्त्रिष्टुप्' । 'यस्ते पृथुरिति तृचस्याथर्वा केतवः  
स्त्रिष्टुप्वाद्योरन्त्याऽनुष्टुप्' ।

अथाधिदेवतानाम् । 'मा नो विदन्निति चतसृणां ब्रह्मा रुद्रस्त्रिष्टुप्' ।  
'अग्निरिव मन्यो ब्रह्मास्कन्दस्त्रिष्टुप्' । 'यत इन्द्र इति पञ्चानाम-  
थर्वा विष्णुस्त्रिष्टुप्० अन्त्या गायत्री । विष्णुप्रीतये' । 'ब्रह्मजज्ञानमिति  
सप्तानामथर्वा ब्रह्मा त्रिष्टुप्' । 'इन्द्रो जयातीति तृचस्य ब्रह्मेन्द्रवि-  
ष्णुस्त्रिष्टुप् । इन्द्रप्रीतये०' । 'यमो मृत्युरिति तृचस्य ब्रह्मा यमस्त्रिष्टुप् ।  
यमप्रीतये०' । 'ओहितः काल इति द्वयोरथर्वा कालोऽनुष्टुप्' ।  
'अथर्वाङ्परस्तादिति चतसृणामथर्वा चित्रगुप्तस्त्रिष्टुप्' ।

अथ प्रत्यधिदेवतानाम् । 'अग्नेर्मन्व इति तृचस्य ब्रह्माग्निस्त्रिष्टुप्' ।  
'शन्नो देवीति चतसृणां ब्रह्माऽऽपो गायत्री' । 'सत्यं बृहद्भूतामिति  
ब्रह्मा क्षितिस्त्रिष्टुप्' । 'यत इन्द्र इति पञ्चर्चं वैष्णवं प्राग्वत्' । 'इन्द्रा  
जुषस्वेत्येकस्य ब्रह्मेन्द्रोऽनुष्टुप्' । 'प्रेतपादावित्यस्य अथर्वेन्द्राण्यनु-  
ष्टुप्' । 'प्रजापते न त्वदिति द्वयोर्ब्रह्मा प्रजापतिस्त्रिष्टुप्' । 'शेरभ-  
केत्यष्टानामथर्वा सर्पाः पङ्क्तिः' । 'ब्रह्मजज्ञानमिति सप्तर्चं ब्राह्मं प्राग्वत् ।

अथ विनायकादिपञ्चानाम् । 'निर्लक्ष्ममिति चतसृणां द्रविणो-  
दा विनायकोऽनुष्टुप्' । 'पृतनाजितमथर्वा दुर्गात्रिष्टुप्' । वायोः  
सवितुरिति द्वयोरथर्वा वायुस्त्रिष्टुप्' । 'पुरं यो ब्रह्मण इति चतसृणां  
ब्रह्माकाशोऽनुष्टुप्' । 'अश्विना ब्रह्मणेत्यस्य ब्रह्माऽश्विनौ त्रिष्टुप्' ।

अथ लोकपालानाम् । तत्रेन्द्राग्निमानां त्रयस्तृचाः प्रागुक्ता एव ।  
'यस्यासो आसनीति तिसृणां ब्रह्मा निर्ऋतिस्त्रिष्टुप्' । 'ऋदुत्तमं  
ब्रह्मा वरुणस्त्रिष्टुप्' । 'वायोः सवितुरिति वायवीयो द्वयृचः' प्राग्वत् ।



‘शकं धूममिति चतस्रः । सोमस्य मानो विदन्निति चतस्र ईशस्य’ ।  
 ‘शेवनकेत्यष्टानां, रभंतस्य’ । ‘ब्रह्मज्ञानमिति ब्रह्मणः सप्त’ ।  
 एतानि पूर्ववत् ।

अथ वस्वादीनाम् । वस्वादित्यरुद्रमरुतां होममन्त्रा एव । ‘ब्रह्मज्ञानमिति सप्त ब्रह्मणः’ । ‘यत् इन्द्र इति पञ्चाच्युतस्य’ । ‘मानोऽविदन्निति चतस्र ईशस्य’ । ‘विषासहिमिति षडर्कस्य’ । एतानि पूर्ववत् ।  
 वनस्पतेर्होममन्त्रा एव । ततः स्वस्वशाखीयं स्विष्टकृदभ्यातानहोमादि-  
 पूर्णाहुतिप्राग्भावि शेषं कर्म कुर्युः । ततो यजमानो मण्डपप्राग्द्वारकलश-  
 समीपे ‘त्रातारमिन्द्रं गर्ग इन्द्रस्त्रिष्टुप्’ । इन्द्रप्रीत्यर्थं बलिदाने विनि-  
 योगः । ‘ॐ त्रातारमिन्द्रम्०’ । ‘इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय  
 सायुधाय सशक्तिकायामुं सदीपं माषभक्तवलिं समर्पयामि न मम’  
 इति माषभक्तवलिं दत्त्वा, ‘भो इन्द्र दिशं रक्ष, बलिं भक्ष, मम  
 सकुटुम्बस्य आयुःकर्त्ता क्षेमकर्त्ता शुभकर्त्ता शान्तिकर्त्ता पुष्टिकर्त्ता  
 तुष्टिकर्त्ता भव’ इति प्रार्थयेत् । एवमाग्नेयादिषु होमोक्तैरग्न्यादिमन्त्रै-  
 र्बलिदानं प्रार्थनं च । एवमधिदेवताप्रत्यधिदेवतासहितेभ्यः सूर्यादिप्रदे-  
 भ्योऽपि होमोक्तैस्तत्तन्मन्त्रैर्विनायकदुर्गावायत्राकाशवास्तोष्पतिक्षेत्राधि-  
 पतिभ्यस्तत्तन्मन्त्रैर्होमोक्तैरेव । तत् आचार्यो यजमानान्वारब्धः सुचि-  
 स्तुवेण द्विवारं चतुर्वारं वा नालिकेरादिफलयुक्तमाज्यं गृहीत्वा पूर्णाहुतिं  
 जुहुयात् । तत्र मन्त्राः । ‘समुद्रादूर्मिरिति तृचस्य गौतमो वामदेवोऽग्नि-  
 स्त्रिष्टुप् । पूर्णाहुतौ विनियोगः’ । एवमग्नेऽपि विनियोगः । ‘मूर्ध्नां  
 दिवो भरद्वाजो वैश्वानरस्त्रिष्टुप् । पुनरग्निर्वसुरुद्रादित्यास्त्रिष्टुप् । पूर्णा  
 दर्विविश्वेदेवाः शतक्रतुरनुष्टुप् । सप्त ते अग्ने सप्तवानग्निर्जगती । धामं  
 ते वामदेव आपो जगती’ । ‘ॐ समुद्रादूर्मि० । ॐ मूर्ध्नां दिवो०  
 ॐ पुनस्त्वारुद्रा० ॐ पूर्णादर्वि० । ॐ सप्तते अग्ने० । ॐ धामं ते०  
 ऊमिं स्वाहा’ इति । यजमानस्तु ‘इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः  
 शतक्रतवे सप्तवतेऽग्नयेऽद्भ्यश्च न मम’ इति त्यजेत् । कातीयानां तु  
 ‘मूर्ध्नां दिव इत्येव पूर्णाहुतिमन्त्रः’ । ‘अग्नय इदं न मम’ इति त्यागः ।  
 सामगानां तु प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता । यशस्कामस्य यज-  
 नीयप्रयोगे विनियोगः’ । ‘पूर्णहोमं यशसा जुहोमि योऽस्मै जुहोति वर-  
 मस्मै ददाति । वरं वृणे यशसा भामि लोके स्वाहा’ इत्यनेन स्तुवेणैव



होमः । इन्द्राय इदं न ममेति त्यागः । ततो वसोर्धाराया होष्यामीति सङ्कल्प्य यजमानो वसोर्धारां जुहुयात् । मन्त्रास्तु, अग्निमीळ इति नवानां मधुच्छन्दा अग्निर्गायत्री । वसोर्धारायां विनियोगः । विष्णोर्नु-  
कमिति षण्णां दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप् । आते पितरिति पञ्चदशानां  
गृत्समदो रुद्रस्त्रिष्टुप् । स्वादिष्टयेति नवानां मधुच्छन्दः पवमानसोमो  
गायत्री । महावैश्वानरसाम्नो वैश्वानरऋषिर्वैश्वानरो देवता पथ्याबृहती-  
छन्दः । ज्येष्ठसाम्नो भरद्वाजऋषिर्वैश्वानरो देवता त्रिष्टुप् छन्दः । वसो-  
र्धारायां विनियोगः । ' वसोर्धारां जुहोति ' इत्यनुवाकमपि पठन्ति  
शिष्टाः । ' वसोर्धाराहोमस्तु महादानजलाशयोत्सर्गादौ नास्तीति  
बहवः । ततः पूर्णपात्रविमोकादि च यथाशाखं समाप्य आचार्यसहिता  
ऋत्विजः सर्वोषधीभिरनुलिप्ताङ्गपत्नीपुत्रादिसहितं यजमानं स्वस्वशा-  
खीयैर्नन्त्रैर्नवग्रहपीठसमीपस्थकलशोदकेन सम्पातकलशोदकेन च अभि-  
विश्वेयुः पौराणैश्च । ते च—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।

आखण्डलोऽग्निर्भगवान्यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥

वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।

ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥

क्रीत्तिलक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।

बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥

एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ।

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ॥

महास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥

ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ।

देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥

अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।

औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥

ऋतः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।



एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥

‘ॐ तच्छंयोरावृणीमहे’ इति ।

ततो यजमानः स्नात्वा शुक्लमाल्यगन्धाम्बरधर आचार्यादीन्सम्पूज्य  
तेभ्यो दक्षिणां दद्यात् । तत्राचार्याय धेनुः । ब्रह्मणे कृष्णोऽनङ्गान् ।  
एवं सदस्यत्विग्द्वारपालादिभ्यो यथाशक्ति ।

तथा—

धेनुः शङ्खस्तथाऽनङ्गान् हेम वासो हयः क्रमात् ।

कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥

ग्रहानुद्दिश्य देयाः । ततः शक्त्या ब्राह्मणान् भोजयेत् । सङ्कल्पये-  
द्वाऽशक्तौ । ततो दीनानाथेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दद्यात् । मण्डलदे-  
वतानां ग्रहपीठदेवतानां चोत्तरपूजां कृत्वा, यान्तु देवगणाः, अभ्यार-  
मिद्वयो० ‘उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०’ इति ता उत्थाप्य विसृज्य मण्डपादीन्  
प्रतिमादींश्च सर्वान् सम्भारानाचार्याय प्रतिपाद्य, ‘यस्य स्मृत्या०,’  
प्रमादात् कुर्वतां कर्मेति पठित्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा विप्राशिषो गृहीत्वा  
वाञ्छामस्कृत्य सुहृद्युतो भुञ्जीतेति सर्वं शिवम् ॥

इति श्रीभट्टशङ्करात्मजनीलकण्ठकृते दानमयूखे दानपरिभाषाप्रयोगः ।

अथ दानानि ।

मात्स्ये—‘अथातः सम्प्रवक्ष्यामि’ इत्यादिना षोडश महादानानि  
उक्तानि । यथा—

आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम् ।

हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् ॥

कल्पपादपदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम् ।

हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च ॥

हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ।

पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च ॥

द्वादशं विश्वचक्रं च ततः कल्पलतात्मकम् ।

सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च ॥

महाभूतघटस्तद्वत् षोडशः परिकीर्तितः ।

तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ ॥

महादानमखं कुर्याद्विप्रैश्चैवानुमोदितः । इति ।



तथा—

षोडशारत्निमात्रं तु दश द्वादश वा करान् ।

मण्डपं कारयेद्विद्वान् चतुर्भद्रासनं बुधः ॥

‘ भद्रासनानि द्वाराणि ’ इति केचित् । ‘ कुण्डसमीपान्यासनानि ’ इति परे ।

तथा—

सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकराऽथवा ।

तन्मध्ये तौरणं कुर्यात्सारदारुमयं दृढम् ॥

षोडशहस्तपक्षे सप्तहस्तदशद्वादशहस्तयोः पञ्चहस्तेति । सा च पूर्वमेव निर्णीता । तस्यां मध्यगतप्राक्सूत्रे पूर्वपश्चिमयोः शाकेङ्गुदीदेवदारुश्री-  
पर्णीवित्त्वकदम्बकाञ्चनादीनामन्यतमनिर्मितं सप्तहस्तं चतुरस्रं स्तम्भ-  
द्वयं निखेयम् । हस्तद्वयं भूमौ स्तम्भयोरन्तरालं तु हस्तचतुष्टयम् ।  
तयोरुपरि हस्तमिता चूडा । हस्तमितं त्यक्त्वा छिद्रं वा कार्यम् ।  
एवमुत्तरङ्गोऽपि स्तम्भसजातीयकाष्ठघटितः पञ्चहस्तः । तयोर्वितस्तिमात्रं  
त्यक्त्वा कृतविलः स्तम्भचूडयोर्वितस्तिमात्रचूडास्वकराभ्यां वा स्तम्भ-  
विलयोर्निवेश्यः । तदेतत्तौरणम् । उत्तरङ्गमध्येऽधोभागे लौहं कटकमकुंशं  
वा कीलेन निवेश्य तदुत्तरङ्गकाष्ठात्पडङ्गुलावलम्बितुलावलम्बनाय । तुला  
तु पूर्वोक्ता काष्ठमयी दशाङ्गुलसूत्रवेष्टनस्थूला चतुर्भिः सार्द्धैर्वा चतुर्भि-  
र्हस्तैर्दीर्घा वर्तुला प्रान्तयोर्मध्ये च षडङ्गुलोन्मिता चतुरस्रा कार्या ।  
तस्यां च तुलावदीर्घं पट्टद्वयं चतुष्टयं वा निवेश्यान्तयोर्मध्ये च पट्टत्रयं  
षडङ्गुलं निवेश्य मध्ये चान्ये चतुर्विंशतिर्बन्धा निवेश्याः सौवर्णाढ्याः ।  
तस्याः षडङ्गुलयोरन्तयोरधोभागे वडिशकृति कटकद्वयं निवेश्य तन्मध्ये  
चोर्ध्वभाग एकम् । ततस्ताम्रपलानां दशाष्टपदशतैः क्रमात्पञ्चचतुःसार्द्ध-  
त्रिप्रादेशव्यासवर्तुले पञ्चचतुरस्यङ्गुलोच्छ्रितप्रान्ते ताम्रचतुर्वलयान्विते  
फलके लौहाभिस्त्रिहस्ताभिश्चतसृभिः शृङ्खलाभी रज्जुभिर्वर्तुलान्तयो-  
रवलम्बयेत् । यथा फलकयोर्भूमेश्च वितस्तिमितमन्तरं भवति । हेमा-  
द्विरूपनारायणादिभिश्च काष्ठमये फलके उक्ते । तथा—

कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि चतुर्विधु विचक्षणः । सुमेखलायोनियुतानि  
तानि सम्पूर्णकुम्भानि सहासनानि । सुताम्रपावद्वयसंयुतानि सयज्ञपा-  
त्राणि सविष्टाणि । हस्तप्रमाणानि निलाज्यपुष्पधूपोपहाराणि सुशोभ-



नानि । पूर्वोत्तरेहस्तमिताऽथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय । 'विस्तारायामो-  
च्छ्रायैहस्तमिता' इति केचित् । 'वितस्त्युच्छ्राया' इति हेमाद्रिः । तदुक्तं—

गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम् ।

वप्रद्वययुतां वेदीं वितस्त्युच्छ्रायसंयुताम् ॥

मात्स्ये—

द्विरङ्गलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः ।

अङ्गलोच्छ्रायसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥

त्र्यङ्गलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथितो बुधैः । इति ॥

तथा—

अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत् ॥

प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत् ।

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ।

कल्पकोटिशतं यावत्तस्मिँल्लोके महीयते ॥

कर्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजो

भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः ।

श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी

दीप्तप्रतापजितसर्वमहीपलोकः ॥

यो दीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः

कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके ।

यो वा शृणोति पठतीन्द्रसमानलोकं

प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टम् । इति ॥

अथ तुलापुरुषदानप्रयोगः । तत्र अधिवासनात्पूर्वदिने कृतैकभक्ता-  
दिरधिवासनदिने यजमानो देशकालौ सङ्कीर्त्य ब्रह्महत्यादिसर्वपापना-  
शपूर्वकसर्वमन्वन्तरकालावच्छिन्नसर्वलोकपालस्थानाधिकरणकवासोत्तर-  
कालाप्सरोगणाधिष्ठितकालरणत्किङ्किणीगणमण्डितार्कवर्णविमानकरणवै-  
कुण्ठभुवनगमनानन्तरकल्पकोटिशतावधिपूजायुक्तविष्णुपुरवासोत्तराखिल-  
भूपालमौलिमणिमणिक्रयमालोपरञ्जितचरणपीठवविशेषितराजराजत्व-  
श्रद्धानुविद्धयज्ञसहस्रयाजित्वप्रदीप्तप्रतापाशेषमहीपालविजयकामो विष्णु-  
प्रीतिकामो वा श्रः तुलापुरुषदानमहं प्रतिपादयिष्ये इति सङ्कल्प्य,



एकस्यां प्रतिमायां गोविन्दं, परायामुमापतिविनायकौ च गोविन्दाय नम उमापतिविनायकाभ्यां नम इति संपूज्य, विप्रत्रयं च संपूज्य, विप्राज्ञां गृहीत्वा, षोडश मातृः सप्त वसोर्धाराश्च संपूज्य, नान्दीश्राद्धपुण्याहवाचनगुहृत्विग्द्वारपालवरणतदीयमधुपर्कपूजनानि पूर्वाह्णे कृत्वाऽपराह्णे गुरुसहितो मण्डपपूजां कुर्यात् । तत ऋत्विजः प्रतिकुण्डमेकैकं कलशमपि पूर्वोक्तैर्मन्त्रैः स्थापयेयुः । 'कलशस्थापनं गुरुः कुर्यात्' इति परे । तत ऋत्विजः स्वस्वकुण्डेऽग्निं स्थापयेयुः । गुरुस्तु महावेद्यां षोडशारं ग्रहवेद्यां च सर्वतौभद्रं विलिख्य तदेवतास्तस्यामेव वेद्यां प्रतिमासु वा सूर्यादिवनस्पत्यन्तैकपञ्चाशदेवताश्च संपूज्य नवग्रहवेदिकलशस्थापनतदभिमन्त्रणानि प्राग्वत्कृत्वा सर्वकर्माध्यक्षतया तिष्ठेत् । ऋत्विजस्तु ग्रहादिहोमसूक्तजपद्वारा सूक्तपाठान्प्राग्वत्कृत्वा स्वष्टकृदादिपूर्णाहुतिप्राक्तनं कर्म कुर्युः ।

भूमिर्भूमिमगान्माता भूमिर्मातरमप्यगात् ।

भूयाम पुत्रैः पशुभिर्योऽस्मान्द्वेष्टि स भिद्यताम् ॥

इति भूमिं स्पृशेत् । ततस्तोरणस्पर्शः ।

तुलायज्ञस्य पूर्वस्यां सुप्रभं नाम तोरणम् ।

महावीर्यं महाकायं सुवर्णसदृशप्रभम् ॥

अत्र द्वारे स्थितः शैलो माल्यवांश्च महाद्युतिः ।

एह्येहि सुप्रभ तोरण, तुलायज्ञं रक्ष, विघ्नं नाशय । 'अग्निमीले' इत्यावाहनम् ।

दक्षिणाशां गतं यस्य भीमाख्यं नाम तोरणम् ।

महावीर्यं महाकायं भिन्नाञ्जनसमप्रभम् ॥

अत्र द्वारे स्थितः शैलो विन्ध्यो नाम महाचलः ।

एह्येहि भीमतोरण इत्यादि पूर्ववत् । 'इषे त्वा' इत्यावाहनम् ।

पश्चिमां दिशमाश्रित्य सुदंष्ट्रं नाम तोरणम् ।

तत्र द्वारि स्थितः शैलो गन्धमादनसंज्ञकः ॥

एह्येहि सुदंष्टृतोरण इत्यादि । 'अग्न आयाहि' इत्यावाहनम् ।

उत्तरस्यां दिशि तथा विकटं नाम तोरणम् ।

महावीर्यं महाकायं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥

तत्र द्वारि स्थितः शैलो हिमवांश्च महाद्युतिः ।



एहोहि विकटतोरण इत्यादि । 'शं नो देवीः' इत्यावाहनम् ।  
पूर्वादिद्वारनामानि—

पूर्वं द्वारं वितानं स्यादक्षिणं पुष्पकं भवेत् ।

पश्चिमं तु घनं नाम कामदं चोत्तरं स्मृतम् । इति ॥

ततः एहोहि वितानद्वार इति तत्तन्नामभिश्चतुर्द्वारावाहनं कार्यम् ।  
अथ कुङ्कुमपुष्पधूपदीपनैवेद्यबलीनादाय पूर्वभागे सुभद्राय ऋग्वेदमूर्तये  
इन्द्रदेवत्याय माल्यवत्पर्वतसहिताय वितानाख्यपूर्वद्वाराश्रिताय द्वारपा-  
लसहिताय सुप्रभनाम्नेऽश्वत्थतोरणाय नम इति पूजयेद्बलिं च दद्यात् ।  
दक्षिणे शोभनाय यजुर्वेदमूर्तये यमदेवत्याय विन्ध्यपर्वतयुताय पुष्पका-  
ऽऽख्यदक्षिणद्वारमाश्रिताय द्वारपालसहिताय भीमनाम्ने औदुम्बरतो-  
रणाय नम इति । पश्चिमे सुधर्माय सामवेदमूर्तये वरुणदेवत्याय  
गन्धमादनसहिताय घननामपश्चिमद्वाराश्रिताय सुदंष्ट्रप्लक्षतोरणाय नम  
इति पूजयेत् । उत्तरे अथर्ववेदमूर्तये सोमदेवत्याय हिमवत्पर्वतसहिताय  
कामदद्वारमाश्रिताय द्वारपालसहिताय विकटाऽऽख्यवटतोरणाय नम  
इति पूजयेत् । मण्डपस्तम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नम इति पूजयेत् ।  
वंशेषु 'किन्नरेभ्यो नमः' पृष्ठे 'पन्नगेभ्यो नमः' । ततः 'क्षेत्रपालाय'  
मण्डपाधः पूजयेद्बलिं दद्यात् ।

कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः ।

शङ्कुर्कणः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ॥

ब्रह्मा नागश्च पूर्वादिशैलेषु ध्वजनायकाः ।

'कुमुदसहिताय पूर्वध्वजाय नमः' इति गन्धादि दद्यात् । एवं कुमु-  
दाक्षसहिताय, इत्यादिदश ध्वजान् सदेवान् पूजयेत् । गुरुर्यजमानस-  
हितः पुष्पधूपौ माषभक्तबलिं चादाय तूर्यनादं कारयेन्मण्डपपूर्वद्वारदेशे ।

एहोहि सर्वामरसिद्धसाध्यै-

रभिष्टुतो वज्रधराऽमरेश ।

संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन

रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

इतीन्द्रमावाह्य 'इन्द्राय नमः' इति संपूज्य, इन्द्राय साङ्गाय सप-  
रिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय एष पुष्पादिसहितो माषभक्तबलिर्न  
ममेति बलिं दद्यात् । एवमाग्नेयादिष्वभ्यादिभ्यः । मन्त्रास्तु—



एहोहि सर्वाऽमरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट ।  
 तेजोवता लोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ॥  
 एहोहि वैवस्वत धर्मराज सर्वाभिरर्चित दिव्यमूर्ते ।  
 शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥  
 एहोहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः ।  
 ममाध्वरं पाहि शुभाऽधिनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥  
 एहोहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः ।  
 विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥  
 एहोहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाऽधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः ।  
 प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥  
 एहोहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।  
 सर्वोपधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥  
 एहोहि विश्वेश्वर नः खिशूलकपालखट्वाङ्गकरेण सार्द्धम् ।  
 लोकेन भूतेश्वर यज्ञसिद्धयै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥  
 एहोहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।  
 यक्षोरगेन्द्रामरलोकसार्द्धमनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥  
 एहोहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।  
 सर्वस्य धातास्यभितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

ततः पूर्वस्यां दिशि किञ्चिद्भूमिमुपलिप्य तत्र—

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।

ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥

एते ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालो गणैः सह ॥

रक्षन्तु मण्डपं सर्वे व्रन्तु रक्षांसि सर्वतः ।

त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो  
 भूतेभ्यो नमः । देवेभ्यः, दानवेभ्यः, गन्धर्वेभ्यः, यक्षेभ्यः, राक्षसेभ्यः,  
 पन्नगेभ्यः, ऋषिभ्यः, मनुष्येभ्यः, गोभ्यः, देवताभ्यः, ब्रह्मणे, विष्णवे,  
 रुद्राय, क्षेत्रपालाय, गणेभ्यो नम इति संपूज्य मापभक्तवर्ति दद्यात् ।  
 ततः साचार्यऋत्विक्नो यजमानश्चरणौ प्रक्षाल्य वेद्यामुपविश्य षोडशारे



तुलां संस्थाप्य तस्यां दक्षिणप्रान्तादारभ्य सुवर्णादिधातुबन्धेषु सूत्रबन्धेषु वा चतुर्विंशतिदेवता आवाह्य पूजयेत् । ताश्च— ईशः, शशी, मारुतः, रुद्रः, सूर्यः, विश्वकर्मा, गुरुः, अङ्गिरोऽग्निः, प्रजापतिः, विश्वेदेवाः, जगद्विधाता, पर्जन्यशम्भू, पितृदेवताः, सौम्यः, धर्मः, अमरराजः, अश्विनौ, तुलेशः, मित्रावरुणौ, मरुद्गणः, धनेशः, गन्धर्वः, जलेशः, विष्णुः इति । ततस्तिष्ठपु प्रतिमासु गोविन्दसूर्यधर्मराजानावाह्य संपूज्य गोविन्द-प्रतिमां द्वादशाङ्गुलमुक्तादाभ्रा सुवर्णशृङ्खलया वा तुलामध्ये च लम्बयेत् । सूर्यधर्मराजौ तु तुलासमीप एव स्थाप्यौ । ततः सर्वे ऋत्विजः शान्तिं पठेयुः । ततो यजमानः कृताधिवासनास्य साङ्गतासिद्धये गुर्वत्विग्जापकेभ्य इमां दक्षिणां संप्रददे इति शक्त्या दक्षिणां कुण्डलोपवीतकटकाङ्गुलीयवासांसि च दद्यात् । द्विगुणं गुरवे । तद्दिने यजमानगुर्वत्विग्द्वारपालानामुपवासोऽशक्तौ नक्तम् । जागरश्च नृत्यगीतादिना । एवं पूर्ववृत्तशक्तौ सद्यो वाऽधिवासनं कृत्वा परेद्युः कृतनित्यकर्मा यजमानः स्वस्ति वाचयेत् । ऋत्विजः पूर्ववत्स्वस्वकुण्डे पूर्णाहुतिं स्वस्वशाखया जुहुयुः कर्मशेष समापयेयुश्च । अत्र ब्रह्मदक्षिणा पूर्णपात्ररूपा नास्ति । ‘अधिवासनदक्षिणातुलाद्रव्यदानेनान्यत्सिद्धेः’ इति पितामहचरणानामाशयः । ततो ऋत्विजः पुत्रपत्नीयुतं यजमानं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कुण्डद्वारग्रहसमीपस्थकलशोदकैरभिषिञ्चेयुः स्वस्वशाखीयैर्मन्त्रैः पौराणैश्च । ते तु प्रदर्शिताः ‘सुरास्त्वाम्’ इत्यादयः । यजमानस्तु सर्वोपश्रयतुलितः स्नात्वा शुक्लमात्याम्बरधरः पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा सफलकां तोरणाञ्जलभ्रितां तुलां त्रिः प्रदक्षिणीकृत्यानुमन्त्रयेत् ।

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमाश्रिता ।

साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना ॥

एकतः सर्वसत्यानि तथाऽनृतशतानि च ।

धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापिताऽसि जगद्धिते ॥

त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता ।

मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते ॥

योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ।

स एषोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः ॥

ततः—

नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ।

त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात् ॥



इति तत्प्रतिमामनुमन्य सतुलं गोविन्दं संपूज्य पुनस्तं प्रदक्षिणीकृत्य  
सखङ्गचर्मकवचालङ्कृतौ हैमौ धर्मराजसूर्यौ तयोर्वामदक्षिणकराभ्यामा-  
दाय तुलामव्यावलम्बितं गोविन्दं पश्येत् । तुलोत्तरशिख्य आरुह्योप-  
विशेत्तत्र प्राङ्मुखः ।

मात्स्ये—

ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः ।

समादभ्यधिकं यावत्काञ्चनं चातिनिर्मलम् ॥

पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नराधिप ।

यत्तु 'पूर्वं द्रव्यन्यासः पश्चात्तदारोहणम्' इति गोपथे तन्नानापुराण-  
वचनविरोधात् अथर्वशाखीयविषयम् इति दानसौख्यादौ । गोदोहं  
यावत्स्थित्वैतदुदीरयेत् ।

नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि ।

पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥

त्वया धृतं जगत्सर्वं सह स्थावरजङ्गमम् ।

सर्वभूतात्मभूतेशे नमस्ते सर्वधारिणि । इति ॥

बह्विपुराणे तु सुहूर्तमात्रावस्थानमुक्त्वा—

जपेन्मन्त्रांस्तु पौराणान्पुनन्तु नेति च तृचम् ।

यथा पवित्रमतुलमपत्यं जातवेदसः ॥

तथा स्वेन पवित्रेण सुवर्णं तु पुनातु माम् ॥

रुद्रस्य सुमहत्तेजः कार्तिकेयस्य संभवः ।

यथाग्निर्देवताः सर्वाः सुवर्णं च तदात्मकम् ॥

तथा—

यत्कृतं मे स्वकायेन मनसा वचसा तथा ।

दुष्कृतं यत्सुवर्णस्थं यातु मुक्तिं परां शुभाम् । इति ॥

मात्स्ये—

ततोऽवतीर्य गुरवे पूर्वमर्द्धं निवेदयेत् ।

ऋत्विग्भ्योऽपरमर्द्धं च दद्यादुदकपूर्वकम् ॥

गुरवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत् ।

अत्रेतत्थं प्रयोगः । वेदिपश्चिमत उपविश्य सुवर्णादिकुशोदकेन प्रोक्ष्य  
जलाक्षतकुशानादाय मासपक्षतिथ्यागुह्यस्य 'एकैकमन्वन्तरकाल  
इत्यादिराजगजत्वकामोऽहम्' इत्यन्तं प्रागुक्तं महाप्रयोगमुक्त्वा



पापक्षयकामो वा विष्णुप्रीतिकामो वा इत्याद्युल्लिख्यामुकगोत्रायासु-  
कशर्मणे गुरवेऽमुकशर्मेदं तुलापुरुषसुवर्णाद्धमग्निदैवतं संप्रददे न मम  
इति गुरवेऽर्द्धं सुवर्णं दद्यात् । एवमपराद्धमृत्विग्भ्यः । दानसागरादि-  
मते तु वरणक्रमेणाऽऽचार्यकराधःस्थितोत्तानकरेभ्यः सर्वेभ्यो युगपदेव  
गोत्राद्युच्चारपूर्वकमुत्सृज्याऽऽचार्यादिभ्यो यथाविभागं प्रतिपादयेत् ।  
'अदक्षिणं तु यद्दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्' इत्युक्तत्वाद्गुरुदक्षिणापेक्षया  
'गुरवे ग्रामरत्नादि' इति श्रुतं दक्षिणात्वेनान्वेति । ग्रामरत्नदक्षिणाऽपि  
क्षत्रियकर्तृके दाने । अन्यकर्तृके तु सुवर्णदक्षिणा इति हेमाद्रिः ।  
ततः पुनर्मासाद्युल्लिख्य 'कृतैस्तुलापुरुषमहादानप्रतिष्ठासिद्धयर्थं शतं  
सुवर्णदक्षिणाग्रामरत्नानि गुर्वृत्विग्भ्योऽहं संप्रददे' इति तद्धस्ते जलं  
क्षिपेत् । पश्चादाचार्यादिभ्यो भागशः प्रतिपादयेत् ।

रूपनारायणादयस्तु 'गुरवेऽर्द्धदानानन्तरं सुवर्णमात्रं दक्षिणां दत्त्वा  
पुनस्तेभ्योऽष्टक्रत्विग्भ्योऽर्द्धदानानन्तरमेकैकं सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्'  
इत्याहुः । अन्ये तु, 'अन्येषामपि तुलाद्रव्यदानानुज्ञार्थं ग्रामरत्नानि  
निवेदयेत्' दक्षिणा तु 'सर्वेषामेव दानानाम्' इति सामान्यन्यायेन  
सुवर्णं तत्रापि सङ्ख्याकाङ्क्षायां गोपथोक्तसहस्रसङ्ख्यान्वयः, सोऽपि  
कृष्णलादिभिर्निर्वाह्य इत्याहुः ।

अत्र दानसारे त्रयः पक्षाः । आद्येऽर्द्धं गुरवेऽर्द्धमृत्विग्भ्य इति । तत्र  
'अदक्षिणं तु यद्दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्' इति वचनाद्दक्षिणापेक्षायां  
'गुरवे ग्रामरत्नादि' इत्युक्तम् । जापकेभ्यः पुनरन्यद्वयं देयम् । तेषु  
ऋत्विक्त्वाभावात् । द्वितीयस्तु 'प्राप्य तेषामनुज्ञां तु तथाऽन्येभ्योऽपि  
दापयेत्' इति । तत्र गुरवे तुलाद्रव्यस्याऽर्द्धश्रुतार्थो वांशः । तुलाविकृ-  
तिभूते धरादाने धराद्धं तु चतुर्भागं गुरवे तु निवेदयेदिति श्रुतमत्रापि  
परिमाणापेक्षायाऽन्वेति । सत्रोक्तेर्वा द्विपादिव्यवस्था ज्योतिष्टोमे, येन  
वा तुष्यते गुरुरिति सामान्योक्तं वा । दीनानाथविशिष्टादीन्पूजयेद्  
ब्राह्मणैः सहेत्यनेन तृतीयः पक्षः । तत्रापि गुरवे दाने द्वितीयपक्षोक्तैव  
व्यवस्थेति 'विशिष्टा ब्राह्मणा अपि' । अनयोः पक्षयोर्जापकादि-  
भ्योऽप्येतन्मध्यस्थसुवर्णदाने न क्षतिरिति । अत्र पक्षत्रयेऽपि 'गुरवे  
ग्रामरत्नादि' । 'सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेऽप्यते' इत्यादिनोक्तं  
सुवर्णमेव प्रत्येकं समुदायेन वा देयमिति ।



मदनरत्ने 'गुर्वृत्तिगनुह्याऽन्येभ्योऽपि देयम्' इति द्वितीयपक्षे 'तुलाद्रव्यं त्रेधा विभज्यैकोऽंशो गुरवे देयोऽन्य ऋत्विग्भ्यः, परो द्वारपालेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च' । तृतीयपक्षे तु 'एतत्तुलितसुवर्णं गुरवे ऋत्विग्भ्यो द्वारजापकेभ्योऽन्येभ्यश्च दीनानाथेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दातुमहमुत्सृज्य' इत्युत्सृज्य दद्यात् । सर्वपक्षे 'दक्षिणा गुर्वृत्तिग्भ्य एव नान्येभ्यः' इत्युक्तम् । अत्र 'प्रतिग्रहे ब्राह्मणे यजमाने सप्रणवं स्वस्तीति शब्दमुच्चैः पठेयुः । क्षत्रिये निरोङ्कारं मन्द्रम् । वैश्ये उपांशु । शूद्रे मनसा । ततो द्रव्यं स्पृष्ट्वा स्वशाखोक्तां कामस्तुतिं पठेत्' इति रूपनारायणीये । अथर्वणानां तु 'क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रसाविशत्कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते भूमिस्त्वा प्रतिगृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् । माऽहं प्राणेन मात्मना प्रजया प्रतिगृह्य विराधिषीय' इति । ततः सहस्रं विप्रान्भोजयेत्सङ्कल्पयेद्वा । ततः पुण्याह्वाचनं कृत्वा स्थापितदेवतापूजनं कुर्याद्यजमानः । गुरुस्तु 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् । इष्टकामप्रसिद्धयर्थं पुनरागमनाय च' इत्याशुक्त्वा पीठादिदेवता विसर्जयेत् । ततः मण्डपादिसामग्रीमाचचार्याय प्रतिपाद्यामि, इत्युक्त्वा गुरुसात्कुर्यात् । मात्स्ये—

न चिरं धारयेद्देहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः ।

तिष्ठेद्भयावहं यस्माच्छोकव्याधिकरं नृणाम् ॥

शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति पुष्कलम् । इति ॥

इति तुलापुरुषदानविधिः ।

अथ रजतादितुलाविधिः ।

भविष्योत्तरे—

अनेनैव विधानेन केचिद्वृष्यमयं पुनः ।

कर्पूरेण तथेच्छन्ति केचिद्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥

अनेनेति मुख्यतुलापुरुषदानकथितेनेत्यर्थः । रजतादितुलापुरुषफलं च—

यत्पापं स्वकुले जातं त्रिःसप्तपुरुषैः कृतम् ।

तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रममौ तूलं यथा तथा ॥

इत्यादिना गोपथब्राह्मणादौ पापविशेषक्षयसूर्यलोकावाप्त्यादिरूपमुक्तम् ।



तथा सिततृतीयायां नार्यः सौभाग्यदास्तुलाः ।  
कुङ्कुमेन प्रयच्छन्ति लवणेन गुडेन वा ॥  
न तत्र मन्त्रा होमो वा एवमेव प्रदापयेत् ।

विश्वामित्रः—

आदित्ये राहुणा ग्रस्ते सुवर्णैस्तोलयेत्तनुम् ।  
सौमग्रहे तु रौप्येण यथा दानं तथा शृणु ॥  
प्रवर्यस्य मुखे युक्त उत्पन्नः पक्षिदेहतः ।  
सर्वपापहरायैतद्दामि प्रीयतां विधुः ॥  
इत्युच्चार्य जलं त्वप्सु निक्षिपेद्विजसत्तमः ।  
प्रीयन्तां पितरः कांस्ये ताम्रे चैव पितामहः ॥  
लवणे सिन्धुजे लक्ष्मीः प्रीयतां पार्वती गुडे ।  
गन्धैर्गुडैर्वा वासोभिः सौभाग्यं लवणे परम् ॥  
प्रीयतां विश्वधात्रीति दानमन्त्रोऽभिधीयते ।  
तुलापुरुषतो राजन्याति तत्परमं पदम् ॥  
सर्वपापविशुद्धात्मा मुक्तिं यात्यपुनर्भवाम् ।

अत्र 'सर्वपापहरायैतदभिप्रीयतां विधुरिति रूप्ये । पितरः प्रीयन्ता-  
मिति कांस्ये । गन्धगुडवासस्तुलायां पार्वती । लवणे विश्वधात्री ।

आत्मतुल्यं सुवर्णं वा रजतं रत्नमेव वा ।

यो ददाति द्विजाध्येभ्यस्तस्याप्येतत्फलं भवेत् ॥

इत्युक्तत्वाद्गन्तुलायामपि सुवर्णतुलाफलमेव । इति कर्तव्यताऽपि  
सैवेति कैचित् ।

इति रूप्यादितुलापुरुषः ।

अथ नानारोगघ्नादिस्तुलाविधिः ।

गारुडे—

तुलापुरुषदानस्य शृणु मृत्युञ्जयोदकम् ।  
अथ लोहं प्रदातव्यं सर्वरोगोपशान्तये ॥  
कांस्यं च यक्ष्मके देयं त्रपुं चाशौं विकारके ।  
अपस्मारे च सीसं स्यात्ताम्रं कुष्ठे सुदारुणे ॥  
पित्तलं रक्तपित्ते च रूप्यं प्रदरमेहयोः ।  
सौवर्णं सर्वरोगेषु प्रदद्यान्मृत्युनोदनम् ॥



फलोद्भवं तथा देयं ग्रहणीदारुणे रुजि ।  
गौडं भस्मकरोगे च पौगं तु गण्डमालके ॥  
जाङ्गलं चाग्निमान्द्ये च रोमोत्पाते तु पौष्यकम् ।

जाङ्गलं काष्ठजम् ।

मधूद्भवं तथा देयं कासश्वासजलोदरे ।  
घृतोद्भवं तथा देयं छर्दिरोगोपशान्तये ॥  
क्षीरं पित्तविनाशाय दाधिकं भगवारणे ।  
लावणं वेपनाशाय पैष्टं ददुविनाशने ॥  
अन्नं च सर्वरोगस्य नाशने स्मृतमेव च ।

अत्र तत्तत्तुलादाने तास्ताऽधिदेवताः पूज्याः । ताश्च गारुडे—ग्रीहे  
महाभैरवः । कांस्थेऽश्विनौ पूषा च । सीसके वायुः । ताम्रे सूर्यः ।  
पैत्तले कुजः । रौप्ये पितरः । सुवर्णे सर्वदेवताः । फले सोमः । गुडे  
आपः । ताम्बूले विनायकः । कुसुमे गन्धर्वाः । जाङ्गलेऽग्निः । मधुनि  
यक्षः । घृते मृत्युञ्जयः । क्षीरे तारागणाः । दध्नि सर्पाः । पिष्टे  
प्रजापतिः । अन्ने सर्वदेवता इति ।

अथ घृतादितुलाविधिः ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

पुण्यं दिनमथासाद्य तृतीयायां विशेषतः ।  
गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ कुर्याद्धटं शुभम् ॥  
दारवं शुभवृक्षस्य चतुर्हस्तं प्रमाणतः ।  
सुवर्णं तत्र बध्नीयात्स्वशक्त्या घटितं धटे ॥  
सौवर्णं स्थापयेत्तत्र वासुदेवं चतुर्भुजम् ।  
शिक्यद्वयं तु बध्नीयात्स्थापयेत्पिटके ततः ॥  
तत्रारुहेत्सवस्त्रास्त्रः पुष्पालङ्कारभूषितः ।  
अग्नीष्टां देवतां गृह्य स्नापयित्वा घृतादिभिः ॥  
तुलादानस्य सर्वस्य विधिरेष प्रकीर्तितः ।  
प्रथमा तु घृतस्योक्ता तेजोवृद्धिकरी तुला ॥  
माक्षिकेण तु सौभाग्यं तैलेन बहुलाः प्रजाः ।  
वस्त्रस्य दिव्यवस्त्राणां प्राप्नोति तुलया ध्रुवम् ॥  
लवणस्य तु लावण्यमरोगित्वं गुडस्य तु ।  
असामान्यं शर्करया सुरूपं चन्दनेन च ॥



अवियुक्ता भवेद्भर्त्रा तुलया कुङ्कुमस्य च ।  
 न संतापो हृदि भवेत्क्षीरस्य तुलया सदा ॥  
 सर्वकामप्रदाः सर्वाः सर्वपापक्षयङ्कराः ।  
 यो ददाति तुलाः सर्वाः स गौर्यालयमाप्नुयात् ॥  
 मन्त्रेण दद्यादभिमन्त्रितां तु सकृत्तुलामेकतमां द्विजेभ्यः ।  
 स याति गौर्याः सदनं सुपुण्यं न शोकदौर्गत्यमुपाश्नुते पुमान् ॥  
 त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणं परिकीर्तिता ।  
 मां तोलयन्ती संसारादुद्धस्व नमोऽस्तु ते ॥  
 इत्यारुह्य क्षणं स्थित्वा चिन्तयित्वा हरप्रियाम् ।  
 अवरुह्य ततो दद्याद्वर्षपाद्यमथापि वा ॥  
 गुरुं संपूज्य त्रिविवत्सर्वालङ्कारभूषणैः ।  
 विसर्जयेन्नमस्कृत्य भोजयित्वा विधानतः ॥  
 शेषं द्विजेभ्यो दातव्यं स्त्रीभ्योऽन्येभ्यस्तथैव च ।  
 इष्टबन्धुविशिष्टानामाश्रितानां कुटुम्बिनाम् ॥  
 कदलीदलसंस्थां तु पञ्चपिण्डां हिमाद्रिजाम् ।  
 कर्पूरस्य तुलां पूज्य कुङ्कुमेन लभेत्तु ताम् ॥  
 गुडं वा यदि वा खण्डं लवणं वाऽपि तोलितम् ।  
 यो दद्यादात्मना तुलया नारी वा पुरुषोऽपि वा ।  
 पुमान्प्रद्युम्नवत्स स्यान्नारी स्यात्पार्वतीसमा ॥  
 तुलादानस्य सर्वस्य विधिरेष उदाहृतः ॥  
 इति रूप्यादितुलादानविधिः ।

### अथ रूप्यादितुलादानप्रयोगः ।

अत्र कस्मिंश्चित्पुस्तके भिन्नानुपूर्वी दृश्यते सा चेत्थम् । अथ सुवर्णभिन्न-  
 द्रव्याणां तुलादानप्रयोगः । तत्र द्रव्यभेदेन फलभेदः । तत्र रूप्येण तुलायां  
 सुवर्णतुलाफलमेव । इति कर्तव्यताऽपि पक्षे सैव । रत्नतुलायामपि तदेव  
 फलम् । रूप्येण प्रदरमेहनाशोऽपि । पित्तलेन रक्तपित्तनाशः । ताम्रेण  
 कुष्ठनाशः । कांस्येन यक्ष्मनाशः । त्रपुणाऽशोनाशः । सीसेनापस्मारनाशः ।  
 लोहेन सर्वरोगनाशः । घृतेन छर्दिनाशस्तेजश्च । गुडेन भस्मकसर्वरो-  
 गनाशः सौभाग्यं च । अत्र च योगसिद्धयधिकरणन्यायेनैकस्मात्प्रयो-  
 गादेकमेव फलम् । अत एकस्मिन्प्रयोग एकस्यैवोल्लेखः । एवमग्रेऽपि



द्वित्रिफलोक्तौ ज्ञेयम् । लवणेन सौभाग्यं लावण्यं च । मधुना सौभाग्यं  
 कासश्वासजलोदरनाशश्च । तैलेन प्रजाप्राप्तिः । क्षीरेण पित्तनाशः, सन्ताप-  
 निवृत्तिश्च । दध्ना भगन्दरनाशः । शर्करयाऽसापत्न्यम् । अन्नेन सर्व-  
 रोगनिवृत्तिः । पिष्टेन दद्रुनाशः । आम्रादिफलेन सङ्ग्रहणीनाशः ।  
 पूगफलैर्गण्डमालानाशः । कुङ्कुमेन सौभाग्यम् । तिलैः पापनाशः ।  
 पुष्पैर्बहुरोगनाशः । ताम्बूलेन मुखसौगध्यम् । चन्दनेन सौन्दर्यम् ।  
 गन्धेन सौभाग्यम् । वस्त्रैः सौभाग्यं वस्त्रप्राप्तिश्च । काष्ठैरग्निमान्द्यनाशः ।  
 सर्वैर्विष्णुप्राप्तिर्वा । इति फलोद्देशः ॥ अथ तत्तद्रव्यदेवताः । रूप्यस्य  
 पितरः । रत्नानां विष्णुः । पित्तलस्य भौमः । ताम्रस्य सूर्यः । कांस्यस्य  
 पूषाश्विनौ । त्रपुणो विष्णुः । सीसस्य वायुः । लोहस्य महाभैरवः ।  
 घृतस्य मृत्युञ्जयः । गुडस्याऽऽपः । लवणस्य विश्वधात्री । मधुनो यक्षः ।  
 तैलस्य विष्णुः । क्षीरस्य तारागणः । दध्नः सर्पाः । अन्नस्य सर्वदेवताः ।  
 पिष्टस्य प्रजापतिः । फलानां सोमः । पूगफलानामपि सोमः । कुङ्कुमस्य  
 गौरी । तिलानां विष्णुः । पुष्पाणां गन्धर्वाः । ताम्बूलस्य विनायकः ।  
 चन्दनस्य गन्धस्य च गन्धर्वाः । वस्त्राणां बृहस्पतिः । काष्ठानां वन-  
 स्पतिः । इति देवताः । [ तत्र रूप्यकर्पूरतुलयोः सुवर्णतुलाफलमेव, इति-  
 कर्त्तव्यताऽपि पक्षे सैव । रत्नतुलायामपि तदेव फलम् । फलेषु रोगेषु  
 च विशेष इति केचित् । तत्र वस्त्रे गन्धे कुङ्कुमे लवणे गुडे मधुनि च  
 सौभाग्यम् । वस्त्रेषु वस्त्रप्राप्तिश्च । लवणे लावण्यं च । कुङ्कुमे भर्त्रेऽवि-  
 योगश्च । तैले बहुलाः प्रजाः । सर्वरोगेषु लोहम् । यक्षमणि कांस्यम् ।  
 अर्शसु त्रपुः । अपस्मारं सीसम् । कुष्ठे ताम्रम् । रक्तपित्ते पित्तलम् ।  
 प्रदरमेहयो रूप्यम् । सर्वरोगेषु मृत्युनिवारणार्थं च सुवर्णम् । ग्रहण्यां  
 फलम् । भस्मके सर्वरोगेषु च गुडः । गण्डमालासु पूगफलम् । अग्नि-  
 मान्द्ये काष्ठम् । वायुजे रोमनाशे पुष्पम् । कासश्वासजलोदरेषु मधु ।  
 छर्दौ घृतं तेजोवृद्धयर्थं च । पित्ते क्षीरं सन्तापनिवृत्त्यर्थं च । भगन्दरे  
 दधि । कम्पे लवणम् । दद्रुणि पिष्टम् । सर्वरोगेष्वन्नम् । शर्करयाऽ-  
 सापत्न्यम् । चन्दने सौन्दर्यम् । सर्वासु वा तुलासु सर्वाणि फलानि ।  
 अब तत्तत्फलकामस्य तत्तद्रोगनिवृत्तिकामस्य वा तत्तद्रव्यतुला ज्ञेया ।

अथ तत्तद्रव्येषु देवताः । लोहे महाभैरवः । कांस्ये पूषाऽश्विनौ  
 च । सीसे वायुः । ताम्रे सूर्यः । पित्तले कुजः । रूप्ये पितरः । सुवर्णे  
 सर्वदेवताः । फले सोमः । गुडे आपः । ताम्बूले विनायकः । पुष्पे



गन्धर्वाः । काष्ठेष्वग्निः । मधुनि यक्षः । घृते मृत्युञ्जयः । क्षीरे तारा-  
गणः । दग्नि सर्पाः । पिष्टे प्रजापतिः । अग्ने सर्वदेवताः । ]

तुला तु शाकेङ्गुदीदेवदारुश्रीपर्णीवित्त्वकदम्बकाश्वनादिकाष्टमयी  
सार्द्धचतुरस्रहस्ता दशाङ्गुलसूत्रवेष्टनस्थूला वर्तुला प्रान्तयोर्मध्ये च  
षडङ्गुलमिता चतुरस्रा कार्या । तस्याः षडङ्गुलयोरन्तरयोरधोभागे  
वडिशकृत्तिकटकद्वयं निवेश्यम् । मध्ये चोर्ध्वभागे एकं तस्याः समा-  
न्तराश्चतुर्विंशतिबन्धा धातुमया निवेश्याः । एकं फलकद्वयमपि पञ्च-  
चतुःसार्द्धत्रिप्रादेशमितं व्यासवृत्तं चतुरस्रं वा पञ्चचतुर्यङ्गुलोच्छि-  
तप्रान्तबन्धनार्थं त्रिभिश्चतुर्भिर्वा कटकैर्युतं कार्यम् ।

अथ सांप्रदायिकः प्रयोगः । अथ कर्ता मासपक्षाशुक्लित्य अमुक-  
कामोऽमुकरोगनिवृत्तिकामः सर्वत्र 'गौरीसदनसुपुण्यप्राप्तिशोकदुर्गति-  
निवृत्तिकाम ईश्वरप्राप्तिकामो वाऽमुकतुलादानं करिष्ये इति सङ्कल्प्य  
गणेशपूजाचार्यवरणतत्पूजनानि कुर्यात् । स्वस्तिवाचनमातृकापूजना-  
भ्युदयिकभ्राद्धान्यपीति केचित् । तत आचार्यो दर्भेष्वासीनो दर्भान्धार-  
यमाणः प्राणानायस्य करिष्यमाणतुलादाननिर्विघ्नतासिध्यर्थं गणपति-  
पूजनं स्वस्तिवाचनं च करिष्ये इति सङ्कल्प्य गणेशपूजनं कृत्वा  
स्वस्तिवाचनं ब्राह्मणैर्वाचयित्वा पुनर्देशकालौ स्मृत्वा पूर्वोक्ततत्तद्द्वयेषु  
तां तां कामनां रोगनाशं चोल्लिख्य 'अमुकफलकामोऽमुकद्रव्यतुलादानं  
करिष्ये' इति सङ्कल्पयेत् । सर्वत्र 'विष्णुप्रीतिकामो वा', 'अस्मि-  
न्कर्मण्याचार्यकर्म कर्तुमाचार्य त्वां वृणे' इत्याचार्यं वृत्वा गन्धालङ्का-  
रादिभिः पूजयेत् । तत आचार्यः—यदत्र संस्थितं भूतम्० इति सर्पपान्वि-  
कीर्य, 'शुची वो हव्या' इति तृचेन, 'एतोन्विन्द्रम्' इति तृचेन, 'आपो  
हिष्ठा इत्यादिभिः कर्मभुवं संप्रोक्ष्य, 'स्वस्त्ययनं ताक्षर्यमिति मन्त्रद्वयं  
जप्त्वा पूर्वोक्तां महाभैरवादिकां तत्तद्द्रव्यदेवतां गोविन्दं सूर्यं धर्मराजं  
च प्रतिमाचतुष्टयं संपूज्य तुलां गन्धादिभिरलङ्कृत्य तस्यां धातुमयेषु  
सूत्रमयेषु वा चतुर्विंशतिबन्धेषु देवतास्तत्तन्नामभिश्चतुर्थ्यन्तनमोऽन्तै-  
रावाह्यं पूजयेत् । ताश्च ईशः १ शशी २ मारुतः ३ रुद्रः ४ सूर्यः ५  
विश्वकर्मा ६ गुरुः ७ अङ्गिरोमी ८ प्रजापतिः ९ विश्वेदेवाः १०  
जगद्विधाता ११ पर्जन्यशम्भू १२ पितृदेवताः १३ सौम्यः १४ धर्मः  
१५ अमरराजः १६ अश्विनौ १७ तुलेशः १८ मित्रावरुणौ १९ परुद्रगणः  
२० धनेशः २१ गन्धर्वः २२ जलेशः २३ विष्णुः २४ इति । ततस्तुला-



मुत्तरङ्गादिषु बद्धा फलकद्वयं तथाऽवलम्बयेद्यथा भूमेर्वितस्तिमात्रमुच्चं भवेत् । गोविन्दप्रतिमा च हेमशृङ्खला मुक्तादात्रा सूत्रान्तरेण वा द्वादशाङ्गुलेन तुलामध्येऽवलम्बनीया । ततो यजमानः पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा तुलां त्रिःप्रदक्षिणीकृत्यानुमन्त्रयेत् ।

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमाश्रिता ।

साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना ॥

एकतः सर्वसत्यानि तथाऽनृतशतानि च ।

धर्मार्थमकृतां मध्ये स्थापिताऽसि जगद्धिते ॥

त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता ।

मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते ॥

योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशतिः ।

स एषोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः । इति ॥

नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ।

त्वं हरे तारय त्वस्मानस्मात्संसारसागरात् ॥

इति गोविन्दमनुमन्त्र्य पुनस्तुलां गोविन्दं च संपूज्य पुनः प्रदक्षिणीकृत्य सूर्यं दक्षिणे करे धर्मराजं च वाम आदाय तुलावलम्बितं गोविन्दं पश्यन्मुत्तरशिक्ष्ये प्राङ्मुख उपविशेत् । ततोऽपरे शिक्ष्ये आचार्यादयो द्रव्यं न्यसेयुः । ततो मुहूर्तं गोदोहनमात्रं वा स्थित्वा पठेत्—

नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि ।

पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥

त्वया धृतं जगत्सर्वं सह स्थावरजङ्गमम् ।

सर्वभूतात्मभूतेशे नमस्ते सर्वधारिणि । इति ॥

ततोऽवतीर्थ देशकालौ स्मृत्वा अमुकफलकामोऽमुकरोगनिवृत्तिकामः सर्वत्र गौरीसदनुपुण्यप्राप्तिशोकदुर्गतिनिवृत्तिकाम ईश्वरप्रीतिकामो वा इदमात्मसमतोलितममुकद्रव्यममुकदैवतमाचार्याय ब्राह्मणेभ्यश्च संप्रददे इति दद्यादेतैर्मन्त्रैः ।

[ ते च—

अगम्यागमनं चैव परदाराभिमर्शनम् ।

रौप्यस्यास्य प्रदानेन तानि तश्यन्तु मे सदा ॥

असुरेषु समुद्भूतं रजतं पितृवल्लभम् ।

तस्मादस्य प्रदानेन रुद्रः संप्रीयतां मम ॥

इति रजनस्य ।



परापवादपैशून्यादभक्ष्यस्य च भक्षणात् ।  
तत्प्रजातं च यत्पापं ताम्रदानात्प्रणश्यतु ॥

इति ताम्रस्य ।

यानि पापान्यनेकानि मया कामकृतानि च ।  
कांस्यस्यास्य प्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥

इति कांस्यस्य ।

यानि पापान्यनेकानि मया कामकृतानि च ।  
लोहस्य तु प्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥

इति लोहस्य ।

घृतं गावः प्रसूयन्ते घृतं गोभ्यः प्रतिष्ठितम् ।  
घृतमग्निश्च देवश्च घृतं मे संप्रगृह्यताम् ॥  
घृतमग्निघृतं सोमस्तन्मयाः सर्वदेवताः ।  
घृतं प्रयच्छतः प्रीता भवन्त्यखिलदेवताः ॥  
आज्यं तेजो यदुद्दिष्टं प्राज्यं पापहरं स्मृतम् ।  
आज्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ॥  
आज्यं तेजोमयं चैव आज्यं तेजोमयं सदा ।  
तस्मादाज्यप्रदानेन अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति घृतस्य ।

तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः ।  
मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददस्व गुडं सर्वदा ॥

इति गुडस्य ।

यस्मादन्नरसाः सर्वे लवणेन विनाऽपि हि ।  
अस्वादवस्तुतद्दानादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति लवणस्य ।

यस्मात्पितृणां श्राद्धे च पीतं मध्वमृतोपमम् ।  
तस्मात्तस्य प्रदानेन रक्ष मां दुःखसागरात् ॥

इति मधुनः ।

तैलं पुष्टिकरं नित्यमायुष्यं पापनाशनम् ।  
अमाङ्गल्यहरं पुण्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति तैलस्य ।



अलक्ष्मीवारणं नित्यं सुसौभाग्यविवर्धनम् ।

क्षीरमङ्गलमायुष्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति क्षीरस्य ।

कामधेनोः समुद्रूतं विष्णोः प्रीतिकरं परम् ।

दधि तुभ्यं प्रदास्यामि बलं पुष्टिं च देहि मे ॥

इति दध्नः ।

अमृतस्य कुलोत्पन्ना इक्षुधारा हि शर्करा ।

सूर्यप्रीतिकरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति शर्करायाः ।

अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः ।

अन्नं ब्रह्माऽखिलत्राणमस्तु मे जन्मजन्मनि ॥

इत्यन्नस्य ।

पिष्टेऽन्नमन्त्रएव

इदं फलं मया विप्र प्रभूतं पुरतस्तव ।

तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

इति फलस्य ।

यदभूदङ्गसंलग्नं कुङ्कुमादिविलेपनम् ।

पार्वत्याः पार्वतिप्रीत्यै तुभ्यं दास्ये तदक्षयम् ॥

इति कुङ्कुमस्य ।

तिलाः पापहरा नित्यं विष्णोर्देहसमुद्भवाः ।

तिलदानेन सर्वं मे पापं नाशय केशव ॥

इति तिलानाम् ।

ह्लादयन्ति मनो यस्मात्तस्मात्सुरभयः स्मृताः ।

दत्ता ददतु मे नित्यमत्याह्लादं सतीं श्रियम् ॥

इति पुष्पाणाम् ।

ताम्बूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।

अस्य प्रदानाद्ब्रह्माद्याः शिवं ददतु पुष्कलम् ॥

इति ताम्बूलस्य ।

चन्दनावासमन्दारसखेष्टं दारकार्षित ।

चन्दनस्य प्रदानान्मे सान्द्रानन्दकरो भव ॥

इति चन्दनस्य ।



जटासांस्युद्भवां देवीमेणनाभिसमुद्भवाम् ।

भक्त्याऽहं संप्रदास्यामि मम सन्तु मनोरथाः ॥

इति कस्तूर्याः ।

शरण्यं सर्वभूतानां लज्जाया वारणं परम् ।

सुवेषधारित्वं यस्माद्वासः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इति वस्त्रस्य ।

सोमोद्भवानि दारूणि जातवेदःप्रियाणि च ।

तस्मादेषां प्रदानेन श्रियं देहि विभावसो ॥

इति काष्ठानाम् । इत्येतैर्मन्त्रैस्तत्तद्व्याणि दत्त्वा तत्तद्देवताभ्यः  
संकल्पयेत् ।

यथा—

अनेन रूप्यदानेन पितरः प्रीयन्तामिति वदेत् ।

तथा—

रत्नैर्विष्णुः । पित्तलेन भौमः । ताम्रेण सूर्यः । कांस्यदानेन पूषा-  
श्विनौ । त्रपुणो दानेन विष्णुः । सीसस्य दानेन वायुः । लोहदानेन  
महाभैरवः । धृतदानेन मृत्युञ्जयः । गुडदानेनाऽऽपः । लवणदानेन  
विश्वधात्री । मधुदानेन यक्षाः । तैलदानेन विष्णुः । क्षीरदानेन तारा-  
गणः । पूगफलैरपि सोमः । आम्रादिफलैः सोमः । कुङ्कुमदानेन  
गौरी । तिलदानेन विष्णुः । पुष्पदानेन गन्धर्वाः । ताम्बूलदानेन  
विनायकः । चन्दनदानेन गन्धदानेन च गन्धर्वाः । वस्त्रदानेन बृह-  
स्पतिः । इन्धनदानेनाऽग्निः । एवं देवताभ्यः संकल्पयेत् । आचार्याद-  
यस्तु कामस्तुतिं पठित्वा गृहीयुः । तत आचार्यः पूर्वावाहितदेवतानामु-  
त्तरपूजां कृत्वा 'यान्तु देवगणाः' इति मन्त्रेण विसर्जयेत् । ततो यज-  
मानस्ताः प्रतिमा आचार्याय दद्यात् । आचार्यानुमत्या तोलितं द्रव्यम-  
न्येभ्यो दीनानाथेभ्यो दद्यात् । तत आचार्यादिभ्यो दक्षिणां दत्त्वा  
भूयसीं च दत्त्वा त्रीन्वाहणान्भोजयेत् । ततो विष्णुस्मरणं कृत्वाऽच्छिद्रं  
वाचयित्वा सुहृद्युतस्तुष्टो भुञ्जीत । ] आचार्यस्तु तत्तद्देवतां गोविन्दं सूर्यं  
धर्मराजमीशादींश्च संपूज्य, 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इत्युत्थाप्य, 'यान्तु  
देवगणाः' इति विसृजेत् । ततो यजमानः प्रतिमादिमाचार्यकरे प्रति-  
पाद्य त्रीन्विप्रान्संभोज्य भूयसीं दक्षिणां दद्यात् । इति श्रीमीमांसक-  
शङ्करभट्टात्मजनीलकण्ठकृते दानमयूखे रूप्यादितुलदानप्रयोगः ॥



## अथ हिरण्यगर्भदानम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमदानमनुत्तमम् ।  
 नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम् ॥  
 पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।  
 ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥  
 कुर्यादुपोषितस्तद्वच्छ्लोकेनावहनं ततः ।

उपोषितः उपक्रान्तोपवासः ।

पुण्याहवाचनं कृत्वा तद्वत्कृत्वाऽधिवासनम् ।  
 ब्राह्मणैरुन्नयेत्कुण्डं तपनीयमयं शुभम् ॥  
 द्वाप्तप्रत्यङ्गुलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत् ।  
 त्रिभागहीनविस्तारं प्रशस्तं मुरजाकृति ॥

‘ब्राह्मणैर्गुर्वृत्तिभिः सह यजमानः’ इति रूपनारायणः । ठक्कुरश्च  
 ‘तैरेवानयेत्’ इति मदनरत्नादौ । कुण्डं हिरण्यगर्भहेमपङ्कजेति  
 अधोभागमध्यस्थिताष्टदलहेमकमलयुतम् । त्रिभागेति, अष्टाचत्वारिंशदङ्गुलविस्तारम् । मुरजो मृदङ्गः । तदाकृति मध्ये किञ्चित्स्थूलम्  
 इति ठक्कुरः । ‘मूलमध्याग्रेषु समम्’ इति वाचस्पतिमिश्राः । दान-  
 सागरे तु विस्तारमित्यस्याग्रे ‘आज्यक्षीराभिपूरितम्’ इति पाठः ।  
 तत्र तुल्याभ्यामाज्यक्षीराभ्यामेकदेशे पूरितमित्युर्थः । ‘अभिरभागो’  
 इत्यभेरेकदेशवाचित्वात् ।

दशाङ्गानि सरत्नानि दात्रं सूचीं तथैव च ।  
 हेमनालं सपिटकं बहिरादित्यसंयुतम् ॥  
 तथैवावरणं नाभेरुपवीतं च काञ्चनम् ।  
 पार्श्वतः स्थापयेत्तद्वद्वैमं दण्डं कमण्डलुम् ॥

दशाङ्गानि दशाखण्डानि । अङ्गानीति वा पाठः । ‘तत्र अङ्गाका-  
 राणि सुवर्णखण्डानि’ इति हेमाद्रिः ‘अङ्गानि’ इति दामोदरः, तानि  
 च तत्रैव । ‘खड्गश्चक्रशक्तिदण्डपाशध्वजगदाशूलपरशुकुलिशाख्यानि  
 दश । रत्नानि पञ्च प्रसिद्धानि । ‘पिटकं मञ्जूषा’ इति  
 हेमाद्रिः । ‘स्थलाकार उपवेशनपट्टः’ इति दामोदरः । ‘दात्रं नालच्छे-  
 दनार्थम्, सूची कर्णवेधार्था, नाभेरावरणं वस्त्राकारम्, उपवीतमुपन-



यनार्थम्, दण्डकमण्डलू समावर्तनार्थं, एतानि दशाखण्डादीनि  
 हैमानि' इति हेमाद्रिः । 'नालोपवीतदण्डा एव हैमाः, अन्यत्तु प्रकृ-  
 तमेव ग्राह्यम्' इति तु युक्तम् । रत्नेषु सर्वैरप्यहैमत्वाङ्गीकारात् । अत्र  
 'अस्त्राणीत्यनेन रत्नादिदशकमेवोच्यते' इति दानसागरः । 'दशाश्चा-  
 स्त्राणि च' इति रूपनारायणः । 'दशान्तानि' इति भूपालः ।  
 'दशार्द्धानि' इति पाठे रत्नविशेषणं चेदम् । पञ्च रत्नानीत्यर्थः' इति  
 विद्याधरः । आदित्यसंयुतमादित्यप्रतिमायुतम् ।

तथा—

पद्माकारं पिधानं स्यात्समन्तादङ्गुलाधिकम् ।

मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागदलान्वितम् ॥

तिलद्रोणोपरिगतं वेदीमध्ये ततोऽर्चयेत् ।

पात्रमुखादेकाङ्गुलेन समन्तादधिकमष्टदलकमलाकारं पिधानं स्यात् ।  
 द्रोणः परिभाषायां ज्ञेयः । कुण्डहैममानं तु यावता तदुक्तप्रमाणं संप-  
 द्यते तावद्ग्राह्यम् । लैङ्गे तु—

कुर्यात्सहस्रकर्षेण अधःपात्रं हिरण्यतः ।

तदर्धेनार्द्धपात्रं तु सहस्रेण द्वयं तु वा ॥

त्रिपादं वार्द्धपादं वा सपादं सार्द्धमेव वा ।

द्विगुणं वा प्रकर्तव्यं यथालाभं तु वा भवेत् ॥

सद्वक्षजं वा तत्कृत्वा स्वर्णपादैस्तु वेष्टयेत् ।

इति हैममानमुक्तम् ।

ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च ।

सर्वोपथ्युदकेनैव स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥

शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

उच्चार्यामन्त्रणमन्त्राः प्रयोगे ज्ञेयाः ।

एवमामन्त्र्य तन्मध्ये आविश्मयास्त उदङ्मुखः ॥

मुष्टिभ्यां संपरिगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ ।

जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकम् ॥

तथा—

गर्भाधानं पुसवन् सीमन्तोन्नयनं तथा ।



कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥

गर्भाधानादिग्रहणमनवलोभस्योपलक्षणम् ।

प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां सेचनं तच्च आचरेत् ।

दूर्वारसेन कर्तव्यं व्याहृत्या च घृताहुतिः ।

इति हेमाद्रौ वातुलोक्तेः ।

गीतमङ्गलशब्देन गुरुरुत्थापयेत्ततः ।

जातकर्मादिकाः कुर्यात्क्रियाः षोडश चापराः ॥

जातकर्मादिका अपराश्च क्रियाः कुर्यात् । तेन षोडश संपद्यन्ते इत्यर्थः । एवमेव हेमाद्रिरूपनारायणादीनामाशयः । तेन गर्भाधानपुंसव-  
नसीमन्तौन्नयनानवलोभनानि गुर्वाद्यन्यतमः कुर्यात् । ततो गुरुयजमा-  
नमुत्थापयेत् । ततो जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडोपनयन-  
वेदव्रतचतुष्टयसमावर्तनोद्वाहाः कार्याः । हेमाद्रौ तु जातकर्मादिषु प्राजा-  
पत्यैन्द्राग्नेयसौम्यव्रतचतुष्टयगोदानसाहित्येनोद्वाहृत्यागेन द्वादशत्वमु-  
क्तम् । जातकर्मादिषु विवाहपितृयज्ञभिन्नपञ्चयज्ञप्रवेशेन श्राद्धृत्यागेन  
च षोडश चापरा इति यथाश्रुतमेव योज्यमिति मदनदामोदरौ । एते  
च जातकर्माद्याः संस्कारा यजमानशाखयेति तयोराद्यौ गुरोः कर्त-  
व्यत्वात्तच्छाखयेति परः । युक्तं तु—‘समावर्तनोद्वाहपञ्चयज्ञा यज-  
मानेनैव स्वशाखया कार्याः । इतरे तु गुरुणा यजमानशाखयैव’ इति ।  
फलशाखेतिकर्तव्यतयैव तेषां फलजनकत्वस्य क्लृप्तत्वात् । कर्मान्तर-  
त्वे तु जातकर्मादीनां मानाभावः । सर्वेभ्यः कर्मभ्यो दर्शपूर्णमासा-  
वित्यत्रेवाऽऽख्याताभावेन प्रकरणान्तरायोगात् । त्रैधातवीया दीक्षणी-  
येतिवत्तु तान्येव जातकर्मादीनि दानाद्भूतया विनियुज्यन्ते । कर्मान्तर-  
त्वेऽपि चैतेषां जातकर्मादिविकृतित्वेन फलिशाखीयैवेतिकर्तव्यता  
प्राप्नोति न गुरुशाखीया तेन गुरुरेव यजमानशाखीयो भवत्यस्मि-  
न्दाने । अध्ययनसिद्धज्ञानवत्त्वात्, अवैगुण्याय । सत्र इव समान-  
कल्पा यजमानाः । ते च संस्कारास्तत्कर्मानुष्ठानपूर्वं तत्तत्प्रधानमन्त्र-  
पाठमात्रेण कार्याः । स्त्रीशूद्रकर्तृके मन्त्रवर्जमनुष्ठानमात्रम् । तत्र  
स्त्रिया जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाकर्मविवाहाख्यसंस्कार-  
षट्कम् । तत्राऽपि विवाहः समन्त्रकः । शूद्राणां तु एते षट्पञ्च महा-  
यज्ञाश्चेत्येकादशानुष्ठानरूपा एव इति सर्वे निबन्धकृतः । शिष्टास्तु  
त्रैवर्णिककर्तृकेऽप्यमन्त्रकानुष्ठानमेवाचरन्ति । युक्तमेव चेदम् । सर्व-



पदार्थत्यागे मन्त्रमात्रपाठे मानाभावात् । न्याय्यं तु स्वरूपत एवाऽनुष्ठानं सर्वेषाम् । यत्तु दामोदरो 'गर्भाधानादीनां कुण्डे विवाहस्य च तत्कालेऽसंभवात् समन्त्रकानुष्ठानमेव कार्यम्' इति तत्र ।

दूर्वारसेन कर्तव्यं सेचनं दक्षिणे पुटे ।

औदुम्बरफलैः सार्द्धमेकविंशत्कुशान्सदा ॥

शक्त्याऽथ तावदेवात्र कुर्यात्सीमन्तकर्मणि ।

अन्नप्राशनके विद्वान्भोजयेत् पायसादिभिः । इति ॥

एवं विश्वजिदन्ताश्च गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।

शक्तिबीजेन कर्तव्या ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥

इति लिङ्गपुराणात् । दक्षिणपुटे अधःपात्रगतरन्ध्रयोर्मध्ये दक्षिण-  
रन्ध्रे । यत्तु हेमाद्रौ टोडरानन्दे च—'उपरिपात्रगतरन्ध्रयोः' इति । तत्र ।

अधःपाले स्मरेद्दिव्यां गुणत्रयसमन्विताम् ।

चतुर्विंशतिकां देवीं ब्रह्मविष्ण्वग्निरूपिणीम् ॥

ऊर्ध्वपाले गुणातीतं षट्त्रिंशाख्यमुमापतिम् ।

आत्मानं पुरुषं ध्यायेत्पञ्चविंशकमन्त्रजम् ॥

इति लैङ्गे अधःपात्रस्यैव स्त्रीरूपतोक्तेः । तावदेवेत्येवकारेण अङ्गान्तर-  
परिसंख्या । 'अत्र होवावपन्ति' इतिवत् । तेन गृह्याग्रेरपि निवृत्तिः ।

उद्वहेत्कन्यकां कृत्वा त्रिंशन्निष्केण शोभनाम् ।

अलंकृत्य तथा हुत्वा शिवाय विनिवेदयेत् ॥

अत्र 'चतुःसौवर्णिको निष्कः' इति केचित् । 'षट्पञ्चाशदधिक-  
द्विशतपणमितः' इति भास्कराचार्याः । 'दीनारौऽपि च सुवर्णनिष्कः'  
इत्यमरः । 'सुवर्णपर्यायः' इत्यन्ये । तेषां शक्त्या व्यवस्था । दूर्वारस-  
सेको यजमानस्य पितरौ तत्स्थानीयं वा मिथुनमानीय तयोरन्य-  
तरेण कारयेदुरुः—

कर्तारं भार्यया युक्तं सर्वालङ्कारशोभितम् ।

आनीय कुर्यात्तत्स्थस्य गर्भाधानादिकाः क्रियाः ॥

भार्यादक्षपुटे दूर्वारससेचनमाचरेत् ।

एकविंशतिसंख्यातानुदुम्बरफलान्वितान् ॥

कुशानानीय शक्त्याऽथ कुर्यात्सीमन्तकर्म च ।

इति कामिकोक्तेः ।



प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां सेचनं तत आचरेत् ।

द्वारिसेन कर्तव्यं व्याहृत्या च घृताहुतिः ॥

इति हेमाद्रौ वातुलोक्तेश्च । प्रजावत्-‘आ ते गर्भः’ इत्यादि । जीवपुत्रम्-‘अग्निरैतु प्रथमः’ इत्यादि । सत्यपि वा केषाञ्चिदसंभवेन सर्वेषामनुष्ठानं युक्तम् । यत्तु ‘अन्नप्राशने भुक्तवतः कर्मानुष्ठानविरोधः’ इति सोऽपि हविःशेषभोजनवद्विहितत्वादपास्तः । किञ्च सर्वैरपि प्रयोगे न सर्वे संस्कारमन्त्रा उक्ताः । चौलादौ होममन्त्रा उक्ताः । अथ प्रधानकरणीभूता एव मन्त्रा अभिप्रेतास्ततो गर्भाधाने ‘अपनः शोशुच दधम्’ इति मूर्द्धाभिर्मर्शनार्थसूक्ताद्यङ्गमन्त्रस्य । समावर्तने होमसाधनस्य ‘ममाम्ने वर्चः’ इति सूक्तस्य तत्रैव, ‘स्मृतं च मे’ इत्यादेर्लिखनं विवाहादौ च भार्यात्वोत्पादकप्रधानभूतहोमसप्तपदीमन्त्राणामलिखनमिति कथमिदं पूर्वापरविरुद्धं प्रमाणशून्यमेतेषां लिखनमादर्थक्यम् । अतः स्वरूपत एव कार्याः सर्वे । तत्र पूर्वादिकुण्डेऽथैव क्रमादगादिशाखीययजमानसंस्कारप्रधानहोमाः कार्याः । उल्लेखनोपलेपनेध्माधानाधाराज्यभागाः स्विष्टकृदाद्युत्तराङ्गानि च न कार्याणि । तदुपकाराणां सिद्धत्वात् । पशुतन्त्राऽन्तःपातिपुरोडाशे प्रयाजानुयाजनाननुष्ठानवत् । पाशुकैरेव तैरुपकारसिद्धेः । अत्र गर्भाधानादित्रयनिष्क्रमणश्राद्धसहितषोडशसंस्कारपक्षे निष्क्रमणश्राद्धत्यागेन पञ्चयज्ञसाहित्येनोपविंशतिपक्षे वा गर्भाधानसीमन्ते तावत्कर्मान्तरे यावदुक्ते । कामिकलैङ्गादिष्वनेकगुणश्रुतेः प्रधानबाधाच्च । पुंसवनं तु ध्यानमात्रेण कार्यम् । स्वरूपानुष्ठानबाधान्मन्त्रपाठे मानाभावाच्च । तथा ऋक्शाखीयैश्चौल एव ‘अग्न आयूषि’ इत्याद्याहुतिचतुष्टयं कार्यं, नोपनयनव्रतचतुष्टयसमावर्तनविवाहेषु । चौलीयैरेवादष्टैरुपकारसिद्धेः । उपनयने विशेषमाहाश्वलायनः-‘अथोपेतपूर्वस्य कृताकृतं केशवपनं मेधाजननं चानिरुक्तम् । परिदानकालश्च तत्सवितुर्वृणीमह इति सावित्रीं पूर्वमुपेत उपेतपूर्वस्तस्य पुनरुपनीयमानस्येति यावत् । कृताकृतं वैकल्पिकम् । अनिरुक्तं वर्जितम् । परिदानकालावप्यनिरुक्तौ । परिदानम् ‘आदित्याय व्रतपतये बटुं ते ददामि’ इति । गायत्र्याः स्थाने ‘तत्सवितुर्वृणीमहे’ इति ऋच उपदेशः । मनुश्च—

अजिनं मेखला दण्डौ भैक्ष्यचर्या व्रतानि च ।

निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि । इति ॥



अन्यत्कार्यम् । विवाहे सप्तपदीक्रमणपरिणयनयोर्निवृत्तिः प्रति-  
माया असंभवात् । अन्येष्वपि संस्कारेषु बाधितं लुप्यत इति दिक् ।  
षोडशक्रियाभावात् 'स्त्रीशूद्रयोर्हिरण्यगर्भदाने अनधिकारः' इति  
केचित् । तन्न ।

नरो वा यदि वा नारी एवं ब्रह्मात्मसंभवम् ।

यः करोति महापुण्यं तस्यापि शृणु यत्फलम् ॥

इति हेमाद्रौ हिरण्यगर्भप्रकरणे विष्णुवर्मोक्तेः स्त्रीणामधिकारावग-  
मात् । आत्मसंभवं हिरण्यगर्भम् । 'स्त्रीशूद्रास्तु सधर्माण' इति  
वाक्याच्च शूद्रस्येति । तथा 'सूच्यादिकं च गुरवे दत्त्वा मन्त्रमिमं  
जपेत्' । मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

चतुर्भिः कलशैर्भूयस्ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ।

स्नानं कुर्युः प्रसन्नाङ्गा दिव्याभरणभूषिताः ॥

देवस्य त्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने ।

चतुर्भिः कुण्डसमीपस्थैः कुर्युः कारयेयुः । मन्त्रः प्रयोगे ।

ततो हिरण्यगर्भं च तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः ।

अत्रापि सत्त्विगाचार्याणां दानद्रव्यविभागस्तुलापुरुषवद्वगन्तव्यः ।

ते पूज्याः सर्वभावेन ब्रह्मो वा तदाज्ञया ।

तत्रोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥

पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ।

ग्रामं वा विषयं वापि यच्चान्यदपि संभवेत् ॥

विषयो ग्रामसमूहः । अन्यद्रव्यादि । ग्रामादिकं च तुलापुरुषवद-  
त्रापि दक्षिणात्वेनान्वेति । अत्राप्यात्मा लङ्कारं गुरवे दद्यात् ।

इति हिरण्यगर्भदानविधिः ॥

### अथैतत्प्रयोगः ।

देशकालौ सङ्कीर्त्य 'सकलकलिकलुषनिवृत्तिसंभावितनरकनिमग्न-  
पित्रादिपुरुषशतविविधबन्धुपुत्रपौत्रप्रपौत्रादिसमुद्धरणपूर्वकसिद्धसङ्घसे-  
वितत्वाप्सरोगणकरकलितचामरमालावीज्यमानत्वैकैकमन्वन्तरसमयाव-  
च्छिन्नसर्वलोकपालपुरनिवासोत्तरकल्पकोटिशतावच्छिन्नब्रह्मलोकमहित-  
वकामोऽहं श्रो हिरण्यगर्भदानं प्रतिपादयिष्ये' इति प्रतिज्ञाय तुला-



पुरुषवद्रोचिन्दोमापतिविनायकपूजाविप्राज्ञाग्रहणमातृपूजाभ्युदयिकप्रा-  
 द्धपुण्याहवाचनगुर्वादिवरणमधुपर्कदानमण्डपपूजागुर्वादिविनियोगान्तं  
 कुर्यात् । अत्र गुरुर्यजमानशाखीय एव । ततो गुरुर्वेद्यां षोडशोपरिस्थापि-  
 ततिलद्रोणोपरि प्रागुक्तहिरण्यगर्भपात्रमृत्विग्भिः सहाऽऽनीय स्थापयेत् ।  
 ततः कुण्डमध्ये हैमं पद्मं निवाय कुण्डैकदेशं घृतक्षीराभ्यां पूरयित्वा  
 कुण्डस्य बहिः पार्श्वयोर्दशाखण्डानि, रत्नानि, छुरिकां, सूचीं, हेमनालम्,  
 उपवेशनपट्टं, आदित्यप्रतिमां, नाभैरावरणवस्त्रं, हैमोपवीतं, दण्डं, कम-  
 ण्डलमिति स्थापयेत् । ततः 'ॐ नमो हिरण्यगर्भाय' इति सपिधानं  
 हिरण्यगर्भं पूजयेत् । कुण्डसमीपस्थं कुम्भस्थापनग्रहस्थापनादि पूर्णा-  
 हुत्यभिषेकान्तं तुलापुरुषवत् । एवमभिषिक्तो यजमानः स्नातः  
 शुद्धवस्त्रालङ्कारादियुक्तो गृहीतकुसुमाञ्जलिः प्राङ्मुखः पात्रमामन्त्रयेत् ।

नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ।

सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः ॥

भूलोकप्रमुखालोकास्तत्र गर्भे व्यवस्थिताः ।

ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे ॥

नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय ।

नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः ॥

यतस्त्वमेव भूतात्मा भूते भव्ये व्यवस्थितः ।

तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥

ततः पात्रे पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य समङ्गलघोषं तत्र प्रविशेत् । गुरुर्वृत्वि-  
 जस्तु पात्रं पिधानेनाऽऽच्छादयेयुः । यजमानस्तु तत्रोदङ्मुखो दक्षिण-  
 वाममुष्ट्योः क्रमाद्धर्मराजचतुर्मुखौ गृहीत्वा जान्वोः शिरः कृत्वोच्छ्वास-  
 पञ्चकावच्छिन्नसमयमासीत् । ततो गुर्वादिर्यजमानस्य पितरौ तत्स्थानी-  
 यमन्यद्वा मिथुनमानीय तद्वाराऽधःपात्रगतरन्ध्रयोर्मध्ये दक्षिणरन्ध्रे  
 शक्तिवीजेन द्वारसं सेचयेदिति गर्भाधानम् । पुंसवनस्य ध्यानमात्रम् ।  
 सीमन्ते गुर्वाद्यन्यतमः सोढुम्बरफलैरेकविंशतिकुशैरधःपात्रे काल्पनिकं  
 सीमन्तं शक्तिवीजेनोन्नीय, 'ॐ आ ते गर्भो योनिम्' इति प्रजावता  
 सूक्तेन, 'ॐ अभिरैतु' इति जीवपुत्रेण च द्वारसं पूर्वोक्ते रन्ध्रे आसिच्य  
 ऋक्शाखीयादियजमानक्रमेण प्रागादिकुण्डे समस्तव्याहृतिभिरेकामा-  
 ज्याहुतिं जुहुयादिति । इदमेवानवलोभनम् । सीमन्तोत्तरं व्यत्यस्तमुक्तम् ।  
 एवमुत्तरसंस्कारेष्वपि तत्र कुण्डेषु होमः । ततो गुरुः शुभलप्ते यजमानमुत्था-



प्याश्वलायनयजमानस्य जातकर्मनामकरणान्नप्राशनचौलोपनयनव्रतचतु-  
ष्टयानि कुर्यात् । तत्रान्नप्राशने पायसभोजनम् । चौले 'मातुरुत्सङ्गोपवे-  
शनाभावः' इति नारायणः । उपनयने, 'ॐ अग्न आर्यूषि' इत्याद्या-  
हुतिचतुष्टयवपनमेवाजननादित्याय व्रतपतये वटुं ते परिददामि, इति  
परिदानाजिनमेखलादण्डमैक्षचर्याव्रताचरणाभावः । एवं महानाम्न्या-  
दिव्रतसमावर्तनविवाहेष्वाहुतिचतुष्टयाभावः । गायत्र्याः स्थाने 'ॐ तत्स-  
वितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि'  
इत्यृच उपदेशः । अन्यत्तुल्यम् । समावर्तनविवाहौ स्वयं यजमानः  
कुर्यात् । विवाहस्तु त्रिंशन्निष्कमूल्यसुवर्णघटितप्रतिमया सह । तत्रा-  
ग्निपरिणयनसप्तपदीक्रमणमुवारुन्धतीदर्शनानि निवर्तन्ते । लाजहोमस्तु  
सुचैव । अन्यत्तुल्यम् । श्राद्धं तु यजमान एव कुर्यात् । मदनदामोद-  
रादयस्तु—'पञ्च महायज्ञाः कार्याः, न श्राद्धानवलोकने' इत्याहुः ।  
यजुःशाखीयानां तु जातकर्मादिषु प्राजापत्यमैन्द्रमाग्नेयं सौम्यं चत्वारि  
वेदव्रतानि निष्क्रमणं चोक्तम् । नामकरणं नोक्तमिति विशेषः । छन्दो-  
गानां तु नामकरणमस्ति, अन्नप्राशनं नास्ति । गोदानव्रतं केशान्त-  
व्रतम् । चत्वारि वेदव्रतानि चेति । अथर्ववेदे जातकर्मनिष्कमान्नप्रा-  
शनगोदानोपनयनसावित्रव्रतवेदव्रतसावित्रीव्रतविसर्गसमावर्तनविवाहप-  
ञ्चयज्ञा उक्ताः । एतेषामनुष्ठानप्रकारस्तत्तच्छाखया बोध्यः । शिष्टास्तु  
सर्वेषां संस्काराणामनुष्ठानमात्रं कुर्वन्ति । ततो यजमानो दशाखण्डादि  
गुरवेऽर्पयेत् । ॐ नमो हिरण्यगर्भाय इत्यादिप्रागुक्तमन्त्रद्वयेन नमस्कृ-  
र्यात् । ततः कुण्डसमीपस्थकलशजलैः 'देवस्य त्वा' इत्यादिना 'अद्य  
जातस्य तेऽङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम् । दिव्येनानेन वपुषा चिरञ्जीव  
सुखी भव' इति च मन्त्रेण कनकासनस्थं यजमानमभिषिञ्चेयुः । ततो  
देशकालौ सङ्कीर्त्य 'सकलेत्यादिमहितत्वकामः' इत्यन्तमुक्त्वा 'तिलद्रो-  
णोपरिस्थमिदं हिरण्यगर्भपात्रं सवितानकं विष्णुदैवतं युष्मभ्यं यथोक्त-  
भागव्यवस्थया संप्रददे, न मम' इत्युक्त्वा पुनस्तथैव देशकालाद्युक्त्वेतदा-  
नप्रतिष्ठासिद्धयर्थमिदं सुवर्णादिदक्षिणां गुर्वादिभ्यः संप्रददे इत्युक्त्वा  
दीनानाथेभ्योऽपि यथाशक्ति दत्त्वा पुण्याहवाचनग्रहपूजाविसर्जनान्तं  
तुलापुरुषवत्सर्वं कृत्वाऽऽत्मालङ्कारादि गुरवे दद्यात् ।

इति हिरण्यगर्भप्रयोगः ॥



## अथ ब्रह्माण्डम् ।

मास्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डं विधिपूर्वकम् ।  
 यच्छ्रेष्ठं सर्वदानानां महापातकनाशनम् ॥  
 पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।  
 ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥  
 लोकेशावाहनं तद्वदधिवासनकं तथा ।  
 कुर्याद्विंशत्पलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ॥  
 शकलद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः ।

शकलः खण्डः । उक्तं च ब्रह्माण्डे—

कुम्भच्छायो भवेद्यादृक्प्रतीच्यां दिशि चन्द्रमाः ।  
 उदितः शुक्लपक्षादौ वपुरण्डस्य तादृशम् ॥  
 कुम्भच्छायो नाम ग्रीवाहीनकुम्भाभ इत्यर्थः ।  
 दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षड्वेदाङ्गसमन्वितम् ।  
 लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्भुजम् ॥  
 शिवाच्युतार्केशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम् ।  
 वस्वादित्यमरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम् ॥  
 वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम् ।  
 कौशेयवस्त्रसंवीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत् ॥  
 तथाऽष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् ।

दिग्गजा ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जतपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्र-  
 तीकाः । एतलक्षणमादित्यपुराणे—

शुभ्राभश्च चतुर्दन्तः श्रीमानैरावतो मतः ।  
 पुष्पदन्तो बृहत्सामा षड्दन्तः पुष्पदन्तवान् ॥  
 सामान्यगजरूपेण शेषा दिक्करिणः स्मृताः ।  
 षडङ्गानि, 'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम्' इति ।  
 तलक्षणम्—

सूक्तानि ब्रह्मणो लोके साक्षसूत्राणि तानि तु ।  
 द्विभुजानि शुभास्यानि वामे दधति कुण्डिकाः ॥  
 कुण्डिकाः कमण्डलून् । अर्थादक्षसूत्राणि दक्षिणकरे । तानि च



‘पश्चिमे चतुरो वेदाः’ इति वाक्यादङ्गानि वेदस्थाने, ‘प्रधानं नीयमानं हि तत्ताङ्गान्यपकर्षति’ इति न्यायात्स्याप्यानि । लोकपालरूपाण्याह विश्वकर्मा—

चतुर्दन्तगजारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः ।  
 शचीपतिः प्रकर्तव्यो नानाभरणभूषितः ॥  
 पिङ्गभूषमशुकेशाक्षः पिङ्गाक्षो जठरोऽरुणः ।  
 छागस्थः साक्षसूत्रश्च सप्तार्चिः शक्तिधारकः ॥  
 ईषत्पीतो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजानता ।  
 रक्तदक्षाशभृत्कुट्टो निर्ऋतिर्विकृताननः ॥  
 पुंस्थितः खड्गहस्तश्च भूतवानराक्षसैर्वृतः ।  
 वरुणः पाशधृक्सौम्यः प्रतीच्यां मकराश्रयः ॥  
 धावद्धरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः ।  
 दशाश्वरथगः सोमो गदापाणिर्वरप्रदः ॥  
 पूर्वोत्तरे त्रिनेत्रश्च वृषभस्थस्त्रिशूलधृक् ।  
 कपालपाणिश्चन्द्रार्कभूषणः परमेश्वरः ॥

उमारूपं देवीपुराणे—

चतुर्भुजा द्विबाहुर्वा द्विनेत्रा वा त्रिलोचना ।  
 कुण्डलालङ्कृताद्धेन्दुशेखराऽऽभरणान्विता ॥  
 गौरीचनानिभा गौरी स्वस्तिका नवयौवना ।

स्वस्तिका बाहुभ्यां कुचौ पिहितुं कृतस्वस्तिकाकारेत्यर्थः । गौरी च शिववामभागे । रूपनारायणीये तु ‘अक्षसूत्रकमण्डलधराभयहस्ता’ इत्युक्तम् । लक्ष्मीरूपं—

पाशाक्षमालिकाभोजसृणिभिर्याम्यसौम्ययोः ।  
 पद्मासनस्थां कुर्वीत श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ॥  
 गौरवर्णां सुरूपां च सर्वालङ्कारभूषिताम् ।  
 रौक्मपद्मकरव्यग्रां वरदां दक्षिणेन तु ॥

‘ऊर्ध्वदक्षिणकरे पाशाक्षमाले । ऊर्ध्ववामे पद्माङ्कुशौ । अधोवाम-दक्षिणयोर्ह्रिमपद्मवरमुद्रां दधतीति चतुर्हस्तैव’ इति दामोदरः ।

वसुरूपं—

प्रसन्नवदनाः सौम्या वरदाः शक्तिपाणयः ।  
 पद्मासनस्था द्विभुजाः कर्तव्या वरदाः सदा ॥



दामोदरीये निगमे—

आपो ध्रुवश्च सौम्यश्च चरश्चैवानिलोऽनलः ।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः । इति ॥

पद्मासनस्था द्विभुजाः पद्मगर्भाभकान्तयः ।

करादिस्कन्धपर्यन्तं नीलपङ्कजधारिणः ॥

अधःसंस्थितमेषादिराशयः प्रावृताङ्घ्रिकाः ।

मेषादिराशिरूपं दामोदरीये 'मेघवृषकर्कटसिंहवृश्चिकमीनाः स्वना-  
मानरूपाः । बाणधरौ दम्पती मिथुनम् । करद्वयधृतसस्यमञ्जरी कुमारी  
कन्या । तुलाहस्तो नरस्तुला । मृगास्योऽश्वजघनो मकरः । घटशिरा नरः  
कुम्भः । ( १ ) 'प्रावृताङ्घ्रिकायोऽजायच्छिन्नचरणः ' इति दामोदरः ।

इन्द्राद्या द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः ।

इन्द्रादिनामानि हरिवंशे—

इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोऽशोऽर्यमा रविः ।

पूषा मित्रो यमश्चैव पर्जन्यो द्वादश स्मृताः । इति ॥

मरुतस्तु—

धावत्कृष्णमृगारूढा वरदा ध्वजधारिणः ।

ऊनपञ्चाशच्छिवादिप्रतिमाः प्रागुक्ताः । अष्टादश धान्यानि प्रत्येकं  
द्रोणपरिमितानीति केचित् ।

पूर्वोणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे ।

प्रकृतिं दक्षिणे देशे सङ्कर्षणमतः परम् ॥

पश्चिमे चतुरो वेदाननिरुद्धमतः परम् ।

अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतः परम् ॥

समन्ताद्गुडपीठस्थानर्चयेत्काञ्चनान्बुधः ।

स्थापयेद्वस्त्रसंवीतान्पूर्णकुम्भान्दशैव तु ॥

अनन्तशयनस्वरूपं विष्णुधर्मोत्तरे—

देवदेवस्तु कर्तव्यः शेषमुप्तश्चतुर्भुजः ।

एकः पादोऽस्य कर्तव्यो लक्ष्म्युत्सङ्गतः प्रभोः ॥

तथा करश्च कर्तव्यः शेषभोगाङ्कसंस्थितः ।

एकः करोऽस्य कर्तव्यस्तत्र जानौ प्रसारितः ॥

कर्तव्यो नाभिदेशस्थस्तथा तस्यापरः करः ।

१ संशोधनार्थं गृहीतेषु सर्वेषु पुस्तकेषु धनुराशेः स्वरूपं नास्ति ।



नाभिसंभूतकमले सुखासीनः पितामहः ॥  
 नाललग्नौ तु कर्तव्यौ पद्मस्य मधुकैटभौ ।  
 शङ्खचक्रगदादीनि मूर्तानि परितो न्यसेत् ॥

प्रद्युम्नलक्षणं पञ्चरात्रादिषु—

दक्षिणोर्ध्वकरे पद्मं दद्याच्छङ्खमधःकरे ।  
 चक्रमूर्ध्वे तथा वामे गदां दद्यात्तथा बुधः ॥  
 चापेषुधृत्वा प्रद्युम्नो रूपवान्विश्वमोहकः । इति ॥

प्रकृतिर्यद्यप्यव्यक्तरूपिणी, तथापि तत्स्थाने लक्ष्मीप्रतिमा निवेश्या ।  
 तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।  
 मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च विभ्रती ॥  
 नागं लिङ्गं च योनिं च विभ्रती नृप मूर्ध्नि ॥

सङ्कर्षणरूपं विष्णुधर्मोत्तरे—

वासुदेवस्य रूपेण कार्यः सङ्कर्षणः प्रभुः ।  
 स तु शुक्लवपुः कार्यो नीलवासा यदूत्तमः ॥  
 गदास्थाने च मुशलं चक्रस्थाने च लाङ्गलम् ।

वेदलक्षणं महाभूतघटे वक्ष्यते ।

तथा—

कृष्णं चतुर्भुजं दक्षे शरखङ्गौ तथोत्तरे ।  
 धनुःखेटभरं वीरमनिरुद्धं प्रचक्षते । इति नारदीये ॥

अग्निप्रतिमा प्रागुक्ता । वासुदेवप्रतिमाऽपि नारदीये—

वासुदेवः शिवः शान्तः सिताब्जस्थश्चतुर्भुजः ।  
 योगमूर्त्तार्द्धशङ्खश्च हृद्देशाऽर्पितहस्तकः ॥  
 धारयेदुत्तरे चक्रं करे वै दक्षिणे गदाम् । इति ॥

एताश्च प्रतिमाः प्रकृतदानपरिमाणात्पृथक्कार्याः । एतान्गुडपीठस्था-  
 नर्चयेत् । पूर्णकुम्भान्स्थापयेदित्यत्र समन्तादित्यनुषञ्जनीयम् ।

तथा—

दशैव धेनवो देयाः सहेमाम्बरदोहनाः ।  
 पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः ॥  
 भक्ष्यभोज्यान्नदीपेषुफलमाल्यानुलेपनैः ।



होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥

इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिःकृत्वाऽथ प्रदक्षिणम् ।

सहैमाश्वरेति । हेमशृङ्गयः सवस्त्राः कांस्यदोहनाः । एताश्च दक्षिणार्थमुपकल्प्याः । भविष्ये तु, सुवर्णमेव दक्षिणार्थमुपकल्पयमित्युक्तम् । इममुच्चारयेदिति । ब्रह्माण्डं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य मन्त्रं पठेत् । तत्र मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

एवं प्रणम्याऽमरविश्वगर्भं दद्याद्विजैभ्यो दशधा विभज्य ।

भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्यं समं भजेच्छेषमनुक्रमेण ॥

समं भजेच्छेषमिति । गुरोर्भागद्वयं प्रकल्प्यावशिष्टभागानामेकैकं भागं त्रेधा विभज्य चतुर्विंशतिसंख्येभ्य ऋत्विगादिभ्यः समं दद्यात् । दानवाक्यं तुलावदेव ज्ञेयम् ।

तथा—

स्वरूपे च होमं गुरुरेक एव कुर्यादथैकाग्निविधानयुक्त्या ।

स एव संपूज्यतमोऽल्पवित्तैर्यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥

अत्र सहस्रपलपक्ष उत्तमस्तदद्धेनं मध्यमस्तदद्धेनाधमः । अधमपक्षे स्वरूपत्वं ज्ञेयम् । विंशतिपलनिर्मिते स्वरूपत्वमित्येके । एकाग्निविधाने प्रतीच्यां वृत्तं कुण्डमिति परिभाषायामुक्तम् । एक एव ऋत्विगष्टकं विनेत्यर्थः ।

इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्या-

ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानम् ।

निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुमुरारे-

रानन्दकृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः ॥

सन्तारयेत्पितृपितामहपुत्रपौत्र-

बन्धुप्रियातिथिकलत्रशताष्टकं यः ।

ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकोऽय-

मानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषम् ॥

इति ब्रह्माण्डदानम् ॥

अथ प्रयोगः ।

यजमानो देशकालौ सङ्कीर्त्य 'सकलपातकक्षयपितृपितामहप्रपितामहपुत्रपौत्रबन्धुप्रियातिथिकलत्रपुरुषशताष्टकतारणविलीनसकलपात-



काशेषमातृकुलपातकौघशकलीकरणसन्तारणानन्दपूर्वकाऽप्सरःसङ्घसहि-  
तविमानकरणकमुरारिपदप्राप्तिकामोऽहं श्रो ब्रह्माण्डमहादानं प्रति-  
पादयिष्ये' इति सङ्कल्प्य तुलापुरुषदानवत्प्रारब्धोपवासो गोविन्दादि-  
पूजादिमंडपपूजाचार्यादिविनियोगान्तं विदध्यात् । तत आचार्यो वेदिर-  
चितपोडशारचक्रोपरिस्थितिलट्टोणोपरि ब्रह्माण्डं स्थापयेत् । एतत्प्रागा-  
दिदिक्षु दिग्गजाष्टकलोकाष्टकप्रतिमाः स्थापयित्वा पश्चिमायां वेदच-  
तुष्टयतदङ्गषट्कप्रतिमाः स्थापयेत् । ब्रह्माण्डोपरि शिवोमाच्युतलक्ष्मीसू-  
र्यप्रतिमां मध्ये चतुर्मुखप्रतिमां मध्य एव समन्तादष्टवसुद्वादशादित्यभ-  
रुद्रणप्रतिमा नवरत्नानि चेति स्थापयित्वा कौशेयवस्त्रेण ब्रह्माण्डं वेष्ट-  
यित्वा प्रत्येकं द्रोणपरिमितान्यष्टादश धान्यानि परितो निधाय प्राच्या-  
दिदिक्षु गुडपीठेष्वनन्तशयनप्रशुभ्रप्रकृतिसङ्कर्षणवेदचतुष्टयानिरुद्धाग्नि-  
वासुदेवप्रतिमाष्टकं च निधाय स्थापितब्रह्माण्डादिप्रतिमाः क्रमेण नाम-  
मन्त्रैरावाह्यार्चयित्वा परितो दशपूर्णकुम्भान्सवस्त्रान्स्थापयेत् । ततः पादु-  
कोपानच्छत्रचामरासनदर्पणभक्ष्यभोज्यफलमाल्यदीपानुलेपनामत्रैः सह  
कांस्यदोहनादियुक्ता दश धेनूरुपकल्प्य ब्रह्माण्डोपरि वितानं बध्नी-  
यात् । ततः कुण्डसमीपस्थं कुम्भस्थापननवग्रहस्थापनादिपूर्णाहुत्यभि-  
षेकान्तं तुलापुरुषवत् । एवमभिषिक्तो यजमानः शुक्लवेषोऽञ्जलिं  
बद्धा ब्रह्माण्डं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य—

नमोऽस्तु विश्वेश्वर विश्वधाम जगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते ।

सप्तर्षिलोकामरभूतलेश गर्भेण सार्द्धं वितराभिरक्षाम् ॥

ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणाम् ।

त्वदानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्ड दोषाः प्रलयं व्रजन्तु ॥

इति पठेत् । ततो यजमानः पश्चिमत उपविश्य गोदशकेन सह  
ब्रह्माण्डं दशधा विभज्याऽऽचार्याय भागद्वयं भागाष्टकमृत्विग्भ्यो दद्यात् ।  
अद्याऽमुककाले 'सकलपातकक्षयकाम इत्यन्तं सङ्कल्पवाक्यमुक्त्वा ब्रह्मा-  
ण्डमेतावत्पलमितसुवर्णरचितं तिलद्रोणोपरि स्थापितमेतत्सर्वोपस्करयुतं  
युष्मभ्यं गुर्वृत्विग्भ्यः संप्रददे' इति गुर्वादिहस्तेषु जलं निक्षिपेत् ।  
ब्राह्मणाश्च ब्रह्माण्डं सृष्ट्वा प्रतिगृहीयुः । ततः 'कृतैतद्ब्रह्माण्डदानप्रति-  
ष्ठार्थमिदं हिरण्यमाग्नेयं ग्रामादि च गुरवे संप्रददे' इति दद्यात् ।  
ऋत्विगादिभ्योऽपि यथाशक्ति हिरण्यं दद्यात् । अल्पदेयद्रव्यत्वे तु



गुरुरेव स्वशाखया पश्चिमायां वृत्तकुण्डे हवनादि कुर्यात् । ब्रह्मजापका-  
दयोऽपि प्रयोगान्तरवत्कार्याः न ऋत्विजः । ततो ब्रह्मवेद्यां ब्रह्मादिपूज-  
नादिविसर्जनान्तं गुरुः कुर्यात् , इत्येकाध्वर्युपक्षः ।

इति ब्रह्माण्डदानप्रयोगः ॥

### अथ कल्पतरुदानम् ।

मात्स्ये—

कल्पपादपदानाख्यमतः परमनुत्तमम् ।

महादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् ॥

पुण्यं दिनसथासायं तुलापुरुषदानवत् ।

पुण्याहवाचनं कुर्याल्लोकेशावाहनं तथा ॥

ऋत्विङ्मंडपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ।

काञ्चनाकारयेद्भूषणानानाफलसमन्वितान् ॥

नानाविहङ्गवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत् ।

नानाफलानि स्त्रीपुरुषगोगजवाजिमणिकनकरजतभक्ष्यफलादीनीति  
केचित् । फलान्येवेत्यन्ये ।

शक्तितत्त्वपलादूर्ध्वमासहस्रात्प्रकल्पयेत् ।

अर्द्धं कल्पसुवर्णस्य कारयेत्कल्पपादपम् ॥

कल्पपादपदानार्थमुपकल्पसुवर्णस्यार्द्धेन ब्रह्मादिप्रतिमासहितं कल्प-  
पादपं कुर्यात् । द्वितीयार्द्धं तु चतुर्धा विभज्यैकैकभागेन स्वस्वदेवताप्रति-  
मासहितान्सन्तानादीन्कुर्यात् ।

गुडप्रस्थोपरिष्ठाच्च सितवस्त्रयुगावृतम् ।

ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम् ॥

प्रस्थो द्वात्रिंशत्पलः परिभाषायां दर्शितः षोडशपलो वा । ब्रह्मा-  
दिप्रतिमाः प्राग्दर्शिताः ।

कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

कामदेवस्तु कर्तव्यो रूपेणाऽप्रतिमो भुवि ।

अष्टबाहुः प्रकर्तव्यः शङ्खपद्मविभूषितः ॥

चापबाणकरश्चैव मदोदञ्चितलोचनः ।

रतिः प्रीतिस्तथा शक्तिर्भेदशक्तिस्तथोज्ज्वला ॥



चतस्रस्तस्य कर्तव्याः पत्न्यो रूपमनोहराः ।  
 चत्वारश्च करास्तस्य कार्या भार्यास्तनोपगाः ॥  
 केतौ च मकरः कार्यः पञ्चबाणमुखो महान् । इति ॥

दामोदरीये तु—

चापेषुधृक्कामदेवो रूपवान्विश्वमोहकः । इत्युक्तम् ।  
 अथस्तादिति ब्रह्मादिभिरप्यन्वेति ।

सन्तानं पूर्वतस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ।  
 तुरीयोऽशोऽपरार्द्धस्य वर्तिना गुडप्रस्थोपरिगतत्वं सितवस्त्रयुग्मशा-  
 खापञ्चकफलान्वितत्वं चोक्तम् । मन्दारादिष्वपि वस्त्रयुग्माद्यन्वेति ।

मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सार्द्धं धृतोपरि ।  
 पश्चिमे पारिजातं तु सावित्र्या सह जीरके ॥  
 सुरभीसंयुतं तद्वत्तिलेषु हरिचन्दनम् ।  
 तुरीयांशेन कुर्वीत सौम्येन फलसंयुतम् ॥

तुरीयांशेनेति मन्दारपारिजाताभ्यामप्यन्वेति । ‘पञ्चाप्येते वृक्षाः  
 क्रमादश्वत्थनिम्बार्कपारिभद्रविल्वतरुतुल्याकाराः शिष्टाचारात्’ इति  
 दामोदरः । श्रीप्रतिमोक्ता हिरण्यगर्भदाने । सावित्री तु ब्रह्माण्डे—

पद्मासना च सावित्री साक्षसूत्रकमण्डलुः ।

इत्युक्त्वा—

सवत्सा सुरभी धेतुरागता प्रसूतस्तनी ।  
 इति सुरभीलक्षणम् । धृतादिकमपि प्रस्थपरिमितं ग्राह्यम् ।

कौशेयवस्त्रसंवीतानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ।

तथाष्टौ पूर्णकलशान्पादुकाशनभाजनम् ॥

दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम् ।

फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्ठाद्वितानकम् ॥

तथाष्टादश धान्यानि समन्तादुपकल्पयेत् ।

अशनभाजनं भोज्यपूरितभाजनम् । धान्यानि प्रत्येकं द्रोणप-  
 रिमितानि ।

होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः ।

त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥



अभिवासनान्ते प्रातः पूर्णाहुत्यादिकर्मोत्तरं पुण्याहवाचने कृते कुण्डा-  
भ्यांशे कलशैः स्नापित इत्यर्थः । मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

एवमामन्त्र्य तं दद्याद्दुरवे कल्पपादपम् ।

चतुर्भ्यश्चापि ऋत्विग्भ्यः सन्तानादीन्प्रकल्पयेत् ॥

‘कुण्डचतुष्टयसम्बन्धिभ्योऽष्टभ्य ऋत्विग्भ्यः सन्तानादींश्चतुरो दद्यात्’  
इतिमदनः । ‘चतुर्णामेव ऋत्विजां मन्त्रवरणम्’ इति हेमाद्र्यादयः ।  
आपकादिभ्योऽन्यैव दक्षिणा देया ।

स्वल्पे त्वेकाग्रिवत्कुर्याद्दुरोरेवाभिपूजनम् ।

न वित्तशाठ्यं कुर्वीत न च विस्मयवान्भवेत् ॥

अनेन विधिना यस्तु महादानं निवेदयेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

अप्सरोभिः परिवृतः सिद्धचारणकिन्नरैः ।

भूतान्भक्त्याश्च मनुजांस्तारयेद्रोमसंमितान् ॥

स्तूयमानो दिवः पृष्ठे पुत्रपौत्रप्रपौत्रवान् ।

विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥

दिवि कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत्ततः ।

नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः ॥

नारायणकथासक्तो नारायणपुरं व्रजेत् । इति ॥

इति कल्पपादपदानविधिः ।

अथ प्रयोगः ।

यजमानो देशकालोच्चारणान्ते ‘सर्वपापक्षयपूर्वकाश्वमेधफलप्राप्ति-  
पितृपुत्रादिस्वरोमसंमितभूतभक्त्यस्वकीयपुरुषसन्तारणाप्सरःसिद्धचारण-  
किन्नरसेवितत्वसर्वस्तूयमानत्वविशिष्टार्कवर्णविमानकरणविष्णुपुरगमन-  
पूर्वककल्पशतावच्छिन्नकालवैष्णवस्वर्गलोकनिवासपूर्वकनारायणपरायण-  
त्वनारायणतुल्यबलत्वनारायणकथासक्तत्वविशिष्टभूलोकराजराजत्वान-  
न्तरनारायणपुरप्राप्तिकामः श्वः कल्पपादपमहादानं प्रतिपादयिष्ये’ इति  
सङ्कल्प्य प्रारब्धोपवासो गोविन्दादिमण्डपपूजाचार्यादिविनियोगान्तं  
कुर्यात् । ततो गुरुः षोडशरचक्रवद्वेद्युपरि गुडप्रस्थं निधाय तदुपरि  
ब्रह्मविष्णुशिवभास्करप्रतिमाभिः सह पञ्चशाखं सितवस्त्रयुगान्वितं कल्प-



वृक्षं मध्ये स्थापयित्वा गुडप्रस्थे सदारकामप्रतिमया सह निर्मितं  
सितवस्त्रयुगान्वितं सन्तानं पूर्वतः स्थापयित्वा तथैव घृतप्रस्थोपरि  
श्रीप्रतिमान्वितं मन्दारं दक्षिणतः स्थापयित्वा पश्चिमे जीरकप्रस्थोपरि  
सावित्रीप्रतिमान्वितं पूर्ववत्पारिजातं स्थापयित्वोत्तरे तिलप्रस्थोपरि सुर-  
भीप्रतिमान्वितं हरिचन्दनं स्थापयित्वा सर्वेषु माल्यफलादि स्थापयेत् ।  
तथा प्राच्याद्यष्टदिक्षु कौशेयवस्त्रादियुक्तान्पूर्णकलशान्स्थापयित्वा पादु-  
कोपानच्छत्रादिकं स्थापयित्वा प्रत्येकं द्रोणमितधान्यान्यपि निधाय  
वेद्यां वितानं च बद्ध्वा मन्त्रेण पञ्च पादपान्क्रमेण प्रतिष्ठाप्य 'ब्रह्म-  
विष्णुशिवाऽर्कसहिताय कल्पपादपाय नमः' सदारकामसहिताय संता-  
नाय०, श्रीसहिताय मन्दाराय०, सावित्रीसहिताय पारिजाताय०,  
सुरभीसहिताय हरिचन्दनाय० ' इत्येवंप्रकारेण यथासंभवमावाहना-  
द्युपचारैः संपूज्य वितानं बध्नीयात् । ततः कुण्डसमीपकुम्भस्थापनग्रहा-  
दिस्थापनप्रभृतिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं तुलापुरुषवत् । एवमभिषिक्तो यज-  
मानः शुक्लवेषो धृतपुष्पाञ्जलिः कल्पपादपं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य तत्प-  
श्चिमत उपविश्य—

नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने ।

विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ॥

यस्मात्त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्दिवाकरः ।

मूर्तामूर्तं परं बीजमतः पाहि सनातन ॥

त्वमेवाऽमृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः ।

सन्तानाद्यैरुपेतः सन्पाहि संसारसागरात् ॥

इत्युक्त्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा नत्वा वेदिपश्चिमतः प्राङ्मुखोऽवे-  
द्याद्युक्त्वा 'सर्वपातकक्षयेत्यादिनारायणपुरप्राप्तिकामः' इत्यन्त उच्च-  
रिते, अमुकगोत्रायेत्यादिविशेषणविशिष्टमुच्चार्य, तुभ्यं गुरवे इमं कल्प-  
पादपं मूलदेशस्थापितब्रह्मविष्णुशिवभास्करप्रतिमं गुडप्रस्थोपरि स्थितं  
सितवस्त्रयुगान्वितं कौशेयसंवीतं कलशाष्टकेक्षुमाल्यफलपादुकासनभा-  
जनदीपिकोपानच्छत्रादिसहितं सवितानं संप्रददे इति गुरुहस्ते  
जलं क्षिपेत् । गुरुश्च स्वस्तिशब्दपूर्वकं 'देवस्य त्वा' इति प्रतिगृह्य  
कामस्तुतिं पठेत् । ततः 'एतत्प्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यं ग्रामरत्नादिकं च  
दक्षिणां तुभ्यं गुरवे संप्रददे' इति तानि दद्यात् । एवं 'पूर्वतो गुडप्र-  
स्थोपरि स्थितं सदारकामप्रतिमान्वितमिक्षुमाल्यफलाद्युपकरणान्वितं



सन्तानं तुभ्यं बह्वृचायस्विजे संप्रददे' इति । ततो दक्षिणतो घृत-  
प्रस्थोपरिस्थं मन्दारं श्रीयुतं यजुर्विद्वत्स्विजे, पश्चिमायां जीरकस्थं  
सावित्रीप्रतिमान्वितं पारिजातं सामशाखिने, उत्तरतस्तिष्ठप्रस्थोपरि  
स्थितं मूले सुरभीप्रतिमान्वितं हरिचन्दनमथर्वविदे दत्त्वा चतुर्भ्योऽपि  
सुवर्णग्रामरत्नादि शक्त्या दक्षिणां दद्यात् । जापकादिभ्यः पृथग्दद्यात् ।  
यद्वा गुर्वादीन्सन्तोष्य तदनुज्ञयाऽन्येभ्योऽपि दद्यात् । ततः आचार्यः  
पुण्याहवाचनान्ते पुनर्महादिपूजां कारयित्वा पीठादिदेवताविसर्गं कुर्यात् ।

इति कल्पपादपदानविधिः ।

अथ गोसहस्रम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।  
गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥  
पुण्यां तिथिमथासाद्य युगमन्वन्तरादिकम् ।  
पयोव्रतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथाऽपि वा ॥  
लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् ।  
पुण्याहवाचनं कुर्याद्धोमः कार्यस्तथैव च ॥  
ऋत्विज्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ।  
वृषं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत् ॥

गोसहस्राद्विनिष्क्रम्य गवां दशकमेव वा इत्यादि । पयोव्रतं दाना-  
त्पूर्वम् । वृषश्च पुष्टः सुरुपो नीरुग्ग्राह्यः । यत्तु कैश्चिद् 'उन्नतस्कन्ध-  
ककुदमुज्ज्वलायतकम्बलम्' इत्यादीनि वृषोत्सर्गप्रकरणे मात्स्ये उक्तानि  
लक्षणानीत्युक्तं तत्र मूलं मृग्यम् । गोसहस्राद्विनिष्क्रम्येति दशोत्तर-  
गोसहस्रादित्यर्थः । तथाच दशाधिकं गोसहस्रादित्यर्थः । तथाच दशा-  
धिकं गोसहस्रं ज्ञेयम् । तत्राप्यधिवासनीयं गोदशकम् । सहस्रगोषु तु  
नावश्यं धेनुत्वादर इति विवेक इति केचित् ।

गोसहस्रं वहिः कुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषितम् ।

सुवर्णशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितम् ॥

वहिः कुर्यान्मण्डपाद्महिंसादयेत् ।

अन्तः प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैः प्रपूजयेत् ॥

सुवर्णघण्टिकायुक्तं ताम्रदोहनिकान्वितम् ।



सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलङ्कृतम् ॥  
 कौशेयवस्त्रसंवीतं माल्यगन्धविभूषितम् ।  
 हेमरत्नयुतैः शृङ्गैश्चामरैश्चापि शोभितम् ॥  
 पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम् ।

सुवर्णघण्टिकेत्यत्र सुवर्णशब्दोऽशीतिगुञ्जापरिमितहेमपरः । सकृत्प्र-  
 युक्तसुवर्णशब्दस्य तथैव प्रसिद्धेः । अत्र 'शृङ्गे दशसौवर्णिके' खुराः  
 पञ्चपलाः, 'पञ्चाशत्पलं दोहनपात्रमित्यन्यत्रोक्तं ग्राह्यम्' इति केचित् ।  
 'यथाशक्ति' इति परे । । पादुकोपानहादिपञ्चकं प्रत्येकं गोदशकस-  
 मीपे स्थाप्यम् ।

गवां दशकमध्ये स्यात्काञ्चनो नन्दिकेश्वरः ।  
 कौशेयवस्त्रसंवीतो नानाभरणभूषितः ॥  
 लवणद्रोणशिखरे माल्येक्षुफलसंयुतः ।  
 ऊर्ध्वस्त्रिनेत्रो द्विभुजः सौम्यास्यो नन्दिकेश्वरः ॥  
 वामे त्रिशूलभृदक्षे चाक्षमालासमन्वितः ।

ऊर्ध्व इति स्थित इत्यर्थः ।

कुर्यात्पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः ।  
 शक्तितः पलसाहसत्रितयं यावदेव तु ।

'साभरणनन्दिकेश्वरनिर्माणाऽर्थमेतद्धेममानम्' इति हेमाद्रौ ।  
 'गोभूषणाद्यप्येतन्मध्ये' इति दानसागरादौ । 'गोशते वै दशांशेन सर्व-  
 मेतत्प्रकल्पयेत्' । गोशताख्यं महादानं सप्तदशमिति दानसौख्ये ।

पुण्यं दिनमथासाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।  
 सर्वोपध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥  
 इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद्गुरवे नन्दिकेश्वरम् ।  
 सर्वोपकरणोपेतं गोयुगं च विचक्षणः ॥  
 ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद्विनिवेदयेत् ।  
 गवां शतमथैकैकां तदर्द्धं वाऽथ त्रिंशतिम् ॥  
 दश पञ्चाऽथवा दद्यादन्येभ्यस्तदनुज्ञया ।

अन्ये ऋत्विज उदासीनाश्च विप्राः । सर्वपक्षेषु त्रिगुणा गुरवे देयाः ।



नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत् ।  
 बह्व्यस्त्वेकस्य दातव्याः श्रीमदारोग्यवृद्धये ॥  
 श्रावयेच्छृगुयाद्वाऽपि महादानानुकीर्तनम् ।  
 तद्दिने ब्रह्मचारी स्याद्यदीच्छेद्विपुलां श्रियम् ॥  
 अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रपदो भवेत् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥  
 विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ।  
 सर्वेषां लोकपालानां लोके संपूज्यते नरैः ॥  
 प्रतिमन्वन्तरं तिष्ठेत्पुनर्गौत्रसमन्वितः ।  
 सप्तलोकानतिक्रम्य ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥  
 शतमैकोत्तरं तद्वत्पितृणां तारयेद्बुधः ।  
 मातामहानां तद्वच्च पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥  
 यावत्कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत्ततः ।  
 अश्वमेधशतं कुर्याच्छिवध्यानपरायणः ॥  
 वैष्णवं योगमास्थाय ततो मुच्येत बन्धनात् । इति ॥  
 इति गोसहस्रदानविधिः ।

अथ प्रयोगः । यजमानोऽधिवासनदिनात्पूर्वं ग्रहमेकाहं दुग्धमात्रा-  
 हारोऽधिवासनदिनेऽद्येत्याद्युक्त्वा 'सकलपापभयानन्तरसिद्धचारण-  
 सेवितत्त्वार्कवर्णसुवर्णकिङ्किणीजालमालिविमानारोहणोत्तरैकैकमन्वन्त-  
 रावच्छिन्नेन्द्रादिसकललोकपाललोकाधिकरणपुत्रपौत्रसमन्वितनिवासा-  
 मरकर्तृकपूजापूर्वकसप्तलोकातिक्रमणोत्तरपुत्रपौत्रसमन्वितशिवालयगम-  
 नैकोत्तरशतपितृमातामहकुलतारणकल्पशतावच्छिन्नशिवपुरनिवासान-  
 न्तरराजराजभवनाश्वमेधशतकर्तृत्वशिवध्यानपरत्त्वविष्णुसादृश्यापन्नयो-  
 गस्थानहेतुकसंसारमोचनकामोऽहं गोसहस्रदानं श्रुः प्रतिपादयिष्ये'  
 इति सङ्कल्पोपवासगोविन्दादिपूजादिमण्डपपूजाचार्यादिविनियोगान्तं  
 कुर्यात् । ततो गुरुर्धेदिमध्ये षोडशारं विलिख्य पुष्पैरवकीर्य पूर्वोक्तं वृषं  
 धेनुदशकं च ब्रह्ममाल्यसुवर्णघण्टासुवर्णतिलकसुवर्णशृङ्गारौघ्यखुरदोहन-  
 पात्रकौशेयवस्त्रपादुकोपानच्छत्रचामरासनाद्युपशोभितं वेद्याः परितः  
 स्थापयेत् । मण्डपाद्वहिर्गोसहस्रं सुवर्णशृङ्गादिसहितं वा अधिवासयेत् ।  
 ततः सप्तदशगोदशकमध्ये षोडशारस्थलवर्णद्रोणोपरि कौशेयवस्त्रसंवीतं



माल्येषु फलादिसंयुतं प्रागुक्तं नन्दिकेश्वरं स्थापयेत्पूजयेत्, उपरि  
वितानं बध्नीयाच्च । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनग्रहस्थापनपूर्णाहुत्य-  
भिषेकान्तं तुलापुरुषवत् । ततो यजमानः पश्चात्स्थित्वा पुष्पाण्यादाय  
सवृषं गोदशकम्,

नमो वो विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च ।  
लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः ॥  
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः ।  
ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः ॥  
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।  
गावो मे हृदये नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥  
यस्मात्त्वं वृषरूपेण धर्म एव सनातनः ।  
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन ॥

इत्यावाहयेत् । ततो वेदिपश्चिमभागे उपविश्य कुशतिलजलान्यादाय  
देशकालोच्चारणान्ते 'सकलपापक्षयानन्तरेत्यादिसंसारमोचनकामः'  
इत्यन्ते संकल्प उच्चारिते, 'एताः सुवर्णशृङ्गाद्यलङ्कृताः सवृषलवणद्रो-  
णोपरिस्थितनन्दिकेश्वरसहिताः पादुकोपानच्छत्रचामरासनसंयुताः  
सवत्ससुवर्णालङ्कृतधेनुदशकसहिताः सहस्रं गाः वितानाद्युपस्कारसहिताः  
अमुकामुकशर्मभ्यो गुर्वृत्विग्भ्योऽहं संप्रददे' इति दद्यात् । तेऽपि  
'स्वस्ति' इत्युक्त्वा पुच्छेषु प्रतिगृह्य 'रुद्राय गाम्' इत्याद्युक्त्वा स्वका-  
मस्तुतिं पठेयुः । दाता दानप्रतिष्ठार्थं तेषु दक्षिणां दद्यात् । सोपकर-  
णनन्दिकेश्वरं प्रत्यक्षरूपभं धेनुदशकात्सोपकरणधेनुद्वयं गोसहस्राच्च  
शतद्वयं गुरवे दद्यात् । ऋत्विग्भ्यश्च दशकान्तर्गतानामेकां गां गोसह-  
स्राच्च प्रत्येकं शतमित्येकः पक्षः । जापकादीनामन्यैव दक्षिणा देया ।  
ग्रामादिना सन्तोष्य यथेच्छं विभाग इति प्रागुक्तम् । ततः पुण्याहवा-  
चनान्ते ग्रहपूजनं तद्विसर्जनादि सर्वं प्रकृतिवद्भवेत् । श्रीकामस्त-  
स्मिन्दिने दुग्धमात्राहारो ब्रह्मचारी च भवेत् । कर्मसाधुप्यार्थं च  
यथाशक्ति ब्राह्मणान्भोजयेत् ॥

इति श्रीमीमांसकभट्टशङ्करात्मजभट्टनीलकण्ठकृते  
दानमयूखे गोसहस्रदानविधिः ॥



## अथ हिरण्यकामधेनुः ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परम् ।

सर्वकामप्रदं नृणां सर्वपातकनाशनम् ॥

लोकेशावाहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम् ।

तुलापुरुषवत्कुर्यात्कुण्डमण्डपवेदिकाः ॥

स्वल्पेष्वेकाम्रिवत्कुर्याद्गुरुरेव समाहितः ।

कुण्डमण्डपेति गोविन्दपूजादिब्राह्मणभोजनान्तर्धर्माणामुपलक्षणम् ।  
गुरुरेवेत्यृत्विङ्निषेधो, न जापकानाम् ।

काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सं च कारयेत् ।

उत्तमा पलसाहस्रैस्तद्वर्द्धेन तु मध्यमा ॥

कनीयसी तद्वर्द्धेन कामधेनुः प्रकीर्तिता ।

यद्यपि यौवनादिवत्सहस्राणां गणः साहस्रम्, बहुवचनेन च तद्वहुत्व  
उक्ते नवसहस्रं पलानीति भाति, तथापि कल्पतर्वाद्यपकर्षवदुत्कर्षोऽपि  
तत्तुल्य एवोचितः । उपनायनमिति वस्तु साहस्रैरिति वृत्तानुरोधेन  
दैर्घ्यम्, पलपदस्यापि पूर्वनिपात आर्षः तेन पलसहस्रेणेत्यर्थः । रूपना-  
रायणदामोदरादयोऽप्येवम् । पलसहस्राणीति काचित्कः पाठोऽप्यमु-  
मेवार्थं संवदति ।

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि हि कारयेत् ।

गुडधेन्वादिषु 'चतुर्थांशेन वत्सः स्यात्' इत्यभिधानात् । 'अत्रापि  
कल्पप्रसुवर्णचतुर्थांशेन वत्सः कार्यः' इति निबन्धकृतः ।

वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्य गुडप्रस्थसमन्वितम् ।

न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलङ्कृताम् ॥

कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम् ।

तथाष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् ॥

श्शुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफलसमन्वितम् ।

भाजनं चासनं तद्वत्ताम्रदोहनकं तथा ॥

भाजनं भोजनपात्रम् ।

कौशेयवस्त्रद्वयसंवृताङ्गी दीपातपत्राभरणाभिरामाम् ।

सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां गणित्रिकापादुकरौप्यपादाम् ॥



रसैश्च सर्वैः पुरतोऽभिजुगं हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः ।

कुण्डलिनीं कर्णयोः कुण्डलयुताम् ।

अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्कराभिर्वितानकञ्चोपरि पञ्चवर्णम् ।

गणित्रिका अक्षमाला । दामोदरीये तु गोलत्रिकेति पाठः । पाद-  
किङ्किणीति तदर्थः । पादुकेति पादुकाः काष्ठमय्यः, रौप्यं रौप्याल-  
ङ्कारः, तद्वयमपि पादेषु यस्याः सा । अजाजी जीरकम् । कुस्तुम्बुरु-  
धान्याकम् । रसैर्मधुरास्लतिक्तकषायकदुलवणरसयुतैर्द्रव्यैः ।

स्नातस्ततो मङ्गलवेद्योषैः प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।

आवाहयेत्तां गुडधेनुमन्त्रैर्द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः ॥

आमन्त्र्य शीलकुलरूपशुणान्विताय

विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।

प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टं

कन्यागणैः परिवृतः पदमिन्दुमौलेः ॥

विप्रायेत्येकवचनमेकामिपक्षे । जापकादिभ्योऽन्यैव दक्षिणा । अने-  
कामिपक्षे तुलापुरुषवत्पक्षत्रयमिति केचित् । पक्षद्वयेऽप्येकस्मै एव विप्रा-  
येति तु युक्तम् । आमन्त्रणमन्त्रास्तु प्रयोगे ज्ञेया इति ।

इति हिरण्यकामधेनुदानविधिः ।

अथ प्रयोगः । तत्र यजमानोऽद्येत्याशुक्त्वा ‘सर्वपापक्षयपूर्वकरु-  
द्रकन्यागणेन्द्रादिसेवितशिवपदप्राप्तिकामः श्वो हिरण्यगर्भकामधेनुमहा-  
दानमहं प्रतिपादयिष्ये’ इति संकल्प्य गोविन्दादिमण्डपपूजादिगुर्वादि-  
नियोगान्तं तुलादानवत्कुर्यात् । गुरुर्वेद्यां षोडशारं विरच्य तदुपरि कृष्णा-  
जिनं प्राग्प्रीत्युत्तरलोमकं न्यस्य तदुपरि गुडप्रस्थं च न्यस्य तदुपरि पल-  
त्रयाधिक्यथाशक्ति हैमीं कामधेनुं सालङ्कारां निर्माय तत्तुरीयभागनिर्मितं  
वत्संस्तनाभिमुखदक्षिणादिगवस्थितं विधाय पञ्चरत्नालङ्कृतां कौशेयद्र-  
व्यसंवीतां सौवर्णनूपुरद्वयग्रैवेयकसौवर्णकुण्डलद्वयघण्टापादकिङ्किणीका-  
ष्ठपादुकाद्वयरौप्यपादचतुष्टयाभरणयुतां ताम्रदोहनान्वितां सचामरां धेनुं  
स्थापयित्वा तत्समन्ताद्वारिपूर्णकुम्भाष्टकं, नानाफलानि, अष्टादशधा-  
न्यानि, इक्षुदण्डाष्टकं, भोजनभाजनपीठदीपच्छत्रपद्मसद्व्याणि, हरिद्रां,  
पुष्पाणि, जीरकं, धान्याकं, शर्करादि स्थापयेत् । ततो वितानं बद्ध्वा  
प्रतिष्ठापूर्वकं नाममन्त्रेण यथाशक्त्युपचारैः पूजयेत्, उपरि वितानं च



वर्णीयात् । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनपूर्णाहुत्यन्तमभिषेकान्तं तुला-  
पुरुषवत् । एवमभिषिक्तो यजमानो गृहीतकुसुमाञ्जलिस्तां प्रदक्षिणी-  
कृत्योपविश्य,—

या लक्ष्मीः सर्वलोकानां या च देवेष्ववस्थिता ।  
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु ॥  
देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया ।  
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥  
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।  
चन्द्रार्कशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रिये ॥  
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।  
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥  
स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजाञ्च या ।  
सर्वपापहरा धेनुस्तस्मान्छान्तिं प्रयच्छतु ॥

इति गुडधेनुमन्त्रैरावाह—

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमङ्गभूता  
विश्वेश्वरि त्रिपथगोदधिपर्वतानाम् ।  
त्वदानशस्त्रशकलीकृतपातकौघः  
प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव पगं नमामि ॥  
लोके यथेप्सितफलानुविधायिनीं त्वा-  
मासाद्य को हि भवदुःखमुपैति मर्त्यः ।  
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं  
त्वां कामधेनुरिति देवगणा वदन्ति ॥

इत्यामन्त्र्याद्येत्यादिकीर्तनान्ते ‘सर्वपापक्षयपूर्वकरुद्रकन्यागणेन्द्रा-  
दिसेवितशिवपदप्राप्तिकामः स्वर्गकाम ईश्वरप्राप्तिकामो वा गुरवे पूर्वोक्त-  
वत्सपञ्चरत्नालङ्काराद्युपेतामिमां कामधेनुं तुभ्यं संप्रददे’ इति दद्यात् ।  
ततः ‘कृतैतदानप्रतिष्ठार्थं प्रामरत्नादि हिरण्यं वा संप्रददे न ममेति  
वदेत् । ततः पुण्याहवाचनानन्तरं यजमानो ग्रहादि संपूज्य, यान्तिवत्या-  
दिना विसर्जयेत् । मण्डपाद्युपकरणं गुरवे निवेदयेत् । कर्मसाङ्गतासि-  
द्धयर्थं ब्राह्मणान्भोजयेत् ।

इति हिरण्यकामधेनुदानप्रयोगः ।



## अथ हिरण्याश्वदानम् ।

मातर्ये—

अथाऽतः संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम् ।

यस्य प्रसादाद्भुवनमनन्तं फलमश्नुते ॥

पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

लौकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥

ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ।

स्वल्पेष्वेकामिवत्कुर्याद्धेमवाजिमखं ततः ॥

स्थापयेद्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि ।

कौशेयवस्त्रसंवीतं कारयेद्धेमवाजिनम् ॥

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रपलाद्बुधः ।

पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ॥

पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम् ।

शय्यां सोपस्करां तद्वद्धेममार्तण्डसंयुताम् ॥

मार्तण्डसंयुतामिति दीर्घपाठः शय्याया विशेषणं चेति दामोदराद्याः ।  
ह्रस्वपाठेनाश्वस्येति हेमाद्रिमदनौ ।

ततः सर्वौषधिस्रानस्त्रापितो वेदपुङ्गवैः ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः । ‘एवमुच्चार्य गुरवे तमश्वं विनिवेदयेत्’ । गुरव  
इति ऋत्विजामप्युपलक्षणमिति रत्नाकरपारिजातयोः । गुरव एवेति  
वाचस्पतिमिश्राः । युक्तं चेदम् । उपलक्षणे मानाभावात् ।

दत्त्वा पापक्षयाज्ञानोलोकमभ्येति शाश्वतम् ।

गोभिर्विभवतः सार्द्धमृत्विजः परिपूजयेत् ॥

सर्वधान्योपकरणं गुरवे विनिवेदयेत् ।

इमं हिरण्याश्वविधिं करोति संवीज्यमानो दिवि देवतेन्द्रैः ।

विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन् । इति ॥

इति हिरण्याश्वदानविधिः ।

अथ प्रयोगः । यजमानः अद्येत्याद्युक्त्वा ‘संकलदुरितनिवृत्तिसम-  
नन्तरशाश्वतसूर्यलोकप्राप्तिपूर्वकदेवतेन्द्रपूज्यमानताविशिष्टस्वर्लोकगमनो-  
त्तरसिद्धपूजितत्वविशिष्टविष्णुलोकप्राप्तिकामः श्वो हिरण्याश्वमहादान-



महं प्रतिपादयिष्ये' इति सङ्कल्प्य गोविन्दादिपूजनादिमण्डपपूजाविगु-  
र्वृत्तिवगादिविनियोगान्तं सर्वं प्रकृतिवत्कुर्यात् । ततो गुरुः षोडशारचकं  
वेद्यां विलिलय्य तदुपरि त्रिपलाधिकसहस्रपलपर्यन्तशतयनुसारसुवर्ण-  
घटितं भास्करप्रतिमायुतं देववाजिनं कौशेयवस्त्रसंवीतं प्राङ्मुखं स्थाप-  
यित्वा समन्ताच्च पूर्णकुम्भाष्टकं पादुकोपानच्छन्नचामरासनभोजनभा-  
जनमात्यैर्भुक्फलान्यष्टादशधान्यानि च स्थापयित्वा सोपकरणां शय्यां  
च सन्निधापयेत् । शय्योपकरणानि च तूलिकोपधानप्रच्छदपटफलपुष्प-  
कुङ्कुमकर्पूरागुरुचन्दनताम्बूलदर्पणकङ्कतिकाचामरव्यजनासनासिपुत्रि-  
कादीपिकोपानत्ताम्रघण्टिकाजल्पपात्रवितानाद्यानि ; ततो 'भास्करा-  
धिष्ठिताय हिरण्याश्वाय नमः' इति प्रतिष्ठापूर्वकं यथासंभवोपचारैर-  
भ्यर्च्योपरि वितानं बध्नीयात् । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनपूर्णाहु-  
त्यभिषेकान्तं प्रकृतिवदेवमभिषिक्तो यजमानो गृहीतकुसुमाञ्जलिहिर-  
ण्याश्वं द्विःपरिक्रम्योपविश्य—

नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पट ।

वाजिरूपेण मामस्मात्पाहि संसारसागरात् ॥

त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्कर ।

यस्माद्भावयसे लोकानतः पाहि सनातन ॥

इत्यामन्वय नमस्कृत्य अद्येत्याद्यन्ते 'सकलैत्यादिप्रागुक्तसङ्कल्पान्ते'  
इमं हिरण्याश्वं कृष्णाजिनोपरिन्यस्ततिलद्रोणोपरि स्थितं कौशेयव-  
स्त्रसंवीतमुपर्यारूढमार्तण्डप्रतिमं शय्यामात्यैर्भुक्फलादिपूर्णकुम्भाष्टकसर्वो-  
पस्करयुतममुकगोत्राय गुरवे संप्रददे' इति तद्वस्ते जलं क्षिपेत् ।  
'दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णदक्षिणां संप्रददे' इति दक्षिणां दत्त्वा ऋत्विगा-  
दिभ्यो गाः शय्याद्युपकरणं च गुरवे दत्त्वा पुण्याहवाचनादिग्रहविसर्ज-  
नाद्यन्तं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत् ॥

इति हिरण्याश्वदानप्रयोगः ।

अथ हिरण्याश्वरथदानम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम् ॥



पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।  
 लोकेशावाहनं तद्वत्तुलापुरुषदानवत् ॥  
 ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ।  
 कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा काञ्चनं कारयेद्रथम् ॥  
 अष्टाश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूबरम् ।  
 ऐन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम् ॥  
 लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलाऽन्वितम् ।  
 तिला द्रोणमिताः ।

आभाराधिपलादूर्ध्वं शक्तितः कारयेद्द्वयः ।

भारः पलसहस्रद्वयम्—

स्त्रियां तुला पलशतं भारः स्याद्विशतिस्तुलाः ।  
 इत्यभिधानात् ।

‘एतच्च सुवर्णमानकूबरध्वजपुरुषलोकपालाश्चक्ररक्षकसहितस्य’ इति  
 निबन्धकृतः । कूबरो युगाधारकाष्टम् । लोकपाललक्षणं ब्रह्माण्डे उक्तम् ।

चत्वारः पूर्णकलशा धान्यान्यष्टादशैव तु ।

कौशेयवस्त्रसंवीतमुपरिष्ठाद्वितानकम् ॥

मात्येक्षुफलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् ।

पुरुषेणैष्टदेवताप्रतिमया समन्वितमधिष्ठितम् ।

छत्रचामरकौशेयवस्त्रोपानहपादुकाः ।

गोभिर्विभवतः सार्द्धं दद्याच्च शयनादिकम् ॥

अश्वाष्टकेन संयुक्तं चतुर्भिरथवाजिभिः ।

द्वाभ्यामथ युतं दद्याद्धेभसिह्वजान्वितम् ॥

अष्टाऽश्वं चतुरश्वं वेति काञ्चनाश्वपरम् । अष्टाश्वकेनेत्यादि तु प्रत्यक्षा-  
 श्वपरमिति भेदः । तत्राश्वद्वयपक्षे हेममयसिंहाङ्कितध्वजयुक्तरथ इति ’अव-  
 शिष्टपक्षद्वये काञ्चनाश्वोक्तेन्द्रनीलकुम्भाङ्कितध्वजयुक्तरथ इति व्यवस्था ।

यत्तु हेमाद्रौ ’सप्ताश्वकेन संयुक्तम्’ इति कचित्पाठः स सर्व-  
 पुस्तकविसंवादादुपेक्ष्यः । एतेन यत्केनचिदेतत्पाठालम्बनेनोक्तम् ’अष्टा-  
 श्वमित्यनेन पौनरुक्त्याभावादुभयत्रापि हेमा एवाश्वा ग्राह्या न कचि-  
 दपि स्वाभाविकाः’ इति तदप्यपास्तम् । चतुर्भिरथवाजिभिरित्यस्य  
 चतुरश्वं वेत्यनेन पौनरुक्त्यस्यापरिहाराच्च ।

चक्ररक्षावुभौ तस्य तुरगस्थावथाश्विनौ ।



चक्ररक्षौ चक्रसमीपस्थावश्विनौ कार्यौ ।

तल्लक्षणमुक्तं तुलायाम्—

— पुण्यकालं ततः प्राप्य पूर्ववत्स्नापितो द्विजैः ।

त्रिःप्रदक्षिणमावृत्त्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

शुक्लमात्याम्बरो दद्यादिसं मन्त्रमुदीरयेत् ।

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

इति तुरगरथदानमेतद्भवभयसूदनकारि यः करोति ।

स कलुषपटलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः ॥

देदीप्यमानवपुषां विजितप्रभाव-

माक्रम्य मण्डलमखण्डमचण्डरश्मेः ।

सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमान-

वक्त्राम्बुजोऽम्बुजभवेन चिरं सहास्ते ॥

इति हिरण्याश्वरथदानम् ।

अथ प्रयोगः । यजमानोऽद्येत्याहुक्त्वा 'सकलकलुषपटलविमुक्ति-  
भवभयाभावपूर्वकपिनाकपाणिपरमपदप्राप्तिकामो देदीप्यमानस्ववपुःप्र-  
भाविजितचन्द्रमण्डलाक्रमणसिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमानवदनाम्बु-  
जत्वपूर्वकचिरकालत्रहसहवासकामो वा श्वो हिरण्याश्वरथमहादानमहं  
प्रतिपादयिष्ये' इति सङ्कल्प्य गोविन्दादिपूजामण्डपपूजागुर्वादिविनियो-  
गान्तं प्रकृतिवत्कुर्यात् । ततो गुरुर्वेद्यां षोडशारचकादि विरच्य तत्र  
न्यस्तकृष्णाजिने द्रोणपरिमितान्तिलान्स्थापयित्वा तदुपरि प्रागुक्तकूबर-  
ध्वजपुरुषादिभिरष्टभिश्चतुर्भिर्वाऽश्वैः सह यथा सुवर्णघटितं चतुश्चक्र-  
मिन्द्रनीलमयकुम्भाङ्कितहेमध्वजयुतं, प्रत्यक्षाश्वद्वयपक्षे हेमसिंहाङ्कित-  
ध्वजसंयुतं प्रागादिदिगष्टकस्थितलोकपालाष्टकप्रतिमायुतं सपञ्चराग-  
दलसौवर्णस्वेष्टदेवताप्रतिमाधिष्ठितं चक्रसमीपस्थाश्वारूढचक्ररक्षकाश्वि-  
नीकुमारप्रतिमाद्वययुतं प्रागुक्तकुम्भधान्याहुपेतं सवितानकं यथाशक्ति  
क्लृप्तगवीभिर्युतं प्रत्यक्षैरष्टाभिश्चतुर्भिर्वाश्वैर्द्वीभ्यां वा प्रत्यक्षाश्वभ्यां युतं  
रथं स्थापयेत् । ततो 'हिरण्याश्वरथाय नमः' इति संपूज्योपरि वितानं  
बध्नीयात् । ततः कुम्भसमीपस्थकुम्भस्थापनपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृति-  
वत् । एवमभिषिक्तो यजमानो गृहीतकुसुमाञ्जलिस्तं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य,

नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय ।

धाम्नामधीशाय भवाय जेत्रे पापौघदावानल देहि शान्तिम् ॥



वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां त्वमेव धाता परमं निधानम् ।

यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मेकतानत्वमचौघनाशात् ।

इति मन्त्रमुक्त्वा पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य नमस्कृत्योपविश्याद्येत्याहुक्त्वा सकलकलुषेत्यादिसङ्कल्पान्ते 'गुर्वृत्तिभ्यो ब्राह्मणेभ्य इमं हिरण्याश्वरथं हैमाष्टाश्वं हैमचतुरश्वं वा सर्वोपस्करसहितमहं संप्रददे न मम' इति तद्धस्ते पुनर्जलं क्षिपेत् । 'कृतैतद्दानप्रतिष्ठार्थमेतान्सुवर्णान्युष्मभ्यमहं संप्रददे' इति वदेत् । अत्राप्यल्पद्रव्यत्वे एकाभिर्विधानादिकं ज्ञेयम् । ततः पुण्याहवाचनदेवताविसर्जनान्तं कृत्वा प्रकृतिवद्ब्राह्मणान्भोजयेत् ।

इति हिरण्याश्वरथदानम् ।

अथ हेमहस्तिरथदानम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम् ।  
 यस्य प्रसादाद्भवनं वैष्णवं याति मानवः ॥  
 पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।  
 विप्रवाचनिकं कुर्याल्लोकेशावाहनं ध्रुवः ॥  
 ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ।  
 अत्राप्युपोषितस्तद्ब्राह्मणैः सह भोजनम् ॥  
 कुर्यात्पुष्करथाकारं काञ्चनं मणिमण्डलम् ।  
 बलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् ॥  
 लोकपालाष्टकोपेतं शिवार्कब्रह्मसंयुतम् ।  
 मध्ये नागायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् ॥  
 कृष्णाजिने तिलद्रोणं कृत्वा संस्थापयेद्ब्रथम् ।  
 तथाऽष्टादश धान्यानि भाजनासनचन्दनैः ॥  
 दीपिकोपानहच्छत्रदर्पणं पादुकान्वितम् ।  
 ध्वजे तु गरुडं कुर्यात्कूबराग्रे विनायकम् ॥  
 नानाफलसमायुक्तमुपरिष्ठाद्वितानकम् ।  
 कौशेयं पञ्चवर्णं च अम्लानकुसुमान्वितम् ॥  
 चतुर्भिः कलशैः सार्द्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम् ।  
 चतुर्भिर्हेममातङ्गैर्मुक्तादामविभूषितैः ॥



स्वरूपतः करिभ्यां च युक्तं कृत्वा निवेदयेत् ।  
 कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमाभारादपि शक्तिः ॥  
 तथा मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः ।  
 त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥  
 इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

इत्थं प्रणम्य कनकैर्न रथप्रधानं

यः कारयेत्सकलपापविमुक्तदेहः ।

विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टं

प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः । इति ॥

पुण्यरथः क्रीडारथः । स चोपर्याच्छादितो भवति । वलभ्यो लोक-  
 पालाश्रयाः । उपरितनलगुगुहाणीति दामोदरः । लोकपालशिवार्कब्रह्म-  
 लक्षणानि प्रागुक्तानि ।

नारायणप्रतिमा नारदपञ्चरात्रे—

नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रे तथोत्तरे ।

दक्षिणे तु गदापद्मे नीलजीमूतसन्निभम् ॥

वामे श्रीर्वलकीहस्ता पुष्टिः पद्मकरा परे ॥

उत्तरे शङ्खमधः , उपरि चक्रम् । दक्षिणे उपरि गदा, पद्ममधः इति ।  
 वामे वामभागे । अपरे दक्षिणे भागे ।

गरुडस्तु—

उपेन्द्रस्याग्रतः पक्षी गुडाकेशः कृताञ्जलिः ।

सव्यजानुगतो भूमौ मूर्द्धा च फणमण्डितः ॥

पक्षिजङ्घो नरग्रीवस्तुङ्गनासो नराङ्गकः ।

द्विबाहुपक्षयुक्तश्च कर्तव्यो विनतासुतः । इति ॥

विनायकोऽपि—

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च कर्तव्योऽत्र गजाननः ।

नागयज्ञोपवीतश्च शशाङ्ककृतशेखरः ॥

दन्तं दक्षकरे दद्याद्वितीये चाक्षसूत्रकम् ।

तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं तथा । इत्यर्थः ॥

पञ्चपलादिसुवर्णपरिमाणं ध्वजगरुडविनायकादिप्रतिमासहितस्य



रथस्य । अत्राऽधिवासं हेमहस्तिरहितरथस्यैव । स्वरूपहस्तिनोस्तु बहिरेव स्थापनम् ।

अथ प्रयोगः । यजमानो देशकालौ सङ्कीर्त्य 'सर्वपापक्षयानन्तरसं-  
भावितनरकनिवासयातनाभितप्तत्रासादिसकलबन्धूद्वरणपूर्वकविष्णुस-  
दननयनसमनन्तरस्वविष्णुपदप्राप्तिपूर्वकविद्याधरामरेन्द्रादिसेवितेन्दुमौ-  
लिपदप्राप्तिकामः श्रुत्वा हेमहस्तिमहादानमहं प्रतिपादयिष्ये' इति संकल्प्य  
प्रकृतिवद्गोविन्दादिपूजामण्डपपूजागुर्वादिविनियोगान्तं सर्वं कुर्यात् ।  
ततो गुरुर्वेद्यां षोडशारं विरच्य तदास्तीर्णकृष्णाजिनन्यस्ततिलद्रोणो-  
परिपलपञ्चकादाभारान्तं यथाशक्ति सुवर्णेन गजध्वजलोकपालशिवाक-  
ब्रह्मनारायणादिप्रतिमाभिः सह निर्मितं हेमहस्तिचतुष्टययुतं गरुडाधि-  
ष्ठितध्वजाग्रन्थिविनायकाधिष्ठितकूबरं परितः स्थापितधान्याद्युपस्करं  
प्रत्यक्षगजद्वयोपेतं सवितानकं रथं स्थापयित्वा ॐ हेमहस्तिरथाय  
नमः इति संपूज्योपरि वितानं बध्नीयात् । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भ-  
स्थापनादिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । एवमभिषिक्तो यजमानः  
सपुष्पाञ्जलिस्त्रिःप्रदक्षिणं प्रक्रम्य—

नमो नमः शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।

त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञ तेजोमय स्यन्दन पाहि तरमात् ॥

यत्तत्पदं परमगुह्यतमं सुरारे-

रानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तमन्तः ।

यौगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ

पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथेन रूढः ॥

यस्मात्त्वमेव भवसागरसंप्लुताना-

मानन्दभाण्डभृतमध्वरपारमात्रम् ।

तस्मादधौघशमनेन कुरु प्रसादं

चामीकरेभरथमाध्वसंप्रदानात् ॥

इति मन्त्रैरावाह्य पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमभागे उप-  
विश्य प्रागुक्तदानसङ्कल्पमुच्चार्य 'गुर्वृत्तिगम्य इमं हेमहस्तिरथं प्रागुक्त-  
सकलोपस्करसहितं प्रत्यक्षगजद्वययुक्तं युष्मभ्यमहं संप्रददे' इति गुर्वा-  
दिभ्यो दत्त्वा सुवर्णं दक्षिणां दद्यात् । विभागः प्राकृतः । स्वस्तिवाचना-  
दिविप्रभोजनान्तं प्राकृतम् । द्रव्याल्पत्वेन एकाग्रिविधानमिति केचित् ।

इति हेमहस्तिरथदानम् ।



## अथ पञ्चलाङ्गलदानम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।  
 पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम् ॥  
 पुष्पां तिथिमथासाद्य युगादिग्रहणादिकीम् ।  
 भूमिदानं नरो दद्यात्पञ्चलाङ्गलकान्वितम् ॥  
 खर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनम् ।  
 निवर्तनशतं वाऽपि तदर्द्धं वाऽपि शक्तितः ॥  
 सारदारुमयान्कृत्वा हलान्पञ्च विचक्षणः ।  
 सर्वोपकरणैर्युक्तैस्तथान्यान्पञ्च काञ्चनान् ॥  
 कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि ।  
 वृषान्लक्षणयुक्तांश्च दशैव च धुरन्धरान् ॥  
 सुवर्णशृङ्गाभरणान्मुक्तालाङ्गलभूषितान् ।  
 रौप्यपादामृतिलकान् रक्तकौशेयभूषणान् ॥  
 स्रग्दामचन्दनयुतान्शालायामधिवासयेत् ।  
 पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसं निर्वपेच्चरुम् ॥  
 एकस्मिन्नेन कुण्डे तु गुरुर्यस्मै निवेदयेत् ।  
 पालाशसमिधस्तद्वद्राज्यं कृष्णतिलैस्तथा ॥  
 तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं ततः ।  
 ततो मङ्गलशब्देन शुक्लमात्यम्बरो बुधः ॥  
 आहूय द्विजदाम्पत्यं हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ।  
 कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चापि पूजयेत् ॥  
 ततः प्रदक्षिणं कुर्याद्रूहीतकुसुमाञ्जलिः ।  
 इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्वं निवेदयेत् ॥

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

'सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डनिवर्तनम् ।  
 त्रिभागहीनं गोचर्म मानमाह प्रजापतिः ॥  
 मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः ।  
 विधिनाऽनेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः ॥  
 तदर्द्धमपि यो दद्यादपि गोचर्ममात्रकम् ।



भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥

खर्वटादिलक्षणं मार्कण्डेये—

सोत्सेधवप्रप्राकारं सर्वतः खानकावृतम् ।

योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम् ॥

तदर्धेन तथा खेटं तत्पादोनं च खर्वटम् ।

तथा शूद्रजनप्रायं सुसमृद्धकृषीवलम् ॥

क्षेत्रोपभोगभूमध्ये वसतिग्रामसंज्ञिता ।

यावन्ति लाङ्गलविभागमुखानि भूमे-

र्भासांपतेर्दुहितुरंगजरोमकाणि ॥

तावन्ति शङ्करपुरे स समा हि तिष्ठे-

द्भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः । इति ॥

अथ प्रयोगः । यजमानोऽद्येत्यादि 'सकलपातकक्षयानन्तरगन्धर्वकि-  
न्नरसुरासुरसिद्धसङ्घसेवितावधूतचामरविमानाधिष्ठानपूर्वकस्त्रीयामरनाय-  
कत्वपूर्वकपितृपितामहादिबन्धुसहितशम्भुपुरगमनानन्तरैतदेयभूलाङ्गल-  
मुखोत्कीर्णरजःसहितहलसम्बद्धवृषरोमसङ्घचवर्णावच्छिन्नशम्भुपुरनिवा-  
सकामः इवः पञ्चलाङ्गलमहादानं प्रतिपादयिष्ये' इति कृतसङ्कल्पः प्रकृ-  
तिवद्भोविन्दादिपूजामण्डपपूजागुर्वादिविनियोगान्तं सर्वं कुर्यात् । ततो  
गुरुः षोडशारे सारदारुमयानि पञ्च हलानि युगयोः करज्जुफालतोदाद्यु-  
पाकरणयुतानि काञ्चनोपकरणसहितानि काञ्चननिर्मितानि पञ्च हला-  
नि तूलीताम्बूलाद्युपकरणसहितां शय्यां गामेकां दोग्ध्रीं परितोऽष्टादश  
धान्यानि मण्डपाद्वहिर्गोसहस्रोक्तलक्षणान्वृषान्सालङ्कारान्सोपस्करान-  
धिवास्य वेद्युपरि वितानं बद्ध्वा, 'हलेभ्यो नमः' इति मन्त्रेण संपूज्य कु-  
ण्डाभ्यां कलशस्थापनादिवनस्पतिपर्यन्तप्रधानहोमान्तं संपादयेत् ।  
ततो गुर्वाज्ञया चतुर्णामन्यतम ऋत्विक् स्वकीये कुण्डे 'पर्जन्याया-  
ऽऽदित्येभ्यो रुद्राय जुष्टं निर्वपामि' इतितत्तदेवतायै प्रत्येकं चरुं निरूप्य  
पयसि श्रपयित्वा तेन पालाशसमिद्धिः सौवेणाऽऽज्येन श्यामतिलैश्च पर्ज-  
न्यादित्यरुद्रेभ्यस्तल्लिङ्गकैर्मन्त्रैः प्रत्येकमष्टाविंशतिर्जुहुयात् । तत्र ऋग्वे-  
दिनाम् 'अच्छा वद' इति पर्जन्यमन्त्रः । एवं यजुर्वेदिनाम् 'शन्नो वातः  
पवताम्' । सामगानाम् 'पर्जन्यः पिता महिषस्य' इति । आथर्वणां नाम्  
'अभिकन्दस्तनयाद्रथोदधि' इति । आदित्यरुद्रयोस्तु मन्त्रास्तत्तच्छास्त्रीयाः



सामान्यप्रयोगे पूर्वमुक्ताः । ततः खिष्टकृदाद्यभिषेकान्तं, ततो यजमानः  
सपुष्पे लाङ्गलानि त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य—

यस्मादेवमणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च ।

धुरन्धराङ्गे तिष्ठन्ति तस्माद्भक्तिः शिवाऽस्तु मे ॥

यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्म एव दृढा भवेत् ॥

इत्युक्त्वा पुष्पाणि हलेषु क्षिप्त्वा नत्वा च वेदिपश्चिमत उपविश्य  
सप्तमीकं गुरुमुपवेद्याद्येत्यादिप्रधानसंकल्पकीर्तनान्तेऽमुकगुरवे तुभ्यं  
भूमिसंहितानि धुरन्धरवृषशय्यादिसर्वोपस्करसहितानि सुवर्णसारदा-  
रुमयान्युभयविधानि हलानि संप्रदे इति दद्यात् । दक्षिणां च, ऋत्वि-  
ग्योऽन्या दक्षिणा । स्वल्पेष्वेकाग्रिविधानमिति केचित् । पुनः पुण्या-  
हवाचनानन्तरपूजादेवताविसर्जनविप्रभोजनानि प्रकृतिवत् ।

इति पञ्चलाङ्गलदानप्रयोगः ।

### अथ धरादानम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम् ॥

कारयेत्पृथिवीं हैमीं जम्बूद्वीपानुकारिणीम् ।

मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम् ॥

लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम् ।

नदीनदसमोपेतामन्ते सागरवेष्टिताम् ॥

महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुताम् ।

हेम्नः पलसहस्रेण तदर्द्धेनाथ शक्तितः ॥

शतत्रयेण वा कुर्याद्द्विशतेन शतेन वा ।

कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि विचक्षणः ॥

पलसहस्रादिभानं प्रतिमादिसहितायाः पृथिव्याः ।

तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं ततः ॥

ऋत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादानादिकम् ।

वेद्यां कृष्णाजिनं कृत्वा तिलानामुपरि न्यसेत् ॥



तथाष्टादश धान्यानि रसौश्च लवणादिकान् ।  
 तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्परिकल्पयेत् ॥  
 वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च ।  
 इत्येवं रक्षयित्वा तामधिवासनपूर्वकम् ॥  
 पुण्यं कालमथाऽऽसाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् ।

मन्त्राः प्रयोगे हेयाः ।

एवमुच्चार्य तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।  
 धराद्धं वा चतुर्भागं गुरवे विनिवेदयेत् ॥  
 शेषं चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । इति ॥  
 'एकहस्तेन कर्तव्या चतुरस्रा सुशोभना' ।

इति हेमाद्रिरूपनारायणादिभिश्चतुरस्रोक्ता । 'त्रिकोणा' दानसौदये  
 दामोदरीये च । 'परिमण्डला' इत्यन्ये ।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धेमधरां शुभाम् ।  
 पुण्यकाले तु संप्राप्ते स पदं याति वैष्णवम् ॥  
 विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ।  
 नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमसौ रमेत् ॥  
 पुत्रपौत्रप्रपौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम् । इति ॥

पृथिवीं हैमीं कुर्यादित्युक्ते सप्तद्वीपवत्याः करणप्रसङ्गे जम्बूद्वीपानु-  
 कारिणीमिति विशेषणम् । जम्बूद्वीपानुसादृश्येऽपि नानापर्वतसरोवरा-  
 द्यन्वितानुकारित्वप्रसङ्गे मर्यादापर्वतवतीमित्युक्तम् । तावता मेरोरकर-  
 णप्रसङ्गे मध्ये मेरुसमन्वितामित्युक्तम् । जम्बूद्वीपलक्षणं विष्णुपुराणे—

नववर्षं तु मैत्रेय जम्बूद्वीपमिदं मया ।  
 लक्षयोजनविस्तारं सङ्क्षेपात्कथितं तव ॥  
 जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः ।  
 मैत्रेय वलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्वहिः ॥  
 जम्बूद्वीपं समस्तानां द्वीपानां मध्यतः स्थितम् ।  
 तस्यापि मेरुमैत्रेय मध्ये कनकनिर्मितः ॥  
 चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।  
 प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥  
 मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः ।



तथा—

मेरोश्चतुर्विंशं तत्र नवसाहस्रविस्तृतः ॥  
 इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः ।  
 विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायतविस्तृताः ॥  
 पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ।  
 वैभ्राजः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ॥

मर्यादापर्वतास्तु ब्रह्माण्डे—

जाठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ ।  
 तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषथायतौ ॥  
 कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणे वर्षपर्वतौ ।  
 पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥  
 त्रिशृङ्गो जारभिश्चैव उत्तरे वर्षपर्वतौ ।  
 पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥  
 निषधः पारिजातश्च पश्चिमे वर्षपर्वतौ ।  
 तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषथायतौ ॥

इलावृतस्यौभयपार्श्ववर्तिनौ नीलनिषधौ द्वौ पर्वतौ दैर्घ्येण लक्ष्यौजनौ ।  
 वर्षाण्यप्युक्तानि ब्रह्माण्डे—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ।  
 एतद्वै भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥  
 भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् ।  
 हरिवर्षं तथैवान्यं मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥  
 रम्यकं चोत्तरे वर्षं तस्य चानु हिरण्यम् ।  
 उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥  
 मेरोः पूर्वेण भद्राश्वं केतुमालं तु पश्चिमे ।  
 वर्षे द्वे तु समाख्याते तयोर्मध्यमिलावृतम् ॥  
 नवसाहस्रमेतेषामेकैकं द्विजसत्तमाः ।

अथ प्रयोगः । कर्ताऽद्येत्याद्युक्त्वा 'सर्वपापाऽमङ्गलनिवृत्तिपितृपुत्राद्ये-  
 कविंशतिस्वपुरुषोद्धारणपूर्वककिङ्किणीजालमालिसौवर्णविमानकरणकना-  
 रायणपुरगमनानन्तरकल्पत्रयावच्छिन्ननारायणपुरनिवासकामः श्रो धरा-  
 महादानमहं प्रतिपादयिष्ये' इति प्रधानसङ्कल्पादिषोडशारलिखनान्तं



प्रकृतिवत् । तदुपरि कृष्णाजिनमास्तीर्य तत्र द्रोणमितांस्तिलानासाद्य  
तदुपरि प्रागुक्तलक्षणां मेरोरुपरि पूर्वादिक्रमेण लोकपालाष्टकोपेतां  
महारत्नयुतां वसुरुद्रादित्यप्रतिमोपेतां धरां स्थापयेत् । तस्याश्च परितः  
प्रागुक्तधान्यकुम्भाष्टकोपेतनानाविधफलवासःप्रभृतीन् स्थापयेत् । 'धरायै  
नमः' इति पूजयेदुपरि वित्तानं बध्नीयाच्च । ततः कुण्डसमीपस्थकु-  
म्भस्थापनादिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । एवमभिषिक्तो यजमानस्तां  
त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य पुष्पाण्यादाय—

नमस्ते सर्वभूतानां त्वमेव भवनं यतः ।

धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुन्धरे ॥

वसु धारयसे यस्माद्वसु चातीव निर्मलम् ।

वसुन्धरा ततो जाता तस्मात्पाहि भयादलम् ॥

चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाऽचले ।

अनन्तायै नमस्तस्मात्पाहि संसारकर्दमात् ॥

त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता ।

गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वं ज्योत्स्ना चेन्दौ रवौ प्रभा ॥

बुद्धिर्वृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता ।

विश्वं प्राप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा स्मृता ॥

धृतिः स्थितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा ।

एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥

इत्यभिमन्त्र्य पुष्पाणि प्रक्षिप्य नत्वोद्दुःमुखान्ब्राह्मणानुपवेश्याऽद्ये-  
त्याद्युक्त्वा सर्वपापेत्यादिनारायणपुरनिवासकाम इत्यन्तं प्रतिज्ञाबु-  
द्ध्यै इमां कृष्णाजिनन्यस्ततिलोपरिविन्ध्यस्तां पञ्चपलाधिकयथाशक्ति  
हेमसपरिकरनिर्मितां जम्बूद्वीपानुकारिणीं मर्यादापर्वतमध्यमेरुनववर्षलो-  
कपालाष्टकनदीनदशतयुतां सप्तसागरवेष्टितां फलधान्यवस्त्रादिप्रतिमाद्यु-  
पेतां धरां विष्णुदैवतां युष्मभ्यमहं संप्रददे इति दद्यात् । अर्द्धं तुरीयांशं  
वाऽऽचार्याय शिष्टमृत्विग्भ्यः । प्रकृतिवद्विभाग इति केचित् । नृपकर्तृके  
दाने ग्रामादिदक्षिणा, अन्यकर्तृके तु यथाशक्ति सुवर्णम् । स्वल्पे  
त्वेकाभिविधानमिति केचित् । ब्राह्मणवाचनदेवतापूजनविसर्जनविप्रभो-  
जनानि प्रकृतिवत् ।

इति धरादानप्रयोगः ।



## अथ विश्वचक्रदानम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

विश्वचक्रमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

तपनीयस्य शुद्धस्य विषुवादिषु कारयेत् ।

श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदद्वेन तु मध्यमम् ॥

तस्याद्वेन कनिष्ठं स्याद्विश्वचक्रमुदाहृतम् ।

अन्यद्विंशपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत् ॥

वक्ष्यमाणविश्वादिप्रतिमासहितस्य विश्वचक्रस्येदं मानम् ।

षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम् ॥

अरा नाभिस्पृष्टमूला नेमिस्पृष्टाग्राः शलाकाः । भ्रमन्तीनां वलया-  
काराणां नेमीनां चक्रावयवानामष्टकेनावृतं वेष्टितमित्यर्थः ।

नाभिपद्मे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् ।

नाभिपद्मे नाभिरूपाष्टदलपद्मकर्णिकायामित्यर्थः । अष्टसु दलेष्वावर-  
णरूपदेवताष्टकस्य सन्निवेशात् । 'शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वे तु देव्यष्टकसमा-  
युतम्' । योगारूढं हृत्प्रवेशावस्थितसंपुटाकारहस्तद्वयम् ।

अष्टौ देव्योऽपि पञ्चरात्रे—

विमलोत्कर्षणी ज्ञाना क्रिया योगा तथैव च ।

प्रह्नी सत्या तथेशाना अष्टौ च परितो हरेः ॥

वरदा दक्षहस्तेन वामहस्तधृतायुधाः ।

प्रशस्ततरुणीरूपा अष्टौ देव्यः प्रकीर्तिताः ॥

दक्षो दक्षिणः, आयुधं चक्रमिति दामोदरः ।

द्वितीयावरणे तद्वत्पूर्वतो जलशायिनम् ॥

अत्रिर्भृगुर्वसिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च ।

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥

रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते क्रमात् ।

तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता ॥

चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च ।

पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥

लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्मातङ्गास्तथैव च ।



सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गलानि च कारयेत् ॥  
 अन्तरान्तरतो देवान्विन्यसेदष्टमे पुनः ।  
 तुलापुरुषवच्छेषं समन्तात्परिकल्पयेत् ॥  
 कृष्णाजिने तिलादीनि धान्यवासःफलानि च ।  
 होमाधिवासनान्ते तु गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

होम इत्यादिचक्राधिष्ठितविष्ण्वादिदैवत्यहोमविधानार्थः, स च हो-  
 मस्तत्तन्मन्त्रैर्नाममन्त्रैर्वा प्राकृतग्रहादिहोमोत्तरं कार्यः । आगन्तूनामन्ते  
 निवेशः इति केचित् । तन्न । प्राकृतहोमानुवादकतया विधायकत्वाभावात् ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिकृत्वाऽथ प्रदक्षिणम् ।

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

इत्यामन्त्र्य तु यो दद्याद्विश्वचक्रं विमत्सरम् ।  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥  
 वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुः सनातनः ।  
 सेव्यतेऽप्सरसां सङ्घैस्तिष्ठेत्कल्पशतत्रयम् ॥  
 प्रणमेद्वा स्वयं कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने ।  
 तत्त्वाऽऽयुर्वर्द्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत् ॥

इति सकलसुरासुराधिवासं

वितरति यस्तपनीयषोडशारम् ।

हरिभवनमुपागतः स सिद्धै-

श्चिरमधिगम्य नमस्यते शिरोभिः । इति ॥

जलशायी ब्रह्माण्डदाने उक्तः । ऋषिरूपं पञ्चरात्रे—

जटिलाः श्मश्रुलाः शान्ताः कृशा धमनिसन्तताः ।

कुण्डिकाक्षधराः कार्या ऋषयो द्विभुजाः सदा ॥

धमनिः शिरा । कुण्डिका कमण्डलुः । अक्षोऽक्षमाला ।

मत्स्यादयः पञ्चरात्रे—

वामे शङ्खं गदां दक्षे द्विभुजो मत्स्यरूपधृक् ।

नराङ्घ्रिर्मत्स्यरूपोऽथो मत्स्यरूपी जनार्दनः ॥

‘अधोऽङ्घ्रौ मत्स्यरूपं वा’ इति विकल्पः । दामोदरस्तु ‘उक्तायुध-  
 करचरणदियुतपुरुषाकारेण केवलमत्स्याकारेण च विकल्पमाह’ ।

कूर्मस्तु कच्छपाकारान्मत्स्यरूपोत्तरूपवान् ।

मधुपिङ्गलवर्णं च चतुर्बाह्यायुधैर्वृतम् ॥



नराङ्गं शूकरास्यं च मनाऋपीनं सुभीषणम् ।  
 श्रीर्वामकूर्परस्था तु धरानन्तौ पदानुगौ ॥  
 एतद्द्रूपधरं देवं वराहं भुक्तिमुक्तिदम् ।

कूर्परं दंष्ट्राग्रमिति दामोदरः ।

ज्वलदग्निसमाकारं सिंहवक्त्रं नराङ्गकम् ।  
 दंष्ट्राकरालवदनं ललज्जिह्वं सुभीषणम् ॥  
 वृत्तास्यं जटिलं कुट्टमालीढं पीनवक्षसम् ।  
 अभेद्यतीक्ष्णनखरमात्मसंहतदानवम् ॥  
 तद्वक्षो दारयन्तं च कराभ्यां नखैर्भृशम् ।  
 गदाचक्रधरं द्वाभ्यां नरसिंहं जगत्प्रभुम् ॥  
 कुण्डीलत्रधरो द्विर्दोर्वामनः परिकीर्तितः ।  
 क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्रहन्परशुं करे ॥  
 जामदग्न्यश्च कर्तव्यो रामो रोषारुणेक्षणः ।  
 युवा प्रसन्नवदनः सिंहस्कन्धो महाबलः ॥  
 आजानुबाहुः कर्तव्यो रामो बाणधनुर्धरः ।  
 मद्यपात्रं च सीरं च वामदक्षिणयोः क्रमात् ॥  
 गदामुसलवज्रं च हली रामः प्रकीर्तितः ।

मुसलरूपं वज्रमित्यर्थः । दक्षिणोर्ध्वाधःकरयोर्मद्यपात्रसीरे । वाम-  
 योर्गदामुसले इति चतुर्बाहु रामः ।

शङ्खचक्रधरः श्यामो द्विभुजः कृष्णसंज्ञकः ।  
 काषायवस्त्रसंवीतः स्कन्धसंसक्तचीवरः ॥  
 पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी बुद्धः प्रकीर्तितः ।  
 खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो हयारूढो महाबलः ॥  
 म्लेच्छोच्छेदकरः कल्की द्विभुजः परिकीर्तितः ।

अथ विश्वचक्रदानप्रयोगः । अधिवासनदिने यजमान उपवि-  
 श्याऽद्येत्यादिकीर्तनान्ते 'सकलपापक्षयानन्तरविष्णुलोकमहीयमानत्व-  
 विशिष्टवैकुण्ठलोकासादनपूर्वकचतुर्बाहुत्वसनातनत्वाप्सरःसङ्घसेव्यमान-  
 ताविशिष्टकल्पत्रयाऽवधिकतदधिकरणकस्थितिकामोऽहं श्रो विश्वचक्र-  
 महादानं प्रनिपादयिष्ये' इतिकृतसङ्कल्पः प्रकृतिवद्गोविन्दादिपूजा-  
 दिमण्डपपूजादिगुर्वादिविनियोगान्तं सर्वं कुर्यात् । ततो गुरुर्वेद्यां षोड-



शौरचक्रन्यस्तकृष्णाजिने स्थापितद्रोणमिततिलोपरि विश्वचक्रं संस्थाप्य  
तस्याष्टदलकर्णिकायां विष्णुं, पूर्वादिदलेषु 'विमला उत्कर्षणी ज्ञाना  
क्रिया योगा प्रह्वी सत्या ईशाना' इत्यष्टौ । द्वितीयावरणे षोडशकोष्ठेषु  
'जलशाय्यन्निभृगुनसिद्धब्रह्मकश्यपमत्स्याद्यवतारदशकम्' इति प्रतिमाषो-  
डशकम् । तृतीयावरणे गौरी ब्रह्माणी रौद्री कौमारी वैष्णवी वाराहीन्द्रा-  
णीकौशिकीत्यष्टौ, ध्रुवाध्वरसोमानिलनलप्रत्यूषप्रभासाख्यानष्टौ वसून् ।  
चतुर्थावरणे धात्र्यममित्रवरुणांशभगेन्द्रविवस्वतूपषपर्जन्यत्वष्टृविष्वाख्य-  
द्वादशादित्यान्वेदचतुष्टयं च । पञ्चमावरणे पञ्च भूतानि पृथिवीवरुणवह्नि-  
वायुविनायकात्मकानि वीरभद्रशम्भुगिरिशार्ङ्गकपादहिर्बुध्न्यपिनाकिमुव-  
नाधीश्वरकपालिविशाम्पतिस्थाणुभगाख्यान्, एकादश रुद्राश्च । षष्ठावरणे  
यथाक्रमतो लोकपालाष्टकम्, ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पद-  
न्तसार्वभौमसुप्रतीकाः इति दिग्गजाष्टकम् । सप्तमावरणे खड्गचक्रश-  
क्तिपाशध्वजगदाशूलशङ्खकौस्तुभचामरच्छत्रपूर्णकुम्भदीपवृषभरूपाणि रश्मि-  
र्गण्डानि । अष्टमावरणे विष्णुदेव्यष्टकजलशाय्यऽग्निभृगुवसिष्ठब्रह्म-  
कश्यपमत्स्यप्रतिमाषोडशकं स्थापयेत् । चक्रस्य समन्ताद्धान्यरसद्र-  
व्यपूर्णकुम्भाष्टकवस्त्रमाल्येक्षुफलरत्नादीनि वितानकं च बध्नीयात् । ततो  
'विश्वचक्राय नमः' इति पूजयेत् । ततः कुण्डसमीपे कलशस्थापना-  
दिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । प्राकृतग्रहादिहोमोत्तरं 'चक्राधिष्ठित-  
विष्ण्वादिभ्यस्तत्तन्मन्त्रैर्नाममन्त्रैर्वाऽष्टाविंशत्यादिसंख्यया होम कार्यः'  
इति केचित् । ततोऽभिषिक्तो यजमानो विश्वचक्रं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य—

नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः ।

परमानन्दरूप त्वं पाहि नः पापकर्ममात् ॥

तेजोमयमिदं यस्मात्सदा पश्यन्ति योगिनः ।

हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाभ्यहम् ॥

वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः ।

अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह ॥

विश्वचक्रमिदं यस्मात्सर्वपापहरं परम् ।

आयुधं चाधिवासश्च भवादुद्धर मामतः ॥

इतिमन्त्रैरामन्त्र्य पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमत उप-  
विश्य पूर्वोक्तं सकलेत्यादिमहासङ्कल्पमुक्त्वा इमं विश्वचक्रं विष्ण्वा-



दिदेवताऽधिष्ठितं विष्णुदैवत्यं युष्मभ्यमहं संप्रददे इति दद्यात् । दान-  
प्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणाविभागः प्राक्कृतः । स्वरूपेष्वेकामिविधान-  
मिति केचित् । पुण्याहवाचनदेवताविसर्जनब्राह्मणभोजनानि कुर्यात् ॥

इति विश्वचक्रदानम् ॥

अथ महाकल्पलतादानम् ।

मात्स्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

महाकल्पलता नाम महापातकनाशनम् ॥

पुण्यां तिथिमथाऽऽसाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥

तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनादिकम् ।

चामीकरमयीः कुर्याद्दश कल्पलताः शुभाः ॥

चामीकरं हेम । नानापुष्पफलोपेता नानांशुकविभूषिताः ।

पुष्पफलांशुकानि स्वरूपतः इति केचित् । 'हैमानि' इत्यपरे ।  
हैमलतानां स्वरूपतः पुष्पफलानां योगासंभवात्तानि हैमानि । अंशु-  
कानि तु कार्पासादीन्येव । हैमोपादाने तत्पदे लक्षणापत्तेरिति तु युक्तं  
प्रतीमः । अत्र 'फलान्याम्राद्याकाराणि' इति रूपनारायणः । 'काम-  
नया पशुपुत्रादिरूपाणि' इति दामोदररत्नाकरादयः ।

विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः ।

हारानादिस्तुभिः सिद्धैः फलानि च विहङ्गमैः ॥

सिद्धाः पक्षिमुखाः किन्नराः । विहङ्गमाः पक्षिणो वेति दामोदरः ।

लोकपालानुसारिण्यः कर्तव्यास्तासु देवताः ।

ब्राह्मीमनन्तशक्तिं च लवणस्योपि न्यसेत् ॥

अधस्तालतयोर्मध्ये पद्मशङ्खधरे उभे ।

इभासनस्था तु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा ॥

रजन्यजस्थितामेयी सुवपाणिरथानले ।

याम्ये च महिषारूढा गदिनी तन्दुलोपरि ॥

घने चैर्करी स्थाप्या सखङ्गा दक्षिणाऽपरे ।

क फणीक्षीरे वृषस्था नागपाशिनी ॥

पताकिनी च त्रायव्ये मृगस्था शर्करोपरि ।



सौम्या तिलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता ॥

माहेश्वरी वृषारूढा नवनीते त्रिशूलिनी ।

मौलिन्यो वरदास्तद्वत्कर्तव्या बालकान्विताः ॥

मध्ये द्वे लते । अष्टदिक्ष्वष्टौ । मध्ययोरथो ब्राह्मयनन्तशक्ती । अन्या-  
सामधो लोकपालशक्तयः । इभ ऐरावतः । रजन्यजो हरिद्राच्छागः ।

निधिः कलशाकारः । बालकान्विताः क्रोडस्थवालाः ।

शक्त्या पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रात्प्रकल्पयेत् ।

सप्रतिमादीनामेतन्मानम्—

सर्वासामुपरिष्ठाच्च पञ्चवर्णवितानकम् ।

धेनवो दशकुम्भाश्च वस्त्रयुग्मानि चैव हि ॥

मध्यमे द्वे तु गुरवे ऋत्विग्भ्योऽन्यास्तथैव च ।

ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरावृतः ॥

त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् ।

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

इति सकलदिग्गङ्गाप्रदानं भवभयसूदनकारि यः करोति ।

अभिमतफलदेशनागलोके वसति पितामहवत्सराणि त्रिशत् ॥

पितृशतमथ तारयेद्भवाब्धे र्भवदुरितौघविनाशशुद्धदेहः ।

सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः परिवृतमम्बुजसंसदाभिवन्द्यः । इति ॥

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादि 'सकलपक्षयविशुद्धदेहत्वपूर्वकदेवगण-

सहस्रपरिवृतब्रह्माभिनन्द्यपितृशतभवाब्धिसन्तारणानन्तरब्रह्मत्रिशद्वत्स-

रावधिकामितफलदनागलोकनिवासकामः श्वः कल्पलतामहादानं प्रतिपा-

दयिष्ये' इति सङ्कल्प्य प्रकृतिवद्भोविन्दादिपूजामण्डपपूजागुर्वादिविनि-

योगान्तं सर्वं कुर्यात् । ततो वेदिलिखितचक्रन्यस्तलवणकूटोपरि एकां

लतां स्थापयित्वा तन्मूले ब्राह्मीं न्यसेत् । लवणकूट एवापरां लतां स्था-

पयित्वा तन्मूलदेशे 'आनन्तीं शक्तिम्' पूर्वादिक्रमात् 'गुडहरिद्रा-

च्छागतन्दुलघृतक्षीरशर्करातिलनवनीतस्थाप्यलतामूलेषु ऐन्द्रादिशक्तीः'

संस्थाप्य परितो दश पूर्णकुम्भान् दश धेनूँ दश वस्त्रयुगानि फलमात्य-

धान्यादीनि च विन्यस्य लतासहिताः शक्तीः प्रतिष्ठापूर्वकं पूज-

यित्वा ततः कुण्डसमीपस्थकलशस्थापनादिपूर्णाहुत

वत् । एवमभिषिक्तो यजमानः कल्पलतास्त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य—



सप्तसागरदानविधिः ।

१५७

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माण्डलोकेश्वरमालिनीभ्यः ।

आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥

इमं मन्त्रमुच्चार्य पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमत उपविश्य  
पूर्वोक्तं महासङ्कल्पमुत्तवा यथासंभवं विशेषणवैशिष्ट्यमुच्चार्य दद्यात् ।  
स्वल्पद्रव्यत्वपक्षे एकाग्रिविधानमिति केचित् । पुण्याहवाचनदेवतापूज-  
नविसर्जनमण्डपादिप्रतिपादनब्राह्मणभोजनादीनि प्रकृतिवत् ।

इति कल्पलतादानम् ।

अथ सप्तसागरदानविधिः ।

मात्स्ये—

अथातः संपन्थामि महादानमनुत्तमम्  
सप्तसागरकं नाम सर्वपातकनाशनम् ॥  
कारयेत्सप्त कुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ।  
प्रादेशमात्राणि तथा रत्निमात्राणि वा पुनः ॥  
कुर्यात्सप्तपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तिः ।  
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि ॥  
प्रथमं पूरयेत्कुण्डं लवणेन विचक्षणः ।  
द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः ॥  
चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च ।  
षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा ॥  
स्थापयेत्तत्रणस्यान्तर्ब्रह्माणं काञ्चनं शुभम् ।  
केशवं क्षीरमध्ये च घृतमध्ये महेश्वरम् ॥  
भास्करं गुडमध्ये च दधिमध्ये सुराधिपम् ।  
शर्करायां न्यसेदक्ष्मीं जलमध्ये च पार्वतीम् ॥  
सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः ।  
तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत् ॥  
ततो वारुणहोमान्ते स्नापितो वेदपुङ्गवैः ।  
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥

मन्त्राः प्रयोगे ज्ञेयाः ।

इति ददाति रसामृतसंयुताञ्जुचिरविस्मयवानिह सागरान् ।

१४-१५



अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ पदमुपैति हरेरमराचितः ॥

सकलपापविधौतविराजितः पितृपितामहपुत्रकलत्रकम् ।

पुत्रशतत्रयमिति वाचस्पतिमिश्रः पपाठ । पुत्रकलत्रकमिति रत्ना-  
करदामोदरादयः । नरकलोकसमाकुलमप्ययं झटिति सोऽपि नयेच्छिवम-  
न्दिरम्, इत्यादि । ' प्रादेशान्तिकमात्राणि ' इति तिर्यगूर्ध्वम् । ' रत्निर-  
ङ्गुष्ठपर्वाणि प्रादेशः परिकीर्तितः । ' सार्द्धदशाङ्गुलः प्रादेशः ' इति कल्प-  
तरुः । ब्रह्मादिप्रतिमा ब्रह्माण्डदानादौ दर्शिताः ।

अथ सप्तसागरदानप्रयोगः । यजमानोऽद्येत्यादि ' कलुषक्षयसंभा-  
वितनरकनिवासपितृपितामहपुत्रकलत्रशिवमन्दिरनयनपूर्वकामरामृतत्व-  
' शिष्टस्वीयहरिपदप्राप्तिकामः श्वः सप्तसागरमहादानमहं प्रतिपादयिष्ये  
तिसङ्कल्प्य दादिपूजादिमण्डपपूजा । दिविनियोगान्तं प्रकृ-  
त्तश्चक्रासादितकृष्णाजिनन्यस्ततिलद्रोणे हैमानि सप्त कु-  
स्थाप्य क्रमेण लवणदुग्धघृतगुडदधिशर्करातीर्थवारिभिः  
तेषु ब्रह्मकेशवमहेश्वरभास्करसुराधिपलक्ष्मीपार्वतीप्रतिमाः  
। परितोऽष्टादश धान्यानि वितानकं चोपरि सप्तब्रह्मादीन्  
पूजयेत् । ततः कुण्डसमीपस्थकलशस्थापनादिवनस्पतिहोमान्तं  
उमष्टाविंशत्यष्टोत्तरशताष्टोत्तरसहस्रान्यतमसंख्यया स्वस्वशास्त्री-  
न्त्रैस्तिलान्हुत्वा स्विष्टकृदादिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्राकृतं कुर्युः ।

एवमभिषिक्तो यजमानः सागरांस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य—

नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः ।

जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः ॥

क्षीरोदकाज्यदधिमाधुरलावणेषु-

सारामृतेन भुवनत्रयजीवसङ्गान् ।

आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्त-

स्तस्मान्ममाऽप्यघविघातमलं विधध्वम् ॥

यस्मात्समस्तभुवनेषु भवन्त एव

तीर्थांमरासुरसुबद्धमणिप्रदानम् ।

पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय

लोकस्य विभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः ॥

इति मन्त्रैरनुमन्त्र्य पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमत उपविश्य



देशकालकीर्तनान्ते सकलकलुषक्षयेत्यादिमहासङ्कल्पमुक्त्वा सप्तसा-  
गरान्त्रह्यादिप्रतिमासहितान्सोपस्करान्विष्णुदैवतास्तुलापुरुषमस्त्यपुरा-  
णीयभागव्यवस्थया युष्मभ्यमहं संप्रददे न ममेति सुवर्णदक्षिणां दद्यात् ।  
स्वल्पे त्वेकामिरिति केचित् । ततः पुण्याह्वाचनग्रहादिपूजाविसर्ज-  
नब्राह्मणभोजनानि कुर्यात् ।

इति सप्तसागरदानविधिः ।

अथ रत्नधेनुदानविधिः ।

मात्स्थे—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।  
रत्नधेनुरिति ख्यातं गोलोकफलदं नृणाम् ॥  
पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।  
लोकेशावाहनं तद्वत्ततो धेनुं प्रकल्पयेत् ॥  
भूमौ कृष्णाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम् ।  
धेनुं रत्नमयीं कृत्वा सङ्कल्पविधिपूर्वकम् ॥  
स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीतिमुखे ब्रुवः ।  
पुष्परागशतं तद्वद्द्रोणायां परिकल्पयेत् ॥  
लल्यटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः ।  
भूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वयोः स्थिते ॥  
काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो वज्रशतात्मकम् ।  
प्रीवायां नेत्रपटलं गोमेदकशतात्मकम् ॥  
इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतपार्श्वके ॥  
स्फटिकैरुदरं तद्वत्सौगन्धिकशतात्कटिम् ।

सौगन्धिकं पद्मरागः । 'सौगन्धिकं तु कन्हारे पद्मरागे च कर्तृणे'  
इति वैजयन्तीकोशात् ।

खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् ।  
सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दनम् ॥  
कुङ्कुमानि च रोमाणि रौप्यां नाभिं च कारयेत् ।  
गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत् ॥  
अथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्वसन्धिषु ॥  
कुर्याच्छर्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम् ।



गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धं स्वरूपतः ॥  
 पुच्छाग्रे चामरं दद्यात्समीपे ताम्रदोहनम् ।  
 कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः ॥  
 कारयेदेवमेवं तु चतुर्थीशेन वत्सकम् ।  
 तथा सर्वाणि धान्यानि पादाश्चक्षुमयाः स्मृताः ॥  
 नानाफलानि सर्वाणि पञ्चवर्णं वितानकम् ।  
 एवं विरचनं कृत्वा तद्वद्धोमाधिवासनम् ॥  
 ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्धेनुसामन्त्रयेद्बुधः ।  
 गुडधेनुवदामन्त्र्य इदं चोदाहरेत्ततः ॥

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

आमन्त्र्य चेत्थमभितः परिवृत्य भक्तो  
 दद्याद्द्विजाय गुरवे जलपूर्वकां ताम् ।  
 यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोपवासः  
 पापैर्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः ॥  
 इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं  
 वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम् ।  
 सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः

सह मदनसरूपः स्थानमध्येति शम्भोः । इति ॥

अथ प्रयोगः । तत्र यजमानो अद्येत्यादि 'सकलकलुषक्षयमदनस्वरूप-  
 पक्षपूर्वकबन्धुवर्गपुत्रपौत्रादिसहितवरविमानारोहणपूर्वकगोलोकप्राप्तिका-  
 मस्तद्वच्छम्भुपदप्राप्तिकामस्तद्वद्धरिपदप्राप्तिकामो वा श्वो रत्नधेनुमहादा-  
 नमहं प्रतिपादयिष्ये ' इतिसङ्कल्प्य प्रकृतिवद्गोविन्दादिपूजामण्डपपू-  
 जागुर्वादिविनियोगान्तं कृत्वा गुरुः षोडशारे कृष्णाजिनं प्रसार्य  
 तदुपरि लवणं द्रोणमितं प्रसार्य तदुपरि रेखामयीं प्राङ्मुखीं गौमुद-  
 कपादामालिख्य रत्नैरङ्गानि कुर्यात् । तत्र एकाशीतिपद्मरागैर्मुखम् ।  
 पुष्परागशतेन नासाम् । ललाटं हेमतिलकम् । पञ्चाशन्मुक्ताफलैः  
 प्रत्येकं दशौ । विद्रुमशतेन विभज्य भूयुगम् । शुक्तिभ्यां कर्णौ । काञ्चने  
 शृङ्गे । हीरकशतेन शिरः । गोमेदकशतान्वितेन नेत्रनामकपटेन ग्रीवाम् ।  
 वैडूर्यशतेन पार्श्वे । स्फटिकशतेनोदरम् । पद्मरागशतेन कटिम् । शक्तितो  
 हेन्ना खुरान् । सूर्यकान्तकर्पूराभ्यां दक्षिणव्राणपुटम् । चन्द्रकान्तचन्द-



नाभ्यां वामघ्राणपुटम् । कुङ्कुमेन रोमाणि । रूप्येण नाभिम् । गारुत्म-  
 तशतेनाऽपानम् । रत्नान्तरैः सर्वसन्धीन् । शर्करया जिह्वाम् । गुडो  
 गोमये । आज्यं मूत्रे । चामरं पुच्छाग्रे । स्वरूपतो दधिदुग्धे । सन्निधौ  
 ताम्रप्रदोहनम् । सौवर्णकुण्डलग्रैवेयकादीनि स्थाप्यानि । एवं धेनुसाध-  
 नद्रव्यचतुर्थांशेन धेनोरुत्तरतः प्राङ्मुखमुदक्पादं वत्सं च रचयेत् । दधि-  
 दुग्धदोहनानि च वत्से न संभवन्ति । समन्तादष्टादश धान्यानि  
 फलपुष्पवस्त्रादीनि चाऽऽसाद्य 'रत्नधेनवे सवत्सायै नमः' इति पूज-  
 यित्वा वितानं वध्नीयात् । ततः कुण्डसमीपस्थकलशस्थापनादिप्रकृ-  
 तिवत् । एवमभिषिक्तो यजमानो रत्नधेनुं त्रिःप्रदक्षिणमावृत्योपति-  
 षेत् । मन्त्रास्तु—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता ।

धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु ॥

देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य च या प्रिया ।

धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसौ ।

चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपा च सा श्रिये ॥

चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।

लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥

स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या ।

सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥

त्वां सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति

रुद्रेन्द्रचन्द्रकमलासनवासुदेवाः ।

तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेवयुक्ते

मां पाहि देवि भवसागरपीड्यमानम् ॥ इति ।

ततः पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमत उपविश्याद्येत्यादिमहा-  
 संकल्पमुक्त्वा 'इमां रत्नधेनुं पद्मरागमुखां पुष्परागघोणां सुवर्णतिलका-  
 लङ्कृतां मुक्ताफलादिरचितनयनाद्यवयवोपेतां साधनपद्मरागादिद्रव्यचतु-  
 र्थांशेन रचितवत्ससहितां परितः स्थापितधान्यपुष्पफलादिमतीं  
 विष्णुदैवतां गुरवेऽहं संप्रददे' इति । 'एकस्मा एव दद्यात्' इति भूषा-



लरत्नाकरादयः । हेमाद्र्यादयस्तु 'एकाग्रिविधान एकस्मै, अनेकाग्रिपक्षे  
तु तुलापुरुषवद्विभागः' इत्याहुः । सुवर्णं दक्षिणां दद्यात् । ततः स्वस्त्या-  
दिवाचनप्रहादिपूजनविसर्जनब्राह्मणभोजनादि पूर्ववत् ।

इति रत्नधेनुदानप्रयोगः ।

अथ महाभूतघटदानविधिः ।

मास्त्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ॥

पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

कृत्विङ्मण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥

तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं तथा ।

कारयेत्काञ्चनं कुम्भं महारत्नचितं बुधः ॥

महारत्नानि ब्रह्मोक्तानि ।

प्रादेशादङ्गुलशतं यावत्कुर्यात्प्रमाणतः ।

क्षीराज्यपूरितं तद्वत्कल्पवृक्षसमन्वितम् ॥

पद्मासनगतांस्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।

लोकपालान्सहेन्द्रांश्च स्ववाहनसमन्वितान् ॥

वराहेण धृतां तद्वत्कृत्वा पृथ्वीं सपङ्कजाम् ।

वरुणं चासनगतं काञ्चनं मकरोपरि ॥

हुताशनं मेषगतं वायुं कृतमृगासनम् ।

तथाकाशाधिपं कुर्यान्मूषकस्थं विनायकम् ॥

विन्यस्य घटमप्येतान्वेदपङ्कजसंयुतान् ।

ऋग्वेदस्याक्षसूत्रं स्याद्यजुर्वेदस्य पङ्कजम् ॥

सामवेदस्य वीणा स्याद्धेनुं दक्षिणतो न्यसेत् ।

अथर्ववेदस्य पुनः सुकसुवौ दक्षिणे करे ॥

पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः ।

अत्र कल्पवृक्षप्रतिमाप्रादेशादिपरिमाणसहितघटसंपादकसुवर्णमान-  
मार्थिकम् ।

परितः सर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम् ।

पादुक्रोपानहच्छत्रभूषणाच्छादनादिकम् ॥

शय्यां च जलकुम्भांश्च पञ्चवर्णी वितानकम् ।



जलकुम्भाः षोडश ।

स्नात्वाऽधिवासनान्ते तु मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

इत्युच्चार्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥

विमानेनार्कवर्णेन पितृबन्धुसमन्वितः ।

स्तूयमानो वरस्त्रीभिः पदं प्राप्नोति वैष्णवम् ॥

षोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवः ।

न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते । इति ॥

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादि 'सकलपापक्षयपूर्वकपित्रादिसकलबन्धुजनसहितामरस्त्रीसेव्यमानार्कवर्णविमानकरणकविष्णुपदप्राप्तिकामः श्वो महाभूतघटमहादानमहं प्रतिपादयिष्ये' इति सङ्कल्प्य प्रकृतिवद्गोविन्दादिपूजामण्डपपूजागुर्वादिविनियोगान्तं कुर्यात् । गुरुः षोडशारे वज्र-मौक्तिकमाणिक्यनीलमरकताख्यमहारत्नान्वितं तुल्याभ्यां गव्यदुग्धघृताभ्यां पूर्णं मध्यस्थापितकल्पवृक्षं घटाकारं महाभूतघटं स्थापयेत् । घटमध्ये ब्रह्मादिप्रतिमाः स्थापयित्वा चतुर्दिक्ष्वष्टादश धान्यानि छत्रचामरभूषणशय्यादीनि षोडश जलकुम्भांश्च सन्निधापयेत् । ततः 'महाभूतघटाय नमः' इति संपूज्य वितानं बध्नीयात् । ततः कुण्डसमीपस्थकुम्भस्थापनादिपूर्णाहुत्यभिषेकान्तं प्रकृतिवत् । एवमभिषिक्तो यजमानो महाभूतघटं त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य—

नमो वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे ।

महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम ॥

यस्मान्न किञ्चिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम् ।

ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्माच्छ्रीरस्तु मे सदा ॥

इत्युपस्थाय पुष्पाणि प्रक्षिप्य नमस्कृत्य वेदिपश्चिमत उपविश्याद्येत्याशुक्त्वा महासङ्कल्पमुच्चार्य 'इमं महाभूतघटं महारत्नचित्तमन्तःस्थितसौवर्णकल्पवृक्षादिपुराणवेदान्तप्रतिमासहितं परितः स्थापिताष्टादशधान्यछत्रचामरासनशय्यापूर्णकुम्भादिसहितं विष्णुदैवतं तुलापुरुषोक्तभाराव्यवस्थया गुर्वृत्तिभ्यो युष्मभ्यमहं संप्रददे न मम' इति तद्धस्तेषु दत्त्वा सुवर्णदक्षिणां दद्यात् । स्वल्पत्वेकान्निविधानम् । देयविभागस्तुलापुरुषव-



त्रेधा । ततः पुण्याहवाचनग्रहादिपूजनविसर्जनमण्डपादिप्रतिपादनब्राह्म-  
णभोजनाशीर्वादग्रहणमङ्गलाचारादीनि । इति महाभूतघटमहादानम् ॥  
इति षोडश महादानानि ।

### अथ दश महादानानि ।

कौमें—

कनकाश्वतिला नागा दासीरथमहीगृहाः ।

कन्या च कपिला धेनुर्महादानानि वै दश ॥

बह्मपुराणे राम उवाच—

क्रोधादिकं मया कर्म कृतं मुनिवरोत्तमाः ।

कथं तस्माद्विमुच्येऽहं पापात्प्राणिवधादिकात् ॥

इत्युक्ता धर्मतत्त्वज्ञाः पापानां पावनं परम् ।

दानं चेह सुवर्णस्य ते तमूचुर्महर्षयः ॥

व्यासः—

सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काश्चनम् ।

एतद्धि भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥

नन्दिपुराणे—

तस्मात्स्वशक्त्या दातव्यं काश्चनं मानवैर्भुवि ।

नातः परतरं लोके सद्यः पापविमोचनम् ॥

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥

आद्यसुवर्णशब्देन हिरण्यमुक्तम् । द्वितीयेन च शोभनवर्णत्वम् ।  
तृतीयेन परिमाणविशेषः ।

सुवर्णद्वितयं दत्त्वा अक्षयां गतिमाप्नुयात् ।

दत्त्वा सुवर्णस्य शतं द्विजेभ्यः श्रद्धयाऽन्वितः ॥

ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते ।

सकृदुच्चरितसुवर्णशब्दस्य षोडशमाषविशिष्टहेमवाचितेति प्रागुक्तम् ।  
सुवर्णदाने देयसुवर्णस्य तृतीयश्चतुर्थो वांशो दक्षिणेति पूर्वं परिभाषाया-  
मुक्तम् । रजतमिति केचित् ।



दानमन्त्रः—

हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमवीजं विभावसोः ।  
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

कौर्मै—

पलैकं द्विगुणं वाऽपि त्रिगुणं शक्त्यनुक्रमात् ।  
कनकं स्यात्सुवर्णेन द्वाभ्यां त्रिभिः सदक्षिणम् ॥  
यत्नादधो वा तत्कुर्यादक्षिणा स्याद्यथारुचि ।  
इति सुवर्णदानम् ।

आदित्यपुराणे—

आदित्योदयसंप्राप्तौ विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।  
ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः ॥  
ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विलीयते ।

वायुपुराणे—

गुञ्जा गुञ्जार्द्धमात्रं वा नियतः प्रतिवासरम् ।  
कनकं न्यस्य लिङ्गे तु व्रजेत्तत्पदमुत्तमम् ॥

ब्रह्माण्डे—

शृणुष्वभावहितो दानं ब्रवीमि तव नारद ।  
शतमानमिति प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥  
आयुष्यं श्रीकरं पुण्यमारोग्यं सन्ततिप्रदम् ।  
भुक्तिमुक्तिप्रदं स्वर्ग्यं सर्वमङ्गलकारणम् ॥  
पुण्यकालेषु सर्वेषु चन्द्रसूर्यग्रहादिषु ।  
नित्यं वा कारयेद्दानं जन्मर्क्षेषु विशेषतः ॥  
पुण्यदेशेषु सर्वेषु गृहे देवालयेषु च ।  
यत्र साधनसम्पत्तिस्तत्र दानं समाचरेत् ॥

तथा—

गव्येन भूमिं शकृता जलेन आलिख्य मध्ये सिततन्दुलैश्च ।  
सरोरुहं सुन्दरकेसराढ्यं सकर्णिकं चाष्टदलं विलिख्य ॥  
तस्मिन्हिरण्यं शतमानपात्रं निधाय तस्योपरि तं विचिन्त्य ।  
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमाराध्यगन्धादिभिरादरेण ॥



विप्रं तथा वेदत्रिदां वरिष्ठं विचिन्त्य बुद्ध्या तु समर्चयित्वा ।  
 दद्यात्सुवर्णं शतमानमस्मै संप्रीयतामात्मभूरित्युदीर्य ॥  
 शतमानं शतकृष्णलमाषाद्युन्मितम् ।

इति शतमानदानम् ।

अथ रजतदानम् ।

स्कान्दे—

यः प्रयच्छति विप्राय रजतं चाऽपि निर्मलम् ।  
 स विधूयाशु पापानि स्वर्गलोके महीयते ॥  
 रूपवान्सुभगः श्रीमानिह लोकेषु जायते ।  
 इति रजतदानम् ।

अथाश्वदानम् ।

स्कान्दे—

अश्वं यस्तु प्रयच्छेद्वै हेमचित्रं सुलक्षणम् ।  
 स तेन कर्मणा देवि गान्धर्वं लोकमश्नुते ॥

भारते—

सर्वोपकरणोपेतं युवानं दोषवर्जितम् ।  
 योऽश्वं ददाति विप्राय स्वर्गलोके महीयते ॥

तथा—

यावन्ति रोमाणि हये भवन्ति हि नरेश्वर ।  
 तावत्ते वाजिदा लोकान्प्राप्नुवन्तीह पुष्कलान् ॥

कालिकापुराणे—

अश्वं वा यदि वा युग्यं शोभने चाऽथ पादुके ।  
 ददाति यः प्रधानं वै ब्राह्मणेभ्यः सुसंयतः ॥  
 तस्य दिव्यानि यानानि रथध्वजपताकिनः ।  
 दुष्टः पन्था नचैवेह भविष्यति कदाचन ॥

अत्र दिव्ययानरथदुष्टपथविरहसम्पत्तिर्यथाक्रमं प्रत्येकं फलं ज्ञेयम् ।

कौर्मे—

अश्वं तन्मूल्यमथवा कनीयो मध्यमोत्तमम् ।  
 दद्याद्वित्तानुसारेण तारागणपरिच्छदम् ॥



शकैः पञ्चपलै रौप्यैः सुवर्णालङ्कृतं क्रमात् ।  
 सदक्षिणं सवखं च ब्राह्मणायाग्निहोत्रिणे ॥  
 तारागणस्तारानुकार्यलङ्कारः ।

दानमन्त्रः—

उच्चैःश्रवास्त्वमश्वानां राज्ञां विजयकारकः ।  
 सूर्यवाह नमस्तुभ्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अथ श्वेताश्वदानम् ।

गारुडे—

अश्वमेधमखं यस्तु कलौ कर्तुमनीश्वरः ।  
 अश्वदानं तु तेनेह कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥  
 विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।  
 श्वेतमश्वं शुभं तात हेमपर्याणभूषितम् ॥  
 रूप्यैस्तु कटकैः शुद्धैः करिदन्तोपशोभितम् ।  
 वज्रनेत्रं खुरैस्ताम्रैः क्षौमपुच्छं सुवाससम् ॥  
 शुभ्रेण पटकेनैव संवृतं स्वायुधान्वितम् ।  
 धान्यरत्नोपरिस्थं तु बद्धकक्षं सुपट्टकम् ॥  
 एवं सुतेजसं चाश्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

मन्वादियुगाद्यनविषुबोपरागादिषु दानम् ।

अथ पूजामन्त्रः ।

मार्तण्डाय सुवेगाय काश्यपाय त्रिमूर्तये ।  
 जगद्वाहाय सूर्याय त्रिवेदाय नमोऽस्तु ते ॥  
 एवं समुच्चरेन्मन्त्रं कर्णे दद्यात्तिलोदकम् ।

दानवाक्यम् । ॐ अद्येत्यादि 'अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणा-  
 येममश्वं सुवर्णतिलकालङ्कारयुक्तललाटं त्रैवेयकसुपर्याणान्वितं रौप्यक-  
 टकरत्नोपशोभितं वज्रनेत्रं ताम्रखुरं क्षौमपुच्छं सुवाससं शुभ्रपट्टकसंवृतं  
 स्वायुधान्वितं धान्यरत्नोपरिस्थितं बद्धकक्षं सुपट्टगन्धपुष्पाद्यचितं सक-  
 लब्रह्महत्यादिपापनाशकामस्तुभ्यमहं संप्रददे न मम ' इति स्वावधिक-  
 त्रिंशत्पूर्वत्रिंशत्परावरपित्रुद्धरणकामः ' इति वा, 'सूर्यलोकत्रजनकामः '  
 इति वा यथाकाममूहम् ।



१६८

दानमयूखः

महार्णवे समुत्पन्न उच्चैःश्रवसपुत्रक ।  
 मया त्वं विप्रमुख्याय दत्तो ह्य सुखी भव ॥  
 इमं विप्र नमस्तुभ्यमश्वं ते प्रतिपादितम् ।  
 प्रतिगृहीष्व विप्रेन्द्र मया दत्तं तु शोभनम् ॥  
 इति दानमन्त्रमुच्चार्य—  
 कर्णे समर्पणं कृत्वा विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् ।  
 ततः सुवर्णं दद्यात् ।  
 पश्चादश्वपुरो गच्छेत्पादानां सप्तसप्ततिम् ।  
 भास्करं मनसि ध्यात्वा आलोक्य स्वगृहं व्रजेत् ॥  
 श्वेतमश्वं तु यो दद्यात्फलं दशगुणं भवेत् ।  
 बडवां च तथा दत्त्वा तुल्यमेव फलं लभेत् ॥  
 एवं कृते नरव्याघ्र सूर्यलोकं व्रजेन्नरः ।  
 इति श्वेताश्वदानम् ।

### अथ तिलदानम् ।

आदित्यपुराणे—

वैशाख्यां पौर्णमास्यां वा तिलान्क्षौद्रेण संयुतान् ।  
 यः प्रयच्छेद्विजाग्र्येभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 ज्येष्ठे मासि तिलान्दत्त्वा पौर्णमास्यां विशेषतः ।  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 माघे मासि तिलान्यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।  
 सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं न स पश्यति ॥

वसिष्ठः—

नित्यदाता तिलानां यो नरः स्वर्गं महीयते ।

महाभारते—

ददतो जुह्वतश्चैव हरतः प्रतिगृह्णतः ।  
 तिले तिले तिलद्रोणः सौवर्णानां युधिष्ठिर ॥

तथा—

सर्वेषामेव दानानां तिलदानं परं स्मृतम् ।  
 सर्वपापहरं तद्धि पवित्रं स्वर्गमेव च ॥



विष्णुधर्मोत्तरे—

तिला गावो हिरण्यं च अन्नं कन्या वसुन्धरा ।  
दत्तान्येतानि विधिवत्तारयन्ति महाभयात् ॥

तथा—

तिलोद्वर्ती तिलस्त्रायी तिलहोमी तिलोदकी ।  
तिलदाता च भोक्ता च षट् तिलाः पापनाशनाः ॥  
असकृत्षट्तिली भूत्वा सर्वपापविवर्जितः ।  
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

कौर्मे—

कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा सुवर्णं मधुसर्पिषी ।  
द्रोणैकं वाससा छन्नं त्रिधा तद्वत्सदक्षिणम् ॥  
आहिताग्नौ द्विजे दत्त्वा सर्वं तरति दुष्कृतम् ।

त्रिधेति हीनमध्यमोत्तमभेदतः । द्रोणैकं द्रोणद्वयं, द्रोणत्रितयं चेति ।  
तद्वत्सदक्षिणं क्रमादेकद्वित्रिसुवर्णसहितम् । अत्रेत्यं दानवाक्यम्,  
अद्येत्यादि 'अमुकसगोत्राय ब्राह्मणाय एवं कृष्णाजिनस्थं सुवर्णमधुस-  
र्पिर्युतं वस्त्रच्छन्नं तिलद्रोणं सर्वपापक्षयकामस्तुभ्यमहं संप्रददे न मम' कृतै-  
तत्तिलदानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिदं सुवर्णं दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे न ममेति ।

इति तिलदानम् ॥

यमः—

तिलपात्रं तु यो दद्यात्प्रत्यहं वाऽथ पर्वणि ।  
सदक्षिणं सत्त्वभावाद्धृदि कृत्वा जनार्दनम् ॥  
नाशयेन्निविधं पापं धर्मस्य वचनं यथा ।

स्कान्दे तु अमायां दत्तं तत् पितृतारकम्, इत्युक्तम् ॥

ब्राह्मे—

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रैर्द्विजाय तु ।  
सहिरण्यं च यो दद्याच्छुद्धावित्तानुसारतः ॥  
सर्वपापविशुद्धात्मा लभते परमां गतिम् ।

दानवाक्यन्तु, अद्येत्यादि 'इदं ताम्रपात्रं तिलपूर्णं ससुवर्णमशेषपा-  
पक्षयकामस्तुभ्यमहं संप्रददे न मम' । सुवर्णं दक्षिणां च दद्यात् ।



अथ महातिलपात्रम् ।

ताम्रपात्रे तिलान्कृत्वा पलषोडशकल्पिते ।  
सहिरण्ये स्वशक्त्या वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥  
नाशयेन्निविधं पापं बाङ्मनःकायसंभवम् ।

कौर्मै—

तिलपूर्णं ताम्रपात्रं सहिरण्यं द्विजातये ।  
प्रातर्दत्त्वा तु विधिवद्बुधःस्वप्नं विनिहन्ति सः ॥  
तिलपात्रं त्रिधा प्रोक्तं कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।  
ताम्रपात्रं दशपलं जघन्यं परिकीर्तितम् ॥  
द्विगुणं मध्यमं प्रोक्तं त्रिगुणं चोत्तमं स्मृतम् ।  
स्वर्णमेकं जघन्ये तु द्विगुणं मध्यमे क्षिपेत् ॥  
त्रिगुणं चोत्तमे तद्वत्सुवर्णं परिकीर्तितम् ।  
सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा सर्वपापक्षयो भवेत् ॥

अथ मात्रर्णापाकरणतिलपूर्णकांस्यपात्रदानम् ।

आदित्यपुराणे—

यज्ञं सौत्रामणिं कर्तुं यदि शक्तिर्न विद्यते ।  
महासरस्तथा वापीं कूपं कर्तुं च दीर्घिकाम् ॥  
एवंकृते मातृऋणान्मुक्तो भवति मानवः ।  
सदक्षिणं कांस्यपात्रमथ दत्त्वा प्रमुच्यते ॥  
शुद्धकांस्यस्य पात्रस्य प्रमाणं पञ्चविंशतिः ।  
पलानामत्र निर्दिष्टं तिलानां प्रस्थसप्तकम् ॥  
सुवर्णमाषांश्चतुरः पात्रोपरि विधारयेत् ।  
वस्त्रेण वेष्टयेत्पात्रं प्रधानेन सुभक्तितः ॥  
स्नानं कृत्वा निम्नगादौ पितृन्देवांश्च तर्पयेत् ।  
ततोऽभिपूजयेच्छम्भुं शङ्करं हरिमेव वा ॥  
गोमयेनाथ संलिप्य गृहमध्यं च सर्वतः ।  
लिखेत्पद्मं द्वादशारं कुङ्कुमेनाथ चन्द्रनैः ॥  
ततो वह्निं स्थापयित्वा होमं कुर्याद्यवैस्तिलैः ।  
तत्र पात्रं प्रतिष्ठाप्य पूजयेद्भक्तिभावतः ॥  
ततो ब्राह्मणमाहूय बहुभृत्यं सुसंयतम् ।



पादौ प्रक्षाल्य विधिवन्मातृश्राद्धं समाचरेत् ॥  
 अलङ्कृत्य यथाशक्त्या माध्यां वा मृतवासरे ।  
 ग्रहणे रविसोमाभ्यां संक्रान्तिषु युगादिषु ॥  
 तथान्यदपि यद्वत्तं माध्यामुद्दिश्य मातरम् ।  
 तदक्षयफलं सर्वं पुरा प्राह महेश्वरः ॥  
 जीवन्तीं भूषयेद्ब्रह्मैर्माल्यैरपि विभूषणैः ।  
 दत्त्वा विप्रस्य पात्रं तु होमं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥  
 सोपस्करं सप्तान्मूलं क्षमाप्य विप्रं विसर्जयेत् ।  
 अन्येषामपि विप्राणां भोजनानि प्रदापयेत् । इत्यादि ॥

अथास्य प्रयोगः । मातृमृतवासरे नद्यादौ वाप्यादौ वा यजमानो  
 कृतस्नानो गृहमध्ये उपलिप्तदेशे कुङ्कुमचन्दनाभ्यां द्वादशदलं पद्मं  
 विरचय्य तत्र पञ्चविंशतिपलमितं कांस्यपात्रं तिलप्रस्थसप्तकपूरितमुप-  
 स्थापितत्पर्णमाषचतुष्टयं च वरवस्त्रवेष्टितं स्थापयित्वा तत्समीपे हरिं  
 शङ्करं चावाहनाद्युपचारैरभ्यर्च्य पुरतोऽग्निं स्थापयित्वा स्वसूत्रविधिना  
 घृताक्तैस्तिलैर्यवैश्च विष्णुमन्त्रेण शिवमन्त्रेण वाऽष्टोत्तरशताहुतीर्हुत्वा  
 मातृक्षयाहश्चेन्मातृश्राद्धं कृत्वा जीवन्त्यां मातरि तां वस्त्रादिभिः सत्कृत्य  
 दानपात्रं तथैवाभ्यर्च्योदङ्मुखमुपवेश्याद्येत्याद्यमुक्तगोत्राय ब्राह्मणायेदं  
 पलपञ्चविंशतिमितं कांस्यपात्रं प्रस्थसप्तकमिततिलपूरितं सुवर्णवरवस्त्र-  
 वेष्टितं समन्तात्स्थापितसप्तधान्यफलादिसहितं मातुरानृत्यकामस्तुभ्यमहं  
 संप्रददे न मम इति दद्यात् । मन्त्रास्तु—

कांस्यपात्रं मया दत्तं मातुरानृत्यकाङ्क्षया ।  
 भगवन्वचनात्तुभ्यं यथाशक्ति तथा वद ॥  
 दश मासांश्च उदरे जनन्या संस्थितस्य मे ।  
 क्लेशिता बालभावेन स्तनपानाद्भिजोत्तम ॥  
 पूयमूत्रादिमलेपलिप्ता या च कृता मया ।  
 भवतो वचनादद्य मम मुक्तिर्भवेदृणात् ॥  
 कांस्यपात्रं सुवर्णं च तिलान्वस्त्रादिदक्षिणाम् ।  
 सप्तधान्यं मया दत्तमृणान्मुक्तिर्भवेन्मम ॥  
 कांस्यपात्रप्रदानेन तत्त्वज्ञानं शरीरकम् ।  
 तथा हेमप्रदानेन परमात्मानमव्ययम् ॥



आच्छादनं तु ब्रह्माण्डं गुह्यमेतत्सदक्षिणम् ।  
 विप्रोऽऽच्छादनदानेन परमात्मा सुपूजितः ॥  
 तिलसंख्याकृतं दुःखं जनन्या मम सेवितम् ।  
 तिलपात्रप्रदानेन कृतमुक्तो भवाम्यहम् । इति ॥

ततः शक्त्या हिरण्यं दक्षिणां दद्यात् । 'पात्रदानेन जननीसम्भ-  
 वादृणात्वं मुक्तः' इति विप्रो ब्रूयात् । पुनर्व्याहृतिभिर्होमं कृत्वा विप्रं  
 विसृज्य यथाशक्ति ब्राह्मणान्भोजयेत् ॥

इति कांस्यपात्रदानप्रयोगः ॥

अथ तिलकुम्भदानम् ।

वायवीये—

तिलकुम्भमथो वक्ष्ये कुम्भे पूर्ववदास्थिते ।  
 वारुणे मण्डले देवं वरुणाकारमर्चयेत् ॥  
 श्वेतैः पुष्पैः फलैर्गन्धैः कर्पूरेण तु पूजयेत् ।  
 वरुणलक्षणं ब्रह्माण्डदाने ।  
 वारुणं मण्डलं स्थाप्य तच्चार्द्धचन्द्राकारं कार्यम् ।  
 षड्रसान्परितो न्यस्य ततो मन्त्रमिमं जपेत् ॥  
 नमो वरुणरूपाय रसाम्बुपतये नमः ।  
 रसवारिनिमित्तानि यान्तु नाशमघानि मे ॥  
 तिलकुम्भप्रदानेन प्रसीद परमेश्वर ।  
 इतिदत्ते विनश्यन्ति पापानि जलचारिणाम् ॥  
 हिंसोद्भवानि स्नानेषु पानके वाऽवगाहने ।  
 रसो यदा न भक्ष्याणामपेयानां च वाञ्छया ॥  
 औषधं वाऽपि देवेश सर्वं मेध्यं भविष्यति ।  
 शिवलोके वसेत्कल्पान्शतपञ्चदशावरान् ॥  
 इति तिलकुम्भदानम् ।

अथ तिलकरकदानम् ।

वायवीये—

करकं तिलसंपूर्णं मण्डले वह्निदैवते ।  
 शिवं वह्निवदाराध्य पूजयेत्करवीरकैः ॥  
 रक्तचन्दनगन्धेन निर्यासेन च धूपयेत् ।



वह्निदैवतं त्रिकोणं मण्डलमित्यर्थः । शिवं वह्निवदिति वह्निस्वरूपं  
शिवमित्यर्थः । तच्चोक्तं ब्रह्माण्डदाने । निर्यासः सर्जरसः ।

आदर्शं च ततो दद्याद्दीपानां च चतुष्टयम् ।  
वह्निरूपपतिः शम्भुर्वह्निरूपी तिलाश्रयः ॥  
तेजोरूपकृतं पापं चाक्षुषं च व्यपोहतु ।  
इतिदत्तेऽस्य नश्यन्ति पापान्यभिकृतानि च ॥  
पाकहोमेषु काष्ठेषु हिंस्यन्ते यानि वह्निना ।  
अगारवनदाहादिसंभवानि च यानि वै ॥  
विरुद्धकरणोत्थानि रूपयोगोद्भवानि च ।  
परदारपरद्रव्यपुत्रदर्शनजानि च ॥  
शवादिदर्शनोत्थानि नेत्रदोषकृतानि च ।  
य एवं कुरुते दानं शिवभक्त्या यतव्रतः ॥  
शिवलोके वसेद्भूयः कल्पत्रयमशङ्कितः ।  
इति तिलकरकदानम् ।

### अथ गजदानम् ।

कौमे—

दद्याद्गजं पुराणोक्तं मूल्यं पञ्चशतानि च ।  
वित्तानुसारात्तत्रापि कनिष्ठोत्तममध्यमम् ॥  
स्वरूपतो गजदानमुत्तमः पक्षः । तन्मूल्यं हेममाषशतपञ्चकं मध्यमः ।  
शतद्वयमधमः इति केचित् । 'पञ्चशतमाषास्तदर्द्धं तदर्द्धम्' इत्यन्ये ।  
'तादृशाः सुवर्णाः' इत्यपरे ।

रूपस्थूणालङ्करणं स्वर्णताराविभूषणम् ।  
सदक्षिणं वित्तशक्त्या दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥  
स्थूणा रज्जुः । तारागणो मौक्तिकजालात्मको गजालङ्कारविशेषः ।  
तथा—

यथालाभोपपन्नं वा यः प्रयच्छति दन्तिनम् ।  
ब्राह्मणाय दरिद्राय स्वर्गलोके महीयते ॥  
कर्मक्षयादिहागत्य महाराजो गजाधिपः ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः ॥



हस्त्यश्वशकटादिदानफलं भारते—

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥

भोगान्भुत्त्वाऽमरपुरे राजा कालक्षयादिह । इति ॥

अत्र दानवाक्यम् । 'अद्येत्याद्युत्तवा ' षट्षष्टिवर्षसहस्रावधिकामर-  
पुरभोगोत्तरमहाराजत्वकामोऽहममुकगोत्राय ब्राह्मणायेमं हस्तिनं कक्षा-  
रञ्जुस्थिरासनसहितं काञ्चनमालादिकीर्णं चामरगन्धपुष्पालङ्कृतं प्रजा-  
पतिदेवतं तुभ्यमहं संप्रददे न मम ' इति करं धृत्वा दद्यात् । 'सुवर्णं  
दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे न मम ' इति ।

इति हस्तिदानम् ।

निवेदयति मातङ्गं भक्त्या स्वर्णाद्यलङ्कृतम् ।

शिवाय पर्वदिवसे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥

इत्यादिना शिवधर्मादौ शिवाय गजदानमुक्तम् ।

अथ दासीदानम् ।

बह्विपुराणे—

स्थिरनक्षत्रसंयुक्ते सौम्ये सौम्यग्रहान्विते ।

दानकालं प्रशंसन्ति सन्तः पर्वणि वा पुनः ॥

अलंकृत्य यथाशक्त्या वासोभिर्भूषणैस्तथा ।

ब्राह्मणाय प्रदातव्या मन्त्रेणानेन शक्तितः ॥

इयं दासी मया तुभ्यं श्रीवत्स प्रतिपादिता ।

सर्वकामकरी भोग्या यथेष्टं भद्रमस्तु ते ॥

पञ्चवर्षाधिका सा तु चत्वारिंशत्समावधि ।

दासी द्विजाय दातव्या दासदानेऽप्ययं विधिः । इत्यादि ॥

अत्र दानवाक्यम्—' अमुकसगोत्रायेमां दासीं सुवर्णालङ्कारवतीं  
पुष्पाद्यर्चितामक्षय्यसुखप्राप्तिकामस्तुभ्यमहं संप्रददे न मम ' इति शिरसि  
धृत्वा दद्यात् सुवर्णं दक्षिणां च दत्त्वा क्षमापयेत्पश्चाद्ब्राह्मणं वस्त्रका-  
ञ्चनैः । अनुगत्वा च सीमायां द्विजं विसर्जयेत्ततः, इत्यादि ।  
अश्वमेधफलशतगुणफलकामः शिवाय दासीं विनिवेदयेदिति शिवाय  
दासीदानमप्युक्तम् ।

इति दासीदानम् ।



## अथ रथदानम् ।

कौमे—

रथं चतुर्वलीवर्दरूढं धान्यावृतं तथा ।

वित्तानुसारात्सर्वैश्च रथोपकरणैर्युतम् ॥

सदक्षिणं च विप्राय दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् ।

धान्यावृतमष्टादशधान्यावृतम् । रथोपकरणानि युगयोक्त्रतोत्रवर-  
त्रादीनि । धान्यावृतं त्रिधा इति वा पाठः । 'त्रिद्व्येकसुवर्णदक्षिणा  
च शतं, उत्तममध्यमकनिष्ठमेदतश्च त्रैविध्यम्' इति हेमाद्रिः । दान-  
वाक्यम् । 'अमुकसगोत्राय ब्राह्मणाय चतुर्वलीवर्दयुक्तमष्टादशधान्यप-  
रिवृतं सर्वोपकरणयुतमेतं रथं विश्वकर्मदैवतमक्षय्यस्वर्गादिसुखका-  
मस्तुभ्यमहं संप्रददे न मम' इति ।

मन्त्रस्तु—

रथाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्मणे ।

विश्वरूपाय नाथाय अरुणाय नमो नमः ॥

इति सुवर्णं दक्षिणां च दद्यात् ।

गारुडे—

गन्त्रीं तुरङ्गसंयुक्तां यो ददाति द्विजातये ।

सर्वकामसमृद्धात्मा स राजा जायते भुवि । इति ॥

गन्त्री रथविशेषः । सा च चतुर्भिरश्वैर्वृषैर्गजैर्वोपेता द्वाभ्यां वोपेता ।

गन्त्रीमिमां प्रयच्छामि विश्वकर्माधिदैवताम् ।

दानेनानेन भगवान्प्रीयतां मे परः पुमान् ॥

इति गन्त्रीदाने मन्त्रः ।

इति रथदानम् ।

मार्गशुक्लैकादश्यां माघफाल्गुनयोर्वा वैशाखे वा हिरण्मयं हरिम-  
भ्यर्च्य जागरं च कृत्वा प्रातः शिबिकां ब्राह्मणाय दत्त्वा तस्य वर्षाशनं  
शिबिकावाहकानां च वर्षार्हमन्नं कल्पयित्वाऽतिविपुलभोगानन्तरं  
विष्णुसायुज्यभागभवति । एतन्मूलं हेमाद्रौ वह्निपुराणे ।

## अथ महीदानम् ।

कौमे—

गोचर्ममात्रं भूखण्डमधिकं वा स्वशक्तितः ।

त्रिधा सदक्षिणां कृत्वा दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥



त्रिद्वयेकसुवर्णरूपा दक्षिणा त्रिधेत्यर्थः ।

बृहस्पतिः—

अपि गोचर्ममात्रेण सम्यग्दत्तेन मानवः ।  
 धौतपापो विशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥  
 दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम् ।  
 त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ॥  
 मानेनानेन यो दद्यान्नवर्तनशतं बुधः । इति ॥

तथा—

गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठेदयन्त्रितः ।  
 तद्धि गोचर्ममात्रं तु प्राहुर्वेदविदो जनाः ॥

अत्र नानागोचर्मप्रकारेषु उत्तममध्यमाधमभावेन व्यवस्था ज्ञेया ।

तथा—

षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः ।  
 आच्छेत्ता चानुमन्ता च तावन्ति नरकं वसेत् ॥

तत्र पुराणभेदान्नानाफलश्रवणेऽपि स्वैकामितमेव फलमुल्लेख्यम् ।

मन्त्रोऽपि—

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ।  
 दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवतिह ॥

अमुकब्राह्मणायामुककामः षष्टिसहस्रवर्षमितस्वर्गवासकामः, शिव-  
 पुरप्राप्तिकामो वा, सर्वपापक्षयकामो वा, भूमिं तुभ्यमहं संप्रददे न  
 मम इति सपुष्पं कुशतिलोदकं ब्राह्मणहस्ते निक्षिपेत् । ब्राह्मणः समीपस्थां  
 भूमिं प्रदक्षिणीकृत्य प्रतिगृह्णीयात् । विप्रकृष्टां तु मनसा प्रदक्षिणीकृत्य—

न हि भूमेः परं वस्तु गोः सुवर्णाच्च किञ्चन ।

अतो भूमिगवि प्राज्ञैः सुवर्णं दक्षिणा मता ॥

इति माण्डव्यवचनादत्र सुवर्णमेव दक्षिणा ।

विश्वामित्रः—

ग्रामं वा नगरं वाऽपि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति ।

क्षेत्रं वा सस्यसम्पन्नं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धरास् ।

स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥



## गृहदानम् ।

१७७

तथा—

अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ।  
 पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥  
 येऽपि सङ्कीर्णकर्माणो राजानो रौद्रकर्मिणः ।  
 तेभ्यः पवित्रमाख्येयं भूमिदानमनुत्तमम् ॥  
 किमत्र चित्रं दातारं यत्समुद्धरते धरा ।  
 प्रतिग्रहग्रहीतारमपि तारयते द्विज ॥  
 इत्यपि हेमाद्रौ । शिवधर्मे शिवाय भूमिदानमुक्तम् ।  
 इति महीदानविधिः ।

## अथ गृहदानम् ।

कौमे—

शक्तिः सर्ववित्तेन पूर्णं गृहमपि त्रिधा ।  
 सदक्षिणं द्विजं दत्त्वा ब्रह्मलोकं व्रजेन्नरः ॥  
 सर्ववित्तेन दासीदासगोबलीवर्दकांस्यताम्रपात्रादिसोपस्करशय्या-  
 सर्वधान्यघृतगुडशर्करादिरूपेण ।

गारुडे—

ऐष्टकं दारवं वाधि मृन्मयं वा स्वशक्तिः ।  
 सर्वोपकरणोपेतं यो दद्याद्विपुलं गृहम् ॥  
 ब्राह्मणाय दरिद्राय विद्वहे च कुटुम्बिने ।  
 क्रीडित्वा सुचिरं कालं मानुष्यं लोकमागतः ॥  
 भवत्यप्यहृतैश्वर्यैः सर्वकामसमन्वितः ।

ब्रह्मवैवर्ते—

न गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नैव दानं गृहात्परम् ।  
 नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात्परः ॥

तथा—

कारयित्वा गृहान् रम्यान् नृनुवत्स्वर्गसंख्यया ।  
 भुवनाष्टादश त्रिंशत्तत्त्वनक्षत्रसंख्यया ॥  
 शक्त्या तद्विगुणान्येव शतं यावत्सहस्रकम् ।  
 कुड्यस्तम्भगवाक्षाद्यान्विचित्रवहुभूमिकान् । इति ॥



जगन्मोहने नारदः—

स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेय्यां पचनालयम् ।  
याम्यां शयनगोहं च नैऋत्यां शस्त्रमन्दिरम् ॥  
प्रतीच्यां भोजनगृहं वायव्यां पशुमन्दिरम् ।  
भाण्डागारं तूत्तरस्यामीशान्यां देवमन्दिरम् । इति ॥

मात्स्ये—

देवतापञ्चकं तत्र चत्वारिंशत्समावृतम् ।  
पूजयित्वा यथान्यायं ततो दद्याद्गृहं गृही ॥  
एकाशीतिपदं कृत्वा रेणुभिः कनकेन वा ।  
पश्चात्पिष्टेनानुलिम्पेत्सूत्रेणालोड्य सर्वतः ॥  
दश पूर्वापरा लेखा दश चैवोत्तरायताः ।  
सर्वं वास्तुविभागेन विज्ञेया नवका नव ॥  
एकाशीतिपदं कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु ।  
पदस्थान्पूजयेद्देवान्निशत्पञ्चदशैव तु ॥  
द्वात्रिंशद्वाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्थयोदश ।  
मध्ये नवपदस्त्वेकश्चत्वारस्त्रिपदाः स्मृताः ॥  
विंशतिस्त्वेकपदिकास्तावन्तो द्विपदाः स्मृताः ।  
एवं प्रतिष्ठिता देवाश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥  
नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत ।  
ईशकोणादिषु सुरान्पूजयेत्क्रमशो नव ॥

ईशानादौ,

शिखी चैव तु पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः ।  
सूर्यः सत्यो भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥  
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ ।  
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणास्तथा ॥  
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः ।  
असुरः शोकपापौ च रोगोऽहिर्मुख्य एव च ॥  
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिश्च वै ।  
बहिर्द्वाविंशदेते तु तदन्तश्चतुरः शृणु ॥  
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ।



अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विष्णुवाधिपः ॥  
 मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीवरः क्रमात् ।  
 अष्टमस्त्वापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥  
 आपश्चैवापवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितस्तथा ।  
 पदिकानां तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः ॥  
 तन्मध्ये तु बहिर्विंशद्विपदास्ते तु सर्वतः ।  
 एतत्पूर्वं गृहारम्भं कुर्याद्वास्तुविचक्षणः ॥  
 वास्तौ परीक्षिते तस्मिन्वास्तुदेहे विचक्षणः ।  
 वास्तूपशमनं कुर्यात्समिद्धिर्बलिकर्म च ॥  
 जीर्णोद्धारं तथोद्याने तथा च नववेदमनि ।  
 नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने ॥  
 द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च ।  
 वास्तूपशमनं कुर्यात्पूर्वमेव विचक्षणः ॥  
 एकाशीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये तु पिष्टकैः ।  
 होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके ॥  
 यवैः कृष्णतिलैश्चैव समिद्धिः क्षीरवृक्षजैः ।  
 पालाशैः खादिरैश्चापामागोदुम्बरसंभवैः ॥  
 कुशदूर्वादलैर्वाऽपि मधुसर्पिःसमन्वितैः ।  
 कार्यस्तु पञ्चभिर्विल्वैर्विल्वबीजैरथापि च ॥  
 होमान्ते भक्ष्यभोज्यैश्च वास्तुदेहे बलिं हरेत् ।  
 तद्वद्विशेषनैवेद्यमिदं दद्यात्क्रमेण तु ॥  
 एवं संपूजिता देवाः शान्तिं कुर्वन्ति ते सदा ।  
 सर्वेषां काञ्चनं दद्याद्ब्रह्मणे गां पयस्विनीम् । इति ॥

अथ गृहवास्तुशान्तिप्रयोगः । यजमानो मासपक्षाद्युल्लिख्य 'अस्य  
 वास्तोः शुभतासिद्धयर्थं वास्तुशान्तिं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-  
 स्वस्तिवाचनमातृपूजाभ्युदयिकप्राद्धाचार्यब्रह्मर्षिगवरणानि कुर्यात् । तत  
 आचार्यो, 'यदत्र संस्थितम्' 'अपक्रामन्तु' इत्येताभ्याम्—

भूतप्रेतपिशाचाद्या अपक्रामन्तु राक्षसाः ।

स्थानादस्माद्भजन्त्वन्यत्स्वीकरोमि भुवं त्विमाम् ॥

इत्यनेन च सर्वपान्विकीर्य पञ्चगव्येन 'शुची वो हव्या' इति



तृचेन, 'एतोन्विन्द्रम्' इति च तृचेन गृहं संप्रोक्ष्य गृहे प्राच्यामीशान्यां वा चतुरङ्गुलोच्चं हस्तमितं स्थण्डिलं कृत्वा तस्य ईशानादिकोणचतुष्टये चतुरो लोहकीलान्—

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वशः ।

अस्मिन् गृहेऽवतिष्ठन्तु आयुर्वलकराः सदा ॥

इति मन्त्रेण निखनेत्, प्रतिकीलं मन्त्रावृत्तिः । तत ईशानादिक्रमैर्नैव चतुर्षु कोणेषु—

अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये त्वन्ये तत्समाश्रिताः ।

तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥

इतिमन्त्रेण माषभक्तादिवलीन्दत्वा स्थण्डिलोपरि, 'ॐ शान्तायै नमः ॐ यशोवत्यै० ॐ कान्तायै० ॐ विशालायै० ॐ प्राणवाहिन्यै० ॐ सत्यै० ॐ सुमत्यै० ॐ नन्दायै० ॐ सुभद्रायै० ॐ सुरथायै०, इति प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैर्दशभिर्मन्त्रैः कुङ्कुमादिना हेमरूप्यादिशलाकया प्राक्पश्चादायताः प्रागन्ता उदक्संस्था व्यङ्गुलान्तरा दश रेखाः कृत्वा, 'ॐ हिरण्यायै० ॐ सुव्रतायै० ॐ लक्ष्म्यै० ॐ विभूत्यै० ॐ विमलायै० ॐ प्रियायै० ॐ विजयायै० ॐ बालायै० ॐ विशोकायै० ॐ इडायै०' इति दक्षिणोत्तरायता उदक्संस्था दश रेखाः कुर्यात् । एवमेकाशीतिपदं मण्डलं संपद्यते । तत्र मध्यस्थनवकोष्ठरेखामार्जनेनैकीकुर्यात् । एतन्नवपदं ब्रह्मस्थानं तस्य चतुर्दिक्षु चत्वारि त्रिपदानि । विदिक्षु शृङ्खलाकाराणि द्वादशकोणचतुष्टयोभयतश्चाष्टाविति विंशत्येकपदानि । अवशिष्टानि प्रतिदिशं १३ पञ्चेति विंशतिपदानि । तेषु प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यन्तैर्नमोन्तैर्वक्ष्यमाणनामभिर्देवता आवाह्य स्थापयेत् । तत्र ईशानकोणपदे वास्तोः शिरसि ॐ शिखिने नमः इति शिखिनम् । तदक्षिणैकपदे दक्षिणे नेत्रे पर्जन्याय । तदक्षिणे ततोऽपि पश्चिम इति द्विपदे दक्षिणश्रोत्रे जयन्ताय । तदक्षिणद्विपदे तदक्षिणांशे कुलिशायुधाय । तदक्षिणद्विपदे दक्षिणबाहौ सूर्याय । तदक्षिणद्विपदे दक्षिणबाहावेव सत्याय । तदक्षिणद्विपदे दक्षिणकूर्परे भृशाय । तदक्षिणेऽन्त्यपङ्क्तिगतैकपदे दक्षिणबाहौ आकाशाय । आग्नेयकोणपदे दक्षिणप्रबाहावेव वायवे । तत्पश्चिमैकपदे दक्षिणमणिवन्धे पूष्णे । तत्पश्चिमे ततोऽप्युत्तर इति द्विपदे दक्षिणपार्श्वे वितथाय । तत्पश्चिमद्विपदे दक्षिणपार्श्वे एव गृहक्षताय । तत्पश्चिमे



द्विपदे दक्षिणोरौ यमाय । तत्पश्चिमे द्विपदे दक्षिणजानौ गन्धर्वाय ।  
तत्पश्चिमे द्विपदे दक्षिणजानौ भृङ्गराजाय । तत्पश्चिमे बाह्ये दक्षिण-  
गतैकपदे दक्षिणस्फिचि मृगाय । नैर्ऋत्यकोणपदे पादयोः पितृभ्यः ।  
तदुत्तरैकपदे वामस्फिचि दौवारिकाय । तदुत्तरे ततोऽपि प्राचि चेति द्विपदे  
वामजङ्घायां सुग्रीवाय । तदुत्तरे द्विपदे वामजानौ पुष्पदन्ताय । तदुत्तरे  
द्विपदे वामोरौ जलाधिपाय । तदुत्तरे द्विपदे वामपार्श्वे असुराय । तदुत्तरे  
द्विपदे वामपार्श्वे एव शोषाय । तदुत्तरे बाह्यपङ्क्तिगतैकपदे वाममणिबन्धे  
पापाय । वायव्यां कोणपदे वामप्रवाहौ रोगाय । तत्प्राच्यैकपदे वाम-  
पार्श्वे एव अहये । तत्प्राचि ततो दक्षिणे चेति द्विपदे वामकूर्परे  
मुख्याय । तत्प्राचि द्विपदे वामबाहौ भल्लाटाय । तत्प्राचि द्विपदे  
वामबाहावेव सौमाय । तत्प्राचि द्विपदे वामांसे सर्पाय । तत्प्राचि  
द्विपदे वामश्रोत्रे अदितये । तत्प्राचि बाह्यपङ्क्तिगतैकपदे वामनेत्रे दितये ।  
तद्दक्षिणे ईशानकोणपदाधःपदे मुखे आपाय । आग्नेयकोणपदाधः-  
कोणपदे दक्षिणहस्ते सावित्राय । नैर्ऋत्यकोणपदाधःकोणपदे मेद्रे  
जयाय । वायव्यकोणपदाधःकोणपदे वामहस्ते रुद्राय । मध्यममध्यमनव-  
कोष्ठकब्रह्मपदसंलग्ने प्रागते त्रिपदे दक्षिणस्तने अर्यम्णे । तद्दक्षिणैकपदे  
दक्षिणहस्ते सवित्रे । तत्पश्चिमे ब्रह्मपदसंलग्ने त्रिपदे जठरदक्षिणभागे  
विवस्वते । तत्पश्चिमैकपदे वृषणयोर्विवुधाधिपाय । तदुत्तरे ब्रह्मपदसं-  
लग्नत्रिपदे जठरवामभागे मित्राय । तदुत्तरैकपदे वामहस्ते राजयक्ष्मणे ।  
तत्प्राचि त्रिपदे वामस्तने पृथ्वीधराय । तत्प्रागेकपदे उरसि आपव-  
त्साय । मध्ये नवपदे हन्त्राभ्योर्ब्रह्मणे । तदुत्तरे 'वास्तोष्पते प्रति-  
जानीहि' इति वृषवास्तुं सुवर्णादिप्रतिमायां मण्डलाद्वहिरीशानादि-  
कोणेषु, चरकीं विदारीं पूतनां पापराक्षसीं, पूर्वादिषु, स्कन्दं अर्यमणं  
जृम्भकं पिलिपिच्छं, प्राच्याद्यष्टदिक्ष्वन्त्रादीनावाह्य सर्वान्संपूज्य मण्ड-  
लादीशान्यां कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं संपूज्य कुण्डे स्थण्डिले वाऽग्निं  
संस्थाप्य तदीशान्यां ग्रहानावाह्य संपूज्य तदीशान्यां ग्रहकलशं संस्थाप्य  
तत्र वरुणं संपूज्यान्वाधाने चक्षुषीआज्येनेत्युक्त्वा 'ग्रहादीनमुकसं-  
ख्यया समिच्चर्वाज्यैः, शिखीपर्जन्यजयन्तकुलिशायुधसूर्यसत्यमृगाकाश-  
वायुपूषवितथगृहक्षतयमगन्धर्वभृङ्गराजमृगपितृदौवारिकसुग्रीवपुष्पदन्त-  
जलाधिपासुरशोषपापरोगाहिमुख्यभल्लाटसोमसर्पादितिदित्यापसावित्र-



जयन्तरुद्रार्यमसवित्रनिवस्त्रद्विबुधाधिपमित्रराजयक्षमपृथ्वीधरापवत्स-  
 हणो यवतिलसमिदाज्यपायसैरमुकसंख्यया वास्तोष्पतिमेतैरेव द्रव्यैरमु-  
 कसंख्यया पञ्चविल्वैस्तद्वीजैर्वा चरकीविदारीपूतनापापराक्षसीस्कन्दार्थ-  
 मजृम्भकपिलिपिच्छानिन्द्रादींश्च तैरेव द्रव्यैरमुकसंख्यया यक्ष्ये इत्युक्त्वा  
 शेषेणेत्याद्याज्यभागान्ते ग्रहहोमं कृत्वा यवतिलसमिदाज्यपायसैः शि-  
 ख्यादिदेवताभ्यो नाममन्त्रैः प्रत्येकमष्टावष्टाविंशतिसष्टोत्तरशतं वा हुत्वा,  
 वास्तोष्पतये एतान्येव द्रव्याण्यष्टोत्तरशतं जुहुयुः कृत्विजः । तत्र वास्तो-  
 षपते इति चत्वारो मन्त्राः । एकैकेन च मन्त्रेण सप्तविंशतिः सप्तविंशति-  
 राहुतयइत्यष्टोत्तरशतम् । तैश्चतुर्भिः वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाम् इति पञ्च-  
 विंशतिः पञ्च वा विल्वफलानि तद्वीजानि वा जुहुयुः । तत्राचार्यः खिष्ट-  
 कृदादिहोमशेषं समापयेत् । यजमानस्तु लोकपालेभ्यो ग्रहपीठदेवताभ्यश्च  
 बलिं दत्त्वा पूर्णाहुतिं हुत्वा शिख्यादिपञ्चचत्वारिंशदेवताभ्यः पायसा-  
 दिना बलिं दत्त्वा ईशानादिक्रमेण चरकीविदारीपूतनापापराक्षसीभ्यो  
 लोकपालेभ्यश्च बलिं दत्त्वा शिख्यादिप्रीतये काञ्चनं द्विजेभ्यो जहाप्री-  
 तये धेनुं च दद्यात् । ततः शान्तिकलशोदकेन कृत्विग्भिर्भरभिषिक्तो  
 यजमानः कृत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा वाद्यादिपूर्वकं राक्षोन्नपावमानम-  
 न्त्रैर्गृहं सूत्रेण प्रदक्षिणं वेष्टयित्वा समन्ताज्जलधारां क्षीरधारां च दत्त्वा  
 मध्यनवपदे सुरूपां पृथ्वीं ध्यात्वा पृथग्यै नमः इति संपूज्य सर्वदेव-  
 मयं वास्तुं सर्वदेवमयं परम्, इति पठित्वा गृहस्याग्नेय आकाशपदे  
 जानुमात्रं गतं खात्वा गोमयेनानुलिप्य शुभ्रचन्दनपुष्पाक्षतैरलङ्कृत्य  
 सप्त बीजानि दध्योदनं च क्षित्वा नवं जलपूर्णकलशं शुद्धैकपुष्पयुतं  
 गन्धाद्यर्चितमादाय जानुभ्यां भुवं गत्वा तज्जलं गतं क्षिपेत्, ॐ नमो  
 बरुणाय इति मन्त्रेण । जले प्रदक्षिणावर्ते पुष्पे चोर्ध्वमुखे शुभम् ।  
 ततोऽपकमृत्पेटिकायां सप्तबीजदध्योदनशैवालफलपुष्पाणि क्षित्वा सतू-  
 र्यघोषं पूर्वस्थापितां वृषवास्तुप्रतिमामानीय पेटिकायां संस्थाप्य पेटिकां  
 पिधाय पठेत्—

पूजितोऽसि मया वास्तो होमाद्यैरर्चनैः शुभैः ।

प्रसीद पाहि विश्वेश देहि मे गृहजं सुखम् ॥

वास्तोष्पते नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो ।

मद्रूहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा । इति ॥



ततो मृत्पेटिकागतं संस्थाप्य—

सशैलसागरां पृथ्वीं यथा बहसि मूर्धनि ।

तथा मां वह कल्याण सम्पत्सन्ततिभिः सह ॥

इति संप्रार्थ्य, तथैव गृदा गतं पूरयेत् । गृदाधिक्येऽधिकफलम् ।  
साय्ये समम् । न्यूनत्वे न्यूनम् । गर्तोपरि गोमयेनालिप्य गन्धपुष्पा-  
क्षतादि क्षिप्वाऽऽचार्यब्रह्मर्त्विजः संपूज्य तेभ्यो दक्षिणां च दत्त्वा ग्रह-  
पीठवास्तुपीठदेवताः संपूज्य 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' 'यान्तु देवगणाः'  
इति विस्तृज्याचार्याय दत्त्वा ब्रह्मशिख्याद्युद्देशेन विप्रान्संभोज्य भूयसीं  
दक्षिणां दत्त्वा सुहृद्युतो भुञ्जीत ।

इति गृहवास्तुशान्तिप्रयोगः ।

अथ गृहदानप्रयोगः ।

गृहमध्ये दक्षिणभागे पश्चं विलिख्य तदुपरि प्रस्थमात्रांस्तिलांस्त-  
दुपरि शय्यां स्थापयित्वा शय्योपरि ( सौवर्णशय्योपरि ) सौवर्णलक्ष्मी-  
नारायणप्रतिमां संपूज्य प्रतिग्रहीतारं सपत्नीकं प्रतिग्रहार्थं कृत्वा तं  
करे गृहीत्वा समङ्गलवोषं वक्ष्यमाणमन्त्रैर्गृहं प्रवेशयेत् । ते च मन्त्राः—

एहोहि नारायण दिव्यरूप सर्वाभैर्विन्दितपादपद्म ।

शुभाशुभानन्दशुचामधीश लक्ष्मीयुतस्त्वं च गृहं गृहाण ॥

नमः कौस्तुभनाथाय हिरण्यकवचाय च ।

क्षीरोदार्षणवसुप्ताय जगद्धात्रे नमो नमः ॥

नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः ।

चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः ॥

भूलोकप्रमुखा लोकास्तत्र देहे व्यवस्थिताः ।

नन्दन्ति यावत्कल्पान्तं तथाऽस्मिन्भवने गृही ॥

त्वत्प्रसादेन देवेश पुत्रपौत्रैर्युतो गृहे ।

पञ्चयज्ञक्रियायुक्तो वसेदाचन्द्रतारकम् ॥

ततस्तं पूर्वस्थापितशय्योपर्युद्भूमुखमुपवेश्य स्वयमासने प्राङ्मुख  
उपविश्य देशकालकीर्तनोत्तरममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणायेदं गृहं  
पकेष्टकादिरचितं यथोपपत्तिसंपादितं कांस्यताम्रादिभाजनसर्वधान्य-  
लवणघृतगुडशर्करागोबलीवर्ददासमञ्चतूलिकावितानादिसर्वोपकरणयुतं



सदीपप्रभोद्योतं सर्वदैवतं सर्वपापक्षयपूर्वककल्पकोटिशतावधिनारायण-  
समीपे क्षीरार्णवनिवासकामस्तुभ्यमहं संप्रददे न मम, इति दद्यात् । मृण्म-  
यगृहे दानं 'एकैकमन्त्रन्तरावच्छिन्नप्रतिलोकपालपुरनिवासकामः' इति ।  
यद्वा सर्वत्र त्रिष्णुप्रीतिकामः । ततः प्रार्थना—

इदं गृहं गृहाण त्वं सर्वोपस्करसंयुतम् ।

तव विप्र प्रसादेन ममास्त्वतिनवं गृहम् ॥

गृहं मम विभूत्यर्थं गृहाण त्वं द्विजोत्तम ।

प्रीयतां मे जगद्योनिर्वास्तुरूपी जनार्दनः । इति ॥

ततः प्रतिग्रहीता 'देवस्य त्वा' इति यजुषा प्रतिगृह्य ॐ स्वस्ती-  
त्युक्त्वा कामस्तुतिं पठेत् । दक्षिणा तु स्वर्णसहस्रमारभ्यैकसुवर्णपर्य-  
न्तशक्त्या दर्शिता । ततः पादुकोपानच्छत्रचामरादिकं पुनर्देत्वा—

संपन्नं वाप्यसंपन्नं गृहोपस्करभूषणम् ।

सर्वं संपूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाद्विजोत्तम ॥

इति प्रार्थयेत् ।

एतत्फलमपि मात्स्ये—

य एवं सर्वसंपन्नं पकेष्टं विनिवेदयेत् ।

कल्पकोटिशतं यावद्ब्रह्मलोके महीयते ॥

शैलजं दारुजं वाऽपि यो दद्याद्विधिपूर्वकम् ।

वसेत्क्षीरार्णवे रम्ये नारायणसमीपतः ॥

मृण्मयं वाऽपि यो दद्याद्गृहं चोपस्कुरान्वितम् ।

पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरं वसेत् । इति ॥

एतच्च वास्तुपूजनम् ।

अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः ।

गृहे चायतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात् ॥

इत्युक्त्वा प्रतिसंवत्सरं कर्तव्यम् । अत्र वास्तुदेवतानां विशेषनैवेद्या-  
दीनि । शिखिने घृतान्नम् । पर्जन्याय सोत्पलं घृतौदनम् । जयन्ताय  
पीतध्वजं पिष्टमयं कूर्चं च । कुलिशायुघाय पञ्च रत्नानि पैष्टं कुलिशं  
च । सूर्याय वितानकं धूपं सक्तुं च । सत्याय घृतगोधूमम् । भृशाय  
मत्स्यान् । अन्तरिक्षाय शङ्कुलीः । वायवे सक्तून् । पूष्णे लाजान् ।  
वितथाय चणकौदनम् । घृतक्षताय मध्वन्नम् । यमाय पिशितौदनम् ।



गन्धर्वाय गन्धौदनम् । भृङ्गराजाय मेषजिह्विकाम् । मृगाय यावकम् ।  
 पितृभ्यः कृसरम् । दौवारिकाय दन्तकाष्ठं, पैष्टं कृष्णदलि च । सुग्री-  
 वायापूपम् । पुष्पदन्ताय पायसम् । वरुणाय कुशस्तम्बसहितं पद्मम् ।  
 अमुराय पैष्टं हिरण्मयं सुरां च । शोषाय घृतौदनम् । पापाय गोधाम् ।  
 रोगाय घृतलङ्गुकान् । अहये फलान्वितं पुष्पम् । मुख्याय सर्पिः ।  
 भल्लाढाय गुडौदनम् । सोमाय मधुपायसम् । सर्वेभ्यः शालिपिष्ठम् ।  
 अदितये पोलिकाम् । दितये पूरिकाम् । आपाय क्षीरम् । आपवत्साय  
 दधि । सावित्राय लङ्गुकान्समरीचं कुशोदकं च । सवित्रे गुडापूपम् ।  
 जयाय घृतचन्दनम् । विवस्वते रक्तचन्दनं पायसं च । राजयक्ष्मणे आमं  
 पकं च मांसम् । इन्द्राय हरितालौदनं घृतसंयुतम् । गुडोदनं तु मित्राय ।  
 रुद्राय घृतपायसम् । पृथ्वीधराय मांसानि कूष्माण्डानि च । अर्यम्णे  
 शर्करापायसम् ।

पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलशतहविश्चरुम् ।

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत् । इति ॥

राक्षसीनां तु, ईशानभागे चरक्यै मांसोदनं घृतं पद्मकेसरं च हविषा-  
 न्वितम् । आग्नेये विदार्यै सरुधिरमांसौदनं हरिद्रौदनं च । नैऋते पूतनायै  
 सरुधिरं दध्यौदनं मत्स्यखण्डैश्च संयुतं पीतरक्तं च बलिम् । वायव्ये  
 पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवं च । सर्वत्र पायसं वा दद्यात् ।

इति गृहदानप्रयोगः ।

अथ मठदानम् ।

कृत्वा मठं प्रयत्नेन शयनासनसंयुतम् ।

पुण्यकाले द्विजेभ्योऽथ यतिभ्यो वा निवेदयेत् ॥

सर्वान् कामानवाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ।

इति स्कान्दोक्तम् ।

इति मठदानम् ।

अथ प्रतिश्रयदानम् ।

मार्केण्डेये —

कुर्यात्प्रतिश्रयगृहं पथिकानां हितावहम् ।

निजगेहैकदेशं वा साधूनां यो निवेदयेत् ॥



अक्षयं पुण्यमुद्दिष्टं तस्य स्वर्गापवर्गदम् ।

सर्वकामसमृद्धौऽसौ देवदिवि मोदते ॥

अविष्यत्पुराणेऽपि—

प्रतिश्रये सुविस्तीर्णे कारिते सजलेन्धने ।

दीनानाथजनार्थाय वद किं न कृतं भवेत् ॥

प्रतिश्रयो धर्मशाला ।

इति प्रतिश्रयदानम् ।

अथ कन्यादानम् ।

बृहस्पतिः—

सहस्रमेव धेनूनां शतं वाऽनडुहां समम् ।

दशानडुत्समं यातं दशयानसमो हयः ॥

दशवाजिसमा कन्या भूमिदानं ततः परम् ।

वदते सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते । इति ॥

देवलः—

तिस्रः कन्या यथान्यायं पालयित्वा निवेद्य च ।

न पिता नरकं याति नारी वा स्त्री प्रसूयिनी ॥

वसिष्ठः—

हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ।

धर्म्येण विधिना दातुमसमोऽत्रोऽपि युज्यते ॥

स्कान्दे—

आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम् ।

ऋष्यशृङ्गः—

वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् ।

नाम सङ्कीर्तयेद्विद्वान्कन्यायाश्चैवमेव हि ॥

तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् ।

मधुपर्कान्वितायैतां तस्मै दद्यात्सदक्षिणाम् ॥

उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत् ।

गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् ॥

गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ।

भूमि गावश्च दासीश्च वासांसि च स्वशक्तितः ॥



महिष्यो वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि ।

ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत् ॥

यथाचारं विवेयानि माङ्गल्यकुतुकानि च ।

कन्यादाता 'प्राङ्मुखो वरः प्रत्यङ्मुखः । 'दातोदङ्मुखो वरः प्रत्यङ्मुखः ' इति भट्टचरणाः आचारश्च ॥

अत्रायं प्रयोगः । वरं मधुपर्केण संपूज्य मासपक्षाद्युक्त्वा 'मम सम-  
स्तपितृणां निरतिशयसानन्दब्रह्मलोकावाप्त्यादिकन्यादानकल्पोक्तफला-  
वाप्तयेऽनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पत्स्यमानसन्तत्या द्वादशावरान्द्वा-  
दश परान्पुरुषान्पवित्रीकर्तुमात्मनश्च श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये ब्राह्मवि-  
वाहविधिना कन्यादानमहं करिष्ये ' इति सङ्कल्प्य,

कन्यां कनकसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् ।

दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥

विश्वम्भरः सर्वभूतः साक्षिण्यः सर्वदेवताः ।

इमां कन्यां प्रदास्यामि पितृणां तारणाय च ॥

इतिमन्त्रं पुनः मम इत्यादि प्रीतये इत्यन्तमुक्त्वा अमुकप्रवराया-  
मुकगोत्रायामुकशर्मणः प्रपौत्रायामुकशर्मणः पौत्रायामुकशर्मणः पुत्राया-  
मुकशर्मणे वराय श्रीधररूपिणेऽमुकप्रवराममुकगोत्रोत्पन्नाममुकशर्मणः  
प्रपौत्रीममुकशर्मणः पौत्रीममुकशर्मणः पुत्रीममुकनाम्नीमिमां कन्यां  
श्रीरूपिणीं तुभ्यमहं संप्रददे इति वरहस्ते दद्यात् । वरस्तु, देवस्य त्वेति  
प्रतिगृह्य स्वस्तीत्युक्त्वा स्वशास्त्रीयां कामस्तुतिं पठेत् । एवं न ममेत्या-  
दिना संप्रददे इत्यन्तेन वाक्येन त्रिर्दद्यात् । कन्यादानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं  
दक्षिणां भूमिदास्यादिकं यथाशक्ति दद्यात् । विस्तरस्तु प्रयोगरत्ने  
भट्टचरणैरुक्तः ।

इति कन्यादानम् ।

अथ वैवाहिकदानम् ।

स्कान्दे—

वैवाहिकप्रदानं हि यो ददाति दयापरः ।

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥



महेन्द्रभवनं याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः । इति ॥  
 वैवाहिकं विवाहोपयोगिद्रव्यवस्त्रालङ्कारादीनि ।  
 इति वैवाहिकदानम् ।

### अथ कपिलादानम् ।

आदित्यपुराणे—

सहस्रं यो गवां दद्यात्कपिलां चापि सुव्रत ।  
 सममेव पुरा प्राह ब्रह्मा यत्नविदां वरः ॥  
 रुक्मशृङ्गीं रौप्यसुरां सबन्धां कांस्यदोहनाम् ।  
 सबन्धां कपिलां दत्त्वा वंशान्सप्त समुद्धरेत् ॥  
 यावन्ति चास्या रोमाणि सवत्साया भवन्ति हि ।  
 सुरभीलोकमासाद्य रमते तावतीः समाः ।

अद्येत्यादि 'गोसहस्रफलावाप्त्यनन्तरसवत्सकपिलारोममितवर्षपर्य-  
 न्तं कामधेनुलोककामः इमां कपिलां सुवर्णशृङ्गाद्युपस्करयुताममुकगोत्रा-  
 यामुकशर्मणे विप्राय तुभ्यमहं संप्रददे न मम' इति दद्यात् ।

मन्त्रो मात्स्ये—

कपिले सर्वभूतानां पूजनीयासि रोहिणी ।  
 तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।

तत्रैव—

बन्धं तु त्रिगुणं धेन्वा दक्षिणां च चतुर्गुणाम् ।  
 एतैरलङ्कृतां धेनुं घण्टाभरणभूषिताम् ।  
 कपिलां विप्रमुख्याय दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।

मुमुक्षुर्वस्त्रत्रयोपेतां दत्त्वा चतुरः सुवर्णान् दक्षिणां दद्यात् । द्विगुणो-  
 पस्करोपेता महती कपिला स्मृता । उपस्कराः सुवर्णशृङ्गबन्धदोहनपा-  
 त्राद्याः सामान्यगोदाने वक्ष्यमाणाः ।

दत्ता सा विप्रमुख्याय स्वर्गमोक्षफलप्रदा ।

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते दशसंयुतः ।

यान्यान्प्रार्थयते कामांस्तान्प्रप्नोति मानवः ।

अद्येत्यादिसप्तजन्मकृतपापनाशपूर्वकस्वर्गकामो मोक्षकामः पुत्रकामः  
 शुभकाम ईश्वरप्रीतिकाम इत्यादि यथाकावं फलमुल्लिख्य द्विगुणो-  
 पस्करयुतां दद्यात् । इति महाकपिलादानम् । इति दश महादानानि ।



दशधेनवो मात्स्ये—

यास्तु पापविनाशिन्यः कथिता दश धेनवः ।  
 तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ।  
 प्रथमा गुडधेनुः स्याद्धृतधेनुस्तथाऽपरा ।  
 तिलधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिता ।  
 क्षीरधेनुस्तु विख्याता मधुधेनुस्तथा परा ।  
 सप्तमी शर्कराधेनुः कार्पासस्याष्टमी तथा ।  
 रसधेनुस्तु नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ।  
 कुम्भी घृतादिधेनूनामितरासां तु राशयः ।  
 सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ।  
 नवमी तिलतैलेन तथान्येऽपि महर्षयः ।

रसधेनुस्थाने सुवर्णधेनुस्तिलतैलधेनुश्च । एतद्विधानमपि मात्स्यएव—

कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि ।  
 गोमयेनोपलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ।  
 लघ्वैणं चाजिनं तद्बद्धत्सस्य परिकल्पयेत् ।

लघ्वैणं चाजिनं लघुकृष्णाजिनम् ।

प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सवाम् ॥

प्राङ्मुखीं प्राक्शिरसम् । सवत्सां उत्तरभागस्थितवत्ससहिताम् ।

उत्तमा गुडधेनुः स्याद्यदा भारवतुष्टयम् ।  
 वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता ॥  
 अर्द्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु ।  
 चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्बृहवित्तानुसारतः ॥

भारः पलसहस्रद्वयमिति परिभाषायामुक्तम् ।

धेनुवत्सौ घृतस्यैतौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ ॥  
 शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ।  
 सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ ॥  
 ताम्रगण्डुकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ।

गण्डुकं ककुत्प्रदेशे ।

विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ।  
 क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहौ इन्द्रनीलकतारका ॥



सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतक्षुरसंयुतौ ।  
नानाफलमयैर्दन्तैर्घ्राणगन्धकरण्डकौ ॥

गन्धकरण्डकः कर्पूरादियुतः पात्रविशेषः ।  
इत्येवं रचयित्वा तौ धूपदीपैरथार्चयेत् ॥

वस्त्रमुक्तादीनां सारतो मानतश्चाधिक्ये फलाधिक्यम् ।

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादि 'सर्वपापक्षयपूर्वकाशेषयज्ञफलप्राप्तिसहित-  
भुक्तिमुक्तिकामो गुडधेन्वादिदानं करिष्ये' इतिसङ्कल्प्य विप्रं वृत्वा  
संपूज्य सवत्सगुडधेनवे नमः इत्यावाहनप्रतिष्ठापनपूजनानि कृत्वा  
तां प्रदक्षिणीकृत्य वक्ष्यमाणमन्त्रैरामन्त्र्याद्येत्यादि 'सर्वपापक्षयपूर्वका-  
शेषयज्ञफलप्राप्तिसहितभुक्तिकाम इमां धेनुममुकप्रवरायामुकगोत्राया-  
मुकशर्मणे विप्राय तुभ्यमहं संप्रददे न मम' इति दद्यात् । विप्रस्तु  
पुच्छे प्रतिगृह्य स्वस्तीत्युक्त्वा कामस्तुतिं पठेत् । दाता तु सुवर्णदक्षि-  
णादानविप्रभोजनभूयसीदानादिकर्मशेषं समापयेत् ॥

अथामन्त्रणमन्त्राः—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता ।  
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु ॥  
देहस्था या च कल्याणी शङ्करस्य सदा प्रिया ।  
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥  
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।  
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रिये ॥  
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।  
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥  
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां तथा ।  
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे । इति ॥  
एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते ॥

सर्वासां प्रत्यक्षधेनुव्यतिरिक्तानामित्यर्थः । उक्तरचनस्य तत्रा-  
नुपयोगात् ।

एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः ।  
मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि ॥



यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।

अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः ॥

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते तथा पुनः ।

गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्वसु ॥

अत्र 'पापविनाशिन्य इत्युपक्रमात्सर्वपापहरा इत्युपसंहाराच्च पाप-  
नाश एव फलं न भुक्तिमुक्त्यादि' इति दानसौख्ये । तत्र पुत्रेष्टाविवार्थ-  
वादौक्तानां भुक्तिमुक्त्यादीनां त्यागे मानाभावात् । उपक्रमोपसंहारौ  
त्वप्रयोजकौ । यत्तु 'पद्मपुराणादावेकेनैव घटेन घृतादिधेनुः द्रोणमात्रेण  
च तिलेन धेनुकृता तत्प्रकारान्तरम्' इति कल्पतरौ । दानविवेके तु  
'पलसहस्रप्रमाणः कुम्भः' इति । 'द्वादशपलाधिकानि पञ्चपलशतानि  
कुम्भः' इत्यन्ये । ततश्च यथाधिकारं व्यवस्था ज्ञेया । यद्यपि गुडधेन्व-  
नन्तरं घृतधेनुरुदिष्टा तथाऽपि तिलाभावे तथा दद्यात्घृतधेनुमित्युक्त्वा  
तिलानां प्राधान्यात्तद्धेनुरादावुच्यते ।

### अथ तिलधेनुः ।

तत्र किञ्चित्प्रकारान्तरं विष्णुधर्मोत्तरे—

अनुलिप्ते महीपृष्ठे वल्गाजिनकुशावृते ।

धेनुं तिलमयीं कृत्वा सर्वरत्नैरलंकृताम् ॥

धेनुं द्रोणेन कुर्वीत आढकेन तु वत्सकम् ।

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां गन्धघ्राणवतीं तथा ॥

कुर्याच्च शर्कराजिह्वां गुडास्यामविकम्बलाम् ।

इक्षुपादां ताम्रपृष्ठां शुचिमुक्ताफलैक्षणाम् ॥

प्रशस्तपत्रश्रवणां फलदन्तवतीं शुभाम् ।

स्रग्दामपुच्छां कुर्वीत नवनीतस्तनान्विताम् ॥

सितसूत्रशिरालां च सितसर्पपरोमिकाम् ।

फलैर्मनोहरैर्भक्ष्यैर्मणिमुक्ताफलान्विताम् ॥

सितवस्त्रयुगच्छन्नां घण्टाभरणभूषणाम् ।

ईदृक्संस्थानसंपन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः ॥

कांस्योपदोहनां दद्यात्केशवः प्रीयतामिति ।

फलेतिकर्तव्यतामन्त्रा गुडधेनूक्ता एव ।



बहिपुराणे तु—

तिलाश्च पितृदैवत्या निर्मिताश्चेह गोसवे ।  
ब्रह्मणा तन्मयी धेनुर्दत्ता प्रीणातु केतवम् ॥  
इति मन्त्रान्तरमुक्तम् ।

अथ घृतधेनुः ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

तिलाभावे तथा दद्याद्घृतधेनुं प्रयत्नतः ।  
वासुदेवं जगन्नाथं घृतक्षीराभिषेचनात् ॥  
संपूज्य पूर्ववत्पुष्पैर्गन्धधूपादिभिर्नरः ।  
अहोरात्रोषितो नाम्ना अभिषूय घृताऽर्चिषम् ॥  
अभिषूय प्रज्वाल्य, घृतार्चिषमग्निम् ।

गव्यस्य सर्पिषः कुम्भं पुष्पमालादिभूषितम् ।  
कांस्यापिधानसंयुक्तं सितवस्त्रयुगेन च ॥  
हिरण्यगर्भसहितं मणिविद्रुममौक्तिकैः ।

अत्र पलसहस्रपरिमाणः कुम्भः । द्वादशपलाधिकानि पञ्चपलशतानीति वा ।

इक्षुयष्टिमयान्पादान्खुरान्रौप्यमयांस्तथा ।  
सौवर्णे चाक्षिणी कुर्याच्छृङ्गे चागरुकाष्ठजे ॥  
सप्तधान्यमये पार्श्वे पत्रोर्णेन च कम्बलम् ।  
कुर्यात्तुरुष्ककर्पूरैर्घ्राणं फलमयान्स्तनान् ॥  
तद्वच्छर्करया जिह्वां गुडक्षीरमयं मुखम् ।  
पत्रोर्णं धौतकौशेयम् । तुरुष्कः सिंहकम् । सिंहाररस इति यावत् ।  
पुच्छं क्षौममयं कार्यं रोमाणि सितसर्पिषैः ।  
ताम्रपृष्ठं विचित्रं तु ईदृशूपां मनोरमाम् ॥  
विधिना कृतवत्सां च कुर्याल्लक्षणलक्षिताम् ।  
एतैः कृत्वा तथा नत्वा पूजयित्वा विधानतः ॥  
तद्भक्त्या प्रदातव्या मङ्गला शास्त्रपारगे ।  
एतां ममोपकाराय गृहीष्व त्वं द्विजोत्तम ॥  
प्रीयतां मम देवेशो घृतार्चिः पुरुषोत्तमः ।  
इत्युदाहृत्य विप्राय दद्याद्धेनुं नराधिप ॥



स्कान्दे त्वयं मन्त्रः—

घृतं गावः प्रसूयन्ते घृतं भूम्यां प्रतिष्ठितम् ।

घृतमग्निश्च देवाश्च घृतं मे संप्रदीयताम् । इति ॥

फलं च—

घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः ।

तेषु लोकेषु सर्वेषु सुपुण्येषूपजायते ॥

सकामानामियं व्युष्टिः कथिता नृपसत्तम ।

व्युष्टिः फलम् ।

विष्णुलोकं नरा यान्ति निष्पापा धेनुदानतः ।

इत्यादि । 'दक्षिणा त्रैकसुवर्णप्रभृति यथाशक्ति' इति मदनरत्ने ।

'यथाशक्ति हिरण्यम्' इति हेमाद्रौ ॥

अथ जलधेनुः ।

तत्रैव जलधेनुं प्रक्रम्य—

जलकुम्भं नरव्याघ्र सुवर्णरजतान्वितम् ।

'सुवर्णरजतशृङ्गखुरान्वितम्' इति सांप्रदायिकाः ।

रत्नगर्भमशेषैस्तु ग्राम्यैर्बान्यैः समन्वितम् ।

सितवस्त्रयुगच्छत्रं दूर्वापल्लवशोभितम् ॥

कुष्ठमांसीमुरोशीरबालकामलकैर्वृतम् ।

प्रियङ्गुपत्रसहितं सितवस्त्रोपवीतितम् ॥

सच्छत्रं सउपानत्कं दर्भविष्टरसंस्थितम् ।

चतुर्भिः संभृतं भूप तिलपात्रैश्चतुर्दिशम् ॥

स्थगितं दधिपात्रेण घृतक्षौद्रवता मुखे ।

'तिलपात्राणि ताम्रस्य दधिपात्रं कांस्यस्य' इति दानविवेके ।

उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं जलेशयम् ।

पुष्पधूपोपहारैश्च यथाविभवमाहृतः ॥

सङ्कल्प्य जलधेनुं च कुम्भं तमभिपूज्य च ।

पूजयेद्भस्मकं तद्वत्कृतं जलमयं वुधः ॥

एवंसंपूज्य गोविन्दं जलधेनुं सवत्सकाम् ।

सितवस्त्रधरः शान्तो वीतरागो विमत्सरः ॥

दद्याद्दिजाय राजेन्द्र प्रीत्यर्थं जलशायिनः ।



जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥

इति चोच्चार्य भूनाथ विप्राय प्रतिपाद्यताम् ।

अपकान्नाशिना स्थेयमहोरात्रमतः परम् ।

तथा—धान्यानि पार्श्वद्वये, कुष्ठादीनि घ्राणदेशे, प्रियङ्गुपत्रं श्रवणे,  
यज्ञोपवीतं मूर्ध्नि स्थापयेत् । वत्सश्चतुर्थीशेनैव, दक्षिणा शक्तितः सुवर्णम् ।

अमेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं नराधिप ।

सर्वान्कामानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः । इति ॥

### अथ क्षीरधेनुः ।

स्कान्दे—

क्षीरधेनुं प्रवक्ष्यामि तां निबोध नराधिप ।

अनुलिप्ते महीपृष्ठे गोमयेन नराधिप ॥

गोचर्ममात्रमानेन कुशानास्तीर्य सर्वतः ।

तत्रोपरि महाराज न्यसेत्कृष्णाजिनं ततः ॥

तत्रोपरि कुण्डलिकां गोमयेन कृतामपि ।

क्षीरकुम्भं ततः स्थाप्य चतुर्थीशेन वत्सकम् ॥

सुवर्णमुखशृङ्गाणि चन्दनागुरुकाणि च ।

प्रशस्तपत्रश्रवणं तिलपात्रोपरि न्यसेत् ॥

मुखं गुडमयं तस्या जिह्वा शर्करया तथा ।

मूलप्रशस्तदन्ता च मुक्तामयफलेक्षणा ॥

इक्षुपादा दर्भरोमा सितकम्बलकम्बला ।

ताम्रपृष्ठा कांस्यदोहा पट्टसूत्रमयं तथा ॥

पुच्छं च नृपशार्दूल नवनीतमयस्तनी ।

स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरा पञ्चरत्नमयी भुवि ॥

चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्ष्वपि स्थापयेत् ।

सप्तव्रीहिसमायुक्तो दिक्षु सर्वासु प्रक्षिपेत् ॥

एवंलक्षणसंयुक्तां क्षीरधेनुं प्रकल्पयेत् ।

आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥

धूपदीपादिकं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

अनेनैव तु मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रकल्पयेत् ॥



अनेन गुडधेनूक्तेन प्रकल्पयेदनुमन्त्रयेत् ।  
 आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रसादयेत् ॥  
 गृह्णामि त्वां देवि भक्त्या ग्राहको मन्त्रमुच्चरेत् ।  
 एवं धेनुं प्रदत्त्वा च क्षीराहारो दिनं चरेत् ॥  
 त्रिरात्रं तु पयोभक्षो ब्राह्मणो राजसत्तम ।

मन्त्रस्तु—

गृह्णामि त्वां देवि भक्त्या कुटुम्बार्थं विशेषतः ।  
 भरस्व कामैर्मां सर्वैः क्षीरधेनो नमोऽस्तु ते ॥ इति ।  
 एतां हेमसहस्रेण शतेनाथ स्वशक्तिः ।  
 शतार्द्धमथवाऽप्यर्द्धं तत्रैवार्द्धं स्वशक्तिः ॥  
 दद्याद्धेनुं महाराज शृणु तस्यापि यत्फलम् ।  
 दिव्यं वर्षसहस्रं तु रुद्रलोके महीयते ॥

दिव्यवर्षसहस्रावधि रुद्रलोककामः इति फलोत्प्लेखः सङ्कल्पवाक्ये,  
 अन्यद्रुद्धेनुवत् ।

अथ दधिधेनुः ।

तत्रैव भूलैपनकुशकृष्णाजिनान्युक्त्वा—

दधिकुम्भं च संस्थाप्य सप्तधान्यस्य चोपरि ।

चतुर्थांशेन वत्सं तु सौवर्णमुखसंयुतम् ॥

प्रशस्तपत्रश्रवणा मुक्ताफलमयेक्षणा ।

चन्दनागरुशृङ्गा च मुखं वै गन्धमालिका ॥

गन्धमालिका गन्धद्रव्यविशेष इति केचित् । ‘सुगन्धपुष्पसङ्घ’  
 इत्यन्ये । ‘कर्पूरादिसुगन्धद्रव्यसमूहः’ इति बहवः ।

जिह्वां शर्करया राजन्त्राणं श्रीखण्डकं तथा ।

फलमूलमया दन्ताः सितसूत्रस्य कम्बलः ॥

ताम्रपृष्ठा दर्भरोमा पुच्छं सूत्रमयं तथा ।

सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां नवनीतमयस्तनीम् ॥

इक्षुपादां सुसंस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताम् ।

आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन पुष्पगन्धैः सुपूजिताम् ।

ब्राह्मणाय कुलीनाय साधुवृत्ताय धीमते ।

पुच्छदेशोपविष्टाय मुद्रिकाकर्णमात्रकैः ॥

पादुकोपानहौ छत्रं दत्त्वा मन्त्रमनुस्मरेत् ।



मन्त्रो गुडधेनुक्तः ।

दधिक्राव्णेति मन्त्रेण दधिधेनुं प्रदापयेत् ।

एवंदधिमयीं धेनुं दत्त्वा राजर्षिसत्तम ॥

एकाहारो दिनं तिष्ठेद्दध्ना च नृपनन्दन ।

यजमानो वसेद्राजन्त्रिदिनं च द्विजोत्तमः ॥

यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः ।

मुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥

दातारो दायकाश्चैत्र तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।

मधुनदीकवहुपायसकपिसिद्धलोककामः, इति शेषफलोद्देशः ॥

अथ मधुधेनुः ।

स्कान्दे—

मधुधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।

अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥

धेनुं मधुमयीं कृत्वा संपूर्णघटपूरिताम् ।

तद्वच्चतुर्थभागेन वत्सकं परिकल्पयेत् ॥

सौवर्णं तु मुखं कृत्वा शृङ्गाण्यगुरुचन्दनम् ।

पृष्ठं ताम्रमयं तस्याः पुच्छं सूत्रमयं तथा ॥

पादास्त्विक्षुमयाः कार्याः सितकम्बलकम्बलम् ।

मुखं गुडमयं कृत्वा जिह्वा शर्करयाऽन्विता ॥

मौक्तिकं नयने तस्या दन्ताः फलमयाः स्मृताः ।

दर्भरोमधरा देवी रौप्यखुरविभूषिता ॥

प्रशस्तपत्रश्रवणा नवनीतमयस्तनी ।

सर्वलक्षणसंयुक्ता सप्त धान्यानि दापयेत् ॥

चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्षु च विन्यसेत् ।

आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन घण्टाभरणभूषिताम् ॥

कांस्योपदोहनीं कृत्वा गन्धपुष्पैस्तु पूजिताम् ।

पुच्छदेशोपविष्टाय ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् ॥

उदपूर्वं तु कर्तव्यं पश्चादानं समाचरेत् ।

रसज्ञा सर्वदेवानां सर्वभूतहिते रता ॥

प्रीयन्तां पितरौ देवा मधुधेनो नमोऽस्तु ते ।



एवमुच्चार्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 अहं गृह्णामि त्वां देवि कुटुम्बार्थे विशेषतः ।  
 कामान्कामदुषे धुङ्क्ष्व मधुधेनो नमोऽस्तु ते ॥  
 मधुवातेति मन्त्रेण प्रदाप्यायतचेतसा ।  
 धेनुं दत्त्वा च मधुपायसाभ्यां च दिनं नयेत् ॥  
 ब्राह्मणोऽपि तथैव त्रिरात्रं नयेत् ।

फलश्रुतिरपि—

यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः ।  
 ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥  
 तत्र भोगान्वरान्भुङ्क्ते ब्रह्मलोके स तिष्ठति ।  
 मधुनदीकबहुपायसकर्दममुनिसिद्धलोकोत्तमभोगोत्तरब्रह्मलोककामः,  
 इति विशेषफलोद्देशः ॥

अथ रसधेनुः ।

स्कान्दे—

रसधेनुं महाराज कथयामि समासतः ।  
 अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥  
 रसस्य तु घटं राजन्संपूर्णमैश्वर्यस्य तु ।  
 तद्वत्सङ्कल्पयेत्प्राज्ञश्चतुर्थीशेन वत्सकम् ॥  
 इक्षुदण्डमयाः पादा राजतखुरसंयुताः ।  
 सुवर्णशृङ्गाभरणा वस्त्रपुच्छा घृतस्तनी ॥  
 पुष्पकम्बलसंयुक्ता शर्करामुखजिह्विका ।  
 दन्ताः फलमयास्तस्याः पृष्ठं ताम्रमयं शुभम् ॥  
 पुष्परोमा तु राजेन्द्र मुक्ताफलकृतेश्चना ।  
 सप्तत्रीहिसमायुक्ता चतुर्विधं सदीपिका ॥  
 सर्वोपस्करसंयुक्ता सर्वगन्धविभूषिता ।  
 चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्विधं निवेशयेत् ॥  
 धेनुं तु पूजयित्वाऽग्रे पुष्पगन्धस्रगादिभिः ।  
 पूर्वोक्ता ये च मन्त्राश्च तानेव प्रयतः स्मरेत् ॥  
 मन्त्रा गुडधेनूक्ताः ।  
 एवमुच्चारयित्वा तु दीयते वै द्विजोत्तमे ।



दश पूर्वान्परांश्चैव आत्मानं चैकविंशकम् ॥  
 नयेत्तु परमं स्थानं यस्मान्न निवर्तते पुनः ।  
 दाता वा ग्राहको वाऽपि एकाहं रसभोजकौ ॥  
 सोमपानं भवेत्तस्य सर्वक्रतुफलं लभेत् । इत्यादि ॥  
 स्वाधिकदशपूर्वदशपरपुरुषाणां निवृत्तिरहितपरपदप्राप्तये आत्मनश्च  
 सोमपानसर्वक्रतुफलप्राप्तिकामः, इति विशेषफलोल्लेखः ॥

### अथ शर्कराधेनुः ।

स्कान्दे—

तद्वच्च शर्कराधेनुं शृणु राजन्यथाऽर्थतः ।  
 अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥  
 धेनुः शर्करया राजन्सदा भारचतुष्टयम् ।  
 उत्तमा कथ्यते सद्भिश्चतुर्थीशेन वत्सकः ॥  
 तदूर्ध्वं मध्यमा प्रोक्ता चतुर्थीशेन कनीयसी ।  
 तद्वद्वत्सं प्रकुर्वीत चतुर्थीशेन मानवः ॥  
 अथवाऽष्टांशतः कुर्याच्चतुर्थीशेन वत्सकम् ।  
 अष्टांशत इति भारचतुष्टयस्याष्टमांशेन अर्द्धभारेणेत्यर्थः ।  
 स्वशक्त्या कारयेद्वेनुमात्मपीडां न कारयेत् ।  
 सर्वबीजानि संस्थाप्य चतुर्दिक्षु समन्ततः ॥  
 सौवर्णमुखशृङ्गाणि मौक्तिकैर्नयनानि च ।  
 गुडेन च मुखं कार्यं जिह्वा पिष्टमयी तथा ॥  
 कम्बलं पट्सूत्रेण कण्ठाभरणभूषिता ।  
 इक्षुपादा रौप्यखुरा नवनीतमयस्तनी ॥  
 प्रशस्तपत्रश्रवणा सितचामरभूषिता ।  
 पञ्चरत्नसमायुक्ता दर्भरोमसमन्विता ॥  
 कांस्योपदोहना सम्यगगन्धपुष्पैः समन्विता ।  
 ईदृग्विधानसंयुक्ता वस्त्रैराच्छादितोपरि ॥  
 गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 श्रोत्रियाय दरिद्राय साधुवृत्ताय धीमते ॥  
 वेदवेदाङ्गविदुषे विशेषेणान्निहोत्रिणे ।  
 अनसूयवे प्रदातव्या न मत्सरयुताय वै ॥



अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेषु षण्मुख ।  
 अन्येषु पुण्यकालेषु इच्छया वाऽपि दापयेत् ॥  
 सत्पात्रं तु द्विजं दृष्ट्वा स्वागतं श्रोत्रियं गृहे ।  
 तादृशाय प्रदातव्या पुच्छदेशे निवेदयेत् ॥  
 पूर्वमुखः सदा दाता अथवा स्यादुदङ्मुखः ।  
 धेनुं पूर्वमुखीं कृत्वा वत्समुत्तरतो न्यसेत् ॥  
 दानकाले तु ये मन्त्रास्तान्पठित्वा समर्चयेत् ।  
 मन्त्राः गुडधेनूक्ताः ।

आच्छाद्य चैव तं विप्रं मुद्रिका कर्णवेष्टनैः ।  
 स्वशक्त्या दक्षिणां दद्याद्गन्धपुष्पं सचन्दनम् ॥  
 धेनुं समर्चयेत्तस्य मुखं च न विलोकयेत् ।  
 एकाहं शर्कराहारो ब्राह्मणस्त्रिदिनं वसेत् ॥  
 सर्वपापहरा धेनुः सर्वकामप्रदायिनी ।  
 सर्वकामसमृद्धश्च जायते नात्र संशयः । इति ॥

### अथ कार्पासधेनुः ।

बाराहे—

अतः परं प्रवक्ष्यामि धेनुं कार्पासकीं शुभाम् ।  
 एवं विश्वस्य गुप्त्यर्थं ब्रह्मणा चांगुलं कृतम् ॥  
 कार्पासमूलं तच्चापि तेनासावुत्तमः स्मृतः ।  
 सा च कार्पासभारेण धेनुः श्रेष्ठा प्रकीर्तिता ॥  
 मध्यमा च तदर्द्धेन तदर्द्धेन कनीयसी ।  
 पूर्ववद्वस्त्रधान्ये च हिरण्यं च तथैव च ॥  
 वत्सकं तु चतुर्थीशादानमन्त्रो विधीयते ।  
 कुर्वीत पूर्ववद्वत्सं वस्त्रधान्याद्युपस्कृतम् ॥  
 पूर्ववद्वराहोक्ततिलधेनुदानवत् ।

हेमकुन्देन्दुसदृशे क्षीराणवसमुद्भवे ॥  
 सोमप्रिये सुधेन्वाख्ये सौरभेयि नमोऽस्तु ते ।  
 दत्तेयमिन्दुनाथाय शशीङ्कायामृताय च ॥  
 अत्रिचेत्प्रजाताय सोमराजाय वै नमः ।



यस्त्वेवं परया भक्त्या ब्राह्मणाय प्रयच्छति ॥  
 स याति चन्द्रलोकं तु सोमेन सह मोदते ।  
 इति चन्द्रलोकगमनानन्तरचन्द्रसहवाससुखकामः, इति विशेषफलोत्प्लेखः।

### अथ लवणधेनुः ।

विष्यत्पुराणे युधिष्ठिरं प्रति कृष्णः—

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि लवणस्येह कश्चित्तम् ।  
 गोमयेनानुलिप्ते तु दर्भसंस्तरसंस्थितम् ॥  
 आविकं चर्म विन्यस्य पूर्वाशाभिमुखं स्थितम् ।  
 वस्त्रेण छादितं कृत्वा धेनुं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥  
 हाटकेनैव कुर्वीत बहुवित्तोऽल्पवानपि ।  
 स्वर्णशृङ्गीं रौप्यशुभ्रामिक्षुपादां फलस्तनीम् ॥  
 कार्या शर्करया जिह्वा गन्धघ्राणवती तथा ।  
 समुद्रोदरजां शुक्ति कर्णौ च परिकल्पयेत् ॥  
 शृङ्गे चन्दनकाष्ठाभ्यां मौक्तिके चाक्षिणी उभे ।  
 कपोलौ सक्तुपिण्डाभ्यां यवानास्ये प्रदापयेत् ॥  
 कम्बलं पट्टसूत्रेण प्रीवायां छत्रिकां तथा ।  
 पृष्ठे वै ताम्रपात्रं तु अपाने गुडपिण्डिकाम् ॥  
 लाङ्गूले कम्बलं दद्याद्रसान्क्षीरप्रदेशतः ।  
 योनिप्रदेशे तु मधु सर्वतस्तु फलान्विताम् ॥  
 एवं सम्यक् परिस्थाप्य लवणस्य कृतां तु गाम् ।  
 स्थापयेद्वत्सकं चापि चतुर्भागेन मानवः ॥  
 एवं धेनुं समभ्यर्च्य माल्यवस्त्रविभूषणैः ।  
 स्नात्वा देवार्चनं कुर्याद्ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥  
 कृतां प्रदक्षिणं गौ तु पुत्रभार्यासमन्वितः ।

दानमन्त्रः—

लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः ।  
 सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते ॥  
 प्रदक्षिणा मही तेन कृता भवति भारत ।  
 सर्वदानानि दत्तानि सर्वतुल्यफलानि तु ॥



सर्वे रसाः सर्वमन्त्राः सर्वमेतच्चराचरम् ।  
 सौभाग्यं च परा वृद्धिः शरीरारोग्यसंपदः ॥  
 नृणां भवन्ति दत्त्वा तु रसधेनुं न संशयः ।  
 सौभाग्यपरमवृद्ध्यारोग्यकामः । इति विशेषफलोद्देशः ॥  
 पुराणान्तरे गालवणमयीं कृत्वा षोडशप्रस्थसंयुताम् । चतुर्भिर्वत्सं  
 राजेन्द्रइत्यादिना लवणपरिमाणान्तरमुक्तम् ।

### अथ सुवर्णधेनुः

विष्णुधर्मे भगवानुवाच---

यद्ब्रह्मणोऽपि राजेन्द्र ऊहितं विष्णुना पुरा ।  
 तत्ते विस्तरतो राजन्कथयाम्यनुपूर्वशः ॥  
 सुवर्णस्य सुवर्णस्य शुद्धस्य परिकल्पितम् ।  
 एकं सुवर्णपदं शोभनं रूपमाह अपरं मानम् ।  
 रौप्यवत्सकसंयुक्तां मुक्ताफलविभूषिताम् ।  
 प्रवालशृङ्गोपयुतां पद्मरागादिस्त्रालिनीम् ॥  
 घृतपात्रस्तनवतीं कर्पूरागरुनासिकाम् ।  
 शर्करारसनोपेतां मिष्टान्नरसवासिताम् ॥  
 शङ्खशृङ्गान्तरां शुक्तिं ललाटस्थानकल्पिताम् ।  
 फलदन्तां वस्त्रयुग्मपार्श्वां क्षौमसुकम्बलाम् ॥  
 इक्षुपादां नालिकेरश्रवणां गुडजानुकाम् ।  
 पञ्चगव्यापानवतीं कांस्यपृष्ठसमन्विताम् ॥  
 सुपट्सूत्रलाङ्गूलां सप्तधान्यसमन्विताम् ।  
 फलपुष्पसमोपेतां छत्रोपान्तसमन्विताम् ॥  
 सुवर्णधेनुं विप्राय प्रतिपाद्येदृशीं नरः ।  
 हिरण्यरेताः पुरुषः पुराणः कृष्णपिङ्गलः ॥  
 तप्तहेमच्छविः स्रष्टा विश्वात्मा प्रीयतामिति ।  
 अनेनैव तु मन्त्रेण धेनोर्दानं प्रकीर्तितम् ॥  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥  
 कुलानां तु सहस्रं च स्वर्गं नयति तदुधः । इति ॥  
 'अश्वमेधसहस्रतुल्यफलप्राप्तिकुलसहस्रस्वर्गनयनकामः', इति काम-  
 फलोद्देशः ।



वह्निपुराणे तु—

सुवर्णधेनुश्चाप्यत्र सुवर्णाश्च चतुर्दश ।

सुनिर्णिक्तसुवर्णेश्च सप्तभिर्मध्यमा मता ॥

चतुर्भिः कन्यसी प्रोक्ता चतुर्थांशेन वत्सकः ।

गुडधेनुविधानेन दत्ता सर्वफलप्रदा ॥

इत्यादिना सर्वं गुडधेनुवदुक्तम् ॥

अथ बन्ध्यात्वहरं सुवर्णधेनुदानम् ।

वायुपुराणे—

चतुर्विधा तु या बन्ध्या भवेद्वत्सवियोजनात् ।

चतुर्विधा—

बन्ध्या च काकबन्ध्या च स्त्रीप्रसूश्च मृतप्रजा । इति ॥

बन्ध्या अपत्यसामान्याभाववती । काकबन्ध्या काकवदेकापत्या ।

वक्ष्ये तस्याः प्रतीकारं तत्स्वरूपं निबोध मे ।

हिरण्येन यथाशक्त्या सवत्सां कारयेद्दृढाम् ॥

धेनुं पलेन वत्सं च पादेन गुरुरब्रवीत् ।

धेनुं रौप्यखुरां रत्नं तस्याः पुच्छे नियोजयेत् ॥

घण्टां गले च बध्नीयात्तिलकं चोभयोरपि ।

अर्चयेद्विभिन्ना तां तु नैवेद्यं पायसं भवेत् ॥

मौदकांश्च तथाऽपूपान्गुडं लवणमेव च ।

जीरकं च सुविस्तीर्णं शूर्पं वेणुमये दृढम् ॥

धेनोरेकं प्रदातव्यं ब्राह्मणस्त्रीषु चैव हि ॥

षट्शतौ दश वा दद्यात्तदनन्तरमेव च ।

ब्राह्मणं सर्वशास्त्रार्थकुशलं धर्मवेदिनम् ॥

विद्याविनयसंपन्नं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ।

अलोलुपं सर्वजनप्रियं कल्मषवर्जितम् ॥

आहूय भक्त्या संपूज्य वस्त्राद्यैर्गन्धपुष्पकैः ।

तेनैव कारयेत्पूजामाहतो धेनुवत्सयोः ॥

होमं च कारयेत्तत्र समिदाज्यचरुत्कटम् ।

सोमो धेनुमिमं मन्त्रं समुच्चार्य ततः पुनः ॥

प्राङ्मुखायोपविष्टाय प्रदद्यात्तामुदङ्मुखः ।



मन्त्रेणानेन विधिवत्पुच्छे हस्तं निधाय च ॥  
 धेनुर्याऽङ्घ्रिरसः सत्रे वसिष्ठे सुरभी च या ।  
 दुहिता च तथा भानोरग्रेष्व वरुणस्य च ॥  
 याश्च गावः प्रवर्तन्ते वनेपूपवनेषु च ।  
 प्रीणन्तु ता मम सदा पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनाः ॥  
 प्रयच्छन्तु दिवारात्रमविच्छेदं च सन्ततैः ।  
 बन्ध्यात्वं काकबन्ध्यात्वं कन्याप्रसव एव च ॥  
 तथैव मृतवत्सात्वं दोषं मम चतुर्विधम् ।  
 दानेनानेन हरतु या सा कामदुघाऽनघा । इति ॥

### अथ स्वरूपतो गोदानम् ।

त याज्ञवल्क्यः—

यथाकथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा ।  
 अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥

जाबालः—

होमार्थमग्निहोत्रस्य यो गां दद्यादयान्वितः ।  
 त्रिविक्तपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥

अङ्गिराः—

गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः ।  
 सा हि तारयते पूर्वान्सप्त सप्त च सप्त च ॥

आत्रेयः—

सीदते बहुभृत्याय श्रोत्रियायाऽऽहिताग्नये ।  
 अतिथिप्रियाय दान्ताय देया धेनुर्गुणान्विता ॥

देवलः—

सुशीलां लक्षणवतीं युवतीं वत्ससंयुताम् ।  
 बहुदुग्धवतीं स्निग्धां धेनुं दद्याद्विचक्षणः ॥

व्यासः—

सङ्ग्रामेष्वर्जयित्वा तु यो वै गाः संप्रयच्छति ।  
 यादृशीः स्पर्शयेद्गावः स तावत्फलमश्नुते ॥  
 तावत्तद्गोरोममितवत्सरं स्वर्गफलम् ।



यो वै द्यूते धनं जित्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।  
स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते ॥

भारते—

न गोदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीति मे मतिः ।  
सा गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम् ॥

तथा—

अकुलीनाय मूर्खाय लुब्धाय पिशुनाय च ।  
हव्यकव्यव्यपेताय गौर्न देया कथञ्चन ॥  
तृणानि खादन्ति वसन्त्यरण्ये पिवन्ति तोयान्यपरिग्रहाय ॥  
दुहन्ति बाह्यन्ति पुनन्ति पापं गवां रसैर्जीवति जीवलोकः ॥  
इति प्रशंसा ।

अथ विधिः ।

याज्ञवल्क्यः—

हेमशृङ्गी शकै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता ।  
सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥

विश्वामित्रः—

प्राङ्मुखीं गामवस्थाप्य सक्त्वा गां सुपूजिताम् ।  
पुच्छदेशे तु दाता वै ततो वद्वशिखो भवेत् ॥  
उदङ्मुखस्तु विप्रः स्यात्पातलक्षणलक्षितः ।  
आज्यपात्रं करे कृत्वा कनकेन समन्वितम् ॥  
निक्षिप्य पुच्छं तस्मिंस्तु घृतदिग्धं प्रगृह्य च ।  
सतिलं विप्रपाणिं च प्रागग्रं तु निधापयेत् ॥  
सतिलं सकुशं चापि गृहीत्वा दानमाचरेत् ।  
अनेनैव तु मन्त्रेण पात्रहस्ते जलं क्षिपेत् ॥

मन्त्रो वक्ष्यते ।

अनुव्रज्य च तां धेनुं ब्राह्मणेन समन्विताम् ।  
गौतमीं तु ततो विद्यां जपेत् प्रयतः शुचिः ॥  
उद्दिश्य वासुदेवं च प्रीयतामिति चानघ ।  
पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य तोयमप्सु विनिक्षिपेत् ॥



## स्वरूपतो गोदानम् ।

२०९

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादिगोमात्रदाने स्वर्गकामः सवत्सधेनुदाने वत्सधेनुरोममितवर्षावधिस्वर्गकामः । अग्निहोत्राय दानं तु वित्तपूर्णा-  
त्रिवारपृथ्वीदानफलतुल्यफलकामः सर्वत्रापि कृत्स्नकुलतारणकामः सर्व-  
पापक्षयकाम ईश्वरप्रीतिकामो वा गोदानं करिष्ये, इतिसङ्कल्प्य  
प्राङ्मुखीं सवत्सां गां विप्रं च संपूज्य ससुवर्णमाज्यपात्रं हस्ते गृहीत्वा  
तत्र पुच्छं घृताक्तं कृत्वा विप्रहस्ते कुशतिलजलान्यादाय उक्तफलेष्वभि-  
लषितं फलमुक्त्वा—

यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघप्रणाशिनी ।

विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा ॥

इति मन्त्रं,

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ।

घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥

घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम् ।

घृतं मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसास्यहम् ॥

इतिपौराणमन्त्रं च पठित्वा जलमुत्सृजेत् । दानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणां  
दत्त्वा ब्राह्मणधेनू अनुव्रज्य—

गावः सुरभ्यो नित्यं गावो गुग्गुलुगन्धिकाः ।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ॥

अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ।

पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च ॥

हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ।

ऋषीणामपि होतॄणां गावो होमे प्रतिष्ठिताः ॥

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम् ।

गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम् ॥

गावः सर्वस्य लोकस्य गावो धन्याः सवाहनाः ।

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ॥

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ॥

एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।

१८-१९



इतियमोक्तां गोमतीं विद्यां जपेत्

महाभारतेऽपि गोमती—

गावो मासुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्गयः पयोमुचः ।

सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा ॥

गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा ।

गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् । इति ॥

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।

गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

इति पठित्वा धेनुं द्विजं च प्रदक्षिणीकृत्य दद्यादित्यपि वदन्ति  
दक्षिणामाह वसिष्ठो गोदानप्रकरणे—

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परां ।

सुवर्णं पावनं प्राहुः परिमाणं परं तथा ॥

यजमानस्ततो दद्याद्यथाशक्त्या तु दक्षिणाम् । इति ॥

‘तदशक्तपरम्’ इति मदनः ।

इति सामान्यप्रत्यक्षगोप्रदानविधिः ।

अथ प्रकारान्तरेण सामान्यगोः पूजनं दानं च ।

अद्येत्यादि ‘गृहसमुद्रशैलवनोपेतपृथ्वीदानसमफलैतद्वेनुवत्सरोमस-  
ह्ययुगदेवलोकमहितत्वपितृपितामहप्रपितामहनरकोद्धरणघृतक्षीरवहबहु-  
कुल्याकद्विपायसकर्द्धमदेशाधिकरणेप्सितकामगत्यात्मलोकसुलभत्वब्रह्म-  
लोकसुलभत्वाजस्रचन्द्रसमानवक्रसुतप्तजाम्बूनदसमानवर्णमहानितम्बस्त-  
नवृत्तमध्यनलिनाभनेत्रानेकस्त्रीसेव्यमानत्वकामो मम समस्तपापक्षयद्वारा  
श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं देशकालाद्यनुसारतो गोदानमहं करिष्ये’ इति सङ्कल्प्य  
तदङ्गब्राह्मणवरणं ब्राह्मणपूजनं गोः पूजनं च करिष्ये ।

ब्राह्मणपूजनम्—

तव पादोदकं तीर्थं मुखे वेदाः प्रतिष्ठिताः ।

पाद्यं गृहाण विप्राग्र्य भूमिदेव नमोऽस्तु ते ॥ पाद्यम् ।

भूमिदेवाग्रजन्माऽसि त्वं विष्णुः पुरुषोत्तमः ।

प्रत्यक्षो ह्यमिपुरुष अर्घोयं प्रतिगृह्यताम् ॥ अर्घम् ।

आचमनगन्धपुष्पवस्त्रादिना पूजयेत् । ततो धेनोरङ्गु पु देवता न्यसेत् ।



गोभ्यो यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोभ्यो यज्ञाः समुत्थिताः ।  
 गोभ्यो वेदाः समुत्तीर्णाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥  
 शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मविष्णू समाश्रितौ ।  
 कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोः शशिभास्करो ॥  
 दन्तेषु वायवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः ।  
 सरस्वती च हुङ्कारे यमयक्षौ च गण्डयोः ॥  
 सन्ध्याद्वयं चोष्ठदेशे ग्रीवायामिन्द्र आश्रितः ।  
 रक्षांसि कुक्षिदेशे तु साध्याश्चोदरसंस्थिताः ॥  
 चतुष्पादेषु वै धर्मः सायं जङ्घासु संस्थिताः ।  
 खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ॥  
 पुराणानि च आन्त्रेषु गात्रे चाप्सरसः स्थिताः ।  
 पृष्ठैकादशरुद्राश्च वसवः सर्वसन्धिषु ॥  
 श्रोणितटस्थाः पितरः सोमो लाङ्गूलमास्थितः ।  
 आदित्याश्चाप्यधो वालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः ॥  
 साक्षाद्रङ्गा च गोमूत्रे गोमये यमुना तथा ।  
 क्षीरे सरस्वती देवी नर्मदा रुधिरे स्थिता ॥  
 हुताशनः स्वयं सर्पित्राह्मणानां गुरुः परः ।  
 अष्टाविंशतिदेवानां कोट्यो रोमसु संस्थिताः ॥  
 उदरे पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ।  
 चत्वारः सागराः पूर्णा गवां ये तु पयोधराः ॥  
 इतिन्यस्य ध्यायेत् ।

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां सर्वदेवेष्ववस्थिता ।  
 धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥  
 विष्णुवक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।  
 चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपा समाश्रये ॥  
 चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।  
 या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्वरदा भव ॥  
 सौरभेयि सर्वहिते पवित्रे पापनाशिनि ।  
 प्रगृहीष्व मया दत्तं पाद्यं त्रैलोक्यवन्दिते ॥ पाद्यम् ।  
 सर्वदेवमये देवि सर्वनीधमये शुभे ।



गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सौरभेयि नमोऽस्तु ते ॥ अर्घ्यम् ।  
 देहस्थिता च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया ।  
 धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ आचमनीयम् ।  
 सर्वतीर्थमये देवि सर्वदेवमये शुभे ।  
 गृहाणेदं मया दत्तं स्नानं ते देविरूपिणि ॥ स्नानम् ।  
 आच्छादनं गवे दद्याच्छुभं शुचि सुनिर्मलम् ।  
 सुरभे वस्त्रदानेन प्रीयतां परमेश्वरि ॥ वस्त्रम् ।  
 या लक्ष्मीः सर्वभूतानां सर्वभूतेष्ववस्थिता ।  
 धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ चंदनम्, अक्षताः ।

अथाङ्गपूजा । ललाटे देव्यै नमः । नासावंशे षण्मुखाय नमः । नासा-  
 पुटे कम्बलाश्रतराभ्यां नमः । कर्णयोरश्विभ्यां देवाभ्यां नमः । चक्षुषोः  
 शशिभास्कराभ्यां नमः । दन्तेषु सर्ववायुभ्यो नमः । जिह्वायां वरुणाय  
 नमः । हुङ्कारे सरस्वत्यै नमः । गण्डयोर्यमयक्षाभ्यां नमः । कुक्षिदेशे  
 रक्षोभ्यो नमः । उरसि साध्येभ्यो नमः । चतुष्पादेषु धर्माय नमः ।  
 जङ्घयोः सायंकालाय नमः । ओष्ठयोः सन्ध्याद्वयाय नमः । ग्रीवाया-  
 मिन्द्राय नमः । कण्ठे सामवेदाय नमः । शृङ्गमूले ब्रह्मविष्णुभ्यां नमः ।  
 शृङ्गाग्रे स्थावरजङ्गमेभ्यस्तीर्थेभ्यो नमः । शिरोमध्ये महादेवाय नमः ।  
 खुरमध्ये गन्धर्वेभ्यो नमः । खुराग्रे पन्नगेभ्यो नमः । सर्वगात्रेषु प्रजापतये  
 नमः । पृष्ठे एकादशरुद्रेभ्यो नमः । सर्वसन्धिषु वसुभ्यो नमः । श्रोणि-  
 तटे पितृभ्यो नमः । लाङ्गूले सोमाय नमः । बालेष्वादिदेभ्यो नमः ।  
 गोमूत्रे गङ्गायै नमः । गोमये यमुनायै नमः । क्षीरे सरस्वत्यै नमः ।  
 दध्नि नर्मदायै नमः । सर्पिषि हुताशनाय नमः । रोमसु त्रयस्त्रिंशत्को-  
 ढिदेवताभ्यो नमः । उदरे पृथिव्यै सकाननायै सशैलायै नमः । पयो-  
 धरेषु चतुःसागरेभ्यो नमः । इत्यङ्गपूजा । ततो गवेऽलङ्कारान्दद्यात् ।  
 यथा-स्वर्णं शृङ्गे । खुरे रौप्यम् । पृष्ठे ताम्रम् । भाले आदर्शम् । नेत्रयो-  
 रस्नद्वयम् । कण्ठे घण्टां चामरं यज्ञोपवीतं वस्त्रं च । पुच्छे मुक्ता  
 पत्रालानि च ।

देवद्रुमरसोद्भूतं गोघृतेन समन्वितम् ।

प्रयच्छामि महाभागे गौर्धूपं प्रतिगृह्यताम् ॥ धूपम् ।



आनन्दकृत्सर्वलोके देवानां च सदा प्रिये ।

गौस्त्वं पाहि जगन्नाथे दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ दीपम् ।

सुरभे त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता ।

सर्वदेवमये प्रासमिमं दत्तं मयाऽग्रतः ॥ गोप्रासम् ।

गोरङ्गेष्वावाहितदेवताभ्यश्च धूपदीपनैवेद्यफलताम्बूलदक्षिणां दद्यात् ।

गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलुगन्धिकाः ।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ॥

अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ।

पावनं सर्वभूतेभ्यो रसन्ति च वहन्ति च ॥

हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ।

ऋषीणामग्निहोत्राणां गावो मे सप्रतिष्ठिताः ॥

इति प्रार्थ्य, अद्येत्यादिकामं सङ्कल्प्य गोपुच्छे तर्पणं कुर्यात् ।  
तद्यथा-ब्रह्मा तृप्यतु । रुद्रस्तृप्यतु । विष्णुस्तृप्यतु । राकाद्या देवता-  
स्तृप्यन्तु । मनवस्तृप्यन्तु । ऋषयस्तृप्यन्तु । रुद्रास्तृप्यन्तु । दितिपुत्रा-  
स्तृप्यन्तु । साध्यास्तृप्यन्तु । मरुद्गणास्तृप्यन्तु । ग्रहास्तृप्यन्तु । नक्षत्राणि  
तृप्यन्तु । योगास्तृप्यन्तु । राशयस्तृप्यन्तु । वसुधा तृप्यतु । अश्विनौ  
तृप्यताम् । यक्षास्तृप्यन्तु । रक्षांसि तृप्यन्तु । मातरस्तृप्यन्तु । देवमात-  
रस्तृप्यन्तु । श्रीस्तृप्यतु । रुद्राणी तृप्यतु । पिशाचास्तृप्यन्तु । सुपर्णा-  
स्तृप्यन्तु । पशवस्तृप्यन्तु । दानवास्तृप्यन्तु । दैत्यास्तृप्यन्तु । योगिन-  
स्तृप्यन्तु । विद्याधरास्तृप्यन्तु । औषधयस्तृप्यन्तु । दिग्गजास्तृप्यन्तु । देव-  
तागणास्तृप्यन्तु । यज्ञास्तृप्यन्तु । देवपत्न्यस्तृप्यन्तु । लोकपालास्तृ-  
प्यन्तु । अनिरुद्धस्तृप्यतु । बलदेवस्तृप्यतु । नारदस्तृप्यतु । जन्तवस्तृप्यन्तु ।  
स्थावराणि तुप्यन्तु । जङ्गमानि तृप्यन्तु । नीवीतं कृत्वा । सनकस्तृप्यतु ।  
सनन्दनस्तृप्यतु । सनातनस्तृप्यतु । कपिलस्तृप्यतु । आसुरिस्तृप्यतु ।  
बोल्हस्तृप्यतु । पञ्चशिखस्तृप्यतु । अप्सव्यं कृत्वा । कव्यवाहनस्तृप्यतु ।  
अनलस्तृप्यतु । सोमस्तृप्यतु । यमस्तृप्यतु । अर्यमा तृप्यतु । अग्निष्वा-  
त्तास्तृप्यन्तु । बर्हिषदस्तृप्यन्तु । सोमपास्तृप्यन्तु । पितरस्तृप्यन्तु ।  
यमतर्पणं-यमं तर्पयामि । धर्मराजं त० । मृत्युं त० । अन्तकं त० । वैव-  
स्वतं त० । कालं त० । सर्वभूतक्षयकरं त० । औदुम्बरं त० । दध्नं त० ।  
नीलं त० । परमेष्ठिनं त० । वृकोदरं त० । चित्रं त० । चित्रगुप्तं तर्प-  
यामि । पक्षद्वयजातान्पितृन्तर्पयामि ।



मातृपक्षाश्च ये केचिद्ये केचित्पितृपक्षकाः ।  
 गुरुश्चशुरबन्धूनां ये कुलेषु समुद्भवाः ॥  
 ये चान्ये लुप्तपिण्डा वै पुत्रदारविवर्जिताः ।  
 ते सर्वे तृप्तिमायान्तु गोपुच्छोदकतर्पणैः ॥  
 क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्कवस्तथा ।  
 विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ॥  
 ते सर्वे तृप्तिमायान्तु गोपुच्छोदकतर्पणैः ।

ततः सविप्रां सवत्सां गां त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य 'आ गावो अगमन्'  
 इतिसूक्तं पठेत् 'वरुणस्योत्तम्भनमसि' इति जलं पिबेताम् ।

### अथ दानम् ।

कांस्यपात्रे घृतं निधाय तिलदर्भपुष्पफलतुलसीसहितपात्रे विप्रहस्तं  
 निधाय तदुपरि गोपुच्छं दत्त्वा जलधारां पुच्छोपरि विप्रहस्ते दद्यात् ।  
 प्राङ्मुखीं गामवस्थाप्य स्वयं प्राङ्मुख उदङ्मुखाय विप्राय दद्यात् ।  
 अमुकप्रवरोपेतोऽमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहं रुद्रदेवत्यां सवस्त्रां ताम्रपृष्ठीं  
 सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां दोहनपात्रसहितां सवत्सामिमां गाममुकप्रवरोपे-  
 तायामुकगोत्रायामुकशर्मणे तुभ्यमहं संप्रददे । प्रतिग्रहीता 'देवस्य त्वा'  
 इत्यादि 'प्रतिगृह्णामि' इत्यन्तमुक्त्वा गृहीत्वा 'क इदं कस्मा अदात्  
 पृथिवी प्रतिगृह्णातु' यजमानः 'प्रतिगृह्णातु भवान्' द्विजः । 'गृह्णामि  
 सुरभीं देवीं सर्वदेवमयीं शुभाम् । (?) हि वरदे उभयोस्तारका भव'  
 इति । ततो यजमानः—

यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघौघनाशिनी ।

विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा ॥

इति मन्त्रमुक्त्वा—

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ।

घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥

घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम् ।

घृतं मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

इतिपौराणमन्त्रान्पठित्वा जलमुत्सृजेत् । ततो गोदानप्रतिष्ठासि-  
 द्ध्यथ सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणधेनू अनुव्रज्य 'गावः सुरभयः'



इत्यादि पठेत् । प्रतिग्रहीता 'सुवर्णं दक्षिणात्वेन प्रतिगृह्णामि' 'राजा  
त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणेऽग्नये हिरण्यं तेनामृतत्वमश्नां वयो दात्रे  
मयो मय्यमस्तु प्रतिग्रहीत्रे क इदं कस्मा अदात्' ।

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम् ।

गावः पवित्रं परमं गोष्ठे मङ्गलमुत्तमम् ॥

गावः सर्वस्य लोकस्य गावो धन्याः सवाहनाः ।

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ॥

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ॥

एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।

इति यमोक्तां गोमतीं विद्यां जपेत् । यजमानः—

गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्गयः पयोमुचः ।

सुरभ्यः सौरभेयाश्च सरितः सागरं यथा ॥

गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा ।

गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ॥

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।

गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् । इति ॥

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।

यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च ॥

इतिप्रार्थ्य'यस्य स्मृत्या' इति कर्मेंश्वरार्पणं कुर्यात् । इति प्रकारा-  
न्तरेण स्वरूपतः सामान्यगोदानविधिः ।

### अथ हेमशृङ्गीदानम् ।

अथ मात्स्ये हेमशृङ्गी—

दश सौवर्णिके शृङ्गे खुराः पञ्चपलान्विताः ।

पञ्चाशत्पलिकं कांस्यं ताम्रं चापि तथैव च ॥

दाताऽस्याः सर्वमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ।

सुवर्णमत्र दक्षिणा ।

इति हेमशृङ्गीदानम् ।

शिवाय विष्णवे वाऽपि यस्तु दद्यात्पद्मस्विनीम् ।

धेनुं स्नानोपहारार्थं स परं ब्रह्म गच्छति । इति ॥



स्कान्दे देवताभ्यो गोदानम्—

सवृषं गोशतं दद्याच्छिवायातीव शोभनम् ।

त्रिःसप्तकुलजैः सार्द्धं शृणु तत्पदमाप्नुयात् ॥

इत्यादिना शिवधर्मोक्तं शिवाय वृषाधिकगोशतदानम् । देवताभ्यो दाने देवतैव संप्रदानं न ब्राह्मणः । दत्तं च तत्तद्देवतायतने दक्षिणभागे स्थाप्यं, इति दानसौख्ये ।

अथोभयतोमुखी ।

तद्दानकालः स्कान्दे—

अर्द्धप्रसूतां गां दद्यात्कालादि न विचारयेत् ।

कालः स एव ग्रहणे यदा सा द्विमुखी तु गौः ॥

मातर्ये—

रुक्मशृङ्गीं रौप्यसुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् ।

कांस्योपदोहनां राजन्सवत्सां द्विजपुङ्गवे ॥

प्रसूयमानां यो दद्याद्धेनुं द्रविणसंयुताम् ।

यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥

तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ।

देवलः—

अलङ्कृत्योक्तविधिना सुवर्णत्रिपलान्विता ।

दातव्या द्विपला मध्यैकपला च कनीयसी ॥

वाराहे—

यश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् ।

तद्दिनं पायसाहारः पयसा वाऽतिवाहयेत् ॥

सुवर्णस्य सहस्रेण तदर्द्धेनापि वा पुनः ।

तस्याप्यर्द्धशतं वाऽथ पञ्चाशच्च तथाऽर्द्धकम् ॥

यथाशक्त्याऽपि दातव्यं वित्तशास्त्र्यविवर्जितम् ।

योगी—

सवत्सा रोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखी ।

दाताऽस्याः स्वर्गमाप्नोति पूर्वेण विधिना ददत् ॥



मात्स्ये—

गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ।

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णाः ।

महानितम्बस्तनमध्यवृत्ता भजन्त्यजस्रं नलिनाभनेत्राः । इति ॥

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादि 'गृहसमुद्रशैलवनोपेतपृथिवीदानसमफलै-  
तद्धेनुवत्सरोमसङ्ख्ययुगदेवलोकमहितत्वपितृपितामहप्रपितामहनरकोट-  
रणघृतक्षीरवहवहुकुल्याकदविपायसकदेमकदेशाधिकरणकेप्सितकामग-  
त्यात्मलोकसुलभत्वब्रह्मलोकसुलभत्वाजस्रचन्द्रसमानवक्त्रसुतप्तजाम्बूनद-  
तुल्यवर्णमहानितम्बस्तनवृत्तमध्यनलिनाभनेत्रानेकस्त्रीसेव्यमानत्वकामः,  
उभयतोमुखी दास्ये' इतिसङ्कल्प्य, 'ॐ त्वं महीभवति विश्वधेनां  
तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् । अरमयो नमसैः अदर्णस्तुतरणौ जकृणोरि-  
न्द्रसिन्धून्' इति गामनुमन्त्र्य विप्रं वस्त्रादिभिर्गां च सुवर्णशृङ्गारूप्यखु-  
रादिभिरलङ्कृत्य गन्धादिनाऽभ्यर्च्य गृहसं इत्यादिकामः इत्यन्तं  
प्रयोगान्ते 'इमां सोपस्करामुभयतोमुखीं गां रुद्रदैवतां । अमुक-  
गोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे न मम' इति ब्राह्मणकरे  
दद्यात् । विप्रस्तु विधिवत्प्रतिगृह्य 'ॐ स्वस्ति' इत्युक्त्वा गोपुच्छं  
स्पृष्ट्वा दत्तां दक्षिणां च प्रतिगृह्य गां स्पृष्ट्वा 'इरावती धेनुमती' 'स्योना  
पृथिवि भव' इति मन्त्रद्वयं जप्त्वा—

प्रतिगृह्यामि त्वां धेनुं कुटुम्बार्थे विशेषतः ।

स्वस्तिभवतु मे नित्यं रुद्रमातर्नमो नमः ॥

इतिमन्त्रेण गृहीतायां दक्षिणेन पाणिना 'गर्भेऽनुसन्नन्वेषामवेदमहं  
देवानां जनिमानि विश्वा । शतं मायुरआयसीररक्षं नधस्येनो जवसा-  
निरदीयम्' इतिमन्त्रेणानेन गर्भमाकृष्येत् । अनन्तरकृत्यमाह च्यवनः-  
निष्क्रान्तेऽग्निमुपसमाधाय देवान्पितृन्नदीः पर्वतान्वनस्पतीनुदधीन्नागा-  
नोषधीस्तर्पयेत् । तत्र क्रमेण मन्त्राः— 'ये देवासः' 'उशन्तस्त्वा'  
'इमं मे गङ्गे' 'अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनो हितः' 'वनस्पते'  
'समुद्रज्येष्ठाः' 'अहिरिव भोगैः' 'मधुवाताः' इति । तदनु  
पृथिवीं तर्पयेत् । मन्त्रास्तु 'इळेद्यावा' 'मही द्यौः' 'उर्वी पृथिवी'  
'गौरीर्मिमाय' । ततः समस्तव्याहृतिभिश्चतुरशीत्याज्याहुतीर्हुत्वा ब्राह्म-  
णान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयित्वा गामनुब्रज्य प्रागुक्तां गोमतीं  
विद्यां जप्त्वा पायसमात्रं भुञ्जीत । इत्युभयतोमुखीगोदानविधिः ॥



भारते—

इतिकण्ठमनङ्गाहं सर्वरत्नैरलङ्कृतम् ।

दत्त्वा प्रजापतेर्लोकान्विशोकः प्रतिपद्यते ॥

इत्यादिसुवर्णशृङ्गारौप्यलाङ्गूलादिकमपि भारतीकं बोध्यम् ।  
इतिकण्ठं प्रबलगलकम्बलम् ।

अथ वैतरणी ब्रह्मवैवर्ते ।

या सा वैतरणी नाम यमद्वारे महानदी ।

शतयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महासरित् ॥

अगाधाऽनन्तरूपा च दृष्टमात्रा भयावहा ।

तथा—

पतन्ति तत्र वै मर्त्याः क्रन्दमानाः सुदारुणम् ।

तच्छृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं युधिष्ठिर ॥

अयने विपुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।

पाटलामथवा कृष्णां कुर्याद्वैतरणीं शुभाम् ॥

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यपात्रसदोहनाम् ।

कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम् ॥

कार्पासद्रोणशिखर आसीनं ताम्रभाजने ।

यमं हैमं प्रकुर्याद्वै लोहदण्डसमन्वितम् ॥

महामहिषमारूढमूढपाशं करे परे ।

इक्षुदण्डमयं वद्ध्वा उडुपं पट्टवन्धनैः ॥

उडुपोपरि तां धेनुं सूर्यदेहसमुद्भवाम् ।

कृत्वा प्रकाशयेद्विद्वान्छत्रोपानहसंयुताम् ॥

इममुच्चारयेन्मन्त्रं संगृह्योदकमण्डलम् ।

अथ प्रयोगः । पूर्वोक्तायनादिकाले वा पाटलां कृष्णां वा हेमशृङ्गाद्यु-  
पेतां कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसंयुक्तां छत्रोपानहगलसंयुतां गां  
संनिधाप्य द्रोणमितकार्पासशिखरे ताम्रपात्रं तत्र च महिषारूढं दक्षिण-  
वामहस्तधृतलोहदण्डपाशं हैमं यमं स्थापयित्वा तदग्रे पदवद्धेक्षुदण्ड-  
निर्मितप्लवोपरि तां धेनुं स्थापयित्वा उदङ्मुखं प्रतिग्रहीतारमुपवेश्य  
स्वयं प्राङ्मुखः—



यमद्वारे महाबोरा या सा वैतरणी नदी ।

तर्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं च गाम् ॥

इतिमन्त्रेण गामधिवासयेत् । ततः तिथ्यादि सङ्कीर्त्य 'वैतरणीं तर्तुं गां दास्ये' इतिसंकल्प्य प्रतिमायामक्षतपुञ्जे वा विष्णुं गां विप्रं च संपूज्य, अद्येत्यादिअमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणायाहं यमद्वारे स्थिताया नद्याः सुखेनोत्तरणार्थमिमां वैतरणीं गां सवत्सां सोपस्करां हैमयममूर्तिसहितां विष्णुदैवतां संप्रददे ।

दानमन्त्रः—

विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पङ्क्तिपावन ।

सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी च गौः । इति ॥

ततः सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा तद्धेतोः पुच्छं प्रगृह्यानुव्रजेत् । तत्र मन्त्रः—

धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये ।

उत्तितीर्षुरहं देवि वैतरण्यै नमो नमः ॥

इति वैतरणीदानम् ।

अथ महिषीदानम् ।

भविष्योत्तरे—

महिषीदानमाहात्म्यं कथयामि युधिष्ठिर ।

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामप्रदं सुखम् ॥

चन्द्रसूर्यग्रहे पुण्ये कार्तिक्यामयने तथा ।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां सूर्यसंक्रान्तिवासरे ॥

यदा वा जायते वित्तं चित्तं च कुरुनन्दन ।

तदैव देया महिषी संसारभयभीरुणा ॥

प्रथमप्रसूता तरुणी सुशीला दोषवर्जिता ।

सुवर्णशृङ्गतिलका घण्टाभरणभूषिता ॥

रक्तवस्त्रावृता रम्या ताम्रदोहनिकान्विता ।

पिण्याकपिटकोपेता सहिरण्या च शक्तिः ॥

पिण्याकपिटकं बलिपूर्णवंशादिपात्रम् ।

सप्तधान्ययुता देया ब्राह्मणे वेदपारगे ।

द्रव्यैरेभिः समायुक्ता पुण्येऽहि विधिपूर्वकम् ॥



दद्यान्मन्त्रेण राजेन्द्र पुराणपठनेन तु ।  
 दद्यात्प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणे तां पयस्विनीम् ॥  
 प्रतिग्रहः स्मृतस्तस्याः पृष्ठदेशे स्वयम्भुवा ।

दानवाक्यं तु, ॐ अद्येत्यादि ।

इन्द्रादिलोकपालानां या राज्यमहिषी शुभा ।  
 महिषीदानमाहात्म्यात्साऽस्तु मे कामदा सदा ॥  
 धर्मराजस्य माहात्म्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ।  
 महिषासुरस्य जननी या साऽस्तु वरदा मम ॥

इतिमन्त्रमुक्त्वा 'अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय इमां महिषीं  
 सुवर्णशृङ्गतिलकाभरणां घण्टाताम्रदोहनिकां पिण्याकपिटकसप्तधान्य-  
 पादुकोपेतां यमदैवतामायुष्यमुखमहाराज्यकामस्तुभ्यमहं संप्रददे' इति ।  
 स्त्री तु 'राजमहिषीत्वकामा' इति, 'जयकामः' इति क्षत्रियः,  
 'धनधान्यकामः' इति वैश्यः । एवं शूद्रेणापि स्वाभिलषितं फलमुल्ले-  
 ख्यम् । 'ईश्वरप्रीतिकामः' इति वा सर्वैः । ततो दक्षिणां दद्यादिति ।

अनेन विधिना दत्त्वा महिषीं द्विजपुङ्गवे ।  
 सर्वान्कामानवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥  
 या स्त्री ददाति महिषीं सा राजमहिषी भवेत् ।  
 महाराजः पुमान्राजन्व्यासस्य वचनं यथा ॥  
 यज्ञयाजी भवेद्विप्रः क्षत्रियो विजयी भवेत् ।  
 वैश्यस्तु धान्यधनवाञ्छूद्रः सर्वार्थसंयुतः ॥

इत्यादिफलश्रुतिरिति तत्रैवोक्ता ।

इति महिषीदानम् ।

अथ मेषीदानम् ।

भविष्योत्तरे—

शृणु पार्थ परं दानं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।  
 यद्वत्तं विविधं पापं सद्यो विलयमृच्छति ॥  
 सुवर्णरोमां सौवर्णीं प्रत्यक्षां वा सुशोभनाम् ।  
 सुवर्णतिलकोपेतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥  
 कौशेयपरिधानां च दिव्यचन्दनभूषिताम् ।



दिव्यपुष्पोपहारं च सर्वधातुरसैर्युताम् ॥  
 सप्तधातुसमायुक्तां फलपुष्पवतीं तथा ।  
 शतेन कारयेत्तां तु सुवर्णस्य प्रयत्नतः ॥  
 यथाशक्त्याऽथवा कुर्याद्वित्तशक्त्यं न कारयेत् ।  
 अयने विपुवे पुण्ये ग्रहणे शशिसूर्ययोः ॥  
 दुःस्वप्नदर्शने चैव जन्मर्क्षे तिथिसङ्ख्ये ।  
 यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् ॥  
 तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ।  
 नद्यां तीर्थे गृहे वाऽपि यत्र वा रमते मनः ॥  
 तत्र संस्थाप्य देवेशमुमया सह शङ्करम् ।  
 ब्रह्माणं सह गायत्र्या सश्रीकं श्रीधरं तथा ॥  
 रत्या सह तथाऽनङ्गं लोकपालान्ग्रहानपि ।  
 तांस्तु पूज्य विधानेन गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥

उमाशङ्कररूपम्—

चर्माम्बरश्चतुर्बाहुः शूलखट्वाङ्गपाशभृत् ।  
 वृषाङ्कः शङ्करो गौरी वामोत्सङ्गे स्थिता भवेत् । इति ॥  
 ब्रह्मगायत्र्यादिरूपाणि तु प्रागुक्तानि । तानि च यथाशक्ति सौव-  
 र्णानि कार्याणि ।

तदग्रे कारयेद्धोमं तिलाज्येन महीतले ।  
 अलङ्कृत्य द्विजं शान्तं वासोभिः परिपूज्य च ॥  
 तल्लिङ्गमन्त्रैर्होमश्च कर्तव्यो ज्वलितेऽनले ।  
 ततस्तां तिलकुम्भस्थां लवणाभिमुखां स्थिताम् ॥  
 पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।

मन्त्रः प्रयोगे ज्ञेयः ।

एवमुच्चार्य तां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
 नाभिभाषेत्ततो दत्त्वा न मुखं वाऽवलोकयेत् ॥  
 दुष्टप्रतिग्रहणतो विप्रो भवति पातकी ।  
 अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥  
 दत्त्वा दानं शुभां कान्तिं कीर्तिं च विपुलां तथा । इति ॥

अथ प्रयोगः । उक्तायनादिकाले गृहे तीर्थे वा दाताऽद्येत्यादि 'सर्व-



पापक्षयपूर्वकपुत्रधनकान्तिकीर्तिप्राप्तिकामो मेघीदानं करिष्ये' इति  
सङ्कल्पयेत् । दुःस्वप्ने तु 'तत्सूचितानिष्टनिवृत्तिकामः' इतिविशेषः ।  
प्रतिमासु तण्डुलपुञ्जेषु वा उमासहितं शङ्करं गायत्रीसहितं ब्रह्माणं  
श्रीसहितं श्रीधरं रतिसहितमनङ्गं लोकपालान्म्रहांश्च संपूज्यैतत्प्रका-  
शकैर्मन्त्रैराज्याक्तितैरष्टाष्टाविंशत्यादिसंख्यया हुत्वा सुवर्णतिलकाद्य-  
लङ्कारकौशेयचन्दनपुष्पसुवर्णरूप्यादिसप्तधातुसप्तरससकलपुष्पयुतां मध्य-  
स्थापिततिलकुम्भां संमुखस्थापितलवणां मेघीं च संपूज्य—

रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्वोपकरणैः सदा ।

जगतः संप्रवृत्ताऽसि त्वामतः प्रार्थयेत्सितम् ॥

वाङ्मनःकायजनितं यत्किञ्चिन्मम दुष्कृतम् ।

तत्सर्वं विलयं यातु त्वद्दानानुपसेवितम् ॥

इतिमन्त्रमुक्त्वा तिथ्यादि सङ्कीर्त्य 'सर्वपापक्षयपूर्वकपुत्रधनका-  
न्तिकीर्तिप्राप्तिकामो दुःस्वप्नसूचितानिष्टनिवृत्तिकामो वेमां मेघीं सर्वोप-  
स्करयुताममुकगोत्रायासुकशर्मणे विप्रायाहं संप्रददे न मम' इति दत्त्वा  
विप्रेण यथाविधि प्रतिग्रहे कृते दक्षिणां दद्यात् । एवमेव सुवर्णमेघी देया ।  
प्रतिग्रहीतृविप्रसंभाषणमुखावलोकने वर्जयेत् ।

इति मेघीदानम् ।

अथाजादानम् ।

सुमन्तुः—

अजापालो महीपालो ह्यजादानैर्दिवं गतः ।

अयने विषुवे चैव युगादौ ग्रहणेषु च ॥

अमावास्यामजादानं पौर्णमास्यां च शस्यते ।

विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि विश्वामित्रेण निर्मितम् ॥

सर्वरत्नोपसंपन्नां सप्तधान्योपरिस्थिताम् ।

वस्त्रमाल्योपमालां तु भूषितां पशुजानकीम् ॥

वज्रनेत्रां हेमशृङ्गां ताम्रपृष्ठां सदोहनाम् ।

ससुतां रौप्यपादां च कुक्षौ दद्यात्तिलोदकम् ॥

गोदानवत्प्रयुञ्जीत मन्त्रेणानेन संयुतः ।

मन्त्रवासो अजे श्लक्ष्णे यज्ञसंपत्करे शुभे ॥

सृष्ट्वा तं दह मे पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् । इति ॥



एवं समुच्चरेत्तया विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् ।  
 प्रीयतां यज्ञनाथाय वासुदेवाय वै नमः ॥  
 एवंप्रदक्षिणीकृत्य सूर्यं समवलोकयेत् ।  
 ततश्च गच्छेत्स्वगृहं हरिं संस्मृत्य मानवः ॥  
 ये बालत्वे कृताः पापाः कामतो वाऽप्यकामतः ।  
 यौवने वार्द्धकोन्मादे प्रसङ्गेनापि पातकम् ॥  
 अजादानस्य माहात्म्यान्निष्पापो जायते नरः ।  
 पुत्रपौत्रसमायुक्तः सदाचारमतिश्चिरम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

उष्ट्रं वा गर्दभं वाऽपि यः प्रयच्छति सुद्विजे ।  
 अजामुरभ्रं तुरगं यथाशक्त्या सदक्षिणम् ॥  
 अलकां स समासाद्य यक्षेन्द्रैः सह मोदते ।  
 सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥  
 तस्मादजां प्रयच्छस्व ततः सर्वमवाप्स्यसि ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवदलङ्घ्य स्वशक्तिः ॥  
 त्वं पूर्वं ब्रह्मणा सृष्टा पवित्रं भवती परम् ।  
 त्वत्प्रसूतौ स्थिता यज्ञास्तस्माच्छान्तिकरी भव ॥  
 प्रतिगृहीत तां चैव पृष्ठदेशे द्विजोत्तमः ।

दानवाक्यं तु महिषीदानवज्ज्ञेयम् ।

अजाविकं च महिषं दत्त्वा विप्राय शक्तिः ।  
 घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र तत्र समेधते ॥

इत्यजादानम् ।

अथ मेषदानम् ।

बौधायनः—

अग्नेर्मन्त्रं भवेत्तस्य यज्ञेताम्रिविनाशनः ।  
 वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥  
 पलाद्धेन तदद्धेने तदद्धेनाथवा पुनः ।  
 राजतं कारयेत्सौम्यमग्नेर्वाहनमुत्तमम् ॥  
 सौवर्णाश्च खुराः कार्याः श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ।



श्वेतमास्यैः श्वेतगन्धैर्धूपं दद्यान्मधूत्कटे ॥  
 तण्डुलोपरि संस्थाप्य पुनस्तं पूजयेत्सुधीः ।  
 तन्दुलानां परीमाणं द्रोणद्वयमुदाहृतम् ॥  
 आग्नेय्यां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैरपि ।  
 आचार्येण विनीतेन सर्वशास्त्रार्थवेदिना ॥  
 बहूचेन च कर्तव्यस्तत्र मन्त्रानिमाञ्जुषु ।  
 अग्निर्मूर्द्धेतिमन्त्रेण समिद्धोमः प्रशस्यते ॥  
 अग्ने नयेत्याज्यहोमोऽप्यग्निनाग्निस्तिलाक्षतैः ।  
 मन्त्राध्यायोक्तमार्गेण चाग्निसंस्थापनं भवेत् ॥  
 अग्नेः प्रागुत्तरे देशे शुभं कुम्भं च त्रिन्यसेत् ।  
 प्रणीतामोक्षपर्यन्ते कृते स्नानं विधीयते ॥  
 आपोहिष्ठेत्यपि तृचं हिरण्येति चतुर्क्वचम् ।  
 पवमानानुवाकेन मार्जयेद्भोगिणं ततः ॥  
 शन्नोवातानुवाकेन शान्तिं चापि प्रकल्पयेत् ।  
 तस्मै हुतवते रोगी प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥  
 पूजिताय यथाशक्त्या दद्यात्तं तु सदक्षिणम् ।  
 देवानां यो मुखं हव्यवाहनः सर्वपूजितः ॥  
 तस्य त्वं वाहनं पूज्यं देवैः सेन्द्रैर्महर्षिभिः ।  
 अग्निमान्द्यं पूर्वकर्मविपाकोत्थं तु यन्मम ॥  
 तत्सर्वं नाशय क्षिप्रं जाठराग्निं प्रवर्द्धय ।

इति दानमन्त्रः ।

एवं विप्राय यो दद्याद्दग्नेर्वाहनमुत्तमम् ।  
 बलवानग्निमान्मर्त्यो जीवेद्दूर्घशतं पुनः ॥  
 ततः स्वबन्धुभिर्विप्रैः स्नात्वा भुञ्जीत मानवः ।  
 इति मेषदानम् ।

अथ पर्वतदानानि ।

मात्स्ये—

प्रथमो धान्यशैलः स्याद्वितीयो खवणाचलः ।  
 गुडाचलस्तृतीयः स्याच्चतुर्थो हेमपर्वतः ॥



पञ्चमस्तिलशैलः स्यात्षष्ठः कार्पासपर्वतः ।  
 सप्तमो घृतशैलः स्याद्रत्नशैलस्तथाऽष्टमः ॥  
 राजतो नवमस्तद्वदशमः शर्कराचलः ।  
 वक्ष्ये विधानमेषां यथावदनुपूर्वशः ॥  
 अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ।  
 शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये ॥  
 विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथवा पुनः ।  
 शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः ॥  
 धान्यशैलादयो देया यथाश्रद्धं विधानतः ।  
 तीर्थे वायतने वापि गोष्ठे वाऽथ नवाङ्गणे ॥  
 मण्डपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् ।  
 प्रागुदकप्रवर्णं तद्वत्प्राङ्मुखं वा विधानतः ॥

प्राच्यामुदीच्यां चैकमेव द्वारम्, न चत्वारि द्वाराणीत्यर्थः । द्वारै-  
 क्यञ्च तोरणमप्येकमेव द्वारपरिष्कारणत्वात्तस्य । मण्डपोऽष्टादश-  
 स्तोऽन्यथा द्रोणसहस्रादिमितपर्वतनिवेशायोगात् ।

गोमयेनोपलिप्तायां भूमावास्तीर्थं वै कुशम् ।  
 तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद्विष्कम्भैः पर्वतैर्युतम् ॥  
 धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः ।

मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात्त्रिभिः शबैः ॥

मेरुर्महान्ब्रीहिमयस्तु मध्ये सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।

वृक्षत्रयं मन्दारपारिजातकल्पवृक्षरूपम् । मध्ये कल्पतरुर्दक्षिणोत्तर-  
 योर्मन्दारपारिजातौ । शक्तौ हरिचन्दनसन्तानावपि पूर्वपश्चिमयोः  
 स्थाप्यौ । निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराऽचले, इतिवक्ष्यमाणवाक्या-  
 च्छर्कराचलदानं त्वावश्यकम् ।

पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो याभ्येन गोमेदकपुष्परगैः ।

पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैडूर्यसरोजरागैः ॥

सरोजरागः पद्मरागः । मुक्ताफलादीनि पूर्वादिदिगवस्थितराजतशृ-  
 ङ्गेषु निवेश्यानि ।

मन्दरः—

श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवाललतान्वितः शुक्तिशिलातलः स्यात् ।



ब्रह्मा च विष्णुर्भगवान्पुरारिर्दिवाकरो यत्र हिरण्यमयः स्यात् ॥  
 मूर्द्धव्यवस्थागतमत्सरेण कार्यास्त्वनेके च तथा द्विजौघाः ।  
 'ब्रह्मादिप्रतिमा ब्रह्माण्डदाने, द्विजाः पक्षिणो मुनयश्च हैमाः  
 अनेकपदस्वरसात्' इति मदनः ।

चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि नितम्बभागेपि च राजतः स्यात् ।  
 आर्द्रेक्षुवंशावृतकन्दरस्तु घृतोदकप्रस्रवणश्च दिक्षु ॥  
 शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात्पूर्वेण पीतानि च दक्षिणे स्यात् ।  
 वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि रक्तानि चैवोत्तरतो घनाली ॥  
 आर्द्रेक्ष्व एव वंशाः । घृतमेवोदकम् । शुक्लाण्यम्बराण्येव मेधावली ।  
 रौप्यान्महेन्द्रप्रमुखानथाष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन्क्रमेण ।  
 महेन्द्रादिलक्षणं तुलादाने—

नानाफलाली च समन्ततः स्यान्मनोरमं माल्यविलेपनं च ।  
 वितानकं चोपरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितं च ॥  
 इत्थं निवेश्यामरशैलमध्यं मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन्क्रमेण ।  
 तुरीयभागेन चतुर्दिशं तु संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाढ्यान् ॥  
 'प्रतिविष्कम्भपर्वतं तुरीयांशेन चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान्कारयेत्पृथ-  
 गिति लवणाचले वक्ष्यमाणत्वात्' इति मदनः । वास्तवं तु एकैर्नैव  
 चतुर्थांशेन चत्वारोऽपि विष्कम्भपर्वताः कार्या इति तत्रैव वक्ष्यते ।

पूर्वेण मन्दरमनेकफलैश्च युक्तं  
 युक्तं गणैः कनकभद्रकदम्बचिह्नम् ।  
 कामेन काञ्चनमयेन विराजमान-  
 माकारयेत्कुपुमवल्लविलेपनाढ्यम् ॥  
 क्षीरारुणोदसरसा च वनेन चैव  
 रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम् ।

कामरूपमाह विश्वकर्मा—

चापबाणधरः कामो रतिप्रेयान्सुमध्यमः ।  
 आलापी नन्दने रागी रूपवान्विश्वमोहकः । इति ॥

'ब्रह्मेरुसन्निधानाद्धान्यान्तरानुपदेशाच्च मन्दरोऽपि ब्रीहिमय एव,  
 इति मदनः । तत्र 'विष्कम्भपर्वतं चैव यवैः कुर्यात्तु पूर्वतः' इति  
 ब्रह्माण्डोक्तेः । गणैरिति नराकृतिभिस्त्रिभिर्गणैर्युक्तम् । कपिञ्जलवत् ।



कनकेति कनकनिर्मितो भद्रकन्दरः । तद्रूपं प्रयोगे ज्ञेयम् । क्षीरेति ।  
क्षीरपूर्णेन रौप्येणारुणोदाख्येन सरसा रौप्येण वनेन च विराजमानम् ।

यामेन गन्धमदनश्च निवेशनीयो

गोधूमसञ्चयमयः कलधौतजम्बवा ।

हैमेन यक्षपतिना घृतमानसेन

बलैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात् ॥

कलधौतजम्बवा हैमजम्बवृक्षेण । यक्षपतिरूपं हेमाद्रौ श्रीप्रभे—

ह्रस्वमापिङ्गनेत्रं च गदिनं पीतविग्रहम् ।

पुष्पकस्थं धनाध्यक्षं ध्यायेच्छिवसखं सदा । इति ॥

सघृतेन राजतेन मानससरसा ।

पश्चात्तिलाचलमनेकसुवर्णपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्यहंसयुक्तम् ।

आकारयेद्रजतपुष्पमयेन तद्बद्धस्नान्त्रितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥

आकारयेत्कुर्वात् । दधीति सदधिराजतं पात्रं सितोदाख्यं सरः ।

संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण

शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सवस्त्रम् ।

पुष्पैश्च हेमवरपादपशेखरं त-

माकारयेत्कनकधेनुविराजमानम् ।

माक्षीकभद्रसरसा च वनेन तद्-

द्रौप्येण भास्करवता च युतं विधाय ।

संस्थाप्येति शैलान्तं पूर्वोक्ततिलाचलानुवादकम् । अथेत्यादिः पुनः  
पार्श्वविधिः । माक्षीकेति समधुरूपभद्राख्यसरसेत्यर्थः ।

होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भि-

र्दानैरनिन्द्यचरितः कृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ।

पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं

कार्यं तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च ॥

ब्रह्माण्डे—

इन्द्राद्या लोकपालाश्च तेषां होमो विधीयते ।

तलिङ्गैश्चैव मन्त्रैश्च समिद्भिरथवा तिलैः ॥

पौरुषेण तु सूक्तेन ब्रह्मादीनां विधीयते ।

तथा व्याहृतिभिर्होमस्तिलैराज्येन चैव हि ॥

अष्टशतं तु होतव्यं सर्वकामसमृद्धये । इति ॥



वसुरुद्रादित्यसमुच्चायको लोकपालाश्चेति चकारः । ग्रहादिकामधे-  
न्वन्तानामेकाशीतिदेवतानां तिलयवधृतौदुम्बरसमित्कुशैः पञ्चभिर्द्रव्यैः  
पृथक्त्रयोदशसंख्यया होम इति त्रिपञ्चाशदधिकं सहस्रं सर्वा आहुतयः  
इति दानविवेके । तत्र । तिलैर्यवधृतेन समित्कुशैरिति पृथक्सम-  
स्तया च तृतीयया साधनवैषम्यात् । समित्कुशैरिति द्वन्द्वापेक्षया कर्म-  
धारयस्य लघुत्वात् । ब्रह्माण्डवचोविरोधात्त्रिपञ्चाशदधिकसहस्रसं-  
ख्यायाः प्रचयशिष्टायाः कथमप्यसङ्गतेश्च । समिधश्च कुशा इति कर्म-  
धारयः । तेन तिलानां पृथक्साननता यवधृतयोर्व्यासक्ता, समस्तयो-  
स्तृतीयाश्रुतेः । कुशानां तु पृथगिति त्रीण्येव होमसाधनानि । तैः  
प्रत्येकमष्टसंख्यया ग्रहादिद्वात्रिंशद्देवता हुत्वेन्द्रादिदशलोकपालेभ्योऽष्टव-  
सुभ्य एकादशरुद्रेभ्यो द्वादशादित्येभ्यश्च तिलैः समिद्रिर्वा प्रत्येकमष्टसं-  
ख्यया हुत्वा सूर्यकामदेवधनदहंसकामधेनुभ्यः समस्तव्याहृतिभिस्ति-  
लैराज्येन च जुहुयात् । अष्टोत्तरशतं तत्र चतुःपञ्चाशत्तिलैश्चतुः-  
पञ्चाशदाज्येन ।

रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ।  
मन्त्रा वक्ष्यन्ते ।

एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरं चाभिपूजयेत् ।

एवमामन्त्र्य तान्सर्वान्प्रभाते विमले पुनः ॥

स्नात्वाऽथ गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् ।

विष्कम्भपर्वतान्दद्यादृत्विग्भ्यः क्रमशो बुधः ॥

गाश्च दद्याच्चतुर्विंशदथवा दश पार्थिवः ।

शक्तिः सप्त वाऽष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान् ॥

एकां वा गुरवे दद्यात्कपिलां च पयस्विनीम् ।

ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा देया यथासंभवकाञ्चनम् ॥

पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः ।

त एव पूजने मन्त्रास्त एवोपस्कराः स्मृताः ॥

ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वशः ।

स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते ॥

उपवासी भवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते ।

विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु पार्थिव ॥

दानकालेषु ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फलम् ।



मन्त्राः प्रयोगे ज्ञेयाः ।

अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः ।

धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् ।

मन्वन्तरशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ॥

अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णेन विराजितः ।

विमानेन दिवः पृष्ठमायाति सुरसेवितः ॥

कर्मक्षयाद्राजराज्यं प्राप्नोतीह न संशयः ।

इति धान्यादिशैलदानम् ।

अथ साधारणः प्रयोगः । यजमानः पूर्वोक्तदेशेऽष्टादशहस्तं मण्डपं पूर्ववत्कुर्यात् । तस्य च प्राच्यामुदीच्यां वैकुण्ठं द्वारं तोरणं च, न चत्वारि । कुण्डं चैकमेव प्राच्यामेकहस्तम् । प्राच्यां हस्तमात्रा ग्रहवेदी ॥

अथ शैलनिर्माणम् । मध्ये कुशानास्तीर्थं सहस्रद्रोणमितराजशालिनामकमहात्रीहिमिरुत्तमं तदद्वेन मध्यमं द्रोणशतत्रयेणाधममिति मेरुं शक्त्या कल्पयेत् । द्रोणं परिभाषायामुक्तम् । मेरुरूपेण मध्ये कल्पवृक्षम् । प्रागादिदिक्षु हरिचन्दनमन्दारसन्तानपारिजातान् । अशक्तौ मन्दारकल्पवृक्षपारिजाततरवः स्थाप्याः । शर्कराचले तु सन्तानहरिचन्दनावावश्यकौ । पूर्वादिदिक्षु ब्रह्मविष्णुरुद्रसूर्यप्रतिमाः पक्षिसंघान्मुनिसंघांश्च । तथा प्रागादिदिक्चतुष्टये क्रमेण मुक्ताफलहीरकैर्गोमेदपुष्परागैर्मार्कतनीलरत्नैर्वेङ्कटपद्मरागैः समसंख्याकैर्भूषितं शृङ्गचतुष्कम् । तद्वहिर्दिगष्टके रौप्यमिन्द्रादिलोकपालप्रतिमाष्टकम् । समन्तांश्च्रीखण्डैर्लतानां स्थाने प्रवालानि । शिलानां शुक्तीः प्रागादिषु मेघानां श्वेतपीतकर्तुररक्तवस्त्राणि, वंशानामिक्षून् । जलस्य घृतम् । गन्धपुष्पनाजाफलानि च परितः संस्थाप्य पञ्चवर्णवितानकं तथैव याम्ये चोपरि बध्नीयात् । ततो यवैर्मैरोश्च षोडशांशेन प्राच्यां मन्दरम् । तदुपरि नररूपं गणत्रयं कदम्बं च सौवर्णं कदम्बमूले द्वैमः कामदेवः । अरुणोदसरःस्थाने दुग्धपूर्णरौप्यपात्रम् । रौप्यं चैत्ररथाख्यं वनं गन्धपुष्पफलवस्त्राणि च स्थापयेत् । याम्ये मेरुषोडशांशगोधूममयं गन्धमादनं तदुपरि सौवर्णजम्बूवृक्षं तन्मूले सौवर्णमुदङ्मुखं धनदं मानससरःस्थाने सघृतं रौप्यपात्रं रूप्यं गन्धर्वाख्यं वनं तानाफलवस्त्रमाल्यानि च स्थाप-



येत् । पश्चिमे मेहं षोडशांशतिलमयं विपुलपर्वतं तदुपरि सौवर्णं पिप्पलं तन्मूले प्राङ्मुखसौवर्णहंसप्रतिमां सितोदसरःस्थाने पयोदधिपूर्णरौप्यपात्रं रौप्यं वैभ्राजवतं वस्त्रफलमात्यानि च स्थापयेत् । उत्तरे मेहं षोडशांशमितमावैः सुपार्श्वपर्वतं तदुपरि सौवर्णवटं तन्मूले दक्षिणाभिमुखीं सवत्सां सुवर्णधेनुं भद्रसरःस्थाने मधुपूर्णरौप्यपात्रं रूप्यं सावितवतं वस्त्रफलादि च स्थापयेत् । एवं वक्ष्यमाणपर्वतेष्वपि मेरुद्रव्यचतुर्थांशेन लवणादिद्रव्येण प्रागादिषु विष्कम्भादिपर्वता ज्ञेयाः ॥

अथ यजमानोऽद्येत्याद्युत्तवा, अप्सरोगन्धर्वयुतविमानकरणकस्वलो-  
कगमनसाग्रमन्वन्तरशतावधिकालदेवलोकवासोत्तरभूलोकराजत्वकामः,  
ईश्वरप्रीतिकामो वा श्रो धान्यपर्वतदानमहं करिष्ये इतिसङ्कल्प्य गणे-  
शपूजास्वस्तिवाचनमातृपूजानान्दीआद्धाचार्यैर्विग्वरणतन्मधुपर्कपूजनम-  
ण्डपपूजनाचार्यविनियोगान्तं सामान्यप्रयोगोक्तं कुर्यात् । आचार्योऽपि  
ग्रहादिस्थापनादिकुण्डसमीपस्थितकलशस्थापनान्तं कुर्यात् । अत्रैत्विजः  
प्राक्कुण्डे ग्रहादिद्वात्रिंशद्देवताभ्यस्तन्मन्त्रैस्तिलैः पृथग्यवधृताभ्यां मिलि-  
ताभ्यां कुशैश्चेति त्रिभिः साधनैः प्रत्येकमष्टवारं हुत्वा दशलोकपाले-  
भ्योऽष्टवसुभ्य एकादशरुद्रेभ्यो द्वादशादित्येभ्यश्च प्रत्येकमष्टसंख्यया  
समिद्भिस्तिलैर्वा जुहुयुः । मन्त्रास्तु सामान्यप्रयोगे उक्ताः । ततः पुरुष-  
सूक्तेन ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यः समिद्भिस्तिलैर्वा सूर्यकामदेवधनदहंसकामधेनु-  
भ्यस्तिलैर्घृतेन चाष्टोत्तरशतं जुहुयुः ' तत्र चतुःपञ्चाशत्तिलैश्चतुःपञ्चाश-  
द्घृतेनेति । ततो यजमानो मेरुमावाह्य पूजयेत् । तत्र मन्त्राः—

त्वं सर्वदेवगणधामनिधिर्विरुद्धमस्मद्गृहेऽप्यमरपर्वत नाशयाशु ।

क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमानः संपूजितः परमभक्तिमता मयाद्य ॥

त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः ।

मूर्तामूर्तं परं बीजमतः पाहि सनातन ॥

यस्मात्त्वं लोकपालानां पाहि त्वं विश्वमन्दिरम् ।

रुद्रादित्यवसूनां च ततः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च शिरस्तव ।

तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥

अथ मन्दरस्य—

यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वप्रमुखेन च ।

शोभसे मन्दर क्षिप्रमलं तुष्टिकरो भव ॥



अथ गन्धमादनस्य—

यस्माच्चूडामाणेर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन ।  
गन्धर्ववनशोभावाँस्ततः कीर्तिर्दृढाऽस्तु मे ॥

अथ विपुलस्य—

यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ।  
हिरण्मयाश्वत्थशिरास्तस्मात्पुष्टिर्दृढाऽस्तु मे ॥

अथ सुपार्थस्य—

उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात्सावित्रेण वनेन च ।  
सुपार्थ शोभसे नित्यमतः श्रीरक्षयाऽस्तु मे ॥

ततः सर्वैर्जागरणे कृते स्नानादि कृत्वा कुण्डसमीपस्थकलशजलैर्यज-  
मानमभिषिञ्च्येयुः । ततः कर्ता गृहीतकुसुमो मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य उप-  
तिष्ठेत् । मन्त्रास्तु—

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।  
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते ॥  
अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः ।  
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नमो नमः ॥

इत्युपस्थाय पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य नमस्कृत्य प्राङ्मुख उपविश्योद-  
कुमुखेभ्यो गुर्वादिभ्यः क्रमेण गिरीन्दद्यात् । प्रयोगस्तु, 'अद्येत्यादि  
देशकालकीर्तनान्तेऽमुगोत्रायामुकवेदायामुकशाखाध्यायिनेऽमुकशर्मणे  
गुरवेऽप्सरोगन्धर्वगणयुतविमानकरणकस्वर्लोकगमनानन्तरसाममन्वन्त-  
रशतावधिसमयदैवलोकनिवासोत्तरभूलोकराजत्वप्राप्तिकामः इमं धान्य-  
मेरुं सौवर्णमन्दराद्रिं वृक्षपञ्चकसौवर्णब्रह्मविष्णुरुद्रार्कप्रतिमायुक्तमुक्ता-  
हीरकादिभूषितरौप्यमयशृङ्गचतुष्कशोभितं रूप्यमयेन्द्रादिलोकपालप्र-  
तिमं रौप्यमयनितम्बान्वितमिधुवंशावृतकन्दरं दिक्चतुष्टयस्थापितरौ-  
प्यपात्रस्थितघृतोदकप्रस्रवणं दिक्चतुष्टयस्थापितशुक्लीतर्कचरुररक्तवस्त्रा-  
म्बुधरं नानाफलमाख्यवितानाद्युपकरणसहितं तुभ्यं संप्रददे न मम' इति  
तद्वस्ते दद्यात् । स च 'ॐ स्वस्ति' इति प्रतिगृह्य स्वशास्त्रीयां  
कामस्तुतिं पठेत् । ततः 'कृतैतद्दानप्रतिष्ठार्थं इमा गास्तुभ्यं दक्षिणा-  
त्वेन संप्रददे न मम' इति दद्यात् । तत्र 'चतुर्विंशतिपक्षे अष्टौ गा  
गुरवै, चतस्रश्चतस्रश्च ऋत्विग्भ्यः' दशपक्षे षड् गुरवै, एकैकां



ऋत्विग्भ्यः, अष्टसप्तपक्षयोश्चतस्रस्तिस्त्रो वा गुरवे, एकैकां ऋत्विग्भ्यः  
 पञ्चपक्षे सर्वेभ्य एकैकाम्, एकपक्षे गुरव एव तां कपिलाम्, ऋत्विग्भ्यः  
 सुवर्णं, इति मदनादयः । एवं पूर्वस्थितं मन्दराख्यविष्कम्भगिरिं यवमयं  
 सौवर्णं नानाफलभद्रकदम्बतन्मूलस्थसौवर्णकामदेवप्रतिममरुणोदसरः-  
 स्थानीयक्षीरपूरितरौप्यपात्रं रौप्यवटितचैत्ररथवनवल्हनानाफलादियुतं  
 तुभ्यमृत्विजे संप्रददे न मम इति दद्यात् । इमं दक्षिणस्थितगोधूममयं  
 गन्धमादनं विष्कम्भपर्वतं सौवर्णजम्बूवृक्षमूलस्थितसौवर्णकुवेरप्रतिमा-  
 न्वितं मानससरःस्थानीयघृतपूरितरौप्यपात्रं रूप्यवटितगन्धर्ववनवल्ह-  
 नानाफलमाल्यवितानादियुतं तुभ्यम्, इति दद्यात् । इमं पश्चिमस्थितं  
 तिलमयं विपुलाख्यं विष्कम्भपर्वतं सौवर्णपिप्पलतन्मूलस्थितसौवर्णहं-  
 सप्रतिमान्वितं सितोदसरःस्थानीयदधिपूरितरजतपात्रं रजतघटितवै-  
 भ्राजवनवल्हफलादियुतं तुभ्यम्, इति दद्यात् । इममुत्तरस्थितं माषमयं  
 सुपार्श्वीख्यं विष्कम्भपर्वतं हैमवटतन्मूलस्थितहैमधेनुप्रतिमायुतं भद्रसरः-  
 स्थानीयमधुपूरितरौप्यपात्रं रौप्यवटितसावित्रवनवल्हफलादियुतं तुभ्यम्,  
 इति दद्यात् । लवणादिदानपक्षे प्रयोगे धान्यपदस्थाने लवणादिपदं  
 प्रक्षेप्यम् । तत्तत्फलानि तत्र तत्र वक्ष्यामः । आचार्याद्यनुज्ञयाऽन्ये-  
 भ्योऽपि दानपक्षे युष्मभ्यमन्येभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः संप्रददे, इति दद्यात् ।  
 ततो ग्रहवेद्यां यजमानो देवताः संपूज्य नमस्कुर्यात् । गुरुस्तान्वि-  
 सर्जयेत् । यजमानस्तु मण्डपादिग्रहप्रतिमादि गुरवे प्रतिपाद्य ब्राह्म-  
 णान्संभोज्य भूयसीं दक्षिणां दत्त्वा 'यस्य स्मृत्या इति प्रमादात्कुर्वताम्'  
 इति चोक्त्वा विष्णुं स्मृत्वा कर्मेश्वरे समर्प्य विप्राशिषो गृहीत्वा  
 सुहृन्मित्रादियुतो भुञ्जीत ।

इति धान्यादिमेरुसाधारणप्रयोगः ।

अथ लवणाचलः ।

पादौ—

उत्तमः षोडशद्रोणः कर्तव्यो लवणाचलः ।

मध्यमः स्यात्तदूर्ध्वेन चतुर्भिरधमः स्मृतः ॥

वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादूर्ध्वं तु कारयेत् ।

चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान्कारयेत्पृथक् ॥



अत्र पृथगित्युक्ते प्रत्येकं मेरुद्रव्यचतुर्थांशपरिमितेन लवणेन विष्कम्भपर्वतचतुष्कम् । अयं च न्यायः सर्वविष्कम्भगिरिषु इति मदनः । युक्तं तु चतुर्थांशेनेति, विधेयचतुर्थांशगतैकत्वविवक्षयैकस्यैव चतुर्थांशेन चत्वारोऽपि विष्कम्भाचलाः कार्याः । पृथक्ता तु गिरिगताऽनूयते न चतुर्थांशगता विधीयते इति ।

विधानं पूर्ववत्कुर्याद्ब्रह्मादीनां च सर्वदा ।

तद्वद्धेमतरुन्सर्वाल्लोकपालान्निवेशयेत् ॥

सरांसि कामदेवादींस्तद्वच्चित्रं निवेशयेत् ।

पूर्ववद्धान्याचलवत् ।

सौभाग्यरससंभूतो यतोऽयं लवणो रसः ।

तदात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नमो नमः ॥

यस्मादत्र रसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना ।

प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥

विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्द्धनम् ।

तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥

अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम् ।

उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम् ॥

कल्पपर्यन्तमुमालोकप्राप्तिसमनन्तरपरमगतिप्राप्तिकामः ईश्वरप्रीतिकामो वा लवणाचलदानं करिष्ये इति संकल्पवाक्यम् । सकलपापक्षयसुरपूजितलोकप्राप्तिपूर्वककल्पावध्युमालोकनिवाससमनन्तरपरमगतिकामः इति मदनः । तन्मूलं तु चिन्त्यम् ।

अथ गुडपर्वतः ।

पादौ—

अथातः क्षंप्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम् ।

यत्प्रदानान्नरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितम् ॥

उत्तमो दशभिर्भारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः ।

त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदद्धेनाल्पवित्तवान् ॥

भारः पलसहस्रद्वयम् । तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः इत्यमरः ।



तद्वदामन्त्रणं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम् ।  
 विष्कम्भपर्वतास्तद्वत्सरांसि वनदेवताः ॥  
 होमं जागरणं तद्वलोकपालाधिवासनम् ।  
 धान्यपर्वतवत्कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरश्च जनार्दनः ।  
 सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥  
 प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा ।  
 तथा रसानां प्रवरः सदैवेश्वरसो मतः ॥  
 मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददस्व गुडपर्वत ।  
 यस्मात्सौभाग्यदायिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत ॥  
 निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा ।  
 अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् ॥  
 पूज्यमानः स गन्धर्वैर्गौरीलोके महीयते ।  
 पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥  
 आयुरारोग्यसंपन्नः शत्रुभिश्चापराजितः ।

अत्र सकलपापक्षयोत्तरं गन्धर्वपूज्यमानत्वपूर्वककल्पशतावधिगौरी-  
 लोकप्राप्त्यनन्तरं संपन्नापराजितायुरारोग्यपूर्वकसप्तद्वीपाधिपतित्वकामः  
 ईश्वरप्रीतिकामो वा इति सङ्कल्पे विशेषोऽन्यत्सर्वं पूर्ववत् ।

### अथ सुवर्णाचलः ।

पाद्ये—

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम् ।  
 यस्य प्रसादाद्भवनं वैरिभ्यं याति मानवः ॥  
 उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः ।  
 तदर्द्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः ॥  
 दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः ।  
 धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्याद्राजसत्तम ॥  
 विष्कम्भशैलौस्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत् ।  
 नमस्ते ब्रह्मगर्भाय ब्रह्मबीजाय वै नमः ॥  
 यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय ।  
 यस्मादभेरपत्यं त्वं यस्मात्तेजो जगत्पतेः ॥



हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम ।  
 अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥  
 स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम् ।  
 तत्र कल्पशतं तिष्ठेत्ततो याति परां गतिम् ॥

अत्र 'गुर्वादिभ्यो मेर्वादिदानमल्पद्रव्यविषयम्, बहुद्रव्ये तु तुला-  
 पुरुषवदर्थं चतुर्थं वांशं गुरवेऽन्यत्तु तदाज्ञयाऽन्येभ्योऽपि विशिष्टेभ्यो  
 देयम्' इति हेमाद्रिः । अत्र 'सकलपापक्षयोत्तरशतकल्पावध्यानन्दका-  
 रकब्रह्मलोकभोगानन्तरपरमगतिकामः' इति दानवाक्यम् ।

### अथ तिलाचलः ।

पाद्ये—

उत्तमो दशभिर्द्रोणैः पञ्चभिर्मध्यमो मतः ।  
 त्रिभिः कनिष्ठो राजेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥  
 पूर्ववचापरं सर्वं वृक्षविष्कम्भकादिकम् ।  
 दानमन्त्रान्प्रवक्ष्यामि यथा च मुनिपुङ्गव ॥  
 यस्मान्मधुवने विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः ।  
 तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छं नो भवत्विह ॥  
 हव्यकव्येषु यस्माच्च तिलैरेवाभिरक्षणम् ।  
 भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तु ते ॥  
 इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् ।  
 स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥  
 दीर्घायुष्यमवाप्नोति पुत्रं पौत्रं च मानवः ।  
 पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥

'सकलपापक्षयदीर्घायुष्यपुत्रपौत्रसमन्वितानन्तरपितृदेवगन्धर्वपूर्वकपू-  
 ज्यमानत्वपूर्वककुललोकगमनसमनन्तराक्षयवैष्णवपदप्राप्तिकामः' इति दान-  
 वाक्यम् ।

### अथार्द्धोदयव्रतं तिलपर्वतदानम् ।

स्कान्दे—

पूर्वाह्ने सङ्गमे स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः ।  
 सर्वपापविशुद्ध्यर्थं नियमस्थो भवेन्नरः ॥



नियममन्त्रस्तु—

त्रिदैवत्यव्रतं देवाः करिष्ये भुक्तिमुक्तिदाः ।  
भवन्तु सन्निधौ मेऽद्य त्रयो देवास्त्रयोऽग्रयः । इति ॥  
ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णपलसंख्यया ।  
प्रतिमास्तु प्रकर्तव्यास्तद्वर्जं द्विजोत्तमाः ॥  
साग्रं शतत्रयं शम्भोर्द्रोणानां तिलपर्वतः ।  
ब्रह्मविष्णुशिवप्रीत्यै दातव्यं तु गवां त्रयम् ॥  
हिरण्यभूमिधान्यादिदानं विभवसारतः ।  
मध्याह्ने तु नरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥  
तिलपर्वतमध्यस्थं पूजयेद्देवतात्रयम् ।

आदौ ब्रह्मपूजा ।

नमो विश्वसृजे तुभ्यं सत्याय परमात्मने ।

देवाय देवपतये यज्ञानां पतये नमः ॥ अनेन मन्त्रेण सर्वा पूजा ।

अथाङ्गपूजा—ॐ ब्रह्मणे नमः पादौ पूजयामि । हिरण्यगर्भाय० ऊरु-  
भ्याम्० । परमात्मने० जङ्घाभ्याम् । वेधसे० गुह्ये । पद्मोद्भाय०  
वस्तौ । हंसवाहनाय० कटिदेशे । शतानन्दाय० वक्षसि । सावित्रीपतये०  
बाहुषु । ऋग्वेदाय० पूर्वे वक्त्रे । यजुर्वेदाय० दक्षिणे । सामवेदाय०  
पश्चिमे । अथर्ववेदाय० उत्तरे । चतुर्वक्त्राय० शिरसि । हंसाय नमः ।  
कपालाय नमः । ततो लोकपालादिपूजनं स्वमन्त्रैः ।

हिरण्यगर्भं पुरुषं प्रधानव्यक्तरूपयः ।

प्रसादमुखो भूत्वा पूजां गृह्णन्मोऽस्तु ते ॥ इति प्रार्थना ।

अथ विष्णोः । अनन्ताय नमः पादौ । विश्वरूपाय० ऊरुभ्याम् ।  
मुकुन्दाय० जानुभ्याम् । गोविन्दाय० जङ्घाभ्याम् । प्रद्युम्नदेवाय० गुह्ये ।  
पद्मनाभाय० नाभौ । लम्बोदराय० उदरे । कौस्तुभवक्षसे० वक्षसि ।  
चतुर्भुजाय० बाहुषु । विश्वतोमुखाय० वदने । शतसहस्रशिरसे० मौलौ ।

आदित्यचन्द्रनयन दिग्बाहो दैत्यसूदन ।

पूजां दत्तां मया भक्त्या गृहाण करुणापर ॥

इति विष्णुप्रार्थनम् ।

अथ शिवस्य ।

महेश्वर महेशान नमस्ते त्रिपुरान्तक ।



जीमूतकेशाय नमो नमस्ते वृषभध्वज ॥  
 ईशानाय नमः पादौ जङ्घाभ्यां चन्द्रशेखरम् ।  
 जानुभ्यां पशुपतिर्देवश्वोरुभ्यां शङ्करः स्मृतः ॥  
 उमाकान्ताय गुह्ये तु नाभौ वै नीललोहितः ।  
 उदरे कृत्तिवासाश्च वस्त्रे नागोपवीतिने ॥  
 अन्धकारे प्रसन्नात्मा नमो लोकान्तकाय च ।  
 पूजां दत्तां मया भक्त्या गृहाण वृषभध्वज ॥  
 इतिमद्देशप्रार्थना ।

इति पूजाक्रमः प्रोक्तो मन्त्रैरेतैः प्रयत्नतः ।  
 आचार्यं पूजयेद्भक्त्या पूजालङ्कारभूषणैः ॥  
 हस्तमात्रं कर्णमात्रं पीठं छत्रं कमण्डलुम् ।  
 श्वेतवस्त्रयुगं देयं ब्रह्मणे सर्वमूर्तये ॥  
 पीतवस्त्रयुगं विष्णोर्लोहितं शङ्करस्य तु ।  
 पञ्चामृतेन स्नपनं पूजनं कुसुमैः स्वकैः ॥  
 कमलैस्तुलसीपत्रैर्वित्त्वपत्रैरखण्डितैः ।  
 तत्कालसंभवेर्दिव्यैः पूज्या देवा यथाक्रमम् ॥  
 यथाशक्त्या प्रकर्तव्यं व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।  
 जीवितं प्राणिनामेतदनित्यं निश्चितं यतः ॥  
 अथ व्रतस्य करणविधानं शृणु तत्त्वतः ।  
 देवतात्रयमुद्दिश्य शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥  
 प्रजापतये विश्वकर्मणे रुद्राय नमो नमः ।  
 इत्यनेनैव मन्त्रेण वह्निं संस्थाप्य भक्तितः ॥  
 ततो ब्रह्मविष्णुशिवानां नाममन्त्रेणाष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा  
 तिलहोमः ।

अथ होमावसाने तु गां च दद्यात्पयस्विनीम् ।  
 हेमशृङ्गीं रूप्यखुरां घण्टाभरणभूषिताम् ॥  
 ताम्रपृष्ठां कांस्यदोहां सर्वोपस्करसंयुताम् ।  
 संदक्षिणां शुभां पुण्यां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 तेन दत्तं हुतं जप्तमिष्टं यज्ञे सहस्रधा ।  
 कृतकृत्यो भवेद्विप्रो व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥  
 इत्यर्द्धोदये तिलाचलदानम् ।



## अथ कार्पासाचलः ।

पाद्ये—

कार्पासपर्वतस्तद्विंशद्भारैरिहोदितः ।  
 दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः कनिष्ठः पञ्चभिः स्मृतः ॥  
 भारेणाल्पधनो दद्याद्विंशत्तशाठ्यविवर्जितः ।  
 धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य मुनिसत्तम ॥  
 प्रभातायां तु शर्वर्या दद्यादिदमुदीरयन् ।  
 त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा ॥  
 कार्पासाचल तस्मात्त्वमघौघध्वंसनो भव ।  
 एवंकार्पासशैलेन्द्रं यो दद्यात्पर्वसन्निधौ ॥  
 रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह ।

सकलपापक्षयपूर्वककल्पावधिरुद्रलोकनिवासानन्तरभूलोकराजत्व-  
 कामः । इति दानवाक्यम् ।

## अथ घृताचलः ।

पाद्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि घृताचलमुत्तमम् ।  
 तेजोमयमिदं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥  
 विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद्घृताचलः ।  
 मध्यमस्तु तदूर्ध्वेन तदूर्ध्वेनाधमः स्मृतः ॥  
 अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः ।

कुम्भः पलसहस्रात्मकः परिमाणविशेषः ।

विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत् ।  
 शालितन्दुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् ॥

अत्र तु कुम्भः पात्ररूप एव, स च प्रायो घृतस्य द्रवत्वेन तद्धारण-  
 योग्यपरिमाणः, तदुपरि च तन्दुलपात्रम् । एवं विष्कम्भाचलेष्वपि  
 एतदभिप्रायेणैव पात्राणीति बहुवचनम् ।

कारयेत्संहतान्सर्वान्यथाशोभं विधानतः ।  
 वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः ॥  
 धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते ।



रत्नाचलः ।

२३६

अधिवासं च कुर्वीत तद्वद्धोमं सुरार्चनम् ॥  
 प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे विनिवेदयेत् ।  
 घृताचलमिति शेषः ।

विष्कम्भपर्वतांस्तद्वट्विगभ्यः शान्तमानसः ।  
 प्रयोगाद्घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसः ॥  
 तस्माद्घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामन्न शङ्करः ।  
 यच्च तेजोमयं ब्रह्म घृते सच्च व्यवस्थितम् ॥  
 घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर ।  
 अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमम् ॥  
 महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शाङ्करम् ।  
 हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ॥  
 विमानेनार्कवर्णेन सिद्धविद्याधरार्चितः ।  
 विचरेत्पितृभिः सार्द्धं यावदाभूतसंप्लवम् ॥

अत्र सकलपातकनाशनपूर्वकहंससारसयुक्तकिङ्किणीजालमाल्यर्कवर्ण-  
 विमानकरणकशङ्करलोकागमनपूर्वकसिद्धविद्याधरार्चितत्वविशिष्टपितृस-  
 हितभूतसंहाराऽवधिकविचरणकामः, इति दानवाक्यम् ।

अथ रत्नाचलः ।

पाद्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् ।  
 मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादिहोत्तमः ॥  
 मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिंशता चाधमः स्मृतः ।  
 चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समन्ततः ॥  
 पूर्वेषु वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः ।  
 वज्रगोमेदैरित्यनन्तरं मन्दर इति शेषः ।  
 पद्मरागयुतैः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः ।  
 वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात्संमिश्रो विपुलाचलः ॥  
 पद्मरागैः ससौपर्णैरुत्तरेण तु विन्यसेत् ।

सुपार्श्वमिति शेषः । वज्रगोमेदैः समसंख्यः । समं स्यादश्रुतित्वात्  
 इति न्यायात्, एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् ।



धान्यपर्वतवच्छेषमत्रापि परिकल्पते ।  
 तद्वावाह्यं कुर्याद्ब्रह्मदेवांश्च काञ्चनान् ॥  
 पूजयेत्पुष्पानीयैः प्रभाते च विसर्जनम् ।  
 दानानन्तरमिति शेषः ।  
 पूर्ववद्गुरुकृतिभ्य इमान्मन्त्रानुदीरयेत् ।  
 गुरुकृतिभ्यो दानायेति शेषः ।

यथा देवगणाः सर्वे रत्नेष्वेव व्यवस्थिताः ।  
 त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल ॥  
 यस्माद्रत्नप्रसादेन वृष्टिं प्रकुरुते हरिः ।  
 महारत्नप्रसादेन तस्मान्नः पाहि सर्वतः ॥

अत्राप्युपक्रमादारभ्य विसर्जनादीनां व्युत्क्रमोक्तावपि चान्यपर्वतय-  
 दातिदेशिकः क्रमो ज्ञेयः ।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमहागिरिम् ।  
 स याति वैष्णवं लोकममरेश्वरपूजितः ।  
 यावत्कल्पशतं साग्रं वसेदिह नराधिप ।  
 रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥  
 ब्रह्महत्यादिकं यत्स्यादिह वाऽमुत्र वा कृतम् ।  
 तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥

अत्रानेकजन्मकृतब्रह्महत्यादिपापक्षयोत्तरममरेश्वरपूजितत्वपूर्वकसा-  
 प्रकल्पशतावच्छिन्नविष्णुलोकनिवासानन्तररूपारोग्यगुणोपेतसप्तद्वीपा-  
 धिपत्यकामः, इति दानवाक्यम् ।

अथ रौप्याचलः ।

पाद्ये—

दशभिः पलसाहसैरुत्तमो राजताचलः ।  
 पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदूर्ध्वेनाधमः स्मृतः ॥  
 अशक्तौ विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितः सदा ।  
 विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥  
 पूर्ववद्वाजतान्कुर्यान्मन्दरादीन्विधानतः ।  
 कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद्बुधः ॥



शर्कराचलः ।

२३७

कलधौतं काञ्चनम् ।

ब्रह्मविष्णुशिवाङ्कुर्यान्नितम्बोऽत्र हिरण्मयः ।  
 राजतं स्याद्यदन्येषां काञ्चनं स्यात्तदत्र वै ॥  
 शेषं च पूर्ववत्कुर्याद्धौमजागरणादिकम् ।  
 दद्यात्तद्वत्प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥  
 विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य दक्षविभूषणैः ।  
 इमं मन्त्रं पठन्दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥  
 पितॄणां बल्लभं यस्माद्धर्मेन्दोः शङ्करस्य च ।  
 रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात् ॥  
 इत्थं निवेद्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम् ।  
 गवां दशसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 सौमलोके स गन्धर्वैः किन्नराप्सरसां गणैः ।  
 पूज्यमानो वसेद्धीमान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥

अत्र सकलपापक्षयदशसहस्रगोदानफलावाप्तिपूर्वकगन्धर्वकिन्नराप्स-  
 रोगणपूज्यमानत्वविशिष्टयावदाभूतसंप्लवसौमलोकनिवासकामः, इति  
 दानवाक्यम् ।

अथ शर्कराचलः ।

पाद्ये—

अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम् ।  
 यस्य प्रसादाद्विष्ण्वर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा ॥  
 अष्टभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः ।  
 चतुर्भिर्मध्यमस्तद्वज्राराभ्यामधमः स्मृतः ॥  
 भारेण वाऽर्द्धभारेण कुर्याद्यः स्वल्पवित्तवान् ।  
 विष्कम्भपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः ॥  
 धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्यामेरसंयुतम् ।  
 मेरोरुपरि तद्वच्च स्थाप्यं हेमतरुत्रयम् ॥  
 मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः ।  
 एतद्वृक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि निवेशयेत् ॥  
 हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपश्चिमभागयोः ।  
 निवेशयौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले ॥



मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्तः सदा भवेत् ।  
 गन्धमादनभृङ्गे च धनदः स्यादुदङ्मुखः ॥  
 प्राङ्मुखो वेदमूर्तिश्च हंसः स्याद्विपुलाचले ।  
 हैमी सुपार्श्वे सुरभिर्दक्षिणाभिमुखी भवेत् ॥  
 धान्यपर्वतवत्सर्वमावाहनमखादिकम् ।  
 कृत्वाऽथ गुरवे दद्यान्मध्यस्थं पर्वतोत्तमम् ॥  
 ऋत्विगभ्यश्चतुरः शैलानिमान्मन्त्रानुदीरयेत् ।  
 सौभाग्यामृतसारोऽयं परमः शर्कराचलः ॥  
 तन्ममानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ।  
 अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः ॥  
 देवानां तत्समुदयं पाहि नः शर्कराचल ।  
 मनोभवधनुर्मध्यादुद्धूता शर्करा यतः ॥  
 तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ।  
 यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति शिवमन्दिरम् ।  
 चन्द्रादित्यप्रतीकाशमभिरुह्याऽनुजीविभिः ॥  
 स हेमयानमातिष्ठेत्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ।  
 ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥  
 आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् ।  
 भोजनं शक्तितः कुर्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः ॥  
 सर्वत्राक्षीरलवणमश्नीयात्तदनुज्ञया ।

भोजनं ब्राह्मणानाम् । सर्वत्र सर्वशैलेषु । दानात्पूर्वेद्युः कृतोपवासो  
 दानानन्तरं गुर्वाद्यनुज्ञयाऽक्षीरलवणमश्नीयादित्यर्थः ।

सर्वत्रोपस्करान्सर्वान्प्रापयेद्ब्राह्मणालयम् ।

पश्येदिमानल्पधनोऽपि भक्त्या

स्मरेन्मनुष्यैरपि दीयमानम् ।

शृणोति भक्त्याऽथ मतिं करोति

निष्कल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥

दुःस्वप्नं शमनमुपैति पठ्यमाने

शैलेन्द्रे भवभयमेदने मनुष्यः ।



यः कुर्यात्किमु मुनिपुङ्गवेह सम्यक्-  
सन्नात्मा सकलगिरीन्द्रसंप्रदानम् ॥

सन्नात्मा प्रसन्नचित्तः । अत्र सकलदुरितक्षयानन्तरं कल्पशतावधि-  
कविष्णुलोकनिवासानन्तरसप्तद्वीपाधिपत्योत्तरजन्मायुतत्रयावच्छिन्नायु-  
रारोग्यकामः, इति दानवाक्यम् ।

### अथ शिखरदानम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शिखराणां यथाक्रमम् ।  
दानं देयं यथा येन तच्छृणुष्व सनातनम् ॥  
माघशुक्लतृतीयायां मार्गशीर्षस्य वा पुनः ।  
तृतीया वाऽथ वैशाखे शुक्ला या रोहिणीयुता ॥  
प्रौष्ठपद्यां तृतीयायां विशेषेण तु भार्गव ।  
गुडेषुवस्त्रलवणधान्यकाजाजिशर्कराः ॥  
खर्जूरतन्दुलद्राक्षाक्षौद्रैर्मलयजेन च ।  
फलैर्मनोहरै रस्यैः शिखराणि प्रदापयेत् ॥  
तेषामन्यतमं दद्याद्यथाश्रद्धं विधानतः ।  
आत्मप्रमाणं कुर्वीत प्रादेशाभ्यधिकं शुभम् ॥  
भुवि गोमयलिप्तायामिक्षुपत्राणि संस्तरेत् ।  
ततः कुर्वीत शिखरे गौरीस्थानमनुत्तमम् ॥  
द्विहस्तमूलं कर्तव्यं हस्तमात्रं शिरस्तथा ।  
भित्तिरिक्षुदलैः कार्या वेष्टयेद्रक्तवाससा ॥  
दानद्रव्येण तन्मध्यं पूरयेद्भृगुनन्दन ।  
इक्षुयन्त्रकटे गौरीं तस्योपरि निवेशयेत् ॥  
चतुर्भुजां हेममयीं पूजयेत्कुङ्कुमेन तु ।

गौरीलक्षणमुक्तं देवीपुराणे—

गौरीं शङ्खेन्दुवर्णाभां शर्वरीशनिषेविताम् ।  
वृत्तपद्मासनां रस्यां साक्षसूत्रकमण्डलुम् ॥  
वरदोद्यतरूपाढ्यां सर्वमाल्यफलप्रियाम् ।  
वरदोद्यतेति वरदाभयकरामित्यर्थः ।



वेष्टयेत्सूक्ष्मवस्त्रेण देवीं शिखरमेव च ।  
 अष्टाङ्गं पूजयेद्गौरीं मन्त्रैरेतैस्तु भक्तितः ॥  
 नमो भवान्यै पादौ तु कामिन्यै जानुनी नमः ।  
 वामदेव्यै तथा चोरू नाभिं चैव जमत्प्रिये ॥  
 आनन्दायै तु हृदयं नन्दायै पूजयेत्स्तनौ ।  
 सुभद्रायै मुखं पूज्यं ललितायै नमः शिरः ॥  
 एवंपूज्य महादेवीं शिखरानभिमन्त्रयेत् ।  
 यस्मान्निवासः पार्वत्याः शिखर त्वं सुरैर्वृतः ॥  
 तथा निवासः सर्वेषां तस्मान्मां त्राहि भक्तितः ।  
 तस्मान्मां पाहि भगवँस्त्वं गौरीशिखरः सदा ॥  
 एवमामन्त्र्य शिखरं तृतीयायां तदग्रतः ।  
 ततः स्नात्वा प्रभाते तु दद्यान्मन्त्रेण भक्तितः ॥  
 यस्मात्त्वं सर्वभूतानामुपरिष्ठादवस्थितः ।  
 तस्मान्मां पाहि भगवँस्त्वं गौरीशिखरः सदा ॥  
 एवमामन्त्र्य शिखरं तृतीयायां तदग्रतः ।  
 यस्मात्त्वं सर्वभूतानामुपरिष्ठादवस्थितः ॥  
 तस्माच्छिवः प्रीयतां मे तव दानेन सर्वदा ।  
 अर्द्धभागं चतुर्थं वा पञ्चमं चापि वै गुरोः ॥  
 दद्याच्छेषं तु बन्धूनां शिष्टानां स्वजनस्य च ।  
 अनुजीविनां च भूतानां दुर्गतानां च वर्सेतः ॥  
 एवं दत्त्वा तु शिखरं गौर्यां भुञ्जीत वाग्यतः ।  
 संमुक्तकेशः संप्राश्य क्षीरं घृतमथापि वा ॥  
 विधिनाऽनेन यो दद्याद्गौर्याः शिखरमुत्तमम् ।  
 स वसेद्भवने देव्याः कल्पकोटिशतत्रयम् ॥  
 पुण्यक्षयादिहायातो जायते पृथिवीपतिः ।  
 अनेन विधिना देयं विधिहीनं न कारयेत् ॥  
 विधिहीनं कृतं सर्वं तन्न दातुः फलं भवेत् ।  
 इति शिखरदानविधिः ।

अथ प्रयोगः । यजमानो माघशुक्लतृतीयाशुक्लकाले पूर्वाह्ने गणेशपूजा-  
 स्वस्तिवाचनमातृकावसोर्द्धारापूजानान्दीश्राद्धानि करिष्यमाणशिखर-



दानाङ्कतया करिष्ये, इतिसङ्कल्प्य तानि कृत्वा मासपक्षाद्युक्त्वा दौर्भाग्यदौर्गत्याभावपूर्वककल्पकोटिशतत्रयाविच्छिन्नगौरीभवननिवासानन्तर-  
पृथिवीपतित्वकामः श्वो गुडशिखरदानमहं करिष्ये, इतिसङ्कल्प्य तत्र  
पूर्वोक्तप्रकारेण सकृत्त्रिजमाचार्यं ब्रुत्वा संपूज्य लिप्तायां भूमाविक्षुपत्राणि  
संस्तीर्य मूले द्विहस्तविस्तारमुपरिहस्तमात्रविस्तारं चतुरस्रं स्वशरी-  
रार्द्धप्रमाणतः प्रादेशाधिकमुच्चमिक्षुदलमयं कुसूलं कृत्वा तदभ्यन्तरे  
रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य गुडादिदेयद्रव्येणापूर्योपरीक्षुपत्रकटमास्तीर्य तत्र  
क्षौमादिवस्त्रोपरि खण्डेन्दुवर्णाभां चन्द्रमौलिं पद्मासनामक्षसूत्रकमण्डलु-  
धरवराभयकरां गौरीं हैमीं सशिखरां सूक्ष्मवस्त्रेणावेष्ट्य कुङ्कुमादिना  
संपूज्य, भवान्यै नमः पादौ पूजयामि । कामिन्यै० जानुनी ।  
कामदेव्यै० ऊरू । जगच्छिष्यै० नाभिम् । आनन्दायै० हृदयम् ।  
नन्दायै० स्तनौ । सुभद्रायै० मुखम् । ललितायै० शिरः संपूज्य  
पुष्पाञ्जलिमादाय शिखरं त्रिःप्रदक्षिणं कृत्वा—

यस्मान्निवासः पार्वत्याः शिखर त्वं सुरैर्वृतः ।

तस्मान्मां पाहि भगवंस्त्वं गौरीशिखरः सदा ॥

इत्यनुमन्त्र्य पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य नमस्कृत्य जागरणं कुर्यात् । ततः  
प्रभाते कृतनित्यक्रियः शिखरपश्चिमभागमुपविश्य मासपक्षाद्युक्त्वा-  
मुकगोत्रायामुक्तेवायामुक्तेशाखाध्यायिनेऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय दौर्भा-  
ग्यदौर्गत्याभावपूर्वककल्पकोटिशतत्रयाविच्छिन्नगौरीभवननिवासानन्तर-  
पृथिवीपतित्वकामोऽहं तुभ्यमन्येभ्यश्च विप्रेभ्य इदं शिखरं गौरीप्रति-  
मायुतं संप्रददे न ममेति दत्त्वा सुवर्णं च दत्त्वा विप्रान्संभोज्य तद्दिने  
स्वयं क्षीरं घृतं वा वाग्यतः संमुक्तकेशः प्राप्नीयात् । इक्षुवस्त्रादिशिख-  
रदाने तु तत्तद्रव्येण कुसूलपूरणसङ्कल्पवाक्यादौ च तत्तत्प्रयोग इति  
विशेषः, अन्यतुल्यम् । इति गुडादिशिखरदानप्रयोगः ।

### अथ भद्रनिधिदानम् ।

वह्निपुराणे—

पुण्यां तिथिं प्राप्य तु पौर्णमासीं तथोपरागे शशिसूर्ययोर्वा ।

चतुर्थ्युगादिष्वयनद्वये वा प्रबोधने प्रस्वपनेऽथ विष्णोः ॥

कुर्यादथौदुम्बरमेककुम्भं हिरण्यमानेन यथास्वशक्त्या ।



औदुम्बरं ताम्रमयम् । हिरण्यमानेनान्तःप्रक्षेप्तव्यभारादिमितसुवर्ण-  
रत्नादिना यथा कुम्भः पूर्णः स्यादित्यर्थः ।

तथाऽपिधानं च सुराजतं स्याद्विरण्यभारेण तु पूरयेत्तत् ।

तदूर्ध्वतोऽर्धेन तदर्धतो वा स्वशक्तितः स्वर्णपलैः शतेन ॥

तदर्धमर्धेन तु वित्तशक्त्या पलत्रयादूर्ध्वमपि प्रकुर्यात् ।

तत्ताम्रभाण्डे कनकं निधाय सवज्रनीलोत्पलपञ्चरागम् ॥

समुक्तवैडूर्यसविद्रुमं च तद्राजतं पात्रमधोमुखं स्यात् ।

तद्राजतं पूर्वोक्तं पिधानपात्रम् । एवं तु तं भद्रनिधिं स विद्वान्कृत्वा-  
सने प्रावरणोपयुक्ते । प्रावरणमुत्तरच्छदस्तेनोपयुक्ते सहिते ।

कुशोत्तरे दर्पणचामराढ्यं सपादुकोपानहच्छत्रयुक्तम् ।

तत्क्षौमवस्त्रोत्तमयुग्मयुक्तं संपूजयेन्मन्त्रवरैरथैतैः ॥

आदौ तु पञ्चामृतमाप्य विष्णुं संस्त्राप्य संसारहरं समर्च्य ।

तथेश्वरं पावकमेव हुत्वा आमन्त्रयेद्भद्रनिधिं ततस्तम् ॥

श्रीखण्डकपूर्वसकुङ्कुमेन पञ्चाक्षरं नाम श्रियः प्रलिख्य ।

नमस्तथोद्धारयुतं च पात्रे तद्राजतेऽप्येवमथार्चयेत्तम् ॥

मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते ।

एवंपूज्य विधानेन ततो विप्रमथाऽर्चयेत् ।

किरीटाङ्गदनिष्काग्र्यकुण्डलाङ्गुलिभूषणैः ॥

अलङ्कृत्य हरिं यद्वा पीताम्बरधरं ततः ।

पूजयेदच्युतं ध्यात्वा मन्त्रेणानेन भक्तिमान् ॥

मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते ।

एवंपूज्य हरिं ध्यात्वा तं द्विजं विष्णुरूपिणम् ।

ततो भद्रनिधिं दद्यान्मन्त्रेणानेन मानवः ॥

स्वगोत्रोच्चारणेनादौ विष्णोर्नाम महात्मनः ।

यवदर्भतिलैः सार्द्धमुदकं संपरित्यजेत् ॥

पितृसन्तारणार्थाय नित्यानन्दविवृद्धये ।

सर्वाघौघविनाशाय विष्णोर्दानं मया कृतम् ॥

तदग्नेन सरत्नेन धातुत्रययुतेन च ।

सक्षौमाम्बरयुक्तेन सादर्शपादुकेन च ॥

सासनेन सच्छत्रेण चामरौपानहेन च ।



सदानन्दविधानेन प्रीयतां विष्णुरीश्वरः ।।

एवमुच्चार्य तं दद्याद्विजाय हरिरूपिणे ।

गोदानविधिना दद्याद्धेमसंख्यां न कीर्तयेत् ॥

प्रकीर्तितं कोटियुगायुतं फलं प्रगोपितं कल्पगणैर्न संशयः ।

इतीदमाख्याय न कीर्तयेत्सुधीर्निधानमध्ये निहितं च यद्भवेत् ॥

एवंकृते स्यान्मनुजः कृतात्मा भवेन्न च स्यान्मरणं कदाचित् ।

प्रयाति विष्णोः पदमव्ययं तच्छिवात्मकानन्दमयं स साक्षात् ॥

इति भद्रनिधिदानम् ।

अथ प्रयोगः । पूर्वोक्ते काले यजमानस्तिथ्याद्युल्लिख्य सकलपापक्षय-  
सर्वपितृतारणानन्दविवृद्धिशिवात्मकानन्दमयाव्ययविष्णुपदप्राप्तिकामो  
भद्रनिधिदानमहं करिष्ये, इतिसङ्कल्प्य भद्रनिधिं क्षौमवस्त्रद्वयान्वितं  
स्थापयित्वा परितो दर्पणचामरपादुकोपानच्छत्राणि चासाद्य पुरतो  
हरिहरौ स्थापयित्वा संपूज्य प्रागुत्तरे देशे स्वगृहानुसारेणाग्निस्थापनादि  
कर्म कृत्वा घृताक्ततिलैरष्टोत्तरशतादिसंख्यया हुत्वा श्रीलण्डकुङ्कुमक-  
पूरैः प्रणवादि 'ॐ त्रियै नमः' इति पञ्चाक्षरमन्त्रं निधिक्षुम्भे पिधाने  
च लिखित्वा तैर्नैव भद्रनिधिसुपचारैः संपूज्य गृहीतकुसुमाञ्जलिर्भद्रनिधिं  
प्रदक्षिणीकृत्य—

त्वया समस्तामरसिद्धयक्षविद्याधरेन्द्रोरगकिन्नरैश्च ।

गन्धर्वविद्याधरदानवेन्द्रैर्युतं वृतं विश्वमिदं नमस्ते ॥

समप्रसंसारकरी त्वमेव विभोः सदानन्दमयी च माया ।

समरतकल्याणवयःसमाधिहरिप्रिये भद्रनिधे नमस्ते ॥

इत्युपस्थाय पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य नमस्कृत्वादङ्मुखमाचार्यं किरीटा-  
ङ्गवनिष्काश्रयकुण्डलाङ्गुलिभूषणपीतवासश्चन्दनादिभिः संपूज्य तं विष्णु-  
रूपिणं ध्यात्वा कुसुमपाणिः—

भूदेवोऽसि विभो नित्यं नित्यानन्दमयो हरे ।

हर मे दुष्कृतं कर्म कृपाकर नमोऽस्तु ते ॥

भूदेव भगवद्भूम्य भवभङ्गकरेश्वर ।

भवभूतिकरो जिष्णोः प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पाञ्जलिनाऽभ्यर्च्य कुशयवतिलजलान्यादाय अमुकश-  
र्माहं सकलपापक्षयसकलपितृतारणनित्यानन्दविवृद्धिशिवात्मकान-



न्दमयाव्ययविष्णुपदप्राप्तिकामोऽमुकगोत्रायामुकशर्मणेऽमुकशाखाध्या-  
यिने इमं भद्रनिधिं सरत्नपात्रत्रयात्मकं सक्षौमाश्वरयुग्ममादर्शपादुको-  
पानच्छात्रासनोपकरणसहितं विष्णुरूपिणे तुभ्यमहं संप्रददे न मम, इति  
दद्यात् । ततः सुवर्णदक्षिणां दत्त्वा विप्रान्संभोज्य भूयसीं दक्षिणां दत्त्वा  
यस्य स्मृत्या, प्रमादात्कुर्वतां कर्म इत्युक्त्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्, इति  
भद्रनिधिदानप्रयोगः ।

### अथानन्दनिधिदानम् ।

वह्निपुराणे भगवद्ब्रह्मो गुरुर्दं प्रति—

तस्मान्निधानं शृणु सर्वदानतः प्रभावदं नित्यफलप्रदं च ।

ऐश्वर्यदं मोक्षदमक्षयं यद्वातुत्रयोद्भूतमनेकरत्नम् ॥

कारयेत्कार्तिकान्ते वा माघ्यां वा माघवेऽपि वा ।

अयने विषुवे वाऽपि मन्वादिषु युगादिषु ॥

चन्द्रसूर्योपरागे च स्वशक्त्यौदुम्बरं घटम् ।

औदुम्बरं ताम्रमयम् ।

पिधानं राजतं तद्वन्मध्ये सौवर्णमुत्सृजेत् ।

सुवर्णमेव सौवर्णम् ।

नानारत्नवरैः पूर्णं नानावस्त्रैर्निरावृतम् ।

हैमराजतताम्रोत्थैः सरित्कैरपि पूरितम् ॥

रिक्तं रीतिः ।

नानानानाशतादूर्ध्वमयुतादपि शक्तिः ।

एकं नानापदं बहु प्रकारवाचि, परं महाराष्ट्रप्रसिद्धनाणकवाचि ।

शक्त्या पलसहस्रेण शतेनाऽर्द्धशतेन वा ।

तदूर्द्ध्वेन वा राजन्पलाद्धीनं न कारयेत् ॥

कार्यं तद्धि युतं हेन्ना वित्तशाठ्यमकुर्वता ।

उक्तनाणकातिरिक्तं पलादूर्ध्वं पलसहस्राऽवधि शक्त्या हेमापि  
क्षिपेत्, इति मदनः ।

राजतेनाऽथ ताम्रेण रत्नैर्वा वस्त्रसंवृतम् ।

राजतेन पिधानेन ताम्रेणापि घटेन च ॥

नानाधान्योपरि स्थाप्य कल्पोत्तैरर्चयेत्पदैः ।



नानाधान्यान्यष्टादश धान्या । पदानि मन्त्राः ।  
 पौराणिकं पुरस्कृत्य स्वयं वा तदनुज्ञया ।  
 पौराणिको गुरुः ।  
 कृतक्रियोऽग्निसान्निध्ये विष्णोरीशस्य चाण्डज ।  
 इमं समुच्चरेन्मन्त्रं कुशपाणिः प्रसन्नधीः ॥  
 मन्त्रः प्रयोगे हेयः ।  
 एवंपूज्य विधानेन नित्यानन्दनिधिं सुधीः ।  
 ससिद्धार्थकदूर्वाभिः सकुशाक्षतचन्दनैः ॥  
 सिद्धार्थकादिभिरानन्दमेवं संपूज्येतियोजना ।  
 तिललाजासुसंपूर्णं भूमावुदकमुत्सृजेत् ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवत्कल्पोक्तेन खगोत्तम ।  
 मन्त्रः प्रयोगे हेयः ।

यशःश्रेयोऽभिवृद्धयर्थं मातापित्रोस्तथात्मनः ।  
 पुराणन्यायमीमांसावेदवादिभ्य एव च ॥  
 एवमुत्सृज्य उदकं विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ।  
 संविभज्य यथाशास्त्रं न कश्चिदपमानयेत् ॥  
 महादानमिदं यस्मात्तस्मादेकोऽपि नार्हति ।  
 अथान्ये केचिदिच्छन्ति समस्तविधिपारगाः ॥  
 यज्ञदानव्रतानां च सोऽप्येकोऽर्हति तद्गृहे ।  
 एवं यः कुरुते दानं नित्यानन्दनिधेः परम् ॥  
 परं पदमवाप्नोति संसारेऽस्मिन्निरन्तरम् ।  
 दानानामप्यशेषाणामनन्तं फलमश्नुते ॥  
 नित्यानन्दविधानस्य प्रदानादपवर्गभाक् ।

इत्यानन्दनिधिदानम् ।

अथ प्रयोगः । तत्र यजमानः पूर्वोक्ते काले कुशतिलयवजललाजा-  
 नादाय सकृदानपक्षे देशकालकीर्तनान्ते निरन्तरपरमपदावाप्तिस्कल-  
 दानजन्यानन्तफलयोगानन्तरापवर्गप्राप्तिकामः वेधःपदाधिकरणासकृद्रा-  
 ज्यकरणोत्तरस्वकर्मशेषसञ्चितत्रेतायुगकालीननिजानुजीविसहिताखिल-  
 गहीराज्यावाप्तिपूर्वकनित्येशानपदप्राप्त्यनन्तरकल्पावधिकानल्पश्रीकवै-  
 द्याधरपदराज्यलाभोत्तराव्ययवैष्णवपदप्राप्तिदीर्घायुष्ट्राविच्छिन्नसन्तान-



काम आनन्दनिधिमादानमहं कर्त्तुं इतिकृतसङ्कल्पः स्वस्तिवाचनमा-  
तृपूजनवृद्धिआद्याचार्यवरणानि कुर्यात् । अत्रानन्दनिध्यासादनपूजादि  
गुरुः कुर्याद्यजमानो वा । तद्यथा राजतपिधानं ताम्रघटरूपमानन्दनिधिं  
नानारत्नहैमरूप्यताम्रमुद्रापलाधिकहेमयुतं सूक्ष्मवस्त्रवेष्टितमष्टादशधा-  
न्योपरि विष्णवादिदेवतासन्निधौ स्थापयित्वा प्रतिष्ठापूर्वकम् “ॐ नित्या-  
नन्दनिधये नमः” इतिमन्त्रेणाभ्यर्च्य सिद्धार्थदूर्वाब्जकुशचन्दनाक्षताना-  
दायानन्दनिधिं प्रदक्षिणीकृत्य—

ॐ नमः सर्वदानन्द सर्वसंपद्विवर्द्धन ।

वर्द्धयास्मान्समृद्धयेह आयुषा यशसा श्रिया ॥

नमस्तेऽनन्तसन्तान सदानन्द सदोदय ।

त्वं सुखं वै कुरुष्वेह सन्तत्या मां धनायुषा ॥

नमो नमः पद्मनिधे धनेश शतक्रतो शङ्कर नैर्ऋतेश ।

शमं नयाऽस्मद्भुरितं हर प्रभो नमो नमस्ते हर शङ्करेश ॥

नमो नमः पाशधराप्रमेय नमोऽस्तु रामाय सुनामधेय ।

नमः समीराय हुताशनाय नमोऽस्त्वनन्ताय कनाशनाय ॥

नमः सुरश्रेष्ठहरीश्वराय नमोऽस्तु सावित्रि शिवे श्रियेति ।

सरस्वतीप्रीतिरतिः क्रियेति पुष्टिश्च तुष्टिस्मृतिशान्तिकीर्ते ॥

सर्वामराणां निधिरप्रमेयस्त्वमेव मन्त्रर्विमुनीश्वराणाम् ।

आधारभूतोऽसि चराचरस्य विश्वस्य यस्मात्प्रणतोऽस्म्यतस्त्वाम् ॥

नमोऽस्तु सौन्दर्यनिधे सुरेश नमोऽस्तु गाम्भीर्यनिधे समुद्र ।

नमो नमः कान्तिनिधान इन्दो तेजोनिधे त्वां प्रणतोऽस्मि भानो ॥

नमः पद्माय भद्राय नमस्ते स्वस्तिकाय च ।

नमः शङ्खाय मणये मणिभद्राय ते नमः ॥

नमो नन्दविवर्ताय नन्दावर्ताय ते नमः ।

नमः कण्टककर्णाय कण्ठावर्ताय ते नमः ॥

नमो नन्दप्रतिष्ठाय नमो हेमप्रियाय च ।

नमो हिरण्यगर्भाय नित्यानन्दाय ते नमः ॥

इत्युपस्थाय पूजयित्वा कुशतिललाजयवाक्षतजलान्यादाय अद्ये-  
त्याद्युक्त्वा—

अद्येह पुण्यकालेऽस्मिन्द्विजदेवाग्निसन्निधौ ।

यशःश्रेयोऽभिवृद्धयर्थं मातापितोस्तथात्मनः ॥



पुराणन्यायमीमांसावेदवादिभ्य एव च ।  
 नमो विद्याविधायिभ्यो नानागोत्रेभ्य एव च ॥  
 विप्रेभ्योऽनेकशर्मभ्यो नित्यानन्दनिधिं परम् ।  
 अहं संप्रददे तेभ्यो नानानानावृतेन च ॥  
 सस्वर्णरौप्यताम्रेण सरत्नेन सवाससा ।  
 सोपस्करेण पुरुषो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥  
 प्रीयतां निधिदानेन श्रीयज्ञपुरुषोऽच्युतः ।

इतिमञ्चैरुदकं भूमौ क्षिप्त्वा विप्रेभ्योऽमुकामुकगोत्रेभ्योऽमुकामु-  
 कनामभ्योऽमुमौदुस्वरं रौप्यपिधानसुवर्णवस्त्राष्टादशधान्यादियुतमानन्द-  
 निधिं निरन्तरेत्यादिप्राप्तिकामः इतिसकृदानपक्षे फलमुल्लिख्यास-  
 कृदानपक्षे तु वेधःपदेत्यादिसन्तानकामः इत्युक्त्वा युष्मभ्यमहं संप्रददे  
 इति दद्यात् । एकस्मै वा दद्यात् । ततः सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा विप्रान्सं-  
 भोज्य भूयसीं दक्षिणां दत्त्वा, यस्य स्मृत्या इति प्रमादादिति चोक्त्वा  
 विष्णुं स्मरेत् । इत्यानन्दनिधिदानप्रयोगः ।

### अथ देवतादानानि ।

तत्र तावद्दशावतारदानम् ।

विश्वामित्रः—

दानानामुत्तमं दानं हैमं विष्णोः स्वरूपकम् ।

तस्मात्पुण्यार्थिना देया हैमा विष्णोः स्वरूपकाः ॥

ते च—

मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः ।

रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की च ते दश । इति ॥

मत्स्यादिस्वरूपाणि विश्वचक्रदाने दर्शितानि ।

यथाशक्त्या प्रकुर्वीत सुवर्णेन विजानता ॥

समेन षोडशेनैव समान्येतानि कारयेत् ।

षोडशेनैव समानीतिमहाभूतघटाख्ये षोडशदाने, प्रादेशाद्बुलशतं  
 यावत्कुर्यात्प्रमाणतः इति यत्प्रमाणमुक्तं तत्प्रमाणकानि मत्स्यादिरूप-  
 काणि भवन्तीत्यर्थः ।

वित्तानुरूपतो राजन्तुल्यमाढ्यदरिद्रयोः ।



संपूज्य नामभित्तैस्तु पुष्पधूपनिवेदनैः ॥  
 भक्तिनम्रः प्रणामान्ते निवेद्य श्रद्धया ततः ।  
 आहूय ब्राह्मणान् राजन्पादौ प्रक्षाल्य यत्नतः ॥  
 उपवेश्यासने सर्वाश्चन्दनेनानुलेपयेत् ।  
 सुगन्धैः कुसुमैश्चैव धूपैर्दीपैस्तथैव च ॥  
 आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।  
 अयने विषुवे चापि द्वादश्यां तु विशेषतः ॥  
 उपोष्यैकादशीं कार्यं धर्मकार्यं च सर्वशः ।  
 अन्यथा नरकं यातीत्येवमाह पितामहः ॥  
 ग्राहकान्विष्णुरूपांश्च अर्हयेत् विमत्सरः ।  
 एकैकं देवरूपं तमेकैकस्य समर्पयेत् ॥  
 अथवा विदुषः सर्वान्दद्यात्संपूज्य मानवः ।  
 नानृतेन कदाचिन्न दद्यात्पापण्डिने तथा ॥  
 एतदुच्चार्य विप्रस्य हरते तोयं क्षिपेत्स्वयम् ॥  
 दशावतारतो राजन्विष्णोरैक्यं स गच्छति ॥  
 महापातकसंसर्गान्मुच्यते तत्क्षणादपि । इति ॥

अद्येत्यादि महापापसंसर्गजदोषनिवृत्त्यर्थं विष्णोर्दशावतारान्दास्ये  
 इति सङ्कल्प्यावतारान्विप्रान्संपूज्य,

देवरूपं मया विप्र कारितं काञ्चनं शुभम् ।

तद्गृहाण प्रदानेन प्रीयतां विश्वरूपधृक् ॥

इतिमन्त्रमुक्त्वा देशकालाद्युक्त्वा अमुकगोत्रायामुकशर्मणोऽमुकरूपं  
 महापापसंसर्गजदोषनिवृत्तिकामस्तुभ्यमहं संप्रददे न मम इति एकै-  
 कमेकैकस्मै दद्यात् । एकस्मै वा सर्वाणि । दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणां च ।  
 इति दशावतारदानप्रयोगः ।

अथ ब्रह्मविष्णुरुद्रदानम् ।

ब्रह्माण्डपुराणे शौनकादिभिः पृष्टेन रोमहर्षणेन शृण्वन्तु मुनयः  
 सर्वे इत्याद्युपक्रम्योक्तम्—

त्रिमूर्तिदानं दानानामुत्तमोत्तममुच्यते ।

विषुवे त्वयने वाऽपि चन्द्रसूर्यग्रहेषु च ॥



नित्यं च पञ्चदश्यां च जन्मक्षेत्रेषु समारभेत् ।  
 देवालये नदीतीरे पुण्येष्वायतनेषु च ॥  
 गृहे वा कारयेद्दानं यत्र भूमिः शुचिर्भवेत् ।  
 चतुरस्यां समां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत् ॥  
 तत्राक्षताभिर्विकिरेत्पुष्पाञ्जलिं समन्ततः ।  
 एकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिगुणा दैर्घ्यतः स्मृता ॥  
 त्रिवेदिका भवेत्तिर्यकश्चेततन्दुलमिश्रिता ।  
 ब्रह्मा च विष्णुर्भगवान्पुरारिर्हिरण्यस्तत्र निवेशनीयाः ।  
 चतुर्भुजाः सायुधभूषणाढ्याः किरीटिनश्चापि यथाक्रमेण ॥  
 एतत्प्रतिमालक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

स्नानार्घ्याद्याचमनीयवस्त्रैर्गन्धादिभिस्तानभिपूज्य भक्त्या ॥  
 प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहरतः प्रणम्य चोद्भास्य ततः प्रदद्यात् ।  
 प्रत्येकमेवं बहुमानपूर्वं संपूज्य दातव्यमनुक्रमेण ॥  
 तथा जगत्सृष्टिकरस्त्वमेव त्वमेव सर्वस्य पितामहोऽसि ।  
 त्वमेव कर्ता जगतां विहर्ता त्वमेव धाता जगतां विधाता ॥  
 त्वत्संप्रदानादनघो यथाऽहं त्वया च सायुज्यमुपैमि देव ।  
 तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने मयि प्रभो देववर प्रसीद ॥  
 त्वया जगद्व्याप्तमिदं समस्तं त्वां विष्णुमेव प्रवदन्ति सन्तः ।  
 त्वत्स्थानि सर्वाणि वदन्ति देव त्वया धृतं विश्वमनन्तमूर्ते ॥  
 त्वत्संप्रदानादनघो भवामि यथा जगत्कारणकारणेश ।  
 तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने मयि प्रभो देववर प्रसीद ॥  
 त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव यस्मात् ।  
 तथाऽसुराणां त्रिपुरञ्च दग्धमेकेषुणा लोकहितार्थमीश ॥  
 त्वद्रूपदानादहमप्यशेषैर्दोषैर्विमुक्तो हि यथा भवेयम् ।  
 तथा कुरु त्वां शरणं प्रपन्ने मयि प्रभो देववर प्रसीद ॥  
 इत्येवमुक्त्वा विधिवद्दाति स याति सायुज्यमथ त्रिमूर्तेः ।  
 यः कारयेद्विप्रवराय तस्मै सुवर्णसंख्यागणितं हिरण्यम् ॥  
 दद्याच्च वासोयुगमादरेण तथा कृते तल्लभते फलं तत् ।

इति त्रिमूर्तिदानम् ।



## अथ द्वादशादित्यदानम् ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

शृणु नारद भद्रं ते दानमादित्यसंज्ञितम् ।  
 यथोक्तं लोकगुरुणा विष्णुना प्रभविष्णुना ॥  
 कर्तुः पापहरं पुण्यमायुष्यं श्रीकरं शुभम् ।  
 आरोग्यं सर्वमङ्गल्यं दुःस्वप्नाद्भुतनाशनम् ॥  
 सर्वशान्तिकरं ह्येतत्सर्वसिद्धिफलप्रदम् ।  
 चक्षुष्यं सर्वरोगघ्नं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥  
 विषुवत्ययने राहुग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।  
 जन्मर्क्षे सौरवारे वा पञ्चदशार्कसंक्रमे ॥

सौरवारे सूर्यसम्बधिनि वारे ।

सप्तम्यां वाऽथ नक्षत्रे सावित्रेऽद्भुतदर्शने ॥  
 दुःस्वप्नदर्शने कुर्याद्दानमादित्यसंज्ञितम् ।  
 देवालये नदीतीरे तडागे वरुणालये ॥  
 अन्येषु पुण्यदेशेषु देवदानं समाचरेत् ।  
 आलिप्य वै द्वादशहस्तदैर्घ्यां क्षितिं यथा गोमयसंयुताभिः ।  
 तस्मिन्सितैस्तन्दुलपुञ्जकैश्च विस्तारयेद्द्वादश पङ्कजानि ॥  
 प्रादेशमात्राणि शुभानि तानि सकर्णिकान्यष्टदलेषु तेषु ।  
 हिरण्यरूपाणि रवेर्विधाय यथाक्रमादुत्तरयोऽपवर्गः ॥  
 प्रत्यङ्मुखान्प्राङ्मुख एव देवांस्तद्वर्णगन्धादिभिरादरेण ।  
 संप्रीयतामित्यथ च क्रमेण प्रत्येकमुच्चार्य तदीयनाम ॥  
 धाता च मित्रश्च ततः क्रमेण मार्तण्डनामा च तथार्यमा च ।  
 शक्रश्च देवो वरुणस्तथाऽसौ भगो विवस्वान्नवमस्तथैषाम् ॥  
 आदित्यनामा सविता तथाऽन्यस्त्वष्टा तथैकादशमश्च तेषाम् ।  
 विष्णुस्तथा द्वादशमः स्वमन्त्रैराराधयेद्देववरान्द्विजांश्च ॥  
 पुरा देवऋषेर्दानं प्रोक्तं कमलयोनिना ।  
 तथा मयाऽपि युष्माकं प्रोक्तं मुनिवरोत्तमाः ॥  
 द्वादशादित्यप्रतिमालक्षणं प्रागुक्तं वेदितव्यम् ।  
 इति द्वादशादित्यदानम् ।



## अथ चन्द्रादित्यदानम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे भगवानुवाच—

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानराजं नराधिप ।  
 यद्वत्वा तु बली राजा शक्रराज्यमवाप ह ॥  
 शक्रश्च बलिराज्यं तु दत्त्वा पुनरवाप ह ।  
 चन्द्रसूर्योपरागेषु अयने विषुवे तथा ॥  
 चन्द्रक्षये च द्वादश्यां वैशाख्यां पुत्रजन्मनि ।  
 कार्तिक्यां च महामाघ्यां सप्तम्यां च यथा तथा ॥  
 चन्द्रादित्यौ तु दातव्यौ सूर्यः सौवर्ण उच्यते ।  
 शुद्धस्य रजतस्यैव मण्डलं हिमरोचिषः ॥  
 द्वादशाङ्गुलवृत्तं तु उभयोरपि मण्डलम् ।  
 वृत्तौ पद्मसमाकारौ मध्ये चैव तु कर्णिका ॥  
 भानुं ताम्रमये पात्रे घृतपूर्णे तु निक्षिपेत् ।  
 सोमं शङ्खे क्षीरपूर्णे उपरि स्थापयेद्बुधः ॥  
 सूर्यं तु रक्तकुसुमैः सोमं शुक्लैस्तथैव च ।  
 आदित्याय सुगन्धं च धूपं चैव प्रदापयेत् ॥  
 सोमस्य गुग्गुलुर्दधौ गन्धः शुक्लैस्तथैव च ।  
 कुङ्कुमं तु पतङ्गाय दीपं चैव घृतेन तु ॥  
 एवंसंपूज्य यत्नेन चन्द्रादित्यौ पृथक्पृथक् ।  
 अमृतमूर्तयै सोमं नमोऽन्तेनैव पूजयेत् ॥  
 खखोल्कायेति वै सूर्यं नमोऽन्तेन पुनः पुनः ।  
 आहूय ब्राह्मणं भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगम् ॥  
 कुटुम्बिनं दरिद्रं च आहिताग्निं तथैव च ।  
 रक्तेन वाससाच्छाद्य कुङ्कुमेनानुलेपयेत् ॥  
 संपूज्य पुष्पधूपैश्च द्विजं सूर्यमिवापरम् ।  
 रविं च चन्द्रविम्बं च घृतस्थं तु निरीक्ष्य वै ॥  
 समर्पयेद्ब्राह्मणाय मन्त्रेणानेन भूमिपः ।  
 रुक्मं च पुष्करं चैव वर्णं पुष्करमेव च ॥  
 त्रयी विद्या च साङ्गा तु यस्याङ्गं विश्वरूपिणः ।  
 न वै दिवाकरो देवः प्रीयतां विप्र मा चिरम् ॥



एवमुच्चार्य भ्रातुं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 क्षीरजं देवदेवं तु द्विजरजं तथैव च ॥  
 अमृतमूर्तिं शीतांशुं ददामि ते द्विजोत्तम ।  
 गायत्र्या चैव सूर्यस्य अर्हणं जायते विभोः ॥  
 सोमं तरत्समन्दीयं शुचिः शुद्धेन तेजसा ।  
 एवंचन्द्रं रविं दत्त्वा बली राज्यमवाप ह ॥  
 सर्वं तेन तु दत्तं स्याद्यो दद्याच्चन्द्रभास्करो ।  
 सर्वं तेन कृतं राजन्सर्वं तेन च संस्तुतम् ॥  
 सर्वं दक्षिण्या चेष्टं संसारे तु नरोत्तमैः ।  
 पूज्यते सिद्धगन्धर्वैर्ऋषिभिर्देवदानवैः ॥  
 इति चन्द्रादित्यदानम् ।

### अथ लोकपालाष्टकदानम् ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

शृणु नारद भद्रं ते दानं सर्वोद्यनाशनम् ।  
 सर्वमङ्गलमायुष्यमारोग्यं शङ्करं शुभम् ॥  
 दानानामुत्तमं दानं सर्वसिद्धिकरं परम् ।  
 करोति दानं नारी वा सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ॥  
 विषुवत्ययने राहुग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।  
 अन्येषु पुण्यकालेषु जन्मक्षेषु विशेषतः ॥  
 देवालये नदीतीरे गृहे वा दानमाचरेत् ।  
 पुण्यदेशेषु सर्वेषु पुराणोक्तेषु नारद ॥  
 चतुरस्रां समां भूमिं लिप्तां गोमयवारिणा ।  
 षट्करं चाष्टदस्तं वा दश द्वादश वा करान् ॥  
 प्राच्योदीच्यश्च कर्तव्या रेखाश्चतस्रकाः स्मृताः ।  
 नव कोष्ठानि तत्र स्युः श्वेततन्दुलपुञ्जकैः ॥  
 सितैरष्टदलेर्युक्तान्कमलान्विन्यसेच्छुभान् ।  
 राजतरुपमयं देवं जगत्कर्तारमव्ययम् ॥  
 तेषां मध्यमकोष्ठेषु कमलस्थं विवेशयेत् ।  
 चन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा ॥  
 वायुं सोमं तथेशानं प्रागादिषु यथाक्रमम् ।



जातरूपमयान्देवानष्टौ स्वायुधसंयुतान् ॥  
 त्रिपलार्वाकसुवर्णास्तु यथाशक्ति विनिर्मितान् ।  
 ब्रह्मणोऽभिमुखान्सर्वान्सर्वेषु विनिवेशयेत् ॥  
 स्वर्णमयं कमलस्थं ब्रह्माणं ब्रह्मलोकपालप्रतिमालक्षणं ब्रह्माण्डदाने  
 द्रष्टव्यम् ।

प्रत्येकं वा समावेष्ट्य संप्रोक्ष्य कुशवारिणा ।  
 योऽसौ कारयिता विप्रस्त्वेवमेतत्समाचरेत् ॥  
 दानकाले तु संप्राप्ते दाता स्नात्वा कुशोदकैः ।  
 प्रसन्नचित्तवदनः परमेष्ठिपुरोगमान् ॥  
 स्वनाममन्त्रैरभितो नमोऽन्तराराध्य गन्धादिभिरादरेण ।  
 विप्रांस्तथाऽभ्यर्च्य यथाक्रमेण संप्रीयतामत्र ममेति चोक्त्या ॥  
 योऽसौ कारयिता विप्रस्तस्मै दद्याच्च दक्षिणाम् ।  
 सुवर्णसंख्यागणितं हिरण्यं चैव वाससी ॥  
 प्रोक्तं देवत्रये दानं लोकशालाह्वयं मया ।  
 किमन्यच्छ्रोतुमिच्छा ते तदिदं वद सांप्रतम् ॥  
 इति लोकपालाष्टकदानम् ।

### अथ नवग्रहदानम् ।

ब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्मोवाच—

ग्रहदानक्रमं वक्ष्ये सर्वसिद्धिकरं परम् ।  
 सर्वशान्तिकरं नृणां सर्वपापप्रणाशनम् ॥  
 विषुवत्ययने राहुग्रहणे शशिसूर्ययोः ।  
 जन्मर्क्षे सौरवारे वा पञ्चदश्यां तथैव च ॥  
 पुण्यकालेषु सर्वेषु पुण्यदेशे विशेषतः ।  
 ग्रहदानं तु कर्तव्यं नित्यं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणा ॥  
 हस्तमात्रं द्विहस्तं वा त्रिहस्तं वाऽथ नारद ।  
 चतुरस्यां समां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत् ॥  
 रेखाः प्राच्य उदीच्यश्च चतस्रस्तास्तथा समाः ।  
 नवकोष्ठेषु पद्मानि विन्यसेच्छ्वेततण्डुलैः ॥  
 आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ।



राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकसुखावहाः ॥  
 एषां हिरण्यरूपाणि कारयित्वा यथाविधि ।  
 त्रिनिष्केणाथवा कुर्याद्यथाशक्त्या दृथक्पृथक् ॥  
 हिरण्यरूपाणि हिरण्यप्रतिमाः । तल्लक्षणान्यत्रैव वक्ष्यन्ते ।  
 आदित्यं मध्यमे कोष्ठे दक्षिणेऽङ्गारकं न्यसेत् ।  
 उत्तरे तु गुरुं विद्याद्बुधमुत्तरपूर्वके ॥  
 मार्गवं पूर्वतो न्यस्य सोमं दक्षिणपूर्वके ।  
 पश्चिमेऽर्कसुतं न्यस्य राहुं दक्षिणपश्चिमे ॥  
 पश्चिमोत्तरतः केतुः सन्निवेश्यो यथाविधि ।  
 तद्वर्णपुष्पगन्धाद्यैरर्चयेत्स्वस्वमन्त्रकैः ॥  
 दानं शूद्रोऽथवा कुर्यात्स्त्री वा तत्र तु नारद ।  
 भूलेपनादि यत्कार्यं सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥  
 स्नानकाले तु संप्राप्ते स्नात्वा कुशतिलोदकैः ।  
 प्रयतो यजमानस्तु धौतवस्त्रः प्रसजधीः ॥  
 अर्चयित्वा स्वयं दद्याद्दहस्करमुखान्प्रहान् ।  
 प्रत्येकमेकं विप्रोऽसौ स्वस्वमन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः पद्मद्युतिः सप्ततुरङ्गवाहः ।  
 दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी मयि प्रसादं विदधातु देवः ॥  
 श्वेताम्बरः श्वेतविभूषणश्च श्वेतद्युतिर्दण्डकरो द्विबाहुः ।  
 चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी श्रेयांसि महां प्रददातु देवः ॥  
 रक्ताम्बरौ रक्तवपुः किरीटी चतुर्भुजो मेघगमो गदामृत ।  
 धरासुतः शक्तिधरश्च शूली सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः ॥  
 पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी चतुर्भुजो दण्डधरश्च हारी ।  
 चर्मासिधूकसोमसुतः सदा नः सिंहाधिरुढो वरदो बुधश्च ॥  
 प्रियङ्गुकलिकाश्यामो रूपेणाऽप्रतिमो भुवि ।  
 सौम्यः सौम्यगुणोपेतः सदाऽस्तु वरदो मम ॥  
 पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी चतुर्भुजो देवगुरुः प्रशान्तः ।  
 दधाति दण्डं च कमण्डलुं च तथाऽक्षसूत्रं वरदोऽस्तु ममम् ॥  
 सुराणां च मुनीनां च गुरुः कनकसन्निभः ।  
 बुद्धिदाता त्रिलोकस्य स मां रक्षतु वाक्पतिः ॥



श्वेताम्बरः श्वेतवपुः किरीटी चतुर्भुजो दैत्यगुरुः प्रशान्तः ।  
 तथाक्षसूत्रं च कमण्डलुं च जपं च विभ्रद्वरदोऽस्तु मह्यम् ॥  
 हेमकुन्दमृणालाभो दैत्यानां परमो गुरुः ।  
 सर्वशास्त्रास्त्रवक्ता च भार्गवो वरदोऽस्तु सः ॥  
 नीलद्युतिः शूलवरः किरीटी गृध्रस्थितस्त्रासकरो धनुष्मान् ।  
 चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रशान्तः स चाऽस्तु मह्यं वरमन्दगामी ॥  
 नीलाऽम्बरः नीलवपुः किरीटी करालवक्त्रः करवालशूली ।  
 चतुर्भुजश्चर्मधरश्च राहुः सिंहासनस्थो वरदोऽस्तु मह्यम् ॥  
 धूम्रो द्विबाहुर्वरदो गदाभृद्गृध्रासनस्थो विकृताननश्च ।  
 किरीटकैयूरविभूषिताङ्गः सदाऽस्तु मे केतुगणः प्रशान्तः ॥  
 इत्युक्त्वा दापयेत्सर्वानादित्यादीन्प्रव्रह्मान् ।  
 पुरुषो वाऽथ नारी वा यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥  
 मध्यमं गुरवे दद्यादन्यस्मै वा प्रदापयेत् ।  
 गुरुरत्र पूजादिकर्ता ।  
 अथवा दक्षिणा देया सुवर्णं वाससी शुभे ।  
 इत्याह भगवान्ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥  
 तथाहमब्रुवं दानं युष्माकं मुनिसत्तमाः ।

इति ग्रहदानम् ।

अथ वारदानानि ।

कान्दे—

आदित्यादिषु वारेषु सहिरण्यः सदैव तु ।  
 यः प्रयच्छति तन्मूर्तीस्तस्य तुष्यन्ति वै ग्रहाः ॥  
 दद्यादादित्यमादित्ये सोमं सोमे कुजं कुजे ।  
 एवं बुधादीन्मन्दे तु राहुकेतुशनैश्चरान् ॥  
 इति वारदानानि ।

अथ शूलदानम् ।

वायुपुराणे—

या निष्कृतिस्तु पापानां कृतानां प्रज्ञया विना ।  
 यत्पाशुपतमाख्यातमस्त्रं देवस्य शूलिनः ॥  
 तस्य प्रदानात्सकलं तत्पापं संप्रणश्यति ।



कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा सितेतिरे ॥  
 कुर्याद्वादशनिष्केण त्रिशूलं लक्षणान्वितम् ।  
 निष्कं चतुष्कः सौवर्णिकः, सौवर्णमात्रं षट्पञ्चाशदधिकशतद्वय-  
 पणमूल्यो वेति पक्षत्रयं शक्त्या ज्ञेयम् ।  
 युगान्तकरणं घोरमघविध्वंसनं परम् ।  
 नानारजोविरचिते चक्रे षडरभूषिते ॥  
 चक्रं षोडशारं परिभाषायामुक्तम् ।  
 नाभौ निधाय संपूर्णं तिलानां ताम्रनिर्मितम् ॥  
 पात्रमाढकसमानं तत्र शूलं न्यसेत्पुनः ।  
 कुर्यात्तेनैव मन्त्रेण तस्मात्पूजामनुक्रमात् ॥  
 तेनैव शूलाय नमः इति मन्त्रेण ।  
 विरूपाक्षं च तत्पार्श्वे कमलोपरि पूजितम् ।  
 अघोरेभ्योऽपि मन्त्रेण पूजान्ते प्रणिपत्य च ॥  
 अघोरमन्त्रस्तु लैङ्गे—

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।  
 सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥  
 विप्रं च ज्ञानिनं तद्वत्संपूज्य मुनिपुङ्गवाः ।  
 प्रदक्षिणं ततो गत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 भगवन्भगनेत्रत्र दक्षयज्ञप्रमर्दन ।  
 तवायुधप्रदानेन पापं नश्यतु शङ्करः ॥  
 युगान्ते येन लोकानां त्वमन्तकविनाशनः (?)  
 विदग्धं तत्स्वपापेन तेन पापं व्यपोहय ॥  
 येन दग्धं क्षणाद्धेन त्रिपुरं सुरदुर्जयम् ।  
 तेन पाशुपतास्त्रेण मम पापं विनाशय ॥  
 यदबुद्धिकृतं पापं मम वाक्स्थं च मानसम् ।  
 तत्सर्वं क्षयमभ्येतु तव शूलप्रदानतः ॥  
 इत्यामन्त्य ततो दद्याच्छूलं तस्मै द्विजन्मने ।  
 अवश्यं कुरुते पापमज्ञानान्मानवो यतः ॥  
 वर्षे वर्षे ततो दद्यात्तस्य तस्यापनुत्तये ।  
 इति शूलदानम् ।



## अथात्मप्रतिकृतिदानम् ।

भविष्योत्तरे—

दानकालः सदा तस्य इत्युक्त्वा—

हैमीं प्रतिकृतिं भव्यां कारयित्वात्मनो नृप ।

अभीष्टवाहनगतामिष्टालङ्कारभूषिताम् ॥

अभीष्टलोकसहितां सर्वोपस्करसंयुताम् ।

अभीष्टलोकः प्रियजनः ।

नेत्रपट्टपटीवल्लैश्छादितां सग्विभूषिताम् ।

कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गी कर्पूरागुरुवासिताम् ॥

स्त्री वा दद्यात्तु शयने शयितां कारयेत्स्वयम् ।

यद्यदिष्टतमं किञ्चित्तत्सर्वं पार्श्वतो न्यसेत् ॥

उपकारकरं स्त्रीणां पुरुषाणां च यद्भवेत् ।

तत्सर्वं स्थापयेत्पार्श्वं स्वयं संचिन्त्य चेतसि ॥

एतत्सर्वं मेलयित्वा स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत् ।

अद्येत्यादि साप्रशतवर्षपर्यन्तं सुरसाहित्येन स्वर्गादीष्टभोगोत्तरज-  
न्मनीष्टवन्धुजनानवियोगकाम आत्मप्रतिकृतिदानं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य—

पूजयित्वा लोकपालान्प्रहान्देवीं विनायकम् ।

देवी दुर्गा ।

ततः शुक्लाम्बरः स्नात्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः ॥

आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्वोपकरणैर्युता ।

सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता ॥

आत्मा शम्भुः शिवः शौरिः शक्रः सुरगणैर्युतः ।

तस्मादात्मप्रदानेन मम चात्मा प्रसीदतु ॥

इत्युक्त्वा मासपक्षादि चोल्लिख्य पूर्वोक्तं साम इत्यादिकाम इत्यन्तं  
सङ्कल्पवाक्यमुक्त्वा इमामात्मप्रतिमां सोपस्कराममुकशर्मणेऽमुकगोत्राय  
तुभ्यमहं संप्रददे ।

इत्युच्चार्य ततो दद्याद्ब्राह्मणाय युधिष्ठिरः ।

ब्राह्मणश्चाथ गृह्णाति कोऽदादिति च कीर्तयेत् ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।



विधिनाऽनेन राजेन्द्र दानमेतत्प्रयच्छति ॥  
 यः पुमानथ वा नारी शृणु तत्फलप्राप्नुयात् ।  
 साग्रं वर्षशतं भव्यं सर्वलोकैः सुरैर्वृतः ॥  
 अभीष्टफलदानेन चाभीष्टफलभागभवेत् ।  
 यत्रैवोत्पद्यते जन्तुः प्राप्तः कर्मक्षयं क्षणम् ॥  
 तत्रैव सर्वकामानां फलभागजायते नृप ।  
 इष्टबन्धुजनैः सार्द्धं न वियोगं कदाचन ॥  
 प्राप्नोति पुरुषो राजन्स्वर्गमानन्त्यमश्नुते । इति ॥  
 इत्यात्मप्रतिमादानम् ।

### अथ धनदमूर्तिदानम् ।

वायवीये—

दरिद्रो जायते मर्त्यो दानविघ्नं करोति यः ।  
 ऐश्वर्यं जायते येन कर्मणा तच्छृणुष्व मे ॥  
 पलाद्धेन तदद्धेन तदद्धेनाऽथवा पुनः ।  
 पलेन वा तदद्धेन तदद्धाद्धेन वा , इति कचित्पाठः । तदद्धेनाऽथवा  
 पुनरिति च कचित् ।

धनदस्य प्रतिकृतिं कुर्यात्स्वर्णमयीं शुभाम् ।  
 द्विभुजां वाहनोपेतां नयनानन्दकारिणीम् ॥  
 धनदरूपं तु—

ह्रस्वमापिङ्गनेत्रं च गदिनं पीतविग्रहम् ।  
 पुष्पकस्थं धनाध्यक्षं व्यायेच्छिवसखं सदा ॥  
 इत्यादिनोक्तम् ।

शङ्खपद्मनिधिभ्यां च युक्तं तत्पार्श्वयोर्द्वयोः ।  
 श्वेतवस्त्रेण संवेष्टय तन्दुलोपरि विन्यसेत् ॥  
 तन्दुलानां परीमाणं भवेद्द्वौणचतुष्टयम् ।  
 तदूर्ध्वं वा तदूर्ध्वं वा वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥  
 श्वेतमाल्यैस्तथागन्धैरनुलिप्य प्रपूजयेत् ।  
 आमेय्यां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैर्भवेत् ॥  
 मन्त्रो राजाधिराजायेत्येष योज्यः स्वलिङ्गकैः ।  
 व्याहृत्या तिलहोमश्च कर्तव्यो धनकाङ्क्षिभिः ॥



आचार्यः सर्वशास्त्रज्ञो विनीतः सर्वसंमतः ।  
 महाकुलप्रसूतश्च धर्मज्ञः सत्यवाक्कुचिः ॥  
 कारयेदर्चनं तेन धनदस्यातिभक्तितः ।  
 तद्देवत्येन मन्त्रेण स च कामश्चरो भवेत् ॥  
 तस्मै होमं कृतवते प्रदद्यात्प्रतिमां तु ताम् ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत्प्राङ्मुखस्तु उदङ्मुखः ॥

मन्त्रः प्रयोगो ज्ञेयः ।

एवं कुबेरदानं यः करोति विधिपूर्वकम् ।

धनदेन समो मर्त्यस्तत्क्षणादेव जायते ॥

अथ प्रयोगः । सार्द्धमाषट्त्रयाधिकां पञ्चाशन्माषावधिकुकुबेरमूर्तिं  
 पुष्पकविमानस्थां पार्श्वयोः पद्मशङ्खाकारयुतां कृत्वाऽद्येत्यादि यथे-  
 ष्ठधनकामोऽहं धनदमूर्तिदानं करिष्ये इति सङ्कल्प्य श्वेतवस्त्रां मूर्तिं  
 यथाशक्ति एकद्विचतुर्द्वीणतन्दुलराशौ निधाय संपूज्य तदाम्रेय्यामग्निं  
 संस्थाप्य समिदाज्यचरुभिः प्रत्येकमष्टाष्टाविंशत्यादिसंख्यया राजा-  
 धिराजाय इतिमन्त्रेण व्याहृतिभिश्च तिलैर्हुत्वा आचार्येण धनद-  
 पूजां कारयित्वा—

उत्तराशापते देव कुबेर नरवाहन ।

पद्मशङ्खनिधीनां त्वं पतिः श्रीकण्ठवल्लभः ॥

दानाद्येन यथा प्राप्तं दारिद्र्यं मम दुःखदम् ।

तत्सर्वमात्मदानेन पापमाशु विनाशय ॥

इतिमन्त्रमुत्तवाऽद्येत्यादि इमां धनदमूर्तिं दारिद्र्यनाशकामोऽमुक-  
 गोत्रायामुकशर्मणे तुभ्यमहं संप्रददे न मम इति दत्त्वा, देयद्रव्यतृतीयं  
 चतुर्थं वांशं सुवर्णं दक्षिणां दद्यात् । इति धनदमूर्तिदानम् ।

अथ शालग्रामदानम् ।

शालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्दानमुत्तमम् ।

भूचक्रं तेन दत्तं स्यात्सशैलवनकाननम् ॥

इतिपाद्मे शालग्रामदानम् । सशैलवनभूचक्रदानफलकाम इति दानवा-  
 क्यम् । मन्त्रस्तु—

महाकाशनिवासेन चक्राद्यैरुपशोभितम् ।

अस्य देवस्य दानेन मम सन्तु मनोरथाः । इति ॥



## अथ कालपुरुषदानम् ।

अविध्योत्तरे—

काम्यो दानविधिः पार्थ क्रियमाणो यथातथम् ।  
 फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयाय च ॥  
 देयं निष्कशतं पार्थ दानेषु विधिरुत्तमः ।  
 भय्यमस्तु तदर्थेन तदर्थेनावरः स्मृतः ॥  
 एवं वृक्षे रथेऽण्डे च धेनोः कृष्णाजिनस्य च ।  
 अशक्तस्याऽपि कल्पतोऽयं पञ्चसौवर्णिको विधिः ॥  
 अतोऽप्यल्पेन यो दद्यान्महादानं नराधिप ।  
 प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखशोकावहं भवेत् ॥

वृक्षो महादानेषु कल्पवृक्षः । रथो हिरण्याश्वरथः । अण्डं ब्रह्माण्डम् ।  
 धेनुः कामधेनुः ।

पुण्यं दिनमथासाद्य भूमिभागे समे शुभे ।  
 चतुर्दश्यां चतुर्थ्यां वा विष्ट्यां वा पाण्डुनन्दन ॥  
 पुमान्कृष्णाजिने कार्यो रौप्यदन्तः सुवर्णदृक् ।  
 खड्गोद्यतकरो दीर्घो जपाकुसुमकुण्डलः ॥  
 रक्ताम्बरधरः स्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ।  
 तीक्ष्णासिपुत्रीबन्धेन विस्फारितकटीतटः ॥

असिपुत्री छुरिका ।

उपानद्युगयुक्ताङ्घ्रिः कृष्णकम्बलपार्श्वगः ।  
 गृहीतमांसपिण्डश्च वामे करतले तथा ॥  
 एवंविधं पुमान्कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।  
 यजमानः प्रसन्नात्मा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 संपूज्य गन्धकुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च ।  
 सर्वं कालयसे यस्मात्काल त्वं तेन चोच्यसे ॥  
 ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्यो हि सुव्रत ।  
 पूजितस्त्वं मया भक्त्या पार्थिवश्च तथा सुखम् ॥  
 यद्बुद्धयते तव विभो तत्कुरुष्व नमो नमः ।  
 एवं संपूजयित्वा तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 ब्राह्मणं प्रथमं पूज्य वासोभिर्भूषणैस्तथा ।



दक्षिणां शक्तितो दद्यात्प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥  
 दक्षिणां प्रागुक्तां निष्कशतादिरूपाम् ।  
 अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ॥  
 नापमृत्युभयं तस्य न च व्याधिकृतं भवेत् ।  
 भवत्यव्याहतैश्वर्यः सर्वबाधाविवर्जितः ॥  
 देहान्ते सूर्यभवनं भित्त्वा याति परं पदम् । इति ॥  
 पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ।  
 सत्रयाजी श्रिया युक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

संपूज्य कालपुरुषं विधिवद्विजाय दत्त्वा शुभाशुभफलोदयहेतुभूतम् ।  
 रोगातुरे सकलदोषमये च देहे देही न मोहमुपगच्छति तत्प्रभावात् ॥  
 अथ प्रयोगः । चतुर्थ्या च चतुर्दश्यां भद्राकरणे वा रौप्यदशनं  
 सुवर्णनेत्रं खड्गोद्यतदक्षिणकरं मांसपिण्डयुतवामकरं जपाकुसुमकुण्डलं  
 रक्तस्रग्विणं शङ्खमालाधरं लुरिकया युतकटिदेशमतिदीर्घं कृष्णाजिने  
 कालपुरुषं निर्मायाद्येत्यादि 'अपमृत्युव्याधिसर्वबाधानिवारणाव्याहतैश्व-  
 र्यप्राप्तिमरणोत्तरपरपदतदुत्तरधर्मश्रीपुत्रपौत्रादिकर्तृत्वाज्यकामः काल-  
 पुरुषदानं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य कालपुरुषं विप्रं च संपूज्य पुष्पा-  
 जलिं गृहीत्वा—

सर्वं कालयसे यस्मात्कालस्त्वं तेन चोच्यसे ।  
 ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्योऽसि सुव्रत ॥  
 पूजितस्त्वं मया भक्त्या पार्थिवश्च यथासुखम् ।  
 यदबुध्यते तव विभो तत्कुर्वन् नमो नमः ॥

इति मन्त्रमुत्तवाऽद्येत्यादि 'अपमृत्युव्याधिसर्वबाधानिवारणेत्यादि-  
 काम, इत्यन्तं पूर्वोक्तं सङ्कल्पवाक्यं चोक्त्वा इमं कालपुरुषं सोपस्करम-  
 मुकगोत्रायामुकशर्मणे विप्राय तुभ्यमहं संप्रददे न मम इति दत्त्वा पञ्च-  
 सुवर्णादूर्ध्वमा निष्कशतं दक्षिणां दत्त्वा भूयसीदानविप्रभोजनानि कुर्यात् ।  
 इति कालपुरुषदानविधिः ।

अथ कालचक्रदानम् ।

मृत्युञ्जये—

चक्रं रूप्यमयं कृत्वा मुक्तारश्मिमयात्मकम् ।  
 कृत्वा मूर्ध्नि शरच्चन्द्रं रश्मिमध्यान्तरस्थितम् ॥



तमःशतैकरूपाणि गात्रेषु च समन्ततः ।  
 एवं ध्यानवतस्तस्य स चन्द्रः कृष्णतां व्रजेत् ॥  
 ततोऽप्यनन्तरं पञ्चास्थित्वा विप्रप्रदक्षिणाम् ।  
 तं गृहीत्वा व्रजेदूरमदृष्टत्वमपि व्रजेत् ॥  
 स्वयं वाऽमृतसङ्घातपूर्णकायस्थितस्थितिः ।  
 कालचक्रमिदं नाम्ना दानं मृत्युविनाशनम् ॥  
 इमं ते राजतं चन्द्रं रश्मिजालसमाकुलम् ।  
 अपमृत्युविनाशाय ददामीति समुच्चरन् ॥  
 सुवर्णदक्षिणायुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 एवं कृते विनश्येत् अपमृत्युं विनाशाय ॥  
 तस्मादेतत्समादेयमपमृत्युभयान्वितैः ।  
 ज्वरादिरोगप्रस्तैर्वा महापत्पतितैरपि ॥  
 ततो गृह्योक्तविधिना स्थापयेज्जातवेदसम् ।  
 जुहुयात्कालनाम्ना तु शतमष्टोत्तरं तिलैः ॥  
 ततस्तु भोजयेद्भक्त्या विप्रान्द्वादशसङ्ख्यया ।  
 स्वयमक्षारमलवणं भुञ्जीत सकृदेव तु ॥  
 एवंकृते नरो नूनं चिरं जीवेन्न संशयः ।

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादि 'अपमृत्युनिवारणकामः कालचक्रदानं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य शक्तितो रूप्यकृतं चन्द्राकारभनेकमुक्तामाला-  
 त्मकरश्मियुतं कालचक्रं विप्रं च संपूज्य—

इमं ते राजतं चन्द्रं रश्मिजालसमाकुलम् ।  
 अपमृत्युविनाशाय ददामीति समुच्चरन् ॥

इदं कालचक्रं मुक्तादामयुतमपमृत्युनिवारणकामोऽमुकगोत्रायाऽमुक-  
 शर्मणे विप्राय तुभ्यमहं संप्रददे न मम, इति दत्त्वा सुवर्णं दक्षिणां  
 दत्त्वाऽग्निं संस्थाप्य कालचक्राय स्वादेत्यष्टोत्तरशतं तिलैर्हुत्वा द्वादश  
 विप्रान्भोजयित्वा स्वयमक्षारमलवणं सकृद्भुञ्जीत ।

इति कालचक्रदानविधिः ।

अथ यमदानम् ।

मृत्युञ्जये—

लोहपात्रे स्थितं कांस्यं तत्र पद्मं तु राजतम् ।  
 तस्मिन्कालेश्वरः स्वर्णैः पुरुषाकारतां गतः ॥



यमरूपं तु—

ईवत्पीतो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजानता ।

रक्तदण्डपाशभृत्कुट्टः इति ।

बलालङ्कारसंयुक्तो भयदास्त्राणि सर्वतः ।

त्रिलोहकारपुरुषैः कालदूतैश्च पार्श्वतः ॥

भयदास्त्राणि खड्गादीनि । त्रिलोहं कांस्यताम्रपित्तलाख्यम् । काल-  
दूतैर्दण्डहस्तैस्त्रिभिः पुरुषाकारैः ।

कुत्वा च माहिषे पृष्ठे तं दद्याद्यममालम् ।

आलपन्यमं ददाभीत्युत्तरम् ।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां करोति विधिवत्तु यः ।

स मुच्यते भुवं नाशादृत्वा घृतघटोत्तरम् ॥

नाशो मृत्युः । घृतघट उत्तरो दक्षिणास्थाने यस्य, इति दानविवेके ।  
अपरे तु 'दक्षिणा सुवर्णम्' इति ।

अथ प्रयोगः । लोहपात्रे कांस्यपात्रं तस्मिन्नौघ्यपत्रं तस्मिन्सौवर्ण-  
महिषश्च दण्डपाशकरं यमबलकृतं तत्समीपे हेमानि खड्गाद्यस्त्राणि  
त्रिलोहघटितान्दण्डकरान्कालदूतांश्च संस्थाप्य तिथ्यादि स्मृत्वा 'अप-  
मृत्युनिवारणकामो यमदानं करिष्ये' इति संकल्प्य सवाहनदूताख्यं  
यमं विप्रं च संपूज्याद्येत्याद्यपमृत्युनिवारणकाम इमां पूर्वोपस्करयुताम-  
मुकशर्मणेऽमुकगोत्राय विप्रायाहं संप्रददे न मम, इति दत्त्वा दक्षिणां  
सुवर्णं दद्यात् ।

इति यमदानम् ।

अथायुष्करदानम् ।

ब्रह्माण्डे—

भूमौ गोमयलिप्तायां दक्षिणीत्तरतः शुभाम् ।

निधाय तत्र पाणिभ्यां पूर्णानि सिततन्दुलैः ॥

चत्वारि तेषु हेमानि मण्डलानि निवेशयेत् ।

मण्डलानि स्थलाकाराणि, कुरुभान् इत्यन्ये ।

सौवर्णाश्च ततो देवानर्चयेच्च यथाक्रमम् ।

पूर्वमात्मभुवं तत्र विष्टरश्वसं ततः ॥



कृत्तिवाससमीशानं वज्रपाणिं शतक्रतुम् ।  
 गन्धादिभिरथाभ्यर्च्य दक्षिणोत्तरतः क्रमात् ॥  
 प्रत्येकमेकं विप्रेभ्यो दद्यादारभ्य भक्तितः ।  
 तं तं देवमिह व्यात्वा मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥  
 संप्रीयतां मे भगवानात्मभूरित्युदीरयन् ।  
 संप्रीयतां जगज्वापी भगवान्निष्ठरश्मिवाः ॥  
 संप्रीयतां मे भगवान्कृत्तिवासा इति ध्रुवम् ।  
 संप्रीयतां मे भगवान्वज्रपाणिः शतक्रतुः ॥  
 एवमाह पुरा ब्रह्मा नारदाय सुरर्षये ।  
 प्रोक्तं मयाऽपि तत्सर्वं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः ॥

अत्र ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्रा यथाशक्ति सुवर्णमयाः कार्याः । आयु-  
 ष्कामो ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्रप्रतिमादानमहं करिष्ये इति संकल्प्य,  
 इति आयुष्करदानम् ।

### अथ संपत्करम् ।

ब्रह्माण्डे—

संपत्करं दानमतीव पुण्यं यस्मिन्कृते संपदोऽभ्येति जन्तुः ।

तथा—

आयुष्करं रोगहरं तु पापविनाशनं नाशकरं त्वयानाम् ।  
 स्वर्गापवर्गौ कुलपुत्रवृद्धिं श्रियं तथाच प्रददातीष्टसिद्धिम् ॥

तथा—

कालेषु सूर्यग्रहणादिकेषु तारेषु जन्मत्रितयेषु कार्यम् ।  
 देशेषु देवायतनादिकेषु गृहेषु वा यत्र मनः प्रसन्नम् ॥  
 स्नात्वा प्रातस्त्रिलमिश्रैः कुशोदैः शुचिर्भूत्वा द्यौतवासाः प्रयत्नात् ।  
 सङ्कल्प्य विप्रं विदुषं गुरुं च कार्यं च तस्याऽनुमतेन सर्वम् ॥  
 गुरुं वृत्वेति शेषः ।

गव्येन भूमिं शकृता जलेन विलेपयेद्विशकमात्रहस्ताम् ।  
 तत्रैव लेख्याश्चतुरः समाः स्युः प्राच्यश्च तिर्यक् च यथोपदिष्टम् ॥  
 नव कौष्ठानि तत्र स्युस्तेषु पूर्णानि तण्डुलैः ।  
 निधातव्यानि पात्राणि वासोभिरभिवेष्ट्य च ॥



पात्राणि कुम्भान् ।

पलस्याऽर्वाक्त्रिनिष्काद्धं यथाशक्ति विनिर्मितान् ।

निष्कोऽत्र सुवर्णम् ।

दक्षिणोत्तरतो देवाश्चातरूपमयाभ्यसेत् ।

पार्श्वान्त्यकोष्ठत्रितये तु मित्रं तथा च देवं वरुणं च सोमम् ॥

चतुर्भुजं मध्यमकोष्ठकेषु जगत्पतिं विष्णुमुमापतिं च ।

दिवाकरं वृत्रहणं च वह्निं संपूज्य सर्वान्विधिवत्क्रमेण ॥

मित्रलक्षणं तु—

पद्मगर्भसमः कार्यो मित्रः कमलसंस्थितः ।

आजानुलम्बिनालान्तर्विकचाम्भोजद्वयप्रभुः ॥

वरुणादिरूपमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

अभ्यर्च्य विप्रानपि गन्धवस्त्रैः पृथक्च दातव्यमनुक्रमेण ।

संप्रीयतां मेऽथमित्येवमुक्त्वा ततो हि दद्यात्सोदकं पूर्वमत्र ॥

एकस्य चैकं च हिरण्यरूपं प्रमाणपूर्वं परिणीय सर्वान् ।

पात्राणि वासः परिधाय चैव सतन्दुलं सहिरण्यं च दत्त्वा ॥

अभीष्टसिद्धिं लभते च सर्वामायुष्यमारोग्यमुपैति चाश्वयम् ।

अथोपदेष्टे गुरवे सुवर्णं वासोयुगं दानसमं च दद्यात् ॥

विप्रैस्तथा वाचयेत्स्वस्तिवाच्यं ततो दद्याद्दक्षिणां वाचकेभ्यः ।

अथ प्रयोगः । प्रातस्तिलकुशमिश्रोदकेन स्नात्वाऽद्येत्यादि 'संपदायु-  
रारोग्यपापनाशपुत्रादिकुलवृद्धिश्चैव श्रीस्वर्गमोक्षेष्टसिद्धिकामो मित्रादिप्रति-  
मादानं करिष्ये' इति संकल्प्य गुरुं वृत्त्वा तेनाज्ञप्तो विंशद्वस्तां चतुरस्तां  
भुवं गोमयेनालिप्य तत्र प्रागायताश्चतस्र उदगायताश्चतस्रो लेखा  
लिखित्वा तत्र जातेषु नवकोष्ठेषु तण्डुलान्निक्षिप्य तेषु नवकुम्भान्सव-  
स्त्रान्विधिना संस्थाप्य तेषु सुवर्णत्रयादूर्ध्वं पलावधिद्देशा कृताः प्रतिमाः  
स्थापयेत्पूजयेच्च । तत्र पश्चिमपङ्क्तौ उदकसंस्थान्मित्रं वरुणं सोमं च ।  
मध्यमपङ्क्तौ चतुर्भुजं विष्णुमुमापतिं च । अन्त्यपङ्क्तौ दिवाकरं वृत्रहणं  
वह्निं च । ततो नव विप्रान्संपूज्यैकैकस्मै विप्राय मित्रः प्रीयतां  
अद्येत्यादि संपदादिकामान्तं पूर्वोक्तं फलमुक्त्वा, अमुकशर्मणे अमुक-  
गोत्राय विप्रायेमां प्रतिमां संप्रददे इति दद्यात् । एवञ्च वरुणः



२६६

दानमशुखः

प्रीयतामिति वरुणादिप्रतिमां गुरवे च देयद्रव्यसमं सुवर्णं वस्त्र-  
युगं च दद्यात् ।

इति संपत्करदानम् ।

अथ कृष्णाजिनम् ।

सौरे—

कृष्णाजिनं च महिषीं मेघीं च दश धेनवः ।

ब्रह्मलोकप्रदायीनि तुलापुरुष एव च ॥

यमः—

गोभूहिर्ण्यसंयुक्तं मार्गमेकं ददाति यः ।

सर्वदुष्कृतकर्मापि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ॥

मरीचिः—

कृष्णाजिनोभयमुखी यो दद्यादाहिताग्नये ।

सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

कृष्णाजिनसमं दानं न चास्ति भुवनत्रये ।

प्रतिग्रहोऽपि पापीयानिति वेदविदो विदुः ॥

मात्स्ये—

वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणं शशिसूर्ययोः ।

पौर्णमासी तु या माघे आषाढी कार्तिकी तथा ॥

उत्तरायणं द्वादशी वा तस्यां दत्तं महाफलम् ।

आहिताग्निर्द्विजो यश्च तद्देयं तस्य पार्थिव ॥

यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ।

गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप ॥

आदावेव समास्तीर्य शोभनं बह्ममाविकम् ।

ततः सशृङ्गं सखुरमास्तरेत्कृष्णमार्गणम् ॥

कर्तव्यं रुक्मशृङ्गं च रुण्यदन्तं तथैव च ।

लाङ्गूलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नं तथैव च ॥

तिलैरात्मसमं कृत्वा वाससाऽऽच्छादयेद्बुधः ।

सुवर्णनाभं तत्कुर्यादिलङ्ककुर्याद्विचक्षणः ॥

रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत् ।

कांस्यपात्राणि चत्वारि दिक्षु दद्याद्यथाक्रमम् ॥



मृण्मयेषु च पात्रेषु पूर्वादेषु क्रमेण तु ।

घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दद्याद्यथाविधि ॥

सरत्नानि कांस्यपात्राणि चतुर्दिक्षु स्थापयेत् । मृण्मयानि पात्राणि  
च घृतक्षीरदधिमधुपूर्णानि पूर्वादिविधेः स्थाप्यानि ।

चम्पकस्य तथा शाखाः सव्रणं कुम्भमेव च ।

बाह्योपस्थानकं कृत्वा शुभचित्तो निवेशयेत् ॥

दानदेशाद्वाह्ये उप समीपे स्थानं यस्येति कुम्भविशेषणम् ।

जीर्णवस्त्रेण पीतेन सर्वाङ्गानि च मार्जयेत् ॥

धातुमयानि पात्राणि पादेष्वस्य तु दापयेत् ।

धातुविशेषाः पात्रमध्यस्थानि द्रव्याणि च मन्त्रतः प्रयोगे बोध्यानि ।

तिलपूर्णं ततः कृत्वा वामपादे निवेशयेत् ।

मधुपूर्णं तु तत्कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत् ॥

एतत्पात्रद्वयं पश्चिमपादयोः स्थाप्यम् ।

ऊर्ध्वपादे त्विमे कार्ये ताम्रस्य रजतस्य च ॥

ऊर्ध्वपादे अम्रपादयोः । एकवचनमविवक्षितम् । ताम्रपात्रं तिलपूर्णं  
दक्षिणपादे । रजतपात्रं मधुपूर्णं सव्यपाद इति व्यवस्था । प्रयोगे वक्ष्य-  
माणमन्त्रात् । ' सुवर्णपात्रमक्षतपूर्णं मध्ये स्थापयेत् ' इति हेमाद्रिः ।

हेममुक्ताविद्रुमं च दाडिमं बीजपूरकम् ।

प्रशस्तपत्रे श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च ॥

एवंकृत्वा यथोक्तेन सर्वशाकफलानि च ।

तत्प्रतिग्रहविद्विद्वानाहिताभिर्द्विजोत्तमः ॥

स्नातो वस्त्रयुगच्छन्नः स्वशक्त्या चाऽप्यलङ्कृतः ।

प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीपते ॥

सुवर्णनाभिकं दद्यात्प्रीयतां वृषभध्वजः ।

अथ प्रयोगः । पूर्वोक्तकाले गोमयेनोपलिप्ते देशे अविलोमनिर्मितं  
कम्बलं तदुपरि सशृङ्गं खुरं वहिलोमं प्राग्ग्रीवं कृष्णाजिनमास्तीर्य  
सुवर्णशृङ्गं रूप्यदन्तं मौक्तिकपुच्छं सुवर्णनाभं च तत्कृत्वा तदुपर्यात्मप्र-  
माणान्स्थितान्संस्थाप्य वाससा सञ्छाद्य सगन्धरत्नानि चत्वारि कांस्य-  
स्य घृतदुग्धदधिमधुयुतानि मृदश्च प्रागादिविधेः दानदेशाद्वाहि-  
स्यकशाखां सव्रणकुम्भं च संस्थाप्य देशकालादि स्मृत्वा ' ब्रह्मलोक-



प्राप्तिकामः सप्तजन्मोपात्तपापनाशकामः पितृपुत्रमृत्युपरिहारभार्याधन-  
देशाद्यवियोगकामः प्रलयावधिस्वर्गप्राप्तिर्वर्भूदानफलसर्वलोकगतिकामो  
मोक्षकाम ईश्वरप्रीतिकामो वा कृष्णाजिनदानं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य  
जीर्णपीतवाससा स्वाङ्गानि संमृज्य—

यानि पापानि काम्यानि मया लोभात्कृतानि वै ।

लोहपात्रप्रदानेन प्रणश्यन्तु ममाशु वै ॥

इतिमन्त्रेण सतिल लोहपात्रं कृष्णाजिनस्य वामे पादे ।

यानि काम्यानि पापानि कर्मोत्थानि कृतानि वै ।

कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥

इति समधुकांस्यं दक्षिणे ।

परापवादपैशून्याद्वृथा मांसस्य भक्षणात् ।

तत्रोत्थितं च मे पापं ताम्रपात्रात्प्रणश्यतु ॥

इति सतिलं ताम्रपात्रं वामहस्ते ।

कन्यानृतं गवां चैव परदारप्रधर्षणम् ।

रौप्यपात्रप्रदानेन क्षिप्रं नाशं प्रयातु मे ॥

इति समधुरौप्यपात्रं दक्षिणहस्ते ।

जन्मजन्मसहस्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना ।

सुवर्णपात्रदानात्तत्राशयाशु जनार्दन ॥

इति साक्षतहेमपात्रं मध्ये हेममुक्ताविद्रुमदाडिममातुलिङ्गानि सज्जि-  
धावाम्रादिभ्रशस्तपत्रे कर्णयोः शृङ्गाटकानि च खुरेषु संस्थाप्य वस्त्रयुग्मा-  
दिनाऽऽहिताग्निविप्रदेयद्रव्यं च संपूज्य 'प्रीयतां वृषभध्वजः' इत्युक्त्वा  
देशकालौ सङ्कीर्त्य 'अमुकसगोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमिदं  
कृष्णाजिनं कुशोपरि गतं कम्बलोपरि स्थितं वस्त्राच्छादिततिलराशि  
सुवर्णशृङ्गं रौप्यखुरं रूप्यदन्तं मुक्तालाङ्गूलं सुवर्णनाभं पञ्चरत्नालङ्कृतं  
चतुर्दिग्वस्थितघृतक्षीरदधिमधुपूर्णपात्रचतुष्टयं सकांस्यपात्रं तिलमध्वक्षत-  
पूर्णलौहकांस्यताम्ररौप्यहेमपात्रं हेममुक्ताविद्रुमदाडिमबीजपूरपत्रशृङ्गाट-  
कयुतं शिवदैवतममुकसगोत्रोऽमुकशर्माऽमुककामोऽहं संप्रददे न मम इति ।

एतदक्षिणा तु गारुडे—

शतनिष्कसमोपेतं तद्वर्द्धिमथाऽपि वा ।

अतो न्यूनं न दातव्यमधिके फलमूर्जितम् ॥



तत्रैव—

अस्पृश्यः स द्विजो राजन्चितियूपसमो हि यः ।  
 दाने च श्राद्धकाले च दूरतः परिवर्जयेत् ॥  
 स्वगृहात्प्रेष्य तं विप्रं मण्डले स्नानमाचरेत् ।  
 तद्वस्त्रं कुम्भसहितं नीत्वा क्षेप्यं चतुष्पथे ॥  
 स्वपितृपुत्रमरणं वियोगं भार्यया सह ।  
 धनदेशपरित्यागं न चैवेहाप्नुयात्कचित् ॥  
 समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 सर्वाल्लोकांश्च चरति कामचारी विहङ्गमः ॥  
 आभूतसंप्लवं यावत्स्वर्गमाप्नोत्यसंशयम् ।  
 इति कृष्णाजिनदानं तत्प्रयोगश्च ।

अथ शय्यादानम् ।

महाभारते—

शय्यामास्तरणोपेतां सुप्रच्छादनसंस्कृताम् ।  
 प्रदद्याद्यस्तु विप्राय शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥  
 सूरूपः सुभगः श्रीमान्स्त्रीसहस्रैस्तु संवृतः ।  
 दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

विष्णुसंहितायाम्—

दर्पणैः पादत्राणैश्च नानाद्रव्यैर्विभूषणैः ।  
 चतुष्कोणेषु संस्थाप्य यथाशक्त्या युधिष्ठिर ॥  
 घृतकुङ्कुमगोधूमपूर्णपात्रं जलस्य च ।  
 शय्यां संपूजयित्वा तु मन्त्रको मत्परायणः ॥  
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा कुर्याच्छय्यां प्रदक्षिणाम् ।  
 नमः प्रमाण्यै देव्यैति प्रणम्य च चतुर्दिशम् ॥  
 ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रुताध्ययनशीलिने ।  
 तथाऽऽत्मज्ञानविदुषे शय्यां दद्याद्विचक्षणः ॥

फलं च—

तस्मादिन्द्रपुरं गच्छेत्सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।  
 षष्टिवर्षसहस्राणि क्रीडित्वा च यथासुखम् ॥



इन्द्रलोकात्परिभ्रष्ट इह लोके नृपो भवेत् ।  
षष्ठियोजनविस्तीर्णे स्वामी भवति मण्डले ॥

भविष्योत्तरे—

तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् ।  
दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलङ्कृताम् ॥  
हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानकाम् ।  
प्रच्छादनपटीयुक्तां धूपगन्धादिवासिताम् ॥  
तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम् ।  
उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं पारकल्पयेत् ॥  
विज्ञेयः पाण्डवश्रेष्ठ स निद्राकलशो बुधैः ।  
ताम्बूलकुङ्कुमक्षौद्रकर्पूरागुरुचन्दनम् ॥  
दीपिकोपानहच्छत्रं चामरासनभोजनम् ।  
पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ॥  
शयनस्थं च भवति यदन्यदुपकारकम् ।  
भृङ्गारकरकाद्यं च पञ्चवर्णं वितानकम् ॥  
शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ।  
सपत्नीकाय संपूज्य पुण्येऽहिं विधिपूर्वकम् ॥  
यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया ।

शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि । इति ॥

अथ प्रयोगः । अष्टदले तिलप्रस्थं तस्मिन्स्वास्तीर्णां शय्यां तस्याः  
समन्तात्सङ्कल्पवाक्ये वक्ष्यमाणानि कुम्भादीनि संस्थाप्य, अद्ये-  
त्यादि सर्वपापक्षयपूर्वकाप्सरोगणसेव्ययुतविमानकरणकेन्द्रपुरगमनो-  
त्तरषष्टिसहस्रवर्षतदधिकरणकक्रीडनस्त्रीसहस्रसंवरणसहितस्वर्लोके कमहि-  
तत्वतदुत्तरषष्ठियोजनमण्डलराज्यानन्तरशिवैक्यकामः शय्यां दास्ये, इति  
सङ्कल्प्य सपत्नीकं विप्रं शय्यां तदुपरि प्रतिमायां लक्ष्मीयुतं नारायणं  
च संपूज्य प्रदक्षिणीकृत्य 'नमः प्रमाण्यै देव्यै' इति चतुर्दिक्षु प्रणम्य  
तिथ्याद्युल्लेखनान्ते सर्वपापक्षयेत्यादिकामान्तं पूर्वोक्तं सङ्कल्पवा-  
क्यममुकंसगोत्राया मुकशर्षणे ब्राह्मणायेमां शय्यामीशानादिकोणचतु-  
ष्टयस्थापितघृतकुम्भगोधूमजलपूर्णपात्रामुच्छीर्षकप्रदेशस्थापितघृतपूर्णक-  
लशां हंसतूलीप्रच्छन्नां शुभगण्डोपधानकां प्रच्छादनपटीसप्तधान्यताम्बू-



लादशकुङ्कुमक्षोदकपूर्णागुरुचन्दनदीपिकोपानच्छत्रचामरासनभोजन-  
जलपात्रपञ्चवर्णवितानलक्ष्मीनारायणप्रतिमायुतामङ्गिरोदैवताममुकस-  
गोत्रोऽमुकशर्माऽहं संप्रददे न मम इति । शय्योपवेशितविप्रहस्ते कुशो-  
दकं क्षिपेत् । मन्त्रः—

यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया ।

शय्या ममाऽप्यशून्याऽस्तु तथा जन्मनि जन्मनि । इति ॥  
हिरण्यं दक्षिणा ।

इति शय्यादानप्रयोगः ।

अथ शिवाय शय्यादानम् ।

हंसतूलीसमायुक्तामृद्धां खट्वा मलङ्कृताम् ।  
सर्वोपकरणोपेतां शिवे शय्यां निवेदयेत् ।  
शिवं देवीसमायुक्तं पैष्टं कृत्वा निवेदयेत् ।  
इति शिवधर्मे शिवशय्यादानम् ॥

अथ वस्त्रदानम् ।

नन्दिपुराणे—

वस्त्रं यश्चार्थिने दद्याच्छुभं चापि यदृच्छया ।  
स भवेद्धनवान् श्रीमान् बृहस्पतिपुरे वसेत् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

वासो हि सर्वदैवत्यं सर्वप्रायोज्यमुच्यते ।  
वस्त्रदानात्सुवेषः स्याद्रूपद्रविणसंयुतः ॥  
युक्तो लावण्यसौभाग्यैर्विरोगश्च तथा द्विजः ।

तथा—

दत्त्वा कार्पासिकं वस्त्रं स्वर्गलोके महीयते ।  
दत्त्वा सरोमं तत्रापि फलं दशगुणं भवेत् ॥  
आविकं वसनं दत्त्वा भूदानां लोकमाप्नुयात् ।  
छागं दत्त्वा चाऽऽङ्गिरसं क्षौमं दत्त्वा बृहस्पतेः ॥  
वसूनां लोकमाप्नोति कुशकौशेयवाससा ।  
कृमिजं च तथा दत्त्वा सोमलोके महीयते ॥  
अमिष्टोमवाप्नोति दत्त्वैव मृगलोमिकाम् ।



तथा—

सर्वदो वस्त्रदः प्रोक्तो यतः सर्वत्र वस्त्रवान् ।  
अवाप्नोति च धर्मज्ञस्तद्धि तस्माद्विशिष्यते ॥

भविष्यपुराणे—

यो वस्त्रं भानवे दद्यादहतं च महाधनम् ।  
स हेलिलोकमासाद्य वन्द्यते त्रिदशैरपि ॥

आदित्यपुराणे—

वह्नेर्वस्त्रप्रदानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥

नन्दिपुराणे—

वासांसि तु विचित्राणि सारवन्ति बृहन्ति च ।  
स्नापितानि शिवे दद्यात्सकोशानि नवानि च ॥  
यावत्तद्वस्त्रतन्तूनां परिमाणं विधीयते ।  
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

स्नापितानि प्रक्षालितानि ।

वाराहपुराणे—

क्षौमाम्बराणि यो दद्यात्पत्रोर्णानि च चक्रिणे ।  
कार्पासजानि वा दद्याद्भक्तो वित्तानुसारतः ॥  
तत्र वासांसि यावन्तस्तन्तूनां परमाणवः ।  
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥

देवीपुराणे—

अण्डजैर्वाण्डजैर्वाऽपि वस्त्रैरभ्यर्च्य शैलजाम् ।  
संभूष्याभरणैः शक्र चक्रवर्तित्वमाप्नुयात् ॥

नन्दिपुराणे—

उष्णीषदायिनो मर्त्या जायन्ते कुक्कुटोज्ज्वलाः ।  
विस्तीर्णराजवंशेषु सितच्छत्राग्र्यलक्षणाः ॥

नारदीये—

निष्किञ्चनेभ्यो दीनेभ्यः शीतवातमहातपैः ।  
अर्दितेभ्यः कण्ठया वस्त्रमूर्णं ददाति यः ॥  
न तस्य सुकृतं वक्तुं त्रिदशैरपि शक्यते ।  
आधिव्याधिविनिर्मुक्तः सोऽक्षयं सुखमश्नुते ॥

इति वस्त्रदानम् ।



## अथासनदानम् ।

आसनं यः प्रयच्छेत्तु सुपात्राय च भक्तितः ।  
स दिव्यान्भोगसंभोगानरोगः सर्वदाऽश्नुते ॥

महाभारते—

यस्तु दद्याद्द्विजाग्र्येभ्यो भक्त्या चाभिरमुज्ज्वलम् ।  
स भूपत्वमवाप्नोति निःशेषेऽवन्तिमण्डले ॥

पद्मपुराणे—

चन्द्रोदयं तु यो दद्याद्भक्त्या यच्छति पुण्यधीः ।  
न तस्य श्रेयसामन्तः कदाचिदपि जायते ॥  
चन्द्रोदयो वितानम् ।

## अथ भाजनदानम् ।

स्कन्दपुराणे—

भाजनं यः प्रयच्छेत्तु हैमं रत्नविभूषितम् ।  
सोऽप्सरःशतसङ्कीर्णो विमाने दिवि मोदते ॥  
राजतं यः प्रयच्छेत्तु विप्रेभ्यो भाजनं शुभम् ।  
स गन्धर्वपदं प्राप्य उर्वइया सह मोदते ॥  
ताम्रं यो भाजनं दद्याद्ब्राह्मणाय विशेषतः ।  
स भवेद्यक्षराजस्य प्रभुर्वल्लसमन्वितः ॥

ब्रह्मपुराणे—

औदुम्बराणि भाण्डानि यो दद्यादायसानि च ।  
महतीं वृद्धिमाप्नोति दुर्लभां त्रिदशैरपि ।

औदुम्बराणि ताम्रमयानि ।

मदनरत्ने—

उत्तमं पलषष्टिश्च चत्वारिंशत्तु मध्यमम् ।  
द्वादशाधमपात्रं तु ताम्रमत्रायसं स्मृतम् ॥

अत्रायसशब्दो धातुमात्रपरः ।

वासांसि वरणे दद्यादुपवीतं समालपकम् ॥

चन्दनं चैव ताम्बूलं विप्रं संपूजयेत्ततः ।

घृतादिद्रव्यसंपूर्णं द्वैमर्गं सवस्त्रकम् ॥



प्रतिष्ठाप्य तु तत्पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 ततस्तूर्णं सुवर्णं तु प्रतिष्ठार्थं द्विजाय तु ॥  
 दद्यादिति शेषः ।  
 चन्द्रलोके वसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश । इति ॥  
 घृतादीनि चात्र चतुर्दश । तत्रैव—  
 घृतं च नवनीतं च दधि दुग्धं तथैव च ।  
 शर्करागुडतैलानि तिला मधु जलं तथा ॥  
 लवणं च फलं सर्वं यावद्रत्नसमन्वितम् ।  
 एवं चतुर्दशयुतं दातव्यं विधिना नृप । इति ॥

पाद्ये—

सर्वेषामेव दानानामुत्तमं पात्रमिष्यते ।  
 यथाविधि प्रदातव्यं वित्तशास्त्र्यविवर्जितम् ॥  
 अत्यन्तनिर्द्धनो योऽपि सोऽपि दद्याद्यथाविधि ।  
 चतुर्दशार्द्धमर्द्धं वा दद्यादन्नफलेऽसया । इति ॥

वाराहे—

अथातः संप्रवक्ष्यामि पात्रदानमनुत्तमम् ।  
 कृत्वा ताम्रमयं पात्रं यथाविभवविस्तरम् ॥  
 उमया सहितं शम्भुं हरिं सश्रीकमेव च ।  
 कृत्वा तु काञ्चनीं दिव्यां संपूज्यावाहनादिभिः ॥  
 प्रतिमां ब्राह्मणे दद्यात्पात्रभूते विचक्षणे ।

अत्रैव पूर्वोक्तघृतादिचतुर्दशद्रव्याधिकान्नकार्पासोपादानेन तद्व्य-  
 पूर्णषोडशपात्रदानं युक्तम् ।

अथ स्थालीदानम् ।

भविष्योत्तरे—

दत्त्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः ।  
 अशक्तस्तु तदर्थेन चतुर्थांशेन वा पुनः ॥  
 सर्वशक्तिविहीनस्तु मृन्मयीमपि कारयेत् ।  
 सुगभीरोदरदरीं दृढदण्डकडच्छकम् ॥

कडच्छकशब्देन द्रव्यमभिधीयते ।

मृदुतन्दुलनिष्पन्नस्विन्नक्षीरेण पूरिताम् ॥



## विद्यादानाख्यमतिदानम् ।

२७६

उपदंशोदकयुतां धृतपात्रसमन्विताम् ।  
 कृतपार्थी धौतवर्णां चर्चितां चन्दनेन च ॥  
 स्थाप्य मण्डलके वल्लैः पुष्पधूपैरथार्चयेत् ।  
 आदित्येऽहनि संक्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥  
 एकादश्यां तृतीयायां विप्राय प्रतिपादयेत् ।  
 उल्लङ्घनपार्थ्व्यैस्तण्डुलैः सजलैरपि ॥  
 न भवेद्भोज्यसंतिद्धिर्भूतानां पिठरं विना ।  
 त्वं सिद्धिः सिद्धिकामानां त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छताम् ॥  
 अतस्त्वां प्रणतो याचे सत्यं कुरु वचो मम ।  
 ज्ञातिवन्धुसुहृद्गर्विप्रेषु स्वजने तथा ॥  
 अभुक्तवत्सु नाश्नीयात्तथा भव वरप्रद ।  
 इत्युच्चार्य प्रदातव्या हण्डिका द्विजपुङ्गवे ॥  
 पुष्टितुष्टिप्रदा पुंसां सर्वान्कामानभीप्सितान् ।  
 इति स्थालीदानम् ।

## अथापाकदानम् ।

तच्च शुभावर्तीं प्रति पिप्पलादः—

यद्येन पूर्वविहितं तदसौ प्राप्नुते फलम् ।  
 कर्मभूमिरियं राज्ञि माऽतः शोचितुमर्हसि ॥  
 तस्माद्भवद्भिर्यदत्तं प्राप्तं तद्राज्यमुत्तमम् ।  
 भृत्यमित्रादिसंबन्धो न दत्तः प्राप्यते कुतः ॥  
 इत्यादिना हेमरूप्यताम्रनिर्मितनानाविधभाण्डानां सर्वसंपत्करमा-  
 पाकदानमुक्तवान्

इत्यापाकदानम् ।

## अथ विद्यादानाख्यमतिदानम् ।

तत्र पुराणदानं तत्संख्या च वाराहे—

ब्राह्मं पाञ्च वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।  
 तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥  
 आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ।  
 दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं तथा ॥



वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चैव त्रयोदशम् ।  
 चतुर्दशं वामनं च कौर्म पञ्चदशं तथा ॥  
 मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डमन्तिमं तथा ।  
 अन्यान्युपपुराणानि सहिरण्यानि पर्वणि ॥  
 लिखित्वा यः प्रयच्छेत्तु स विद्यापारगो भवेत् । इति ॥

क्रमेण कालविशेषः ।

( ब्राह्मं जलधेनुयुतं वैशाख्यां, फलं ब्रह्मलोकः । पादं हेमपद्मयुतं  
 ज्येष्ठायां, फलमश्वमेधस्य । वैष्णवमाषाढ्यां स्वर्णधेनुसहितं, फलं वरुण-  
 लोकः । शैवं गुडधेनुसहितं श्रावण्यां, फलं शिवलोकः । भागवतं हेमसिं-  
 हयुतं प्रौष्ठपद्यां, परमपदं फलम् । नारदीयमाश्विन्यां हेमयुतं, परा सिद्धिः  
 फलम् । मार्कण्डेयं हेमहस्तियुतं कार्तिक्यां, फलं पौण्डरीकस्य । आग्नेयं  
 हेमपद्मतिलधेनुयुतं मार्गशीर्ष्यां, सर्वकृतुफलम् । भविष्यं गुडप्रस्थयुतं  
 पौष्यां, फलं विष्णुलोकः । ब्रह्मवैवर्तं चामरयुतं माघ्यां, फलं ब्रह्मलोकः ।  
 लैङ्गं तिलधेनुयुतं फाल्गुन्यां, फलं शिवसाम्यम् । वाराहं गुडयुतं चैत्र्यां,  
 फलं विष्णुपदम् । स्कान्दं हेमशूलयुतं मकरसंक्रान्तौ, फलं शिवपदम् ।  
 वामनं हेमवामनयुतं मेघे, विष्णुपदं फलम् । कौर्म हेमकूर्मयुतं कर्के,  
 गोसहस्रफलम् । मात्स्यं हेममत्स्ययुतं तुलायां, पृथ्वीदानफलम् । गारुडं  
 हेमहंसयुतं विषुवे, सिद्धिः फलम् । ब्रह्माण्डं कौशेयसुवर्णधेनुयुतं व्यती-  
 पाते, राजसूयफलम् । एतन्मूलं मात्स्ये । क्वचिच्छैवस्थाने वायवीय-  
 ग्रहणम् । एतदन्यान्युपपुराणानि तद्दाने फलं विद्या विष्णुलोकः,  
 सर्वत्र विष्णुप्रीतिर्वा । अत्र दानवाक्यमपि, देशकालौ सङ्कीर्त्य तत्फल-  
 मुल्लिख्य । देयदक्षिणा न पृथगिति केचित् । युक्तं तत्तद्दाने युक्तधेन्वा-  
 दिकैव दक्षिणा )

रामायणं भारतं च दत्त्वा स्वर्गं महीयते ।

पुराणं तर्कशास्त्रं च छन्दोलक्षणमेव च ॥

वेदं मीमांसकं दत्त्वा शिवधर्मं च वै नृप ।

सप्तद्वीपपृथिव्यां च राजराजो भवेद्धि सः ॥

तथा—

धर्मशास्त्रं नरो दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ।



वेददानम् ।

२७७

अथ वेददानम् ।

गारुडे—

आम्नायरूपाणि विधाय सम्यग्धैमानि पूर्वोदितलक्षणानि ।  
 विशुद्धानामणिभूषितानि ऋगादिवेदक्रमतो निवेश्य ॥  
 वेदरूपं महाभूतघटे उक्तम् ।

वासांसि देयानि यथाक्रमेण पीतानि शुक्लान्यथ लोहितानि ।  
 नीलानि चैवं कुसुमानि दत्त्वा संपूज्य गन्धाक्षतधूपदीपैः ॥  
 आमोदिमोदकयुतं घृतपायसं च सक्षौद्रमन्त्रमथ पूषघृतं क्रमेण ।

तेभ्यो निवेद्य विधिवत्प्रयतः प्रणम्य

सम्यक्प्रदक्षिणविधिं विदधीत विद्वान् ॥

तेषां पूजाविधिः कार्यो गायत्र्या भीमतां वर ।

व्याहृत्य व्याहृतीः कुर्यादावाहनविसर्जने ॥

मन्त्रैरेतस्ततः कुर्यादमीषामनुमन्त्रणम् ।

ऋग्वेद पत्रपद्माक्ष मां त्वं रक्ष क्षिपाऽशुभम् ॥

शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि देहि मे हितमद्भुतम् ।

यजुर्वेद नमस्तेऽस्तु लोकत्राणपरायण ॥

त्वत्प्रसादेन मे कामा निखिलाः सन्तु सन्ततम् ।

सामवेद महाबाहो त्वं हि साक्षादधोक्षजः ॥

प्रसादसुमुखो भूत्वा कृपयाऽनुग्रहाण माम् ।

अथर्वन्सर्वभूतानां त्वदायत्ते हिताहिते ॥

शान्तिं कुरुष्व देवेश पुष्टिमिष्टां प्रयच्छ नः ।

इति संप्राप्य देवेशान्विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥

प्रदद्यादेकमेकस्मै सुवर्णं त्रिपलान्वितम् ।

दद्यादेकपलोपेतमेकैकमिह दुर्बलः ॥

अथ स्वशक्तितो वाऽपि दानमेषां विधीयते ।

एतदेव प्रमाणं स्यादेतेषां मूर्तिनिर्मितम् ॥

अनधीतवतो वेदान्वेददानविधिस्त्वयम् ।

सदाऽध्ययनयुक्तस्य वेदाध्ययनमेव हि ॥

२४-२९



याज्ञवल्क्यः—

सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः ।  
तद्दत्तसमवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् । इति ॥  
इति वेददानविधिः ।

अथ पुस्तकदानम् ।

भविष्ये—

शास्त्रसद्भावविदुषे वाचके च प्रियंवदे ।  
वस्त्रयुग्मेन संवीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत् । इति ॥

तथा—

कपिलादानसहस्रेण सन्त्यग्दत्तेन यत्फलम् ।  
तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकैकप्रदानतः ॥  
पुराणं भारतं वाऽपि रामायणमथाऽपि वा ।  
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यते । इति ॥

तच्च हेमरूप्यगजदन्तकाष्ठादिकृतेऽन्योन्यसंश्लिष्टे यन्त्रे न्यस्य संपूज्य  
देयम्, इति पुराणान्तरे ।

एवं त्रिविधं विद्यादानं—पुस्तकदानं, प्रतिमादानमध्यापनं चेति ।

इति पुस्तकदानम् ।

अथ छत्रोपानदानम् ।

पाद्मे—

असिपत्रवने मार्गे क्षुरधारासमन्विते ।  
तीक्ष्णातपं च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः ॥  
इति छत्रोपानदानम् ।

अथाऽन्नदानम् ।

स्कान्दे—

अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चाऽपि सर्वदः ।  
तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत् । इत्यन्नदानम् ॥  
महार्णवे ब्रह्मगीतायाम्—  
वर्षाशनं श्रोत्रियाय ह्यर्थिने च विशेषतः ।  
असाध्यव्याधिना ग्रस्तो धनं दद्याद्विजातये ॥  
इति वर्षाशनदानम् ।



## अथ ताम्बूलदानम् ।

भविष्यपुराणे—

ताम्बूलं यो नरो दद्यात्प्रत्यहं नियमान्वितः ।  
 देवेभ्योऽथ द्विजातिभ्यः स महाभाग्यमश्नुते ॥  
 इति ताम्बूलदानम् ।

## अथ गन्धद्रव्यदानम् ।

स्कान्दे—

नरः सुवर्णदेहत्वं गन्धदानादवाप्नुयात् ।  
 भोगवाञ्छायते नित्यं शरीरं नास्य तप्यति ॥

विष्णुप्रोत्तरे—

सौभाग्यकारकं दानं प्रोक्तं वै कुङ्कुमस्य तु ।  
 तथा कर्पूरदानेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥  
 बृगदर्पप्रदानेन स प्राज्यं राज्यमश्नुते । इति ॥

गन्धद्रव्यदानं लैङ्गे—

तुष्टिर्भवेत्सदाकालं प्रदानाद्गन्धमाख्ययोः । इति ॥

नान्दिपुराणे—

धूपदः सुरभिर्नित्यं पुष्पदः सुभगस्तथा । इति ॥

## अथ रत्नदानानि ।

जावालिः—

रत्नानि यो द्विजे दद्याद्बहुमूल्यानि मानवः ।  
 अलङ्कारनिमित्तं वा देवताभ्योऽतियत्नतः ॥  
 सन्तापपापनिर्मुक्तो मुक्तिमेव समश्नुते ।

स्कान्दे—

विद्रुमाणां प्रदानेन रुद्रलोकं व्रजेन्नरः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो मुक्तादानेन जायते ॥  
 लोकमाप्नोति दानेन नरो वज्रस्य वज्रिणः  
 तथा प्रमत्तैर्गोमेदैर्मोदते नन्दने वने ॥  
 सर्वे ग्रहाः प्रतुष्यन्ति पुष्परागप्रदानतः ।  
 गारुत्मतैर्गारुत्मन्तं नियतं जयति श्रियः ॥



वैदूर्यैः सूर्यलोकं च पद्मरागैररोगताम् ।  
 प्रदानादिन्द्रलोकानां नीलानां भाजनं भवेत् ॥  
 सुखी शङ्खप्रदानेन शक्तिः शुक्तिप्रदानतः ।  
 इति रत्नदानम् ।

### अथ गलन्तिकादानम् ।

भविष्योत्तरे—

वसन्तसमयं ज्ञात्वा गत्वा देवालयं परम् ।  
 शिवस्य विष्णोरर्कस्य इष्टदेवस्य वा पुनः ॥  
 स्रवन्तं कारयेत्कुम्भमच्छिन्नं देवमस्तके ।  
 अनेन विधिना दत्त्वा नरो मासचतुष्टयम् ॥  
 ततः कर्कटके प्राप्ते देवं पञ्चाशृतेन तु ।  
 संस्त्राप्य पूजयेद्गन्धैर्नैवेद्यैश्च मनोरमैः ॥  
 प्रणिपत्य महेशानं मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।  
 ॐ नमः शङ्करः शम्भुर्भवो धाता शिवो हरः ॥  
 प्रीयतां मे महादेवो जलकुम्भप्रदानतः ।  
 एवं सङ्कल्प्य दाता तु पश्चादागत्य वेष्टमनि ॥  
 स्वशक्त्या शिवभक्तांश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयेत् ।  
 एवं यः कुरुते प्रीप्ते जलदानक्रियां हरेः ॥  
 यावद्विन्दूनि लिङ्गस्य पतितानि न संशयः ।  
 स वसेच्छाङ्करे लोके तावत्कोट्यो नरेश्वर ॥  
 इति गलन्तिकादानम् ।

### अथ प्रपादानम् ।

भविष्योत्तरे—

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे ।  
 पुण्येऽहि विप्रकथिते मण्डपं कारयेत्ततः ॥  
 पुरस्य मध्ये पथि वा चैत्यवृक्षतलेऽथवा ।  
 सुशीतलतरं रम्यं विचित्रासनसंयुतम् ॥  
 तन्मध्ये स्थापयेद्रम्यान्मणिकुम्भांश्च शोभनान् ।



ब्राह्मणः शीलसंपन्नो भृतिं दत्त्वा यथोचिताम् ॥  
 प्रपापालः प्रकर्तव्यो बहुपुत्रपरिच्छदः ।  
 एवंविधां प्रपां कृत्वा शुभेऽहि विधिपूर्वकम् ॥  
 यथाशक्त्या नरश्रेष्ठ प्रारम्भे योजयेद्विजान् ।  
 ततश्चोत्सर्जयेद्विप्रं मन्त्रेणानेन मानवः ॥  
 प्रपेयं सर्वसामान्यभूतेभ्यः प्रतिपादिता ।  
 अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु प्रपितामहाः ॥  
 अनिवारितं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम् ।  
 त्रिपक्षं च महाराज जीवानां जीवनं परम् ॥  
 प्रत्यहं कारयेत्तस्यां भोजनं शक्तितो द्विजान् ।  
 अनेन विधिना यस्तु ग्रीष्मे तापप्रणाशनम् ॥  
 पानीयमुत्तमं दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ।  
 कपिलाशतदानस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥  
 तत्पुण्यफलमाप्नोति सर्वदेवैः सुपूजितः ।  
 पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं विमानमधिरुह्य सः ॥  
 याति देवेन्द्रनगरं पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।  
 त्रिंशत्कोट्यो हि वर्षाणां यक्षगन्धर्वसेवितम् ॥  
 पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्वेदो द्विजो भवेत् ।  
 ततः परं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥  
 इति प्रपादानम् ।

### अथोदकदानम् ।

स्कन्दपुराणे—

त्रयाणामपि लोकानामुदकं जीवनं स्मृतम् ।  
 पवित्रममृतं यस्मात्तद्देयं पुण्यमिच्छता ॥

भविष्यपुराणे—

ग्रीष्मे चैव वसन्ते च पानीयं यः प्रयच्छति ।  
 वक्तुं जिह्वासहस्रेण तस्य पुण्यं न शक्यते ॥

नन्दिपुराणे—

योऽपि कश्चित्पार्थाय जलपानं प्रयच्छति ।  
 स नित्यवृत्तो भवति स्वर्गे युगशतं नरः ॥



गरुडपुराणे—

मूलेन क्रीत्वा घर्मान्ते जलदानं प्रयच्छति ।  
 स याति चन्द्रसालोक्यं शुभमालांशुकावृतः ॥  
 क्षीरकुल्मास्तमायान्ति तथाऽऽयान्ति मधुसूताः ।  
 घृतदध्नुदकारस्तस्य समुद्रा वशवर्तिनः ॥

देवलः—

सतीयां पथिके विप्रे प्रदद्यात्करयन्त्रिकाम् ।  
 फलं स कूपखातस्य नूनमाप्नोति मानवः ॥

महाभारते—

पिपासया न त्रियते सौपछन्दश्च जायते ।  
 नैवाद्युयाञ्च व्यसनं करकान्यः प्रयच्छति ॥

आदित्यपुराणे—

यो ददाति घटीमात्रं कुण्डिकाः करकांस्तथा ।  
 तृषार्तस्य तथा घर्मे लभते शीतलं जलम् ।  
 इत्युदकदानम् ॥

अथ धर्मघटदानम् ।

विष्णुः—

शीतलेन सुगन्धेन वारिणा पूरितं घटम् ।  
 शुक्लचन्दनदिग्धाङ्गं पुष्पदामोपशोभितम् ॥  
 दध्योदनभृतं कुर्याच्छरावं तस्य चोपरि ।  
 उपानच्छत्रसंयुक्तं धर्मार्थं कल्पयेद्धटम् ॥  
 पुष्पाक्षतं गृहीत्वा तु इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।  
 ॐ नमो विष्णुरूपाय नमः सागरसंभव ॥  
 अपाम्पूणोद्धरास्मांस्त्वं दुःखसंसारसागरात् ।  
 उदकुम्भो मया दत्तो प्रीष्मकाले दिने दिने ॥  
 उदकुम्भप्रदानेन प्रीयतां मधुसूदनः ।

भविष्योत्तरे—

प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टितो नवः ।  
 ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ।  
 वसन्तप्रीष्मयोर्मध्ये यः पानीयं प्रयच्छति ।



यष्टिदानम् ।

२८३

पले पले सुवर्णस्य फलमाप्नोति मानवः ॥  
 मार्गशीर्षात्समारभ्य उदकुम्भं तु यः क्षिपेत् ।  
 दिने दिने सहस्रस्य गवां पुण्यफलं लभेत् ॥  
 तस्यैवोद्यापनं कार्यं मासि मासि नरोत्तम ।  
 मण्डकावेष्टकाभिश्च पक्वान्नैः सार्वकामिकैः ॥  
 उद्दिश्य शङ्करं विष्णुं ब्रह्माणमथवा पितृन् ।  
 सतिलं प्रोक्ष्यित्वा तु मन्त्रेणानेन मानवः ॥  
 एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।  
 अस्य प्रदानात्सततं मम सन्तु मनोरथाः ॥  
 जनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति ।  
 वसन्तमीषमसमये गोप्रदानफलं लभेत् ॥  
 इति धर्मघटदानम् ॥

अथ यज्ञोपवीतदानम् ।

बौधायनः—

यज्ञोपवीतदानेन जायते ब्राह्मवर्चसी ।  
 तस्मात्तानि प्रदेयानि ब्राह्मणैर्यो विपश्चिता ॥

अत्रिः—

क्षौमजं वापि कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा ।  
 यज्ञोपवीतं यो दद्याच्छ्रेतवर्णं सुशोभनम् ॥  
 यथाशक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ।

नन्दिपुराणे—

यज्ञोपवीतदानेन सुरैर्यो ब्राह्मणाय वा ।  
 भधेद्विप्रश्चतुर्वेदः शुद्धधीर्नात्र संशयः ॥

विष्णुप्रोक्ते—

उपाकर्मणि विप्रैर्यो दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ।  
 आयुष्मान्जायते तेन कर्मणा मानवो भुवि ॥  
 इति यज्ञोपवीतदानम् ।

अथ यष्टिदानम् ।

यष्टिं ये च प्रयच्छन्ति नेत्रहीनेऽथ दुर्बले ।  
 तेषां सुविपुलः पन्थाः फलमूलोपशोभितः ॥



ब्रह्मवैवर्ते—

ये पङ्क्तुभ्यश्च पाथेभ्यो दीनेभ्योऽपि दयालवः ।  
यष्टिदानं प्रकुर्वन्ति निरोगास्ते न संशयः ॥  
पङ्क्तोश्चरणकार्याणि यष्टिः प्रकुरुते सदा ।  
गोसर्पादिनिवृत्तिश्च जायते यष्टिधारणात् ॥  
भीतानां शरणं यष्टिर्गच्छतां निशि वा वने ।  
शङ्कां पङ्क्ताहिवातोत्थां नियमेन निरस्यति ॥

स्कन्दपुराणे—

यतिभ्यो वैणवं दण्डं द्विजेभ्योऽपि खनित्रकम् ।  
प्रदाय परलोके स यमदण्डं न गच्छति ॥  
प्रददाति यथावर्णं यो दण्डं ब्रह्मचारिणे ।  
स महापुरुषो लोके ब्रह्मवर्चसमश्नुते ॥  
इति यष्टिदानम् ।

अथेन्यनदानम् ।

वह्निपुराणे—

य इन्धनानि काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।  
सर्वार्थास्तस्य सिद्धयन्ति तेजस्वी चापि जायते ॥  
हेमन्ते शिशिरे चैव पुण्योऽग्निं यः प्रयच्छति ।  
सर्वलोकप्रतापार्थं पुण्यां गतिमवाप्नुयात् ॥

यमः—

इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्भुवि जायते ।

महाभारते—

यश्चेन्धनार्थं काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।  
प्रतापनार्थं राजेन्द्र प्रवृत्ते शिशिरे नरः ॥  
सिद्धयन्त्यर्थाः सदा तस्य कार्याणि त्रिविधानि च ।  
उपर्युपरि शत्रूणां वपुषा दीप्यते नरः ॥  
भगवांश्चास्य सुप्रीतो वह्निर्भवति नित्यशः ।  
न तं त्यजन्ति पशवः संग्रामेषु जयत्यपि ॥  
इतीन्धनदानम् ।



## अथाम्रीष्टिकादानम् ।

भविष्योत्तरे कृष्ण उवाच—

आदौ मार्गशिरे मासि शोभने दिवसे शुभे ।  
 अम्रीष्टिकां कारयित्वा सुखासनवतीं दृढाम् ॥  
 देवाङ्गणे मठे हट्टे विस्तीर्णे चत्वरे तथा ।  
 उभयोः सन्ध्योः कृत्वा सुशुद्धं काष्ठसञ्चयम् ॥  
 ततः प्रज्वालयेदग्निं हुत्वा व्याहृतिभिः क्रमात् ।  
 ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥  
 अनेन विधिना कृत्वा प्रत्यहं ज्वालयेत्ततः ।  
 यदि कश्चित्छुधार्तः स्याद्भोजनं तस्य कल्पयेत् ॥

अथ प्रयोगः । अद्येत्यादिहेमन्तशिशिराख्यमृतद्वयं यावत्प्रत्यहं  
 शीतार्तप्राणितापनार्थमिमामम्रीष्टिकां विष्णुदैवतां षष्टिसहस्रषष्टिशता-  
 विच्छिन्नब्रह्मलोकमहितत्वानन्तरसर्वार्थसंपन्नचतुर्वेदित्वप्राप्तिकामोऽहमु-  
 त्सृजे । अस्य दानस्य फलमपि तत्रैव—

विमाने चार्कसङ्काशे समारूढो महामते ।  
 षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥  
 अर्चितोऽत्यन्तसन्तुष्टो ब्रह्मलोके महीयते ।  
 इह लोकेऽवतीर्णश्च चतुर्वेदो द्विजो भवेत् ॥  
 नीरुजः सत्यवादी च अम्रितेजाः प्रभावतः ।

चैत्ये सुरालयसभावसथेषु भव्यां येऽम्रीष्टिकां प्रचुरकाष्ठवतीं प्रददुः ।  
 हेमन्तशैशिरऋतौ सुखदां जनानां कार्याभिदीप्तममलं वपुरावहन्ति ॥

इत्यम्रीष्टिकादानम् ।

## अथ दीपदानम् ।

संवर्तः—

देवागारे द्विजानां वा दीपं दत्त्वा चतुष्पथे ।  
 मेधावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्माश्च सदा भवेत् ॥  
 गरुडपुराणे—

नीलकण्ठस्य मोक्षेण गयायां च तिलोदकैः ।  
 वर्षासु दीपदानेन पितृणामनृणो भवेत् ॥



नीलकण्ठस्य मोक्षो नीलकण्ठवृषोत्सर्गः ।  
 यस्तु ब्राह्मणगेहेषु दीपमालां प्रयच्छति ॥  
 स निर्जित्य तमो घोरं ज्योतिषां लोकमाप्नुयात् ।  
 महाभारते—

दीपप्रदानं वक्ष्यामि फलयोगमनुत्तमम् ।  
 यथा येन यदा चैव प्रदेया यादृशाश्च ते ॥  
 ज्योतिस्तेजाः प्रकाशं वाऽप्यूर्ध्वगत्याऽपि चार्णवे ।  
 प्रदानं तेजसां तस्मात्तेजो वर्द्धयते नृणां ॥  
 अन्धं तमसामिहं च दक्षिणायनमेव च ।  
 उत्तरायणमेतस्माद्दीपदानं प्रशस्यते ॥  
 यस्मादूर्ध्वगतेस्तु तमसश्चैव भेषजम् ।  
 तस्मादूर्ध्वगतिर्दाता भवेत्तत्रेति निश्चयः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

महावर्तिः सदा देया भूमिपाल महाफला ।  
 कृष्णपक्षे विशेषेण तत्रापि च विशेषतः ॥  
 अमावास्या विनिर्दिष्टा द्वादशी च महाफला ।  
 आश्वयुज्यामतीतायां कृष्णपक्षस्य या भवेत् ॥  
 अमावास्या तदा पुण्या द्वादशी च विशेषतः ।  
 देवस्य दक्षिणे पार्श्वे देया तैलतुला नृप ॥  
 फलाष्टकयुता राजन्वर्ति तत्रैव दापयेत् ।  
 वाससा तु समग्रेण सोपवासो जितेन्द्रियः ॥  
 महावर्तिद्वयमिदं सकृद्वत्त्वा महीयते ।  
 गिरिशृङ्गेषु दातव्यं नदीनां पुलिनेषु च ॥  
 चतुष्पथेषु रथ्यासु ब्राह्मणानां च वेश्मसु ।  
 वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥  
 दीपदानेन सर्वत्र महत्फलमुपाश्नुते ।  
 यावन्त्यक्षिनिमेषाणि दीपः प्रज्वलते नृप ॥  
 तावन्त्येव स राजेन्द्र वर्षाणि दिवि मोदते ।  
 दीपदानेन राजेन्द्र चक्षुष्मानिह जायते ॥  
 रूपसौभाग्ययुक्तस्तु धनधान्यसमन्वितः ।  
 इति दीपदानम् ।



मासेष्वनुक्रमेण दानानि ।

२८७

अथाऽभयदानम् ।

संवर्तः—

भूताऽभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।  
दीर्घमायुश्च लभते सदा च सुखितो भवेत् ॥

रामायणे—

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तमपराधिनम् ।  
न हन्याच्छरणं प्राप्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥

महाभारते—

लोभाद्देवाद्भयाद्वाऽपि यस्त्यजेच्छरणागतम् ।  
ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः ॥

अथ मासेष्वनुक्रमेण दानानि ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

तिलप्रदानान्माघे तु याम्यं लोकं न गच्छति ।  
प्रियङ्गुं फाल्गुने दत्त्वा प्रियो भवति भूतले ॥  
चैत्रे चित्वाणि वस्त्राणि दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते ।  
अपूपानां प्रदानेन वैशाखे स्वर्गमश्नुते ॥  
छत्रदानं तथा ज्येष्ठे सर्वान्कामान्समश्नुते ।  
आषाढे चन्दनं देयं सकर्पूरं महाफलम् ॥  
आवणे वस्त्रदानस्य कीर्तितं सुमहत्फलम् ।  
प्रौष्ठपदे तथा मासे प्रदानात्फणितस्य च ॥  
आश्विने धृतदानेन रूपवानभिजायते ।  
कार्तिके दीपदानेन सर्वथोज्ज्वलमाप्नुयात् ॥  
लवणं मार्गशीर्षे तु दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते ।  
पौषे काञ्चनदानेन परां तुष्टिं तथैव च ॥  
पुष्पाणां च सिते पक्षे दानं लक्ष्मीकरं मतम् ।  
फलानां च तथा दानं कृष्णपक्षे महाफलम् ॥

अथाश्वत्थसेवनम् ।

भविष्योत्तरे—

उदकुम्भप्रदानेऽपि ह्यशक्तो यः पुमान्भवेत् ।



तेनाऽश्वत्थतरोर्मूलं सेच्यं नित्यं जितात्मना ॥  
 सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःस्वप्ननाशनम् ।  
 सर्वरोगप्रशमनं नित्यं सन्ततिवर्द्धनम् ॥  
 अश्वत्थरूपी भगवान्प्रीयतां मे जनार्दनः ।  
 इत्युच्चार्य नमस्कृत्य प्रत्यहं पापनाशनम् ॥  
 यः करोति तरोर्मूले सेकं मासचतुष्टयम् ।  
 सोऽपि तत्फलमाप्नोति श्रुतिरेषा सनातनी ॥  
 इत्यश्वत्थसेचनम् ।

### अथ पान्थोपचारः ।

गरुडपुराणे—

पान्थं परिचरेद्यस्तु शयनासनभोजनैः ।  
 स स्वल्पेन प्रयासेन जयति क्रतुयाजिनम् ॥  
 दत्त्वा वासो विवस्त्राय रोगिणे रुक्प्रतिक्रियाम् ।  
 तृषार्ताय जलं दत्त्वा सृष्टमन्नं बुभुक्षवे ॥  
 पथिकाय यथावित्तं सर्वं तरति दुष्कृतम् ।  
 अध्वन्यमनुमान्यापि शाकमूलफलैर्जलैः ॥  
 सकृत्सत्कृत्य वाचाऽपि श्रेयसो भाजनं भवेत् ।

तथा—

अभावे तृणभूम्यम्बुपत्रेन्धनफलानि च ।  
 दत्त्वाऽऽगतायाऽनिर्विण्णः स्वर्गं याति प्रियेण वा ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

उपानद्भ्यां च छत्रेण श्रान्तं संयोज्य मानवः ।  
 संस्थाप्य शुभदेशे तु क्षणाद्बहुफलं लभेत् ॥

तथा—

मूलेन वासयित्वापि परभारं विचक्षणः ।  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं दशगुणं भवेत् ॥

तथा—

चौरेभ्यो रक्षणं कृत्वा शकलोके महीयते ।

स्कान्दे—

यस्तु मार्गपरिश्रान्तं द्विजातिं यामकर्षितम् ।  
 तैलेनाभ्यञ्जयेत्प्राज्ञः स सुखी मोदते चिरम् ॥



सर्पिषा कपिलाधेनोरथवाऽन्येन सर्पिषा ।  
 उत्तरायणमासाद्य योऽभ्यञ्जयति धूर्जटिम् ॥  
 महापूजां घृतेनैव तस्मिन्नेव दिने शिवे ।  
 कृत्वा मनुष्यो लभते राज्यं निहतकण्टकम् ॥  
 सर्पिःपलसहस्रेण गोविन्दस्य शिवस्य च ।  
 महास्नानं नरः कृत्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यति ॥

नन्दिपुराणे—

पादाभ्यङ्गं तु यो दद्यात्पान्थाय परिखेदिने ।  
 स शुभाभरणैः पादैर्वेन्दिभिर्नित्यवन्दितः ॥  
 भवेन्नृपो महाभागो मण्डले दशयोजने ।  
 संवाह्याऽथ्वपरिश्रान्तं पादाभ्यङ्गादिना नरः ॥  
 धर्मस्य पुरमाप्नोति सर्वकामगुणोज्ज्वलः ।  
 दत्त्वा वारि सुसंस्पर्शं पादाभ्यां च द्विजातये ॥  
 उच्छिष्टमार्जनाच्चाऽपि गोदानफलमश्नुते ।

भविष्यपुराणे—

ब्राह्मणस्य तु यो भक्त्या पादौ प्रक्षाल्य शक्तिः ।  
 घृतेनाऽभ्यञ्ज्य पादौ तु विष्णुलोके महीयते ॥  
 इति पान्थोपचारः ।

अथ गोपरिचर्या ।

विष्णुः—

गवां कण्डूयनं चैव सर्वकलमषनाशनम् ।

गवां प्रासप्रदानेन स्वर्गलोके महीयते ॥

आदित्यपुराणे—

लवणं च यथाशक्त्या गवां यो वै ददाति च ।

तेषां पुण्यकृतां लोकान्यावां लोकं व्रजन्ति ते ॥

महाभारते—

कृत्वा गवार्थं शरणं शीतवातक्षयं महत् ।

आसप्तमं तारयति कुलं भरतसप्तमम् ॥

हारीतः—

द्वौ मासौ पाययेद्भूतसं तृतीये द्विस्तनं दुहेत् ।

चतुर्थे त्रिस्तनं चैव यथान्यायं यथाबलम् ॥



ब्रह्मपुराणे—

आदौ विचार्य वयसः परिमाणं बलं रुचिम् ।  
आकस्मिकं तु दातव्यं पुण्यार्थं तु गवाहिकम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

गवां कण्डूयनं चैव सर्वकल्मषनाशनम् ।  
तासां शृङ्गोदकं नाम जाह्नवीजलसन्निभम् ॥

तथा—

दत्त्वा परगवे ग्रासं पुण्यं स महदाप्नुयात् ।  
शिशिरं सकलं कालं ग्रासं परगवे तथा ॥  
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति संवत्सरशब्दानि षट् ।  
अग्रभक्तं नरो दद्यान्नित्यमेव तथा गवाम् ॥  
मासाष्टकेन लभते नाकलोकं समायुतम् ।  
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं स्मृतिनिर्मितम् ॥  
तत्रैकमशनं दत्त्वा गवां नित्यमतन्द्रितः ।  
द्वितीयं यः समश्नाति तेन संवत्सरं नरः ॥  
गवां लोकमवाप्नोति यावन्मन्वन्तरं द्विजः ।  
शीतत्राणं गवां कृत्वा गृहे पुरुषसत्तम ॥  
वारुणं लोकमाप्नोति क्रीडत्यब्दगणायुतम् ।

तथा—

सिंहव्याघ्रभयत्रस्तां पङ्कलग्नां जले गताम् ।  
गामुद्धृत्य नरः स्वर्गे कल्पभोगानुपाश्रुते ॥  
तासां संस्पर्शनं धन्यं सर्वकल्मषनाशनम् ।  
दानेन च तथा तासां कुलान्यपि समुद्धरेत् ॥  
उदक्यासूतिकादोषो नैव तत्र गृहे भवेत् ।  
इति गोपरिचर्या ।

अथ सहस्रादिविप्रभोजनविधिः ।

भारते—

ब्राह्मणानां सहस्रं तु संभोज्य भरतर्षभ ।  
नरः पापात्प्रमुच्येत पापेष्वभिरतोऽपि यः ॥  
भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप ।



न्यायविद्धर्मविदुषां स्मृतिभाष्यविदां तथा ।

न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते ।

सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाऽप्यश्नुते सुखम् । इति ॥

लक्षभोजनादौ तु न विधेः काप्युपलम्भः । यस्तु मैथिलग्रन्थे कचिद-  
लेखि सोऽप्यनाकरः ।

अथैतत्प्रयोगः । देशकालौ सङ्कीर्त्य सकलपापप्रमोचननरकागमन-  
संसारासेवनैहिकसर्वकामसंप्राप्त्यामुष्मिकसुखप्राप्तिरूपफलकामः सहस्र-  
ब्राह्मणान्भोज्यादिनाऽऽतृप्तिं तर्पयिष्ये इति सङ्कल्प्य पुण्याहं वाचयि-  
त्वाऽऽदिकालाष्टकं संपूज्य ब्राह्मणान्धूपदीपवस्त्रालङ्कारैः संपूज्य सघृताक्ते-  
नाऽऽतृप्तिं भोजयेत् । ततोऽग्निस्थापनाभिमुखान्तं कृत्वा केशवादि-  
भिर्द्वादशनामभिः स्वाहान्तैर्वृतेन हुत्वा दध्यन्नं ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य  
स्निष्टकुदादि कृत्वा ब्राह्मणेभ्यश्छत्रोपानहौ प्रत्येकं दत्त्वा स्वस्ति वाच्य  
तान्क्षमापयित्वाऽऽशिषो गृहीत्वा विसर्जयेत् । ततो मुक्तशेषं बन्धुसहितौ  
दम्पती हृष्टमनस्कौ भुञ्जीयातामिति । अनेन चैकस्मिन्नेव दिने सह-  
स्रादिभोजनं कार्यमिति प्रतीयते । शिष्टास्त्वेकदिनैरपि समापयन्ति,  
तत्र मूलं विचारणीयम् ।

अथ नानाद्रव्यदानमन्त्राः ।

हेमाद्री व्रतखण्डे—

धन्यं करोति दातारमिह लोके परत्र च ।

तस्मात्प्रदीयते धान्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अन्नेन जायते विश्वं प्राणिनां प्राणरक्षणम् ।

तण्डुला वैश्वदेवत्याः पाकेनाऽन्नं भवन्ति ये ॥

यावन्ताः सर्वयज्ञेषु प्रशस्ता होमकर्मणि ।

तस्मात्तन्दुलदानेन प्रीयतां विश्वदेवताः ॥ तण्डुलानाम् ।

यस्मादन्नमयो जम्बूद्वीपे गोधूमसंभवः ।

गन्धर्वसौख्यधनद अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ गोधूमानाम् ।

धान्यराजांश्च माङ्गल्या द्विजप्रीतिकरा यवाः ।

तस्मादेषां प्रदानेन समास्त्वभिमतं फलम् ॥ यवानाम् ।

मुद्गबीजानि वै यस्मात्प्रियाणि परमेश्विनः ।

तस्मादेषां प्रदानेन प्रीतिः सिद्धास्तु मे सदा ॥ मुद्गानाम् ।



यस्मान्मधुवधे काले विष्णुदेहसमुद्भवाः ।  
 पितृप्रीतिकरा माषा अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ माषाणाम् ।  
 पुरा गोवर्द्धनोद्धारसमये हरिभक्षिताः ।  
 चणकाः सर्वपापघ्ना अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ चणकानाम् ।  
 अभिवर्णोद्भवा नाम बलकीर्तिप्रवर्द्धनाः ।  
 कुलस्थाः सर्वपापघ्ना अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ कुलस्थानाम् ।  
 तिलाः पापहरा नित्यं विष्णुदेहसमुद्भवाः ।  
 तिलदानेन सर्वं मे पापं नाशय केशव ॥ तिलानाम् ।  
 तिलाः स्वर्णमया युक्ता दुरितक्षयकारकाः ।  
 विष्णुप्रीतिकरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

स्वर्णतिलानाम् ।

तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वकामकराः शुभाः ।  
 शुक्लाश्चैव तथा कृष्णा विष्णुगात्रसमुद्भवाः ॥  
 यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।  
 तिलपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥

सहिरण्यतिलपात्रस्य ।

अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः ।  
 अन्नं ब्रह्माखिलत्राणमस्तु मे जन्मजन्मनि ॥ अन्नस्य ।  
 चन्द्रमण्डलमध्यस्थं चन्द्राम्बुजसमप्रभम् ।  
 दध्यन्नं तस्य दानेन प्रीयतां वामनो मम ॥ दध्यन्नस्य ।  
 दध्यन्नं सोपदंशं च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।  
 प्रीयतां धर्मराजो हि तद्दानान्मम सर्वदा ॥

सोपदंशदध्यन्नस्य ।

पानीयसहितं चैव सदध्योदनपात्रकम् ।  
 समर्चितं च सफलं सद्दक्षिणं गृहाण मे ॥ सपानीयदध्यन्नस्य ।  
 सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्वव्यापी सनातनः ।  
 नारायणः प्रसन्नः स्यात्कृसरान्नप्रदानतः ॥ कृसरान्नस्य ।  
 पायसं परमानन्दं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।  
 सर्वदैवतयोग्यं च श्रेयःपुष्टिं प्रयच्छतु ॥ पायसान्नस्य ।  
 केशवप्रीतिदा भक्ष्याः शम्भुब्रह्मार्कतुष्टिदाः ।



पृथग्विधापूपकाद्या यच्छन्तु बलमौरसम् ॥ भक्ष्याणाम् ।  
 आदित्यतेजसोत्पन्नाः सर्वमङ्गलकारकाः ।  
 मण्डकाः सर्वपापघ्ना अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ मण्डकानाम् ।  
 आदित्यतेजसोऽभ्यक्तं ज्ञातिश्रैष्ठ्यकरं परम् ।  
 दत्तं ते मम बिप्र त्वं प्रतीच्छाऽपूपमुत्तमम् ॥ अपूपान्नस्य ।  
 प्राजापत्या यतः प्रोक्ताः सक्तवो यज्ञकर्मणि ।  
 तस्मात्सक्तून्प्रयच्छामि प्रीयतां मे प्रजापतिः ॥ सक्तूनाम् ।  
 जलक्ष्मीहरणं नित्यं नित्यं सौभाग्यवर्द्धनम् ।  
 क्षीरं मङ्गलमायुष्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ दुग्धस्य ।  
 कामधेनोः समुद्धृतं विष्णोः प्रीतिकरं परम् ।  
 नवनीतं प्रदास्यामि बलं पुष्टिं च देहि मे ॥ नवनीतस्य ।  
 कामधेनोः समुद्धृतं देवानामुत्तमं हविः ।  
 आयुर्विवर्द्धनं दातुराज्यं पातु सदैव माम् ॥ आज्यस्य ।  
 याऽलक्ष्मीर्यच्च मे दौःस्थ्यं सर्वगात्रे व्यवस्थितम् ।  
 तत्सर्वं शमयाज्य त्वं लक्ष्मीं पुष्टिं च वर्धय ॥

यज्ञार्थाज्यस्य ।

आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं स्मृतम् ।  
 आज्यं सुराणामाहारमाज्ये देवाः प्रतिष्ठिताः ॥

पापक्षयार्थाज्यस्य ।

तैलं पुष्टिकरं नित्यमायुष्यं पापनाशनम् ।  
 अमङ्गल्यहरं पुण्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ तैलस्य ।  
 अमृतस्य कुलोत्पन्ना इक्षुधारातिशर्करा ।  
 सूर्यप्रीतिकरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ शर्करायाः ।  
 मनोभवधनुर्मध्यादुद्धृता शर्करा यतः ।  
 तस्मादस्याः प्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः ॥ खण्डस्य ।  
 प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा ।  
 तथा रसानां प्रवरः सदैवैक्षुरसो मतः ॥  
 मम तस्मात्परां शान्तिं ददस्व गुड सर्वदा । गुडस्य ।  
 इक्षुदण्डं महापुण्यं रसालं सर्वकामदम् ।  
 तुभ्यं दास्यामि तेनाशु प्रीयतां परमेश्वरः ॥ इक्षोः ।



यस्मात्पितृणां आद्धे त्वं पीतं मध्वसृतोद्भवम् ।  
 तस्मात्तव प्रदानेन रक्ष मां दुःखसागरात् ॥ मधुनः ।  
 वारिपूर्णघटोपेतं देवत्रयमयं यतः ।  
 प्रीयतां धर्मराजस्तु दानेनानेन पुण्यदः ॥ उदकुम्भस्य ।  
 यमामनन्ति विश्वेशं विश्वनाथमुमासुतम् ।  
 विघ्नेश्वर क्षिप्रचर तुभ्यं दास्याम्यभीष्टदम् ॥

गणेशप्रतिमायाः ।

ददामि भानुं भवते सर्वोपस्कारसंयुतम् ।  
 मनोभिलषितावाप्तिं करोतु मम भास्करः ॥ सूर्यमूर्तेः ।  
 त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव यस्मात् ।  
 तथाऽसुराणां त्रिपुरं च दग्धमेकेषुणा लोकहितार्थमीश ॥  
 त्वद्रूपदानादहमप्यदोषो दोषैर्विमुक्तस्तु गुणान्प्रपद्ये ।  
 तथा कुरु त्वं शरणं प्रपद्ये मयि प्रभो देववर प्रसादम् ॥

शिवमूर्तेः ।

प्रसीदतु भवो नित्यं कृत्तिवासा भृशेश्वरः ।  
 पार्वत्या सहितो देवो जगदुत्पत्तिकारकः ॥ उमाभृशेश्वरयोः ।  
 शिवशक्त्यात्मकं यस्माज्जगदेतश्चराचरम् ।  
 यस्मादनेन सर्वं मे करोतु भगवाञ्जिशवम् ॥  
 कैलासवासी गौरीशो भगवान्भगनेत्रवित् ।  
 चराचरात्मको लिङ्गरूपी दिशतु वाञ्छितम् ॥ लिङ्गस्थ ।  
 इदं मारकतं लिङ्गं रौप्यपीठसमन्वितम् ।  
 धान्यैर्द्वादशभिर्युक्तमेकादशफलान्वितम् ॥  
 संप्रदद्यां विधानेन यथोक्तं फलमस्तु मे । मरकतलिङ्गस्थ ।

काश्मीरलिङ्गपक्षे तु इदं काश्मीरजम्, इति वदेत् ।

महाकोशनिवासेन चक्रार्चैरुपशोभितम् ।  
 अस्य देव प्रदानात्तु मम सन्तु मनोरथाः ॥ शालग्रामस्य ।  
 महाकोशनिवास त्वं महादेवो भृशेश्वरः ।  
 प्रीयतां तव दानेन ततः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ शिवनाभस्य ।  
 शङ्कुकर्णप्रलम्बोष्ठलम्बध्रूदीर्घनासिक ।  
 अष्टनेत्र चतुर्वक्त्र विस्तीर्णशतयोजन ॥  
 व्यतीपात नमस्तेऽस्तु सोमसूर्यसुत प्रभो ।



यद्दानादिकृतं सर्वं तदक्षयमिहाऽस्तु मे ॥ व्यतीपातस्य ।  
 विधुन्तु नमस्तेऽस्तु सिंहिकानन्दनाऽव्यय ।  
 दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्वयात् ॥ स्वर्णनागस्य ।  
 जन्मान्तरसहस्रेषु यत्कृतं दुरितं मया ।  
 स्वर्णपात्रप्रदानेन क्षान्तिरस्तु सदा मम ॥ स्वर्णपात्रस्य ।  
 त्वदुद्भवो जगत्स्रग्दुर्वेधसो हेमपङ्कज ।  
 पद्मावास हरेर्नाभिजात मां पाहि सर्वदा ॥ स्वर्णपद्मस्य ।  
 कान्तारचनदुर्गेषु चौरव्यालाकुले पथि ।  
 हिंसकाश्च न हिंसन्तु सिंहदानप्रभावतः ॥ स्वर्णसिंहस्य ।  
 हिरण्यगर्भसंभूतं सौवर्णं चाङ्गुलीयकम् ।  
 धर्मप्रदं प्रयच्छामि प्रीयतां कमलापतिः ॥ अङ्गुलीयस्य ।  
 काञ्चनं हस्तवलयं रूपकान्तिलुखप्रदम् ।  
 विभूषणं प्रदास्यामि विभूषयतु मां सदा ॥ वलयस्य ।  
 क्षीरोदमथनोद्भूतमुद्धृतं कुण्डलद्वयम् ।  
 श्रिया सह समुद्धृतं ददे श्रीः प्रीयतां मम ॥ कुण्डलस्य ।  
 अगम्यागमनं चैव परदाराभिमर्शनम् ।  
 रौप्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥ रौप्यपात्रस्य ।  
 असुरेषु समुद्धृतं रजतं पितृवल्लभम् ।  
 तस्मादस्य प्रदानेन रुद्रः संप्रीयतां मम ॥ रजतस्य ।  
 परापवादपैशून्यादभक्ष्यस्य च भक्षणात् ।  
 तत्प्रजातं च यत्पापं ताम्रपात्रात्प्रणश्यतु ॥ ताम्रपात्रस्य ।  
 यानि पापानि काम्यानि कर्मोत्थानि कृतानि वै ।  
 कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ॥ कांस्यपात्रस्य ।  
 यानि पापान्यनेकानि मया यानि कृतानि च ।  
 लोहपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु सर्वदा ॥ लोहपात्रस्य ।  
 यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वदेवा व्यवस्थिताः ।  
 तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥ रत्नस्य ।  
 ताम्रपर्ण्यवोत्पन्ना वर्णाद्याः कल्पवर्णिताः ।  
 मुक्ताः शुक्तयुद्धवाः सन्तु भुक्तिमुक्तिप्रदा मम ॥ मुक्तानाम् ।  
 यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।



दानान्यम्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवतिह ॥ भुवः ।  
 सर्वभूताश्रया भूमिर्वराद्देण समुद्धृता ।  
 अनन्तसस्यफलदा अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ सस्यभूमेः ।  
 सदा रोहन्ति बीजानि फालकृष्टे महीतले ।  
 तव प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ॥ कृष्टक्षेत्रस्य ।  
 इदं गृहं गृहाण त्वं सर्वोपस्करसंयुतम् ।  
 तव दानप्रसादेन ममाऽऽस्त्वभिमतं फलम् ॥ गृहस्य ।  
 समाश्रयं प्रयच्छामि प्रीयतां मे जगन्निधिः । आश्रयस्य ।  
 गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।  
 यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ गोः ।  
 यमद्वारे महाघोरा या सा वैतरणी नदी ।  
 तां तर्तुकामो यच्छामि उत्तारय सुखेन माम् ॥ वैतरण्याः ।  
 यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनुर्वै कृष्णसन्निभा ।  
 सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ कृष्णधेनोः ।  
 मृत्युत्क्रान्तिप्रवृत्तस्य सुखोत्क्रान्तिविवृद्धये ।  
 तुभ्यं संप्रददे नाम्ना गां समुत्क्रान्तिसंज्ञिताम् ॥ उत्क्रान्तिधेनोः ।  
 इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ।  
 महिषीदानमाहात्म्यात्साऽस्तु मे सर्वकामदा ॥  
 धर्मराजस्य साहाय्यं यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ।  
 महिषासुरस्य जननी साऽस्तु मे सर्वकामदा ॥ महिष्याः ।  
 महिषी वत्ससंयुक्तां सुशीलां च पयस्विनीम् ।  
 रक्तवस्त्रेण पुष्पेण दत्त्वा मृत्युं जयेन्नरः ॥ मृत्युमहिष्याः ।  
 बाङ्गमनःकायजनितं यत्किञ्चिन्मम दुष्कृतम् ।  
 तत्सर्वं विलयं यातु त्वद्दानेनोपसेवितम् ॥ मेघ्याः ।  
 रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्वोपकरणैः सदा ।  
 जगतः संप्रवृत्तोऽसि त्वामतः प्रार्थये शिवम् ॥ ऊर्णमेषस्य ।  
 देवानां यो मुखं हन्यवाहनः सर्वपूजितः ।  
 तस्य त्वं वाहनं पूज्यं देवैः सेन्द्रैर्महर्षिभिः ॥  
 अग्निमान्द्यं पूर्वकर्मविपाकोत्थं तु यन्मम ।  
 तत्सर्वं नाशय क्षिप्रं जठराग्निं विवर्द्धय ॥ मेषस्य ।  
 त्वं पूर्वं ब्रह्मणा सृष्टा पवित्रं भवती परा



त्वत्प्रसूतौ स्थिता यज्ञास्तस्माच्छान्तिकरी भव ॥ अजायाः ।  
 गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् ।  
 गोत्राय शर्मणे दत्तां त्वं हि विप्र समाश्रय ॥ कन्यायाः ।  
 इयं दासी मया तुभ्यं श्रीवत्स प्रतिपादिता ।  
 तव कर्मकरी भोग्या यथेष्टं भद्रमस्तु मे ॥ दास्याः ।  
 यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च ।  
 शय्या समाप्यशून्याऽस्तु तस्माज्जन्मनि जन्मनि ॥ शय्यायाः ।  
 देवदेव जगन्नाथ विश्वात्मन्दत्तयाऽनया ।  
 प्रभो शिविकया देव प्रीतो भव जनार्दन ॥ शिविकायाः  
 रथाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्मणे ।  
 विश्वभूताय नाथाय अरुणाय नमो नमः ॥ रथस्य ।  
 कण्टकोच्छिष्टपाषाणवृश्चिकादिनिवारणे ।  
 पादुके संप्रदास्यामि विप्र प्रीत्या प्रगृह्यताम् ॥ पादुकयोः ।  
 उपानहौ प्रदास्यामि कण्टकादिनिवारणे ।  
 सर्वस्थानेषु सुखदावतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ उपानहोः ।  
 इहाऽमुत्राऽऽतपत्राणं कुरु केशव मे प्रभो ।  
 छत्रं त्वत्प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया शुभम् ॥ छत्रस्य ।  
 कमण्डलुर्जलैः पूर्णः स्वर्णगर्भः सुलक्षणः ।  
 अर्पितस्ते महासेन प्रसन्नस्तेन मे भव ॥ कमण्डलुनः ।  
 शशाङ्ककरसङ्काश हिमडिण्डीरपाण्डुर ।  
 प्रोत्सारयाशु दुरितं चामराऽमरवल्लभ ॥ चामरस्य ।  
 पत्रिका सर्वजन्तूनां शैत्यानन्दकरी शुभा ।  
 पितॄणां तृप्तिदा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ व्यजनस्य ।  
 दर्शनैव त्वमादर्शं नृणां मङ्गलदायकः ।  
 शौर्यसौभाग्यसत्कीर्तिनिर्मलज्ञानदो भव ॥ दर्पणस्य ।  
 भगवन्शूलहस्तेश दक्षाध्वरविनाशन ।  
 तवायुधप्रदानेन शूलं नश्यतु मे सदा ॥ शूलस्य ।  
 सर्वग्रहक्षतारेश सर्वेशस्त्वं हि भास्कर ।  
 संक्रान्तिशूलदोषं मे निवारय दिवाकर ॥ संक्रान्तिशूलस्य ।  
 त्वं देवानां मनुष्याणां रक्षसामायुधावसि ।



तस्माद्देवां प्रदानेन शान्तिर्भवतु सर्वदा ॥ आयुषस्य ।  
 सोमोद्भवानि दारुणि जातवेदःप्रियाणि च ।  
 तस्माद्देवां प्रदानेन श्रियं देहि विभावसो ॥ काष्ठानाम् ।  
 शरण्यं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम् ।  
 सुवेषधारि त्वं यस्माद्वासः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ वस्त्रस्य ।  
 रक्तवस्त्रयुगं यस्मादादित्यस्य प्रियं सदा ।  
 प्रदानादस्य मे सूर्यो जतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

रक्तवस्त्रयुग्मस्य ।

धर्मराजेन विधृतं कृष्णवस्त्रं सुशोभनम् ।  
 सर्वह्येवविनाशाय कृष्णवस्त्रं ददाम्यहम् ॥ कृष्णवस्त्रस्य ।  
 और्णपट्टमनुष्येयं स्वर्णबीजं तव प्रभो ।  
 दत्तं गृहाण देवेश पापं संहर सत्वरम् ॥ और्णपट्टस्य ।  
 और्णमेघसमुत्पन्ना शीतवातभयापहा ।  
 यस्मात्तुषारहारी स्यादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ऊर्णायाः ।  
 ब्रह्मसूत्रं महादिव्यं मया यत्नेन निर्मितम् ।  
 ब्राह्मं तन्मेऽस्तु ते देव ब्रह्मसूत्रप्रदानतः ॥ उपवीतस्य ।  
 अष्टाविंशतिसंख्याकै रद्राक्षैर्योजिता मया ।  
 अर्पिता तव हस्ते च गृहाण सुरसैन्यप ॥ अक्षमालायाः ।  
 सर्वविद्याश्रयं ज्ञानकरणं ललिताक्षरम् ।  
 पुस्तकं संप्रयच्छामि प्रिया भवतु भारती ॥ पुस्तकस्य ।  
 कर्पूरः कदलीभूतो देवदेवप्रियः सदा ।  
 भाग्योत्तमो नृपाणां च तद्दानात्सुखमस्तु मे ॥ कर्पूरस्य ।  
 जटामांशुद्भवां देवीमेणनाभिसमुद्भवाम् ।  
 भक्त्याऽहं संप्रदास्यामि मम सन्तु मनोरथाः ॥ गन्धद्रव्यस्य ।  
 नन्दनावास मन्दारसखे वृन्दारकाचित ।  
 चन्दन त्वं प्रदानान्मे सान्द्रानन्दप्रदो भव ॥ चन्दनस्य ।  
 श्रीखण्डागरकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ।  
 विलेपनं प्रयच्छामि सौख्यमस्तु सदा मम ॥

चन्दनाद्यनुलेपनस्य ।

समस्तेभ्योऽपि वस्तुभ्यः संस्तुवाऽसि सुरासुरैः ।



विन्यस्ताऽङ्गेषु कस्तूरी सुखदाऽस्तु सदा मम ॥ कस्तूर्याः ।  
 कन्दर्पदर्पदं यस्मात्कर्पूरं प्राणतर्पणम् ।  
 अहर्षतिभवस्तापस्त्वदानादपसर्पतु ॥ कर्पूरस्य ।  
 यदभूदङ्गसंलग्नं कुङ्कुमादिविलेपनम् ।  
 जलक्रीडासु गोपीनां द्वारवत्यां जलार्पितम् ॥  
 गोपीचन्दनमित्युक्तं मुनीन्द्रैः कलमषापहम् ।  
 तस्मादस्य प्रदानेन विष्णुर्दिशतु वाञ्छितम् ॥ गोपीचन्दनस्य ।  
 मणिकाञ्चनपुष्पाणि मणिमुक्तामयानि च ।  
 तुलसीपत्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥  
 तुलसीपत्रदानाद्वा ब्रह्मणः कायसंभवम् ।  
 पापं प्रशममायातु सर्वे सन्तु मनोरथाः ॥ तुलस्याः ।  
 ह्लादयन्ति मनो यस्मात्तस्मात्सुमनसः स्मृताः ।  
 दत्ता ददत मे नित्यमत्याह्लादं सतीं श्रियम् ॥ पुष्पस्य ।  
 इदं फलं मया विप्र प्रभूतं पुरस्तस्तव ।  
 तेन मे सफलाऽवाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ फलस्य ।  
 ब्रह्महत्यादिपापघ्नं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।  
 कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ कूष्माण्डस्य ।  
 ताम्बूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।  
 अस्य प्रदानाद्ब्रह्माद्याः शिवं ददतु पुष्कलम् ॥ ताम्बूलस्य ।  
 पूरितं - पूगपूगेन नागवल्लीदलान्वितम् ।  
 चूर्णेन चूर्णपात्रेण कर्पूरपिटकेन च ॥  
 सपूगखण्डनं दिव्यं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम् ।  
 करक त्वं निरातङ्गं त्वत्प्रसादात्कुरुष्व माम् ॥ ताम्बूलकरण्डस्य ।  
 लक्ष्मीप्रिया च लक्ष्मीदा लक्ष्मी च वसनप्रिया ।  
 सौभाग्यकृद्भस्त्रीणां हरिद्रा श्रीप्रदाऽस्तु मे ॥ हरिद्रायाः ।  
 जरा नो जायते यस्मान्मण्डनं शुभकर्मसु ।  
 तस्माज्जीरकदानेन प्रीयतां गिरिजा मम ॥ जीरकस्य ।  
 कञ्चुकीवस्त्रयुग्मैश्च तथा कर्णावतंसकैः ।  
 कण्ठसूत्रैश्च भूषाभिः प्रीयतां निमिनन्दिनी ॥



सौभाग्यद्रव्ययुक्तशूर्पस्य ।

रामपत्नि महाभागे पुण्यमूर्ति निरामये ।

गृहाणेमामि शूर्पाणि मया दत्तानि जानकि ॥ शूर्पस्य ।

नवप्रहदक्षिणादानमन्त्रो मात्स्ये ।

कपिले सर्वभूतानां पूजनीयाऽसि रोहिणि ॥

सर्वतीर्थमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे । इति ॥

इति नानाद्रव्यदानमन्त्राः ।

इति श्रीमीमांसकशङ्करभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे

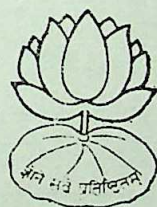
दानमधुखः संपूर्णः ॥





भगवंतभास्करे  
षीपांसकश्रीनीलकण्ठभट्टविरचितः  
**उत्सर्गमयूखः**  
( अष्टमः )

लेलेइत्युपाह्वयंकटेशशास्त्रिणा  
संशोधितः ।



**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड  
दिल्ली ११०००७







# उत्सर्गमयूखः

अष्टमः ८

श्रीगणेशाय नमः

उक्त्वा दानविधिं नाम राममाराध्य भास्करम् ।

उत्सर्गविषये भट्टनीलकण्ठो वदत्यथ ॥

तत्र जलाशयोत्सर्गप्रशंसा विष्णुधर्मोत्तरे—

उदकेन विना तृप्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा ।

तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥

यमः—

कूपारामप्रपाकारी तथा वृक्षावरोपकः ।

कन्याप्रदः सेतुकारी स्वर्गं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

तथा—

तडागे यस्य पानीयं सततं खलु तिष्ठति ।

स्वर्गलोके गतिस्तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥

नन्दिपुराणे—

यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते ।

खानयेत्स नरो याति स्वर्गं प्रेत्य शतं समाः ॥

विष्णुः—

कूपारामतडागेषु देवतायतनेषु च ।

पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौलिकं फलम् ॥

तथा—

सेतुबन्धरता ये च तीर्थशौचरताश्च ये ।

तडागकूपकर्तारो मुच्यन्ते ते तृषाभयात् ॥

तीर्थशौचं मलास्थिपंकाद्यपसारणम् । भविष्योत्तरे—

सर्वस्वेनापि कौन्तेय भूमिष्ठमुदकं कुरु ।

कुलानि तारयेत्कर्ता यत्र गौर्वितृषा भवेत् ॥

अतः शुभागतं द्रव्यं तडागादिषु योजयेत् ।

धन्यः स पन्था विज्ञेयस्तडागं वृक्षमंडितम् ॥



पीत्वा तोयं च मार्गस्था विश्रमन्ति रमन्ति च ।  
 पानीयशोभनं कृत्वा हृदे देवविनिर्मिते ॥  
 प्रणालकरणात्तत्र तृप्तिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ।  
 गृहादौ कूपे दिग्विशेषे फलं देवीपुराणे—  
 पूर्वोमाश्रित्य कर्तव्यं तस्योत्तरपथेऽपि वा ।  
 न पूर्वव्यत्ययं कुर्यान्मठादेवाल्याद्रूहात् ॥  
 कृतं भयप्रदं लोके तथा वाऽस्याग्निजं भयम् ।  
 वायव्यं वापि देवस्य भयदं जायते कृतम् ॥

वराहमिहिरः—

पुष्टिं भूतिं पुत्रहानिं पुरंग्रीनाशं मृत्युं संपदं शस्त्रबाधाम् ।  
 किञ्चित्सौख्यं दिक्षु पूर्वोदि कुर्यात्कूपो मध्ये गेहमर्थक्षयं च ॥ इत्यादि ।  
 जलाशयारंभकालो विष्णुयमोत्तरे—

स्थिरे लग्ने स्थिरांशे च कर्तुश्चोपचयान्विते ।

तथा—

यस्य सौम्यग्रहाः केन्द्रे त्रिकोणे चापि भार्गवः ॥  
 पापश्चोपचयस्थाने तस्मिन्कार्यं निवेशनम् ।  
 प्रासादे चैवमेतत्स्यात्कूपवापीषु चैव हि । इति ॥  
 केन्द्रताम प्रथमचतुर्थसप्तदशमाख्यम् । त्रिकोणं नवमं पंचमं च ।  
 उपचयस्थानं त्रिषडेकादशदशमाख्यम् ।

वृश्चारोपणेऽपि वराहसंहितायाम्—

ध्रुवमृदुमूलविशाखागुरुभं श्रवणं तथाश्विनं हस्तम् ।

शस्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥

गुरुभं पुष्यः ।

जलाशयोत्सर्गकालो भविष्योत्तरे—

तस्मिन्सलिलसंपूर्णे कार्तिके च विशेषतः ।

तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरतश्चत्रयोगतः ॥

मुनयः केचिदिच्छन्ति ह्यतीते चोत्तरायणे ।

न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम् ॥

दीपिकायाम्—

मार्तण्डेद्बुधशुक्रौ मुरजिदशयने माधवाहस्य शुक्ले ।



मूलाषाढौत्तराश्विअवणगुरुकरे पौष्णशाक्राख्यचान्द्रे ॥  
 मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णामदनरवितिथौ सद्वितीयास्तृतीया ।  
 कार्या तोयप्रतिष्ठा ज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धौ सुलभे ॥

मार्तण्डः सूर्यः । इन्दुश्चन्द्रः । उडु नक्षत्रम् । एतेषां शुद्धिर्वलम् । मुर-  
 जिद्विष्णुः । तस्याशयने प्रबोधे । गुरुः पुण्यः । करो हस्तः । पौष्णं रेवती ।  
 शाक्रं ज्येष्ठा । चान्द्रं मृगः । मैत्रमनुराधा । ब्राह्मं रोहिणी । पूर्णा पंचमी-  
 दशम्यमापूर्णिमाः । मदनरवितिथी त्रयोदशीसप्तम्यौ । ज्ञो बुधः ।  
 सितः शुक्रः ।

बह्मपुराणे संक्रान्तिभेदेन फलविशेष उक्तः—

वापीकूपतडागानां तस्मिन्काले विधिः स्मृतः ।  
 सुदिने शुभनक्षत्रे प्रतिष्ठा शुभदा स्मृता ॥  
 कर्कटे पुत्रलाभश्च सौख्यं तु मकरे भवेत् ।  
 मीने यशोर्थलाभश्च कुंभे वसु बहूदकम् ॥  
 वृषे च मिथुने वृद्धिर्वृश्चिके च जलं भवेत् ।  
 पितृवृत्तिस्तु कन्यायां तुलायां शाश्वती गतिः ॥  
 सिंहो मेघो धनुर्गन्धं जलस्य द्विज यच्छति । इति ॥

अत्रायं संप्रहो वर्ज्यावर्ज्ययोः । अधिकलुप्तसंवत्सरे सिंहमकरस्थबृहस्प-  
 तावस्तमिते बाले वृद्धे वा गुरौ शुक्रेऽतिचारिणि च गुरौ गुर्वादित्ये  
 मलमासे क्षयमासे लुप्तदिनद्वयवति पक्षेऽवमदिनादौ भूकंपाशान्युल्काद्य-  
 द्रुतदोषे च वर्ज्यः । उत्तरायणे माघफाल्गुनचैत्रवैशाखज्येष्ठाषाढान्य-  
 तममासेषु रविशुद्धावयनद्वयविषुवद्वयकन्यामीनधनुरन्यतमसंक्रान्तौ शुक्र-  
 पक्षे द्वितीयातृतीयापंचमीसप्तमीदशमीपौर्णमास्यमान्यतमतिथौ शनि-  
 मंगलान्यवारेषु भरणीकृत्तिकार्द्रापुनर्वस्वाश्लेषापूर्वाफाल्गुनीविशाखाव्य-  
 तिरिक्तनक्षत्रेषु विष्कंभातिगंडव्याघातवज्रव्यतीपातपरिघवैधृतिरिक्तयो-  
 गेषु कर्तृचंद्रताराविशुद्धौ बुधशुक्रगुरुसितपक्षचंद्रनिरीक्षिते लभे जला-  
 शयोत्सर्गः कार्य इति ।

बह्वचगृह्यपरिशिष्टे—

अथातो वारुणविधिर्वापीकूपतडागयज्ञं व्याख्यास्यामः । पुण्ये तिथि-  
 करणे शुभे नक्षत्रे प्राचीं दिशमास्थाय प्राक्प्रवण उदक्प्रवणे वोदकसमी-  
 पेऽग्निमुपसमाधाय वारुणं चरुं श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्तं कृत्वाऽऽज्याहु-



तीर्जुहुयात् 'समुद्रज्येष्ठेति' प्रत्यृचं, ततो हविषोऽष्टाभिर्जुहुयात् 'तत्त्वा-  
यामि ब्रह्मणा वंदमानः, इति पञ्च । 'त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्' इति  
च द्वे । 'इमं मे वरुण शुधी' इति च । स्विष्टकृतं च नवमं, 'नव वै  
प्राणाः प्राणा वा आपस्तस्मादापो नवभिर्जुहोति' । मार्जनान्ते धेनुं  
तारयेदवतीर्यमानामनुमन्त्रयेत् 'इदं पवित्रं सलिलं कुरुष्व शुद्धाः  
पूता अमृताः सन्तु नित्यम् मां तारयन्ती कुरु तीर्थाभिषेकं लोकाल्लोकं  
तरते तीर्यते च' इति पुच्छाग्ने स्वयं लग्नोऽन्वारब्ध उत्तीर्य 'आपो  
अस्मान्मातरः शुंध्यन्तु' इत्यथापराजितं यां दिश्युत्थापयेत् । 'सूयव-  
साद्भगवती हि भूया' इति हिं करोति चेत् 'हिंकृण्वती वसुपत्नी  
वसूनामिति' सचैलकण्ठां कांचनशृङ्गीं वृषप्रजां रौप्यखुरां कांस्योपदोहनां  
विप्राय दद्यादितरां वा । शक्त्या दक्षिणाम् । तत उत्सर्गं कुर्यादेवपितृ-  
मनुष्याः प्रीयन्तामिति पठित्वोत्सृजंत इत्याह शौनको ब्राह्मणान्भोज-  
यित्वा स्वस्त्ययनं वाचयति । इति संक्षिप्तो जलाशयोत्सर्गविधिः ॥

विस्तृतस्तु मात्स्ये—

शृणु राजन्महाबाहो तडागादिषु यो विधिः ।

पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते च तथा नृप ॥

प्राप्य शुक्लं शुभं पक्षं व्यतीते चोत्तरायणे ।

पुण्येऽहिं विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥

प्रागुदकप्रवणे देशे तडागस्य समीपतः ।

चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुर्हस्तां चतुर्मुखाम् ॥

चतुर्हस्तेति मंडपत्रिभागव्यावृत्तिः । सिद्धान्तशेखरे तु तडागादि-  
प्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभेत्युक्तं 'पद्मिनीति वेदिनाम् । तदुच्चता तु  
त्रिचतुःपंचसप्तनवमैकादशान्यतमभागेन पूर्वमेवोक्तम् ।

मंडपनिर्णये—तथा षोडशहस्तः स्यान्मंडपश्च चतुर्मुखः । यद्यपि  
'तडागस्य समीपे' इत्यविशेषणोक्तं तथापि मंडपादि तडागात्प्राच्यामु-  
दीच्यामीशान्यां प्रतीच्यां वा कार्यम्—

तडागात्पश्चिमे पूर्वं ईशान्यामुत्तरेऽपि वा ।

आदौ तु मण्डपः कार्यः सर्वलक्षणसंयुतः ॥

इतिवचनादिति सांप्रदायिकाः । अत्र विशेषो भविष्ये—

तडागपालांशीर्षे तु मण्डपं कारयेच्छुभम् ॥



वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः ।

नव समाधवा पञ्च योनिवक्ता नृपात्मज ॥

गर्ताः कुण्डानि । योनिरेव वक्त्रं येषां ते योनिवक्ताः । तत्र  
सप्तपक्षे ईशानकोणमष्टास्रं न कार्यम् । उपसंज्ञातविरोधितया तद्वाधस्यैव  
न्याय्यत्वात् ।

वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्सप्तगुलविस्तृता ।

गर्ताश्च तत्र शस्ताः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः ॥

त्रिपर्वोच्छ्रितास्यंगुलं चोच्छ्रिताः ।

सर्वतश्च सवर्णाः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः ।

सर्वतश्च सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः ॥

सवर्णा इन्द्रादिलोकपालैः ।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाभवानि तु ।

मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥

द्वाराणि तोरणानीति केचित् । यथाश्रुतमेव तु युक्तं तदा च  
तोरणान्यपि द्वारकाष्ठमयान्येतेषां द्वाराङ्गत्वात् ।

शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाऽष्ट वै ।

अष्टौ तु जापकाः कार्यो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा मन्त्रवन्तो जितेन्द्रियाः ।

कुलशीलसमायुक्तः स्थापकः स्याद्विजोत्तमः ॥

स्थापको गुरुः ।

प्रतिगर्तं तु कलशान् यज्ञोपकरणानि च ।

व्यजनं चासनं शुभ्रं ताम्रपात्रं सुविस्तरम् ॥

‘प्रतिगर्तमेकैकः कलशः’ इति हेमाद्रिः । बहुवचनात्प्रतिगर्तपदाच्च  
प्रतिकुण्डं त्रयस्य इति तु सम्यक् ।

ततस्त्वनेकवर्णाः स्युर्वलयः प्रतिदैवतम् ।

आचार्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्रं विचक्षणः ॥

अरत्निमात्रो यूपः स्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मितः ।

यजमानप्रमाणी वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥

स चाष्टास्रश्चालयुतः कार्यः । चषालचूडापि एतत्परिमाणमध्य एव ।  
यूपे विशेषो भविष्ये—



कदंबाश्वत्थपालाशवैकंकतमयः शुभः ।

शूद्रस्य यूपो निर्दिष्टः सारदारुमयोऽथ वा । इति ॥

त्रैवर्णिकानां कदंबादिनियम एव । शूद्रस्यानियम इत्यर्थः । तन्निख-  
ननस्थानं नारदीये—

तडागोत्तरतश्चैव यूपस्थानं प्रकीर्तितम् । इति ॥

‘पूर्वकुंडात्प्राच्यां पदमात्रान्तरिते देशे’ इति रूपनारायणः ।  
‘जलाशयमंडपान्तराल’ इति केचित् । ‘ईशानेषु निपानस्य न्यसेद्यूपं  
यथोदितम्’ इति परे । एतत्पक्षत्रयमूलं विमृश्य कार्यम् ।

हेमालंकारिणः कार्याः पञ्चविंशति ऋत्विजः ।

कुंडलानि च हैमानि केयूरकटकानि च ॥

तथाङ्गुलीपवित्राणि वासांसि विविधानि च ।

पूजयेच्च समं सर्वानाचार्यं द्विगुणं पुनः ॥

दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत्प्रियम् ॥

सौवर्णो कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुंडुभौ ।

ताम्रौ कुलीरमंडूकौ आयसः शिशुमारकः ॥

दुंडुभो राजिलः निर्विषः सर्पः । कुलीरः कर्कटः । कूर्मादयः सप्त वेद्यां  
वारुणमंडल आसाद्याः ।

एवमासाद्य तान् सर्वानादावेव विशेषतः ।

शुकुमाख्यांवरधरः शुकुगंधानुलेपनः ।

सर्वौषध्युदकस्तानात्स्नापितो वेदपुंगवैः ॥

यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।

पश्चिमद्वारमाश्रित्य प्रविशेद्यागमंडपम् ॥

ततो मंगलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च ।

रजसा मंडलं कुर्यात्पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ॥

षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ।

चतुरस्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम् ॥

वेद्याश्चोपरितः कुर्याद्ग्रहान् लोकपतींस्तथा ।

विन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान्प्रतिदिक्षु विचक्षणः ॥

कव्यादीन्स्थापयेन्मध्ये वारुणं मंत्रमाश्रितः ।

ब्रह्माणं च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद्बुधः ॥



विनायकं च विन्यस्य कमलामंजिकां तथा ।  
 शांत्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः ॥  
 पुष्पभक्षफलैर्युक्तं एवं कृत्वाऽधिवासयेत् ।  
 कुंभाश्च रत्नगर्भास्तान्वासोभिरभिवेष्ट्य च ॥  
 गंधपुष्पैरलंकृत्य द्वारपालान्समंततः ।  
 पठध्वमिति तान्ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयन् ॥  
 बह्वचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणे तु यजुर्विदौ ।  
 सामगौ पश्चिमे स्थाप्यावुत्तरेण त्वथर्वणौ ॥  
 उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत् ।  
 यज्ञध्वमिति तान्सर्वान्होतृकान्पुनरेव तु ॥  
 उत्कृष्टमंत्रजाप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान् ।  
 एवमादिश्य तान्सर्वान्प्रयुञ्ज्याग्निं च मंत्रवित् ॥  
 जुहुयाद्धारुणैर्मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा ।  
 ऋत्विग्भ्यश्चैव होतव्या वारुणैरेव सर्वशः ॥  
 ग्रहेभ्यो विधिवद्धृत्वा तथेन्द्रायेध्वराय च ।  
 मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विविवद्विश्वकर्मणे ॥  
 रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमंगलम् ।  
 जपेरन्पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बह्वचः पृथक् ॥  
 शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं जातवेदसम् ।  
 सौरसूक्तं जपेरंस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः ॥  
 वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम् ।  
 शैशवं पंचनिधनं गायत्र्यं ज्येष्ठसाम च ॥  
 वामदेव्यं बृहत्सौम्यं रौरवं सरथंतरम् ।  
 गवां व्रतं विकर्णं च रक्षोघ्नं च यथाक्रमम् ॥  
 गायन्ति सामगा राजन्पश्चिमद्वारमाश्रिताः ।  
 आथर्वणाश्चोत्तरतस्तथा शान्तिकपौष्टिकम् ॥  
 तडागादिजप्यानि विशेषतः प्रयोगे दर्शयिष्यामः ।  
 जपेरन्मनसा देवमाश्रिता वरुणं सदा ।  
 पूर्वैद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाऽधिवासनम् ॥  
 गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्भद्रगोकुलात् ।



मृदमानीय कुंभेषु प्रक्षिपेच्चत्तरां तथा ॥  
 रोचनं चैव सिद्धार्थान्गान्धान्गुगुलमेव च ।  
 स्नपनं तस्य कर्तव्यं पंचभंगसमन्वितैः ॥

भंगाः पल्लवाः ।

पूतं कर्तुर्महामंत्रैरेवंकृत्वा विधानतः ।

स्नपनं च सूर्योदयात्प्राकार्यम् । तद्दिनकृत्यमाह—

एवं क्षपामतीवाह्य विधिदृष्टेन कर्मणा ।

ततः प्रभाते विमले संजातेऽथ गवां शतम् ॥

ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्ट्यथवा पुनः ।

पंचाशद्वाथ षट्त्रिंशत्पंचविंशति वा पुनः । इति ॥

ततः सांवत्सरैः प्रोक्ते शुद्धे लग्ने सुशोभने ।

वेदशास्त्रैः सगंधर्वैर्वाद्यैश्च विविधैः शुभैः ॥

कनकालंकृतां कृत्वा तत्र गामवतारयेत् ।

सांवत्सरा दैवज्ञाः ।

सामगायाथ देया सा ब्राह्मणाय विशांपते ।

सामगः प्रकृत एवाग्नेयीन्यायात् ।

जलाशयं च त्रिवृता सूत्रेण परिवेष्टयेत् ।

पात्रीमादाय सौवर्णीं पश्चरत्नसमन्विताम् ॥

ततो निक्षिप्य मकरं मत्स्यादींस्तांश्च सर्वतः ।

धृतां चतुर्भिर्विप्रैस्तु वेदवेदाङ्गपारगैः ॥

महानदीजलोपेतैर्दध्यक्षतविभूषितैः ।

उत्तरामिमुखो न्युवजं जलमध्ये तु कारयेत् ॥

आथर्वणेन साम्रा तु पुनर्मामित्यूचाऽथ वा ।

आपोहिष्ठेति मंत्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मंडपम् ॥

आथर्वणं शन्नोदेवीरित्यस्यामृचि गीतम् ।

अत्र विशेषो भविष्ये—

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् ।

रमन्तां सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ॥

एवं जलं जले क्षिप्त्वा पूजयेज्जलमातरः ।

तोष्याः कर्मकराः सर्वे कुडालानि च पूजयेत् ॥

पूजयित्वा सदस्यांश्च बलिं दद्यात्समन्ततः ।



सदस्या ऋत्विजः । समन्ततो मंडपस्य ।

पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ।

होमस्तु पूर्वोक्त एव प्रत्यहमावर्तनीयः ।

चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः ।

दक्षिणा राजशार्दूल वरुणं संस्मरेस्ततः ॥

कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च ।

ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मंडपं विभजेत्पुनः ॥

हैमपात्रीं च शय्यां च स्थापकाय निवेदयेत् ।

ततः सहस्रं विप्राणामथवाऽष्टशतं तथा ॥

भोजयेत्तु यथाशक्ति पञ्चाशद्वाऽथ विंशतिम् ।

एवमेष पुराणेषु तडागविधिरुच्यते ॥

कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च ।

एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥

सर्वासु वर्तुलचतुरस्यादिषु ।

मंत्रतस्तु विशेषः स्यात्प्रसादोद्यानभूमिषु ।

प्रासादे वास्तुपुरुषः । उद्याने वनस्पतिर्देवताः । तन्मंत्रतो विशेष इत्यर्थः ।

एवं त्वशक्तावर्द्धेन विधिर्दृष्टः स्वयंभुवा । अर्द्धमृत्विग्भ्यश्च विंशति-

स्तत्र होतृजापकद्वारपालानां चतुष्टयं चतुष्टयं गुरुश्चैते त्रयोदशेत्यर्थः ।

होमादिदक्षिणानामप्यर्थमिति केचित् ।

स्वल्पेष्वेकान्वितकार्यं वित्तशाठ्यादृते नृभिः ।

प्रावृट्कालस्थितं तोयं अग्निष्टोमसमं स्मृतम् ॥

शरत्काले स्थितं यत्स्यात्तदुक्थ्यफलदायकम् ।

वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्तशिशिरे स्थितम् ॥

अश्वमेधसमं प्राहुर्वसन्तसमये स्थितम् ।

ग्रीष्मेऽपि यत्स्थितं तोयं राजसूयाद्विशिष्यते ॥

एतान्महाराज विशेषधर्मान्करोति योऽथाऽनघशुद्धबुद्धिः ।

स याति रुद्रालयमाशु पूतः कल्पाननेकान्दिवि मोदते च ॥

अनेकलोकान्समहस्तपादान्भुक्त्वा परार्द्धद्वयमङ्गनाभिः ।

सहैव विष्णोः परमं पदं यत्प्रयाति तद्योगबलेन भूयः ॥

इति जलाशयोत्सर्गविधिः ॥



## अथ जलाशयोत्सर्गप्रयोगः ।

अधिवासनदिनात्पूर्वदिने हुतहविष्यभोजनोऽधिवासनदिने पूर्वाह्णकालादि संकीर्त्य 'सकलपापक्षयपूर्वकरुद्रालयगमनानंतरं बहुकल्पकालावधिकगुलोकभोगपूर्वकपरार्द्धकालावच्छिन्नमहस्तपःप्रभृतिलोकांगनासहिततल्लोकगतभोगोत्तरवैष्णवपरमपदप्राप्तिकामश्चामुकजलाशयोत्सर्गं करिष्ये' इति संकल्पः । गणेशपूजास्वस्तिवाचनमातृवसोर्द्धारापूजावृद्धिश्राद्धगुर्वस्तिगवरादीनि सामान्यप्रयोगोक्तरीत्या कुर्यात् । तत्र त्विजश्चतुर्विंशतिः अष्टौ होतारः अष्टौ जापकाः अष्टौ द्वारपाला इति । चत्वारश्चत्वारो वां, ते गुरुश्चेति त्रयोदश वा । अत्यशक्तावेको गुरुरेव वा । ततस्तान्मधुपर्ककटककुंडलमालावस्त्रादिनाऽर्चयेत् । द्विगुणमूल्यं कटककुंडलादि गुरवे देयं ततो मंडपप्रवेशवास्तुपूजामंडपपूजामिस्थापनोत्तरं गुरुर्वेदिलिखितवारुणमंडलमध्यस्थे पद्मे ग्रहान् पूजयेत् । तत्र कर्णिकायां वृत्ते मंडले सूर्यं, आग्नेयपत्रे चतुरस्रे सोमं, दक्षिणे पत्रे त्र्यस्र भौमं, ईशानपत्रे बाणाकारं बुधं, उत्तरे दीर्घचतुरस्रे गुरुं, पूर्वे पंचकोणे शुक्रं, पश्चिमे धनुषि शनिं, नैऋत्ये शूर्पाकारं राहुं, वायव्ये ध्वजाकारं केतुमिति तत्तन्मंत्रैरधिदेवताप्रत्यधिदेवताविनायकादीन् पञ्चावाहयेत् । तन्मंत्रास्तु सामान्यप्रयोगेऽनुसंधेयाः । ततो मंडलपूर्वादिदिक्कलशेषु इन्द्रादीनावाहयेत् । तथाहि 'त्रातारमिद्रम्' ।

‘एहेहि सर्वामरसिद्धसंघैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश । संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेश रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते’ ।

इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

गजस्कन्धसमारूढं वज्रहस्तं महाबलम् ।

आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति पूजयेत् । एवमाग्नेयकलशे ‘अग्निं दूतम्’

एहेहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट ।

तेजोवता लोकगणेन सार्द्धं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

अग्ने इहागच्छेह तिष्ठेति अग्निमावाह्य—

शक्तिहस्तं ज्वलद्रूपं लागारूढं हविर्भुजम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

याम्यकुम्भे ‘यमाय सोमं’



एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरचितधर्ममूर्ते ।

शुभाशुभानन्दशुचामवीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥

यमेहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

महामहिषमारुढं दण्डहस्तं महाबलम् । आवाहयामि० पूजयेत् ।

नैर्ऋत्यकुम्भे ' मोषुणः परापरा '

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसंघैः ।

ममाध्वरं पाहि शुभाविनाथ लोकेश्वर त्वं भगवन्नमस्ते ॥

निर्ऋते इहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

तीक्ष्णदंष्ट्रं शवारुढं खड्गहस्तं महाबलम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

पश्चिमकलशे ' तत्त्वायामि '

एह्येहि यादोगणवारिधीश गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः ।

विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥

वरुणेहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

मकरस्थं महाबाहुं देवदेवमां पतिम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

वायव्यकलशे ' तव वायव्यतस्पते '

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरुढः सह सिद्धसंघैः ।

प्राणाधिपः काल कवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

वायो इहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

मृगस्कन्धसमारुढं ध्वजहस्तं महाबलम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

उत्तरे कुम्भे ' आप्यायस्व '

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।

सर्वोपवीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

सोमेहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

दशाश्वरथमारुढं गदाहस्तं महाबलम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

ऐशान्यकुम्भे ' तमीशानं '

एह्येहि विश्वेश्वर नखिशूलकपालखट्वांगगणेन सार्द्धम् ।

लोकेश भूतेश्वर यज्ञसिद्धयै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ईशानेहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

वृषस्कन्धसमारुढं शूलहस्तं त्रिलोचनम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

निर्ऋतिवरुणयोर्मध्यकुम्भे ' आयंगौः पृश्नि '



एहोहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।  
रक्षोरगेन्द्रामरलोकसंचैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥

अनन्तेहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

नित्येशेषजगदाधारं शेषं सुरगणांचितम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

इन्द्रेशानमध्यकुम्भे 'ब्रह्मजज्ञानम्'

एहोहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।

सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभावो रक्षाध्वरं नः सततं नमस्ते ॥

ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य—

श्वेतहंससमारूढं पद्मयोनिं जगद्गुरुम् । आवा० तामिति पूजयेत् ।

अनन्तब्रह्मणोः कलशाभावपक्षे अधःश्वदेशयोरावाहनं ततो मण्डल-  
मध्ये पञ्चरत्नसौवर्णकूर्ममकरराजतमस्त्यडुण्डुभताम्रकुलीरमण्डूकलौह-  
शिशुमारयुतां सुवर्णपात्रीं 'इमं मे वरुणेति' मन्त्रेण स्थापयित्वा ब्रह्माणं  
शिवं विष्णुं गणपतिं श्रियं अंबिकां भूतग्रामं च तत्तन्मन्त्रैरावाह्य पूजयेत् ।

अत्रेन्द्रादिपूजासमये पौराणिका मन्त्राः—

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः ।

शतयज्ञाधिको देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

सर्वतेजोधिपो देवो रक्तवर्णो महाबलः ।

शक्तिहस्तो महावीर्यो वैश्वानर नमोस्तु ते ॥

दण्डहस्तः कृष्णवर्णो धर्माध्यक्षो महाबलः ।

प्रताधिपतये तुभ्यं यमराजाय ते नमः ॥

सर्वरक्षोधिपो देवो निरर्कतिनीलविग्रहः ।

महाखड्गधरो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

नागपाशधरो नित्यं मकरस्थो दिवाकरः ।

निमग्नः शुक्लवर्णश्च नमोऽस्तु वरुणाय ते ॥

सर्वप्राणाधिपो नित्यं सर्वजन्तुषु संस्थितः ।

ध्वजहस्तो मेघवर्णस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

सर्वनक्षत्रमध्ये यः सोमो राजा व्यवस्थितः ।

शुक्लवर्णो गदाहस्तस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

सर्वदेवाधिपो देव ईशानः शुक्लविग्रहः ।

शूलपाणिर्वृषारूढो रुद्राधिपतये नमः ॥



पत्रगाधिपतिर्देवो योऽनन्तो नीलविप्रहः ।

पातालवसतिर्नित्यमनन्ताय नमो नमः ॥

पालाशकुसुमाकारो ब्रह्मा सर्वार्थसाधकः ।

सर्वलोकपतिश्चेष्टस्तस्मै नित्यं नमो नमः । इति ॥

ततः सूर्यादिभूतप्रामान्तपञ्चाशदेवताभ्यस्तत्तन्मन्त्रान्ते 'सूर्यायैष गुडौदनो बलिर्न मम' इत्यादिप्रयोगतो बलीन् दद्यात् । तत्र सोमाय घृतपायसं, भौमाय मसूराञ्जं, बुधाय क्षीरौदनं, बृहस्पतये दध्यौदनं, शुक्राय घृतान्नं, शनये कृसरान्नं, राहवे मांसौदनं, केतवे चित्रौदनं, अविदेवताप्रत्यधिदेवताविनायकादिपञ्चभ्यः पायसबलिः, इन्द्रादीनां दशानां माषौदनबलिः । तत आचार्यः पूर्वकुण्डात्पूर्वतः पदत्रयस्थलं त्यक्त्वा हरिद्रातैलाभ्यां यूपमभ्यज्य तीर्थोदकेन स्नापयित्वा गौरसर्षपगोरोचनगुग्गुलुदूर्वानिवपत्रगर्भां पोटलिकां 'यदाबन्धं दाक्षायणा' इतिमन्त्रेण बध्वा 'युवा सुवासाः' इति वस्त्रेणावेष्ट्य यूपतृतीयांशेनावटं खनित्वा तत्राक्षतादिकं प्रक्षिप्य तत्र 'ध्रुवोऽसि' इतिमन्त्रेण यूपं प्रतिकुण्डसमीपे ईशान्यां कलशस्थापनं कृत्वा तत्र 'सर्वे समुद्राः' इति तीर्थानि न्यस्य वरुणं पूजयेत्पुनः । तत आचार्य ऋत्विजश्च स्वे स्वे कुण्डे स्वगृह्योक्तमार्गेणाग्निप्रणयनानन्तरं भावि कर्म कुर्युः । तत्र प्रतिकुण्डमाचार्यकुण्डप्रभृति कुण्डदक्षिणतो यजमान उपविश्य जलमादाय 'अस्मिन् कर्मणीदं हविः सूर्यसोमभौमबुधगुरुशुक्रशनिराहुकेतुप्रहेभ्य ईश्वरोमास्कन्दविष्णुब्रह्मेन्द्रयमकालचित्रगुप्ताधिदेवताभ्योऽग्न्यब्भूमिविविन्द्रेन्द्राणीसपप्रजापतिर्ब्रह्मप्रत्यधिदेवताभ्यो विनायकदुर्गावाप्याकाशाश्विपञ्चलोकपालेभ्य इन्द्राग्निमनिर्ऋतिवरुणवायुसोमेशानानन्तब्रह्मादिक्पालेभ्यो ब्रह्मशिवविष्णुगणपतिश्रीअंबिकाभूतप्रामविश्वकर्मवरुणाग्निवायुसूर्यप्रजापतिस्विष्टकृदादिपूर्वोत्तराङ्गदेवताभ्यो' न ममेति त्यजेत् । जापकैर्द्वारपालैश्च शान्तिजपादौ क्रियमाणे होमः कार्यः । अत्र द्वारपालजाप्यमन्त्रा उच्यन्ते—

श्रीसूक्तं पवमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ।

शान्त्याध्यायमिन्द्रसूक्तं रक्षोघ्नं चेति बह्वचौ ॥

श्रीसूक्तं, हिरण्यवर्गा हरिणी, इत्यादि पञ्चदशर्चं । पवमानं, स्वादिष्टयेदि । सोमसूक्तं, त्वं सोम प्रचिकित इत्यादि गविष्टावित्यन्तं त्रयोविं-



शत्यूक्तत्वम् । सुमङ्गलं, कनिकदद् इत्यादि । शान्तिकाध्यायः, शन्न इन्द्राग्नी  
इत्यादिकः । इन्द्रसूक्तं, यो जात एव इत्यादिकं । रक्षोघ्नं कृणुष्व पाज, इति ।

दक्षिणे द्वारपालौ तु रुद्रान्पुरुषसूक्तम् ।

श्लोकाध्यायं शुक्रियं च मंडलाध्यायमेव च ।

रुद्रान्, नमस्त इत्यादिमंत्रान् । श्लोकाध्यायं, देवसवितः प्रसुव  
यज्ञेत्यादिकं, शुक्रियं, ऋचं वाचं प्रपद्येत्यादिकम्, मण्डलाध्यायं,  
आदित्यो वा एव एतन्मण्डलमिति तैत्तिरीये प्रसिद्धम् ।

वामदेव्यं वृहत्साम ज्येष्ठसाम रथंतरम् ।

तथा पुरुषसूक्तं च रुद्रसूक्तमतः परम् ॥

आज्यदोहानि सामानि शान्तिकाध्याय एव च ।

भारुडानि च सामानि पश्चिमे द्वारपालकौ ॥

वामदेव्यं, कयानश्चित्रइत्यस्यामृचि गीतं, वृहत्साम, त्वाभिद्धि  
हवामह इत्यस्याम् । ज्येष्ठसाम, मूर्ध्नि दिव इत्यस्याम् । रथंतरम्, अभि  
त्वा शूर नो मुख इत्यस्याम् । पुरुषसूक्तं, सहस्रशीर्षेत्यादिकासु । रुद्रसूक्तं,  
आवोराजानमिति वर्गद्वयम्, आज्यदोहानि, देवव्रतानि इत्यादि ।  
शान्तिकाध्यायः, अवोव्यग्निरित्यादि । भारुडसामानि इमं स्तोम  
इयामृक्षु गीतानि ।

अथर्वागिरसं नीलरुद्रं चैवापराजितम् ।

देवी च मधुसूक्तं च रोधसं शान्तिकाव्यथम् ॥

अथर्वाणौ द्वारपालौ पठेतामुत्तराश्रिता ।

आथर्वणं सूक्तं, छन्दोगायतृहद्रायेत्यादि । आङ्गिरसं, अङ्गिरसो  
जन्मानीत्यादि । नीलरुद्रं, या रुद्रपत्न्या अपराजिता देवीपरिवर्त्मनी-  
त्यादि । मधुसूक्तं, मधु वाता ऋतायत इत्यादि । रोधसं, अभयं द्यावापृ-  
थिवी इत्यादि । शान्तिकाध्यायः, शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः, इत्या-  
दि । जापकौ तु—

रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावपानं सुमङ्गलम् ।

पौरुषं तु प्रैषदामाज्जपेतां बह्वचौ पृथक् ॥

रात्रिसूक्तं, रात्रीव्यख्यदायती इत्यष्टर्वम् । रौद्रं इमारुद्राय तवसे ऋ-  
दिन इत्यादि ।



शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं जातवेदसम् ।

सौरं चेति जपेतां द्वौ दक्षिणेन यजुर्विदौ ॥

शाक्रं, इन्द्रं वो विश्वतश्चक्षुरित्याद्यनुवाकम् । रौद्रं, इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर इत्यादि षडृचम् । सौम्यं, सोमो धेनुमित्यादि षडृचम् । कौष्माण्डं, यदेवादेवहेडनमित्याद्यनुवाकचतुष्टयम् । जातवेदसं, यस्त्वा हृदा कीरिणा इत्यादिमनुवाकम् । सौरं, सूर्यो देवीमुपसं रोचने इत्यादिकं षडृचम् ।

वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम् ।

शैशवं पंचनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च ॥

वामदेव्यं बृहत्सौम्यं रौरवं सरथंतरम् ।

गवां ब्रतं विकर्णं च रक्षोघ्नं च यशस्तथा ॥

गायेयुः सामगा राजन्पश्चिमं द्वारमाश्रिताः ।

वैराजं, पिवासोममदनुत्वेत्यादि । सौपर्णं, मुदयेदभिश्चुतामह्यमिति त्रीणि सामानि । रुद्रसंहिता, आवोराजानमित्यादि । शैशवं, उष्णं ते जातमन्वस इत्यस्यां गीतम् । पंचनिधनं, रहस्यां गीतम् । गायत्रं, 'तत्सवितुः' इत्यस्यां गीतम् । ज्येष्ठसाम, 'मूर्जानं दिव' इति प्रसिद्धम् । वामदेव्यं 'कयानश्चित्र' इत्यस्यां गीतम् । बृहत्साम 'त्वामिद्धि हवामह' इत्यादिप्रसिद्धम् । सौम्यं सोमवृतं 'सन्ते पयांसीति' । रौरवं 'पुनर्मां' इत्यत्र प्रसिद्धम् । रथन्तरं 'अभि त्वा शूरनोनुम' इत्यस्यां गीतम् । गवां ब्रतान्ते मन्वन्तरं प्रथमं 'अग्निमीळे, इत्येतया गीतम् । विकर्णं 'विभ्राड्' इत्यस्यां गीतम् । रक्षोघ्नं 'अग्नेरक्षाणः' 'अभेयुक्ष्वाहि' इत्येतयोर्गीतम् । यशः 'बृहदिन्द्राय' इत्यत्र गीतम् ।

जपेतामप्यथर्वाणौ शान्तिकं पौष्टिकं तथा ।

अन्ते वरुणसूक्तं च जपेयुः सर्व एव हि ॥

शान्तिकपौष्टिकौ प्रसिद्धावाथर्वणानां । वारुणसूक्तं स्वस्वशाखीयम् । तत्र ऋग्वेदिनां 'मोषुवरुण' इति पञ्चानां त्रिसिष्ठो वरुणो गायत्री अन्त्या जगती वरुणप्रीतये जपे विनियोगः । 'मोषु वरुण रीरिषः' । यजुर्वेदिनां 'इमं मे वरुणेति' द्वयोः शुनःशेभो वरुणो गायत्रीत्रिष्टुभौ वरुणप्रीतये जपे विनियोगः । सामगानां 'इमं मे पुष्कलो वरुणो गायत्री' वरुण० । आथर्वणानां 'उदुत्तमं ब्रह्मावरुणस्त्रिष्टुप् वरुणप्रीतये०' ।



प्राच्यादिकुण्डेषु ऋग्वेदिप्रभृतयो होतारः प्रधानहोमात्प्राचीनं कर्म स्वस्वगृह्यानुसारि कृत्वा प्रधानहोमं कुर्युः । तत्र ऋग्वेदी तावदाज्य-भागानन्तरं वारुणैर्मत्रैरष्टोत्तरशतमाज्याहुतीस्तावतीरेवौदुंबरसमिदाहु-तीश्च जुहुयात् । मन्त्रास्तु 'तत्त्वायामि ब्रह्मणा' 'तदिन्नक्तं तदिवा' 'शुनःशेषो ह्यहन्' 'अव ते हेडो' 'उदुत्तमं वरुणं' 'त्वन्नो अग्ने वरुणस्य' 'स त्वन्नो अग्नेवमोभवोतीति' 'इमं मे वरुण' इति । अत्रायानां चतुर्णां चतुर्दशवारमन्त्रानां त्रयोदशवारमावृत्त्याष्टोत्तरश-तसंख्यासंपत्तिरिति सांप्रदायिकाः । ग्रहा अधिदेवताप्रत्यधिदेवताविना-यकपञ्चकेंद्रशिवमरुदिन्द्रादिब्रह्मांतदशलोकपालविश्वकर्मभ्यः प्रत्येकमष्टो-त्तरसहस्राष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्यया होम इति सांप्रदायः । तत्र ग्रहेभ्यस्तत्तत्समिधोऽन्येषां पालाशयः । आज्यं च सर्वेभ्यः पृथक् । एतन्मन्त्रास्तु सामान्यप्रयोगोक्ताः । इन्द्राशिवमरुतां तु 'त्राता-रमिन्द्रं' गर्ग इन्द्रस्त्रिष्टुप् । कद्रुद्राय चोरः काण्वः शिवो गायत्री मरुतो यस्य राहुगणो मरुतो गायत्रीति मन्त्राः । केचित्तु ब्रह्मशिवविष्णुगण-पतिश्रीअंबिकाभूतग्रामाणामपि तत्तन्मन्त्रैर्होममाहुः । तत्र श्रियो मन्त्रः 'गंधद्वारां' अंबिकायाः 'अंबे अंबाल्यंबिके' इति याजुषः । भूत-ग्रामस्य तु नाममन्त्र एव । ततः स्विष्टकृदाद्युत्तरांगाहुतयः ।

अयं च सर्वोऽपि वरुणग्रहादिहोमो दिनचतुष्टयं प्रत्यहमावर्तनीयः । 'स्विष्टकृदाद्युत्तरांगहोमस्तु चतुर्थदिन एव कार्यः' इति केचित् । पूर्णाहु-तिस्तु चतुर्थदिन एव । असंभवे तद्दिन एव । यजुःसामाथर्वविदामप्ययमेव होमक्रमः । मन्त्रास्तु तेषामपि सामान्यप्रयोग एवोक्ताः । वारुणमन्त्रास्तु यजुर्वेदिनां तावत् । 'इमं मे' इत्यस्य शुनःशेषो गायत्रीवरुणः । वरुण-प्रीतये आज्यहोमे उदुंबरसमिद्धोमे च विनियोगः । एवं 'तत्त्वाया-मीति' शुनःशेषस्त्रिष्टुप् वरुणः । त्वं नः स त्वं न' इत्यनयोर्वामदेव-स्त्रिष्टुप् । अग्नीवरुणौ देवते । 'अयाश्चाग्नेसीति' प्रजापतिः पङ्क्ति-रग्निः । 'यत्ते शतमिति' शुनःशेषस्त्रिष्टुप्वरुणः । आदित्यास्त्वक्कृष्णा-जिनस्त्रिष्टुप्वरुणः । वनेषु वीति कृष्णाजिनस्त्रिष्टुप्वरुणः । उदुत्तमं शुनःशेषस्त्रिष्टुप्वरुणः । वरुणस्योत्तम्भनमभितपनो जगतीवरुणः । निषसादेति प्रजापतिर्गायत्रीवरुणः । घृतवती भरद्वाजो जगतीवरुणः ।



एतेषां द्वादशमन्त्राणां नववारावृत्त्याष्टोत्तरशतसंख्यासंपत्तिः । ग्रहादिहोममन्त्रास्तु सामान्यप्रयोग एवोक्ताः ।

ततो व्याहृतिहोमादीन्युत्तरांगानि । सामगोऽपि व्याहृतिहोमान्तानि पूर्वांगानि कृत्वा वारुणं होमं कुर्यात् । इमं मे पुष्कलो गायत्रीवरुणः । वरुणप्रीतये आज्यहोमे उदुंबरसमिद्धोमे च विनियोगः । एवमुत्तरत्रोदेशत्यागौ । उदुत्तमं गौतमस्त्रिष्टुप्वरुणः । घृतवती भरद्वाजो जगतीवरुणः । एतेषां त्रयाणां मन्त्राणां षड्विंशद्वारमावृत्त्याष्टोत्तरशतसंख्यासंपत्तिः । ग्रहादिहोममन्त्रास्तु सामान्यप्रयोग एवोक्ताः ।

तत उतरतन्त्रं बर्हिर्होमान्तम् । आथर्वणोऽपि समन्त्रकदात्रग्रहणप्रभृत्यभ्यातानहोमान्तं कृत्वा वारुणं होमं कुर्यात् । अप्सु ते राजन्नित्यथर्वानुष्टुप्वरुणः । धाम्नो धाम्नो राजन्नित्यथर्वा षड्विंशवरुणः । उदुत्तममथर्वा त्रिष्टुप्वरुणः । प्रास्मात्प्राशानथर्वा त्रिष्टुप्वरुणः । एतेषां चतुर्णां मन्त्राणां सप्तविंशतिवारमावृत्त्याष्टोत्तरशतसंख्यासंपत्तिः । ग्रहादिहोममन्त्रास्तु सामान्यप्रयोग एवोक्ताः । ततः पुनरभ्यातानहोमाद्युत्तरतन्त्रं कुर्यात् । आचार्योऽपि स्वकुण्डे स्वशाखोक्तविधिना एवमेवैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् ।

एवं रात्रावधिवासनं निर्वर्त्याचार्यः कुण्डाभ्याशस्थापितकलशेषु गजस्थानाश्वस्थानरथ्यावल्मीकसरित्सङ्गमहृद्गोकुलचत्वरसम्बन्धिनीरष्टौ मृदोऽश्वत्थादिवृक्षोज्ज्वलान्पञ्च पल्लवान् कुङ्कुमकूर्पूरकस्तूरिकासर्षपैश्च प्रक्षिपेत् । तैश्चौदकैर्यजमानं प्राङ्मुखं सर्वौषधनुलिप्तं पुत्रपत्नीसहितमृत्विज उदङ्मुखः सूर्योदयात्प्रागुषसि पल्लवैरभिषिञ्चेयुः स्नापयेयुश्च । मन्त्रास्तु तत्तच्छाखीयाः पौराणाश्च 'सुरास्त्वामभिषिचन्त्वित्याद्याः सामान्यप्रयोग उक्ताः । ततो यजमानः शुक्लवेषः प्राङ्मुख उदङ्मुखेभ्यो गुर्वर्त्विग्भ्यो यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात् । 'मण्डपाद्वहिरीशान्यां दद्यात्' इति रूपनारायणः । 'मण्डपमध्ये एव' इति मदनरत्नादयः ।

अत्र प्रयोगः । कुशतिलयवजलान्यादाय 'अद्येत्यादिकर्तव्यामुकजलाशयोत्सर्गांगभूतकृतैतदधिवासनप्रतिष्ठार्थं रुद्रदेवताः शतं गा अष्टषष्टिं वा पञ्चाशतं वा षड्विंशतं वा पञ्चविंशतिं वा युष्मभ्यं संप्रददे न ममेति' दद्यात् । हस्तास्तु वरणक्रमेण गुरुहस्तं प्रथमं कृत्वा तदधोऽधः स्थापनीयाः । ते च स्वस्तीत्युक्त्वा कामस्तुतिं पठेयुः ।



ततः कर्मागदेवताः प्रीथन्तामिति यजमानेनोक्ते सुप्रीता भवन्त्विति वदेयुः । ततो यजमानः सुलग्ने जलाशयजले कनकशृंगादिभूषितां गां यथाशक्ति संपूज्य—

‘इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनीमनुषेदशस्य ।

व्यस्कभ्रारोदसी विष्णवे ते दाधर्थं पृथिवीमभितो मयूखैः ॥

इतिमन्त्रेणावतारयेत् । तरन्ती तामनुमन्त्रयेत् ।

तत्र मन्त्रः—

‘इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूता अमृताः सन्तु नित्यम् ।

मां तारयन्तो सर्वतीर्थाभिषेकं लोकाह्लोकं तरते तीर्यते च ॥’ इति ।

‘वापीकूपोत्सर्गे तु गां त्रिरुपरि भ्रामयेत्’ इति रूपनारायणीयादौ ।

ततो यजमानो गुरुणाऽन्वारब्धस्तत्पुच्छे लग्नो जले गच्छन्नेव मन्त्रद्वयं पठेत् । तच्च—

‘समुद्रादूर्मिर्मधुमाऽऽदारदुपाऽऽशुनासममृतत्वमानद् ।

घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥’

‘ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।

येषामप्सु सदः कृतं तेभ्यः सर्वेभ्यो नमः ।’ इति ॥

ततो जल एवेशान्यामुत्तराभिमुख्या गोः पुच्छं गृहीत्वा जले स्थित्वा यजमानो गुरुणाऽन्वितो यवकुशादिभिर्देवमनुष्यपितृतर्पणं स्वशाखं कुर्यात् । अत्रान्यानपि तर्पणश्लोकान्केचित्पठन्ति । ते तु निर्मूलत्वान्न लिखिताः । ततः पुच्छलग्न एवेशान्यामुत्तरे ।

तत्र मन्त्रः—

‘आपो अस्मान्मातरः शुंभन्तु घृतेन नो घृतपुवः पुनन्तु ।

विश्वमस्मत्प्रवहन्तु रिप्रमुदाभ्यः शुचिरापूत एमि’ । इति ॥

‘सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तस्याम । अद्धि तृण-  
मध्न्येविश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती’ इति तामुत्थापयेत् ।  
यदि हिं कुर्यात्तदा ,

‘हिं कृष्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

‘दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्द्धतां महते सौभगाय’ ॥

इत्यनुमन्त्रयेत् ।

ततः कृतवस्त्रपरिधानो यजमानस्तां संपूज्य सामगाय प्रतिपादयेत् ।



प्रतिपत्तित्वादेव नात्र दक्षिणा । ततः कुंकुमात्तेन त्रिवृता सूत्रेण जलाशयं  
वेष्टयित्वा तत्समीपे उपविशेत् । गुरुस्तु प्रागासादितकूर्ममकरादियुतां  
हेमपात्रीं पञ्चरत्नयुतां दध्यक्षतमहानदीजलयुतामादायोदङ्मुखैश्चतुर्भि-  
र्ऋत्विग्भिः सह स्वयं प्राङ्मुखः स्थित्वागाधे जले सौवर्णौ कूर्ममकरौ  
भागान्नेयभागयोः प्रत्यङ्मुखौ राजतौ मत्स्यद्वन्द्वौ दक्षिणनैर्ऋत्य-  
भागयोरुदङ्मुखौ ताभौ कुलीरमण्डकौ पश्चिमवायव्ययोः प्राङ्मुखौ  
आयसं शिशुमारमुत्तरतो दक्षिणाभिमुखं वारुणैर्मन्त्रैः प्रक्षिपेत् । ततः  
शत्रो देवीरित्यस्यां गीतेनाथर्वणसाम्ना 'पुनर्मामैतिवन्द्रियं पुनरायुः  
पुनर्भगः । पुनर्द्रविणमैतु मापुनर्ब्राह्मणमैतु मे 'त्याथर्वणा न साम्नापो-  
हिष्ठेति तृचेन चोदङ्मुखस्तां पात्रीं न्युञ्जीकुर्यात् । ततः सत्विग्गुरु-  
राचामेत् । ततो यजमानः प्राङ्मुखो जलोत्सर्गं कुर्यात् । तत्र कुशज-  
लयवतिलानादाय देशकालसंकीर्तनान्ते 'पापक्षयपूर्वकरुद्रालयगमनान-  
न्तरबहुकल्पकालावधिकद्युलोकभोगानुभवपूर्वकपराद्ध्रुवकालावच्छिन्नम-  
हस्तपःप्रभृतिलोकगमनाहिततत्तल्लोकभोगोत्तरकालसद्योगबलप्राप्यवैष्ण-  
वपरमपदप्राप्तिकामोऽहमिमं तडागादिजलाशयं वरुणदेवताकं स्नानपाना-  
वगाहनाद्यर्थं सर्वेभ्यो भूतेभ्य उत्सृज्य ' इत्युक्त्वा जलाशयं निरीक्ष्य  
जलं भूमौ निक्षिपेत् । ततो मन्त्रद्वयं जपेत् ।

सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टं मयैतज्जलमुद्भिन्नतम् ।

रमन्तां सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ॥

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् ।

रमन्तां सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः । इति ॥

ततो गुरुमण्डपस्य प्रागादिष्विन्द्रादिभ्यः पूर्ववन्माषभक्तं बलिं दद्यात् ।  
अथाचारप्राप्तं नागयष्टारोपणम् । तत्र गुरुरष्टसु चूतपत्रेष्वनन्त-  
पत्रेष्वनन्तवासुकितक्षककर्कोटपद्मशङ्खमहापद्मकुलिकानां नामानि प्रत्येकं  
लिखित्वा प्राक्स्थापितसजलकलशं प्रक्षिप्यालोक्य तत्र वरुणं पूजयि-  
त्वैकं चूतपत्रमाकृष्य तत्पत्रलिखितनामानं नागं तीर्थजलाप्लुतायां  
यज्ञियवृक्षोद्भवायां जलाशयाल्पत्वाद्यनुसारतो द्वादशपञ्चदशविंशत्य-  
न्यतमारत्तिमितायां यष्ट्यां अमुकनागेहागच्छेह तिष्ठेत्यावाह्य स्थापयि-  
त्वाऽनेन नागेनास्य जलाशयस्य रक्षा कार्येति जनेभ्यः श्रावयित्वा तं  
नागं यष्टावमुकनागाय नम इति नाममन्त्रेण यथाशक्ति पूजयेत् ।



यष्टिसंबन्धिवर्तुलमस्तकोपरि शूले लोहमयं चक्रमारोपयति । ततो जल-  
मध्ये प्रागेव यष्ट्यर्थकृतखातसमीपेऽर्चितां यष्टिं नयेत् । ततः खाते  
दक्षिमध्वक्षतकुशतीर्थजलपञ्चरत्नानि प्रक्षिप्य 'ध्रुवा द्यौः' इति मन्त्रेण  
यष्टिं समारोपयेत् । इदं च यष्ट्यारोपणं कूपवाप्योर्न कार्यमिति  
रूपनारायणीये । ततो यजमानो गङ्गादितीर्थजलं जलाशये प्रक्षिप्य  
प्राङ्मुख उपविश्य पठेत्—

कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा प्रभासं पुष्करं तु वै ।

एतानि पञ्च तीर्थानि तडागं निवसन्तु मे ॥

वितस्ता कौशिकी सिन्धुः सरयू च सरस्वती । एतानि पञ्च तीर्थानि०॥  
दशार्णा मुरला सिन्धुरथावर्ता दृषद्वती । एतानि पञ्च तीर्थानि० ॥  
यमुना नर्मदा रेवा चन्द्रभागा च वेदिका । एतानि पञ्च तीर्थानि० ॥  
गोमती वाङ्मती शोणो गण्डकी सागरस्तथा । एतानि पञ्च तीर्थानि०॥

इति पठित्वा जलं स्पृष्ट्वा 'आपो हिष्ठेति' तृचञ्जपन्नविच्छिन्नदु-  
ग्धधारया जलाशयं त्रिःप्रदक्षिणीकुर्यात् । ततः एकं ब्राह्मणं यथेष्टदुग्धं  
पाययेत् । गुरुर्दिनत्रयं स्थापितदेवतानां पूजनं कृत्वा ऋत्विग्भिः सह  
स्वे स्वे कुण्डे वारुणप्रभृति विश्वकर्मान्तं होमं कुर्यात् । तदन्ते उत्तरांगं  
निवर्त्य स्वस्वकुण्डेषु सर्वे पूर्णाहुतिहोमं कुर्युः । असम्भवे त्वग्निवास एव  
पूर्णाहुतिरिति वदन्ति । ततो बह्विपूजनं आयुष्करणादि कर्मशेषं यथा-  
यथं कुर्युः । 'दरिद्रो यजमान एकान्निविधानेन गुरुणैव सर्वं कारयेत्'  
इति मद्नादयः ।

### अथ चतुर्थीकर्म ।

तत्र गुरुः स्थण्डिलं 'यद्देवा देवहेडनमिति' दर्भैः परिसमूह्य  
'मानस्तोक' इत्युपलिप्य 'त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः'  
इत्युल्लिख्य 'सदसस्पतिम्' इत्यङ्गुष्ठानामिकाभ्यां रेखामृदमुद्धृत्य  
'त्वामिद्धि हवामहे सा तावाजस्य कारवः' इत्यभ्युक्ष्य 'अग्निर्मूर्द्धेति'  
वारुणमग्निं प्रतिष्ठापयेत् । 'हिरण्यगर्भ' इति दक्षिणे ब्रह्मासनमास्तीर्य  
'ब्रह्मजज्ञानमिति' तत्र ब्रह्माणमुपवेश्य 'आपोहिष्ठेति' कुशोपरि  
प्रणीतापात्रं सजलं स्थापयित्वा 'आ कलशेषु' इतीशान्यां कलशं



निधाय तत्र जले वरुणं संपूज्य 'कयानश्चित्र' इत्यग्निं परिस्तीर्य  
 'गायत्रेण त्वा छंदसासादयामीति' पात्राणि यथोपयोगमासाद्य  
 'विष्णोरराटमसीति' पवित्रं छित्वा 'प्रोक्षणीरासादयेति' प्रोक्षण्यां  
 प्रणीतोदकं कृत्वोत्पूय वामहस्ते कृत्वा दक्षिणेनोन्दिङ्गनं कृत्वा अर्थ-  
 वः प्रोक्ष्यासञ्चरे प्रोक्षणीपात्रं निधाय स्थास्यामाज्यमासिच्य 'इषेत्वो'  
 इत्यधिश्रित्य 'ऊर्जेत्वा' इत्यवेक्ष्य 'अग्निं दूतं पुरोदधे' इति पर्यग्निं  
 कृत्वा 'त्रातारमिन्द्रमिति' सुत्रं प्रताप्य 'अनिशितोऽसीति' सम्मा-  
 र्गकुशैः संपूज्य 'प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः' इति पुनः प्रताप्य  
 बर्हिषि निधाय 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इत्याज्यमुद्रास्य 'सवितुष्टेत्यु-  
 सूर्योर्जेत्वा' इत्यवेक्ष्य प्रोक्षणीरुत्पूय 'यस्यास्ते घोर आसम्' इत्युपय-  
 मनकुशानादाय समिधामिमिति तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय 'विश्वत-  
 श्चक्षुः' इत्यग्निं प्रज्वाल्य 'तदेवाभिरतदादित्य' इत्यग्निं संपूज्य 'देव-  
 सवितुरिति' प्रोक्षणीजलेनाग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतासु पवित्रं धृत्वा दक्षिणं  
 जान्वाच्य जुहुयात् । प्रजापतये स्वाहा । इन्द्राय स्वाहा । भूः स्वाहा ।  
 भुवः स्वाहा । 'त्वं नो अग्ने' 'अयाश्चाम्ने' 'ये ते शतं' 'उदुत्तम'  
 इति प्रायश्चित्तं हुत्वा प्रजापतये स्वाहेति जुहुयात् । ततस्तिष्ठभि-  
 र्व्याहृतिभिर्मनसा वह्निं हुत्वा 'इमं मे वरुण' इति मन्त्रेण षडन्तेन तोय-  
 मभिमन्त्र्य तेनाग्निमभ्युक्ष्य गायत्र्या सवित्रे पञ्चदशाहुतीहुत्वा 'इमं  
 मे वरुणेति' वरुणाय शतमाज्याहुतीर्जुहुयात् । भूयोऽपि व्याहृतित्रयेण  
 हुत्वा 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति' जुहुयात् । ततः 'इमं मे वरुणेति'  
 पूर्णाहुतिर्होमः । ततोऽग्निपूजा त्र्यायुषादिकरणम् । ततोऽग्निविसर्जनम् ।  
 ततो गुर्वतिभ्यो हिरण्यं दद्यात् । यजमानाभिषेकः । यजमानकर्तृकं  
 पुनः पूजनं ग्रहादीनाम् । यान्तु देवगणाः इति देवता विसर्जयेत् । ततो  
 यज्ञोपकरणादिकमृत्विभ्यो हेमपात्रीं च शय्यां च गुरवे मंडपं च  
 सर्वेभ्यो विभज्य दद्यात् । ग्रहप्रीत्यर्थं ज्योतिर्विदेऽपि हिरण्यं दद्यात् ।  
 ततो ब्राह्मणसहस्रमष्टोत्तरशतं पंचाशतं विंशतिं वा शक्त्यनुरूपं भोज-  
 यित्वा भूयसीं दत्त्वा 'यस्य स्मृत्या' 'प्रमादात्कुर्वतां कर्म' इत्युक्त्वा  
 त्रिविष्णुं स्मरेत् ।

इति तडागोत्सर्गप्रयोगः ।



## अथ वापीकूपोत्सर्गौ ।

भविष्योत्तरे—

वापीकूपविधानं च कथयामि तवापरम् ।  
 कुण्डमण्डपसंभारभूषणाच्छादनादिकम् ॥  
 तडागविधिवत्कुर्याच्चूपागतारणादिकम् ।  
 अकालमूलान्कलशान्वापीमूलेषु दापयेत् ॥  
 तीर्थोदकसमायुक्तान्सितचन्दनचर्चितान् ।  
 सितवस्त्रयुगच्छन्नान्समाल्यान्रत्नगर्भिणः ॥  
 श्रपयित्वा चरुं तत्र यावमग्नौ यथाविधि ।

यावं यवमयम् ।

चतस्रस्त्वाहुतीर्हुत्वा भूभुवःस्वरितिक्रमात् ।

व्यस्ताः समस्ताश्चेति चतस्रः ।

ग्रहहोमं प्रकुर्वीत शान्तिकं पुष्टिवर्धनम् ।  
 वरुणाय बलिं दद्याल्लोकपालेभ्य एव च ॥  
 वारुणानि च सूक्तानि जपेयुर्द्विजपुंगवाः ।  
 वेदिमध्ये मण्डलकं पद्मगर्भं प्रकल्पयेत् ॥  
 तन्मध्ये पूजयेच्छंभुं ब्रह्माणं केशवं तथा ।  
 मत्स्यकच्छपमण्डूकान् वेदिमध्येऽधिवासयेत् ॥  
 मित्रं शत्रुवभिभूतानां धनदो धनकांक्षिणाम् ।  
 वैद्यो रोगाभिभूतानां शरणं शरणार्थिनाम् ॥  
 अनेनैव च मन्त्रेण वरुणाय विसर्जयेत् ।  
 आदावावाहयेद्देवमनेनैव विशेषतः ॥  
 नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते ।  
 सान्निध्यं कुरु देवेश समुद्रादिह एत्य च ॥  
 ततस्तु दक्षिणा देया ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।  
 गौः स्थापकाय दातव्या भोजनं चातिवारितम् ॥  
 सर्वेषामेव दातव्यमेष पौराणिको विधिः ।

अत्र विशेषः । प्रतिकुण्डलशस्थापनसमये वाघ्यादिचतुर्दिक्षु धान्यो-  
 परि सितवस्त्रयुगच्छन्नानुकलक्षणान्कलशान्स्थापयित्वा तेषु तीर्थमा-  
 ब्राह्म नमस्ते विश्वगुप्तायेति तेषु विष्णुमावाह्य पूजयेत् । ततो महा-



वेद्यां षोडशारे ग्रहलोकपालादिस्थापनानन्तरं मध्ये शंखं ब्रह्माणं  
 केशवं चावाह्य तत्रैव सौवर्णं कूर्मं रौप्यं मत्स्यं त्रुणमयं मङ्गकं पञ्चरत्नती-  
 र्थजलादियुतायां ताम्रपात्रायामधिवास्य प्रतिष्ठाप्य संपूज्य तडागवद्दलि-  
 दानं यूपनिखननं च कृत्वा यथाशास्त्रं यवमयं चरुं श्रपयित्वाज्यभागान्ते  
 व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा तडागोत्सर्गवद्वाहनमं-  
 त्रैर्यवचरुदुंबरसमिदाज्यानां प्रत्येकमष्टोत्तरशतमाज्याहुतीर्हुत्वा ग्रहादि-  
 विश्वकर्मन्तानां प्रत्येकमष्टाविंशतिं समिदाज्याहुतीर्जुहुयात् । ततो वरुण-  
 लोकपालादिभ्यो बलीन्दद्यात् । समंताद्वां च भ्रामयेत् । 'इमं सलिल-  
 मिति' मन्त्रपाठः । ततः कूर्मादियुतां ताम्रपात्रीमादाय 'इमं मे वरु-  
 णेति' जले प्रक्षिपेत् । तत उत्सर्गः । भ्रामणार्थं गां गुरवे दद्यात् ।  
 अन्यत्सर्वं मस्यपुराणीयजलोत्सर्गविधिवत् ।

यो न कामयते शान्तिं वापीकूपादिके त्विमाम् ।

तस्य तन्निष्फलं तोयमुप्तं बीजमिवोखरे ॥

वापीकूपतडागेषु संस्थितं प्रथमं जलम् ।

अपेयं तु भवेत्सर्वं तज्जलं सूतिकासमम् ॥

इतिनिर्दावगमात् । 'उत्सृष्टं च जलं त्यक्त्वाऽग्नेयादिपुरोडाशवत्स्वयं  
 नोपयोज्यम्' इति केचित् । 'अत्र सर्वप्राणिनामुत्सर्गे उद्देश्यत्वात्स्वस्यापि  
 तदन्तर्गते र्यागे तु देवताया एवोद्देश्यत्वात्स्वस्य तदभावेन यागवैषम्या-  
 त्स्वयमप्युपयोज्यम्' इत्यन्ये । एवमारामफलादिष्वपि ।

इति भविष्योत्तरोक्तो वापीकूपतडागोत्सर्गविधिः ।

अथ वापीकूपतडागादिष्वल्पतोयेषु श्वमार्जारखरवानरसूकरादिमृत-  
 काद्युपघाते सर्वोदकोद्धरणेन शुद्धिः । बहुजलेषु कुम्भशतमुद्धृत्य पञ्चग-  
 व्यप्रोक्षणम् । क्षुद्रप्राणिपाते षष्ठिकुम्भोद्धारे पञ्चगव्यप्रक्षेपः । अत्यल्पोप-  
 घाते सूर्यचन्द्ररश्मिसम्बन्धाद्वायुस्पर्शाच्च शुद्धिः । तथा अतिगम्भीरवापी-  
 कूपतडागनद्यादिषु चण्डालाद्यशुचिस्पर्शे यत्रैव स्थले तत्स्पर्शस्तदेव स्थलं  
 परिवर्ज्यान्यत्र शुद्धिः । वापीकूपतडागेषु मानुषमृतके प्रक्षिप्ते सर्वजलोद्धा-  
 राद्धशतजलोद्धरणपूर्वकपञ्चगव्यप्रक्षेपाद्वा शुद्धिः । वापीकूपतडागजले  
 मनुष्यमरणे तु जलस्याहोरात्रमाशौचम् । ततः प्रागुक्ता शुद्धिः । एवं  
 मूत्रपुरीषचर्मरुधिरादिधातुप्रक्षेपे त्रिंशत्कुम्भजलोद्धारपूर्वकगोमूत्रादिप्रक्षे-



पादिकं मार्जनमिति वाप्यादिशुद्धिः । एतन्मूलवचनानि पितामहचरण-  
कृतायां पद्धतौ द्रष्टव्या ।

अथारामप्रतिष्ठां वक्तुं वृक्षारोपणं भविष्यपुराणे—

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिचिणीकम् ।

कपित्थविल्वामलकत्रयं च पञ्चास्रवापी नरकं न पश्येत् ॥

पादो—

यत्नेनापि च राजेन्द्र विष्ण्वारोपणं कुरु ।

स तु पुत्रसहस्राणामेक एव करिष्यति ॥

कर्तव्यमिति शेषः ।

भारतेपि आनुशासनिके—

कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव शुभं फलम् ।

अतीतानागतौ चोभौ पितृवंशौ च भारत ।

तारयेद्बृक्षरोपी च तस्माद्बृक्षांश्च रोपयेत् । इत्यादि ॥

मात्स्ये—

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु ।

तडागविधिवत्सर्वमासाद्य जगतीश्वर ॥

ऋत्विङ्मण्डपसंभारमाचार्यश्चापि तादृशः ।

पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्वेमवस्त्रानुलेपनैः ॥

सर्वेष्वधुदकैः सिक्तान् पिष्टातकविभूषितान् ।

पिष्टातकं सुगन्धिचूर्णम् ।

वृक्षान्माल्यैरलंकृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् ।

सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् ॥

अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्वेमशलाकया ।

फलानि सप्त चाष्टौ वा कालधौतानि कारयेत् ॥

कालधौतानि सौवर्णानि ।

प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेशां तान्यविवासयेत् ।

धूपोऽत्र गुग्गुलुः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान् ॥

सप्तधान्ययुतान्कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः ॥

कुम्भान्सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरोत्तम ।

सहिरण्यानशेषांस्तान्कृत्वा बलिनिवेदनम् ॥



यथावलोकपालानामिन्द्रादीनां विधानतः ।  
 वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्यो द्विजातिभिः ॥  
 ततः शुक्लांबरधरां सौवर्णकृतभूषणाम् ।  
 सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम् ॥  
 पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद्रामुदङ्मुखीम् ।  
 ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।  
 ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा ॥  
 तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मणपुंगवाः ।  
 ततः शुक्लांबरधरो यजमानोऽभिपूजयेत् ।  
 गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विगाद्यान्समाहितः ॥  
 हेमसूत्रैः सकटकैरंगुलीयैः पवित्रकैः ।  
 वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः ॥  
 क्षीराभिषेचनं कुर्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ।  
 होमश्च सर्पिषा कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा ॥  
 पालाशः समिधः शस्ताश्चतुर्थेऽहि तथोत्सवः ।  
 दक्षिणाऽपि पुनस्तद्वदेया शक्त्यापि तत्र सः ॥  
 आचार्ये द्विगुणं दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।  
 अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्वृक्षोत्सवं बुधः ।  
 सर्वान्कामानवाप्नोति फलं चानन्तमश्नुते । इत्यादि ॥

अत्र जलाशयवदारामोऽप्युत्सृष्टव्य इति केचित् । .मानाभावाच्चेत्यन्ये ।  
 अथैतत्प्रयोगः । तत्र जलाशयोत्सर्गोक्तकालमनुसृत्याधिवासनदिना-  
 त्पूर्वेद्युः कृतैकभक्तादिनियमोऽधिवासनदिने प्राङ्मुख उपविश्य 'अशे-  
 त्यादिमम सर्वपापक्षयातीतानागतपितृकुलतारणकामो भगवत्प्रीतिकामो  
 वाऽऽरामोत्सर्गं करिष्ये' इति संकल्प्य गणेशपूजास्तिवाचनमातृपू-  
 जाभ्युदयिकश्राद्धगुर्वर्त्तिवर्णनतत्पूजनमण्डपप्रवेशतत्पूजनान्तेऽग्निस्थाप-  
 नात्पूर्वमाचार्यश्चतुरस्रपीठिकामध्ये कृतालवालावृक्षान्सर्वोषध्युदकैः  
 सिक्तां पिष्टातकैः पुष्पमालाभिर्वासोभिश्चालंकृत्य सूच्या प्रतिवृक्ष-  
 स्कन्धसमीपे कर्णवेधं तदुपरि प्रदेशे शलाकया नेत्रांजनं कृत्वा गुग्गु-  
 लुधूपं दत्त्वा मूलबद्धचतुरस्रपीठिकोपरि यवगोधूमषष्टिकङ्कुश्यामाक-  
 तिलचीनकात्मकसप्तधान्यानि प्रक्षिप्य तेषु जलपूर्णान् सोपस्करान्



ताम्रकलशान् स्थापयेत् । प्रतिवृक्षं कलशस्थापनसेकादिकरणाशक्तौ  
 वृक्षाष्टके कर्तव्यमित्याहुः । ततोऽग्निस्थापनान्ते गुरुर्वेद्यां षोडशारे  
 सूर्याद्यां लोकपालान्ता देवता जलाशयोत्सर्गवत्संस्थाप्य प्रतिवृक्षं सप्ताष्टौ  
 वेति कृतसंख्याकानि स्वर्णफलानि वेद्यां कूर्ममकरादिपात्रीस्थाने 'वन-  
 स्पते वीडुङ्ग' इति मन्त्रेणासादयेत् । अस्य प्रजापतिर्वनस्पतिस्त्रिष्टुप् ।  
 'वनस्पते वीडुङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः । गोभिः  
 सन्नद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेतवानि' । ततो ब्रह्माणं शिवं  
 विष्णुं विनायकं कमलामम्बिकां भूतग्रामं चेति संस्थाप्य सर्वान्पूज-  
 येत् । ततः सर्वेभ्यो बलीन्दत्त्वा पूर्वकुण्डात्प्राच्यां पदत्रयं भुवं त्यक्त्वा  
 जलाशयोत्सर्गवद्यूपं निखनेत् । ततः सर्वे आज्यभागान्ते 'वनस्पते'  
 इतिमन्त्रेणाष्टोत्तरशतमाज्याहुतीः पलाशसमिधः कृष्णतिलाहुतीश्च  
 जुहुयुः । ततो ग्रहादिविश्वकर्मान्तेभ्योऽर्कादिसमिद्भिर्धैः कृष्णतिलैश्च  
 प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्याको होमः कार्यः । ततः स्विष्टकृत् । एवमधि-  
 वासनान्ते प्रातः कुण्डसमीपस्थकलशजलैर्यजमानमभिषिञ्चेयुः स्नपये-  
 युश्च । ततो यजमानः सोपस्करां गामुदङ्मुखीमुत्सृजेत्तत्र मन्त्रः—'इदं  
 वनं पवित्रं कुरुष्व शुद्धं पूतममृतमस्तु नित्यं मां तारयन्ती सर्वतीर्था-  
 भिषिक्तं लोकालोकं तरते तीर्यते चेति' । एकवृक्षप्रतिष्ठायामिमं वृक्ष-  
 मित्यूहः । ततः 'समुद्रादूर्मिः' 'ये वाऽमी रोचने दिव' इति मन्त्र-  
 द्वयमुक्त्वा गोपुच्छोदकेन देवपितृन्सन्तर्प्य 'सूयवसाद्भवगवतीरिति'  
 हिङ्गुते च 'हिङ्गुण्वतीरिति' च जपेत् । ततो वनोत्सर्गं कुर्यादिति  
 केचित् । स चैवं कुशयवतिलजलान्यादायेत्यादि 'इदं वनमश्वत्थनिम्बवट-  
 तित्तिन्तीकपित्थवित्त्वामलकाम्रदाडिमादिनानावृक्षयुतं वनस्पतिदेवताकं  
 स्वीयसर्वपापक्षयपूर्वकमतीतानागतपितृकुलतारणकामो भगवत्प्रीतिकामो  
 वा सर्वसत्वेभ्योऽहमुत्सृजे' । तत ऊहितं मन्त्रद्वयं पठेत्—

सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टं मयैतद्वनमूर्जितम् ।

रमन्तां सर्वभूतानि स्थितिभक्षोत्सवादिभिः । इति ॥

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं वनम् ।

रमन्तां सर्वभूतानि स्थितिभक्षोत्सवादिभिः । इति ॥

ततो वृक्षमूलस्थापितजलैः पुनर्यजमानमभिषिच्य स्नपयेयुः । तत्र  
 ब्रह्मणमन्त्राः 'सुरास्त्वाम्' इत्यादयश्च । ततो यजमान उपविश्याथे-



त्यादिकृतैतदारामप्रतिष्ठाकर्मसमृध्यर्थममुकसगोत्रेभ्य एताः शतं गा  
 वत्र षष्टि पञ्चाशतं षट्त्रिंशतं पञ्चविंशतिं वा यथाशक्ति रुद्रदेवता  
 दक्षिणात्वेन युष्मभ्यं गुर्वतिवग्भ्यः संप्रददे इति दत्त्वा हेमसूत्रकटकाङ्गु-  
 लीयकवासःशय्यापादुकाद्युपस्करानृत्तिवभ्योऽशक्तौ गुरवे वा दद्यात् ।  
 तत 'आपोहिष्ठेति' त्र्यृचं जपन्नविच्छिन्नदुग्धधारया वनं त्रिःपरिषिच्य  
 एकं विप्रं यथेष्टं दुग्धं पाययेत् । ततो गुरुलोकपालेभ्यः प्राग्वद्वलिं दत्त्वा  
 दिनचतुष्टयं वृक्षमूलेषु क्षीराभिषेचनं ग्रहादिपूजनं वेद्यधिवासितदेवार्चनं  
 वानस्पत्यहोमादिवैश्वदेवकर्म होमान्तं च कृत्वा चतुर्थीकर्म कुर्यात् ।  
 पूर्णाहुतिहोमोऽत्र वनस्पतिमन्त्रेणेति विशेषः । 'नात्र नागयष्टिः न तीर्थ-  
 प्रवेशनम्' इति रूपनारायणः । 'द्वयमपि कार्यम्' इत्यन्ये । ततोऽभिषे-  
 कग्रहपूजाग्निपूजाविसर्जनशय्यादानमण्डपाद्युपस्करप्रतिपत्तिविप्रभोजन-  
 भूयसीदानकर्मेश्वरार्पणानि जलाशयोत्सर्गवत् ॥

इति श्रीमीमांसकशङ्करभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्त-

भास्करे उत्सर्गमण्डलः समाप्तः ।



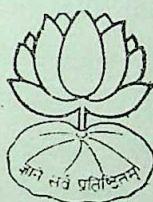






भगवंतभास्करे  
मीमांसकश्रीनीलकण्ठभट्टविरचितः  
**प्रतिष्ठामयूखः**  
( नवमः )

लेलेइत्युपाह्वयंकटेशशास्त्रिणा  
संशोधितः ।



**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७







# प्रतिष्ठामयूखः ।

नवमः ९

श्रीगणेशाय नमः ।

नमामि भास्वत्पदपङ्कजं तन्मौलौ विधायाञ्जलिमादरेण ।  
क्षीराब्धिजावासनिकेतनं यद्विष्ण्वीश्वरात्मप्रभवस्वरूपम् ॥ १ ॥

महोमहत्समाराध्य जलोत्सर्गमथोक्तवान् ।  
प्रतिष्ठां सर्वदेवानां नीलकण्ठो वदत्यसौ ॥ २ ॥  
जज्ञे पितामहतनोः खलु कश्यपो य-

स्तस्मादजायत मुनिस्तु विभाण्डकाख्यः ।  
तं पुत्रिणां धुरमरोपयदृष्यशृङ्ग-  
स्तस्यान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवराभिधानः ॥ ३ ॥

तस्मिन्वंशे महति वितते सङ्गराख्ये नृपाणां  
राजा कर्णः समजनि यथा सागरे शीतरश्मिः ।

कीर्त्या यस्य प्रथिततरया श्रोत्रजातेऽभिपूर्णं  
कर्णस्यापि प्रविततकथा नावकाशं लभन्ते ॥ ४ ॥

विशोकाख्यदेवस्ततस्तत्सुतोऽभूद्विशोकीकृता येन सर्वा धरित्री ।  
ततोऽप्यास राजाऽस्तशत्रुस्ततोऽभूद्रयाख्यो रयेणैव सर्वाहितघ्नः ५

बभूवाथ वैराटराजस्ततोऽभून्नृपो मेदिनीवल्लभो बीढराजः ।  
ततो ब्रह्मदेवस्ततो मन्युदेवस्ततोऽभून्नृपश्चन्द्रपालाभिधानः ॥ ६ ॥

शिवगणाख्यनृपः समजन्यथो शिवगणाख्यपुरं प्रचकार यः ।  
शिवगुणेन समः सकलैर्गुणैः शिवशिव प्रथमो गणनासु यः ॥ ७ ॥

रोलिचन्द्र इति तत्तनयोऽभूत्कर्मसेननृपतिस्तमथानु ।  
लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजातः ॥ ८ ॥

यशोदेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्ततः ।  
चक्रसेनस्ततो राजा राजसिंहनृपो यतः ॥ ९ ॥

ततोऽप्यभून्नृपतिः साहिदेवः स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धसिन्धुः ।  
अभूत्ततः श्रीभगवन्तदेवः सदैव भाग्योदयवान्क्षितीशः ॥ १० ॥



यद्दानद्वविणादिनिर्जितवपू रत्नाचलो लज्जया  
 दूरे स्तब्ध इलावृते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः ।  
 किञ्च त्रस्यदरातिवामनयनानेत्राम्बुभिर्वर्धित-  
 स्तेजोऽभिर्वडवामुखोत्थहुतभुक्तुल्यः कथं नो भवेत् ॥११॥  
 आज्ञप्तस्तेन राज्ञा विबुधकुलमणिर्दाक्षिणात्यावतंसो  
 भट्टश्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृढमतिर्जैमिनीयेऽद्वितीयः ।  
 आज्ञामादाय भूर्ध्रा सविनयममुना तस्य सर्वान्निबन्धान्  
 दृष्ट्वा सम्यग्विविच्य प्रविततकिरणस्तन्यते आस्करोऽयम् १२  
 प्रतारकैरादृतमत्र किञ्चिन्मया तु निर्मूलतया तदुज्झितम् ।  
 ऊनोक्तिताऽतो न हि तेन काचित् खपुष्पहीनाऽपचितिर्न हीयते ॥  
 संस्काराचारकालाः समुचितरचनाः आद्वनीती विवादो  
 दानोत्सर्गप्रतिष्ठा जगति जयकराः सङ्गतार्थानुबद्धाः ।  
 प्रायश्चित्तं विशुद्धिस्तदनु निगदिता शान्तिरेवं क्रमेण  
 ख्याता ग्रन्थेऽत्र शुद्धे बुधजनसुखदा द्वादशैते मयूखाः ॥१४॥  
 भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिच्छिष्टसम्भते च ततः ।  
 प्रतिष्ठाविधिमयूखः प्रतन्यते नीलकण्ठेन ॥ १५ ॥

तत्र तत्काला विष्णुधर्मोत्तरे—

चैत्रे वा फाल्गुने वाऽपि ज्येष्ठे वा माघवे तथा ।  
 माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा सिते ॥  
 रिक्तान्यतिथिषु स्यात्सा वारे भौमान्यके तथा । इति ।

तत्रैव—

आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ।  
 ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥  
 हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा ।  
 अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते । इति ॥

अत्राषाढे द्वे इत्यनेनैवोत्तराषाढाप्राप्तावप्युत्तरात्रयपदमुत्तराफाल्गु-  
 न्युत्तराभाद्रपदयोरर्थवत् ।

नारसिंहे—

तथा महाश्विनो मास उत्तमः सर्वकामदः ।  
 देवी तत्र सदा शक्रपांसुनाऽपि प्रतिष्ठिता ॥



भवने फलदा पुंसां कर्कस्थे च वृषस्थिते ।  
 न तिथिर्न च नक्षत्रं नापि वारोऽत्र कारणम् ॥  
 मातृभैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः ।  
 महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥

कचिन्निषेधः—

आर्द्रादिके स्वातिविरामकाले नक्षत्रवृन्दे दशके स्थितेऽर्के ।  
 विवाहचौलत्रतबन्धदीक्षासुरप्रतिष्ठादि न कार्यमेव । इति ॥

अथ सम्भाराः ।

‘अर्कादिग्रहसमिधां प्रत्येकमष्टशतं संक्षेपपक्षे आज्यचर्वादि लोकपाला-  
 दियागाय पलाशादिसमिधां प्रत्येकमष्टसहस्रमष्टशतं वा पुष्पमालाः कुङ्कुमं  
 कर्पूरः कस्तूरी चन्दनं गुग्गुलुधूपदहनं आरार्तिकं घण्टा पादुका दर्पणं  
 बलिसामग्री पायसभक्ष्यभोज्यनैवेद्यं होमार्थमाज्यतिलयवाक्षतफलादिकं  
 प्रतिकुण्डं विष्टराश्चत्वारः प्रतिकुण्डं सुक्कसुवौ आसनानि त्रिसूत्री श्वेतोर्णा-  
 सूत्रं सर्वतोभद्रादिरचनायै श्वेतरक्तपीतनीलकृष्णवर्णकाः स्नपनकलशाः  
 पञ्च पलवाः कदलीस्तम्भाः पताका दश ध्वजाश्च दश तेषां वेणुदण्डाः वज्र-  
 मौक्तिकवैडूर्यशङ्खस्फटिकपुष्परागेन्द्रनीलमहानीला इति रत्नाष्टकम् ।  
 हरितालकमनःशिलाभ्रककृष्णाञ्जनमाक्षिककासीसस्वर्णमाक्षिकगौरिका,  
 इति धात्वष्टकम् । तिलयवमुद्गगोधूमनीवारश्यामाकसर्षपत्रीहय इति  
 बीजाष्टकम् । सुवर्णरजतताम्रलोहत्रपुसीसरङ्गरीत्याख्यं धात्वष्टकम् ।  
 मधुपर्कपात्रं सौवर्णं वा ताम्रं वा अर्घपात्रं शक्त्यैकद्वित्रिमाषसुवर्णशला-  
 कास्थापनीयकलशरत्नानि षोडश द्वारकलशा अष्टौ लोकपालकलशा  
 वेदिकलशाश्चत्वारो वास्तुमण्डलकलशाः कुण्डकलशाः कुण्डसंख्यया  
 निद्राकलशाः स्नपनकलशाः पञ्चचत्वारिंशत्कलशसंख्यया शरावाणि  
 धारासहस्रान्वितौ कलशौ गजाश्वस्थानवल्मीकसङ्गमनदीकूलद्वयवराहो-  
 त्खातराजद्वारमृदो मुरामांसीवचाकुष्ठशैलेयहरिद्रादारुहरिद्रासटीचम्प-  
 कमुस्ता इति दश सर्वौषध्यः पञ्चगव्यं पृथक्पृथक् ब्रीहिति लयवागोधूमनी-  
 वारश्यामाकमुद्गा इति सप्त धान्यानि । प्रतिमार्थं शय्या सोपस्करा श्वे-  
 वस्त्रं चामरं विचित्रवितानं त्रयो दुकूलपट्टा ऋत्विवरणसामग्री शिल्पि-  
 वस्त्रयुगम्’ इत्यादिसम्पादितसम्भारो मूर्तिप्रतिष्ठादिनात्प्राक्सप्तमदिने  
 पञ्चमदिने तृतीयदिने द्वितीयदिने सद्यो वा प्रासादाम् उत्तरे पूर्वे वा



षोडशद्वादशदशहस्तं वा मण्डपं कृत्वा तन्मध्ये चतुरस्रां सप्तहस्तां पञ्च-  
हस्तां चतुर्हस्तां वा हस्तोच्छ्रितां वेदिं मण्डपोत्तरे तदर्धेन तृतीयभागेन  
चतुर्थेन वा भागेन चतुर्द्वारं स्नानमण्डपं तत्र वेदिकात्रयं च कृत्वा  
शिल्पिस्थानात्प्रासादप्रादक्षिण्येन देवं तत्रानीयासने निधायाचान्तः  
प्राणानायस्य मासानुल्लिख्य 'अस्यां मूर्तौ लिङ्गे वा देवकलासान्निध्यार्थ-  
मायुःश्रीसर्वफलाक्षय्यसुखकाम ईश्वरप्रीतिकामो वाऽमुकमूर्तौलिङ्गस्य वा  
प्रतिष्ठां करिष्ये' इति संकल्प्य गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं कृत्वा,

प्रतिमायागसिद्धयर्थं श्राद्धमेतत्सुदुर्लभम् ।

यजनायात्मनः शक्यं करिष्ये मातृपूर्वकम् ॥

इति मन्त्रमुक्त्वा मातृपूजनं नान्दीश्राद्धं च कृत्वाऽऽचार्यं वृत्वा  
द्वात्रिंशत्षोडशाष्टौ चतुरो वा ऋत्विजोऽष्टौ चतुरो वा द्वारपालान्वृत्वा  
तान्संपूजयेन्मधुपर्कादिना । सदस्यवरणमप्यत्रेति त्रिविक्रमादयः ।

ततः ,

मन्त्रमूर्तिभवान्नाथ संसारोच्छेदकारक ।

देवः पूजार्हो यथा स्यात्कुरु धर्मोद्गतिं च नः ॥

संसारभयभीतेन अयं यज्ञः सुभक्तितः ।

प्रारब्धस्त्वत्प्रासादेन निर्विघ्नं मे भवत्विति ॥

आचार्यं प्रार्थ्य सतूर्यघोषं सपरिकरः संपूर्णकुम्भो ' भद्रं कर्णेभिः' इति  
मन्त्रेण महामण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण प्रविशेत् ।

तत्राचार्यः—

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।

सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥

इत्युक्त्वा तत्र सर्षपान्विकीर्य ' देवा आयान्तु यातुधाना अपयान्तु  
विष्णो देवयजनं रक्षस्व ' इति रक्षां कृत्वा वेदिकाग्नेयकोणे स्थूणां  
वसुदायै नमो वसुदामावाहयामीत्यालभ्य गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् । ततः  
प्रादक्षिण्येन भद्रायै नम इति द्वितीयां अदित्यै नम इति तृतीयां नन्दायै  
नम इति चतुर्थीम् । मण्डपाग्नेयकोणे भूत्यै नम इति प्रथमाम् । ततः  
प्रादक्षिण्येन सरस्वत्यै० पूर्वसंध्यायै० मध्यसंध्यायै० पश्चिमसंध्यायै०  
गायत्र्यै नमो गायत्रीमावाहयामि । सावित्र्यै० बृहस्पत्यै० अदित्यै०  
विततायै० पौर्णमास्यै० सिनीवाल्यै० , इति षोडश स्थूणाः स्पृष्ट्वा



पूजयेत् । नागमात्रे नम इति बलिः कार्यः । सर्पेभ्यो नम इति शाखोद्धन्धनानि पूजयेत् । ततः पश्चिमद्वारेण निर्गत्य पूर्वदिगादिद्वारतो-  
रणपूजामारभेत् । तत्र प्राच्यां सुदृढतोरणाय नम आश्वत्थतोरणैर्न यज्ञं  
रक्ष सर्वविघ्नान्निवारयेति पूजयेत् । अथ त्रिशूलशृङ्गेषु प्रादक्षिण्येनेन्द्रं  
धातारं भगमित्यादित्यन्यासं कुर्यात् । द्वारशाखयोर्ध्रुवमध्वरं चेति  
वसुद्वयमर्चयेत् । शाखामूलस्थयोर्धान्यराज्योरुपरि रत्नगर्भौ प्रशान्त-  
शिशिरनामानौ कलशौ प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् । ततो द्वारदेशे इन्द्रमावाह्य  
संपूज्य नमस्कृत्य 'इन्द्रायाहि चित्रभानो' इति पीतां पताकां ध्वजं  
चालभ्य 'त्रातारमिन्द्र' इति तां तोरणोपरि निदध्यात् । इन्द्रं व इति  
इन्द्राय घृतौदनबलिदानम् । 'अग्निमीले' इत्यृग्वेदं पूजयेत् ।

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः ।

अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव । इति ध्यानम् ॥

तत्र—

श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ।

पौरुषं रुद्रसूक्तं च वामदेव्यं तथैव च ।

इति द्वारपालजपः । अथाग्नेयकोणे अग्नये नम इत्यग्निमावाह्य पूजयेत् ।  
'अग्न आयाहि' इति रक्तध्वजपताकालम्भः । 'त्वं नो अग्ने' इति  
पताकोच्छ्रयः । 'अग्निं दूतम्' इति घृतौदनबलिः । याम्येषु भद्रद्वारतो-  
रणाय नम औदुम्बरतोरणैर्न यज्ञं रक्ष सर्वविघ्नान्निवारयेति पूजयेत् ।  
शृङ्गेषु पूष्णे नमो मित्राय नमो वरुणाय नम इत्यादिन्यासः । द्वारशा-  
खयोः सोमाय० अग्न्यो नम इति वसुद्वयमर्चयेत् । शाखामूलयोः पर्ज-  
न्याशोकनामानौ कुम्भौ प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् ।

ततो द्वारदेशे यममावाह्य नमस्कृत्य 'यमाय सोमम्' इति श्यामध्व-  
जपताकालम्भः 'यमाय मधुमत्तमम्' इति तोरणोपरि निधानं  
'यमाय सोमम्' इति माषभक्तबलिदानं, इषेत्वेति यजुर्वेदं पूजयेत् ।

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः ।

काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव । इति ध्यानम् ॥

तत्र—

आ नो भद्रानुवाकश्च आशुःशिशानकस्तथा ।

यद्देवास्त्रीणि च पठेत्ततोऽष्टौ च पुनन्तु माम् ॥



## प्रतिष्ठापनसूत्रः ।

अभिषा असि सप्तैव दीर्घायुस्ते ऋचं पठेत् ।  
 आप्यायस्व षण्मोस्तु सर्पेभ्यः आकृष्णेन ॥  
 नमः शंभवे इत्येकामेकाग्निर्देवताक्रमात् ।  
 त्रांतारमिद्रमित्येकां सोमं राजानमेकया ॥  
 अन्नपते महौ इन्द्र ऋचं वाचं समग्रकं पठेत् ।

निर्ऋतौ निर्ऋतये नम इति निर्ऋतिमावाह्य पूजयेत् । मौषुणः परा-  
 परेति कृष्णध्वजपताकालम्भः 'असुन्वन्तम्' इति ध्वजपताकोच्छ्रयणम् ।  
 निर्ऋतिं संपूज्य मौषुण इति कृष्णव्रीह्यन्नं घृतसहितं बलिं दद्यात् ।

अथ पश्चिमायां सुभीमतोरणाय नमः प्रक्षतोरणैनं यज्ञं रक्ष सर्व-  
 विघ्नान्निवारयेति पूजयेत् ।

अथ त्रिशूलेषु अर्यम्णे नमोऽशवे नमो विवस्वते नम इत्यादि-  
 न्यासः । द्वारशाखयोः, अनिलाय नमः, अनलाय नम इति वसुद्वयमर्च-  
 येत् । शाखामूलयोर्धान्यपुञ्जोपरि संजीवनामृतनामानौ कुंभौ प्रतिष्ठाप्य  
 पूजयेत् । तत्र वरुणमावाह्य नमस्कृत्य 'तत्त्वायामीति' श्वेतध्वज-  
 पताकालम्भः 'उदुत्तमं वरुणेति' तोरणोपरि निधानम् । नवनीतौ-  
 दनबलिदानम् । 'अग्न आयाहीति' सामवेदं पूजयेत् ।

सामवेदस्तु पिगाक्षो जागतः शक्रदैवतः ।

भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक्त्वं मे मखे भव ।

इति सामवेदध्यानम् । तत्र जपः । इन्द्राय सामगायत 'अहमसि  
 प्रथमजा ऋतस्य० स्वादिष्ठया० गायन्ति त्वा गाय० कस्य नूनं कत-  
 मस्यामृतानाम्' इत्यादि । अथ वायव्ये वायवे नम इति वायुमावाह्य  
 पूजयेत् 'वायो शतमिति' धूम्रध्वजपताकालम्भः । 'तव वायवृतस्पत'  
 इति पताकोच्छ्रयणम् । वायुं संपूज्य यवौदनबलिदानम् । अथोत्तरे  
 सुप्रभाय तोरणाय नमः 'शनो देवीति' तोरणाळम्भः । न्यग्रोधतो-  
 रणैनं यज्ञं रक्ष सर्वविघ्नान्निवारयेति पूजयेत् । शृङ्गेषु त्वष्ट्रे नमः  
 सवित्रे नमो विष्णवे नम इत्यादिन्यासः । द्वारशाखयोः प्रत्यूषाय  
 नमः प्रभासाय नम इति वसुद्वयमर्चयेत् । शाखामूलस्थयोर्धान्यरा-  
 श्योर्धनदश्रीप्रदनामानौ कुंभौ प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् । अत्र सोममावाह्य  
 नमस्कृत्य 'सोमो धेनुमिति' सुवर्णवर्णध्वजपताकालम्भः । 'वयं



सोमेति' तोरणोपरि निधानम् । 'आप्यायस्वेति' प्रैयंगवबलिदानम् ।  
'शम्भोदेवीरिति' अथर्ववेदं पूजयेत् ।

सुवर्णनयनोऽथर्वानुष्टुपछन्दः पुरन्दरः ।

वेदो वैतानगोत्रस्तु ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥ इति तद्वचनम् ।

तत्र—

अथर्वागिरसं चैव अथर्वशिरसं तथा । शान्त्यध्यायं च पठेत् । अथै-  
शान्यां ईशानाय नम इतीशानमावाह्य पूजयेत् । 'नमः शम्भवायेति'  
रक्तध्वजपताकालम्भः । 'तमीशानम्' इत्युच्छ्रयः । 'कद्रुद्रायेति' गावेधुक-  
बलिः । ईशानपूर्वयोर्मध्ये अनन्ताय नम इत्यनन्तमावाह्य पूजयेत् । 'नमो-  
ऽस्तु सर्पेभ्यः' इति मेघवर्णध्वजपताकालम्भः । 'तद्विष्णोः' इत्युच्छ्रयः ।  
'विष्णोर्नुकम्' इति बलिदानम् । पश्चिमनिर्ऋतिमध्ये कलशे ब्रह्मणे नम  
इत्यावाह्य पूजयेत् । 'यदेवा देवहेडनमिति' रक्तध्वजपताकालम्भः ।  
'ब्रह्मजज्ञानम्' इत्युच्छ्रयः । 'स नो भुवनस्य पते' इति पायसबलिदानम् ।  
प्राच्यां 'गणानां त्वेति' गणेशं संपूज्य 'नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येन्त-  
रिक्षे' इति मण्डपाद्वहिर्दिग्विदिक्षु रुद्रान्संस्थाप्य तेभ्यो बलिं दत्त्वा,

ये केचित्त्विह लोकेषु आगता बलिकांक्षिणः ।

तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥

इतीशान्यां भूतेभ्यो नम इति बलिं दत्त्वाऽऽचामेत् । इति  
मण्डपपूजा ।

अथ गुरुर्महावेद्यां सर्वतोभद्रदेवता दानमयूखीक्तसामान्यप्रयोगोक्ता  
आवाह्य संपूज्य स्वकुण्डेऽग्निं स्थापयेत् । ततः सर्वेऽपि होतारस्तमेवार्चि  
स्वस्वकुण्डे प्रणयेयुः । ततो गुरुः प्रासादान्तरीशान्यां नैर्ऋत्यां वा हस्त-  
मितवेद्यां चतुःपष्टिपदे वास्तुपीठे सामान्यप्रयोगोक्ताः शिख्यादिदेवता  
आवाह्य संपूज्य बलिं दद्यात् । ततः कुण्डेषु स्वस्वशाखीयपूर्वागोत्तरं होतारः  
प्रतिदैवतमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा प्रत्येकं समित्तिलाज्यैः कुण्डसं-  
ख्यया विभज्य जुहुयुर्नाममन्त्रैः । ततः 'वास्तोष्पते प्रतिजानीहि' इति  
मन्त्रचतुष्टयेन समित्तिलाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं पूर्वबद्धत्वा ततः  
पञ्चसंख्यया पञ्चविंशतिसंख्यया वा विल्वैस्तद्वीजैर्वा 'वास्तोष्पत' इति  
चतसृभिर्वास्तोष्पते ब्रुवाथूणामिति च हुत्वा 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य'  
इत्याज्येनाष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा वास्तुकर्मसन्धानाय जुहुयुः । ततो



रक्षोन्नपावमानसूक्ताभ्यां त्रिसूत्र्या प्रासादं संवेष्ट्य परितो जलदुग्धयोः  
पृथगविच्छिन्ने धारे दत्त्वा पीठे पूजितां हैमीं वास्तुप्रतिमां दधिदूर्वास-  
प्रधान्यशैवालगन्धाक्षतपुष्पयुतेऽपकमृद्भाण्डे संस्थाप्य तत्पिथाय चतुःप-  
ष्टिधाभाजितप्रासादाभेयकोणपदादुत्तरे आकाशपदे जानुमात्रं गतं कृत्वा  
जलेनापूर्य गन्धपुष्पाणि प्रक्षिप्य मृद्भाण्डं तत्र निधाय गतं तन्मृद्वैव  
पूरयेत् । मृदाधिक्ये परं शुभम् । इत्थं वास्तुपूजां कृत्वा गुरुर्मण्डपेशान-  
भागे वेद्यां ग्रहानधिदेवताः प्रत्यधिदेवता विनायकादीन्पञ्च लोकपालांश्च  
दानमयूखोक्तप्रकारेणावाह्य पूजयेत् । ततः ऋत्विजः समिच्चर्वाज्यैरष्टोत्तर-  
सहस्राष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्यया कुण्डेषु विभज्य हुत्वा विश्व-  
कर्मन्त्रित्याज्येन हुत्वा बलीन्दत्त्वा पूर्णाहुतिं जुहुयुः । एतन्मन्त्रप्रकारादिकं  
दानमयूखे सामान्यप्रयोगे उक्तम् । अथ गुरुः स्नानमण्डपे ॐ नमो  
नारायणाय इत्यभिर्मानत्रितेन पञ्चगव्येन भूमिं वेदिकात्रयं च संप्रोक्ष्य  
तत्र दक्षिणवेदिकायामास्तृतवालुकायामक्षतैः स्वस्तिकं लिखित्वा तत्र  
विश्वकर्मणो वा ध्यानम् ।

विश्वकर्मा तु कर्तव्यः श्मश्रुलो मांसलाधरः ।

सन्दंशपाणिर्द्विभुजस्तेजोमूर्तिः प्रतापवान् ॥

इति ध्यात्वा सप्तधान्योपरि भद्रपीठं निधाय वेदिकायाः पश्चाद्धारि-  
पूर्णान्सपलवान्वद् कलशान्मृत्पलववृक्षीयकपायगोमूत्रगोमयभस्मगन्धो-  
दकैः प्रपूर्णापरान्पञ्च गन्धजलेनापूर्योदकसंस्थं पंक्तिरूपेणासादयेत् । तत्रा-  
न्त्यस्थपतिकलशः भद्रपीठयुतमध्यमवेदिपश्चिमोऽप्येवं स्थपतिकलशाति-  
रिक्ता एकादश भद्रपीठयुतोत्तरवेद्यास्तु परितोऽष्टौ कलशान्पूर्वादिक्रमेण  
क्षारोदकक्षीरदधिसर्पिरक्षुरससुरास्वादूदकदर्भोदकयुतान्निह्रण्यगर्भाद्यै-  
रष्टभिर्मन्त्रैर्विन्यसेत् । ततोऽन्ये च वेद्याः पश्चिमभागे मृत्तिकागोमय-  
गोमूत्रभस्ममिलितपञ्चगव्यक्षीरदधिघृतमधुशर्करायुता दश कलशाः  
चतुर्दश शुद्धजलकलशा अथान्यानपञ्चत्रिंशत्कलशानासादयेत् । तत्र द्वयोः  
शुद्धजलं एकस्मिन्पञ्चामृतं पञ्चसु जलमेकस्मिन्सुगन्धिजलमेकस्मिन्प-  
ञ्चपलवकपायः एकस्मिन्सर्वोषध्यः दश क्रमात्पुष्पैः फलैः सौवर्णजलेन  
गोशृङ्गोदकेन धान्यैः सहस्रलिद्रैः सर्वोषधिभिः पञ्चपलवैस्तीर्थोदकैर्नव-  
रत्नैर्युताः कार्याः । अवशिष्टेषु दशसु कलशेषु कदंबशालमलीजम्बवशोक-  
प्लक्षचूतवटविल्वनागकेसरपलाशपलवान्क्रमेण निक्षिप्य शुद्धजलमापूर्य



लोकपालानावाहयेत् । सर्वेऽप्याकलशेष्वित्यनेन स्थाप्याः । सूक्ष्मवस्त्रं  
सुगन्धितैलं यवशालिगोधूममसूरिकावित्वचूर्णमुद्रतनार्थमामलकचूर्णं सुगं-  
धियक्षकदर्भं जटाभांसीं चासादयेत् । ततश्चतुरो मङ्गलकलशानेकं वा  
स्थापयेत् । तदन्ते तीर्थोदककलशे—

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।

आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥

इत्यादितीर्थान्यावाहयेत् । ततः सयजमान आचार्यो मूर्तिस्थप-  
तिभ्यां सह सुमङ्गलघोषं कर्म कृत्वा कुटीं गत्वा भूमानुपलिप्य विधि-  
वद्भिं स्थापयित्वा 'प्रतिमानिर्माणे प्राणिवधादिदोषनिरासार्थं घृतेन  
तिलैर्वा होमं करिष्ये' इति सङ्कल्प्याज्यभागान्तं कृत्वा देवमन्त्रेणा-  
ज्याहुतिशतद्वयं हुत्वा पूर्णाहुतिं च कृत्वा प्रतिमां कुशैः संमार्ज्य  
मधुघृताभ्यङ्गेन देवस्य व्रणभङ्गं कृत्वा संपूज्य पञ्चगव्येन पृथक्पृथक्  
स्थापयित्वा पुनः संपूज्य शिल्पपूर्वकल्पितं कलशं सरत्नं सहिरण्यं  
सवस्त्रं देवपुरतो निधाय सृदा गोमयेन गोमूत्रेण भस्मना क्षीरेणेति  
त्रिविक्रमजलान्तरितेन स्थापयित्वा पुनः संपूज्य शङ्खनादेन रथादिना  
देवं महामण्डपप्रादक्षिण्येन स्नानमण्डपमानयेत् । तत्र गुरुर्दक्षिणवेद्यां  
'भद्रं कर्णेभिः' इति प्राङ्मुखं देवं भद्रासने निवेश्य पूर्वकल्पितषट्कल-  
शेष्वन्त्यं स्थपतिकलशं हिरण्यादिसहितं देवसमीपे निधाय,

काशी कुशस्थली मायावन्त्ययोध्या मधोः पुरी ।

शालग्राम सगोकर्णं नर्मदा च सरस्वती ॥

तीर्थान्येतानि कुम्भेऽस्मिन्निवेशन्तु ब्रह्मशासनात् ।

झषारूढा सरोजाक्षी पद्महस्ता शशिप्रभा ।

आगच्छतु सरिज्ज्येष्ठा गङ्गा पापप्रणाशिनी ॥

नीलोत्पलदलश्यामा पद्महस्ताम्बुजेश्वरा ।

आयातु यमुना देवी कूर्मयानस्थिता सदा ॥

प्राची सरस्वती पुण्या पयोष्णी गौतमी तथा ।

ऊर्मिला चन्द्रभागा च शरयूर्गण्डकी तथा ॥

जम्बूका च शतद्रुश्च कलिङ्गा सुप्रभा तथा ।

वितस्ता च विपाशा च शर्मदा च पुनः पुनः ॥

गोदावरी महावर्ता शर्करावर्तमार्जनी ।

कावेरी कौशिकी चैव तृतीया च महानदी ॥



विटंका प्रतिकूला च सोमनन्दा च विश्रुता ।  
 ऋतोया वेत्रवती देविका वेणुका च या ॥  
 आत्रेयगङ्गा वैतरणी काश्मीरी ह्यादिनी च या ।  
 प्लावनी च शवत्रासा कल्माषा शंसिनी तथा ॥  
 वसिष्ठा च अपापा च सिन्धुवत्यारुणी तथा ।  
 ताम्रा चैव त्रिसन्ध्या च तथा मन्दाकिनी परा ॥  
 तैलकाह्नी च पारा च दुन्दुभी नकुली तथा ।  
 नीलगन्धा च बोधा च पूर्णचन्द्रा शशिप्रभा ॥  
 अमरेशं प्रभासं च नैमिषं पुष्करं तथा ।  
 आपाटिं डिडिभारतं भारभूतं बलाकुलम् ॥  
 हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यं मध्यमकेश्वरम् ।  
 श्रीपर्वतं समाख्यातं जलेश्वरमतः परम् ॥  
 आम्नातकेश्वरं चैव महाकालं तथैव च ।  
 केदारमुत्तमं गुह्यं महाभैरवमेव च ॥  
 गयां चैव कुरुक्षेत्रं गुह्यं कनखलं तथा ।  
 विमलं चन्द्रहासं च माहेन्द्रं भीममष्टमम् ॥  
 वस्त्रादं रुद्रकोटिं च अविमुक्तं महालयम् ।  
 गोकर्णं भद्रकर्णं च हेमांशं स्थानमष्टमम् ॥  
 छागलाह्नं द्विरण्डं च कर्कोटं मण्डलेश्वरम् ।  
 कालंजरवनं चैव देवदारुवनं तथा ॥  
 शंकुकर्णं तथैवेह स्थलेश्वरमतः परम् ।  
 एता नद्यश्च तीर्थानि गुह्यक्षेत्राणि सर्वशः ॥  
 तानि सर्वाणि कुम्भेऽस्मिन्विशन्तु ब्रह्मशंसनात् ।

इतिमन्त्रेण तत्र तीर्थान्यावाह्य देवं स्नापयेत् । यजमानश्च शिल्पिर्वर्ग  
 यथाशक्ति पूजयेत् । ततो गुरुर्वह्निर्निर्गत्य सिद्धार्थघृतपायसैस्त्र्यम्ब-  
 कमिति प्रागादिदिक्षु बलिं दत्त्वाऽऽचम्य देवसमीपमागत्य त्रातार-  
 मिन्द्रमित्यादिदशलोकपालमन्त्रैर्मण्डपान्तर्दिक्षु रक्षां कृत्वा देवस्याग्रे  
 चतुरो ब्राह्मणानुपवेश्य स्वस्ति वाचयेत् । तेभ्यश्च दक्षिणां दत्त्वा  
 आशिषो गृहीत्वा गुरुर्देवं स्नापयेत् । अग्निर्मूर्धेति मृदा यज्ञा यज्ञाव इति  
 कषाधैः गायत्र्या गोमूत्रेण गन्धद्वारामिति गोमयेन मानस्तोक इति



भस्मना तत्सवितुरिति गन्धतोयेन । ततः पञ्चकलशैः पञ्चदैवत्यैः  
 'नमः शम्भवे' इति प्रथमेन 'हंसः शुचिषदिति' द्वितीयेन 'या  
 ते रुद्र' इति तृतीयेन 'विष्णोरराटमसि' इति चतुर्थेन 'ब्रह्मजज्ञानम्'  
 इति पञ्चमेन संस्त्राप्य 'शतं जीव शरदो वर्द्धमान' इति दूर्वाक्षतपुष्पैः  
 संपूज्य वस्त्रेणाच्छाद्य द्वितीयवेद्यां 'भद्रं कर्णेभिरिति' भद्रासनं निधा-  
 य 'आस्तीर्णं बहिरूप नो याहि वीतये' इति प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य तत्र  
 प्रणवेन देवं निधाय प्राङ्मुखमुदङ्मुखो वा भूत्वा कुङ्कुमाक्तेन सूत्रेण  
 लिङ्गमावेष्ट्य प्रतिमायां मुखलिंगस्य च नेत्राणि सुवर्णशलाकया 'चित्रं  
 देवानामिति' अर्धर्चेन कल्पयेत् । ऊर्ध्वाधः पृथग्भूतं पद्मपुटद्वयं च आकृ-  
 ष्णेनेति कल्पयेत् । नेत्रमध्ये त्रिभागेन कनीनिकामपि कल्पयेत् । तदा  
 न कश्चित्पुरतस्तिष्ठेत् । सुवर्णं पायसं भक्ष्यं भोज्यमादर्शं च शीघ्रं दर्शयेत् ।  
 ततः शिल्पी लोहेनोल्लिखेत् । गुरुर्मधुसर्पिर्भ्यामभ्यज्येमे मे गंगे इति  
 मन्त्रेणाभ्युक्ष्य पुनर्मृदाद्येकादशकलशैः स्नापयेत् । प्रतिमाबहुत्वे मृदादिक-  
 लशोदकं किञ्चित्स्थापयित्वा तासां नेत्रेपूल्लिख्य तेन स्नापयेत् । यजमानः  
 सुवर्णशलाकास्त्रानवस्त्रादिकं च शिल्पिने दत्त्वा सहिरण्यां गां गुरवे  
 दद्यात् । गुरुरुत्तरस्यां वेद्यां भद्रासने भद्रमिति देवं स्थापयित्वा कलशेन  
 'समुद्रज्येष्ठा' इति संस्त्राप्य संपूज्य दूर्वाक्षतान्मूर्ध्नि दत्त्वा प्रार्थयेत्—

नमस्तेर्चे सुरेशानि प्रकृते विश्वकर्मणः ।

प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः ॥

त्वयि संपूजयामीशं नारायणमनामयम् ।

हरिताशेषदोषैस्त्वं ऋद्धियुक्ता सदा भव ॥ इति ।

ततो देवस्य दक्षिणहस्ते प्रतिमावितस्तिमात्रमूर्णासूत्रं 'कनिकददिति'  
 मन्त्रेण बध्नीयात् ।

सर्वसत्त्वमयं शान्तं परं ब्रह्म सनातनम् ।

त्वांमेवालं करिष्यामि त्वं वन्द्यो भवते नमः ॥

इति पठित्वा चतुर्भिः कलशैः स्नापयेत् । इदमापः प्रवहतेत्याद्येन  
 आपोदेवीरिति द्वितीयेन इमं मे गङ्गे इति तृतीयेन तत्त्वायामीति चतुर्थेन  
 अग्निर्मूर्धादिवेत्यष्टपलमृत्तिकाकलशेन समुद्रज्येष्ठा इति शुद्धोदककलशेन  
 गन्धद्वारामिति सप्तपलमितगोमयकलशेन वरुणस्योत्तंभनमसीति शुद्धो-  
 दकेन तत्सवितुरिति द्वादशपलगोमूत्रकलशेन आपोहिष्ठेति शुद्धोदकेन



प्रसद्येति मुष्टिसंमितभस्मकलशोदकेन यो वः शिवतमो रस इति शुद्धो-  
दकेन पयः पृथिव्यामिति त्रिपलसंमितपञ्चमव्यकलशेन देवीरापः  
संमधुमतीर्मधुमतीभिः सृज्यध्वं इति शुद्धोदकेन आप्यायस्वेति षोडश-  
पलक्षीरकुंभेन तस्मा अरंगमामव इति शुद्धोदकेन दधिक्रावण इति  
विंशतिपलदधिकुंभेन युञ्जान इत्युदकेन घृतवती भुवनानामिति सप्तपल-  
घृतकुंभेन देवस्य त्वेति जलेन मधुवाता इति त्रिपलमधुकुंभेन आपो  
अस्मानिति जलेन आयंगौरिति त्रिपलशर्कराकुंभेन आपोहयवृहतीरि-  
त्युदकेन प्रक्षाल्य यज्ञा यज्ञाव इति वस्त्रेण संमाज्य सुगन्धतैलेना-  
भ्यज्य द्रुपदादिवेति यवशालिगोधूममसूरवित्त्वचूर्णेन्द्रुत्यं या ते रुद्र  
शिवा तनूरिति आमलकचूर्णेन यक्षकर्ममेन कर्ममेन प्रजाभूतेति  
लिप्तेत् । यक्षकर्ममस्तु—

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ कुंकुमस्य च ।

चन्दनस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि । इत्युक्तः ॥

ततो जटामांस्याऽनुलिप्य मानस्तोके प्रतद्विष्णुरिति कलशद्वयेन स्नाप-  
यित्वा अपामसोमममृता अभूमेति पञ्चामृतेन अयं राजा वरुणोऽनुमन्य-  
तां यथा विप्रस्य० संते पयांसि० आप्यायस्वमदितमसो० अस्वप्नेस-  
धिष्ठवसौ० इति पञ्चभिः शुद्धजलपूरितकलशैः क्षालयेत् । गन्धद्वारामिति  
गन्धोदकेन यज्ञा यज्ञाव इति पञ्चपल्लवकपायकलशोदकेन या ओषधीः  
पूर्वा जाता इत्योषधीकलशेन ओषधयः प्रतिमोदध्वमिति पुष्पकलशोदकेन  
याः फलिनीरित्यष्टफलकलशोदकेन हिरण्यगर्भ इति सुवर्णोदकेन हवि-  
ष्मतीरिति शृङ्गोदकेन धान्यमसीति धान्योदकेन सहस्राक्षेणेति सहस्र-  
धारकलशेन या दिव्या इति सर्वोषधिजलेन नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति  
पञ्चपल्लवोदकेन अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्या इति रत्नोदकेन इमं मे  
गङ्गे इति तीर्थोदकेन पुनरष्टभिः कलशैः पूर्वकल्पितैः समुद्रसंज्ञितैः  
स्नापयेत् । कयानश्चित्र इति क्षीरोदकेन आप्यायस्व स मे त्विति  
क्षीरकुम्भेन दधिक्रावण इति दध्ना घृतवती भुवनानामिति घृतस्य  
पयः पृथिव्यामितीक्षुरसस्य देववर्हिरिति सुरोदकस्य स्वादिष्ठयेति  
स्वादूदकस्य सरस्वती योन्यामिति गर्भोदकस्य पुनर्दशभिः पल्लवैर्लोकपा-  
लकलशैः स्नापयेत् । तत्र त्रातारमिन्द्रमिति कदम्बपल्लवकुम्भोदकेन त्वन्नो  
अग्ने वरुणस्य विद्वानिति शाल्मलीपल्लवेन सुगं नः पन्थामभयं कृणोत्विति



जम्बूपलवेन असुन्वन्तमयजमानमिति अशोकपलवेन तत्त्वायामीति पूक्षेण वायो ये ते सहस्रिण इति चूतपलवेन वयस्सोमेति वटपलवेन तमीशानमिति विल्वपत्रेण नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति नागकेसरपलवेन ब्रह्मजज्ञानमिति पलाशपलवेन ततः सुमङ्गलघोषैः कनिकददिति चतुर्भिः कुम्भैः एकेन वा कुम्भेन देवं स्नापयित्वा सुगन्धिना सितवस्त्रेण परिमृज्य विश्वतश्चक्षुरिति सङ्कलीकृत्य देवमावाहयेत् ।

एह्येहि भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकाम्यया ।

यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

हिरण्यवर्णामिति पाद्यम् । हिरण्यवर्णाः शुचय इत्यर्घ्यम् । विभ्राद् बृहत्पिबत्वित्याचमनीयम् । त्र्यम्बकमिति चन्दनम् । अभिवस्त्रेणेति वस्त्रम् । वेदाहमेतं पुरुषमित्युपवीतं तेनैव उत्तरीयं च । इदं विष्णुरिति पुष्पम् । धूरसि धूर्वेति धूपम् । चन्द्रमा मनस इति दीपम् । अन्नपतेऽन्नस्येति नैवेद्यम् । आचमनं पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रार्थनां कृत्वा स्नानवस्त्रनैवेद्यादिकं शिल्पिने दद्यात् । इति देवस्नपनविधिः ।

अथ देवं पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।

त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तमुत्थिते चोत्थितं जगत् ॥

इति तमुत्थाप्य रथमारोप्य मङ्गलघोषेण कनिकददिति सूक्तेन च प्रासादप्रादक्षिण्येनानीय यागमण्डपपश्चिमद्वार्याङ्गणेनेतिमन्त्रेण प्रवेश्य वेद्याः पश्चिमभागे प्राङ्मुखमुपवेश्य मधुपर्कं कुर्यात् । ततो वेद्यां कुशानास्तीर्य तदुपरि शय्यामास्तीर्य वेद्याः पूर्वादिदिक्षु विष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामनानाग्रेयादिकोणेषु श्रीधरदृषीकेशपद्मनाभदामोदरांश्च पूजयेत् । ॐ नमो नारायणायेतिमन्त्रेण विष्णुं शय्यायां निवेशयेत् । शिवादिप्रतिष्ठायां तु नमः शंभवायेति शय्यायां निवेश्य भवं सर्वमीशानं पशुपतिं रुद्रमुग्रं भीमं महान्तं च पूर्वादिक्रमात्पूजयेत्, ततः शय्यायां देवं शाययित्वा त्रिभिर्वस्त्रैर्देवमाच्छाद्य देवस्य शिरोदेशभूमौ सहिरण्यं निद्राकलशमपो देवीरूपहूय इति प्रतिष्ठाप्य आप्यायस्वसमिति मधुसर्पिर्भ्यां देवमभ्यज्य या ते रुद्रेति तैलसर्पपैरुपलिप्य गन्धादिनाऽभ्यर्च्य बृहस्पते परिदीयेति सितं परिसरं दद्यात् । अत्र वा बृहस्पते परीतिमन्त्रेण देवस्य कङ्कणबन्धनमित्येके । ततो देवस्य पादनाभिवक्षःशिरःसु विश्वत-



श्चक्षुरित्यालभनम् । ततस्तदक्षिणपार्श्वे छत्रं व्यजनं चामरं च, चरणदेशे पादुके, पार्श्वयोः शान्तिकुम्भौ आसनदर्पणघण्टाभक्ष्यभोज्यजलपात्रादिकं च देवस्य पुरतः स्थापयेत् । ततो भस्मदर्भतिलैर्देवस्य परितो रक्षार्थं प्राकारत्रयं कृत्वा मण्डपाद्बहिर्गत्वा प्रतिदेशं लोकपालेभ्यो गन्धादिपूर्वकं वलिं दद्यात् । भूतेभ्यश्च त्र्यम्बकमिति । बलिमन्त्रस्तु पूर्वदिग्वासिभ्यो दिक्पतिदिग्भूताधिपतिदिग्द्रुदिङ्मातृदिक्क्षेत्रपालेभ्यो नम इत्येवं प्रति-दिशम् । तत आचम्य होमं कुर्यात् । तद्यथा—ॐ पराय विष्णवात्मने स्वाहेति विष्णवे । अन्यदेवतायां शिवात्मने इत्याद्याहः । अनेनाष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा तिलैर्यवैर्वा प्रत्येकं हुत्वा प्रति-मायां न्यासान्कुर्यात् ।

अ पादयोः उ हृदये म ललाटे इति प्रणवं न्यसेत् । भूः पादयोः भुवः हृदये स्वः ललाटे इति व्याहृतीन्यसेत् । अ तालुनि आ मुखे इ दक्षिणनेत्रे ई वामनेत्रे उ दक्षिणश्रवणे ऊ वामश्रवणे ऋ दक्षिणगण्डे ॠ वामगण्डे ल दक्षिणनासापुटे लृ वामनासापुटे ए ऊर्ध्वदशनेषु ऐ अधोदशनेषु औ ऊर्ध्वोष्ठे औ अधरोष्ठे अं ललाटे अः जिह्वायां य त्वचिर चक्षुषोः ल नासिकायां व दशनेषु श श्रोत्रयोः ष उदरे स कटिदेशे ह हृदये ल नाभ्यां क्ष लिंगे पफवभम दक्षिणबाहौ तथदधन वामबाहौ टठडढण दक्षिणजंघायां चछजझञ वामजंघायां कखगघङ सर्वांगुलिषु इति मातृका-न्यासः । रविचन्द्राभ्यां नमो नेत्रयोः । भौमाय० हृदये । बुधाय० स्कन्धे । बृहस्पतये० जिह्वायाम् । शुक्राय० लिङ्गे । शनैश्चराय० ललाटे राहवे० पादयोः । केतुभ्यो० केशेषु । रोहिणीभ्यो० हृदये । मृगशिरसे० शिरसि । आर्द्रायै० केशेषु । पुनर्वसवे० ललाटे । पुष्याय० मुखे । आश्लेषाभ्यो० नासाभ्याम् । मघाभ्यो० दन्तेषु । पूर्वाफल्गुनीभ्यो० दक्षिणश्रवणे । उत्तराफल्गुनीभ्यो० वामश्रवणे । हस्ताय० हस्तयोः । चित्रायै० दक्षिणे भुजे । स्वात्यै० वामे भुजे । विशाखायै० हृदि । अनुराधाभ्यः० स्तनयोः । ज्येष्ठाभ्यो० दक्षिणकुक्षौ । मूलाय० वाम-कुक्षौ । पूर्वाषाढाभ्यो० कटिपार्श्वयोः । उत्तराषाढाभ्यो० लिङ्गे । श्रवणधनिष्ठाभ्यो० वृषणे । शतभिषगभ्यो० नेत्रे । पूर्वाभाद्रपदाभ्यो० दक्षिणोरौ । उत्तराभाद्रपदाभ्यो० वामोरौ । रेवतीभ्यो० दक्षिणजङ्घायाम् । अश्विनीभ्यो० वामजङ्घायाम् । भरणीभ्यो० दक्षिणपादे । कृत्तिकाभ्यो०



वामपादे । ध्रुवाय० नाभ्याम् । सप्तर्षिभ्यो० कण्ठे । मातृमण्डलाय० कटि-  
देशे । विष्णुपदेभ्यो० पादयोः । नागवीथ्यै० अङ्गवीथ्यै० वनमालाय ।  
ताराभ्यो० रोमकूपेषु । अगस्त्याय० कौस्तुभे । इति ग्रहादिन्यासः ।

चित्राय० शिरसि । वैशाखाय० मुखे । ज्येष्ठाय० हृदये । आषा-  
ढाय० कण्ठे । श्रावणाय० स्तनयोः । भाद्रपदाय० उदरे । आश्विनाय०  
कट्याम् । कार्तिकाय० दक्षिणोरौ । मार्गशिर्षाय० वामोरौ । पौषाय०  
दक्षिणजङ्घायाम् । माघाय० वामजङ्घायाम् । फाल्गुनाय० पादयोः ।  
संवत्सराय० परिवत्सराय० इदुवत्सराय० अनुवत्सराय नम इति  
दक्षिणोर्ध्वात्प्रादक्षिण्येन चतुर्षु बाहुषु । पर्वभ्यो० सन्धिषु । ऋतुभ्यो०  
लिङ्गे । अहोरात्रेभ्यो० अस्थिषु । क्षणाय० लवाय० काष्ठायै० रोमसु ।  
कृताय० मुखे । त्रेतायै० हृदये । द्वापराय० नितम्बे । कलये० पादयोः ।  
मन्वन्तरेभ्यो० बाह्वोः । पराय० परार्धाय० जङ्घयोः । महाकल्पाय०  
शरीरे । उदगयनाय० दक्षिणायनाय० पादयोः । विषुवते० सर्वाङ्गलिषु ।  
इति कालन्यासः ।

ब्राह्मणाय० मुखे । क्षत्रियाय० बाह्वोः । वैश्याय० ऊर्वोः । शूद्राय०  
पादयोः । सङ्करजेभ्यो० पादाग्रे । अनुलोमजेभ्यो० सर्वाङ्गसन्धिषु ।  
गोभ्यो० मुखे । अजाभ्यो० अविकाभ्यो० हस्तयोः । ग्राम्यपशुभ्यो०  
कट्याम् । अरण्यपशुभ्यो० ऊर्वोः । इति वर्णन्यासः ।

मेघेभ्यो० केशेषु । अग्नेभ्यो० रोमसु । नदीभ्यो० सर्वगात्रेषु ।  
समुद्रेभ्यो० कुक्षिदेशे । इति तोयन्यासः ।

ऋग्वेदाय० शिरसि । यजुर्वेदाय० दक्षिणभुजे । सामवेदाय० वाम-  
भुजे । सर्वोपनिषद्भ्यो० हृदये । इतिहासपुराणेभ्यो० जङ्घयोः । अथ-  
र्वाङ्गिरसेभ्यो० नाभौ । कल्पसूत्रेभ्यो० पादयोः । व्याकरणाय० वक्त्रे ।  
तर्केभ्यो० कण्ठे । मीमांसायै० निरुक्ताय० हृदये । छन्दःशास्त्रेभ्यो०  
ज्योतिःशास्त्रेभ्यो० नेत्रयोः । गीताशास्त्रेभ्यो० भूतशास्त्रेभ्यो० श्रोत्रयोः ।  
आयुर्वेदाय० दक्षिणभुजे । धनुर्वेदाय० वामभुजे । योगशास्त्रेभ्यो०  
हृदये । नीतिशास्त्रेभ्यो० पादयोः । वश्यतन्त्राय० ओष्ठयोः ॥  
इति विद्यान्यासः ।

दिवे० मूर्ध्नि । सूर्यलोकाय० चंद्रलोकाय० नेत्रयोः । अनिललो-  
काय० घ्राणे । व्योम्ने० नाभ्याम् । समुद्रेभ्यो० वस्तिदेशे । पृथिव्यै०  
पादयोः । इति वैराजन्यासः ।



हिरण्यगर्भाय० शिरसि । कृष्णाय० केशेषु । रुद्राय० ललाटे ।  
यमाय० भुक्त्याम् । अश्विभ्यां० कर्णयोः । वैश्वानराय० मुखे ।  
मरुद्भ्यो० घ्राणे । वसुभ्यो० कण्ठे । रुद्रेभ्यो० दन्तेषु । सरस्वत्यै०  
जिह्वायाम् । इन्द्राय० दक्षिणभुजे । वलये० वामभुजे । प्रह्लादाय०  
दक्षिणस्तने । विश्वकर्माणे० वामस्तने । नारदाय० दक्षिणकुक्षौ ।  
अनन्तादिभ्यो० वामकुक्षौ । वरुणाय० हस्तयोः । मित्राय० पादयोः ।  
विश्वेभ्यो देवेभ्यो० ऊरुमध्ये । पितृभ्यो० जानुमध्ये । यज्ञेभ्यो०  
जङ्घयोः । राक्षसेभ्यो० गुल्फयोः । पिशाचेभ्यो० पादयोः । असुरेभ्यो०  
पादाङ्गुलीषु । विद्याधरेभ्यो० पाष्ण्यां । ग्रहेभ्यो० पादतलयोः ।  
गृह्यकेभ्यो० गुदे । पूतनादिभ्यो० नखेषु । गन्धर्वेभ्यो० ओष्ठयोः ।  
कार्तिकेयाय० गणेशाय० कटिपार्श्वयोः । इति देवयोनिन्यासः ।

मत्स्याय० मूर्ध्नि । कूर्माय० पादयोः । वराहाय० जङ्घयोः । नृसि-  
हाय० ललाटे । वामनाय० मुखे । परशुरामाय० हृदये । रामाय०  
बाहुषु । कृष्णाय० नाभ्याम् । बौद्धाय० बुद्धौ । कल्किने० जानुनि ।  
केशवाय० शिरसि । नारायणाय० मुखे । माधवाय० ग्रीवायाम् ।  
गोविन्दाय० बाह्वोः । विष्णवे० हृदये । मधुसूदनाय० पृष्ठे । त्रिविक्रमाय०  
कट्याम् । वामनाय० जठरे । श्रीधराय० हृषीकेशाय० जङ्घयोः ।  
पद्मनाभाय० गुल्फयोः । दामोदराय० पादयोः । इति मूर्तिन्यासः ।

अश्वमेधाय० मूर्ध्नि । नरमेधाय० ललाटे । राजसूयाय० मुखे ।  
गोसवाय० कण्ठे । द्वादशाहाय० हृदि । अहीनेभ्यो० नाभौ । सर्व-  
जितेभ्यो० दक्षिणकट्याम् । सर्वमेधाय० वामकट्याम् । अग्निष्टोमाय०  
लिङ्गे । अतिरात्राय० वृषणयोः । आप्तोर्यामाय० ऊर्वोः । षोडशने०  
जान्वोः । उक्थाय० दक्षिणजङ्घायाम् । वाजपेयाय० वामजङ्घायाम् ।  
अत्यग्निष्टोमाय० दक्षिणबाहौ । चातुर्मास्याय० वामबाहौ । सौत्रामण्यै०  
हस्तेषु । पश्चिष्टिभ्यो० अङ्गुलीषु । दर्शाय० पौर्णमासाय० नेत्रयोः ।  
सर्वेष्टिभ्यो० रोमकूपेषु । स्वाहाकाराय० वषट्काराय० स्तनयोः । पञ्च-  
महायज्ञेभ्यो० पादाङ्गुलीषु । आहवनीयाय० मुखे । दक्षिणाम्रये० हृदये ।  
गार्हपत्याय० नाभ्याम् । वेद्यै० उदरे । प्रवर्ग्याय० भूषणेषु । सवनेभ्यो०  
पादयोः । इध्मेभ्यो० बाहुषु । दर्भेभ्यो० केशेषु । इति क्रतुन्यासः ।

अथ मूलमन्त्रन्यासः । आयुधन्यासः शक्तिन्यासः अङ्गन्यासः । इति  
साधारणाः सर्वत्र ।



वैष्णवंमधिकृत्य तूच्यन्ते । धर्माय० मूर्ध्नि । ज्ञानाय० हृदि ।  
वैराग्याय० गुह्ये । ऐश्वर्याय० पादयोः । इति गुणन्यासः ।

खड्गाय० शिरसि । शाङ्गाय० मस्तके । मुसलाय० दक्षिणभुजे ।  
हलाय० वामभुजे । चक्राय० नाभ्यां जठरे पृष्ठे च । शंखाय० लिङ्गे  
वृषणे च । गदायै० जङ्घयोः जानुनोश्च । पद्माय० गुल्फयोः पादयोश्च ।  
वज्राय० शक्त्यै० दण्डाय० खड्गाय० पाशाय० ध्वजाय० अङ्कुशाय०  
त्रिशूलाय० चक्राय० पद्माय० शिवे । इत्यायुधन्यासः ।

लक्ष्म्यै० ललाटे । सरस्वत्यै० मुखे । रत्यै० गुह्ये । प्रीत्यै० कण्ठे ।  
कीर्त्यै० दिक्षु । शान्त्यै० हृदि । तुष्ट्यै० जठरे । पुष्ट्यै० सर्वत्र ।  
इति शक्तिन्यासः ।

मूलमन्त्रस्य । हृदयं हृदये शिरः शिरसि शिखां शिखायां वासु-  
देवाय कवचं सर्वत्र नेत्रयोर्नेत्रे० करयोरङ्गं दक्षिणवामस्तनयोः श्रीव-  
त्साय० उरसि कौस्तुभाय० कण्ठे वनमालायै० । इत्यङ्गन्यासः ।

ॐ पादयोः । न जानुनोः । मो गुह्ये । भ नाभ्याम् । ग हृदये । व  
कण्ठे । ते मुखे । वा नेत्रयोः । सु भाले । दे मूर्ध्नि । वा दक्षिणपार्श्वे ।  
य उत्तरपार्श्वे । इति द्वादशाक्षरन्यासः ।

प्रतिमायां जीवन्यासः । तत्र तेजो भावयित्वा बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रिय-  
मनःप्राणपञ्चकाहङ्कारशब्दतन्मात्रादिकं सर्वं संयोज्य पुरुषभावं भाव-  
यित्वा सर्वसाक्षिणं च भावयित्वा तत्र तत्त्वत्रयं न्यसेत् । तद्यथा—आत्म-  
तत्त्वाय० आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः पादयोः । विद्यातत्त्वाय०  
विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे० हृदये । शिवतत्त्वाय० शिवतत्त्वाधिपतये  
रुद्राय० शिरसीति ।

अथ गायत्रीन्यासः सूर्यस्य । त पादाङ्गुष्ठयोः । तस गुल्फयोः ।  
वि जङ्घयोः । तु जानुनोः । व ऊर्वोः । रे गुह्ये । णि वृषणयोः । यं  
कटिदेशे । भ नाभौ । गौ जठरे । दे स्तनयोः । व हृदये । स्य कण्ठे ।  
धी वदने । म तालुदेशे । हि नासिकाग्रे । धि चक्षुषोः । यो भ्रूमध्ये ।  
यो ललाटे । नः पूर्वदिशि । प्र दक्षिणदिशि । चो पश्चिमदिशि । द  
उत्तरदिशि । या मूर्ध्नि । त् सर्वत्र । तत्सवितुर्हृदये, वरेण्यं शिरसि,  
भर्गो देवस्य शिखायाम्, धीमहि कवचे, धियो योतः नेत्रयोः, प्रचो-  
दयात् अक्षे । इति गायत्रीन्यासः ।



अथ मन्त्रन्यासः । अग्निमीळे० पादयोः । इषे त्वा० गुल्फयोः ।  
अग्न आयाहि० जह्वयोः । शन्न० जान्वोः । बृहद्रथन्तरे० ऊर्वोः । स्वस्ति  
नः० जठरे । दीर्घायुत्वाय० हृदये । श्रीश्च ते० कण्ठे । ज्ञातारं० वक्त्रे ।  
त्र्यम्बकं० स्तनयोर्नेत्रयोश्च । मूर्धानं० मूर्ध्नि ।

अथ द्वादशाक्षरेण नारायणस्य मूर्तिन्यासः । ॐ केशवाय० शिरसि ।  
न नारायणाय० मुखे । मो माधवाय० ग्रीवायाम् । भ गोविन्दाय०  
कण्ठे । ग विष्णवे० पृष्ठे । व मधुसूदनाय० कुक्षौ । ते त्रिविक्रमाय०  
कट्याम् । वा वामनाय० जह्वयोः । सु श्रीधराय० वामगुल्फे । दे हृषी-  
केशाय० दक्षिणगुल्फे । वा पद्मनाभाय० वामपादे । य दामोदराय०  
दक्षिणे पादे । ॐ हुं हृदयाय नमः हृदये । ॐ विष्णवे० शिरसि ।  
ब्रह्मणे० शिखायाम् । ध्रुवाय० कवचे । चक्रिणे० अस्त्राय फट् अस्त्रं  
हस्तयोः । नमः शम्भवाय० गायत्रीं दक्षिणेनेत्रे । विजयाय० सावित्रीं  
वामनेत्रे । चक्रिणे चक्ररूपाय० पिङ्गलास्त्रं दिक्षु । इत्यष्टाङ्गविष्णु-  
मन्त्रन्यासः ।

सहस्रशीर्षा० पादयोः । पुरुष एव० जह्वयोः । एतावानस्य०  
जानुनोः । त्रिपादूर्ध्व० ऊर्वोः । ततो विराट्० वृषणयोः । तस्माद्यज्ञात्०  
कट्याम् । तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः० नाभ्याम् । तस्मादध्वा० हृदि । तं यज्ञं०  
स्तनयोः । यत्पुरुषं० बाह्वोः । ब्राह्मणोऽस्य० मुखे । चन्द्रमा मनसो०  
चक्षुषोः । नाभ्या आसीदं० कर्णयोः । यत्पुरुषेण० भ्रुवोः । सप्तास्या०  
भाले । यज्ञेन यज्ञं० शिरसि । अज्यः सम्भूतः० हृदये । वेदाहं०  
शिरसि । प्रजापतिः० शिखायाम् । यो देवेभ्यः० कवचे । ऋचं  
ब्राह्मं० नेत्रयोः । श्रीश्च ते० अस्त्रे । इति पुरुषसूक्तादिन्यासः ।

अथ शिवस्य पञ्चब्रह्मन्यासः । अङ्गुष्ठयोरीशानं, तर्जन्योस्तत्पुरु-  
षम्, मध्यमयोरघोरम्, अनामिकयोर्वामदेवम्, कनिष्ठिकयोः सद्यो-  
जातम् । ततः कनिष्ठिकयोर्हृदयम्, अनामिकयोः शिरः, मध्यमयोः  
शिखा, तर्जन्योः कवचम्, अङ्गुष्ठयोरस्त्रं विन्यस्य परेण तेजसा  
संयोज्य कवचेनावगुण्ठ्य सर्वकर्मसु नियोजयेत् । आचमनं सर्वत्र ।  
इत्थं देवस्य करन्यासं कृत्वा लिङ्गमुद्रां बद्ध्वा, ईशानः सर्वं सदाशिवोम्,  
इतिमन्त्रेण ईशानमुष्टिं बध्नीयात् । ततः अङ्गुल्यग्नैः रुद्रमुद्रया मूर्ध्नि  
'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' इति ।



एवं तर्जन्यङ्गुष्ठयोगात्तत्पुरुषं० मुख । अघोरेभ्यो० इति मध्यमाङ्गुष्ठ-  
योगेन हृदि । अघोरे० वामदेवाय नमो० मनोन्मनाय नम इत्यङ्गुष्ठा-  
नामिकयोगेन गुह्ये । सद्योजातं० भवोद्भवाय नम इति कनिष्ठाङ्गुष्ठ-  
योगेन पादादारभ्य सस्तकान्तं यावन्मूर्तिव्यापकत्वेन ब्रह्म न्यसेत् ।  
ततः ईशानः सर्वविद्यानामिति शशिनमुपरितनमूर्ध्नि । ईश्वरः सर्वभू-  
तानामिति कलिचन्द्रोदयदलं पूर्वमूर्ध्नि । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिप-  
तिर्ब्रह्म नम इतीष्टां दक्षिणमूर्ध्नि । शिवो मे अस्तु नम इति मरी-  
चिमुत्तरमूर्ध्नि । सदाशिवो नम इति ज्वालिनीं पश्चिममूर्ध्नि । ततः  
तत्पुरुषाय विद्याहे नम इति पूर्ववक्त्रे शान्तिम् । महादेवाय धीमहीति  
दक्षिणवक्त्रे विद्याम् । तन्नो रुद्र इत्युत्तरवक्त्रे प्रतिष्ठाम् । प्रचोदयादिति  
पश्चिमवक्त्रे धृतिमिति तत्पुरुषकलाचतुष्टयन्यासः । ततः, अघोरेभ्य इति  
मां हृदये । अथ घोरेभ्यो नम इति रजामुरधि । घोरजरायै स्कन्धयोः ।  
घोरतरेभ्यो निद्रायै नाभौ । सर्वेभ्यः सर्वसाध्यै कुक्षौ । सर्वशर्वेभ्यः  
मृत्यवे पुष्टे । नमस्ते अस्तु क्षुधायै वक्षसि । रुद्ररूपेभ्यस्तुषायै  
उरसि । इत्यष्टावघोरकलाः । वामदेवाय नम इति रजां गुह्ये । ज्येष्ठाय  
नम इति रक्षां लिङ्गे । श्रेष्ठाय नम इति रतिं दक्षिणोरौ । रुद्राय नम  
इति कल्पां वामोरौ । कालाय नम इति कामां दक्षिणजानौ । कल-  
विकरणाय नम इति संजीविन्यै वामजानौ । बलविकरणाय नमः  
क्रियायै इति दक्षिणजंघायाम् । बलाय नमो वृद्ध्यै वामजंघायाम् । बल-  
लायायै दक्षिणस्फिचि । प्रमथनाय नमः धात्रीं वामस्फिचि । सर्व-  
भूतदमनाय नम इति भ्रामणीं कट्याम् । मनो नम इति पोषणीं दक्षि-  
णपार्श्वे । उन्मनाय नम इति ज्वरां वामपार्श्वे । इति त्रयोदशकलाः ।  
सद्योजातं प्रपद्यामि नम इति सिद्धिं दक्षिणपादे । सद्यो जाताय वै  
नमो नम इति ऋद्धिं वामपादे । भवे नम इति कीर्तिं दक्षिणपाणौ ।  
अभवे नम इति लक्ष्मीं वामपाणौ । नातिभवे नम इति मेधां नासा-  
याम् । भवस्व मां नम इति कान्तिं शिरसि । भव नम इति स्वधां  
दक्षिणबाहौ । उद्भवाय नम इति प्रभां वामबाहौ । इति सद्योजातक-  
लाष्टकम् । ततस्तमाद्याः सर्वा अत्र विशन्तिवति कलान्तरन्यासभावनां  
कृत्वा मुद्राश्च प्रदर्श्य विद्यादेवं हंसं संपाद्य हंसहंसेति हृदया-  
दिन्यासं कुर्यात् ।



अथ नृसिंहे 'नृसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा'  
इतिमन्त्रः ।

नारसिंही यदा स्थाप्या त्वधिवास्य निशागमे ।  
कृत्रिमं वाथ साक्षाद्वा पशुं दत्त्वा बलिं हरेत् ॥

एवं न्यासं कृत्वा—

परमेष्ठिनं नमस्कृत्य निद्रामावाहयाम्यहम् ।  
मोहिनीं सर्वभूतानां मनोविभ्रमकारणीम् ॥  
विरूपाक्षे शिवे शान्ते आगच्छ त्वं तु मोहिनि ।  
वासुदेवहिते कृष्णे कृष्णाम्बरविभूषिते ॥  
आगच्छ सहस्राऽजस्रमुप संसारमोहिनि ।  
सुषुप्स्व संहरे देवि कुमार्येकान्तमानसे ॥  
श्रमनिःश्वासवाहां च आगच्छ भुवनेश्वरि ।  
तमःसत्त्वरजोपेते आगच्छ त्वरचारिणि ॥  
मनोबुद्धिरहङ्कारसंहारस्त्वं सरस्वति ।  
शब्दस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ॥  
आगच्छ गृह्य संक्षिप्य मोहपाशनिबन्धिनि ।  
भवम्योत्पत्तिहेतुस्त्वं यावदाभूतसंप्लवम् ॥  
भुवः कल्पान्तसन्ध्यायां वससे त्वं चराचरे ।  
भोगिशय्यां प्रसुप्तस्य वासुदेवस्य शासने ॥  
त्वं प्रतिष्ठाऽसि वै देवि मुनियोनिसमुत्थिते ।  
पितृदेवमनुष्याणां सयक्षोरगरक्षसाम् ॥  
पशुपक्षिमृगाणां च योगमायाविवर्धिनि ।  
वससे सर्वसत्त्वेषु मातेव हितकारिणि ॥  
एहि सावित्रि मूर्ति त्वं चक्षुर्भ्यां स्थानगोचरे ।  
विश नासापुटे देवि कण्ठे चोत्कण्ठिता विश ॥  
प्रतिभावय मां सर्व मातृवहेवि सुन्दरि ।  
इदमर्घ्यं मया दत्तं पूज्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

‘उपप्रागात्परमं यदिति’ मन्त्रोऽयं तस्याः पूजाविधेः स्मृतः । निद्रा-  
कलशे निद्रां पूजयित्वा लोकपालमातृक्षेत्रपालभूतेभ्यो बलिं दत्त्वा स्थाप्य  
देवं शय्यातः प्राच्यां सर्वतोभद्रे पूजयेत् । विष्णुश्चेद्वादशारे चक्रे मध्येऽ-



ब्रह्मले पद्मे मूलमन्त्रेण देवं निवेशयेत् । ॐ हुं हृदयाय नम इति कर्णिकायां  
हृदयं पूजयेत् । विष्णवे नम इति शिरः पूर्वपत्रे । ब्रह्मण्याय नम इति  
स्निग्धां दक्षिणे । ध्रुवाय नम इति कवचं पश्चिमे । चक्रिणे नम इति  
फट् अस्त्रमुत्तरे । शम्भवाय नम इति गायत्रीमात्रेयदले । विजयाय नमः  
सावित्रीमीशानदले । ज्योतीरूपाय नमो नैर्ऋत्ये । चक्रिरूपाय नमः  
पिङ्गलास्त्रं वायव्ये । इति गर्भावरणम् । आसु पूर्वादिक्रमेण केशव  
नारायण माधव गोविन्द विष्णु मधुसूदन त्रिविक्रम वामन श्रीधर  
हृषीकेश पद्मनाभ दामोदर इति द्वादश मूर्तीः पूजयेत् । इति द्विती-  
यावरणम् । प्रागादितः खड्गाय नमः गदायै नमः चक्राय नमः शङ्खाय  
नमः पद्माय० हलाय० मुसलाय० शङ्खाय० । इति तृतीयावरणम् ।

अथ मूर्तीशाः । पृथिवीमूर्तये नमः पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय० ।  
अग्निमूर्तये० अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये० । यजमानमूर्तये० यजमान-  
मूर्त्यधिपतये उग्राय० । अर्कमूर्तये० अर्कमूर्त्यधिपतये रुद्राय० । जलमूर्तये०  
जलमूर्त्यधिपतये भवाय० । वायुमूर्तये० वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय० ।  
इन्दुमूर्तये० इन्दुमूर्त्यधिपतये महादेवाय० । खमूर्तये० खमूर्त्यधिपतये  
भीमाय० इत्यष्टौ मूर्तीस्तदधिपांश्चार्चयेत् । वैष्णवे पञ्चैव मूर्तयः । तदा  
पूर्वं पृथिवीमूर्तये नमः पृथिवीमूर्त्यधिपतये वासुदेवाय० । दक्षिणे जल-  
मूर्तये० जलमूर्त्यधिपतये सङ्कर्षणाय० । पश्चिमे अग्निमूर्तये० अग्निमूर्त्य-  
धिपतये प्रद्युम्नाय० । उत्तरे वायुमूर्तये० वायुमूर्त्यधिपतये अनिरुद्धाय० ।  
मध्ये खमूर्तये० खमूर्त्यधिपतये नारायणाय० इति । शैवे पञ्चमूर्तिपक्षे  
ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवाः पञ्च मूर्तिपाः । इन्द्रादयस्तु सर्वत्र पूजनीयाः ।  
तत आचार्यः क्रमेण पलाशोदुम्बराश्वत्थापामार्गशमीसमिधां प्रत्येकं  
द्वादशसहस्रपट्त्रीण्यष्टसहस्रमष्टशतं वा हिरण्यगर्भ इति कुण्डसमीपे  
संस्थाप्य शान्तिकपौष्टिकैर्मन्त्रैर्यथाविभागं सकृत्त्विक् जुहुयात् । प्रति-  
कुण्डमेकैक ऋत्विक् मूर्तिपास्तत्तन्मन्त्रेण पूज्याः । शन्नो वातः पवतां  
मातरिश्वा शन्नस्तपतु सूर्यः । अहानि शं भवन्तु नः शश्रात्रिः प्रतिधीयताम् ।  
शन्न इन्द्राग्नी० । शन्नो देवीरभि० । इति शान्तिकमन्त्राः । पुष्टिर्नरणा-  
क्षिति० वास्तोष्पते प्रतरणो० अमीवहा० त्र्यम्बकं० । इति पौष्टिकाः ।  
ततो मूर्तिपाः पूर्वकुण्डे पलाशसमिधामष्टसहस्रमष्टशतं वा घृतेन तिलैर्वा  
अग्निमीळे० इति जुहुयुः । इषेत्वेति दक्षिणे । अग्न आयाहीति पश्चिमे ।



शन्नो देवीरित्युत्तरे । यदाष्टौ कुण्डानि तदा ॐ वौषडित्याग्नये । दश  
 प्रणवान्सकृद्वायव्रीं चोक्त्वा नैर्ऋते । जातवेदस इति वायव्ये । नमो  
 ब्रह्मण इतीशानकुण्डे । मूर्धानं दिव इति पूर्णाहुतिं जुहुयुः । आहुतिसंपा-  
 ताञ्शान्तिकलशे कुण्डसमीपस्थे पातयेयुः । ततो मूर्तिमूर्तिपलोकपालेभ्यः  
 संभिद्भिर्घृतेन तिलैर्वाऽष्टसहस्रमष्टशतं वा जुहुयुः । तेषां मन्त्रास्तु स्यो-  
 ना पृथिवीति पृथिवीमूर्तेः । अघोरेभ्य इति मूर्तिपतेः शर्वस्य । इन्द्रो-  
 यदोमरुत्वत इतीन्द्रस्य । अग्निं दूतमित्यग्निमूर्तेः । यः पशूनामित्यग्नि-  
 मूर्तिपतेः पशुपतेः । अग्नयाहीत्यग्नेः । असिहि वीरसेन्य इति  
 यजमानमूर्तेः । तमिन्द्रं जोहवीमीति यजमानमूर्तिपतेरुग्रस्य । यमाय  
 सोममिति यमस्य । उदुत्यं जातवेदसमिति सूर्यमूर्तेः । आ वो राजान-  
 मध्वरस्येति सूर्यमूर्तिपते रुद्रस्य । असुन्वतं समं जहीति निर्ऋतेः । आपो-  
 हिष्ठेति जलमूर्तेः । विभूषन्न उभयानिति जलमूर्तिपतेर्भवस्य । इमं मे  
 वरुणेति वरुणस्य । वात आवातु भेषजमिति वायुमूर्तेः । तमीशानमिति  
 वायुमूर्तिपतेरीशानस्य । आ नो न्युद्गिरिति वायोः । वयं सोमव्रत  
 इति सोममूर्तेः । इन्द्रं तं शुभेति सोममूर्तिपतेर्महादेवस्य । अभित्यं देवं  
 सवितारमिति कुवेरस्य । आदित्प्रत्नस्येति स्वमूर्तेः । मृगो न भीम इति  
 स्वमूर्तिपतेर्भीमस्य । अभित्वा देव सवितरितीशानस्य । ततोऽष्टसह-  
 स्राष्टशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसङ्ख्यया महाव्याहृतिभिस्तिलयवत्रीहिच-  
 वाज्यैः क्रमेण प्रत्येकं जुहुयुः । ततो गुरुः स्थाप्य देवता लिङ्गकेन मन्त्रेण  
 घृतेन तिलैर्वाऽष्टसहस्रमष्टशतं वा हुत्वा पूर्णाहुतिं हुत्वा देवस्य दक्षिणकर्णे  
 होमं निवेद्य पूर्वकुण्डे घृताहुत्यष्टकं मूलमन्त्रेण हुत्वा देवपादौ स्पृशेत् ।  
 मूलमन्त्रेण पूर्वोक्तसङ्ख्यया याम्यकुण्डे हस्तेन दधि हुत्वा देवनाभिं,  
 चारुणकुण्डे क्षीरं हुत्वा हृदयम्, सौम्यकुण्डे मध्वाहुतीहुत्वा मूर्धानं,  
 चारुणकुण्डे मिश्रघृतादिचतुष्टयं हुत्वा तेनैव पूर्णां दत्त्वा देवस-  
 वाङ्गं स्पृशेत् । ततः कूर्मशिलाब्रह्मशिलापिण्डिकावाहनादिपरिचारक-  
 देवांश्च वैदिकैर्नाममन्त्रैर्वा संपूज्य मुख्यप्रतिमाया वामपार्श्वेऽधिवास-  
 येत् । तानि मधुघृतेनाभ्यज्य प्रक्षाल्य संपूज्य वस्त्रेणाच्छाद्य प्रति-  
 मायाः पिण्डिकायां स्वमन्त्रन्यासं कुर्यात् । तत्र विष्णुश्चेत्स्थाप्यस्तदा  
 “ॐ वंदं पंभं लक्ष्म्यै नम एतानि पञ्चाक्षराणि हृच्छिरःशिखाकवच-  
 नेत्रसंज्ञकानि हुंफंडतो वा वचनसमुदायः” इति पिण्डिकायां पञ्चा-



गानि न्यस्य तत्त्वत्रयमूर्तिमूर्तिपांश्च पूर्ववद्विन्यसेत् । तदा ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्ष परब्रह्मणे सर्वाधाराय नमः । ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं दिव्यतेजोधारिण्यै सुभगायै नम इति मन्त्राभ्यामधिवासयेत् । इत्यधिवासनम् । प्रासादोऽपि चेन्नूतनस्तस्याप्यधिवासनम् । तत्र प्रासादाग्रे एकाशीतिपदं मण्डलमक्षतैः कृत्वा तेषु सप्त धान्यपुञ्जान्कृत्वा जलपूर्णानेकाशीतिकुम्भानाहृत्य तत्र नवनवकानां मध्यमं मध्यमं कोष्ठं ज्ञात्वा तेषु नव कुम्भान् मध्यपूर्वादिक्रमेण विन्यस्य मध्यकुम्भे शम्युदुम्बराश्वत्थचम्पकाशोकपलाशपृक्षन्त्यग्रोधकदम्बाम्रवित्वाजुनवृक्षसंभवं पलवद्वादशकं सोमाय वनस्पत्यन्तर्गताय नम इति निक्षिपेत् । ततः पद्मकरोचनादूर्वाकुदर्भपिञ्जलधेतपीतसर्षपसितरक्तचन्दनजातीकुमुमनन्द्यावर्तमिति दशकं पूर्वं । यवव्रीहितिलसुवर्णरजतसमुद्रगामिनदीकूलमृत्तिकाभूम्यस्पृष्टगोमयमिति सप्तकमाग्रेये । सहदेवीविष्णुकान्तामृङ्गराजमहौषधीशमीशतावरीगुडूचीश्यामाकमित्यष्टकं याम्ये । कदलीपूगीफलनारिकेलविल्वनारिगमातुलिगवदरीजामलकमिति फलाष्टकं नैर्ऋत्ये । मन्त्रसाधितं पञ्चगव्यं वारुणे । शम्युदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधपलाशकषायपञ्चकं वायव्ये । शङ्खगुष्पीसहदेवीशलाशतावरीकुमारीगुडूचीवचाव्याघ्रीति मूलाष्टकं सौम्ये । वल्मीकादिसप्तमृत्तिका ईशानकुम्भे निधाय दिरण्यावर्णा हरिणीमिति मध्यकुम्भानभिमन्त्र्य शेषान्गन्धोदकपूरितान्मध्यमादिकलशानां समन्तात्पूर्वादिक्रमेणाष्टौ विन्यस्य मूलमन्त्रेणाभिमन्त्र्य सूत्रेणावेष्ट्यान्तर्बहिरवस्तादूर्ध्वं च प्रासादं पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य मूर्धानं दिव इति वल्मीकमृदा विलिप्य समुद्रज्येष्ठा इतीशानदिकस्थेन मृत्तिकाकुम्भेन स्नापयेत् । यज्ञा यज्ञा व इति वायव्येन कषायकुम्भेन । पयः पृथिव्यामिति वारुणेन पञ्चगव्यकुम्भेन । याः फलिनीरिति नैर्ऋत्यफलकुम्भेन । हंसः शुचिषदिति सौम्यस्य मूलकुम्भेन । विष्णोरराटमसीति पूर्वकुम्भेन । सोमं राजानमिति वह्निस्थकुम्भेन । विश्वतश्चक्षुरिति याम्यकुम्भेन । नमोऽस्तु संप्रेभ्य इति मध्यमकुम्भेन । इदमापः प्रवहतेत्यष्टभिः पूर्वादिक्रमेण प्रासादं सशिखरं स्नापयेत् । एकाशीतिकुम्भासंभवे तु गन्धोदकपूरितेनैककलशेन देव्याय कर्मणे शुन्धध्वमिति संप्रोक्ष्य सूत्रेणावेष्ट्य स्नापयित्वा देवरूपं प्रासादं चिन्तयित्वा पताकादिना शोभयित्वा गन्धादिना पूजयित्वा तस्याधस्ताद्देवं संचिन्त्य मन्त्रेण प्रासादमधिवासयेत् । तद्यथा—



ॐ ह्रीं ' सर्वदेवप्रयाचिन्त्य सर्वरत्नोज्ज्वलाकृते । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च  
तावदत्र स्थिरो भव' इत्यधिवास्य पिण्डिकावाहनपरिवारदेवतानां  
तत्तन्मन्त्रैः प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्याकं होमं तिलैः कृत्वा मूलमन्त्रेण  
चर्वष्टोत्तरशतं हुत्वा चतस्रो गा विष्णुगायत्र्या दुग्ध्वा क्षीरेण विष्णुगा-  
यत्र्या चरुं अपयित्वा देवाय निवेद्य द्वादश ब्राह्मणान्भोजयित्वा  
विष्णुर्मे प्रीयतामिति वदेत् । तत आचार्याय धेनूर्दत्त्वा रात्रौ जागरणं  
कुर्यात् । इति प्रासादाधिवासनम् । अत्र 'ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठानां प्रति-  
मानां सप्तरात्रं पञ्चरात्रं त्रिरात्रमेकरात्रं सद्यो वा वल्यन्तमधिवासनं  
कुर्यात्' इति पद्धतिकाराः । अत्र श्लोकाः—

अनेकदिननिर्वर्त्ये अधिवासनकर्मणि ।  
होमानेष्टौ सहस्राणि विदधीरन्पृथक्पृथक् ॥  
तस्मिन्नेकाहनिर्वर्त्ये कुर्यादष्टोत्तरं शतम् ।  
प्राग्बत्पूर्णाहुतिं हुत्वा सकृज्जपन्ति द्वारपाः ॥  
यद्वा प्रतिदिनं होममष्टोत्तरशतं शतम् ।  
दैशिको मूर्तिपैः कुर्याद्यावत्कार्यं समाप्यते ॥  
सन्ध्यासु तिसृषु बलिं मन्त्रैर्दद्याद्यथोदितैः ।  
आचार्ये दक्षिणा देया ऋत्विग्भ्यश्च स्वशक्तितः ॥  
भोजनं च तथान्येभ्यो देयं वित्तानुसारतः ।  
विनाऽधिवासनं यज्ञः कृतोऽपि न फलप्रदः ॥ इति ॥

ततो गुरुर्वहिर्निर्गत्य प्रासादाभिमुखो भूत्वा तं देवरूपं ध्यायेत् ।  
तथाहि—

पादौ पादशिलास्तस्य जङ्घापादोर्ध्वमुच्यते ।  
गर्भश्चैवोदरं ज्ञेयं कटिश्च कटिमेखला ॥  
स्तम्भाश्च बाहवो ज्ञेया घण्टा जिह्वा प्रकीर्तिता ।  
दीपः प्राणोऽस्य विज्ञेयो हृषानो जलनिर्गमः ॥  
ब्रह्मस्थानं यदेतच्च तन्नाभिः परिकीर्तिता ।  
हृत्पद्मं पिण्डिका ज्ञेया प्रतिमापुरुषः स्मृतः ॥  
पादचारस्त्वहङ्कारो ज्योतिस्तच्चक्षुरुच्यते ।  
तदूर्ध्वं प्रकृतिस्तस्य प्रतिमात्मा स्मृतो बुधैः ॥  
नलकुम्भादधोद्वारं तस्य प्रजननं स्मृतम् ।



सुकनासा भवेन्नासा गवाक्षः कर्ण उच्यते ॥  
 कपोतपालीः स्कन्धोऽस्य ग्रीवा चामलसारिका ।  
 कलशस्तु शिरो ज्ञेयं मज्जादिप्रदंसंहितम् ॥  
 मेदश्चैव सुधां विद्यात्प्रलेपो मांसमुच्यते ।  
 अस्थीनि च शिलास्तस्य स्नायुः क्रीलादयः स्मृताः ॥  
 चक्षुषी शिखरास्तस्य ध्वजाः केशाः प्रकीर्तिताः ।  
 एवं पुरुषरूपं तं ध्यात्वा च मनसा सुधीः ।  
 प्रासादं पूजयेत्पश्चाद्बन्धध्वजादिभिः शुभैः ॥  
 सूत्रेण वेष्टयेद्देवं वासस्तत्परिकल्पयेत् ।  
 प्रासादमेवमभ्यर्च्य वाहनं चाग्रमण्डपे । इति ॥

ततः कुण्डे वास्तोष्पत इति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा देवमन्त्रेण च हुत्वा  
 पूर्णाहुत्यन्तं सर्वं कृत्वा दिग्बलिं दत्त्वा देवसमीपमागत्य यथासंभवं  
 भूसुवर्णादिकं दत्त्वा देवाय चात्मानं निवेद्य प्रणमेत् । यत्र तु स्वयम्भू-  
 र्देवः प्रागेव वा प्रतिष्ठितः प्रासादश्च नूतनस्तत्रापि तदुत्तरे मण्डपं  
 कृत्वा पूर्वेषुः पुण्याहवाचननान्दीश्राद्धदेवप्रतिष्ठोक्तमण्डपस्थापनविग्वर-  
 णादिकं कुर्यात् । तत्र गुरुर्वेद्यां तद्देवतामण्डलं कृत्वा वास्तुदेवतापूजना-  
 मिप्रतिष्ठाग्रहपूजाज्यभागोत्तरग्रहहोमशिख्यादिवास्तुपीठदेवतावास्तुदेव-  
 ताहोमैकाशीतिकलशस्थापनानि कृत्वा तैः प्रासादं क्षालयित्वा यजमा-  
 नमभिषिच्य प्रासादमुत्सृजेदित्येतावानेवविधिः । अथ मण्डपादुत्तरतः  
 पूर्वकल्पितैः शान्तिकलशादिजलैस्तण्डुलाप्रदलोपरिस्थभद्रासनोपविष्टं  
 सपरिकरं यजमानमभिषिञ्चेयुः । तत आचार्यमूर्तिपद्माह्वणस्थपत्यादीन्  
 परितोष्य प्रासादोत्सर्गं कुर्यात् । तत्र मासपक्षाद्युल्लिख्य इमं शिलेष्टका-  
 दार्वादिनिर्मितं बलभीजगतीप्राकारपरिवारगोपुरपरिवारदेवतालयसं-  
 युतं तत्तद्देवतालोकावाप्तिकामः कुलद्वयानुग्रहायामुक्तदेवताप्रीतयेऽहमु-  
 त्सृजामीति कुशयवजलानि क्षित्वा देवं नत्वा ब्राह्मणान्भोजयेदिति ।  
 ततः प्रातराचार्यो मूलमन्त्रेण मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालमन्त्रैश्च प्रतिदेवतम-  
 ष्शतमष्टाविंशतिं वा पूर्णाहुत्यन्तं स्वकुण्डे हुत्वाऽधिवासितां कूर्मशिलां  
 ब्रह्मशिलां पिण्डिकां च त्रातारमिन्द्रमिति गृहीत्वा विघ्नाभावार्थं पुष्पो-  
 दकधारयाऽस्त्रमन्त्रेण शन्तातीक्ष्णं वा प्रासादमभ्युक्ष्य महौंन्द्रं य इति  
 दभेणोल्लिख्यान्मपूतजलेन पुनः प्रोक्ष्य प्रासादस्य द्वारस्य च मध्याद्येन



यत्रार्धेन वेश्यानीमुत्तरां वाऽऽश्रित्य ज्ञानादिसंस्कृतां कूर्मशिलां प्रणवेन पञ्चरत्नोपरि निधाय तच्छुभ्रे सौवर्णी कूर्मद्वारसंमुखं निधाय तदुपरि रत्नानि निधाय षट्त्रिंशद्गर्तयुतां पञ्चचत्वारिंशद्गर्तयुतां वा ब्रह्मशिलामधिवासितां निदध्यात् । ॐ नमो व्यापिनि स्थिर अचले ध्रुवे । ॐ श्री लं स्वाहेतिमन्त्रेण यथाशक्ति संपूज्य—

त्वमेव परमा शक्तिस्त्वमेवासनधारिका ।

शिवाज्ञया त्वया देवि स्थातव्यमिह सर्वदा ॥

इति प्रार्थयेत् । ततो वर्णाध्वने नमः । पादाध्वने० मन्त्राध्वने० भुवनाध्वने० तत्त्वाध्वने० सकलाध्वने० इति सकलमध्वानं तदारूढं ध्यायेत् । ततः पुण्याहवाचनं कृत्वा मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा षट्त्रिंशत्सु पञ्चचत्वारिंशत्सु वा ब्रह्मशिलागर्तेषु प्रादक्षिण्येन सहेम्ना हस्तेन रत्नन्यासं कुर्यात् । श्वधरहिते ब्रह्मशिलोपरि भागे सश्वभ्रां पिण्डिकां पूर्वपश्चिमानने प्रासादे सौम्यप्रणालीं दक्षिणोत्तरानने पूर्वप्रणालीं ध्रुवसूक्तेन निधाय देवपत्नीलिङ्गकेन मन्त्रेण पिण्डिकामभिमन्त्रयेत् । तत्र विष्णोः स्थापनायां श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ० रुद्रस्य० गौरीर्ममाय । सूर्यस्य० उपस्तच्चित्रमोभरेत्यादि । तत आत्मतत्त्वाय नमः आत्मतत्त्वाधिपत्यै क्रियाशक्त्यै नमः । विद्यातत्त्वाय० विद्यातत्त्वाधिपत्यै ज्ञानशक्त्यै० । शिवतत्त्वाय० शिवतत्त्वाधिपत्यै इच्छाशक्त्यै० इति तत्त्वन्यासः । प्रतितत्त्वं मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालान्विन्यसेत् । ततः पिण्डिकायामाधारशक्त्यै नम इति न्यस्यानन्तासनतत्त्वेभ्यो नमः, आसनशक्तिभ्यो नमः, इत्युत्तवाऽभ्यर्च्य—

सर्वदेवमयीशाने त्रैलोक्याह्लादकारिणि ।

त्वां प्रतिष्ठापयाम्यत्र मन्दिरे विश्वनिर्मिते ॥

यावन्नन्द्रश्च सूर्यश्च यावदेषा वसुन्बरा ।

तावत्त्वं देवदेवेशि मन्दिरेऽस्मिन्स्थिरा भव ॥

पुत्रानायुधमतो लक्ष्मीमचलामज्जराभृताम् ।

अभयं सर्वभूतेभ्यः कर्तुर्नित्यं विघ्नेहि भोः ॥

विजयं नृपतेः सर्वलोकानां क्षेममेव च ।

सुभिक्षं सर्ववस्तूनां कुरु देवि नमो नमः ॥

इति तां प्रार्थ्य प्रणवं श्वभ्रे बाह्ये षोडश स्वरांस्तेषां परितो व्यजनानि न्यस्य श्वभ्रान्तरत्नादीनि न्यसेत् । यथा बाह्यपरिधौ यवव्रीहिनि-



ष्वावप्रियङ्गुतिलमाषनीवारशालिसिद्धार्थकान्वज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्कटि-  
कपुष्परागचन्द्रकान्तेन्द्रनीलपद्मरागान्मनःशिलाहरितालाञ्जनकासीसौ-  
राष्ट्रीरोचनागैरिकपारदान्मुवर्णरौप्यताम्रआयसत्रपुसीसकांस्यारकूटती-  
क्ष्णलोहानि श्वेतरक्तचन्दनागुरुअर्जुनोशीरवैष्णवीसहदेवीलक्ष्मणा चेति ।  
तत्र बीजानामभावे यवान्तरत्नानामभावे वज्रं धातूनामभावे हरितालं  
ताम्राद्यभावे सुवर्णमोषधीनामभावे सहदेवीं न्यसेदिति । एवं न्यस्तानां  
रत्नानां दिक्पालमन्त्रैरालम्भनं कृत्वा पृथिवीमेरुकूर्मेवाहनानि सौवर्णानि  
द्वारोन्मुखानि पारदं च तस्मिन्मध्यश्च भ्रे निधाय गुग्गुलुरसेन रत्नादिकं  
स्थिरीकृत्य मधुपायसेन श्वभ्रमनुलिप्य वस्त्रेणाच्छाद्य कवचेनावगुंठ्यास्त्र-  
मन्त्रेण संरक्ष्य गृहा वै प्रतिष्ठेति प्रासादमभिविच्येन्द्रादिभ्यो बलिं  
दत्त्वाऽऽचामेत् । एवं पिण्डिकां प्रतिष्ठाप्य प्रासादाद्बहिरष्टदिक्षु स्थण्डि-  
लानि संपाद्य संस्कृत्य तत्र स्थण्डिलानामीशानभागेषु कलशान्मन्त्रवद्वि-  
न्यस्याग्नीन्प्रणीय प्रतिस्थण्डिलं पलाशसमिधामष्टोत्तरसहस्रमष्टशतं वा  
मूलमन्त्रेण हुत्वाऽऽज्येन च ॐ नारायणाय विश्वे वासुदेवाय  
धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्, इति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतमष्टाविंशति-  
मष्टौ वा हुत्वाऽऽचार्योऽष्टदिकसंस्थेभ्यः कुम्भेभ्यः पात्रे तोयमुद्धृत्य  
मूलमन्त्रेण शतकृत्वोभिमन्त्र्य प्रतिमासन्निधौ गत्वा सर्वतीर्थमयमिदं  
जलमिति ध्यायन्देवमूर्धन्यभिविञ्चेत् । नारसिंहेन हुंफण्डन्तेन देवस्य  
दिग्बन्धनं कृत्वा मूर्तिपैः सह देवं प्रार्थयेत्—

प्रबुध्यस्व महाभाग देवदेव जगत्पते ।

मेघश्याम गदापाणे प्रबुद्ध कमलेक्षण ॥

प्रबुद्ध भूधरानन्त वासुदेव नमोऽस्तु ते ।

इति जलश्रीरकुशाप्रतिलतन्दुलयवसिद्धार्थकपुष्पाणि शङ्खे कृत्वा  
शङ्खमुद्रया देवायार्थं दत्त्वोत्तिष्ठ ब्रह्माणस्पत इति देवमुत्थाप्य रथमुपवेश्य  
देवस्य पुरतो गुरुः पृष्ठतो यजमानः पार्श्वतो मूर्तिपा एवं परिभ्राम्य  
रथादवतार्य प्रासादद्वारसंमुखं लिङ्गं कृत्वाऽर्घ्यं दत्त्वा प्रासादं प्रवेशये-  
दिति । ततः सयजमानो दैशिको देवं पिण्डिकायां स्थापयेत् । तद्यथा-  
सुलमे ईश्वरं भावयन्श्वभ्रन्या सद्रव्यसहितं सौवर्णं पद्मं श्वभ्रे निधाय  
प्रधानपुरुषौ यावद्यावच्चन्द्रदिवाकरौ । तावत्त्वमनया शक्त्या युक्तोऽ-  
त्रैव स्थिरो भव । इत्युक्त्वा ध्रुवा द्यौर्वा पृथिवीतिमन्त्रं पठित्वा यवं



यवार्धं वोत्तराश्रितमीशानाश्रितं वा देवं पिण्डि वा श्वश्रे निधाय  
स्थितो भव शाश्वतो भवेत्युक्त्वा पिण्डिकालिङ्गान्तरालं बालुकासी-  
सकादिभिर्दण्डं पूरयित्वा पुनर्न चालयेत् । ततो देवं मूर्ध्नि हृदये  
वा स्पृष्ट्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । सा यथा, पूर्तकमलाकरोक्तां प्राण-  
प्रतिष्ठां कुर्वीत । तस्यां देवस्य वा हरेरिति कालिकापुराणा-  
त्कार्या । अस्य प्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः । ऋग्यजुः-  
सामानि छन्दांसि । क्रियामयवपुःप्राणारूपा देवता । ओं बीजम् ।  
ह्रीं शक्तिः । क्रौं कीलकम् । प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः । तत  
ऋग्यादीन्क्रमेण शिरोमुखहृदयनाभिगुह्यपादेषु विन्यस्य, ॐ कंलं-  
गंघंलं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः । ॐ चंलं-  
जंलं चंलं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा । ॐ टंलं ढंलं उं  
श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट् । ॐ तंलं धंलं एं  
वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम् । ॐ पंलं बंलं मं औं वच-  
नादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ अंलं रंलं वंलं शं-  
षंलं हंलं क्षं मनोबुद्धयहङ्कारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट् । एवमात्मनि देवे  
च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत् । ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रंलं वंलं शंलं षंलं हंलं देवस्य प्राणा  
इह प्राणाः पुनः ॐ आं ह्रीं क्रौं इत्यादिदेवस्य जीव इह स्थितः । ॐ आं  
ह्रीं क्रौं इत्यादिदेवस्य सर्वेन्द्रियाणि । ॐ आं ह्रीं क्रौं इत्यादिदेवस्य बाहु-  
नश्वक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा  
इति । ध्रुवाद्यौरिति सूक्तं च जप्त्वा ततोर्चाह्यङ्गुष्ठं दत्त्वा जपेत्—

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।

अस्यै देवत्वमर्चायै स्वाहेति यजुरीरयेत् ॥

इति प्रणवेन संरुध्य देवं सजीवं ध्यात्वा विश्वतश्चक्षुरित्युक्त्वा देव-  
मूर्ध्नि हस्तं निधाय परं देवं ध्यात्वा रुद्रसूक्तैवतसामनी जप्त्वा प्रति-  
ष्ठिकान्मन्त्रांश्च जपेत् ।

तत्र विष्णोः—

अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।

संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम् ॥

रुद्रस्य—

त्र्यक्षं च दशबाहुं च चन्द्रार्धकृतशेखरम् ।

गणेशं वृषभस्थं च स्थापयामि त्रिलोचनम् ॥



अथ ब्राह्मणः,

ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम् ।

पितामहं महाप्राज्ञं स्थापयाम्यस्त्रुजोद्भवम् ॥

सूर्यस्य—

सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसेवितम् ।

पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम् ॥

ततो देवस्य हृदयं स्पृशन्जपेत् । तद्यथा—विष्णोः पुरुषसूक्तम् ।  
रुद्रस्य रौद्रम् । ब्रह्मणो ब्राह्मम् । रवेः सौरम् । अन्येषां तत्तत्प्रकाशका-  
न्मन्त्रान्जपत्वा प्रणवव्याहृतिशिरःसहितां गायत्रीं प्राणसूक्तं च जपित्वा  
सान्निध्यं कुर्यात्—

नमस्ते त्यक्तसङ्गाय सन्तोषपरमात्मने ।

ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोऽनुशालिने ॥

गुणातिक्रान्तवेगाय पुरुषाय महात्मने ।

अव्यक्ताय पुराणाय विष्णो सन्निहितो भव ॥

भगवन्देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् ।

त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥

त्वमिन्द्रः पावकश्चैव यमो निर्ऋतिरेव च ।

वरुणो मारुतः सोम ईशानः प्रभुरव्ययः ॥

येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् ।

तेन रूपेण देवेश अर्चायाः सन्निधौ भव ॥

सर्वमन्त्रादिसंयुक्तो लोकानुग्रहकाम्यया ।

अत्रार्चायां महादेव भव सन्निहितः सदा ॥

सूर्याचन्द्रमसौ यावद्यावत्तिष्ठति मेदिनी ।

तावत्त्वयाऽत्र देवेश स्थातव्यं स्वेच्छया प्रभो । इति ॥

अथ स्थापितस्य परिवारदेवताः । नन्दिमहाकालवृषभभृंगिरिटिस्क-  
न्दोमाविनायकविष्णुब्रह्मजयन्तेन्द्राग्रियमनिर्ऋतिवरुणवायुसोमेशाना-  
प्सरोगणगन्धर्वगुह्यकविद्याधरादीन् रुद्रस्य । ब्रह्मणो विष्णवादयः परि-  
वारदेवताः । विष्णोर्ब्रह्मादयः । एवं चण्डीविनायकादीनामपि परि-  
वारकल्पनम् । ततः कुण्डेष्वङ्गहोमः, ततः पूर्वकुण्डे हृदयमन्त्रेणाज्याहु-  
तिर्विशानिकम् । दक्षिणकुण्डे शिरोमन्त्रेण । पश्चिमे शिखामन्त्रेण ।



उत्तरे कवचमन्त्रेण । आचार्यकुण्डे नेत्रमन्त्रेण । पुनः पूर्वकुण्डेऽस्त्र-  
मन्त्रेणेति । तत आयुधमन्त्रैर्हुत्वा प्रार्थयेत् । तद्यथा—

लोकानुग्रहहेत्वर्थं स्थिरीभव सुखासन ।  
सान्निध्यं हि सदा देव प्रत्यहं परिवर्तय ॥  
माभूतपूजाविरामोऽस्मिन्यजमानः समृध्यताम् ।  
संपालय सतां राष्ट्रं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥  
क्षेमेण वृद्धिमतुलां सुखमक्षय्यमश्नुताम् ।  
इति संप्रार्थ्य विधिना देवं साङ्गं तमर्चयेत् । इति ॥

ततो वहिरिन्द्रादीन्तत्तन्नाममन्त्रैः स्थापयेत् । विष्णुश्चैवण्डप्रचण्ड-  
अयविजयादीन् । शिवश्चेन्नन्दिमहाकालभृङ्गिगणेशादीन् । सूर्यश्चैवण्ड-  
पिङ्गलमाठारारुणादीन् । अथ शिवस्य वाहनादि पूजयेत् ।

यस्य सिंहा रथे युक्ता व्याघ्रा भूतास्तथोरगाः ।  
ऋषयो लोकपालाश्च देवः स्कन्दस्तथा वृषः ॥  
प्रिया गणा मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः ।  
नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः ॥  
तमहं त्र्यक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम् ।  
आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम् ॥  
आगच्छ भगवन् रुद्रानुग्रहाय शिवो भव ।  
शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः ॥

ॐ स्वागतमनुस्वागतं भगवते नमो नमः । सोमाय सगणाय सपरि-  
वाराय प्रतिगृह्णातु भगवान्मन्त्रपूतमिदमर्घ्यं पाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्म-  
णाभिहितं नमो नमः स्वाहेति । आगच्छ भगवन्नित्यादिका मन्त्रा  
ऊहेन सर्वसाधारणाः । एवं संपूज्य दधिदुग्धघृतमधुशर्कराख्यैः समन्त्रैर्मध्ये  
सुगन्धजलयुतैः स्नापयेत् । ततो यज्जाग्रतः० ततो विराट्० सहस्र-  
शीर्षा० अभित्वा शूर नोऽनुमो० पुरुष एवेदं० त्रिपादूर्ध्वं० येनेदं भूतं०  
नत्वा वा अन्यो दिव्यो० इति चतुःकृत्वो जपेत् । प्रतिपर्यायं च जलेन  
देवस्य पादौ नाभिं वक्षः शिरश्च स्पृशेत् । ततो लिङ्गमन्त्रैः प्रार्थयेत् ।

भगवन्देवदेवेश धर्मकामार्थमोक्षद ।  
विद्याविद्येश्वरै रुद्रैर्गणेशैर्लोकपालकैः ॥  
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च किन्नरैः सह ।



अस्मिँल्लिंगे महादेव सर्वदा वस वै प्रभो ॥  
 पुंसामनुग्रहार्थाय पृथिव्यां स्वेच्छया प्रभो ।  
 परावरेण भावेन स्थातव्यं सर्वदा त्वया ॥  
 सर्वविघ्नहरः पुंसां सर्वदुःखहरः सदा ।  
 सर्वदा यजमानस्य इच्छासंपत्करो भव ॥  
 नमस्ते सर्वधर्माय सन्तोषविजितात्मने ।  
 ज्ञानविज्ञाननृपाय ब्रह्मतेजोभिशालिने ॥  
 नमस्ते शुद्धदेहाय पुरुषाय महात्मने ।  
 स्थापकानां मूर्तिपानां शिल्पिनां च विभो सदा ॥  
 ग्रामदेशनृपाणां च शान्तिर्भवतु सर्वदा ।  
 पूजकाराधकानां च भक्तानां भक्तवत्सल ॥  
 सर्वेषां च जगन्नाथ इच्छासिद्धिप्रदो भव ।  
 चन्द्रार्कावनिपर्यन्तं लिङ्गेऽस्मिन्परमेश्वर ॥  
 स्थातव्यमुभया सार्धं सर्वलोकानुकम्पया ।  
 यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥  
 तावत्त्रयाऽत्र देवेश स्थातव्यं स्वेच्छया विभो । इति ॥

ततः पुरुषसूक्तेन विष्णोः षोडशोपचारं कृत्वा पुराणमन्त्रैरन्यैर्वा  
स्तुत्वा नमेत्, पुनः प्रार्थयेच्च ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यावद्विधिरनुष्ठितः ।  
 स सर्वस्वत्प्रसादेन समग्नो भवतान्मम । इति ॥

शिवस्यापि—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि भगवन्त्यत्कृतं मया ।  
 तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादादधोक्षज ॥

अथ कर्तृनामयुतं देवस्य नाम कुर्यात्सर्वदा व्यवहारार्थम् । तच्च  
 विष्णोरमुकस्वामी । अमुकनारायण इति वा । शिवस्यामुकेश्वरः ।  
 भानोरमुकादित्यः । देव्या अमुकेश्वरी । गणपतेरमुकविनायक इति ।

अथ नैमित्तिकदोषे प्रायश्चित्तम् । तत्र स्थाप्यमानदेवार्चालिङ्गं वा  
 यां यां दिशमुपाश्रयेत्तत्तद्दिगीशमन्त्रेणाष्टोत्तरशतसंख्यया शमीपलाशा-  
 न्यतरसमिद्धोमं तिलहोमं वा कृत्वा पूर्णाहुत्यन्तं कुर्यात् । दिगीश-  
 मन्त्रास्तु त्रातारमिन्द्रमित्यादयः प्रसिद्धाः । अत्राचार्येदक्षिणाश्च क्रमतो



गजो मेघो महिषोऽजः शुक्तिर्मुक्ताफलं सवस्त्रयुग्मा धेनुर्ऋषभ इत्या-  
दिकाः, तदभावे सुवर्णप्रतिकृतयः राजतो वा वृषभ इति । ततः  
स्थाप्यमाने देवे शब्दोत्थाने श्रद्धान्ते स्फुटिते वा शान्त्यर्थं मूलमन्त्रेणा-  
ष्टोत्तरशतं हुत्वा प्रतिष्ठाहोमं कुर्यात् । शिवाय स्थिरो भव स्वाहा ।  
शिवायाप्रमेयो भव स्वाहा । शिवायानादिवोधो भव स्वाहा । शिवाय  
नित्यो भव स्वाहा । शिवाय सर्वगो भव स्वाहा । शिवायाविनाशो  
भव स्वाहा । शिवायाकुमो भव स्वाहेति । अथ सर्वशान्त्यर्थमघोर-  
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं स्विष्टकृदन्तं हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तं पूर्णाहुतिं च हुत्वा  
ईशाने बलिं दत्त्वाऽऽचम्य शोभनासने यजमानमुपवेश्यार्चयन्साम्ना  
मन्त्रान्तरेऽर्चाभिषिञ्चेत् ।

अथाचार्यपूजनम् । तत्र यजमान आचार्यमासने उपवेश्य सत्कृत्य  
ग्रामं गोसहस्रमर्थं तदर्थं वा गोशतमर्थं तदर्थं वृषभैकादशकं पञ्चैकां वा  
गां सालंकृतां यथाशक्ति संनिधाय देशकालौ संकीर्त्य 'देवप्रतिष्ठा-  
सिद्धयर्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहमाचार्याय संप्रददे न मम' इत्युत्तवा  
तद्धस्ते गोपुच्छादिसकुशतिलयवजलं निक्षिपेत् । विज्ञापयेच्च—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ शिवधर्मपरायण ।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ शिवशास्त्रविशारद ॥

अनादिजन्मसन्ताने ह्यप्रमेये भवार्णवे ।

अद्य मे ह्युत्तमं जन्म अद्य मे सफलं धनम् ॥

अद्य मे जननोच्छित्तिरद्य मे परमं पदम् ।

मोचितोऽहं त्वया नाथ उच्छेद्याद्भवबन्धनात् ॥

ईश त्रातस्त्वया यस्मात्प्रवेनेव भवार्णवात् ।

मुक्तोऽहं मर्त्यसंसारात्प्रपन्नोऽहं तवान्तिकम् ॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यन्नयूनं यत्कृतं मया ।

तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादात्क्षमस्व मे । इति ॥

गुरुरपि—

समस्तजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारकः ।

शिवः सानुचरस्तादृः सर्वदा सर्वकामदः ॥

द्रव्यहीनं तु यत्किञ्चिद्विधिहीनं तु यद्भवेत् ।

तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसादात्कारणस्य तु ॥



स्थापकस्य मूर्तिपानां वर्णिनां शिल्पिनां तथा ।

सराष्ट्रपार्थिवानां च शान्तिर्भवतु सर्वदा ॥

भृत्यपुत्रकलत्रैश्च स्वमित्रबलवाङ्मनैः ।

कारणस्य प्रसादेन सर्वलोकेश्वरो भव ॥

इत्युक्त्वा यजमानायाशिषं दद्यात् । ततः स्थापकमूर्तिपञ्चपिनः ऋत्विक्स्थपतिदेवज्ञानसंपूज्य तेभ्यः शक्तितो दक्षिणां दद्यात् । अधिवासनं तु सद्यो वा बहुकालसाध्यं वा । तत्र सद्यःपक्षे वक्ष्यमाणमधुकुङ्कुमादिसर्वद्रव्यैस्तद्दिन एव देवं लेपयेत् । अन्त्ये तु प्रथमेऽहनि कुङ्कुमेन देवं लेपयित्वा पूजयेत् । द्वितीये दिने हरिद्रासिद्धार्थकचूर्णेन । एवं तृतीयदिने पिष्टसितचन्दनयवचूर्णेन । चतुर्थे मनःशिलाप्रियङ्गुचूर्णेन । पञ्चमे कृष्णाञ्जनतिलचूर्णेन । षष्ठे रक्तचन्दनपद्मकेसरचूर्णेन । सप्तमे गोरोचनानागकेसरचूर्णेन सर्वलेपनद्रव्येषु कपिलाघृतमिश्रणं ज्ञेयम् । प्रतिमानां लेपत्रयं दिनत्रये क्रमेण कृत्वा शेषलेपांश्चतुर्थदिने युगपत्कृत्वा त्रिसन्ध्यं बलिदानं च निर्वर्त्य प्रतिकुण्डे हवनं संपादयेत् । शान्तिहोमं च ऋत्विजः कुर्युरित्यनेकदिननिर्वर्त्येऽधिवासने ज्ञेयम् । शिवस्य तु यदा प्रतिष्ठोत्तरकाले सप्तसु दिनेषु मधुकुङ्कुमादिलेपाः क्रियन्ते तदाष्टमदिने स्नानार्चनादिर्महानुत्सवो विधेयः । इति सर्वदेवप्रतिष्ठाविधिः ।

अथ चतुर्थीकर्म । तच्चतुर्थदिने द्वितीये वा कुर्यात् । ‘अमुकलिङ्ग-प्रतिष्ठाङ्गतया चतुर्थीकर्म करिष्ये’ इति संकल्प्य तत्र प्राग्वृत एवाचार्या मूर्तिपयजमानद्वारपालादिभिः सह मण्डपं पश्चिमद्वारेण प्रविश्य तत्र महास्नानसंभारादिकमुपकल्प्य वेद्याः प्रादक्षिण्येन गत्वा कुण्डे स्थापित-दैवत्यं चरुं श्रपयित्वा पञ्चत्रह्यभिरङ्गसहितैः सहस्राहुतिहोमं कुर्यात् । ब्रह्ममन्त्रा यथा, ईशानः सर्ववि० तत्पुरुषाय वि० अघोरेभ्योऽथ० वामदे-वाय नमो० सद्योजातं प्र० इति प्रागुक्ताः । अङ्गमन्त्रा अपि । अग्न्यः संभूतः पृथिव्यै रसाच्च । विश्वकर्मणः समव० तस्य त्वष्टा० तत्पुरुषस्य० वेदाहमे० आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्, तमेवं विद्वा० नान्यः पन्था वि० प्रजापतिश्चरति० अजायमानो० तस्य धीराः प० मरीचीनां पद० यो देवेभ्य आ० यो देवानां० पूर्वो यो देवेभ्यो० नमो रुचाय० रुचं ब्राह्मम्, इत्यादि । तत ऋत्विजो घृतेन तिलैर्वा स्वस्वकुण्डेषु शतं शतं हुत्वा गौरीर्ममायेति मन्त्रेण च जुहुयुरिति शिवस्य चतुर्थीकर्म । एवमन्यदेव-



विषयेऽपि पूर्ववत्स्थापितदेवत्यं चरुं श्रपयित्वा स्वमन्त्रैः पत्नीमन्त्रैश्च सहस्रहोमं कुर्यात् । ऋत्विजोऽपि घृतेन शतं शतं प्रतिकुण्डं हुत्वा पूर्णाहुतिं जुहुयुः । गुरुश्च शीतलतोयेन मूर्तिं सिक्त्वा निर्मात्यमपसार्य पुनः पूजयित्वा एकाशीतिघटान्पूर्ववत्संस्थाप्य स्थापयेदिति ।

यद्वा पुराणान्तरोक्तप्रकारेण पूजयेत् । तत्र दध्यक्षतकुशाक्षीरदूर्वा-  
मधुयवसिद्धार्थकपुष्पफलतोयान्वितमर्घ्यपात्रमासाद्य कलशाष्टसहस्रमष्ट-  
शतमष्टौ चतुरो वा कलशान्सौवर्णान् राजतान्ताम्रान्नीतिकमयान्मृन्म-  
यान्वोपकल्प्य तेषु शन्नोदेवीरापोहिष्ठेति मन्त्रैरुद्धृतं तीर्थजलं प्रक्षिप्य  
मृद्गोमयक्षीरदधिमधुघृतशर्करौषधिपुष्पफलकुशरत्नगन्धपञ्चगव्यादिकंच  
प्रक्षिप्य ततः समुद्रं वः प्रहिणोमीति मन्त्रेण देवायामर्घ्यं समर्प्य  
स्थापयेत् । तद्यथा—पञ्च नद्य० इति पञ्चगव्येन । दधिक्राव्ण० इति दध्ना ।  
आप्यायस्वेति क्षीरेण । तेजोऽसीति घृतेन । मधु वाता इति मधुना ।  
देवस्य त्वा० सरस्वत्यै भैषज्येनेति पुष्पोदकेन । परिवाजपतिः कवि०  
इति रत्नोदकेन । देवस्य त्वेति कुशोदकेन । अग्न आयाहीति फलोदकेन ।  
गायत्र्या गन्धोदकेन । ओषधयः प्रतिमोदध्वमिति सहदेवीव्याघ्रीबला-  
तिबलाशंखपुष्पीवचासिंहीसुवर्चलोदकेन । समुद्रज्येष्ठा इति पूर्वकल्पित-  
शीतलजलेन । वसोः पवित्रमिति सहस्रधाराकुम्भेन । ततस्तूर्णानि स्नपनम् ।  
तत अधस्थांधो वो इति पञ्चवर्णसूत्रेण नीराज्य बलिं हरेत् । मुञ्चन्तु मा  
शपथ्यादिति कौतुकं त्रिमुच्य सुगन्धवस्त्रेण पञ्च नद्य इति देवं परिमार्ष्टि ।

मन्दाकिन्यास्तु यद्द्वारि सर्वपापहरं शुभम् ।

तदिदं कल्पितं देव सम्यगाचम्यतां त्वया ॥

इत्याचमनीयं निवेदयेत् ।

वेदसूक्तसमायुक्ते यज्ञसामसमन्विते ।

सर्ववर्णप्रदे देव वाससी ते विनिर्मिते ॥

इति वस्त्रयुग्मम् ।

शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च ।

मया निवेदितं भक्त्या चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति कुङ्कुमकर्पूरयुक्तचन्दनम् ।

मणिमुक्ताप्रवालाद्यैः स्वर्णपुष्पैर्मया कृता ।

पूजा तु देवदेवेश प्रसादाद्भवतस्तव ॥



इति पुष्पम् ।

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।

आग्नेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति धूपः ।

त्वं चन्द्रस्त्वं रविर्विष्णुस्त्वं रत्नानि हुताशनः ।

त्वमेव सर्वज्योतीषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इत्यशीत्या चत्वारिंशता वा दीपैरारार्तिकम् ।

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः पद्भिः समन्वितम् ।

भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति नैवेद्यम् । संभूषाय ते नम इति भपणानि दत्त्वा पूर्वकृतं होमं निवेद्य प्रार्थयेत्—

यन्मया भक्तियोगेन पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।

आवेदितं च नैवेद्यं तद्गुहागानुकम्पया ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।

यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ इति ।

ततः पुनरष्टोत्तरसहस्रं मूलमन्त्रेण हुत्वाङ्गानां दशांशेन पूर्णाहुत्यन्तं कृत्वा स्वस्तिवाचनं कारयित्वा इन्द्रादिभ्यो बलिं दत्त्वाऽऽचम्य शेषं समापयेदिति । इति चतुर्थीकर्मविधिः ।

अथ शैवे चण्डपूजा ।

चतुर्थीकर्मदिने दिनान्तरे वा 'अमुकलिङ्गप्रतिष्ठाङ्गतया चण्डप्रतिष्ठां करिष्ये' इति संकल्प्य प्रासादाद्वर्हिर्गर्भगृहार्द्धसूत्रान्तराले ईशान्यां चण्डस्थाने पीठादौ चण्डमूर्तिं संस्थाप्य पूजयेत् । तत्र ध्यानम्—

रुद्राग्नेः प्रभवं चण्डं कज्जलामं भयानकम् ।

शूलदण्डधरं रौद्रं चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ॥

मुखोद्गीर्णमहाज्वालं रक्तद्वादशलोचनम् ।

जटामुकुटखण्डेन्दुमण्डितं फणिकङ्कणम् ॥

व्यालयज्ञोपवीतं च साक्षसूत्रकमण्डलम् ।

श्वेतपद्मासनासीनं भक्तिप्रह्वार्तिनाशनम् ॥

इत्येवं ध्यात्वा ॐ चण्डासनाय नमः । चण्डमूर्तये नमः । धुनि चण्डेश्वराय हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेणावाह्य ॐ चण्डदद्याय हुं फट्



नमः । ॐ चण्डशिरसे हुं फट् नमः । ॐ चण्डशिखायै हुं फट् नमः ।  
 ॐ चण्डकवचाय हुं फट् नमः । ॐ चण्डास्त्राय हुं फट् करयोरस्त्रम् ।  
 ॐ चंसद्योजाताय हुं फट् नमः । ॐ चि वामदेवाय हुं फट् नमः । ॐ  
 चुं अघोराय हुं फट् नमः । ॐ चे तत्पुरुषाय हुं फट् नमः । ॐ चो  
 ईशानाय हुं फट् नमः इति न्यासान्कृत्वा षोडशोपचारैः संपूज्य  
 विज्ञापयेत्—

यावत्तिष्ठति लोकेऽस्मिन्देवदेवो महेश्वरः ।

तावत्कालं त्वया देव स्थातव्यं शिवसन्निधौ । इति ॥

ततो दिग्बलिं दत्त्वा भूतानि विज्ञापयेत् ।

यथा—

यावत्कालं महादेवो लिंगमाश्रित्य तिष्ठति ।

तावत्कालं तु रक्षार्थं यूयं तिष्ठत सर्वदा । इति ॥

ततो गुरुः कर्मशेषं सम्पाद्य भद्रासने यजमानमुपवेश्याभिषिञ्चेत् । तत्र  
 देवस्य त्वेति० शन्नोदेवीरभिष्टय० अथर्वणसाम० सुरास्त्वामभिषिञ्च-  
 न्त्वित्यादयश्च मन्त्राः । ततो यजमानो महाजलाशये अवभृथस्नानं कृत्वा  
 मण्डपमागत्य गुर्वादीन्संपूज्य हिरण्यादिदक्षिणां दत्त्वा सोपस्करां  
 गां च दद्यात् ।

गुरुश्च—

समस्तजगदुत्पत्तिस्थित्यनुग्रहकारकः ।

शिवः सानुचरः स्ताद्वः सर्वदा सर्वकामदः ॥

इतिमन्त्रेणाशिषो दद्यात् । यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनम् । कच्चिचण्डो  
 नास्तीति त्रिविक्रमः—

वाणलिङ्गे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।

प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् । इति ॥

इति चण्डपूजा ।

अथ चलप्रतिष्ठा वौधायनायुक्ता ।

तत्र शुचौ देशे मण्डपं तदन्तः प्रतीच्यामुदीच्यामीशान्यां वा कुण्डं  
 कुर्यात् । मण्डपाकरणपश्चेत् कुण्डस्थाने स्थण्डिलं कुर्यात् । तदुत्तरतः  
 स्नानोपकरणानि नैर्ऋते वास्तुमण्डलं मध्ये वेद्यां सर्वतोभद्रादिमण्डलं



विष्णुप्रतिष्ठायां सर्वतोभद्रं शिवप्रतिष्ठायां लिङ्गतोभद्रं तदुत्तरतः स्वस्ति-  
 कोपरि शय्यास्थानं च कृत्वा पूर्वदिने वा देशकालौ स्मृत्वा 'दाहादि-  
 दोषदुष्टायामस्यां मूर्तौ पुनर्देवकलासान्निध्यार्थमायुःश्रीसर्वफलायुष्मत्सुपु-  
 त्रावास्यादिसुखकाम ईश्वरप्रीतिकामो वा परिवारदेवतोपेतामुकमूर्तेश्च-  
 लप्रतिष्ठां करिष्ये' इति सङ्कल्प्य तदङ्गत्वेन गणेशपूजापुण्याहवाचन-  
 मानुपूजनाभ्युदयिकश्राद्धानि कृत्वा गुरुमष्टौ चतुरो वा ऋत्विजश्च  
 वृत्वा पूजयेत् । ततो मण्डपकरणपक्षे गुरुर्मण्डपप्रतिष्ठाग्निस्थापनं च  
 कृत्वा [ अत्र ग्रहस्थापनं केचिदिच्छन्ति ] स्थाप्य दैवत्यं नैवारं चरुं  
 श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थापामार्गसमिधां प्रत्येकमष्टस-  
 हस्रमष्टशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा प्रतिदैवतं लोकपालमन्त्रैर्व्याहृतिभिर्वा  
 जुहुयात् । तावत्संख्याकमाज्यहोमं कृत्वा स्थाप्यदेवताकमन्त्रेण समितिः  
 लाज्यानां प्रतिद्रव्यं दशदशाहुतीः स्विष्टकृतं च हुत्वाऽष्टसहस्रमष्टशतं वा  
 स्थाप्य देवतामन्त्रं जपेत् । अथ यजमानो गुरवे वरं दद्यात् । ततो  
 गुरुदेवं पञ्चगव्यैः पञ्चामृतैश्च पृथक् तत्तन्मन्त्रैः शन्नोदेवीरिति संस्ना-  
 वकलशेन च संस्नाव्य श्रीखण्डाद्यैरनुलिप्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य पुनश्च-  
 तुभिः कलशैः 'समुद्रज्येष्ठा' इत्याद्यभिपेकमन्त्रैरभिषिच्य भद्रपीठे निवेश्य  
 तत्र परितोऽष्टौ कलशान्तोयपूर्णान्पूर्वादिक्रमेण संस्थाप्य सप्त मृदः,  
 पलवान्कुशान्शाल्युदकं प्रस्रवणोदकं यवान्पुष्पाणि फलानि च क्रमेण  
 निक्षिप्य स्थापनक्रमेण कुम्भैः स्नापयेत् । तत्तन्मन्त्राः—आपोहिष्ठेति  
 नृचः । हिरण्यवर्णाः शुचय इति चतुष्टयम् । पवमानः सुवर्जनः इत्यनुवाक-  
 श्चेति । ततो वाससी परिधाय्य उपवीतं दत्त्वा गन्धपुष्पधूपदीपैः संपूज्य  
 पैटैरष्टभिर्दीपैर्नीराज्य हिरण्यगर्भ इत्यष्टभिर्हिरण्यशलाकां गृहीत्वा  
 चित्रं देवानामित्यर्थेन देवनेत्रे उन्मील्याञ्जन्ति त्वामध्वर इत्यञ्जयित्वा  
 पुनर्मधुघृतशर्कराभिर्देवस्य त्वेत्यञ्जयेत् । मन्त्रान्ते अनज्मीति वाक्यशेषः ।  
 ततो भक्ष्यभोज्यादर्शादि दर्शयेत् । तदाऽग्रे कोऽपि न तिष्ठेत् । ततो  
 दर्भेष्वासीनो दर्भान्धारयमाणः पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा वंशपात्रे पञ्चवर्णी-  
 न्वितमन्त्रं प्रक्षिप्य देवं नीराज्य ॐ नमो भूताधिपतये दीप्तशूलधरायो-  
 मापतये सर्वविद्याधिपतये रुद्राय नमः शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहेति  
 वलिं दत्त्वाऽऽचामेत् । ततो ब्रह्माद्याः सर्वतोभद्रमण्डलदेवता आवाह्य  
 गन्धादिना संपूज्य स्थाप्य देवं तत्तल्लिङ्गमन्त्रैरावाह्य कर्णिकायां प्रतिष्ठाप्य  
 गन्धाद्यैः संपूज्य कुण्डे मण्डले देवतानां नाममन्त्रैर्दशदश तिलाहुती-



हुत्वा शय्यायां देवमारोप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां ब्राह्मणैः सहोपति-  
 ष्तेत् । ततो देवे पुरुषात्मने नमः प्राणात्मने० इति शरीरे व्यापकं न्यसेत् ।  
 प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० अहङ्कारतत्त्वाय० मनस्तत्त्वाय० हृदि ।  
 शब्दतत्त्वायेति शिरसि । स्पर्शतत्त्वायेति त्वचि । रूपतत्त्वायेति हृदि ।  
 रसतत्त्वायेति वस्तौ । गन्धतत्त्वाय० पादयोः । श्रोत्रतत्त्वाय० कर्णयोः ।  
 त्वक्तत्त्वाय सर्वशरीरे । चक्षुस्तत्त्वाय० चक्षुषोः । जिह्वातत्त्वाय०  
 जिह्वायाम् । घ्राणतत्त्वाय० घ्राणे । वाक्तत्त्वाय० वाचि । पाणित-  
 त्त्वाय० पाण्योः । पादतत्त्वाय० पादयोः । पायुतत्त्वाय० पायौ । उप-  
 स्थतत्त्वाय० उपस्थे । पृथ्वीतत्त्वाय० पादयोः । अग्नितत्त्वाय० वस्तौ । तेज-  
 स्तत्त्वाय० हृदि । वायुतत्त्वाय० घ्राणे । आकाशतत्त्वाय० शिरसि ।  
 रजस्तत्त्वाय० तमस्तत्त्वाय० सत्त्वतत्त्वाय० देहतत्त्वायेति देहे ।  
 ततोऽपि पुरुषसूक्तन्यासं कृत्वा संपूज्याधिवासयेत् । ततो मण्डलशय्य-  
 योर्मध्ये न गन्तव्यं मण्डलदेवतानामुपहारनिवेदनम् । तत्र सर्वान्नं  
 ब्रह्मणे । घृतान्नं सोदकमिन्द्राय । आज्यान्नमग्नये । माषान्नं यमाय ।  
 कृष्णव्रीह्यन्नं सघृतं निर्ऋतये । नवनीतोदनं वरुणाय । यवोदनं वायवे ।  
 प्रैयंगवं सोमाय । गवेधुकमीशानाय । पायसं सर्वेभ्यः । ततः शय्या-  
 प्रदेशे नैवारं चरुं स्थापयित्वा तेन दिग्बलिं दत्त्वा निशां नयेदित्यधि-  
 वासनम् । प्रातः पुरोदयादेवमुत्थाप्य मूलमन्त्रेणोपस्थाय घृतेन चरुं  
 अपयित्वाऽभिचार्य मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरसहस्रमष्टशतं वा हुत्वा घृतं ताव-  
 द्ब्रुत्वा चरुशेषेण, अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा ।  
 कुह्यै स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहा ।  
 ब्रह्मणे स्वाहा । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नयेऽन्नादाय० ।  
 अग्नयेऽन्नपतये० । प्रजापतये० । विश्वेभ्यो देवेभ्यः० । सर्वेभ्यो देवेभ्यः० ।  
 सर्वेभ्यो भूतेभ्यः० । भूर्भुवःस्वःस्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति जुहु-  
 यात् । ततो यजमानो गुरवे वरं दद्यात् । तत उदिते सूर्ये गुरुर्वेद्यां  
 मेर्वभिमुखं देवं कृत्वा रत्नपुष्पमूलफलौषध्यादि दर्शयित्वा ताम्रपात्रे  
 शान्तिजलमादाय मूलमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य देवशिरसि तेनैव  
 मन्त्रेणासिच्योत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इत्युत्थाप्य विश्वतश्चक्षुरित्युपस्थाय देवस्य  
 पुरस्तात् ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रेभ्यो नमः । दिक्पालेभ्यो० । वसुभ्यो० ।  
 रुद्रेभ्यो० । आदित्येभ्यो० । अश्विभ्यो० । मरुद्भ्यो० । कुवेराय० ।



गङ्गादिमहानदीभ्यो० । अग्नीषोमाभ्याम्० । इन्द्राग्निभ्यो० । द्यावापृ-  
थिवीभ्यां० । धन्वन्तरये० । सर्वेशाय० । विश्वेभ्यो देवेभ्यो० । ब्रह्मणे  
नम इति जप्त्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । देवस्य पुरतो यजमानमभि-  
षिच्य देवमन्त्रं जप्त्वा ध्रुवसूक्तेन तल्लिङ्गमन्त्रेण पुरुषसूक्तेन गायत्र्या  
व्याहृतिभिश्च देवं प्रतिष्ठाप्य प्रतिमायां निजवाहनायुधपरिवारादिकं  
ध्यात्वा पुनः पूजयित्वा मुद्रां प्रदर्श्य मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा  
स्तुत्वा नत्वाऽऽचम्य स्विष्टकृदाद्युत्तराङ्गानि समापयेत् । ततो यजमानो  
दक्षिणां दद्याद्विप्रांश्च भोजयेद्यथाशक्ति । इति चलाचारप्रतिष्ठा ।

### अथ जीर्णोद्धारविधिः ।

अग्निपुराणे—

जीर्णादीनां च लिङ्गानामुद्धारविधिमाचरेत् ।

लक्ष्मोज्झितं च भग्नं च स्थूलं वज्रहतं तथा ॥

सम्पुटं स्फुटितं व्यङ्गं लिङ्गमित्येवमादिकम् ।

इत्यादिदुष्टलिङ्गानां त्याज्या पिण्डी तथा वृषः ॥

लक्ष्मोज्झितं बाणादिभ्रमेण तद्विधिना स्थापितं सत्तल्लक्षणरहितम् ।  
भग्नमनेकशकलीभूतं स्थूलपिण्डिकाननुरूपम् । वज्रहतं विगुद्धतम् । सम्पुटं  
न्युवृजम् । स्फुटितमेकदेशे भग्नम् । व्यङ्गं पिण्डिकाप्रणात्यादिरहितम् ।  
आदिपदेन चाण्डालस्पृष्टादीनां ग्रहणम् । पिण्डिवृषयोर्दुष्टत्वे तयोरेव  
त्यागो न लिङ्गस्य ।

चालितं चलितं निम्नमत्यर्थं विषमस्थितम् ।

दिङ्मूढं पातितं लिङ्गं मध्यस्थं पतितं तथा ॥

एवंविधं च संस्थाप्यं निर्त्रणं च भवेद्यदि ।

नादेयेन प्रवाहेण तदपाक्रियते यदि ॥

ततोऽन्यत्रापि संस्थाप्यं विधितृष्टेन कर्मणा ।

निम्नं सामन्तभूभागान्निम्नायां भूव्यवस्थितम् ॥

विषमस्थितं यत्र पूजादि कर्तुं न शक्यते तस्मिन्देशे व्यवस्थितम् ।  
दिङ्मूढं विशेषविध्यभावेऽपि उदगतिरिक्तदिक्प्रणालीकम् । पातितं  
गतादौ । मध्यस्थं संपूर्णं पिण्डिकाश्चन्नेऽन्तर्गतं प्रासादमध्यभागे स्थित-  
मित्यपि केचित् । एवंविधमित्यनेन लक्ष्मोज्झितभग्नस्फुटितविगुद्धता-



तिरिक्तानां ग्रहणम् । तेन जघन्यो निर्वणशब्दोऽपि लक्ष्मोज्झिताद्यति-  
रिक्तानामेवोपलक्षकः ।

पीठाच्च चालितं लिङ्गं निर्दोषं तु भवेद्यदि ।  
ततो वै स्थापयेत्तत्र जपेलक्ष्मघोरकम् ॥  
त्यजेत्सदोषितं लिङ्गं श्वपचाद्यैश्च सेवितम् ।  
लिङ्गान्तरं प्रतिष्ठाप्य विशुद्धिमधिगच्छति ॥

इति सिद्धान्तशेखरोक्तेः ।

तत्रैव—

लिङ्गादीनां च जीर्णानां प्रोच्यते विधिरुच्छ्रितौ ।  
सर्वारिष्टविनाशार्थं सर्वप्राणिहितार्थकः ॥  
लिङ्गस्य पिण्डिकायाश्च प्रतिसामुखलिङ्गयोः ।  
सर्वेषां परिवाराणां हर्म्यप्राकारयोस्तथा ॥  
उद्धारश्चावृत्तिः प्रोक्ताऽथो द्वारे हेतुरुच्यते ।

आवृत्तिः पुनःसंस्कारः ।

स्फुटिते खण्डिते भग्ने दग्धे वाऽशनिनाऽग्निना ॥  
उन्मत्तैः शत्रुभिश्चौरैः करिणा स्त्रोतसा हृते ।  
लिङ्गे पीठादिके वाऽपि विशीर्णे कालपर्ययात् ॥  
देहं जीर्णं यथा देही त्यक्त्वाऽन्यदुपगच्छति ।  
लिङ्गादीन्यतिजीर्णानि तथा मुञ्चन्ति देवताः ॥  
खण्डितं चूर्णितं लिङ्गं प्रेताद्या आश्रयन्ति च ।  
लिङ्गाद्यं सत्त्वशून्यत्वात्तथा च ब्रह्मराक्षसाः ॥  
कर्तुर्नृपाणां राष्ट्रस्य तद्ग्रामस्य विशेषतः ।  
पीडां कुर्वन्ति ते ह्युग्रां दुर्भिक्षं मरणादिकम् ॥  
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादुद्धरणक्रियाम् ।  
स्वायम्भुवे च देवे च बाणलिङ्गे तथैव च ॥  
ऋषिभिश्चासुरैर्देवैस्तत्त्वविद्भिः प्रतिष्ठिते ।  
लिङ्गे जीर्णादिदुष्टेऽपि नोद्धारं तत्र कारयेत् ॥

इदमपि स्वयम्भुवादिव्यक्तिविषयं न तु दैवात्तद्व्यक्तिनाशेन तत्स्था-  
नस्थापितेदानीन्तनतादृशव्यक्तिविषयम् ।

स्वायम्भुवादिलिङ्गानां जीर्णपीठं परित्यजेत् ।  
उक्तैर्जीर्णादिभिर्दुष्टं मानुषं तु परित्यजेत् ॥



दिङ्मूढं पतितं स्थानान्मध्यस्थं स्रोतसा हृतम् ।

चौराद्यैश्चालितं लिङ्गं स्थापयेन्निर्घणं पुनः ॥

लोहाढ्यं लिङ्गमिन्नाङ्गं सन्धाय स्थापयेत्पुनः ।

सुवर्णाद्यष्टलोहनिर्मितं लिङ्गं देवाङ्गं सत्तदेव सज्जं कृत्वा पुनः  
स्थापयेदित्यर्थः ।

बाहुपादशिरोहीनां कर्णनासास्यहीनकाम् ।

तादृशीं परिवाराणां प्रतिमां परिवर्जयेत् ॥

यद्द्रव्यं यत्प्रमाणं च लिङ्गं वा प्रतिमाऽपि वा ।

तादृक्तेनैव मानेन तद्द्रव्येण प्रकल्पयेत् ॥

कारयेन्नान्यमानेन नान्यद्द्रव्येण तत्पुनः ।

नान्याकारं च नान्यत्र स्थापयेत्तद्गुरुत्तमः ॥

स्रोतसाऽपहृते लिङ्गे प्रासादे वा तदन्यतः ।

तत्समीपगते देशे स्थापयेद्बाधवर्जिते ॥

प्रासादे पतिते हर्म्ये गोपुरे मण्डपादिके ।

तदाकारं च तद्द्रव्यैस्तन्मानं तत्र कारयेत् ॥

कर्मयोग्याः शिला ग्राह्या दृढकाश्च तथाविधाः ।

हीनद्रव्यकृतं हर्म्यं श्रेष्ठैर्द्रव्यैः समाचरेत् ॥

हीनं वाप्यधिकं मानमाकारं वा न कारयेत् ।

एवमुक्तेन मार्गेण दोषैरुक्तैर्विचार्य च ।

लिङ्गपीठादिकं जीर्णं तदुद्धारं तथा चरेत् ॥

तिथिनक्षत्रवारादि तदर्थं न विचारयेत् ।

जीर्णं चोद्धारयेद्विद्वानजीर्णं नैव चालयेत् ॥

जीर्णस्य धारणे दोष अजीर्णचलने तथा ।

तस्मान्न धारयेज्जीर्णमजीर्णं रक्षयेद्बुधः ॥

सुस्थितं दुःस्थितं वाऽपि शिवलिङ्गं न चालयेत् ।

शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्रेण तु चालनम् ॥

अस्य श्लोकस्य वाक्यार्थो वर्ण्यतेऽथ यथागमम् ।

नित्यं पूजादिभिर्युक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितम् ॥

हीनं पूजादिभिलिङ्गमजीर्णमपि दुःस्थितम् ।

देवतास्थापितं लिङ्गं मोहान्निघ्नत्वमागतम् ॥



तल्लिङ्गं दुःस्थितं वापि तन्त्रज्ञैरिति निश्चितम् ।  
 सहस्राधिकहोमेन तस्य चालनमीरितम् ॥  
 स्थापनं शतहोमेन तस्य लिङ्गस्य चोदितम् ।  
 एवं बहुविधैस्तन्त्रैर्दोषाश्च बहुधोदिताः ॥  
 परीक्ष्य बहुधा तांश्च जीर्णलिङ्गं समुद्धरेत् ।

हयशीर्षागमेऽपि—

जीर्णोद्धारविधिं कृत्स्नं संक्षेपात्प्रब्रवीमि ते ।  
 चालितोत्पादिता भूमिः केनचित्पापकर्मणा ।  
 चण्डालवत्यसंस्पर्शदूषिता वह्निना च या ॥  
 स्वयमापतिता जीर्णा नदीवेगादिपातिता ।  
 अपुण्यजलसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिताः ॥  
 पतिताद्यर्चिता श्लेष्मविण्मूत्रादिविदूषिता ।  
 सत्रणा लक्षणोपेता संस्कार्या देशिकेन तु ॥

भूमिलिङ्गमीश्वरप्रतिमा च । चण्डालवती तत्स्पृष्टा । असंस्पर्शो  
 निषिद्धस्पर्शः । जीर्णा कालबाहुल्येन क्षारादिसम्बन्धेनैव विशीर्णा ।  
 सत्रणा एकदेशे भग्ना । दैशिक उपासकः ।

पूर्वोक्तेन विधानेन वैदिकेन सुरोत्तम ।  
 अचलां दूषितामेवं स्थापयेद्विधिनोद्धृताम् ॥

पूर्वोक्तेन चलार्चाप्रतिष्ठाप्रकारेण । एवं विधिनोद्धृतापीत्यन्वयः ।  
 वक्ष्यमाणप्रकारेणोद्धृतमित्यर्थः ।

पूर्वपीठं परित्यज्य यदन्यदपि तद्रूपम् ।  
 ततो यथोक्तविधिना प्रासादे सन्निवेशयेत् ॥

दुष्टं पूर्वोसनं परित्यज्यान्यस्मिन्तत्प्रासादगत आसने यथोक्तेन  
 चलार्चास्थापनप्रकारेण पुनः स्थापयेदित्यर्थः ।

अतिजीर्णा तथा व्यङ्गां दारवीं शैलजामपि ।  
 परित्यज्य न्यसेदन्यां पूर्वोक्तविधिना गुरुः ॥  
 संहारविधिना तत्र मन्त्रान्संहृत्य देशिकः ।  
 सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद्गुरुः ॥

संहारविधिं प्रातिलोम्येन । मन्त्रान्कलाः । संहृत्योद्धृत्य । नार-  
 सिंहेन नृसिंहमन्त्रेण । होमद्रव्यमाज्यमन्यानादेशात् ।



वृषं संयोजयित्वा तु मन्त्रेणोद्वाह्य देशिकः ।

दारवीं दाहयेद्ब्रह्मै शैलजां प्रक्षिपेज्जले ॥

धातुजां रत्नजां वाऽपि प्रक्षिपेन्मकरालये ।

अगाधे चान्यतोये च क्षिपेन्नद्यां महाजले ॥

‘वृषं वृषौ वा रज्ज्वा संयोज्य मन्त्रेण पाशुपतेनोद्वाहयेत्’ इति  
त्रिविक्रमः ।

यानमारोप्य जीर्णाचीं छाद्य वस्त्रादिना गुरुः ।

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥

नीत्वाऽगाधं जलं रम्यं भागीरथ्यामथार्णवे ।

विष्वक्सेनाय वीर्येण प्रक्षिपेत्तां ततो गुरुः ॥

यानमारोप्येत्यादिपूर्वोक्तेन एव प्रतिपादन इतिकर्तव्यतोत्तयर्थम् ।  
विष्वक्सेनोद्देशेन वीर्येण बीजेन गुरुर्भागीरथ्यादिजले तां प्रतिमां  
क्षिपेदित्यर्थः ।

रत्नानि क्षिप्तान्यादाय स्वयं दद्यात्तु दक्षिणाम् ।

धेनवो दश वा पञ्च स्वर्णवस्त्राद्यलङ्कृताः ॥

जीर्णोद्दारे प्रदातव्या गुरवे विष्णुतुष्टये ।

लिङ्गतर्तक्षिप्तानि रत्नान्यादाय स्वयं यजमानो दश धेनूः पञ्च वा  
हेमवस्त्राद्यलङ्कृता गुरवे दक्षिणां दद्यादित्यर्थः ।

भोजनीया विष्णुभक्ता देयमन्नमवारितम् ।

त्रिरात्रमुत्सवः कार्यः पञ्च सप्त ह्यथापि वा ॥

बलिश्च विधिना देयो यथोक्तेन सुरोत्तम ।

यथोक्तेन चलार्चाप्रतिष्ठोक्तप्रकारेण ।

ततो निवेदयेदन्यां प्रतिमां लक्षणान्विताम् ।

निवेदयेत्स्थापयेत् ।

तत्क्षणादेव राजेन्द्र तस्य दोषस्य शान्तये ।

सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नोपेक्षां तत्र कारयेत् ॥

अपास्य पिण्डिकां पूर्वामन्यां तत्र निवेशयेत् ।

यद्भव्या यत्प्रमाणा च या मूर्तिश्चोद्धृता हरेः ।

तद्बुद्ध्या तत्प्रमाणा च सा मूर्तिस्तत्र कीर्तिता ॥

यत्प्रमाणं यदाकारं यन्मयं बिम्बमुद्धरेत् ।



तत्प्रमाणं तदाकारं तन्मानं तत्र विन्यसेत् ॥  
 विहाय पिण्डिकां पूर्वा तद्दिने चापरां न्यसेत् ।  
 द्वितीये वा तृतीये वा दिवसे स्थापयेद्धरिम् ॥  
 अत ऊर्ध्वं भवेद्दोषो विधिनाऽपि निवेशिते ।  
 अनेनैव विधानेन लेख्यादींस्तु विसर्जयेत् ॥

लेख्यादीन्कुड्यलिखिताः प्रतिष्ठापिताः प्रतिष्ठाः ।

अन्यद्विकल्पयेत्तत्र तत्प्रमाणं तदाकृतिम् ॥  
 एष संक्षेपतः प्रोक्तो जीर्णोद्धारविधिस्तव ।  
 सर्वेषामेव देवानामेष साधारणः स्मृतः ॥  
 यो जीर्णविधिना विभ्वं संस्क्रुर्यान्मानवो भुवि ।  
 फलं दशगुणं तस्य मूलान्नास्त्यत्र संशयः ॥  
 वापीकूपतडागानां सुरधाम्नां सदाऽनघ ।  
 प्रतिमानां समानां च संस्कर्ता यो नरो भुवि ॥  
 पुण्यं शतगुणं तस्य भवेन्मूलान्न संशयः ।  
 संशयोऽत्र न कर्तव्यो जीर्णसंस्कारकर्मणि ॥  
 मूलादशगुणं प्रोक्तं पुण्यं कूपे प्रतिष्ठितम् ।

प्रतिष्ठितमिति भावे क्तः ।

प्रतिमायां शतगुणं कूपादेः परिकीर्तितम् ।

प्रतिमादौ दशगुणं जीर्णसंस्करणाद्भवेत् ॥

कूपप्रतिमयोर्दशगुणशतगुणयोरल्पत्वमहत्त्वापेक्षया व्यवस्था ।

अग्निपुराणे—

सुस्थितं दुःस्थितं वाऽपि शिवलिङ्गं न चालयेत् ।

शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्रेण तु चालनम् ॥

पूजादिभिश्च संयुक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितम् ।

पूजया रहितं यत्तददुष्टमपि दुःस्थितम् ॥

अयं च चालननिषेधो विधिव्यतिरेकेण शतसहस्रसंख्येऽनुक्तसंख्ये-  
 यत्वाद्गोते गौश्चाश्वश्चेत्यत्रैव । बहूपकारित्वाद्यः सहस्रं शताश्वमित्यादौ  
 बाहुल्येन दर्शनाच्चेति न्यायविद्ः । सिद्धान्तशेखरे तु होमगतेयं संख्ये-  
 त्युक्तम् । यदपि तत्रैव—

असुरैर्भुतिभिर्देवैस्तत्त्वविद्भिः प्रतिष्ठितम् ।

जीर्णं वाऽप्यथ वा भग्नं विधिनाऽपि न चालयेत् । इति ॥



तदसुरादिप्रतिष्ठापिततद्व्यक्तिविषयम्, न तु देवात्तद्व्यक्तिनाशेन तत्स्थान-  
नस्थापितेदानीन्तनतादृशव्यक्तिविषयम् । जीर्णोद्धारप्रकारोऽप्यत्रैव-

याम्ये मण्डपमीशे वा प्रत्यग्द्वारैकतोरणम् ।

विधाय द्वारपूजादिस्थण्डिले संप्रपूजनम् ॥

‘द्वारपूजादिशिवकुम्भपूजान्तम्’ इति त्रिविक्रमः ।

मन्त्रान्तसंतर्प्य संपूज्य वासुदेवांश्च पूर्ववत् ।

दिग्बलिं च बहिर्दत्त्वा समाचम्य स्वयं गुरुः ॥

ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु शम्भुं विज्ञापयेत्ततः ।

दुष्टलिङ्गभिदं शम्भो शान्तिरुद्धरणेऽस्य चेत् ॥

रुचिस्तवास्ते विधिना अधितिष्ठ च मां शिव ।

एवं विज्ञाप्य देवेशं शान्तिहोमं समाचरेत् ।

मध्वाज्यक्षीरदूर्वाभिर्मूलेनाष्टाधिकं शतम् ॥

ततो लिङ्गं च संस्थाप्य पूजयेत्स्थण्डिले तथा ।

लिङ्गं लिङ्गाधिष्ठितदेवतां स्थण्डिले संस्थाप्येत्यर्थः ।

ॐ व्यापकेश्वरायेति नाम्नानेन शिवार्चनम् । ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय  
नमः । ॐ व्यापकेश्वर शिरसे नमः । ॐ व्यापकेश्वर शिखायै नमः

इत्याद्युह्यम् । इत्यङ्गमन्त्राः ।

ततस्तन्नाश्रितं मन्त्रं वारयेदस्त्रबन्धनः ।

सत्त्वः कोऽपीह यः कश्चिल्लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठति ॥

लिङ्गं त्यक्त्वा शिवाज्ञाभिर्यत्रेष्टं तत्र गच्छतु ।

विद्या विद्येश्वरैः शंभुः शंभुरत्र भविष्यति ॥

सहस्रं प्रतिभागं च ततः पाशुपताणुना ।

हुत्वा शान्त्यम्बुना प्रोक्ष्य स्पृष्ट्वा कुशैर्जपेत्ततः ॥

ब्रह्मशिलापिण्डीलिङ्गात्मकदेवताभागत्रयसंस्कारार्थं पाशुपतास्त्रेण  
हुत्वा शान्तिकलशोदकेन देवं संप्रोक्ष्य कुशैश्च स्पृष्ट्वा होमसंख्यया पाशु-  
पतमन्त्रं जपेत् ।

दत्त्वाऽव्ययं च विलोमेन तत्त्वतत्त्वाधिपांस्ततः ।

मूर्तिमूर्तीश्वरालिङ्गे पिण्डिकासंस्थितान्गुरुः ॥

विसृज्य स्वर्णपाशेन वृषस्कन्धस्तथा ।

रज्ज्वा बद्ध्वा तया नीत्वा शैवमन्त्रं गृणन्शनैः ॥



तज्जले निक्षिपेन्मन्त्री पुष्ट्यर्थं जुहुयाच्छतम् ।

तृप्तये दिक्पतीनां च वास्तुशुद्धये शतं शतम् ॥

रक्षां विधाय तद्वाग्निं महापाशुपतास्त्रतः ।

लिङ्गमन्यत्ततस्तत्र स्थापयेद्विधिवद्गुरुः ॥

विलोमेन पराङ्मुखसंज्ञकम् । तत्त्रतस्त्वाधिपमूर्ती मूर्तीश्वरा वक्ष्यन्ते ।

सिद्धान्तशेखरे—

जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये समासात्तत्र चोदितम् ।

ईशान्यां दक्षिणे वाऽपि मण्डपं पश्चिमासुखम् ।

कुर्वीत पूर्ववत्सर्वमेकास्यं चैकतोरणम् ॥

पूर्ववत्सर्वं स्तम्भादि ।

द्वारपालार्चनं कुर्यात्स्थण्डिलेऽग्नौ शिवार्चनम् ।

द्वारपालार्चनं मण्डपप्रतिष्ठाप्रकारेण ।

मन्त्राणां तर्पणं कुर्याद्वास्तुदेवार्चनं तथा ।

मन्त्राणां देवस्थापितकलानाम् ।

अन्तर्बहिर्वलिं दद्याच्छिवभक्तांश्च भोजयेत् ।

‘शिवभक्तान्पञ्च’ इति त्रिविक्रमः ।

द्विजान्कर्मकरादींश्च ततो विज्ञापयेच्छिवम् ।

दोषैर्लिङ्गमिदं दुष्टं शान्तिरस्त्वस्य चोद्धृतौ ॥

तस्मादेनं विधानेन अधितिष्ठ महेश्वर ।

भवत्वितिवचस्तेन प्रोक्तं तद्भावयेद्गुरुः ॥

तेन शिवेन प्रोक्तं शान्तिर्भवत्विति वचो गुरुर्भावयेत् ।

विज्ञाप्यैवं शिवं भक्त्या शान्तिहोमं समाचरेत् ।

मधुनाऽऽज्येन दुग्धेन दूर्वाभिर्मूलमन्त्रतः ॥

शतमष्टाधिकं मन्त्रं प्रत्येकं जुहुयात्ततः ।

मन्त्रं मूलमन्त्रमुच्चार्येत्यर्थः ।

त्रिभिश्च मधुरैः सार्द्धं समिधोऽघोरमन्त्रतः ।

शान्त्यर्थं वर्तुले कुण्डे सहस्रं जुहुयाद्गुरुः ॥

अथवाऽस्त्रेण जुहुयाद्ब्याहृतीभिश्च पूर्णया ।

वघ्नीयात्कङ्कणं हैमं लिङ्गस्योत्तानके करे ॥

लिङ्गस्योत्तानं करं भावयित्वा तत्र हैमं कङ्कणं वघ्नीयादित्यर्थः ।



लिङ्गं संस्नाप्य संपूज्य पूर्वोक्तविधिना ततः ।  
 साङ्गं संपूजयेद्भक्त्या स्थण्डिले व्यापकेश्वरम् ॥  
 लिङ्गाश्रितानि भूतानि ताडयेदस्त्रमन्त्रतः ।  
 यानि कानि च भूतानि तिष्ठन्त्याश्रित्य लिङ्गकम् ।  
 त्यक्त्वा शिवाङ्गया तानि व्रजन्तु स्थानमीप्सितम् ॥  
 विद्याविद्येश्वरैर्युक्तः शिवो लिङ्गे भविष्यति ।  
 इति दत्त्वा शिवस्याङ्गां ततो भागत्रये गुरुः ॥  
 हुत्वाहुत्वाऽस्त्रमन्त्रेण तथा पाशुपतास्त्रतः ।  
 प्रतिभागं सहस्रं च सिञ्चेच्छान्तिघटोदकैः ॥

ब्रह्मशिलापिण्डीलिङ्गात्मकदेवभागत्रयं संस्कृतुं त्रिसहस्रमन्त्रेण हुत्वा  
 तेनैव प्रतिभागं कलशसहस्रेणाभिषिञ्चेदित्यर्थः ।

मूलमध्याग्रकैर्दमैः स्पृष्ट्वा च जपमाचरेत् ।

ब्रह्मशिलां मूलेन पिण्डीमध्येन लिङ्गमन्त्रेण दमैः स्पृष्ट्वेत्यर्थः ।

प्राग्वत्पाशुपतास्त्रं च जपेद्धोमस्य संख्यया ।

सद्योजातादिवक्त्रेषु दद्यादर्धं पराङ्मुखम् ॥

दुष्टलिङ्गप्रतिपत्तिमाह—

सौधं भूमौ परित्याज्यं दारुजं चाग्निना दहेत् ।

सौधं सुधानिर्मितं लिङ्गम् । लोहजं तेन कार्यं स्याच्छैलजं चाप्सु  
 निक्षिपेत् । सुवर्णाद्यष्टलोहनिर्मितं भग्नं चेत्तेनैव सुवर्णादिना तत्कार्य-  
 मित्यर्थः ।

तत्त्वतत्त्वेश्वरांलिङ्गान्मूर्तिमूर्तीश्वरानपि । तासामेव तत्रैव संस्का-  
 रसंभवात्, स्थलान्तरनयनाविधानाभावाच्च । एतेन स्वस्थानादच-  
 लितस्याविकृतस्य च विद्युद्धतदग्धादेरप्येवमेव व्यवस्था । स्थाना-  
 चलितस्य तु पुनस्तत्रैव प्रतिष्ठा । स्थानान्तरविधानाभावाच्चलितस्य च  
 त्यागस्तादृशस्यान्यस्य प्रतिष्ठा च । स्थूले पूर्वपिण्डीब्रह्मशिलाया अप्यु-  
 द्धारः, प्रतिपत्तिर्विधिना पिण्डिकान्तरादिनिवेशश्च । व्यङ्गे तु पूर्व-  
 पिण्डिकादीनां भग्नत्वे एवमेव । पिण्डाद्यभावे तु पिण्डिकाद्यन्तरस्था-  
 पनमात्रमित्यादिदुष्टलिङ्गानामित्यग्निपुराणवाक्यालिङ्गे पीठादिके वाऽ-  
 पीति सिद्धान्तशेखरवाक्यात्पूर्वपीठं परित्यज्येति ह्यशीर्षवाक्याच्च ।  
 सुवर्णादिनिर्मितभङ्गादौ तु तेनैव सुवर्णादिना तादृशं तावत्परिमाणं च  
 लिङ्गादि कृत्वा तत्रैव पुनः स्थाप्यम् । यदि तेन सुवर्णादिना तादृशं



कर्तुं न शक्यते तदा समुद्रे क्षिपेत् । रत्नजा तु समुद्र एव क्षेप्तव्या ।  
 'रत्नजा यदि दग्धाऽपि स्वकान्तिं न जहाति तदा सैव स्थाप्या'  
 इति त्रिविक्रमः । लोहाद्यं छिन्नभिन्नाङ्गमिति सिद्धान्तशेखरवाक्यात् ।  
 धातुजा रत्नजावापीति हयशीर्षवाक्यात् ॥ इति जीर्णोद्धारविधिः ॥

अथास्य प्रयोगः । यजमान उत्थाय दक्षिणस्यामीशान्यां वा जाती-  
 यद्रव्यनिर्मितं तन्मानं तदाकारं लिङ्गं तादृशीं प्रतिमां च स्थापयेत् ।  
 अतिजीर्णमिति पूर्वोक्ताद्वयशीर्षवाक्यात् । पीठाच्च चालितं लिङ्गमिति  
 त्यजेत्सदोषितं लिङ्गमिति बाहुपादशिरोहीनामिति यद्गुणं यत्प्रमाणं  
 चेति सिद्धान्तशेखरोक्तेः । तस्मादेव वाक्यनिचयात्प्रतिपत्तिप्रयोजक-  
 दोषाभावाच्च न्युवजनिष्प्रविषयस्थदिङ्मूढानां च वैधचालनं तेषामेव  
 पुनःस्थापनं च भग्नचूर्णितयोस्तदवयवानां प्रतिपादनपूर्वकं नूतमानां  
 स्थापनम् । अनेकशकलत्वेन चूर्णितत्वेन चोद्धारपुनःस्थापनविध्योर-  
 प्रवृत्तेः । चालितचलितपातितपतितमध्यस्थानां तु नोद्धारो न च त्यागः ।  
 किन्तु तेषामेव पुनः स्थापनम् । उद्धृतस्योद्धारसंभवाभिर्दुष्टत्वेन प्रति-  
 पत्तिविध्यप्रवृत्तेश्च । एतेनैव नदीवेगापहतोन्मत्तशत्रुचोरहस्त्याद्यपहतानां  
 लाभे तान्येव पुनः स्थापयानि । तेषामलाभे तु तादृशान्यन्यानि  
 स्थापयानि । निषिद्धस्पर्शदूषितनिषिद्धजलस्पृष्टविप्रक्षतजदूषितपतिताद्य-  
 चित्तश्लेष्मविष्मूत्रादिदूषितानां स्वस्थानस्थितानामेव पुनःसंस्कारो नोद्ध-  
 रणं नापि प्रतिपत्तिः अतिजीर्णमिति पीठाच्च चालितमिति त्यजेत्स-  
 दोषितं लिङ्गमिति पूर्वोक्ताद्वाक्यनिचयात् ।

लिङ्गस्थात्विस्तृजेन्मन्त्री पीठब्रह्मशिलागतान् ।

वृषस्थाद्विस्तृजेत्तद्वदङ्गमूर्तिस्थितानपि ॥

ततः सुवर्णपाशेन रज्ज्वा गोचर्मजातया ।

वृषस्कन्धस्थया बद्धा लिङ्गं पीठं च चर्मणा ॥

शिवमस्त्विति तद्वाह्ये सजनोऽप्याहरेद्गुरुः ।

उद्धारार्थं च लिङ्गस्य तौ वृषौ प्रेरयेत्ततः ॥

बहिर्नीत्वा ततो लिङ्गं पीठं ब्रह्मशिलावृषम् ।

रथादिकं समारोप्य समुद्रे निक्षिपेत्ततः ॥

स्थूललिङ्गोद्धतौ बद्धा गजं वा प्रेषयेद्गुरुः ।

सौधं भूमौ परित्यज्य दारुजं चानले दहेत् ॥



सर्वं वा निक्षिपेत्तोये लिङ्गं वा प्रतिमादिकम् ।

ततः पाशुपतास्त्रेण शान्त्यर्थं जुहुयाच्छतम् ॥

लोकपालाणुभिस्तद्वद्वास्तुशान्त्यैः शतं शतम् ।

प्रतिदैवतं शतं जुहुयादित्यर्थः ।

रक्षां कुर्याच्च तद्धर्म्ये महापाशुपताणुना ।

तन्मानं तन्मयं लिङ्गं तत्र संस्थापयेत्पुनः ॥

प्रतिष्ठोक्तेन मार्गेण सर्वं कर्म समाचरेत् ।

हर्म्यस्य परिवाराणां प्राकारादेः समुद्धृतौ ॥

सर्वेषामपि जीर्णानामेष एव विधिः स्मृतः ।

कर्त्ताऽत्र दक्षिणां दद्याद्दुर्वादिभ्यो यथोदिताम् ।

यत्पुण्यं स्थापने प्रोक्तं तत्फलमेतदुद्धृतौ ॥

अयमत्र निर्गलितोऽर्थः । लक्ष्मोज्झितः स्फुटितविशीर्णश्चपचसेवितानां तादृशीनां बाहुपादशिरःकर्णनासास्यहीनानां प्रतिमानां च विध्युक्तप्रकारेण चालनं जलादौ प्रतिपादनं च कृत्वा नूतनप्रकारेण तस्मिन्नेव स्थाने पूर्वपश्चिमद्वारैकतोरणं मण्डपं तन्मध्यभागे वेदीं पूर्वभागे वर्तुलं चतुरस्रं वा कुण्डं स्थण्डिलं वा पश्चिमे वास्तुपीठमुत्तरे बालुकया स्थण्डिलं च कृत्वा देशकालादि स्मृत्वा मौलफलच्छतगुणफलकामोऽल्पप्रतिमायां तु दशगुणफलकामो वा जीर्णादिदोषदुष्टस्य लिङ्गस्य प्रतिमायां वा उद्धारमुच्छ्रयणं वा करिष्ये इति सङ्कल्पयेत् । पिण्डिकावृषगरुडप्रासादकलशेषु तु ईश्वरप्रीतिकाम इति विशेषः । सर्वत्रेश्वरप्रीतिकामो वा । ततो गणेशपूजास्वस्तिवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि नूतनप्रतिष्ठाप्य कृत्वा तद्देव ब्रह्माचार्यसदस्यान्द्वात्रिंशत्षोडशाष्टौ चतुरो वा ऋत्विजो द्वारपालांश्चाष्टौ चतुरो वा वृत्वा बस्त्रालङ्कारमधुपर्कादिभिस्तान्पूजयेत् । अथाचार्यो मण्डपपूजादिशिवकुम्भपूजान्तं कृत्वा वास्तुमण्डले महावेद्यां च देवतास्थापनं कृत्वा पीठादौ प्रणवेनासनं दत्त्वा ॐ व्यापकेश्वर एहोहि नमः । ॐ व्यापकेश्वर हृदयाय नमः । ॐ व्यापकेश्वर शिरसे स्वाहा । ॐ व्यापकेश्वर शिखायै वषट् । ॐ व्यापकेश्वर कवचाय हुम् । ॐ व्यापकेश्वर नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ व्यापकेश्वर अस्त्राय फट् । ॐ इति मन्त्रैः शिवमर्चयेत् । देवतान्तरोद्दारे मूलमन्त्रेणार्चयेत् । ततोऽग्निं संस्थाप्य लिङ्गचालनार्थं मूलमन्त्रेण तिलाहुतिसहस्रं हुत्वा मण्डलदेवताहोमं पूर्णाहुतिं च कृत्वा—



जीर्णभग्नमिदं देव सर्वदोषावहं नृणाम् ।

अस्योद्गारे कृते शान्तिः शास्त्रेऽस्मिन्कथिता त्वया ॥

जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम् ।

तदत्राधिष्ठितान्देव प्रोद्धरामि तवाज्ञया ॥

इति देवस्य जीर्णदोषं श्रावयित्वा शिल्पियुतः साङ्गं शिवं विसृज्य यज-  
मानस्य सौवर्णं कङ्कणं वध्ना सौवर्णखनित्रेणोद्धृत्य रथमारोप्य तरुच्छाये  
पर्यन्तदेशे वृषमूले अगाधनदीहृदे वा वामदेवेन क्षिपेत् । प्रतिमां तु  
प्रणवेन क्षिपेत् । वारुजं चेत्तदुत्तरे दहेत् । रत्नजं लिङ्गं यदि निज-  
कान्तिमदेव भवति तदा तदेव पूर्ववत्स्थापयेत् । सुवर्णादिमयं तदेव  
साम्रं कृत्वा स्थापयेत् । प्रासादे त्वयं विशेषः । प्रासादमन्त्रान् खड्गे  
हुरिकायां वा संयोज्य नूतनप्रासादसिद्धिपर्यन्तं खड्गादिकमर्चयित्वा  
प्रासादे सिद्धे खड्गादिमन्त्रान्यथास्थानं प्रतिष्ठाकाले न्यस्य यज-  
मानमभिषिञ्चेत् । ततो लिङ्गं प्रतिमां वा तत्रैव विधिवत्संस्थाप्य ध्रुवा-  
द्यौरित्यादिमन्त्रान्पठित्वा स्थिरीकृत्य बहु संपूज्य प्रार्थयेत्—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यथोक्तेन कृतं यदि ।

तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रासादान्महेश्वर ॥

कर्तुराह्नः प्रजानां च शान्तिर्भवतु सर्वदा ।

अस्माकं शिल्पिनां चैव सुप्रीतो भव सर्वदा । इति ॥

चर्मण्वतीतरणिजाशुभसङ्गमस्य

साम्निध्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे ।

ख्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा

राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥

इति श्रीमीमांसकशङ्करभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तथास्करे

प्रतिष्ठामयूखः समाप्तः ॥



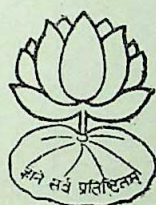
श्रीभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे

प्रायश्चित्तमयूखः

( दशमः )

विद्यालङ्कार-भट्टानन्तपद्मेश्वरैः संशोधितः

तत्त्वदर्शिन्या विभूषितश्च ।



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७







॥ श्रीः ॥

## प्रायश्चित्तमयूखस्यविषयानुक्रमणिका ।

| विषयः                              | पृष्ठम् | विषयः                                | पृष्ठम् |
|------------------------------------|---------|--------------------------------------|---------|
| अङ्गलम् ... ..                     | १       | कर्मविपाकः ... ..                    | १६      |
| प्रतिज्ञा ... ..                   | १       | पर्वत् ... ..                        | २१      |
| प्रायश्चित्तस्य पापशुद्धिहेतुत्वम् | १       | पर्वदुपस्थानम् ... ..                | २२      |
| प्रायश्चित्तलक्षणम् ... ..         | २       | पापिनं प्रति प्रश्नादि ... ..        | २३      |
| प्रायश्चित्तपदस्य योगार्थः ... ..  | १       | प्रायश्चित्तोपदेशः ... ..            | १       |
| प्रायश्चित्तस्य नैमित्तिकत्वं      |         | उपदेशकत्वे प्रायश्चित्तम् ... ..     | २४      |
| काम्यत्वं च ... ..                 | १       | दुर्वलेऽनुग्रहः ... ..               | १       |
| प्रायश्चित्तेऽधिकारः ... ..        | ३       | प्रायश्चित्तेतिकर्तव्यता ... ..      | २५      |
| शुद्धस्य विशेषः ... ..             | १       | स्त्रीशुद्ध्योः प्रतिनिधिविचारः      | २६      |
| स्त्रीणां व्यभिचारजानां चाधिकारः   | ४       | शुद्धे पञ्चगव्यम् ... ..             | २७      |
| क्षत्रियादिषु पादोनादि ... ..      | १       | वपनम् ... ..                         | १       |
| आश्रमिणां विशेषः ... ..            | ५       | तत्र सधवानां विशेषः ... ..           | २८      |
| बालस्य विशेषः ... ..               | १       | वपनप्रकारः ... ..                    | १       |
| उपनयनादवाक् ... ..                 | ६       | वपनकालापवादादि ... ..                | २९      |
| प्रयोजकपित्रादीनां फलम् ... ..     | ७       | वपनाभावे व्रतद्वैगुण्यम् ... ..      | ३०      |
| औषधाद्युद्देशे न दोषः ... ..       | १       | भस्मस्नानम् ... ..                   | १       |
| मरणफलकमन्युत्पादने ... ..          | ८       | गोमयस्नानम् ... ..                   | ३१      |
| निमित्तिदोषापवादः ... ..           | १       | मृत्तिकास्नानम् ... ..               | १       |
| आततायिवधे दोषाभावः ... ..          | ९       | वारिस्नानम् ... ..                   | ३२      |
| आततायिलक्षणम् ... ..               | १       | पञ्चगव्यस्नानम् ... ..               | ३३      |
| आततायिविप्रवधे ... ..              | १०      | प्रायश्चित्ताचरणपर्यन्तं धर्माः      | १       |
| कामाकामकृतप्रायश्चित्तव्यवस्था     | १       | होमजपादिविधिः ... ..                 | ३४      |
| तत्रप्रसङ्गलक्षणम् ... ..          | १३      | ब्राह्मणभोजनादि ... ..               | ३५      |
| प्रायश्चित्तातिदेशः ... ..         | १       | अशक्तौ प्रायश्चित्तमन्यद्वाराकार्यम् | ३६      |
| अतिदेशोऽर्द्धादिन्यवस्था ... ..    | १६      | व्रतभङ्गे प्रायश्चित्तम् ... ..      | १       |



| विषयः                                      | पृष्ठम् | विषयः                                 | पृष्ठम् |
|--|---------|---------------------------------------|---------|
| प्रायश्चित्तप्रयोगः ... ..                 | ३७      | निर्गुणषण्डादिविप्रविषये ... ..       | ७३      |
| कृच्छ्रादिस्वरूपम् ... ..                  | ४१      | पतितविप्रवधे ... ..                   | ७३      |
| प्राजापत्यः ... ..                         | ४२      | कामतो विप्रवधे ... ..                 | ७३      |
| कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ... ..                  | ४३      | क्षत्रियादीनां विशेषः ... ..          | ७२      |
| पराकः ... ..                               | ४३      | पतिताग्निषु विशेषः ... ..             | ७३      |
| मासोपवासकृच्छ्रः ... ..                    | ४३      | पतितस्य सन्ध्यावन्दनम् ... ..         | ७३      |
| यावककृच्छ्रः ... ..                        | ४३      | ब्रह्महत्याव्रतातिदेशः ... ..         | ७३      |
| तप्तकृच्छ्रः ... ..                        | ४३      | आत्रेय्यादिवधे ... ..                 | ७३      |
| ब्रह्मकृच्छ्रः ... ..                      | ४४      | आत्रेयीस्त्रीलक्षणम् ... ..           | ७३      |
| पञ्चगव्यहोमादि ... ..                      | ४५      | सवनस्थक्षत्रियादिवधे ... ..           | ७४      |
| कपिलादिलक्षणानि ... ..                     | ४५      | श्रोत्रियवधे ... ..                   | ७५      |
| सान्तपनम् ... ..                           | ४६      | विप्रे दण्डोद्यमादौ ... ..            | ७५      |
| महासान्तपनम् ... ..                        | ४६      | मिथ्याभिशंसने ... ..                  | ७५      |
| अतिसान्तपनम् ... ..                        | ४७      | मिथ्याभिशस्तस्य ... ..                | ७६      |
| तुलापुरुषकृच्छ्रः ... ..                   | ४७      | जातिमात्रक्षत्रियादिवधे ... ..        | ७७      |
| चान्द्रायणम् ... ..                        | ४७      | धनहर्तृप्रेतक्रियाया अकरणे ... ..     | ७७      |
| तस्य श्वमध्यादिभेदाः ... ..                | ४८      | अज्ञानादुर्वृत्तक्षत्रियादिवधे ... .. | ७७      |
| चान्द्रायणे प्रासपरिमाणम् ... ..           | ४८      | व्यभिचारोत्पन्नवधे ... ..             | ७७      |
| चान्द्रायणे एकादश्याद्युपवासनिर्णयः ... .. | ४९      | चण्डालान्त्यजादिवधे ... ..            | ७८      |
| चान्द्रायणविधिः ... ..                     | ४९      | स्त्रीवधे ... ..                      | ७९      |
| चान्द्रायणप्रयोगः ... ..                   | ५०      | ब्राह्मण्यादीनां वधे ... ..           | ७९      |
| सोमायनम् ... ..                            | ५१      | व्यभिचरितब्राह्मण्यादिवधे ... ..      | ८०      |
| प्राजापत्यादिप्रत्यान्नायाः ... ..         | ५२      | गोवधे ... ..                          | ८१      |
| सुवर्णनिष्कादिमानम् ... ..                 | ५३      | विशिष्टायां गवि ... ..                | ८२      |
| तीर्थप्रत्यान्नायाः ... ..                 | ५८      | गोगर्भवधे ... ..                      | ८३      |
| पातित्यहेतवः ... ..                        | ५९      | काष्ठलोष्टादिभिर्गोवधे ... ..         | ८३      |
| साधारणप्रायश्चित्तानि ... ..               | ६४      | दण्डलक्षणम् ... ..                    | ८४      |
| महापापसाधारणप्रायश्चित्तानि ... ..         | ६६      | रोधबन्धादिना विपत्तौ ... ..           | ८५      |
| पापभेदाः ... ..                            | ६८      | औषधादिना विपत्तौ ... ..               | ८५      |
| ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम् ... ..           | ७०      | ग्रामदाहादौ ... ..                    | ८६      |
| जातिमात्रविप्रवधे ... ..                   | ७०      | अतिदाहादौ ... ..                      | ८६      |
|  |         | शूद्रभक्षादौ ... ..                   | ८८      |



( ५ )

| विषयः                             | पृष्ठम् | विषयः                           | पृष्ठम् |
|-----------------------------------|---------|---------------------------------|---------|
| वृषवधे ... ..                     | ९०      | ब्रह्मचारिणो मधुमांसभक्षणे ...  | ११३     |
| गजादिवधे ... ..                   | ९१      | शरीरमलभक्षणे ... ..             | ११४     |
| सिंहव्याघ्रादिवधे ... ..          | ९२      | केशादिभक्षणे ... ..             | ११५     |
| सर्पवधे ... ..                    | ९२      | क्रियादुष्टभक्षणे ... ..        | ११५     |
| खरमार्जारदिवधे ... ..             | ९२      | उच्छिष्टभक्षणे ... ..           | ११६     |
| हंसबलाकादिवधे ... ..              | ९६      | पीतोच्छिष्टपाने ... ..          | ११६     |
| सास्थिनिरस्थप्राणिवधे ...         | ९६      | स्त्रीणामुच्छिष्टभोजने ... ..   | ११७     |
| आत्मघाते ... ..                   | ९७      | स्त्रीभिः सह भोजने ... ..       | ११७     |
| आत्मघाताध्यवसाये ... ..           | ९७      | उच्छिष्टापवादः ... ..           | ११८     |
| वैधं मरणमध्यवसाय त्यागे ...       | ९८      | आपदि शुद्रगृहभोजने ... ..       | ११८     |
| अनुगमनान्नितृत्तौ ... ..          | ९८      | दीपोच्छिष्टभक्षणे ... ..        | ११८     |
| आत्मघातिप्रेतक्रियायाम् ...       | ९९      | श्राद्धभोजने ... ..             | ११८     |
| अपमृत्यौ ... ..                   | ९९      | अनुक्तप्रायश्चित्तविषये ...     | १२०     |
| ऊर्ध्वोच्छिष्टादिमरणे ... ..      | १००     | आमश्राद्धे ब्रह्मौदनादौ च ...   | १२०     |
| पर्युषितशवदाहे ... ..             | १००     | संस्कारान्नभोजने ... ..         | १२१     |
| द्विजस्य शुद्रप्रेतानुगमने ... .. | १०१     | हस्तदत्तादिभक्षणे ... ..        | १२१     |
| सुरापाने ... ..                   | १०१     | पर्यायदत्तान्नभोजने ... ..      | १२१     |
| सुरालक्षणम् ... ..                | १०१     | शुद्रहस्तभोजनादौ ... ..         | १२२     |
| पानशब्दार्थविचारः ... ..          | १०३     | वृथापाकान्नभक्षणे ... ..        | १२२     |
| कामतः स्रुत्पाने ... ..           | १०४     | पङ्क्तौ एकेन पात्रत्यागे ...    | १२२     |
| अज्ञानतः स्रुत्पाने ... ..        | १०४     | निन्दितपङ्क्तिभोजने ... ..      | १२३     |
| अपर्युषितमद्यपाने ... ..          | १०५     | अभोज्यान्नाः ... ..             | १२३     |
| सुरासंस्पृष्टद्रव्यभक्षणे ... ..  | १०५     | अभोज्यान्नापवादाः ... ..        | १२४     |
| अभक्ष्यभक्षणे ... ..              | १०५     | रजकाद्यन्ने ... ..              | १२५     |
| तमाखुभन्नादिभक्षणे ... ..         | १०५     | कापालिकांने ... ..              | १२६     |
| लुण्ठनादिभक्षणे ... ..            | १०६     | चाण्डालान्ने ... ..             | १२६     |
| गृह्णनपदार्थनिर्णयः ... ..        | १०६     | म्लेच्छादिभिर्बलाद्भोजितस्य ... | १२७     |
| अनिर्देशाया गोः क्षीरपाने ...     | १०९     | आशौच्यन्ने ... ..               | १२८     |
| उष्ट्रादिक्षीरपाने ... ..         | १०९     | म्लेच्छादीनां पुष्करिणीजलपाने   | १२९     |
| कपिलाक्षीरपाने शुद्रस्य ... ..    | ११०     | अन्त्यजभाण्डजलपाने ... ..       | १२९     |
| मांसभक्षणे ... ..                 | ११०     | शुद्रोदकपाने ... ..             | १३०     |
| नरादिमांसभक्षणे ... ..            | १११     | प्रपादिजलपाने ... ..            | १३०     |
| कचिन्मांसभक्षणानुज्ञा ... ..      | १११     |                                 |         |



( ६ )

| विषयः                                | पृष्ठम् | विषयः                             | पृष्ठम् |
|--------------------------------------|---------|-----------------------------------|---------|
| संसर्गदुष्टभक्षणे ... ..             | १३१     | कुम्भभ्रूणादिमानम् ... ..         | १४६     |
| रजस्वलादिस्पृष्टभक्षणे ... ..        | "       | देवद्रव्यापहारे ... ..            | १४७     |
| श्वादिस्पृष्टभोजने ... ..            | "       | वृत्त्युच्छेदे ... ..             | "       |
| पाकोत्तरं केशकीटादिपाते ... ..       | १३२     | स्तेयापवादः ... ..                | "       |
| चाण्डालादिदृष्टे ... ..              | "       | अगम्यागमने ... ..                 | १४८     |
| तत्स्पृष्टभक्षणे ... ..              | "       | गुरुतल्पगमने ... ..               | "       |
| ह्नीबादिदृष्टे ... ..                | "       | व्यभिचरितसर्वणमातरि ... ..        | १४९     |
| काकादिस्पृष्टापवादः ... ..           | १३३     | जनन्यतिरिक्तगुरुभार्यायाम् ..     | "       |
| अस्थ्यादिदूषितावाशने ... ..          | "       | शूद्रस्य विप्रागमने ... ..        | १५०     |
| शवदूषितजलपाने ... ..                 | "       | गुरुभुक्तासु साधारणस्त्रीष्वपवादः |         |
| शवदूषिते स्नानमात्रे ... ..          | १३४     | भगिन्यादिगमने ... ..              | "       |
| गुणदुष्टाशने ... ..                  | "       | अन्त्यावसायिनः ... ..             | १५१     |
| उद्धृतस्नेहादिषु ... ..              | १३५     | राज्ञीप्रव्रजितादिगमने ... ..     | १५२     |
| पर्युषितापवादः ... ..                | १३६     | चण्डाल्यादिगमने ... ..            | "       |
| अहुताग्नभोजने ... ..                 | "       | स्तुषादिगमने ... ..               | १५३     |
| शूद्रभाजनादौ ... ..                  | "       | भ्रातृभार्यागमने ... ..           | "       |
| भिन्नभाण्डापवादः ... ..              | "       | आचार्योपाध्यायादिभार्यागमने       | १५४     |
| वटार्कादिपत्रेषु भोजने ... ..        | "       | सखिभार्याश्वभ्रादिगमने ... ..     | १५५     |
| कालदुष्टाशने ... ..                  | १३७     | क्षत्रियवैश्यादिस्त्रीगमने ... .. | १५७     |
| अपोशनमकृत्वा भोजने ... ..            | "       | अनुपभुक्तागमने ... ..             | "       |
| यज्ञोपवीतं विना भोजने ... ..         | "       | व्यभिचरितक्षत्रियादिगमने ... ..   | "       |
| भुञ्जानस्य रेतोविष्मूत्राद्युत्सर्गे | "       | स्वैरिणीगमने ... ..               | १५८     |
| स्नाननिमित्ते सत्यस्नातभोजने         | १३८     | बन्धकीगमने ... ..                 | "       |
| स्थितप्रह्लादिभोजने ... ..           | १३९     | स्वैरिणीबन्धकयोर्लक्षणम् ... ..   | १५९     |
| वाग्दुष्टभावदुष्टाशने ... ..         | "       | सर्वत्र गर्भोत्पत्तौ ... ..       | "       |
| सुवर्णस्तेये ... ..                  | १४०     | प्रातिलोभ्यव्यवाये ... ..         | १६०     |
| कामतः सुवर्णस्तेये ... ..            | १४३     | रजस्वलागमने ... ..                | १६१     |
| सुवर्णस्तेयसमेष्टु ... ..            | १४४     | तत्र दिनभेदाद्विशेषः ... ..       | १६२     |
| गुरुष्वृक्षश्वादिहरणे ... ..         | १४५     | अन्त्यजागमने ... ..               | १६३     |
| अल्पमूल्यरत्नादिहरणे ... ..          | "       | अन्त्यजाः ... ..                  | "       |
| अन्यहरणे ... ..                      | १४६     | स्त्रीणां व्यभिचारे ... ..        | १६५     |



( ७ )

| विषयः                          | पृष्ठम् | विषयः                                   | पृष्ठम् |
|--------------------------------|---------|---|---------|
| गर्भोत्पत्तौ ... ..            | १६८     | उच्छिष्टस्य मयादिस्पर्शे ...            | २०२     |
| गर्भिण्या व्यभिचारे ... ..     | १६९     | उच्छिष्टस्य पुरीषस्पर्शे ...            | २०४     |
| अन्त्यजादिगमने ... ..          | १७२     | उच्छिष्टस्य चाण्डालस्पर्शे ...          | २०५     |
| पशुगमने ... ..                 | १७३     | द्रव्यहस्तस्योच्छिष्टस्पर्शे ...        | २०५     |
| व्रतलोपे ... ..                | १७६     | उच्छिष्टस्य मूत्रादिकरणे ...            | २०५     |
| स्वप्ने रेतस उत्सर्गे ... ..   | १७६     | उच्छिष्टस्य सूर्यादिदर्शने ...          | २०६     |
| वानप्रस्थयत्यो रेतउत्सर्गे ... | १७७     | नीलीवस्त्रपरिधाने ...                   | २०६     |
| जीसम्भोगमन्तरेण रेतउत्सर्गे    | १७७     | रुद्रनिर्माल्यस्पर्शे ...               | २०७     |
| नैष्ठिके विशेषः ... ..         | १७७     | रजस्वलाया अस्पृश्यस्पर्शे ...           | २०७     |
| वेदव्रतलोपे ... ..             | १७८     | रजस्वल्योः सपत्न्योः स्पर्शे ...        | २०७     |
| परिवेष्टने ... ..              | १७९     | असपत्न्योः सवर्णयोः स्पर्शे ...         | २०७     |
| देशान्तगते विशेषः ... ..       | १८१     | असवर्णस्पर्शे ...                       | २०७     |
| अग्नेदिधिषुदिधिष्वोः परिणयने   | १८२     | पतितचाण्डालादिस्पर्शे ...               | २०८     |
| पर्याहितपर्याधानोः ... ..      | १८३     | उपवासासमर्थायाम् ...                    | २०९     |
| संसर्गप्राप्यधितानि ... ..     | १८४     | चाण्डालेन सहैकवृक्षाधारोहणे..           | २१०     |
| संसर्गभेदाः ... ..             | १८४     | भोजनकाले श्वान्त्यजादिस्पर्शे...        | २१०     |
| तत्र प्राप्यधितम् ... ..       | १८५     | उच्छिष्टयोः परस्परं स्पर्शे ...         | २११     |
| पतितस्वामिकाजभोजने ... ..      | १८५     | उच्छिष्टद्विजसंस्पर्शे ...              | २११     |
| पतितोच्छिष्टभक्षणे ... ..      | १८५     | भोजनकाल रजस्वलान्तरं                    | २११     |
| निषिद्धस्पर्शे ... ..          | १८५     | स्पृष्ट्वा भोजने ...                    | २११     |
| चाण्डालादिस्पर्शे ... ..       | १८५     | चाण्डालदर्शने ...                       | २१२     |
| नमलक्षणम् ... ..               | १८५     | भ्रादिदर्शने ...                        | २१२     |
| ऋग्यादश्वादिस्पर्शे ... ..     | १८५     | आशौचिस्पर्शे ...                        | २१२     |
| कापालिकादिस्पर्शे ... ..       | १८५     | आशौचिनं स्पृष्ट्वा भोजनादौ              | २१२     |
| वायसादिस्पर्शे ... ..          | १८५     | आशौचिस्पर्शे स्नानात्प्राग्भोजोदर्शने.. | २१२     |
| रात्रौ स्नानप्राप्तौ ... ..    | १८५     | बन्धुमरुप्रवणादौ ...                    | २१२     |
| शिक्षोर्विशेषः ... ..          | १८५     | रजस्वलायाः स्नाने विशेषः...             | २१३     |
| मलेच्छाद्यैः सम्भाषणे ... ..   | १८५     | परस्परस्पर्शे ...                       | २१३     |
| चाण्डालादुपदेशग्रहणे ... ..    | १८५     | अचेतनव्यवधाने ...                       | २१३     |
| चाण्डालसङ्गरे ... ..           | १८५     | चेतनव्यवधाने ...                        | २१३     |
| तदुच्छिष्टादिस्पर्शे ... ..    | २०१     |   |         |



( ८ )

| विषयः                                | पृष्ठम् | विषयः                                    | पृष्ठम् |
|--------------------------------------|---------|--|---------|
| एकशाखारोहणे ... ..                   | २१४     | कौमारदारत्यागे ... ..                    | २३२     |
| स्पर्शप्रायश्चित्तापवादः ... ..      | १       | दुमच्छेदे ... ..                         | १       |
| चैत्यवृक्षादिस्पर्शे ... ..          | २१५     | व्यसनेषु ... ..                          | २३४     |
| आदिदंशे ... ..                       | १       | शूद्रसेवादौ ... ..                       | १       |
| नाभेरुर्ध्वं दंशे ... ..             | १       | अनाश्रमे ... ..                          | १       |
| ब्रह्मचारिणः आदिदंशे ... ..          | २१६     | अभिचारे ... ..                           | २३५     |
| व्रतस्थस्य श्वदंशे ... ..            | १       | असत्प्रतिग्रहे ... ..                    | १       |
| ब्राह्मणरहितप्राप्ते श्वदंशे ... ..  | १       | दुष्टप्रतिग्रहनिषेधः ... ..              | १       |
| स्त्रीणां विशेषः ... ..              | २१७     | तीर्थतीरक्षेत्रादिलक्षणम् ... ..         | २३७     |
| व्रतस्थस्त्रीविषये ... ..            | १       | प्रतिगृहीतद्रव्योत्सर्गः ... ..          | २३९     |
| रजस्वलायां विशेषः ... ..             | १       | कौशीलव्ये ... ..                         | २४०     |
| शुनाप्रातादिषु ... ..                | १       | गुरोर्निर्वन्धे ... ..                   | १       |
| व्रणे कम्प्युत्पत्तौ ... ..          | २१८     | जातिभ्रंशकराणि, तेषु प्रायश्चित्तं च २४२ |         |
| वर्णभेदेन प्रायश्चित्तभेदः ... ..    | १       | सङ्करीकरणानि ... ..                      | १       |
| नाभेरुपरि विशेषः ... ..              | २१९     | अपात्रीकरणानि ... ..                     | १       |
| उपपातकानि ... ..                     | १       | मलिनीकरणानि ... ..                       | १       |
| गोवधे ... ..                         | २२०     | तेषु प्रायश्चित्तम् ... ..               | २४४     |
| व्रात्यतायाः ... ..                  | १       | प्रकीर्णानि प्रायश्चित्तानि ... ..       | १       |
| ऋणानपाकरणे ... ..                    | २२२     | वेदविज्ञावने ... ..                      | १       |
| अनाहिताग्नितायाम् ... ..             | २२३     | नित्यकर्माकरणे ... ..                    | १       |
| अविक्रये विक्रये ... ..              | २२४     | नित्ययज्ञाकरणे ... ..                    | १       |
| अविक्रयाणि ... ..                    | २२६     | पञ्चमहायज्ञाकरणे ... ..                  | २४६     |
| गोविक्रये निन्दा ... ..              | १       | ऋतौ पत्न्यगमने ... ..                    | १       |
| भृतकाध्यापकभृतकाध्यापितयोः २२७       |         | पन्त्याः पत्न्यनुसरणे ... ..             | १       |
| पुत्रविक्रये ... ..                  | २२८     | इन्द्रधनुर्दर्शनादौ ... ..               | २४७     |
| कन्याविक्रये ... ..                  | १       | अनापदि भैक्षचर्ये ... ..                 | १       |
| याज्ययाजने ... ..                    | १       | पक्वौ विषमदाने ... ..                    | १       |
| डालादिस्मिधौ श्रुत्यादिपाठे २२९      |         | दण्डयोत्सर्गे ... ..                     | २४८     |
| पितृमातृसुताचार्यभार्यात्यागे ... .. | १       | क्षत्रियाद्यभिवादने ... ..               | १       |
| कन्यासन्दूषणे ... ..                 | १       | वेवादीनामभिमुखं धीवने ... ..             | १       |
| अग्नित्यागे ... ..                   | २३०     | मण्डपोद्यानदेवतागारादिभेदने ... ..       | १       |



( ९ )

| विषयः                                     | पृष्ठम् | विषयः                                | पृष्ठम् |
|---|---------|--------------------------------------|---------|
| भक्तोद्धारदि ... ..                       | २४९     | गोयुक्त्यानादिषु मैथुने... ..        | २४      |
| पत्न्या भर्तुरतिक्रमे ... ..              | २५      | भार्या त्वं मात्रा सदृशीत्युक्त्वा   |         |
| पर्वणि मैथुने ... ..                      | २५      | पुनर्गमने ... ..                     | २५९     |
| वसने ... ..                               | २५      | वस्तिकर्मणि ... ..                   | २५      |
| यज्ञोपवीतादिनाशे ... ..                   | २५      | देवालयशिलादिना स्वगृहकरणे            | २५      |
| अभ्युदितादिलक्षणम् ... ..                 | २५०     | वानप्रस्थयत्योर्व्रतभङ्गे ... ..     | २६०     |
| संस्कारातिपतौ ... ..                      | २५      | व्रतोपव्रतानि ... ..                 | २५      |
| गर्भाधानाकरणे ... ..                      | २५१     | जले प्रतिश्चिम्बदर्शने ... ..        | २५      |
| क्षुतादौ ... ..                           | २५      | प्रतिश्रुत्यावृत्तौ ... ..           | २५      |
| संवत्सरं क्रियातिपाते ... ..              | २५      | भोजनकालीनमौनत्यागे ... ..            | २६१     |
| निमग्नं गृहीत्वा तस्यागे ... ..           | २५२     | पशुवन्मुखेन जलपाने ... ..            | २६      |
| अनृतवचनादौ ... ..                         | २५      | असपिण्डैः सह रोदने ... ..            | २६      |
| निषिद्धदेशगमने ... ..                     | २५      | प्रेतालङ्करणे ... ..                 | २६      |
| कर्मनाशाजलस्पर्शादौ ... ..                | २५      | प्रेतानुगमने ... ..                  | २६      |
| खरयानाचारोद्गणे ... ..                    | २५३     | ब्राह्मणस्य शूद्रप्रेतानुगमने ... .. | २६२     |
| खरोप्राचारोद्गणे ... ..                   | २५३     | कन्याया विवाहात् पूर्वं              |         |
| दिवा मैथुनादौ ... ..                      | २५३     | रजोदर्शने ... ..                     | २५      |
| अनुदकमूत्रपुरीषकरणे ... ..                | २५४     | श्राद्धोपवासदिने दन्तधावने... ..     | २५      |
| अप्यु मूत्रपुरीषोत्सर्गे ... ..           | २५४     | पतितत्यागविधिः ... ..                | २६३     |
| स्वपुरीषदर्शनादौ ... ..                   | २५५     | निनयनविधिः ... ..                    | २६३     |
| यज्ञोपवीतं विना मूत्रपुरीषोत्सर्गे ... .. | २५५     | स्त्रीत्यागे विशेषः ... ..           | २६४     |
| पल्लशासनयानाचारोद्गणे ... ..              | २५६     | रहस्यप्रायश्चित्तम् ... ..           | २६५     |
| निषिद्धकाष्ठेन दन्तधावने ... ..           | २५६     | साधारणप्रायश्चित्तानि ... ..         | २६६     |
| अन्तरागमने ... ..                         | २५६     | ब्रह्महादिषु ... ..                  | २७०     |
| ब्रह्मचारिधर्मलोपे ... ..                 | २५६     | सुरापाने ... ..                      | २७२     |
| क्षत्रियस्य रणे पृष्ठदर्शने ... ..        | २५७     | सुवर्णस्तेये ... ..                  | २७३     |
| गृहीतव्रतभङ्गे ... ..                     | २५७     | गुप्तलपगमने ... ..                   | २७४     |
| ब्राह्मणस्य क्षत्रियादिवृत्त्या           |         | उपपापादिषु ... ..                    | २७५     |
| धनार्जने ... ..                           | २५८     | अभक्ष्यभक्षणे ... ..                 | २७६     |
| स्त्रीधनोपजीवने ... ..                    | २५८     | सर्वपापेषु ... ..                    | २७७     |
| भार्याया मुखमैथुने ... ..                 | २५८     | उपसंहारः ... ..                      | २७८     |



## प्रायश्चित्तसूत्रे प्रमाणत्वेनोपात्तग्रन्थग्रन्थकुत्रामानि ।

|                 |                    |                    |
|-----------------|--------------------|--------------------|
| अक्षिराः        | गौतमः              | प्रचेताः           |
| अग्निः          | चतुर्विंशतिमतम्    | प्रजापतिः          |
| अपरार्कः        | च्यवनः             | प्रभासखण्डभू       |
| आचारमतम्        | छागलेयः            | प्रयोगपारिजातः     |
| आचारमाधवीयम्    | जमदग्निः           | प्राञ्चः           |
| आदिपर्व         | जातुकर्ण्यः        | प्राजापत्यः        |
| आपस्तम्बः       | जाबालः             | प्रायश्चित्तविवेकः |
| आश्वलायनः       | जाबालिः            | वादर्शायणः         |
| उशनाः           | जिकनः              | वौधायनः            |
| ऋग्विधानम्      | ज्येष्ठभ्रातृचरणाः | बृहन्नारदीयम्      |
| ऋग्वेदः         | टोडरानन्दः         | बृहन्मनुः          |
| ऋग्यशुक्लः      | तैत्तिरीयकम्       | बृहत्संवेतः        |
| कण्वः           | दक्षः              | बृहदयमः            |
| कल्पतरुः        | दानधर्मः           | बृहद्वसिष्ठः       |
| कलित्रयनिर्णयः  | देवलः              | बृहद्विष्णुः       |
| कश्यपः          | द्वैतनिर्णयः       | बृहद्विष्णुः       |
| कात्यायनः       | धर्मप्रकाशः        | बृहद्विष्णुः       |
| कालिकापुराणम्   | धर्मविहृतिः        | बृहस्पतिः          |
| कार्णाजिनिः     | धौम्यः             | ब्रह्मर्षिः        |
| कुमारः          | नारदः              | ब्रह्मपुराणम्      |
| कोशः            | निबन्धकृतः         | ब्रह्माण्डपुराणम्  |
| कौथुमब्राह्मणम् | पद्मपुराणम्        | भवदेवः             |
| कौर्मम्         | पराशरः             | भगवद्गीता          |
| ऋतुः            | पारस्करः           | भरद्वाजः           |
| गयदेवलः         | पितामहचरणा         | भर्तृयज्ञः         |
| गरुडपुराणम्     | पुराणम्            | भविष्यपुराणम्      |
| गार्ग्यः        | पुलस्त्यः          | भामहजगृह्यम्       |
| शालवः           | पैटीवसिः           | मदनः               |



( ११ )

|                   |                   |                  |
|-------------------|-------------------|------------------|
| मदनपारिजातः       | वराहपुराणम्       | शातातपः          |
| मदनरत्नम्         | वसिष्ठः           | शिवपुराणम्       |
| मध्यमाङ्गिराः     | वह्निपुराणम्      | शूलपाणिः         |
| मनुः              | वाचस्पतिमिश्राः   | शौनकः            |
| मरीचिः            | वायवीयम्          | शङ्कराचार्याः    |
| महाङ्गिराः        | विज्ञानेश्वरः     | शङ्खः            |
| महाभारतम्         | विश्वामित्रः      | शाण्डिल्यः       |
| महार्णवः          | विष्णुः           | श्राद्धमयूखः     |
| माधवः             | विष्णुधर्मोत्तरम् | श्राद्धहेमाद्रिः |
| मार्कण्डेयः       | विष्णुपुराणम्     | श्रीपतिः         |
| मार्कण्डेयपुराणम् | विष्णुरहस्यम्     | श्रुतिः          |
| मिताक्षरा         | वृद्धगार्ग्यः     | षट्त्रिंशन्मतम्  |
| मेघातिथिः         | वृद्धपराशरः       | समयमयूखः         |
| यमः               | वृद्धयाज्ञवल्क्यः | साम्बः           |
| याज्ञवल्क्यः      | वृद्धवसिष्ठः      | सुमन्तुः         |
| योगयाज्ञवल्क्यः   | वृद्धविष्णुः      | सुतसंहिता        |
| योगी              | वृद्धशातातपः      | सुत्रम्          |
| योगीश्वरः         | वृद्धहारीतः       | संवर्तः          |
| लघुपराशरः         | वैवस्वतः          | संस्कारमयूखः     |
| लघुविष्णुः        | वैशम्पायनः        | स्मृत्यन्तरम्    |
| लघुहारीतः         | व्यवहारमयूखः      | स्मृत्यर्थसारः   |
| लिङ्गपुराणम्      | व्याघ्रः          | स्मृतिसङ्ग्रहः   |
| लिखितः            | व्याघ्रपादः       | हरदत्तः          |
| लीलावती           | व्यासः            | हारीतः           |
| लौगाक्षिः         | शाटघायनिः         | हेमाद्रिः        |

| पृ. | पं. | अशुद्धम्            | शुद्धम्             |
|-----|-----|---------------------|---------------------|
| १०६ | २५  | शुनादिसाहचर्यात्    | लशुनादिसाहचर्यात्   |
| २५२ | २१  | कर्मनाशाजलस्पर्शादौ | कर्मनाशाजलस्पर्शादौ |
| २५२ | २२  | कर्मनाशाजलस्पर्शात् | कर्मनाशाजलस्पर्शात् |
| २६३ | १८  | नियमनविधिमाह        | नियमनविधिमाह        |







श्रीनीलकण्ठभट्टकृते भगवन्तभास्करे

## प्रायश्चित्तमयूखः ।

[ दशमः ]

अनन्तयज्ञेश्वरकृतया ' तत्त्वदर्शिन्या ' टिप्पण्या विभूषितः ।

नमामि भास्वत्पदपङ्कजं तत्  
 श्रीनीलकण्ठोऽहमथ प्रकुर्वे ।  
 स्मृत्योपदेशान् गुरुशङ्करस्य  
 विनिर्णयं पापविशुद्धिहेतुम् ॥  
 प्रतारकैरादृतमत्र किञ्चित्  
 मया तु निर्मूलतया तदुज्झितम् ।  
 ऊनोक्तातो न हि तत्र काचित्  
 खपुष्पहीनापचितिर्न हीयते ॥

भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिन् शिष्टसम्भते च वतः ।  
 प्रायश्चित्तमयूखः प्रतन्यते नीलकण्ठेन ॥

पापविशुद्धिहेतुत्वं प्रायश्चित्तस्याह याज्ञवल्क्यः—( ३।२१९-२० )

‘ विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।’ इति ।

१ कचिदत्र 'जज्ञे पितामहतनोः' इत्यादयः श्लोका दृश्यन्ते, ते च आचार-समय-  
 आद्व-प्रतिष्ठा-मयूखारम्भेषु प्रकाशिता एवेत्याग्नेडनभयान्न संगृहीताः ।



—अनिग्रहादिति पर्युदाससंग्रहार्थम् । विहिताननुष्ठाननिषिद्ध-  
सेवननिमित्ते विहितं कर्म प्रायश्चित्तम् । प्रारब्धपापनाशार्थं तु कर्मणि  
तत्पदं गौणम् । माधवविज्ञानेश्वरावप्येवम् ।

यत्तु-शूलपाणीयटोडरानन्दयोः—‘पापनाशकं कर्म प्रायश्चित्तम्’ इति;  
तत्र, तुलापुरुषादावतिव्याप्तेः, कृत्वङ्गश्रेषप्रायश्चित्तेऽव्याप्तेश्च ।

एवं प्रायश्चित्तपदस्य रूढत्वे योगमभ्याहांगिराः—

‘प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते ।

तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥’

( म. स्मृ. ११।४७-प्र. ५ ) इति ।

यत्तु पक्षधरमिश्रभक्तूपाध्यायटोडरानन्दकृतः—

‘प्रायः पापं विज्ञानीयाश्चित्तं तस्य विशोधनम्’ ।

इति पेटुः, तत्राकरश्चिन्त्यः ॥

इदं च प्रायश्चित्तं निमित्ते विधानान्नैमित्तिकम्, पापनाशकतया  
काम्यं च । अत एव बृहस्पतिः—

‘प्रायश्चित्तं यत्क्रियते तन्नैमित्तिकमुच्यते ।’ इति ।

१ ‘इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।’ (म. ४।१६) इतीन्द्रियप्रसक्तेरपि  
निषिद्धत्वात् निन्दितसेवनग्रहणेनैव तद्वहणसिद्धेः किमर्थं ‘अनिग्रहाच्च’ इति पृथगु-  
पादानम् ? इत्याशङ्कावारणार्थमाह—पर्युदास इति । पर्युदासः प्रत्ययातिरिक्तेन  
धानुना वा नाम्ना वा नञः सम्बन्धः । यथा—‘नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं’ इत्यत्र  
‘तस्य व्रतं’ इत्युपक्रमात् कश्चित्कर्तव्य एवार्थो वक्तव्यः । तदुक्तौ च न नञः  
प्रत्ययेन सम्बन्धो घटते, कर्तव्यार्थोक्तोरनुपपत्तेरिति तस्मादवतारितो नवीक्षतिना  
सम्बध्य लक्षणया विधानयोरयमीक्षणविरोधिनं ‘नेक्षे’ इत्यनीक्षणसङ्कल्परूपमर्थं  
प्रतिपादयति; तथाऽत्र ‘व्रतानीमानि धारयेत्’ (म. ४।१६) इति व्रतस्रन्दा-  
धिकारात् नञ्श्रवणाच्चेन्द्रियप्रसक्तिप्रतिषेधकः सङ्कल्पो विधीयते । स च भावरूप  
इति पृथक् संगृह्यत इति भावः ।



जाबालः—

‘काम्यं नैमित्तिकं चातः प्रायश्चित्तमिति स्थितिः ।’ इति ।

एवं च सर्वाङ्गोपसंहारासामर्थ्येऽप्यधिकारोऽविरुद्धः ॥

अत्राधिकारस्त्वैवर्णिकानां तावद्विद्वत्वादप्रतिबद्ध एव । शूद्रस्याप्याहुः  
शङ्खलिखितौ—

‘कृच्छ्राणि द्विजातीनामेव, नावरस्य, कामं धर्मेप्सोरप्रतिषिद्धः  
साधारणो हि धर्मो नियमश्च’ इति ।

—कृच्छ्राणि काम्यानि । धर्मेप्सोः प्रायश्चित्तार्थिनः ।

याज्ञवल्क्योऽपि—( ३।२६२ )

‘शूद्रोऽधिकारहीनोऽपि कालेनानेन शुद्ध्यति ।’ इति ।

—अधिकारहीनो जपहोमाधिकारशून्यः । कालः प्रायश्चित्ताधि-  
करणम् । तस्य विशेषमाहाङ्गिराः—

‘तस्माच्छूद्रं समासाद्य सदा धर्मपथे स्थितम् ।

प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम् ॥’ इति ।

स एव—

‘शूद्रः कालेन शुद्ध्येत गोब्राह्मणहिते रतः ।

दानैर्वाऽप्युपवासैर्वा द्विजशुश्रूषया तथा ॥’ इति ।

यत्तु मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे—( ३।२६२ )

‘कृच्छ्राण्येतानि कार्याणि सदा वर्णत्रयेण तु ।

कृच्छ्रेष्वेतेषु शूद्रस्य नाधिकारो विधीयते ॥’ इति;

१ अतः— पापक्षयकामनावदधिकारिकर्तव्यत्वेन, पापनिश्चयवदधिकारिकर्तव्य-  
त्वेन च काम्यत्वं नैमित्तिकत्वं चेति द्वयोरेवावगम्यमानत्वात् जातेष्विदधिकारयोः  
संवलनम् ।—इति प्रायश्चित्ततत्त्वे । न चैकस्य कर्मणो नित्यत्वकाम्यत्वभ्यां द्वैरूप्या-  
ङ्गीकारे नित्यानित्यसंयोगविरोधः; ‘एकस्य त्वभयार्थत्वे संयोगपृथक्त्वम्’  
( पू. मी. ४।३।१ ) इति न्यायेन तस्य सुपरिहरत्वात् ।

‘प्रायश्चित्तं समं चित्तं चारयित्वा प्रदीयते । पर्वदा कार्यते यत्तु प्रायश्चित्तमिति  
स्मृतम् ॥’ अस्यार्थः— पापिनां चित्तमतिव्याकुलं भवति, तच्च परिषदा व्रताद्य-  
सुष्ठानेन प्रायश्चित्तोऽवश्यं समं स्वस्थं कार्यते, तद्व्रतं प्रायश्चित्तपदवाच्यमिति ।—प्रा.सु.  
‘प्रायस्य चित्तिचित्तयोः’ इति पारस्करादिगणे ( ६।१।१५७ ) पाठात्  
सु३। प्रा. कौ.



तत्काम्यकृच्छ्रपरम् ।

यत्तु मनुः—( १०।१२६ )

‘न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति ।

नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥’ इति;

तदर्थमाह मेधातिथिः—द्विजाधिकारिकं भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणाल्लभुना-  
दिभक्षणे पापं नाऽस्ति, विहितविवाहाद्यतिरिक्तसंस्कारं च नार्हति ।  
उषवासादावेतस्य न नित्योऽधिकारः, तदकरणान्न प्रत्ययैति । तस्मादेव  
धर्मादस्य प्रतिषेधनमपि नास्ति, करणेऽभ्युदयोऽस्त्येवेति ॥

‘वदन्ति केचिद्विद्वांसः स्त्रीणां शूद्रसमानताम् ।’ ( १।७।२१ )  
इति सूतसंहितायुक्तेः ।

‘शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ।’ (म. स्मृ. १०।४१)  
इति स्मृतेश्च, स्त्रीणां व्यभिचारजानां चाधिकारः । अत एव प्रायश्चित्त-  
मपि शूद्रवदेव । तथा च विष्णुः—

‘विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम् ।

वैश्येऽर्द्धे पादशेषं तु शूद्रजातिषु शस्यते ॥’ इति ॥

यत्तु कश्यपः—( य. स्मृ. ३।१९ )

‘विप्रार्द्धे क्षत्रियस्योक्तं तदर्द्धे वैश्यजातिषु ।

तदर्द्धमेव शूद्राणां प्रायश्चित्तं विदुर्वुधाः ॥’ इति;

तदकामकृतविषयमिति माधवः ।

यत्त्वज्जिराः—

‘पर्वद्या ब्राह्मणानां तु सा राज्ञां द्विगुणा मता ।

वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्वद्वृच्च व्रतं स्मृतम् ॥’ इति ।

अविष्ये—

‘चतुर्गुणं तु शूद्राणां पर्वदुक्ता महात्मभिः ।

पर्वद्वृच्च व्रतं प्रोक्तं शुद्धये पापकर्मणाम् ॥’ इति ।

एतच्च ‘प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः’ । ( २।२०७ ) इति  
याज्ञवल्क्योक्तेर्दण्डाधिक्यानुमितदोषगौरवात्प्रातिलोम्यकृतचतुर्विधस्य-  
रूप्यपरम् ।



‘ द्विगुणं त्रिगुणं चैव चतुर्गुणमथापि वा ।  
 क्षत्रविद्भूजातीनां ब्राह्मणस्य वधे व्रतम् ॥ ’ इति प्रजा-  
 पत्युक्तेर्विप्रवधपरं च ।

आश्रमिणां विशेषमाहाङ्गिराः—

‘ गृहस्थोक्तानि पापानि कुर्वन्स्याश्रमिणो यदि ।  
 शौचवच्छोधनं प्रोक्तमर्वाग्रहानिदर्शनात् ॥ ’ इति ।

—शौचवद्विगुणादि । तथा च मनुः—( ५।१३७ )

‘ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ।  
 त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ ’ इति ।

गृहस्थोक्तिः स्नातकोपलक्षिका । अन्यथा विधुरादेः प्रायश्चित्तमेव न  
 स्यात् । ब्रह्मनिदर्शनं तत्त्वज्ञानम् । ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं तूत्पन्नं पापं ज्ञानेनैव  
 नाशयते, ‘ ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ! ’ ( ४।३७ ) इति  
 भगवद्गीतोक्तेः ।

ब्रह्मचारिणो द्वैगुण्योक्तिः षोडशवर्षोर्ध्वम् । षोडशवर्षपर्यन्तं त्वाहां-  
 गिराः—( ल. अं. ३३ वृ. यमः ३।३ देवलः ३० आप. ३।६ )

‘ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यूनषोडशः ।  
 प्रायश्चित्ताद्धर्मर्हति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ’ इति ।

आदिपर्वणि—( १०।१७ )

‘ आचतुर्दशकाद्वर्षात्र भविष्यति पातकम् ।  
 परतः कुर्वतामेवं दोष एव भविष्यति ॥ ’ इति ।

१ अत्र पूर्वोदाहृतवचनस्य ब्रह्मचारिषु लब्धावकाशतया कथं बाधकता ? तस्मा-  
 दिह केन किंवा बाध्यमिति विनिगमनं परिभावेनीयम् । प्रा. कौ.

२ चतुर्दशादूर्ध्वं पापमस्तीति पौराणं मतमिदम् । वस्तुतस्तत्कहेतोः पुण्यपाप-  
 विभागज्ञानपर्यन्तमेव पापावृत्तिः । तेन पञ्चवर्षान्तर एव दोषो नास्तीत्यादि-  
 वचनं विद्वदभिप्रायम् । अन्यथा कलिशेषेऽल्पायुष्टेन पापाभावप्रसङ्गः स्यात् ।



अङ्गिराः—

‘अर्वाक्तु द्वादशाद्वर्षादशीतेरुर्ध्वमेव वा ।  
अर्द्धमेव भवेत्पुंसां तुरीयं तत्र योषिताम् ॥’ इति ।

अत्रोच्चावचावधितारतम्यं शक्तितो ज्ञेयम् ।

यत्तु विष्णुः—

‘स्त्रीणामर्द्धं प्रदातव्यं बृद्धानां रोगिणां तथा ।  
पादो बालेषु दातव्यः सर्वपापेष्वयं विधिः ॥’ इति;

तदुपनयनादर्वाक् ज्ञेयम् ।

शङ्खः—( वृ. यमः ३।१-२ )

‘ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च ।  
प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वाऽन्यः सुहृज्जनः ॥  
अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम् ।  
राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’ इति ।

कुमारः—

‘मद्यमूत्रपुरीषाणां भक्षणे नास्ति कश्चन ।  
दोषस्त्वा पञ्चमाद्वर्षादूर्ध्वं पित्रोः सुहृदुरोः ॥’ इति ।

गौतमः—( १।२।१ )

‘प्रागुपनयनात्कामचारकामवादकामभक्षाः’ इति ।  
‘सुरापाननिषेधस्तु जात्याश्रय इति स्थितिः ।’

इति कुमारवाक्यात् ;

‘अनुपेतस्तु यो बालो मद्यं मोहात्पिबेद्यदि ।  
कृच्छ्रत्रयं गुरुः कुर्यान्माता भ्राता तथा पिता ॥’

इति स्मृतेश्चानुपेतस्य दोषोऽस्त्येवेति विज्ञानेश्वरः ।

एतद्वचनद्वयस्य पञ्चमवर्षप्रवृत्त्युत्तरपरतयाऽप्युपपत्तेस्तत्रानुपेतस्य  
दोषः, वर्षचतुष्टयपर्यन्तं न दोष इति तु युक्तम् ।

यत्तु स्मृत्यन्तरे—( दक्षः १।३-४ )

१ जातृकर्ण्य— प्रा. सु.



‘जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समा वयः ।  
 स हि गर्भसमो ज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥  
 भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये तथानृते ।  
 तस्मिन्कालेन दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥’

इति; तन्मद्येतरपरम् ।

इदं चार्द्धपादादिपरिमाणमुपदिष्टमौलिकद्वादशाब्दिकाद्येवपेक्ष्य प्रव-  
 र्त्तते, न तु क्षत्रियादिनिमित्तकद्वैगुण्याद्यपेक्षया । ब्रह्मचारित्वादिनिमित्तकं  
 द्वैगुण्याद्यप्येवम् । अर्द्धपादद्वैगुण्यत्रैगुण्यादिविधीनामुपजीव्योपजीवक-  
 भावाभावेन परस्परानालोचनया मौलिकविधिमात्रालोचनेनैव प्रवृत्तेः ॥

प्रयोजकपित्रादीनां फलमाहापस्तंबः—( ध. सू. २।२९।१ )

‘प्रयोजयिताऽनुमन्ता कर्त्ता वेति स्वर्गनरकफलेषु कर्मसु  
 आगिनः’ इति ।

पैठीनसिः—

‘हन्ता मन्तोपदेष्टा च तथा सम्प्रतिपादकः ।

प्रोत्साहकः सहायश्च तथा मार्गानुदेशकः ॥

आश्रयः शस्त्रदाता च भक्तदाता विकर्मिणाम् ।

उपेक्षकः शक्तिमाश्रयोपेक्षकानुमोदकः ॥

अकार्यकारिणस्तेषां प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ।’

—हन्ता साक्षाद्धन्ता । मन्ताऽनुमन्ता प्रवृत्तप्रवर्त्तकः । उपदेष्टा मार्गो-  
 द्घाटनादिकृत् । सम्प्रतिपादकः पलायमानममित्रमुपरुन्धन् परेभ्यो  
 हन्तारं यो रक्षति । प्रोत्साहकः स्तावकः । सहायः सहगन्ता ।  
 अनुमोदको हन्तुर्हर्षमनुपोद्बुध्यति । भक्तपदमौषधादेरप्युपलक्षकम् ।  
 एते च निषिद्धक्रियोद्देशे सत्येव दोषभाजः, नान्यथा ।

तथा च याज्ञवल्क्यः—( यमः ५० संवर्तः १४० )

‘औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणे द्विजः ।

दीयमाने विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥’

तथा—‘दाहच्छेदशिराभेदप्रयोगैरुपकुर्वताम् ।

द्विजानां गोहितार्थं तु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’



## प्रायश्चित्तमयूखः

पराशरः—

‘कूपखाते च धर्मार्थे गृहदाहे च या मृता ।

ग्रामदाहे तथा घोरे प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’ इति ॥

औषधदाने विशेषमाह

‘औषधे तु न दोषाऽस्त स्वेच्छया तु पियेद्यदि ।

अन्यथा दीयमाने तु प्रायश्चित्तं न संशयः ॥’ इति ।

उद्देष्टुर्मरणफलकमन्यूत्पादने तु विष्णुः—(३।४६)

‘आक्रुष्टस्ताडितो वाऽपि धनैर्वाऽपि वियोजितः ।

यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥’ इति ।

तथा—‘ज्ञातिमित्रकलत्रार्थं सुहृत्क्षेत्रार्थमेव च ।’

उत्तरार्द्धं तदेव । “अयं चाक्रोशकादिनिमित्तीत्युच्यते” इति तिवन्ध-

कृतः । तेन ‘निमित्ती पादमादध्यात्’ इति पादप्रायश्चित्तमेतस्य भवति ।

या तु—‘सन्वन्धेन विना देव ! शुष्कवादेन कोपितः ।’ इति वार्षिकं  
प्रायश्चित्तं प्रक्रम्य भविष्योक्तिः; सा परिहासकृताऽऽक्रोशपरा ।

भविष्ये—

‘पुत्रः शिष्यस्तथा भार्या शासतश्चेत्प्रणश्यति ।

न शास्ता तत्र दोषेण लिप्यते राजसत्तम ! ॥’

इदं च पुत्रादीनुपक्रम्य—

‘प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ।

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नीतमांगे न बक्षसि ॥

अतोऽन्यथा तु प्रहरन् चोरस्याप्रोति कित्विषम् ॥’

इति मनुकायां ( ८।२९९-३०० ) शास्त्रौ ज्ञेयम् । अधिकशासने  
तु दोष एव । निमित्तिदोषमपवदति विष्णुः—

‘उद्दिश्य कुपितो विप्रस्तोषितः आक्येत्पुनः ।

तस्मिन्मृते न दोषोऽस्ति द्वयोरुच्छ्रावणे कृते ॥’

—तोषितो निमित्तिना । द्वयोरुच्छ्रावणे कृते न दोष इति सम्बन्धः ।

द्वयोरित्यनेकोपलक्षणम् ।

मदनस्तु—‘यस्य कस्यचिदुच्छ्रावणे कृते द्वयोराक्रोशकात्मघातयोर्दोषो  
नास्ति’ इत्याह ।



विष्णुः—

‘असम्बन्धेन यः कश्चिद्विजः प्राणान्समुत्सृजेत् ।  
तस्यैव तद्भवेत्पापं न तु यं परिकीर्तयेत् ॥’

बृहस्पतिः—

‘आकुष्ठस्तु यदाक्रोशंस्ताडितः प्रतिताडयन् ।  
हत्वाऽऽततायिनं चैव नाततायी भवेन्नरः ॥’

याज्ञवल्क्यः—( ३।२८३ )

‘कृच्छ्रत्रयं गुरुः कुर्यान्निग्रयते प्रहितो यदि ।’ इति ।

अत्र सम्प्रतिपादकाख्यानप्राहकस्य व्यापारबाहुल्यान्मौलिकमेव पादोनम् । आज्ञापार्थनादिना प्रयोजकस्यार्द्धम् । प्रवृत्तप्रवर्त्तकस्यानुमन्तुः सार्द्धपादम् ।

‘प्रयोजयित्वाऽनुमन्ता कर्त्ता वेति स्वर्गनरकफलेषु कर्मसु भागिनः ।  
यो भूय आरभते तस्मिन् फलविशेषः’ इत्यापस्तंबोक्तेः ( ध. सू. २।२९।१-२ ) । एतेषां प्रायश्चित्तेयत्तायां तु ग्रंथकारा एव प्रमाणम् ।

सुमन्तुः—

‘तिरस्कृतो यदा विप्रो हत्वाऽऽत्मानं मृतो यदि ।

निर्गुणः सहसा क्रोधाद्बृहक्षेत्रादिकारणात् ॥

त्रैवार्षिकं व्रतं कुर्यात्प्रतिलोमं सरस्वतीम् ।’

गच्छेद्वाऽपि विशुद्धयर्थं तत्पापस्येति निश्चितम् ॥’

बृहस्पतिः—

‘नाततायिवधे हन्ता किल्बिषं प्राप्नुयात्कचित् ।

विनाशार्थिनमायान्तं घातयन्नापराध्नुयात् ॥’

वसिष्ठः—( ३।१९ )

‘अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।

क्षेत्रद्वारापहारी च षडेते ह्याततायिनः ॥’

१ हत्वा इति पठित्वा आत्मानमेव खजादिना प्रहृत्येत्यर्थः— इति  
महोजिदीक्षिताः ।

२ प्रतिलोमं अन्ततो मूलपर्यन्तं सरस्वतीं नदीं गच्छेत् । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ।



अपराके व्यासः—( विष्णुः ५।१८६-८७ )

‘उद्यतांसि विषांसि च शापोद्यतकरं तथा ।

आयर्बणेन हन्तारं पिशुनं चैव राजसु ॥

भार्यातिक्रमिणं चैव विद्यात्सप्ताततायिनः ।

यशोवित्तरानन्यानाहुर्धर्माभिहारकान् ॥’

कात्यायनः—

‘अनाक्षारितपूर्वो यस्त्वपराधे प्रवर्त्तते ।

प्राणद्रव्यापहारे च प्रवृत्तस्याततायिता ॥’

—अनाक्षारितोऽनपकृतः । तेन पूर्वकृतापराधस्य मारणाद्युद्यतस्य नाततायितेति तद्वधे दोष एव । आततायिवधे दोषाभावश्च गोविप्रात-  
तायिभिन्नाविषय इति मिताक्षरापराकादौ; ‘नाततायिवधे दोषोऽन्यत्र  
गोब्राह्मणात्’ इति सुमन्तूक्तेः ।

कल्पतरौ तु— ‘आततायिन्यदोषोऽन्यत्र गोब्राह्मणात् । यदा हन्या-  
त्प्रायश्चित्तं न स्यात्’ इति पाठः ।

अत्र युगान्तरे युद्धे विप्रवधे प्रायश्चित्ताभावः, युद्धं विना हनने तु  
प्रायश्चित्तम् । कलौ तु युद्धेऽपि हनने प्रायश्चित्तम्;

‘आततायिद्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ।’

इति कलिनिषिद्धेषु पाठात् । प्रपञ्चितं चैतत् भ्रातृचरणैः कलिवर्ज्य-  
निर्णयेऽस्माभिश्च व्यवहारमयूखे । ( पृ. १४७-४८ )

आततायिवधे प्रायश्चित्तं भविष्ये—

‘हत्वा तु प्रहरन्तं वै ब्राह्मणं वेदपारगम् ।

कामतश्चेच्चरेद्वीर ! द्वादशाब्दाख्यमुत्तमम् ॥’

अथ कामाकामकृतप्रायश्चित्तव्यवस्था

बृहस्पतिः—

‘कामाकामकृतं त्वेव पातकं द्विविधं स्मृतम् ।

पुरुषापेक्षया चैव निष्कृतिर्द्विविधा स्मृता ॥’ इति ।

१ खलो राजवधोद्योगी पितृणां च वधे रतः । अनुयायी नृपो राजश्वत्वारश्वात-  
तायिनः ॥ ( सू. खं. ४८।१९ ) इति पात्रे ।

२ एवं सति यच्छ्रीरामेण रावणं हत्वा दश जातुष्या अश्वमेधाः कृता इति  
रामायणम्, तत् आततायिवधे युगान्तरे सपरिहारो दोष इत्येतदर्थम् ।—कृष्णभट्टी ।  
अत्र नीतिमयूखे ( पृ. ९९ ) प्रपञ्चितमन्यनुसन्धेयम् ।



यत्तु याज्ञवल्क्यवाक्ये—( ३।२२६ )

‘प्रायश्चित्तरपैत्येनो यदज्ञानकृतं भवेत् ।

कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते ॥’

—इत्यज्ञानपदम्, तदप्यकामपरम् । अत एव तत्प्रतियोगिरूपं कामतः पदं सङ्गच्छते । एवं वाक्यान्तरीयाणि बुद्धिज्ञानाभिसन्धिपदानि कामपराणि, अबुध्यज्ञानाभिसन्धिपदानि चाकामपराणि । तेन बलात्कारिते पापे सत्यपि ज्ञाने न द्विगुणं प्रायश्चित्तम्, तत्प्रयोजक-कामाभावात् ।

अत्राकामकृतपापस्य व्यवहारनिरोधिका नरकजनिका चेति शक्ति-द्वयमपि नश्यति प्रायश्चित्तेन । कामकृतस्य तु व्यवहारनिरोधिकैव नश्यति, न तु नरकानुकूलेति विज्ञानेश्वरादयो निबन्धकृतः । एतच्च येष्वाहत्य व्यवहारो निषिद्धस्तत्परम् ।

तानि चाह गौतमः—( ३।३।१-२ )

‘ब्रह्महसुरापशुरुतल्पगमातृपितृयोनिस्वद्धागस्तेननास्तिकनिदित-कर्मभ्यासिपतितात्याग्यपतितात्यागिनः पतिताः । पातकसंयोजकाश्च’ । इति । एतेष्वेव व्यवहारो निषिद्धः, नान्यत्र ।

‘एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थि कंचित्समाचरेत् ।’ ( ११।१८९ )

इति मानवीयमेनस्विपदमपि ब्रह्महादिपरमेव । इतरपापेषु तु नरकानु-कूला नाशयते । सर्वरहस्यपापेषु ब्रह्महत्यादिप्रकाशेषु मरणान्तिकप्रायश्चित्ते चैवम् । व्यवहारनिरोधनाभावेन तदनुकूलशक्त्यभावात् ।

श्रीशङ्कराचार्यास्तु—‘कामतोऽव्यवहार्यस्तु’ ( ३।२२६ ) इत्यकारप्र-सङ्गेपेदं याज्ञवल्क्यवचः ‘बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च’ ( ब्र. सू. ३।४।४३ ) इति सूत्रे—कृतप्रायश्चित्तनैष्ठिकब्रह्मचार्यादिपरम् ।

‘आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते पुनः ।

प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुद्धयेत्स आत्महा ॥’ ( अत्रिः ८।१९ ) इति;

१ ‘चान्द्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् ।’ इत्युत्तरार्धे शातातपस्मृतौ ( १८ ) अत्रिसंहितायां च ( ८।२५ ) ।



‘आरूढपतितं विप्रं मंडलाच्च विनिःसृतम् ।  
सद्वृद्धं कृमिदष्टं च स्पृष्ट्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

इति च स्मृतेरिति ।

—येन शुद्धयेव्यवहारयोग्यो भवेत्तत्प्रायश्चित्तं न पश्यामीति, कृत-  
प्रायश्चित्तमप्यारूढपतिततादिकं स्पृष्ट्वा चान्द्रायणं कुर्यादिति वाक्यद्वयार्थे  
इत्याहुः ।

तत्सूत्रे वाचस्पतिमिश्रास्तु बालप्रादिपरमप्याहुः—

‘बालप्रांश्च कृतप्रांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ।

शरणागतहन्तृंश्च स्त्रीहन्तृंश्च न संपिबेत् ॥’

(म. स्म. ११।१९० वि. स्म. ५४।३२ ) इति स्मृतेः ।

—न संपिबेन्न व्यवहरेत् ।

अत एव याज्ञवल्क्यः—( ३।२९९ )

‘शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संविशेन्न तु ।

चीर्णव्रतानपि सतः कृतघ्नसहितानिमान् ॥’ इति

तेनाचार्यमतेऽवकीर्णितैष्टिकादिभिर्बालप्रादिभिश्च कृते प्रायश्चित्ते  
नरकानुकूला शक्तिर्नाश्यते, व्यवहारनिरोधिका त्वस्त्येव ।

इतरपापेषु कामकृतेष्वपि शक्तिद्वयमपि नाश्यते द्विगुणप्रायश्चित्तेन ।  
तदाहाङ्गिराः—

‘विहितं यदकामानां कामात्तद्विगुणं भवेत् ।’

महापापे तु कामकृते मरणमेव । तथा च स एव—

‘यः कामतो महापापं नरः कुर्यात्कथञ्चन ।

न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृशवन्निपतनाहते ॥’

बथा—‘प्राणान्तिकं तु यत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ।

तत्कामकारविषयं विज्ञेयं नात्र संशयः ॥’

व्यासः—( म. स्म. ११।८९ )

‘कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्नास्ति जीवनः ।’

१ उत्तमाश्रममाख्या तं परित्यज्याधमाश्रमे । उन्मागे वा वर्तमान आरूढपतितः—  
प. मा. ११।१ ।

२ ‘संवसेत्’ इति स्मृतिपाठः ।

३ ‘निष्कृतिर्न विधीयते’ इति पाठान्तरम् ।



‘यस्तु सर्वं परित्यज्य यावज्जीवं चरेद्भूतम् ।  
स विशुद्धः शुभान् लोकान् विप्रो गच्छेन्न संशयः ॥’

अथ तन्त्रप्रसङ्गौ—तन्त्रानेकनिमित्तेषु प्राजापत्यादीनां सजातीयानां प्रायश्चित्तानां देशकालकर्त्रैक्ये तन्त्रम् । तत्र चैकस्मिन्निमित्ते प्राजापत्य-  
द्वयम्, एकत्रैकम्, इति विशेषेण ग्रहणे द्वयमेव कार्यम् । तेनैवैकप्राजापत्यकार्य-  
मपि सिद्ध्यतीति प्रसङ्गः । यथा गौतमः—(३।४।२९—३०) ‘द्वे परदारे ।  
त्रीणि श्रोत्रियस्य’ इति सामान्यतः परदारमात्रगमने श्रोत्रियपत्नीगमने  
च श्रोत्रियपत्नीगमननिमित्तकं त्रैवार्षिकमेव केवलं कार्यम् । तेनैव  
द्वैवार्षिकसिद्धिः । शङ्खलिखितौ—‘गुप्तायां वैश्यायामवकीर्णः संवत्सरं  
त्रिषवणमनुतिष्ठेत् । क्षत्रियायां द्वे वर्षे । ब्राह्मण्यां त्रीणि वर्षाणि’ इति ।  
अत्र तिसृष्वप्यवकिरणेषु ब्राह्मणीनिमित्तकं त्रैवार्षिकमेव कार्यमिति ।  
निमित्तानां व्याप्यव्यापकभावेऽपि व्याप्यनिमित्तेन व्यापकनिमित्तस्य  
प्रसङ्गतः सिद्धेः । यथा—

‘अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।’ (म. स्मृ. १।१।२०८)

‘कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते ।’

( या. स्मृ. ३।२९३ ) इति ।

अत्रासृक्पातने सत्यवगूरणनिपातनयोर्न पृथक्स्वनिमित्तप्रायश्चित्त-  
प्रयोजकतेति । ब्रह्महत्याप्रायश्चित्ते तु तत्प्रकरणे तन्त्रावापौ वक्ष्येते ।

अथ प्रायश्चित्तातिदेशः—स त्रिविधः, वाचनिकातिदेशस्ताद्रूप्या-  
तिदेशः साम्यातिदेशश्चेति । तत्र वाचनिकं तावत्, तमाह याज्ञवल्क्यः—  
( ३।२५१ )

‘यागस्थक्षत्रविद्वाती चरेद्ब्रह्महणि व्रतम् ।’

ताद्रूप्यातिदेशमप्याह स एव—( ३।२३२—३३ )

‘पितुः स्वसारां मातुश्च मातृत्वानीं स्तृणामपि ।

मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ॥

आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः ।’ इति ।



साम्यातिदेशमप्याह स एव—( ३।२२८ )

‘गुरुणामध्यधिक्षेपो वेदनिन्दा सुहृद्वधः ।

ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम् ॥’ इति ।

अत्र साम्यातिदेशेऽर्द्धं, ताद्रूप्यवाचनिकयोस्तु पादोनम् । ‘राजसमो मन्त्री’ इत्यादौ किञ्चिद्धीन एव समपदप्रयोगात्, महापातकातिदेश-विषयाणां च पातकसंज्ञत्वात् ।

‘महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु ।

तानि पातकसंज्ञानि तद्वन्मनुष्यपातकम्’ ॥

इति पापकानां महापापाद्वन्मनुष्यत्वप्रतिपादनाच्चेति विज्ञानेश्वरादयः ।

अत्र केचित्— इषांवेकाहे ‘समानमितरच्छेयेनेन’ इति वाचनिकातिदेशे न्यूनत्वाप्रतीतेरिहापि न न्यूनतैति । ‘राजसमो मन्त्री’ इत्यादौ तु न्यूनता प्रत्यक्षमस्या । अस्तु वा समशब्देन न्यूनताप्रतीतिकल्हः; पादोनाद्धादीयत्ता तु निष्प्रमाणिकेति ।

अत्रास्मज्ज्येष्ठभ्रातृचरणाः—“महापापतुल्येषु पातकसंज्ञेषु विशेषतः प्रायश्चित्तानुक्तेस्तदाकाङ्क्षायामर्थवादे महापापजन्यनरकाद्धावगतेः प्रायश्चित्तेऽप्यर्द्धता कल्प्यते । तमेवार्थवादमाहाङ्गिराः—

‘पातके तु सहस्रं स्यान्महत्सु द्विगुणं तथा ।

उपपापे तुरीयं स्यान्नरकं वर्षसंख्यया ॥’ ” इति ।

यत्तु विष्णुः—( ४३।३-५ )

‘अतिपातकिनः पर्यायेण पच्यन्ते कल्पम् । मन्वन्तरं महापातकिनः । अनुपातकिनश्चोपपातकिनश्च चतुर्युगम्’ इति; तदभ्यासपरम् । अनुपातकं महापातकतुल्यं पातकसंज्ञम् । ताद्रूप्यवाचनिकातिदेशे तु पादोनमेव । ‘ब्राह्मणीपुत्रस्य क्षत्रियायां मानरि गमने पादहान्या द्वादशवार्षिकमेव-

१ श्रुतामकः इयेनामकश्च द्वावेकाहौ ज्योतिष्टोमविकारौ । तयोरुभयोर्योतिष्टोमवर्षाश्चोदेन प्राप्ताः । ते चोभयत्र समानाः । तच्च समानत्वमिषुप्रकरणेऽनेन वाङ्मोनाबुध्यते । इषौ यो वैशेषिको धर्मो विहितः, तं परित्यज्य इतरचोदकप्राप्तं सर्वं इयेनेन समानमित्यर्थः ( जै. न्या. मा. वि. ७।१।२ ) ।

२ दामोदरभट्टाः द्वैतनिर्णयपरिशिष्टकाराः ।



मन्यवर्णासु' इति मिताक्षरोक्तस्मृत्या (३।२६०) पादोनं द्वादशाब्द-  
मुक्तम् । तच्च न केवलं हीनवर्णमातृगमन एव, किन्तु 'मातुः सपत्नीम्'  
(या. ३।२३२) इत्याद्युक्तसर्वतादूप्यवाचनिकातिदेशविषयम् । सर्वेषां  
समानधर्मत्वात् । यथाहोशनाः—

‘बहूनामेकधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते ।

सर्वेषां तद्वदेत्कार्यमेकरूपा हि ते स्मृताः ॥’ इति ।

अत एव मिताक्षरायां (३।२६५) रजक्यादीनां पञ्चानां गमने  
चान्द्रायणद्वयं प्राथश्चित्तमापस्तम्बोक्तमुक्त्वा—

रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ।

कैवर्तमेदभिलाश्च समैते अन्त्यजाः स्मृताः ॥ (अत्रिः६।१६)

१ रजकः—‘ब्राह्मण्यां यो मुनिश्रेष्ठा वैदेहेन प्रजायते । स नाम्ना रजको  
ज्ञेयः पण्डितैः पण्डितोत्तमाः ॥’ (सू. सं. १।१२।३९) । ‘तीवरीं धीवरात् पुत्रो  
बभूव रजकः स्मृतः ।’ (ब्र. वै. १।१०।११२) । ‘पुलकसाद्वैश्यकन्यायां जातो  
रजक उच्यते ।’ (औ. स्मृ. १८) इत्याद्यनेकविधः । २ चर्मकारः—‘तीवरेण  
च चाण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह ।’ (ब्र. वै. १।१०।१०३) । ‘आयोगवेन  
ब्राह्मण्यां चर्मकारः प्रजायते ।’ (सू. सं. १।१२।१४०) इत्युक्तः । ३ नटः—  
‘मल्लात्तु पिच्छलस्तेन नटाख्यो जायते भुवि ।’ (सू. सं. १।१२।४२)  
मनुस्तु—(१०।२२) ‘झल्लो मल्लश्च राजन्यान्नात्यान्निच्छिद्विरेव च । नटश्च करण-  
श्चैव खसो द्रविड एव च ॥’ इत्याह । एतान्येकस्यैव नामानीति कुल्लुकः ।  
४ बुरुडः—‘कर्मचण्डालकात् पुत्रं वैदेही पाण्डुशोपकम् । लेभे बुरुडजातित्वं  
सदा वशविदारणम् ॥’ (श्रु. क.) ५ कैवर्तः—‘क्षत्रवीर्येण वैश्यायां कैवर्तः  
परिकीर्तितः ।’ (ब्र. वै. १।१०।१११) इति, ‘निषादो मार्गवं सूते दासं  
नौकर्मजीविनम् । कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यवर्तेनिवासिनः ॥’ (म. १०।३४) इति,  
‘आयोगवी च कैवर्तं जज्ञे पारसवात्सुतम् । स हीनः सर्वजातिभ्यो जालं  
स्वीकृत्य सर्वदा । मत्स्यान् जलचरानन्यान् घातयेदात्मवृत्तये ॥ नाव्यं कर्म प्रवह्यं  
नयां वर्षासु वाहयेत् । नदीमुत्तारयेल्लोकांस्तेभ्यश्चेच्छेद्वनं तथा ॥’ इति चोक्तः ।  
६ मेदः—‘वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयो ।’ (म. १०।३६) वैदेहि-  
कात् अन्ध्रमेदाख्यौ कारावरनिषादस्त्रियोरेव क्रमेण जायेते इति कुल्लुकः ।  
७ भिल्लः—‘कारावारी यदा नारी धीवराज्जनयेत् सुतम् । स भिल्लसंज्ञः कथितः  
कन्दमूलादिजीवनः ॥’ (जा. भा.)



—इति सप्तान्त्यजस्त्रीगमनेऽपि तदेव प्रायश्चित्तमुशनोवाक्यबलादुक्तम्—

—इति युक्तमुत्पश्यन्ति ।

एतेनातिदेशे पूर्णप्रायश्चित्तं वदन्तौ शूलपाणिभवंदेवावपास्तौ ।

किंच— सर्वत्र द्वादशाब्दविधित्सायां स्मृतिषु तदुपदेश एव स्यात् ,  
न तु कचिदुपदेशः कचिच्चातिदेश इति निष्प्रयोजनं द्वैविध्यम् । न  
चात्रान्यूनतातिरिक्तं सौर्यादिष्विव दर्शपूर्णमासिकातिदेशस्योहादि-  
प्रयोजनमस्ति ।

यच्च भवदेवः—सास्योक्तिरर्थवादः; अन्यथा ब्रह्महत्यासुरापानसमेषु  
मिथ्योत्कर्षोक्तिवेदनिन्दादिष्वपि द्वादशाब्दं स्यात् । कचित्तद्विशेषे  
मनुष्यहरणे मनुना—( ११।१६३ ) चान्द्रायणादिस्वल्पप्रायश्चित्तान्तरा-  
भानाच्चेति । तदपि न, मिथ्योत्कर्षोक्तिवेदनिन्दादिषु द्वादशाब्दाद्य-  
पेक्षयाऽर्द्धस्येष्टत्वात्, मनुक्ताल्पप्रायश्चित्तस्य नीचमनुष्यापहारपर-  
त्वाच्च । इत्यतिदेशः ॥

अथ पापिनामनुत्तापार्थं कर्मविपाक उच्यते ।

यमः—

‘पतितैः सम्प्रयुक्तश्च कृतघ्नो गुरुतल्पगः ।

एते पतन्ति सर्वेषु नरकेष्वनुपूर्वशः ॥

महापातकसंयुक्ता युगं तिष्ठन्त्यथोमुखाः ।

रौरवे कूटसाक्षी च यश्च मिथ्याभिर्शंसकः ॥

कुलग्राहे पक्षवादी स चाप्यत्र पतन्नरः ।’

—कुलग्राहे कुलसन्देहे । स एव—

‘न्यासापहर्ता कुमतिर्विषमो यश्च वृत्तिषु ।

तप्तकुंभे स्वस्तृगामी गोघ्नो राजभटाश्च ये ॥’

—राजभटा राजवलेनोपद्रावकाः ।

‘महाज्वाले दुहितरं स्नुषां गत्वा च मातरम् ।

अजाविकः शौकरिकस्तेनश्च क्रोधतो नरः ॥

१ पतितैः सम्प्रयुक्तो महापातकिसंसर्गिभिः सह ब्राह्मणैर्नैश्च सम्बन्धैः संयो-  
गतः, साक्षात् सम्बन्धे तु ‘यौनसौवमुख्यैस्तु सम्बन्धैः सद्य एव’ ( वि. स्मृ.  
३।५।९ ) इति वचनेन पतितत्वात् ।—कृ. भ. २ ‘शुक्रक्षयकरी वन्ध्या त्वर्जति  
परिकीर्तिता । तस्यास्तु यो भवेद्भर्ता तं तु विद्यादजाविकम् ॥’ ( बृ. य. ३।२४ )



रङ्गोपजीवी पशुदा शकुनी ग्रामयाजकः ॥

अभक्षभक्षो वान्ताशी विप्रो धर्मपुरस्कृतः ।

अगम्यागामी गरदो नारकं शबलं व्रजेत् ॥ ’

—शकुनी पंक्षिपोषकः । वान्ताशुक्तो हेमाद्रौ विष्णुना—

‘ देशं गोत्रं कुलं विद्यामन्त्रार्थं यो निवेदयेत् ।

वैवस्वतेषु धर्मेषु वान्ताशी स प्रकीर्तितः ॥

सर्वज्ञा वयमित्येवमभिमानरता नराः ।

वान्ताशिनः परित्याज्याः श्राद्धे दाने च लम्पटाः ॥ ’ इति ।

‘ वेदविक्रयिणो ये च केशविक्रयिणस्तथा ।

वेदानां दूषका ये च समयानां च दूषकाः ॥

दूषका धर्मशास्त्राणां हेतुवादकुतूहलाः ।

एते विहङ्गमे घोरे पच्यन्ते पापकारिणः ॥ ’

—समयानां दूषकाः सम्भूय व्यवस्थापितार्थव्यतिक्रमकारिणः ।

सर्वविक्रयकर्तारो मित्राणां भेदकारकाः ।

निर्मर्यादाः क्रोधनाश्च कंदुर्यैश्वर्यसंयुताः ॥

कोटरे विनिपात्यन्ते बन्धुभक्षाश्च वाणिजाः ॥

—बन्धुभक्षाः बन्धुपीडकाः ।

त्रिमुखे पतिते घोरे मर्यादां यश्च लङ्घति ।

शास्त्राभ्युपगमो गोत्रश्च कृमिभक्ष्यं व्रजन्ति ते ॥

१ रङ्गोपजीवी नटमलादिवृत्तिः— रत्नगर्भः । वस्त्रादिरञ्जकः— श्रा. काशिका ।

२ शुभाशुभनिमित्तशकुनोपजीवी वा ।—वि. पु. टी. ३ श्राद्धकाशिकायां तु-भुक्तं  
वमित्वा लालसया पुनर्भोजी उक्तः । ४ केशविक्री चामरादिविक्रेता । श्रा. का.

५ कदुर्यो यो लोभाद्विद्यमानमपि धनं न भुङ्क्ते, न च ददाति । तदुक्तम्—

‘ आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदाराश्च पीडयन् । लोभायः पितरौ भृत्यान् स कदुर्य  
इति स्मृतः ॥ ’—अप. ६ मर्यादा शिष्टाचारादिसिद्धो धर्मः ।— वि. पु. टी.



—विमुखः युद्धादिषु पराङ्मुखः । पतिते युद्ध एवेति शेषः ।

एकाकी मिष्टमश्नाति वञ्चयित्वा सुहृत्सुतान् ।

दारान् भृत्यातिथींश्चैव तथा सम्बन्धिवान्धवान् ॥

उत्सन्नपितृदेवेष्टः पशुघाती च यो वृथा ।

लालके नरके घोरे दुर्गन्धे पात्यते नरः ॥

मानकर्त्ता कुलालश्च स्वर्णकारश्च किंत्सकः ।

पतन्ति नरके घोरे कूटकर्त्ता विशेषतः ॥

देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरुं यश्चावमन्यते ।

अवाकिशरः प्रपद्यन्ते रत्नं दूषयते च यः ॥

मांसं मद्यं सुरां लाक्षां गन्धान्वखं घृतं पयः ।

विक्रीणाति य एतानि स तु पूयवहं ब्रजेत् ॥

अगारारामदाही च दुष्टः पापकृदेव च ।

पतन्ति रुधिरार्द्रे तु कृतघ्ना दाम्भिका नराः ॥

शूद्रहत्यां तु यः कुर्यात्तथा यो गुरुदूषकः ।

सीधुकृन्मधुकृदण्डी कर्मकारो निराकृतिः ॥

—इण्डी निषिद्धदंडग्राही । कर्मकारः कर्मकाराधिष्ठाता । निरा-  
कृतिरस्वाध्यायः ।

अतितीक्ष्णश्रृङ्गवृत्तिरुपवातपरः शठः ।

श्येनजीवी कालहिकः पुत्रोपाध्याय एव च ॥

१ कुलालः कुम्भकारवृत्त्युपजीवी । स्मृ. चं. । अत्र कुलालस्वर्णकारादय-  
न्नैवर्गिका एव तद्वृत्त्युपजीविनो गृह्यन्ते, न तु जातिकुलालादयः; तेषां स्वस्ववृत्त्य-  
नुष्ठाने दोषासम्भवात् । २ चिकित्सकचिकित्सावृत्तिः । अप्रम्यक् चिकित्सक  
इतोऽपि । अत्र. ३ अगारदाही तु द्वेधा देवलेन दर्शितः— ‘अगारदाही स ज्ञेयः  
प्रतप्तग्रा धनेन यः । स चाप्यगारदाही स्याद्वेवायो वेश्मदाहकः ॥’—स्मृ. चं.  
४ निराकृतिशब्दार्थेऽपि देवलेन दर्शितः— ‘अधीत्य विस्मृते वेदे भवेद्विप्रो  
निराकृतिः ।’ कात्यायनस्त्वन्यथाऽऽह— ‘यस्त्वाध्यायान्निमालस्याद्देवादीन्नि-  
रिष्टवान् । निराकर्तामरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥’—स्मृ. चं.



दूतसंव्यवहारी च प्राणिहिंसारताश्च ये ।

वैतरण्यां निपात्यन्ते ये नरा बन्धुघातकाः ॥

—अतितीक्ष्णः अत्युग्रः । चण्डवृत्तिः वधवन्धादिवृत्तिः । उपघातपरः  
परोपद्विप्रवणः । शठो मायावी । कालहिकः कलही । पुत्रो-  
पाध्यायः पुत्र उपाध्ययौ यस्य सः ।

तथा—‘असत्प्रतिगृहीतारस्तथैवायाज्ययाजिनः ।

नक्षत्रैर्जीवते यश्च सोऽन्धकारं प्रपद्यते ॥

अप्राप्तदमको यश्च ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।

गोश्वोष्ट्रहस्तिदमको मित्रघ्नश्च सूचकस्तथा ॥

असिपत्रवने घोरे पतन्त्यौरत्रिका नराः ॥

—अप्राप्तदमकोऽयोग्यदमकः । गोश्वोष्ट्रहस्तिदमकः सा वृत्तिर्यस्य  
स तथोक्तः । औरत्रिका मेषाजीविनः ।

दुर्थाप्रव्रजितो यश्च सेतुमेत्ता च सूचकः ।

आश्रमात्पतितो यश्च सोऽग्निज्वालं प्रपद्यते ॥

कृत्याकरा निकृत्यन्ते नरा अनृतवादिनः ।

राजा च श्रुतिलोपी च सन्दंशनरकं व्रजेत् ॥

मृगव्याधस्तमो घोरे क्रूरकर्मा च वार्षुषिः ।

भक्ष्यन्ते श्यामशबलैस्तीक्ष्णतुण्डैश्च वायसैः ॥

१ काहलिक इति पाठे काहलाख्यवाद्यविशेषेण जीवी ।

२ ग्रामगतगृहस्थपुत्राणामक्षरशिक्षको वा । तथा च सङ्ग्रहकारः— ‘पुत्रा-  
चार्यः स विज्ञेयो ग्रामे योऽक्षरपाठकः ।’ स्मृ. चं.

३ वृषलीपतिः— ‘बन्ध्या तु वृषली ज्ञेया वृषली च मृतप्रजा । अपरा वृषली  
ज्ञेया कुमारी या रजस्वला ॥ यस्त्वेनामुद्रहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अश्राद्धेय-  
मपाङ्गेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥’ प. मा.

४ दुर्थाप्रव्रजितः पुत्राननुत्पाद्यैव सन्त्यासी । —श्रा. का.

५ सूचको राजकर्णेजपः । श्रा. का.

६ यस्तु निन्देत्परगुणान्प्रशंसत्यात्मनो गुणान् । स वै वार्षुषिको नाम  
हव्यकन्येषु गर्हितः । अम.



ब्रह्मविक्रयिणो ये च ब्रह्मावाक् क्रियते च ये ।

क्रयविक्रयकर्त्ता च वार्धुषिः सोमविक्रयी ॥

गुरुंश्च येऽब्रमन्यन्ते वाकैरैस्तर्जयन्ति च ।

विक्रमणिः पापरताः शौचाचारविवर्जिताः ॥

अगोप्ताः कुलद्रव्याः परस्वानां च नाशकाः ।

कन्यानां दूषकाश्चैव समयानां च दूषकाः ॥

क्रोधनाः पापशीलाश्च लुब्धा ये कृष्णगामिनः ।

स्कन्दन्ते च दिवा स्वप्ने व्रतिनो ब्रह्मचारिणः ॥

सर्वे ते नरके घोरे पात्यन्ते पापकारिणः । १

—अगोप्तारोऽवश्यरक्षणीयानामिति शेषः । कुलद्रव्याः छलेनार्जित-  
धनाः । कृष्णगामिनः शूद्रारतास्त्रैवर्णिकाः ।

मनुः— ( १२।५४ )

‘वहून्वर्षगणान्वोरात्ररकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।

संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्वह ॥ १

याज्ञवल्क्यः— ( ३।२०७— )

‘सुगन्धशूकरोष्णां ब्रह्महा योनिमुच्छति ।

खरपुलकसवेणानां मुरापो नात्र संशयः ॥ १

—पुलकसवेणौ चण्डालविशेषौ ।

‘कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णहारी समाप्नुयात् ।

तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः ॥ १

१ अल्पवृद्धया धनं स्वीकृत्याधिकवृद्धया प्रयोजको वार्धुषिः । ‘समर्धं धन-  
मुदृत्य महर्धं यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥’ इति  
स्मृतेः । —नि. सि. टी. ‘धान्यम्’ इति वसिष्ठ—( २।४६ वृ. य. ३।२३ )  
पाठः । क्रयविक्रयकर्तृसाहचर्यादत्रायमेव विवक्षितः ।

२ कृष्णा शूद्रा ‘कृष्णा रामा रमणायैव’ ( वसि. १८।१६ ) इत्यादिनिर्देशात् ।  
‘दद्यापोः संज्ञा—( अष्टा. ६।३।६२ ) इति ह्रस्वः ।

३ ‘जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुंसः’ ( मनुः १०।१८ ) ‘वैदेह-  
केन त्वम्बष्ठयामुत्पन्नो वेण उच्यते’ । ( मनुः १०।१९ )



स एव—( ३।२०९-१० )

‘ ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः ।  
हेमहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥  
यो येन सन्धि यात्येषां स तल्लिङ्गोऽभिजायते ॥ ’  
फलविशेषा ग्रन्थान्तरतोऽवसेयाः ।

अथ पर्वत् ।

लघुपराशरः—( ८।१९-२१ )

‘ चत्वारो वा त्रयो वाऽपि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः ।  
ब्राह्मणानां समर्था ये पर्वत्सा हि विधीयते ॥  
अनाहिताग्रयो येऽन्ये वेदवेदांगपारगाः ।  
पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत्संप्रकीर्तिता ॥  
[ मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनःम् ]  
वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥ ’  
यमः—‘एको द्वौ वा त्रयो वाऽपि यद्ब्रूयुर्धर्मपाठकाः ।  
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ ’

मनुः—( १२।१११ )

‘ त्रैविद्यो हैतुकस्तर्को नैरुक्तो धर्मपाठकः ।  
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वं पर्वदेषा दशावरा ॥ ’  
—हैतुको मीमांसकः ।

अंगिराः—

‘ एकविंशतिसङ्ख्यातैर्मामांसान्यायपारगैः ।  
वेदाङ्गकुशलैरेव पर्वत्त्वं तु प्रकल्पयेत् ॥ ’

धर्मविवृतौ—

‘ पातकेषु शतं पर्वत्सहस्रं महदादिषु ।  
उपपापेषु पञ्चाशत्स्वरूपे स्वल्पा तथा भवेत् ॥ ’

पराशरः—( ८।१४ ]

‘ अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ।  
प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं परिषद्भजेत् ॥ ’

१ वेदानामृगादीनां चतुर्णामव्ययनायानुष्ठितानि तत्तद्वेदोक्तानि क्रतानि वेदव्रतानि । मा.

२ एकस्य पर्वत्त्वमसंशय एव । ‘ बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः ।  
तस्मान्न वाच्यो हेकेन बहुज्ञेनापि संशये ॥ ’ (१।१।१३) इति बोधायनकच । आ.



पर्वदुपस्थानमाहाङ्गिराः—( ३।८०-८१ )

सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ।

क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा पर्वदं ह्युपतिष्ठति ॥

आधिकारिमात्रोपलक्षणमिदम् ।

उपस्थाय ततः शीघ्रमार्त्तिमान्धरणीं गतः ।

गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् ॥

पराशरः—

पापं विख्यापयेत्पापी दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् । [बृ. य. ४।५]

इदमुपपातकविषयम् । महापापादिष्वधिकं कल्प्यमिति मिताक्षरा-  
याम् । अल्पपापेष्वपि तत्रैव—

तस्माद्विजः प्राप्तपापः सकृदाप्लुत्य वारिणि ।

विख्याप्य पापं वक्तृभ्यः किञ्चिदत्वा व्रतं चरेत् ॥

—किञ्चिदत्त्वा पापं विख्याप्य व्रतं चरेदित्यन्वयः ।

विष्णुः—

पादव्रते वस्त्रदानं कृच्छ्रार्द्धे तिलकाञ्चनम् ।

पादह्वने तु गामेकां कृच्छ्रे गोमिथुनं स्मृतम् ॥

अत्र 'सर्वे धर्मविवेक्तारः' इत्यादिप्रार्थना पर्वत्प्रदक्षिणा च वक्ष्यते  
पद्धतौ ।

देवलः—

पापकृत्स्वकृतं पापं कृत्स्नमाख्याय संसदि ।

तत्र स्नानेन याचेत् निष्कृतिं तस्य कर्मणः ॥

अङ्गिराः—

कृत्वा पापं न भुञ्जीत त्रिरात्रमहरेव वा ।

कुर्याद्वाह्मणशुश्रूषामाप्रदानाद्व्रतस्य तु ॥

१ 'ततः पर्वदमाव्रजेत् ।' ( परा. स्मृ. ८।९ ) इति पाठः ।

२ इदं प्राजापत्योर्ध्वप्रायश्चित्ते ।— प्रा. सु.



एतच्च पर्षदुपस्थानं प्रकाशप्रायश्चित्त एव, न रहस्ये;

‘विख्यातदोषः कुर्वीत पर्षदोऽनुमतं व्रतम् ।

अनभिव्यातदोषस्तु रहस्यं व्रतमाचरेत् ॥’ [ ३।३०० ]

इति याज्ञवल्क्योक्तेः । प्रकाशेऽपि पर्षदसम्भवे स्वयमेव कुर्यात् ।

मनुः— [ ११।१४६ ]

‘मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणांतिकमिति स्थितिः ।’

—मतिपूर्वमयं मरणार्थं पृच्छतीति ज्ञात्वा ।

आङ्गिराः—

‘ततस्ते प्रणिपातेन दृष्ट्वा तं समुपस्थितम् ।

बुद्ध्वाः पृच्छन्ति किं कार्यमुपविश्याग्रतः स्थितम् ॥

किं ते कार्यं वदामाभिः किंवा मृगयसे द्विज ! ।

तत्त्वतो ब्रूहि तत्सर्वं सत्यं हि गतिरात्मनः ॥

यदि चेद्वक्ष्यसे सत्यं नियतं प्राप्स्यसे शुभम् ।

यद्यागतोऽस्यसत्येन न त्वं शुद्ध्यसि कर्हिचित् ॥

एवं तः समनुज्ञातः सर्वं ब्रूयादशेषतः ॥’

विश्वामित्रः—

‘जातिशक्तिगुणापेक्षं सकृद्बुद्धिकृतं तथा ।

अनुबन्धादि विज्ञाय प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥’

उपदेशश्च पर्षदनन्तर्गतेन पर्षदनुमत्या केनचित्कार्यः । तथा

आङ्गिराः—‘आहूय आवयेदेकः पर्षदा यो नियोजितः’ । ‘उपदेशश्च

त्रिः कार्यः’ इति मदनः, पितामहचरणाश्च ।

स एव—

ब्राह्मणो ब्राह्मणानां तु क्षत्रियाणां पुरोहितः ।

वैश्यानां याजकश्चैव प्रायश्चित्तं समादिशेत् ॥

अगुरुः क्षत्रियाणां यो वैश्यानां वाऽप्ययाजकः ।

प्रायश्चित्तं समादिश्य तप्तकृच्छ्रं व्रतं चरेत् ॥

१ अनिर्देश्यमिति नुवन्प्राणान्तिकप्रायश्चित्तं पर्षदानुक्तं स्वयमेव शास्त्रतो  
विदित्वा कुर्यादिति गमयति ।—अप. ३।२।५३



स एव—

‘तथा शूद्रं समासाद्य सदा धर्मपुरस्सरम् ।  
प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम् ॥’

जपहोमौ चाङ्गप्रधानरूपावशिषात् ।  
पर्वदन्तर्गतस्योपदेशकत्वे प्रायश्चित्तमाह हारीतः—

‘प्रायश्चित्तं तु निर्दिश्य कथं पापात्प्रमुच्यते ।  
यत्पवित्रं विजानीयाज्जपेद्वा वेदमातरम् ॥’

अङ्गिराः—[ ३।४१ ]

‘वचः पूर्वमुदाहार्यं यथोक्तं धर्मकर्तृभिः ।  
पश्चात्कार्यानुसारेण शक्त्या कुर्युरनुग्रहम् ॥’

— वचः प्रायश्चित्तविधायकम् । अनुग्रहः प्रायश्चित्तन्यूनता ।  
पराशरः—[ ६।५६ ]

‘दुर्बलेऽनुग्रहः कार्यस्तथैव शिशुवृद्धयोः ।  
अतोऽन्यथा भवेदोषस्तस्मान्नानुग्रही भवेत् ॥’

१ ‘धर्मपथे स्थितम्’ इति पाठः ।

२ अत्र यत्पदसम्बन्धात्तत्पदमध्याहार्यम् । ‘सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् ।’ इत्युपक्रम्य ‘अधमर्षणं देवकृतं शुद्धवत्त्यस्तरत्समाः । कृष्माण्डयः पावमान्यश्च दुर्गा सावित्र्य एव च ॥’ (अत्रि. ६।१, शंख. १।१।१ वसिष्ठ. २८।११) इत्यादीनि यानि पवित्रसंज्ञकान्युक्तानि, तेषु यदधीयीत तत्, अथ वा गायत्री जपेदित्यर्थः । गायत्र्या वेदमातृत्वं च ‘गायत्री छन्दसां माता’ (तै. आ. १०।२६) इति धृतिप्रसिद्धमेव ॥ मात्स्येऽपि— ‘अभावे सर्वविद्यानां गायत्री-जपमारभेत् ।’ इति । “ननु इदं पर्वदः प्रायश्चित्तविधानमनुपपन्नम्; ‘आर्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः । जानन्तो न प्रयच्छन्ति ते तेषां समभागिनः ॥’ इति प्रायश्चितावचने तस्या दोषस्मरणात्— इति चेत्; अत्र कश्चित्-नेदं प्रायश्चित्तं प्रायश्चित्तविधाननिमित्तम्, किन्तु पतितसम्भाषणादिनिमित्तम्— इत्याह । तत्र, ‘वृद्धाः पृच्छन्ति किं कार्यम् ?’ इत्यादिना तदभ्यनुज्ञानात् । नाप्य-यथाशास्त्रं प्रायश्चित्तविधाननिमित्तम्, नित्यवच्छ्रवणविरोधात् । अत्रोच्यते— पर्वत्प्रवेशानन्तरं प्रायश्चितावचने दोषस्मरणेऽपि पर्वत्प्रवेशाभावे दोषास्मरणात् रागप्राप्तपर्वत्प्रवेशनिमित्तमेवेदं प्रायश्चित्तम् । यथा श्राद्धे निमित्तत्रस्तस्य श्राद्धाभोजने दोषसङ्गवेऽपि श्राद्धाप्रवेशने न दोषः, प्रवेशे च रागकृते प्रायश्चित्तविधानम्, तथा प्रकृतेऽपि । प्रायश्चित्ताग्नौ निषेधानुमानं तूभयत्र समानमेव । तस्मात् पर्वत्प्रवेशो न कर्तव्यः, प्रवेशे यथोक्तप्रायश्चित्तमुक्त्वा स्वयमपि पर्वत्प्रवेशनिमित्तं प्रायश्चित्तं कर्तव्यमिति । ”—वि. म.



देवलः—

‘प्रायश्चित्तं यथोद्दिष्टमशक्त्या तद्वशात्पुनः ।  
इष्यतेऽनुग्रहश्चापि पूजानुग्रहकारणात् ॥  
एको नार्हति तत्कर्तुमनूचानोऽप्यनुग्रहम् ।  
धर्मज्ञा बहवो विप्राः कर्तुमर्हत्यनुग्रहम् ॥  
स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।  
कुर्वन्त्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥’

( परा. ६।५७ लि. स्म. ७७ )

पूजा अनुग्राह्यस्य पूज्यत्वम् । अनुग्रहो दया । अनुग्रहरूपन्यूनतावधि-  
माह हारीतः—

‘तस्मात्कृच्छ्रमथामप्यर्द्धं पादं वाऽपि विधानतः ।

ज्ञात्वा बलाबलं कार्यं प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥’

किञ्चिदशक्तौ कृच्छ्रं प्राजापत्यम् । अधिकायां अर्द्धम् । अधिक-  
तरायां पादमनुग्रहं कृत्वा प्रकल्पयेदित्यनुग्रहं कृत्वेत्यध्याहारेण योज्यम् ।

अथेतिकर्तव्यता ।

विष्णुः—( ३।२१-२५ )

‘सर्वपापेषु सर्वेषां व्रतानां विधिपूर्वकम् ।

ग्रहणं सम्प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्ते चिकीर्षिते ॥

दिनान्ते नखरोमादीन् प्रवाप्य स्नानमाचरेत् ।

भस्मगोमयमृद्वारिपञ्चगव्यादिकल्पितैः ॥

मलापकर्षणं कार्यं ब्रह्मशौचप्रसिद्धये ।

दन्तधावनपूर्वेण पञ्चगव्येन संयुतम् ॥

व्रतं निशामुखे ग्राह्यं बहिस्तारकदर्शने ।

आचम्यातः परं मौनी ध्यायन् दुष्कृतमात्मनः ॥

मनःसन्तापनात्तीव्रमुद्वेच्छोकमन्ततः ॥’ इति ।

—रोम इमश्रु । आदिना केशग्रहणम् । ब्रह्मशौचं पापनिर्हरणम् । पञ्च-  
गव्येनेति भस्मादिसमस्तस्यैव पञ्चगव्यादेरनुवादाद्भस्मादिस्नानापेक्ष-  
याऽपि दन्तधावनस्य पूर्वत्वसिद्धिः । आचारोऽप्येवम् । पितामहचर-  
णाश्च । व्रतं होमावशिष्टपञ्चगव्यप्राशनमिति महार्णवादौ । प्राय-

१ ‘वाह्यशौच--’ पा.



श्चित्तसङ्कल्प इति माधवशूलपाणी । घृतप्राशनमिति कल्पतरुः, 'न्युप्य केशनखान् पूर्व घृतं प्राश्य विशुध्यति' इति शङ्खलिखितोक्तेः। पूर्वमित्यस्याग्रे 'नद्यां स्नात्वा विशुध्यति' इति वा पाठः । तदा न घृतप्राशनं बहिर्-  
र्गमात् । जाबालिः—

‘आरम्भे सर्वकृच्छ्राणां समाप्तौ च विशेषतः ।

आज्येनैव तु शालामौ जुहुयाद्वाहुतीः पृथक् ॥

आर्द्धं कुर्याद्गतान्ते च गोहिरण्यादिदक्षिणा ।

स्त्रीणां होमो न दातव्यः पञ्चगव्यं तथैव च ॥’

—आर्द्धं वैष्णवम् ।

‘विधाय वैष्णवं आर्द्धं साङ्कल्पं निजकाम्यया ।

धेनुं दद्याद्दिजेभ्योऽथ दक्षिणां च स्वशक्तितः ॥’

( क. वि. १।२२ ) इति शास्त्रातपोक्तेः ।

—व्रतान्ते प्रायश्चित्तान्ते । गोहिरण्यादिदक्षिणा देयेति संबन्धः ।  
अत्र विष्णुदेवतया पित्रादिदेवताबाधः । साङ्कल्पत्वाच्चाव्यावाहनामौ-  
करणावनेजनपिण्डस्वधावाचनानां बाध इत्युक्तमस्मत्कृते आर्द्धमयूखे  
( पृ. ११९ ) आरम्भे च समाप्तौ चेति आर्द्धे कुर्यादित्यत्राप्यन्वेति ।  
शूलपाणिस्तु—‘गोहिरण्यादिदक्षिणां’ इति पपाठ । तदा प्रायश्चित्तान्त  
एव गोहिरण्यादिदक्षिणं आर्द्धं कार्यं, नादावित्यर्थः ।

स्त्रीणां शालामिहोम एव न भवति, तस्यैव प्रकृतत्वात् । लौकिकेऽग्नौ  
तु भवत्येव । स च विप्रद्वारेति केचित् ।

‘उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम् ।

विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तत्फलम्’ ॥

इति पराशरोक्तेः ( ६।६४ शा. क. १।२८ )

तत्र; अस्य प्राप्तेषु जपहोमादिषु अशक्तौ विप्ररूपप्रतिनिधिनियम-  
मात्रार्थत्वात् । प्रायश्चित्ताङ्गजपहोमयोस्तु निषेधादेवाप्राप्तेस्तत्र तस्या-  
प्रवृत्तः ।

यदपि वाराहे—( १८।५७ ) ‘अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण  
गृह्यते’ इति, तस्यापि परिभाषात्वेऽपि प्राप्तयोरेव जपहोमयोः प्रवृत्तिः ।

१ अत्र व्यवहारमयूखे ( पृ. ७० ) उक्तमप्यनुसन्धेयम् ।

२ गृह्णाति मन्त्रतः । मू. पा.



एतेन यन्महार्णवमदनरत्नयोः—‘स्त्रीशूद्रादेर्विप्रद्वारा समन्त्रकौ जपहोमौ भवतः’ इति; तत्परास्तम् ।

पराशरः—( १२।४ )

‘स्त्रीशूद्रस्य तु शुद्धयर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ।

पञ्चगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥’

स्त्रीणां पञ्चगव्यस्य विहितप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पः । शूद्राणां तु नित्यं भवत्येव । शूद्रस्यापि विकल्प इति महार्णवे । तन्न, तस्य स्त्रीपदगर्भ-निषेधाप्रवृत्तेः । यत्तु ‘स्त्रीशूद्रास्तु सधर्माणः’ इति, तद्विशेषाभावे स्त्रीशूद्रयोः समानधर्मत्वप्रतिपादनार्थम् । अस्ति चात्र पञ्चगव्यस्य विशेषविधिः । यत्तु—

‘पञ्चगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिवेत् ।

उभौ सौ तुल्यकर्माणौ पूयाख्ये नरके वसेत् ॥’ इत्यत्रिवचस्त-  
द्वागप्राप्तप्राशननिषेधपरम् ।

वपने विशेषमाह वसिष्ठः—( २४।४-५ )

‘कृच्छ्राणां व्रतरूपाणां श्मश्रुकेशादि वापयेत् ।

‘आक्षिरोमशिखावर्जम्’ इति ।

काम्यकृच्छ्रादौ वपनं नेति मदनपारिजाते ।

गोवधे तु पराशरः—( ८।३१ )

‘प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोघाती व्रतमुत्तमम् ।

सशिखं वपनं कार्यं त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ॥’ इति

विशेषमाह संवर्तः—( परा. १।१४। लि. ८२। यमः ५३ )

‘पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ।

त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखं तु निर्पातनम् ॥’ इति ।

१ ‘स्त्रीणां होमो न दातव्यः’ इति पूर्वोक्तं जाबालिवचनमप्युपलक्ष्यम् ।

२ उभौ तौ नरकं यातो महारौरवसंज्ञितम् । ( वि. स्मृ. १।४।७ ) कतौ प्राशनमेव, युगान्तरे विकल्प इति सिद्धान्तितं संस्कारमयूखे ( पृ. १२८ ) । अयं तु निषेधो मन्त्रवत्पञ्चगव्यविषय इति प्रतीमः । ‘स्त्रीणां चैव तु शूद्राणां पतितानां तथैव च । पञ्चगव्यं न दातव्यं दातव्यं मन्त्रवर्जितम् ॥’ ( ६१ ) इति देवलस्मरणात् ।

३ व्रतरूपाणां प्रायश्चित्तरूपाणाम् । प्रा. सु.

४ शिखाच्छेदश्चतुर्थके । लि. स्मृ. पा.



सधवानां विशेषमाह वसिष्ठः—

‘केशानां नास्ति नारीणां वपनं व्रतयज्ञयोः ।  
गोवधादिषु सर्वेषु छेदयेदङ्गुलद्वयम् ॥  
सधवानां तु नारीणामलङ्काराय सर्वदा ।  
केशसन्धारणं प्रोक्तं प्रायश्चित्ते द्विजोत्तमैः ॥’ इति ।

—‘अङ्गुलत्रयम्’ इति कचित्पाठः । अत्र सधवापदाद्विधवानां सर्व-  
वपनम् । अत्र विशेषमाह पराशरः—( १।५४-५५ )

‘वपनं नैव नारीणां नानुव्रज्या जपादिकम् ।  
न गोष्ठे शयनं तासां न वसीरन् गवाजिनम् ॥  
सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम् ।  
सर्वत्रैवं हि नारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ॥’ १।५६

वासिष्ठे आदिपदं प्रायश्चित्तान्तरपरम् । तेन प्रयागादौ ‘मुण्डनं  
चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः’ इति देवलाद्युक्तेः सर्वमुण्डनमेव; ‘वेण्यां  
वेणीप्रदानेन’ इति लिङ्गात्, आचाराच्च तीर्थान्तरे न अवतीत्यन्यदेतत् ।

अपराकै—

‘उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः ।  
केशंश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् ॥  
दक्षिणं कर्णमारभ्य धर्मार्थं, पापसञ्चये ।  
शिखाद्यं नवसंस्कारे शिखाद्यन्तं शिरो वपेत् ॥’

धर्मार्थं तीर्थादिवपने दक्षिणकर्णादि उदक्संस्थं वपेत् । पापसञ्चये  
तान्निमित्ते प्रायश्चित्ते शिखामादौ कृत्वाऽधस्तात्सर्वतो वपेदुदक्संस्थम् ।  
नवसंस्कारे चूडाकरणे दक्षिणकर्णाच्छिखान्तं, शिखामारभ्य वामकर्णान्तं  
च वपेदित्युत्तरपदार्थः । तैत्तिरीयके आसुरं वपनं निन्दित्वा दैवक्रम  
उक्तः । देवान्प्रक्रम्य—‘तत उपपक्षावग्रे वपन्त । अथ श्मश्रूणि । अथ  
केशान्’ ( तै.ब्रा. १।५।६ ) इति । मानुषेऽपि तत्रैव मनुं प्रक्रम्य—

१ ‘सर्वत्रैव हि नारीणां’ ‘एवं नारीकुमारीणां’—पा.

२ पाठक्रमात्केशश्मश्रुकमेण वपनं कार्यमित्येके । क्षणमपि म्लेच्छाचारप्रसङ्ग-  
वारणार्थं श्मश्रुकर्चयोरादौ वपनं कार्यम्, ततः केशानामित्यन्ये ।



‘स इमं श्रूयन्ने वपेत । अथोपपक्षौ । अथ केशान्’ (तै. ब्रा. १।५।६) इति ।  
अत्राधानेष्टिसोमेषु दैवम्, तत्र तस्य विधानात् । प्रायश्चित्ते तु दैवमानुषे  
विकल्पेन । तत्राप्युदकसंस्थितायै दक्षिणशमश्रुपक्षौ वप्त्वा वामाविति ।  
इदं च वपनं निषिद्धकालेऽपि कार्यम् ।

‘क्षौरं नैमत्तिकं कार्यं निषेधे संत्यपि ध्रुवम् ।  
पित्रादिमृतियात्रासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके ॥’ इति स्मृतेः ।

निषेधांश्चाह वृद्धगार्ग्यः—

‘रव्यारसौरवारेषु रात्रौ पाते व्रतेऽहनि ।  
श्राद्धाहः प्रतिपद्विक्ताभद्राः क्षौरेषु वर्जयेत् ॥’  
—भद्रा द्वितीयाद्याः । न करणम्, तिथिसाहचर्यात् ।

व्यासः—( म. भा. १३।१०४।१२७ )

‘नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिं जातो भवेन्नरः ।  
न प्रौष्ठपदयोः कार्यं नैवाग्नेये च भारत ॥  
दारुणेषु तु सर्वेषु दुष्टतारां च वर्जयेत् ।’

वादरायणः—

‘सिंहे धनुषि मीने च स्थिते सप्ततुरङ्गमे ।  
यात्रोद्वाहगृहारम्भक्षौरकार्याणि वर्जयेत् ॥’

व्यासः—

‘विवाहमौञ्जीचूडासु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम् ।  
अन्तर्वर्त्य्यां च ज्ञायायां नेष्यते केशवापनम् ॥’

इत्याद्यनेकनिषेधाः समयमयूखे ( पृ. १७९ ) उक्ताः । तथा  
जीवत्पितृकेनापि कार्यम् ॥

‘मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ।

न जीवत्पितृकः कुर्याद्दुर्विणीपतिरेव च ।’

इति दक्षीयनिषेधस्य रागप्राप्तविषयत्वाद्विधिस्पृष्टेऽनवकाशात् ।  
वस्तुतस्त्विदं दक्षस्मृतौ निबन्धे चानुपलम्भान्निर्मूलम् ।

१ अत्र ‘निषेधे संत्यपि’ इत्युपादानात्प्रायश्चित्ततीर्थयो रात्रावपि क्षौरम् ।

क. भ.



शङ्खः—( ल. शं. ५७-५८- परा. ९।५३ )

‘राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ।

केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

केशानां रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् ।

द्विगुणे व्रत आचीर्णे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥’

यत्तु— ‘विद्वद्विप्रनृपस्त्रीणां नेष्यते केशवापनम् ।

ऋते महापातकिनो गोहन्तुश्चावकीर्णिनः ॥’ इति ॥

तत्र विज्ञानेश्वरः—‘महापातकादिव्यतिरिक्ते राजादीनां वपनं नास्त्येव । महापातकादौ तु तेषां वपनानिच्छायां द्विगुणदक्षिणासहितं व्रतद्वैगुण्यमिति । अन्ये तु—महापातकादौ नित्यं राजादेरपि वपनमेव । अन्यत्र तु वपनानिच्छायां व्रतद्वैगुण्यविधिरित्याहुः । इयं च वपनाद्येतिकर्तव्यता प्राजाप्रत्यप्रभृतिष्वेव भवति, न ततोऽल्पेषु । तथा च पैठीनसिः—‘द्वादशाहे सम्पूर्णे वपनम्’ इति । वपनग्रहणं चेतिकर्तव्यतान्तरस्याप्युपलक्षणम् ।

तथा च याज्ञवल्क्यः—( ३।३२५ )

‘कुर्यान्निषवणस्नायी कृच्छ्रं चान्द्रायणं तथा ।

पवित्राणि जपेत्पिण्डान् गायत्र्या वाऽभिमन्त्रणम्’ इति ।

निवर्तमानवपनसाहचर्याच्च पञ्चगव्यादेरपि निवृत्तिः । अत एव ‘न्यूनपादव्रते वस्त्रदानम्’ इति वैष्णवे वस्त्रादिमात्रदानोक्तेरपीदमवगम्यते ॥

अथ पूर्वोक्तभस्मादिस्नानप्रकारः ।

लैङ्गे—( पू. २६।३७।३८ )

‘ईशानेन शिरोदेशे मुखं तत्पुरुषेण तु ।

उरोदेशमधोरेण गुह्यं वामेन सुव्रताः ! ॥

सद्येन पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेन तु शोधयेत् ।’

१ अत्र राजादय उपलक्षणार्थाः । यत्र राजादीनामप्येवम्, अन्येषां किमु वक्तव्यम् ? इति कैमुतिकन्यायात् । प्रा.मु.



—अत्रेशानादिपदेन 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' (तै. आ. १०।२१) इत्यादयो मन्त्रा उच्यन्ते । चतुर्थ्यन्तानि नमोन्तानीशानादिपदान्येव मन्त्रा इत्यन्ये । 'अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वं ह वा इदं भस्म' (का. रु. उ. । अ. जा. १) इति पञ्च मन्त्रा ईशानादिमन्त्रस्थान इत्यपरे ।

विष्णुः—

'अग्रमग्रमिति स्मृत्वा मानस्तोकेन (तै. आ. १०।५३) वा पुनः । गोमयैर्लेपयेत्प्राज्ञः सोदकैर्भानुदर्शितैः ।'

योगयाज्ञवल्क्यः—

'त्रिधा कृत्वा मृदं तां तु गोमयं च विशेषतः ।

अधमोत्तममध्यानामङ्गानां क्षालनं च तैः ॥'

कौर्मै— ( उ. १८।५९ )

'गोमयस्य प्रमाणं तु येनाङ्गं लेपयेत्ततः ।' इति ।

अथ मृत्तिकास्नानम् ।

जमदग्निः—

'अश्वक्रान्तेति (तै. आ. १०।८) वै शुद्धां मृत्तिकामाहरेच्छनैः ।

जमोमित्रस्ये ( ऋ. सं. ७।८।१२ ) त्यादित्याय दर्शयेत्समृदौ करौ ॥

गन्धद्वारामिति ( तै. आ. १०।१० ) जप्त्वा स्वान्यङ्गान्यनुलेपयेत् ॥

'शिवपुराणे—

'अश्वक्रांत इति स्मृत्वा मन्त्रेणामन्त्र्य मृत्तिकाम् ।

उद्धरेदुद्धृतासी- ( तै. आ. १०।८ )ति मन्त्रेण सुसमाहितः ॥

१ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्जाबालोपनिषद्वतैः । सप्तभिर्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च' ॥ ( सु. सं. ४।३।१८ ) [ उपर्युक्तश्लोकनिर्दिष्टप्रमाणवचसा 'अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । देवा भस्म । ऋषयो भस्म ।' इति सप्त मन्त्राः 'सर्वं ह वा इदं भस्म ।' इत्यष्टमो भस्मजाबालोपनिषदि । परमत्र मूले क्रमेण अग्निरित्यादयः सर्वे ह वान्ताः षण्मन्त्राः सन्ति । उक्तं च 'पञ्च मन्त्राः' इति । तच्चिन्त्यम् । ]



४ नमो मित्रस्येति ( ऋ. सं. ७।८ ११। ) ऋचा दर्शयित्वा च भानवे ।  
आरुह्येति च गात्राणि समालभ्य द्विराचमेत् ॥'

अनुपलेपने मन्त्रान्तरमाह योगी—

‘आलभेत मृदाङ्गानि इदं विष्णुरिति ( ऋ. सं. १।२।७ ) त्यूचा ।’  
मृत्परिमाणं कौर्मे—( उ. १८।५९ )

‘मृत्तिका च समुदिष्टा त्वार्द्रामलकमात्रिका’ इति ।

क्रम उक्तो नारदेन—

‘आयुष्कामः शिरोलेपं मृदा कुर्याद् द्विजः पुरा ।  
श्रीकामः पादयोः शौचं मृदा पूर्वं समाचरेत् ॥’

पारस्करः—

‘एकया तु शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ।  
मृद्धिश्च तिसृभिः कार्यं षड्भिः पायु तथैव च ॥  
कटिवस्त्यूरुजङ्घाश्च पादौ च तिसृभिस्ततः ।  
तथा हस्तौ परिक्षाल्य द्विराचामेत्समाहितः ॥’

योगी—

‘मृद्धिरद्विश्च गात्राणि क्रमशस्त्ववनेजयेत् ।  
शीर्षाद्यानाभि सर्वाणि स्मरन्विष्णुमनामयम् ॥  
कटिवस्त्यूरुजङ्घे च चरणौ च त्रिभिस्त्रिभिः ।  
तथैव हस्तावाचम्य नमस्कृत्य जलं ततः ॥

यत्किञ्चेदमिति ( ऋ. सं. ५।६।११ ) मन्त्रेण नमस्येत्प्रयताञ्जलिः’ ॥

अत्र विरुद्धानां मृत्सङ्ख्यादीनां यथाशाखं व्यवस्थेति हेमाद्रिः ।  
इति मृत्स्नानविधिः ।

अनन्तरं चतुर्थे वारिस्तानमुक्तम् । तत्र मन्त्रो ब्रह्माण्डपुराणे—

‘आपो अस्मानिति ह्युक्त्वा भास्कराभिमुखः स्थितः ।

इदं विष्णुर्जपित्वा च प्रतिस्रोतो निमज्जति ॥’

महार्णवे तु — वैकल्पिकौ द्वौ मन्त्रानुक्तौ ‘इदमापः प्रवहत’  
( ऋ. सं. १।२।१२ ) इति ऋक् ।

२ आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रणोदय । नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि ।  
सुव्रते ! ( मत्स्य पु. १०२।१२ ) ॥’ ‘अतो देवेति ( ऋक्सं. १।२।७ ) मन्त्रेण’  
इति पाठः । म. र. भू.



‘आपोद्दिष्टा’ (ऋ. सं. ७।६।५) इति ऋचो वेति । तत्र मूलं मृग्यम्  
अनन्तरं पञ्चगव्यस्नानान्युक्तानि । तत्र तद्ग्रहणमन्त्रा मात्स्ये—  
( २६७।५—७ )

‘सावित्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।  
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥  
तेजोऽसीति घृतं तद्वदेवस्य त्वेति चोदकम् ।  
कुशमिश्रं जपेद्विद्वान्पञ्चगव्यं भवेत्ततः ॥’ इति ।

पाराशर्ये तु— ( ११।३३ )

‘तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।  
पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निमग्निधौ ॥’ इति ।

इति द्वितीयः श्लोक उक्तः । ‘देवस्य त्वा’ इत्यनन्तरं ‘अभिषिञ्चामि’  
इति वाक्यशेषः पूरणीय इति निबन्धकृतः ।

यद्यपि मात्स्ये देवप्रतिष्ठायां देवस्नानार्थपञ्चगव्यग्रहणे एते  
मन्त्रा उक्ताः, पाराशरेण च ब्रह्मकूर्चप्रकरणे; तथाप्युभयत्रापि कुशोदक-  
सहितानां घण्टां गोमूत्रादीनां ‘पञ्चगव्यं भवेत्ततः’ इति ‘पञ्च-  
गव्यमृचा पूतं’ इति च पञ्चगव्यमिति परिभाषेति गम्यते । कस्याश्च  
प्रकरणेन नियमाभावाद्यत्र पञ्चगव्यविनियोगस्तत्रैतदेव मन्त्राद्यव-  
गन्तव्यम्, अन्यथा गव्यमिति तद्धितस्य गव्यशृङ्गतक्रादिसाधारण्येन  
तेनापि स्नानं स्यात् ॥ केचित्तु—

‘मलापकर्षणं कार्यं बाह्यशौचप्रसिद्धये’ इति बाह्यशरीरमलशोधन-  
मात्रार्थत्वादमन्त्रकाप्येव तानीत्याहुः । जमदग्निः—

‘हिरण्यशृङ्गं वरुण- ( तै. आ. १०।१२ ) मित्यापोऽभिप्रपद्यते  
‘सुमित्र्या’ इत्यपः स्पृष्ट्वा ‘दुर्मित्र्यास्तु’ ( तै. आ. १०।११ ) वहिःक्षिपेत् ।  
‘यदपां कूर- ( तै. आ. १०।१३ ) मित्यापस्त्रिरालोड्य तु पाणिना ।’

प्रायश्चित्तचरणपर्यन्तं धर्मानाह शङ्खः—

‘प्रायश्चित्तमुपासीनो वाग्यतस्त्रिरुपस्पृशेत् ।

एकवासाद्र्वासा वा लघ्वाशी स्थण्डिलेशयः ॥

१ यद्यपि ‘तेजोऽसि’ ‘देवस्य त्वा’ इत्यनयोर्यजुष्टादवेति साधारणव्यपदेशो  
नोपपद्यते, तथापि ‘सृष्टीरुपदधाति’ इतिवत् सूम्ना तत्सिद्धिरिति न दोषः । वि.स.



‘स्थानवीरासनी मानी मौञ्जी दण्डकमण्डलुः ।

भैक्षचर्याग्निकार्यं च कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् ॥’

—उपस्पर्शः स्नानमित्यपराकैः । दिवास्थिती रात्रौ चोपवेशनं वीरा-  
सनमिति विज्ञानेश्वरः । कुड्याद्यनाश्रयेणाहोरात्रमुपवेशनमिति शूल-  
पाणिः । मनुः—( ११।२२४ )

‘स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽथः शयीत वा ।’

कूष्माण्डैः ‘यदेवा देवहेडनम्’ इत्याद्यैः ।

वासिष्ठः—

‘महाव्याहृतिभिर्होमः सावित्र्या वाऽन्वहं स्वयम् ।

कर्त्तव्यः पावनः सम्यक् सर्पिषा च तिलैस्तथा ॥’

द्रव्याणां व्याहृतिगायत्र्योश्च विकल्प इत्यपराकैः ।

तत्रैव पुराणे—

‘आपोहिष्ठेति सूक्तं तु शुद्धवत्योऽघमर्षणम् ।

शंवत्यः स्वास्तिमत्यश्च पावमान्योऽघमर्षणम् ॥

१ महाव्याहृत्यश्च भूराद्यास्तिलः, तदाह मनुः— ‘उक्कारपूर्विकास्तिलो महा-  
व्याहृतयोऽव्ययाः ।’ ( २।८१ ) इति । आसां च त्रित्वं जप एव, होमे तु  
व्यस्ता प्रयोज्याः । समस्ता अपि प्रयोज्याः शास्त्रान्तरदर्शनात् । अप० ।  
महाव्याहृतयो ‘भूरमये च०’ इत्याद्या इत्यन्ये ।

२ ‘आपो हिष्ठा’ ( ऋ. सं. ७।६।५ ) इत्यृग्वेदे प्रसिद्धम् । शुद्धवत्यः—  
‘एतो न्विन्द्रं स्तवाम्’ ( ऋ. सं. ६।६।३१ ) इत्याद्यास्तिलः । स्मृ. चं. ।  
अघमर्षणम् ‘कृतं च’ ( ऋ. सं. ८।८।४८ ) इत्याद्यास्तिलः । स्मृ. चं. ।  
अत्र वाचस्पतिमिश्रीये द्वैतनिर्णये— ‘अघमर्षणसूक्तं माध्यन्दिनीयानां नास्त्येव ।  
ऋग्वेदे तैत्तिरीयके चास्ति । तत्र तैत्तिरीयकस्य याज्ञवल्क्येनोद्गीर्णतया माध्यन्दि-  
नीयैस्तदुक्तं न परिगृह्यते, किंतु ऋग्वेदोक्तमेवाघमर्षणसूक्तमादेयम्—इति निर्णी-  
तम् । शंवत्यः ‘शं न इन्द्राग्नी’ ( ऋ. ५।३।२८ ) इत्यादयः । ‘शंवतीः  
पारयन्ति’ ( ऋ. ५।३।३० परि० ) इत्यादय इति नन्दपण्डितः । स्वास्ति-  
मत्यः ‘स्वास्ति नो मिमीतां०,’ ( ऋ. ४।२।७ ) इत्याद्याः । पावमान्यः—  
‘स्वादिष्ठेति सूक्तानां सप्तषष्ठिरिहोदिताः । दशोत्तराण्युचां चैव पावमानीः  
शतानि षट् ॥’ इति शौनकः । ‘स्वादिष्ठ्या’ ( ६।७।१६ ) इत्यादयो ‘यत्ते  
राजञ्छृतं हविः ।’ ( ऋ. ७।५।२८ ) इत्येतदन्ताः ॥ अप० । ‘पवमानः  
सुवर्जनः’ ( तै. ब्रा. १।४।८ ) इत्यादय इति केचित् । अघमर्षणम्—व्रतविशेषः ॥  
तद्विधिमाह विष्णुः—( ४६।२—९ ) ‘त्र्यहं नाश्रीयाम् । प्रत्यहं च त्रिषवणं स्नान-  
माचरेत् । त्रिः प्रतिस्नानमप्यु मज्जनम् । मग्नस्त्रिषवणं जपेत् । दिवा स्थितस्तिष्ठेत्,  
रात्रावासीनः । कर्मणोऽन्ते पयस्विनीं दद्यात् । इत्यघमर्षणम्’ इति । अपराकै तु  
‘पावमान्यस्तथैव च’ इत्येव पाठः ।



सर्वत्रैव प्रयुजीत कृच्छादिब्रतमाचरेत् ।

वैशम्पायनः—

‘ऋषभं च विराजं च शुद्धवत्स्योऽघमर्षणम् ।

गायत्रीं वा जपेद्देवीं पवित्रां वेदमातरम् ॥

शतमष्टशतं वाऽपि सहस्रमथवाऽपरम् ।’

स एव—‘स्नात्वोपतिष्ठेदादित्यं सौरीभिस्तु कृताञ्जलिः ।’

गौतमः ( २।८।९ )—‘रौरव्यौधाजपे नित्यं प्रयुजीत ।’

—‘रौरव्यौधाजपे सौमनी । पट्त्रिंशन्मते—

‘जपहोमादि यत्किञ्चित्कृच्छ्रोक्तं सम्भवेन्न चेत् ।

सर्वं व्याहृतिभिः कुर्याद्वायव्या प्रणवेन वा ॥’

हारीतः—

‘सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य ब्रतमाचरेत्’ इति ।

निवेदनं ‘अग्ने ब्रतपते ब्रतं’ इत्यादिमन्त्रेणेत्यपराकं—

पराशरः—(८।४१)

‘प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु कुर्याद्वाह्यणभोजनम् ।

शक्त्या वित्तानुसारेण प्रायश्चित्तानुरूपतः ॥

आ सहस्रादा शताद्वा दशान्तमथ वा जपेत् ।

ॐकारायं तथाऽन्यद्वा गायत्रीमथ वाऽयुतम् ॥’

१ ‘सुरूपकृतनुमूतये’ ( सा. सं. उ. ४।१।१९ ) ‘पिवासोममिन्द्र मन्दतु त्वा’ ( सा. सं. उ. ३।१।१३ ) ‘स्वादोरित्था’ ( सा. सं. उ. ३।२।१५ ) इत्युत्पन्नानि सामानि ऋषभाः ।—श्राद्धकाशिका । ‘पिवा सोमं०’ ( सा. सं. उ. ३।१।१३ ) इति विराजम् । ‘विरजम्’ इति पाठे तदन्वेष्यम् । अन्यत्प्रसिद्धम् ।

२ सौर्यैः—‘उदुत्यं जातवेदसं’ ( ऋ. सं. १।४।७ ) इत्याद्यास्त्रयोदश ‘पष्ठिश्चार्धचञ्चैतासां सूर्य एव देवतात्वं’ इत्यादिनोक्ता वा ।

३ ‘पुनानः सोमधारया०’ ( सा. सं. उ. १।१।९ ) इत्यस्यामृचि गीते—ह. द. शास्त्रदीपिकादिषु ‘यौधाजये’ इति दृश्यते ॥ एतत्सामगविषयम्, अनधीतसामवेदेन गायत्र्यादिकमेव जप्तव्यम् ।—मि. ।

४ ‘अग्ने ब्रतपते ब्रतमालभे तत्ते प्रब्रवीमि तच्छक्रेयम्’ एवं ‘वायो ब्रतपते०’ ‘सूर्य ब्रतपते०’ इति । अप० । अन्ये तु ‘अग्ने ब्रतपते ब्रतं चरिष्यामि । तच्छक्रेयं तन्मे राध्यताम् ॥ वायो ब्रतपते० । आदित्य ब्रतपते० । ब्रतानां ब्रतपते० । ( तै. ब्रा. ३।७।४ ) इति तैत्तिरीये पठिता एव ग्राह्या इत्याहुः ।



अशक्तौ प्रायश्चित्तमन्यद्वाराऽपि कार्यमिति प्रायश्चित्तविवेके ब्राह्मे-

‘रोगी वृद्धस्तु पोगण्डः कुर्यादन्यैर्व्रतं सदा’ इति ।

—कुर्यात् कारयेत् ।

पराशरः—( ६।४५ )

‘व्याधिव्यसनानि श्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा ।

उपवासो व्रतं होमो द्विजसम्पादिवानि वै ॥’

— शुद्धिकराणीति शेषः । डामरं परचक्रादि ।

व्रतान्ते कर्त्तव्यमाह पराशरः ( ११।३ )—

‘पञ्चगव्यं पिबच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद्विजः ।

एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात् ॥’

ब्रह्मकूर्चप्रकारो वक्ष्यते । शिष्टास्तु पूर्वमेव ब्रह्मकूर्चं कुर्वन्ति ।

यमः—( बृ. य. २।७ )

‘प्रायश्चित्ते व्यवसिते कर्त्ता यदि विपद्यते ।

शुद्धस्तदहरेवाऽसाविह लोके परत्र च ॥’ इति

अङ्गिरा अपि—

‘यो यदर्थे चरेद्धर्ममप्राप्य म्रियते व्रतम् ।

स तत्पुण्यफलं प्रेत्य प्राप्नुयान्मनुरब्रवीत् ॥’

छागलेयः—

‘पूर्वं व्रतं गृहीत्वा तु नाचरत्काममोहितः ।

जीवन्भवति चण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते ॥’

वायवीये—

‘लोभान्मोहात्प्रमादाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।

उपवासत्रयं कुर्यात् कुर्याद्वा केशमुण्डनम् ॥

प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।’

—वाशब्दः समुच्चये ।

१ पोगण्डः शरीरविकलः, ‘शरीरपाणिचरणैर्निसर्गेण शरीरिणः । विकलाः सद्भि-  
रुच्यन्ते पोगण्डकुणिपङ्गवः ॥’ इति नारदस्मृतिभाष्ये वररुचिवचनात् ।



## साधारणः प्रायश्चित्तप्रयोगः

३७

## अथ साधारणप्रयोगः ।

तत्र प्रायश्चित्तं तावत्स्त्रीरोगिवृद्धवालादिष्वर्द्धम् । पञ्चवर्षात्पूर्वं पादः । षोडशवर्षाधिकब्रह्मचारिणि द्विगुणम् । यतौ चतुर्गुणम् । क्षत्रविद-  
शूद्राणां पादपादहानिः । ब्रह्मवधे चतुर्विधसाहसे च तेषां द्वित्रिचतु-  
र्गुणम् । सर्वपापेष्वनुप्राहकप्रयोजकानुमन्तृनिमित्तानां क्रमात्पादपाद-  
हानिः । निमित्तिनः पादः । अनुलोमानां मातृतुल्यम् । प्रतिलोमानां  
शूद्रतुल्यम् । स्त्रीशूद्रयोरङ्गप्रधानजपहोममन्त्ररहितम् । प्रत्याम्नायाश्च  
प्राजापत्ये धेनुरेका देया । तन्मूल्यं वा । तच्च चत्वारिंशन्माषास्तदुर्द्धं  
वा हेम । रूप्यं चैतावत् । त्रिपुराणं वा रूप्यम् । द्वात्रिंशदुज्जः पुराणः ।  
द्वादशविप्रभोजनम्, अयुतं गायत्रीजपः, गायत्र्या सहस्रतिलाहुतयः,  
संहितापारायणम्, पद्भ्यां तीर्थसम्बन्धि योजनगमनम्, शुष्ककेशस्य  
द्वादशक्षानानि, प्राणायामशतद्वयं, पावकेष्टिः, पावनी वेति । एकस्मिन्  
चान्द्रायणे प्राजापत्यप्रत्याम्नायास्त्रिगुणाः, अतिकृच्छ्रे द्विगुणाः,  
त्रिंशत्प्राजापत्यसममब्दमित्यादि ॥

प्रायश्चित्तं सदाचाराद्विक्तायां तिथौ दिनान्तेऽपराह्णेऽपि वा  
द्वौ त्रींश्चतुरः पञ्च सप्त दश वा विप्रानाहिताग्नीनन्यान्वा एकमेवा-  
ध्यात्मविदं वा पर्षत्त्वेनोपवेश्य, तेभ्यो गोवृषौ तन्निष्कयं वा दत्त्वा,  
प्रदक्षिणीकृत्य साष्टाङ्गं भूमौ प्रणमेत् ।

‘सर्वे धर्मविवेक्तारो गोप्तारः सकला द्विजाः ।

मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वन्तु द्विजसत्तमाः ॥

मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषम् ।

प्रसादः क्रियतां मह्यं शुभानुज्ञां प्रयच्छथ ॥

पूज्यैः कृतः पवित्रोऽहं भवेयं द्विजसत्तमैः ।’

१ ततस्तैः ‘किं ते कार्यं, वदास्माभिः’ इति पृष्ठः अमुकशर्मणो मे जन्म-  
प्रभृत्यय यावत् ज्ञानाज्ञान ... .. सम्भावितानां पातकानां निरासार्थमनुग्रहं  
कृत्वा प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्त इत्युक्त्वा प्रणमेत्प्रार्थयेच्च । प्रा. मु.

४

X-4



इति मन्त्राभ्यां तान्प्रार्थयेदाचारात्। ततः सभ्यास्तच्छक्तिं विचार्य  
संमत्या तत्तत्प्रायश्चित्तविधिवाक्यमुक्त्वा अशक्तस्त्रीबालवृद्धरोग्यादि-  
ष्वनुग्रहं कृत्वा सभ्यान्यानुवादकविप्रद्वारासुकर्मजन्यपापनाशार्थमिदं  
प्रायश्चित्तमशक्तावसुकप्रत्यास्नायेन त्वया कार्यम्, तेन त्वं शुद्धो  
भविष्यसीति। सर्वप्रायश्चित्ते तु—तव जन्मप्रभृति अद्य यावत् ज्ञाना-  
ज्ञानकामाकामसकृदसकृत्कृतकायिकवाचिकमानसिकसांसर्गिकातिपात-  
फलघुपातकसङ्करीकरणमलिनीकरणापात्रीकरणजातिभ्रंशकरप्रकीर्णक-  
पापानां मध्ये संभावितानां नाशार्थं षडब्दम्, अशक्तौ त्र्यब्दं,  
सार्द्धाब्दं वा प्रायश्चित्तं त्वं कुर्विति।

अयं चोपदेशो व्रतकर्त्रा पुस्तकपूजने सभ्येभ्यश्च तदुद्देशेन गोदाने  
च कृते वारत्रयं कार्य इति सम्प्रदायः।

ततः कर्त्ता मासपक्षादि स्मृत्वा 'मम जन्मप्रभृत्यद्य यावत्' इत्यादि  
प्रायश्चित्तमित्यन्तं पूर्वोक्तमुक्त्वा 'अहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य

'यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।

केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्केशान्वपास्यहम्' ॥

इति मन्त्रमुक्त्वा कक्षोपस्थशिखावर्जं क्रमेण दमश्रूपपक्षकेशानुदकसंस्थान  
वापयेत्।

यतिविधवादीनां सशिखं वपनम्। ब्रह्महत्यादिष्वपि सशिखं  
सर्वाङ्गलोभां च। सधवानां ब्रह्मलकेशाग्रच्छेदनम्। राजतत्पुत्रबहुभुत-  
विप्राणामिच्छया वपनाभावः। तदा च द्विगुणं व्रतम्। दक्षिणा च  
द्विगुणा। इत्थं वापयित्वा 'आयुर्वलेम्' इत्यादिना च दन्तधावनं कृत्वा  
दश स्नानानि कुर्यात् —

तत्र भस्मस्नानम्— 'ईशानः सर्वविद्यानां' इति शिरसि।  
'तत्पुरुषाय' इति मुखे। 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः' इति हृदि।  
'वामदेवाय' इति गुह्ये। 'सद्यो जाते' इति पादयोः। प्रणवेन सर्वाङ्गे।  
यद्वा— 'ईशानाय नमः' शिरसि। 'तत्पुरुषाय नमः' मुखे। 'अघोराय

१ कर्त्ता च भवदनुग्रह इति वदेत्।

प्रा. सु.

२ आयुर्वले यशो वर्चः प्रजाः पशुवसुनि च। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो  
देहि वनस्पते! ॥ (छं. प. १।१०)



नमः' हृदि । 'वामदेवाय नमः' गुह्ये । 'सद्योजाताय नमः' पादयोः । प्रणवेन सर्वाङ्गे । 'अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वं \*ह वा इदं भस्म' इति मन्त्रैः क्रमान्मुखादिषु । ततो गोमयमादाय त्रिधा कृत्वा सूर्याय प्रदर्श्य

‘अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वनेवने ।  
तासांमृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम् ।  
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च नुद गोमय सर्वदा ’ ॥

इति मन्त्रेणैकेन भागेन नाभेरधः, परेण नाभेरूर्ध्वमाकण्ठम्, अन्येन च शिरः क्षालयेत् । 'मानस्तोके' ( ऋक्सं. १।८ ) इति वा मन्त्रः । ततः

‘अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।  
मृत्तिके ! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥’

( मत्स्यपु. १०२।१० )

—इति मृत्तिकामभिमन्त्र्य—

‘बद्धतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।  
मृत्तिके ! ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिमन्त्रिता ॥  
मृत्तिके ! हर तत्सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।  
मृत्तिके ! देहि मे पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥  
त्वया हतेन पापेन जीवामि शरदां शतम् ।’

इति ब्रह्माण्डीयमन्त्रेण खनित्वा, 'नमो मित्रस्य' ( ऋक्सं. ७।८।१२ ) इति सूर्याय प्रदर्श्य, त्रिधा कृत्वैकस्माद्भागात्षट् चतस्रो वा मृदः पादयोः जङ्घोरुकटिबन्धितेषु प्रत्येकं चतस्रः, गुह्ये षट्, उदरकुक्षिपृष्ठवक्षोहस्तकण्ठेषु द्वे द्वे, शिरस्येका । मृत्परिमाणमाद्र्दामलकमात्रम् ।

ततः ' आपो अस्मान्मातरः ' ( ऋक्सं. ७।६।२४ ) 'इदं विष्णुः' ( ऋक्सं. १।२।७ ) इत्येताभ्यां, ' देवस्य त्वा ' ( जु. य. १।१० ) इत्यनेन वा कृत्वा, गायत्र्या गोमूत्रेण, ' गन्धर्वा ' इति गोमयेन



‘ आप्यायस्व ’ ( ऋक्सं. १।६।३२ ) इति दुग्धेन, ‘ दधिक्रावणः ’ ( ऋक्सं. ३।७।१३ ) इति दध्ना, ‘ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि । प्रियं देवानामनाधृष्यं देवयजनमसि ’ ( शु. य. २२।१ ) इत्याज्येन ‘ देवस्य त्वा ’ ( तै. सं. १।१।६।६ ) इति कुशोदकेन स्नायात् । यद्वैतानि दशापि स्नानान्यमन्त्रकाण्येव कार्याणि ।

ततो ‘ हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः । यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥ यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम् । तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः पुनः ’ ( तै. आ. १०।१ ) इत्येताभ्यां तीर्थं प्रार्थ्य ‘ ॐ नमो नारायणाय ’ इत्यष्टाक्षरेण तीर्थं प्रकल्प्य ‘ ॐ भूर्भुवः स्वः ’ इति त्रिराचम्य सकृन्निमज्ज्य, ‘ याः प्रवत ’ ( तै. सं. ४।२।९ ) इत्येतया व्याहृतिभिर्गायत्र्या जलमभिमन्त्र्यापामार्गदूर्वाकुशैः ‘ काण्डात् काण्डात् ’ ( तै. ब्रा. १०।५ ) ‘ या शतेन ’ ( शु. य. १३।२०।२१ ) इति द्वाभ्यां प्रणव-व्याहृति-गायत्री - आपो हि प्राभिर्माज्जयित्वाऽन्तर्जले । ‘ ऋतं च ’ ( ऋक्सं. ८।८।४८ ) इति तृचं जप्त्वा त्रिर्निमज्ज्य देवर्षिपितृन्सन्तर्प्य शुष्कं वासो धृत्वा, त्र्यधिकैर्विप्रे-रावाहनाभौ करणस्वधावाचनरहितपार्वणविधिना श्राद्धं कुर्यात् । तत्र सर्वेष्वपि विप्रेषु विष्णोरेवावाहनम् । तत एकं गां हिरण्यं च दत्त्वा, व्याहृतिभिः शालाग्रौ अष्टाविंशत्यादिसङ्ख्ययाऽऽज्यं क्रमादभिवायु-सूर्यप्रजापतिदैवत्यं हुत्वा, ब्रह्मकूर्चहोममपि कुर्यादाचारात् । तत्र ताम्रे पालाशे पात्रे वा पात्रेऽरुणायाः कृष्णाया वा गोमूत्रं पलमितमष्टमाषमितं वा गायत्र्याऽऽदाय, श्वेताया अङ्गुष्ठार्द्धमितं षोडशमापमितं वा गोमयं ‘ गन्धद्वारां ’ ( तै. ब्रा. १०।१ ) इति, ताम्राया हेमवर्णाया वा पयः सप्तपलं द्वादशमाषमितं गोमयाष्टगुणं गोमूत्रत्रिगुणं वा ‘ आप्यायस्व ’ इति, रक्तायाः कृष्णाया वा दधि त्रिपलं दशमाषमितं गोमयात्पञ्चगुणमष्टगुणं गोमूत्रद्विगुणं वा ‘ दधिक्रावणः ’ ( ऋक्सं. ३।७।१३ ) इति, कपिलाया नीलाया वा घृतमेकपलमष्टमाषमितं गोमयाच्चतुर्गुणं वा ‘ तेजोऽसि शुक्रमसि ’ ( शु. य. २२।१ ) इति, कुशोदकं च पलमितं चतुर्माषमितं वा ‘ देवस्य त्वा ’ इति गृह्णीयात् । गोमूत्रादि कपिलं वा ग्राह्यम् । अलाभे गव्यमात्रम् । एतन्मन्त्रान्ते गृह्णामीति वाक्यशेषः ।



ततः 'आपो हि ष्ठा' ( ऋक्सं. ७।६।५ ) इति हस्तेनालोड्य, 'मान-  
स्तोके ( ऋ. सं. १।८।६ ) इति यज्ञिकाष्टेन निर्मथ्य, सप्तावरैः  
कुशैः त्रिभिः पलाशपत्रैर्वा जुहुयात् ।

मन्त्रास्तु—' ॐ इरावती येनुमतीहि भूतं० ' ( ऋक्सं. ५।६।२४ )  
पृथिव्या इदं न ममेति त्यागः । 'इदं विष्णुः' ( ऋक्सं. १।२।७ )  
विष्णवे इदं० । 'मानस्तोके०' रुद्राय० । 'शन्नो देवी' ( ऋक्सं. ७।६।५ )  
अद्भ्यः स्वाहा, अद्भ्य इदं० । अग्नये स्वाहा, अग्नय इदं० । सोमाय स्वाहा,  
सोमायेदं० । गायत्र्या सवित्रे० । 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो० ।  
( ऋक्सं. ८।७।४ ) ॐ प्रजापतये स्वाहा, प्रजापतय इदं० । अयं  
च ब्रह्मकूर्चहोमोऽन्ते प्रमाणवान् । ततः स्विष्टकृदादि होमशेषं  
समाप्य, तारकोदये होमावशिष्टं पञ्चगव्यं प्रणवेनालोड्य, प्रणवेन  
निर्मथ्य, प्रणवेन पीत्वा, सभ्योपदिष्टं सङ्कल्पितं प्रायश्चित्तं साक्षाद्यथा-  
सम्भवप्रत्याग्रायेन वा कृत्वा, पूर्ववद्व्याहृतिभिराज्यहोमं ब्रह्मकूर्चहोमं  
विष्णुश्राद्धं च कृत्वा, गोहिरण्यादिदक्षिणां च दत्त्वा, शिरसा तृण-  
भारमानीय गोभ्यो दत्त्वा, ताभिर्भक्षिते शुद्धयेत् ।

॥ इति श्रीमीमांसकशङ्करभट्टात्मजनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे  
प्रायश्चित्तमयूखे साधारणः प्रायश्चित्तप्रयोगः ॥

अथ कृच्छ्रादिस्वरूपम् ।

याज्ञवल्क्यः—( ३।३१८-३१९ )

'एकभक्तेन नक्तेन तथैवाऽयौचितेन वा ।

उपवासेन चैकेन लघुकृच्छ्रं सदाहृतः ॥

यथाकथञ्चिद्भिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते ।

एष एवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥' इति ।

१ नारायणभट्टैरस्य स्थाने 'ब्रह्म ज्ञानं' इति मन्त्रो लिखितः ।

२ एतच्च प्राशनं ग्रामाद्वहिः कार्यमिति नारायणभट्टाः ।

३ न विद्यते याचितं यस्मिन् भोजने तदयाचितम् । तेन कालविशेषानुपादाना-  
दिवा रात्रौ वा सकृदित्येव । तपोरूपत्वात्कृच्छ्राणां द्वितीयभोजने तदनुपपत्तेः ।  
अयाचितमिति न केवलपरकीयान्नयाचनप्रतिषेधः, अपि तु स्वकीयमपि परि-  
चारकभार्यादिभ्यो न याचितव्यम् । प्रेषणाध्येषणयोः समानत्वाद्याच्यायाः ।  
अतः स्वगृहेऽपि भृत्यभार्यादयोऽनाहृता एव यदि भोजनमुपहरन्ति, तर्हि भोक्तव्यम् ।  
नान्यथा ।—मि.



लघुकृच्छ्रस्यैव शिशुकृच्छ्र इति नामान्तरम् । यथाकथञ्चित्  
अनुलोमः, प्रतिलोमो, दण्डकलितवदावृत्तः, स्वस्थानविवृद्धो वा ।  
एताञ्चत्वारोऽपि पक्षान्स्मृत्यन्तरसिद्धान् यथाकथञ्चित्पदेनैव सञ्जग्राह  
योगी । आससङ्ख्यामाहापस्तम्बः—( १।२९।५० )

‘सायं द्वाविंशतिर्मासाः प्रातः षड्विंशतिः स्मृताः ।

चतुर्विंशतिरायाच्याः परं निरशनं स्मृतम् ॥

कुक्षुटाण्डप्रमाणाः स्युर्यथा वाऽऽस्यं विशेषसुखम् ॥’

पाराशर्ये तु—

‘सायं तु द्वादश मासाः प्रातः पञ्चदश स्मृताः ।’ इति पूर्वार्द्धम् ।

चतुर्विंशतिमते तु—

‘प्रातस्तु द्वादश मासाः सायं पञ्चदशैव तु ।

अयाचिते तु द्वावष्टौ परं वै मारुताशनः ॥’ इति ।

आसां च सङ्ख्यानां शक्त्या विकल्पः । अतिकृच्छ्रे उपवासभिन्न-  
नवदिने भोजनेषु पाणिपूरान्नविधिः । पाणिपूरमेकमासमितम् ।

‘एकैकं मासमग्नीयात्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।

त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥’

इति मनुक्तेः ( १।२१।३ ) ।

साङ्गं प्राजापत्यमाह गौतमः—( ३।८।२—१६ )

‘हविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्रियात् । अथापरं त्र्यहं  
नक्तं भुञ्जीत । अथापरं त्र्यहं न कञ्चन याचेत् । अथापरं त्र्यहमुपवसेत् ।  
तिष्ठेदहनि रात्रावासीत् क्षिप्रकामः । सत्यं वदेत् । अनार्यैर्न सम्भाषेत ।  
रौरवयौधाजपे नित्यं प्रयुञ्जीत । अनुसवनमुदकोपस्पर्शनम् ‘आपो  
हि ष्ठा’ इति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्माज्जीयीत । ‘हिरण्यवर्णाः शुचयः  
पावकाः’ (तै.सं.५।६।१) इत्यष्टाभिः ।

अथोदकतर्पणम् । नमोऽहमाय मोहमाय मंहमाय धुन्वते  
तापसाय पुनर्वसवे ( १ ) नमो मौञ्ज्यायौर्व्याय सुविविदाय  
सुविदे सर्वविदाय ( २ ) नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारदाय  
पारयिष्णवे ( ३ ) नमो रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यम्बकायैकचरा-  
याधिपतये हराय शर्वयेशानायोग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्दिने ( ४ ) नमः



सूर्यायादित्याय ( ९ ) नमो नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय ( ६ ) नमः  
 कृष्णाय पिपालाय ( ७ ) नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेंद्राय हरिकेश-  
 योर्ध्वरेतसे ( ८ ) नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय कामाय काम-  
 रूपिणे ( ९ ) नमो दीप्ताय दीपरूपिणे ( १० ) नमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणे ( ११ )  
 नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषाय ( उत्तमपुरुषाय )  
 ब्रह्मचारिणे ( १२ ) नमश्चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससे ( १३ ) नम इति ।  
 एत एवादित्योपस्थानम् । एता एवाज्याहुतयः । द्वादशरात्रस्यान्ते चरुं  
 अथयित्वैताभ्यो जुहुयात् । अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽग्नीषोमाभ्या-  
 भिन्द्रामिभ्यामिन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्ट-  
 कृत इति । अन्ते ब्राह्मणभोजनम् । एतेनातिकृच्छ्रो व्याख्यातः इति ।

‘ नमोऽहमाय ’ इत्यादयस्त्रयोदशमन्त्राः नमःपूर्वा नमोन्ताश्चेति  
 हरदत्तः । कौथुमब्राह्मणे तु तथैव पाठः ।

अथ कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ।

याज्ञवल्क्यः ( ३ । ३२० )

‘ कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।’ इति ।

—पयो जलम्, ‘चरेत्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु पिबेत्तोयं तु शीतलम्’ इति  
 ब्रह्माण्डपुराणात् ।

अथ पराकः ।

स एव ( ३ । ३२० )

“ द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ।” इति ।

मासोपवासकृच्छ्रमाह जावालः—

‘ अनश्रन्मासमेकं तु महापातकनाशनम् ।’ इति ।

यावककृच्छ्रमाह शङ्खः— ( १८ । १० )

‘ गोपुरीषाद्यवानश्रन् मासमेकं समाहितः ।

व्रतं तु यावकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥’

तप्तकृच्छ्रमाह मनुः— ( ११ । २१४ )

‘ तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।

प्रतिच्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥’

१ पयः क्षीरमित्यपराकं विज्ञानेश्वरादयः ।



पराशरः—( ४।८ )

‘षट्पलं तु पिबेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ।  
पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रो विधीयते ॥’

तप्तकृच्छ्रमुक्त्वा शङ्खलिखितौ—

‘एष एव शीतैः शीतकृच्छ्रः ।’ इति ।

ब्रह्मकूर्चमाह जाबालः—

‘अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः ।  
पञ्चगव्यं पिबेत्प्रातर्ब्रह्मकूर्चविधिः स्मृतः ॥’

प्रजापतिः—

‘पालाशं पद्मपत्रं वा ताम्रं वाऽथ हिरण्यमयम् ।  
गृहीत्वाऽऽसादयित्वा तु ततः कर्म समाचरेत् ॥’

पराशरः—( ११।२९-३० )

‘गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वतायाश्चैव गोमयम् ।  
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥  
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा ।’ इति ।

स एव—( ११।३०-३१ )

‘मूत्रमेकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धं तु गोमयम् ।  
क्षीरं सप्तपलं दद्यादधि त्रिपलमुच्यते ॥  
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ।’

---

१ ‘वौधायनः—( ४।५।२६ ) ‘गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।  
यवाचामेन संयुक्तो ब्रह्मकूर्चोऽतिपावनः ॥’



गवां वर्णान्तरस्य पञ्चगव्यपरिमाणान्तरस्य च बोधकवाक्यानि  
ग्रन्थान्तरे द्रष्टव्यानि । तदर्थस्तु प्रयोगेऽस्माभिः सङ्गृहीतः ।

पराशरः ( ११।३३ )

‘ आपो हि छेति चालोड्य मानस्तोकेति मन्त्रयेत् ॥’

स एव ( २१।२४ )

‘ सप्तावरास्तु ये दर्भा वच्छिन्नाग्राः शुक्रत्विवः ।

तैरुद्धृत्य तु होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि ॥’ इति ।

प्रजापतिस्तु—

‘ स्थापयित्वाऽथ दर्भेषु पालाशैः पत्रकैरथ ।

तत्समुद्धृत्य होतव्यं देवताभ्यो यथाक्रमम् ॥’

पराशरः ( ११।३५-३६ )

‘ इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवती ।

एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद्विजः ॥’

१ विष्णुधर्मोत्तरे—(१।९३।३-४)

‘ पयः काञ्चनवर्णाया नीलायाश्च तथा घृतम् ।

दधि वै कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥

गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः पञ्चगव्यं प्रकल्पयेत् ।’

एतासां विशेषलक्षणानि विधानमालायाम्—

‘ नवाम्रपल्लवाभा या पीतनेत्रा सुलक्षणा ।

सा धेनुः कपिला ज्ञेया साक्षाद्विष्णुस्वरूपिणी ॥

लाक्षारससमानाभा श्वेतरोम्णी ललाटतः ।

सा रक्ता कथिता विष्णुस्वरूपा धेनुरुत्तमा ॥

या गौः स्फटिकसङ्काशा सुस्निग्धा स्निग्धलोचना ।

सा गौः श्वेता समादिष्टा मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

अतसीपुष्पसङ्काशा लम्बपीनपयोधरा ।

सा नीली सुरभिर्ज्ञेया महापापविनाशिनी ॥

भिन्नाञ्जनसमानाभा पीनोद्री चारुमस्तका ।

सा कृष्णा कृष्णरूपा च महादोषनिवारिणी ॥’ इति ।

‘ कांस्यपात्रस्थितविलीनघृतसमानवर्णा कपिला ’ इति कुत्रचित् ।

‘ एकवर्णा तु कपिला ’ इति स्मृत्यन्तरम् ।



प्रजापतिः—

‘अग्नये चैव सोमाय सावित्र्या च तथैव च ।  
प्रणवेन तथा हुत्वा स्विष्टकृच्च तथैव च ॥

मरीचिः—

‘अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । इरावती । इदं विष्णुः । मानस्तोके ।  
गायत्र्या । ‘प्रजापते न त्वदेतानि’ इत्याज्याहुतीरमौ जुहुयात् ।

पराशरः— ( ११।३६ )

‘आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु ।  
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिवेच्च प्रणवेन तु ॥’

मरीचिः—

‘पालाशेन च पत्रेण विल्वपत्रेण वा पिवेत् ।  
तृतीयं ताम्रपात्रं वा ब्रह्मपात्राणि तानि वै ॥’

वृद्धपराशरः— ( ९।३९ परा. ११।३९ बृ. शा. १२ )

‘यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके ।  
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं शुष्कमग्निरिवेन्धनम् ।’ इति  
पानदिने चोपवासः ।

ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु दहत्यग्निरिवेन्धनम् ।

इति ( ६।२९ ) पराशरोक्तेः ।

अथ सान्तपनम् ।

शङ्खः—( १।८।८ )

‘गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।  
एकरात्रोपवासश्च कच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥  
एतदेव ज्येष्ठाभ्यस्तं यतिसान्तपनं स्मृतम् ।’

महासान्तपनमाह याज्ञवल्क्यः— ( ३।३१६ )

‘पृथक् सान्तपनद्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।  
सप्ताहेन तु कच्छ्रोऽयं महासान्तपनः स्मृतः ॥’

१ यत्त्वगस्थि—( ११।३० ) इति श्लोकोत्तरार्द्धस्यैव पाठान्तरमिदं मिताक्षरायां  
( ३।३१४ ) पठ्यते ।



यमः—

‘एतान्येव च पेयानि एकैकं च व्यहं द्रव्यम् ।

अतिसान्तपनं नाम श्रपाकमपि शोधयेत् ॥’

द्वादशाहोऽयम् ।

‘त्र्यहं पिबेत्तु गोमूत्रं त्र्यहं वै गोमयं पिबेत् ।

त्र्यहं दधि त्र्यहं क्षीरं त्र्यहं सर्पिस्ततः शुचिः ॥’

षष्ठदशाहोऽयम् ।

जान्नालः—

‘एकैकमेतदेवं हि त्रिरात्रमुपयोजयेत् ।

त्र्यहं चोपवसेदन्त्यं महासान्तपनं विदुः ॥’ इति ।

एकविंशतिरात्रोऽयम् ।

अथ तुलापुरुषकृच्छ्रः ।

शङ्खः—( १८।१० )

‘पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम् ।

उपवासान्तराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ॥’

अथ चान्द्रायणम् ।

यमः—( ६।६४, ६३, २१—२३ )

‘वर्द्धयेत् पिण्डमेकैकं शुक्ले कृष्णे च हासयेत् ।

एतच्चान्द्रायणं नाम यवमध्यं प्रकीर्तितम् ॥

एकैकं हासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ।

एतत्पिपीलिकासमं चान्द्रायणमुदाहृतम् ।

त्रींस्त्रीन् पिण्डान्सन्मश्रीयान्नियतात्मा दृढव्रतः ।

हविष्यान्नस्य वै मासमृषिचान्द्रायणं स्मृतम् ॥

चतुरः प्रातरश्रीयाच्चतुरः सायमेव च ।

पिण्डानेतद्वि बालानां शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥

पिण्डानष्टौ समश्रीयान्मासं मध्यन्दिने रवौ ।

यतिचान्द्रायणं ह्येतत्सर्वकलमपनाशनम् ॥’

—यतिचान्द्रायणमिति संज्ञामात्रम् । तेन न यतिमात्रस्यैवात्राधिकारः,  
किन्तु सर्वेषाम् । एवं शिशुचान्द्रायणेऽपि ।



यवपिपीलिकामध्ययोस्तिथिहासे वृद्धौ वा प्रासानामपि हासवृद्धौ ।  
तथा च विष्णुः—(४७।२-३) प्रासानास्या विकारमश्रीयात्तांश्चन्द्रकला-  
भिवृद्धौ क्रमेण वर्द्धयेद्धानौ च हासयेदमावास्यायां च नाश्रीयादिति ।  
एतेन यत्कल्पतरुकृच्छूलपाणी आहतुः—‘कृष्णप्रतिपदि पञ्चदश  
प्रासाः । तत एवैकहानावमावास्यामेको प्रासः । शुक्लप्रतिपदादिषु व्यादि-  
वृद्धिः’ इति तदपास्तम् ।

‘अमावास्यां न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः ।’

( १०।२ वृ. य. २।६ ) इति पराशरोक्तेश्च ।

सामान्यचान्द्रायणमाह स एव—( वि. स्मृ. ४७।९ )

‘यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीरश्रीयात्स सामान्यचान्द्रायणः’  
इति । प्रतिदिनं सङ्ख्यानियमानादरेण मासेन चत्वारिंशदुत्तरं  
शतद्वयं प्रासानश्रीयादित्यर्थः । पिपीलिकायवमध्यभिन्नचान्द्रायणेषु  
दिनान्तरेऽप्यारम्भो , न प्रतिपद्येव ।

प्रासपरिमाणमाह याज्ञवल्क्यः —( ३।३२३ )

‘ तिथिवृद्ध्या चरेत्पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसंमितान् ।’

( वृ. य. २।५ )

—शिखी मयूरः ।

चान्द्रायणप्रकरणे पराशरस्तु —( १०।३ )

‘कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु प्रासं वै परिकल्पयेत् ॥’

शङ्खस्तु—‘आर्द्रामलकमात्रास्तु प्रासा इदुव्रते स्मृताः ।’ इति ।

एतेषां च परिमाणानां शक्त्या विकल्पः ।

एकादश्यादौ नित्यप्राप्त उपवासस्तावच्चान्द्रायणविधिना बाध्यते  
एतस्य ‘धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्’ ( या. ३।३२६ ) इति  
काम्यत्वात्, लशुनभक्षणादिनिमित्ते विहितत्वेन नैमित्तिकत्वाच्च ।  
काम्यस्त्वेकादश्याद्युपवासोऽन्यद्वारा करणीयः । प्रतिनिधिना कृतेऽपि  
फलप्राप्तेः कात्यायनादिभिरुक्तत्वात् । वचनानि त्वस्मत्कृते समयमयूखे

१ ‘कुक्कुटाण्डप्रमाणं स्याद्यावद्वास्य विशेषमुखः ।’ ( अत्रिः ४।२७ )

२ ‘क्षीरादिद्रवहविष्णुशिख्यण्डपरिमितत्वं पर्णपुटकादिना सम्पादनीयम्’—म०



द्रष्टव्यानि । अयं चैकादश्याद्युपवासबाधः सामान्यचान्द्रायणभिन्नेष्वेव ।  
तत्र प्रतिदिनप्रासग्रहणनियमाभावात् ।

गौतमः—( ३।१।१-१३ ) “ अथातश्चान्द्रायणम् । तस्योक्तो विधिः  
कृच्छ्रे । वपनं व्रतं चरेद्ब्रह्मभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् ‘ आप्यायस्व ;  
‘संते पर्यासि’ ‘नवो नवः’ इति चैताभिस्तर्पणम् । आज्यहोमो हविषश्चानु-  
मन्त्रणम् । उपस्थानं चन्द्रमसः । ‘ यदेवा देवहेडनम्’ इति चतसृभिराज्यं  
बुहुयात् । ‘ देवकृतस्य’ इति चान्ते समिद्धिः । ॐ भूः, भुवः, स्वः,  
तपः, सत्यं, यशः, श्रीः, ऊर्क, इद्, ओजः, तेजः, वर्चः, पुरुषः,  
धर्मः, शिवः, इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रणं मनसा । नमः स्वाहेति वा सर्वान् ।  
प्रासप्रमाणमास्याविकारेण । चरुभैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृत-  
मूलफल्लोदकान्युत्तरोत्तरप्रशस्तानि । पौर्णमास्यां पञ्चदश प्रासान् भुक्त्वा  
एकैकापचयेन परपक्ष्मश्रीयान् । अमावास्यामुपोष्यैकैकोपचयेन  
पूर्वपक्षम् ॥ ” इति ।

बौधायनः—( ३।८।१-३ )

‘अथातश्चान्द्रायणकल्पं व्याख्यास्यामः । शुक्लचतुर्दशीमुपवसेत् । कृष्ण-  
चतुर्दशीं वा केशश्मश्रुनखलोमानि वापयित्वा श्मश्रूण्येव वा’ इत्यादि ।

१ अत्र च चान्द्रायणे पूर्वप्रक्रान्तमेकादश्युपवासादिव्रतं न लुप्यते । सङ्ख्या-  
विशेषो हि माससम्पाद्यतयाऽत्र विधीयते, न चान्द्रायणान्तरवत्प्रत्येकदिवससम्पा-  
द्यतया । शक्नोति चैकादशीमुपवसन्नपि माससम्पाद्यां चत्वारिंशच्छतद्वयात्मिकां  
सङ्ख्यां सम्पादयितुम् । चान्द्रायणान्तरेषु यथेकादशीमुपवसेत् तत्तन्निमित्तां प्रासा-  
श्रितामेकादशसङ्ख्यां नैव सम्पादयेद्देव, किन्तु विनिपातयेद्देव । यद्यपि प्रासप्रसन-  
मविधेयम्, रागतः प्राप्तत्वात्, तथापि तदश्रितां सङ्ख्यां चान्द्रायणविधिर्विषयी-  
करोत्येव—यथा दशपूर्णिमासविधिव्यापारतः प्रासानुष्ठानं गोदोहनं पशुकामविधिः ।  
तत्र यदि दशपूर्णिमासप्रयुक्तमपां प्रणयनं नास्ति, तदा ‘गोदोहनेन पशुकामस्य  
प्रणयेत्’ इत्येष शान्त्रार्थो न सिद्धयति । तथा एकादश्यादौ प्रासाप्रसने तदा-  
श्रितसङ्ख्याविशेषविषयश्चान्द्रायणविधिर्न सिद्धयत्येव । अत्रापि हि रागप्रासभोजना-  
श्रितप्राससङ्ख्याविशेषलक्षणो गुणः पापक्षयादिफलार्थत्वेन विधीयते । तेन  
‘चान्द्रायणमथापरम्’ इत्येतस्मादन्येषु चान्द्रायणेषु यदैकादश्युपवासाद्याद्रियते-  
न तदा चान्द्रायणविधिसिद्धिरिति ।—अप.



यमः—(६।५०)

‘आयसं तेजसं पात्रं चक्रोत्पन्नं विवर्जयेत् ।

अमुराणां हि तत्पात्रं देवपात्रमचक्रकम् ॥’

—चक्रोत्पन्नं घटशरावादि ।

स एव—(६।५८)

‘अङ्गुल्यग्रस्थितं ग्रासं सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।’

अत्र ग्रासैरेव प्राणायामोत्रमाह वौधायनः—(३।८।१०।१५) ‘अग्नी-  
यात्रप्राणाय त्वेति प्रथमम् । अपानाय त्वेति द्वितीयम् । व्यानाय त्वेति  
तृतीयम् । उदानाय त्वेति चतुर्थम् । समानाय त्वेति पञ्चमम् । यदा  
चत्वारस्तदा द्वाभ्यां पूर्वम् । यदा त्रयस्तदा द्वाभ्यां द्वाभ्यां पूर्वौ । यदा  
द्वौ द्वाभ्यां पूर्व त्रिभिरुत्तरमेकं सर्वैः ।’ इति । ग्रासद्वयपक्षे प्रथममाद्यै-  
स्त्रिभिरित्यं द्वाभ्याम् । एकपक्षे सर्वैरेकमित्यर्थः ।

अथ चान्द्रायणप्रयोगः ।

चतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियः पूर्वाह्ने प्राणानायस्य मासपक्षाहुल्लिख्या-  
मुकृपापक्ष्यकामः श्रीकामो देवताप्रीतिकामो रसायनादिसिद्धिकामो  
वाऽमुकचान्द्रायणं करिष्य इति सङ्कल्प्य, ‘अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि’  
( तै. ब्रा. ३।७।४ ) इत्यादिमन्त्रैर्व्रतमादित्याय निवेद्य, केशश्मश्रुलोम-  
नखानि इमंश्रूयेव वा वापयित्वा, तद्दिन उपोष्य, परदिनेऽमा चेत्तत्रा-  
प्युपोष्य, पौर्णिमा चेत्पञ्चदश ग्रासान्मुञ्जीत । तत अमोत्तरपक्षे उपचयः  
पौर्णिमोत्तरपक्षेऽपचयो ग्रासानाम् । प्रतिदिनमुदिते चन्द्रे ‘आप्यायस्व’  
( क्र. सं. १।६।२२ ) सोमं तर्पयामि । ‘सं ते पयांसि’ ( क्र. १।६।२२ )  
चन्द्रं तर्पयामि । ‘नवो नवो’ ( ८।३।२३ ) चन्द्रमसं तर्पयामि इति  
तर्पयित्वाऽऽज्येन एतैरेव मन्त्रैर्लौकिकेऽग्नौ हुत्वा एतैरेव पात्रस्थं हवि-  
रनुमन्त्र्य एतैरेव चन्द्रमुपस्थाय ‘यदेवा देवहेडनम्’ ( तै. आ. २।३ ) इति  
चतसृश्विंश प्रत्यूचमाज्यं जुहुयात् । सर्वत्राग्नये न ममेति त्यागः ।  
ततो ‘देवकृतस्य’ इति त्रिभिः समिधयं हुत्वा ‘ॐ भूः, भुवः, स्वः

१ अत्रय इदं नममेति त्यक्त्वा ।

—प्रा. सु.

२ अत्र मरुः, जनः, इत्यत्रिकं ईदृ, वर्य इति द्वयं चाग्रे नास्ति ।

—प्रा. सु.



तपः, सत्यम्, यशः, श्रीः, ऊर्कः, ईदः, ओजः, तेजः, वर्चः, पुरुषः, धर्मः, शिवः' इत्येतैः पञ्चदशभिरेकैकक्रमेण पात्रस्थं ग्रासमनुमन्त्र्य मनसा नमः स्वाहेत्युक्त्वा वा सर्वाननुमन्त्र्यैकैकमङ्गुल्यग्रैर्गृहीत्वा सावित्र्याऽनुमन्त्र्य भक्षयेत्। तत्र प्रथमदिन एकग्रासभक्षणे प्राणाय स्वाहेत्यादयः पञ्चापि मन्त्राः। द्वयोर्ग्रासयोराद्यैस्त्रिभिस्त्रिभिर्मन्त्रैरेकं, द्वाभ्यामपरम्। त्रिषु ग्रासेषु द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वौ एकेनान्त्यः। चतुर्षु द्वाभ्यां पूर्व, एकैकेनान्त्यान्। पञ्चभ्योऽधिका ग्रासास्तूष्णीमेव भक्षणीयाः, समाप्तौ व्यवसान् विप्रान् भोजयित्वा गां दक्षिणां दद्यात्। आ समाप्ति प्रत्यहं त्रिपवणज्ञानं सौरमन्त्रैः कृताञ्जलेरादित्योपस्थानं गायत्र्या व्याहृतिभिः कृष्माण्डैर्वाऽऽज्यहोमः। दिवा स्थितिः, रात्रावुपवेशनम्। अशक्तौ शयनम्। यथाशक्ति— 'आपो हि ष्ठा' इति सूक्तम्, ' एनो न्विन्द्र ' 'कृतं च' इति तृचम्, 'शन्न इन्द्राग्नी' (ऋ. ५।३।८) 'स्वस्ति नो मिमीतां' (ऋ. ४।३।७) 'पुनंतु मा देवजनाः' (तै. ब्रा. ) ऋषभं विरजं गौरवथौवाजपे सामनी च पठेत्। एतेषामसम्भवे गायत्री व्याहृतीः प्रणवं वा जपेत्। एतच्च विप्रभोजनदक्षिणादानादिजपान्तं सर्वेष्वपि प्राजापत्यादिब्रतेषु तुल्यम्।

॥ इति चान्द्रायणव्रतप्रयोगः ॥

अथ सोमायनम्।

मार्कण्डेयः—

'गोक्षीरं सप्तरात्रं तु पिवेत्स्तनचतुष्टयात्।

स्तनत्रयात्सप्तरात्रं सप्तरात्रं स्तनद्वयात्॥

स्तनेनैकेन पङ्कजं त्रिरात्रं वायुमुभवेत्।'

एतत्रिंशद्दिनसाध्यम्।

चतुर्विंशतिदिनसाध्यमाह हारीतः—'चतुर्थीप्रभृति चतुःस्तनेन त्रिरात्रम्। त्रिस्तनेन त्रिरात्रम्। द्विस्तनेन त्रिरात्रम्। एकस्तनेन त्रिरात्रम्। एवमेकस्तनप्रभृति पुनश्चतुःस्तनान्तम्। 'या ते सोम चतुर्थी तनूस्तया नः

१ एकैकस्य ग्रासस्य मनसाऽनुमन्त्रणं कर्तव्यम्।—ह. द.



पाहि तस्यै स्वाहा । 'या ते सोम पञ्चमी' 'षष्ठी' इत्येवं यथार्था-  
स्तिथिहोमाः । एकमास्वा एनोभ्यः पुतश्चन्द्रमसः समानतां सामान्यतां  
समानलोकतां सायुज्यं च गच्छति । समाप्ते ब्राह्मणतर्पणं दक्षिणादानं  
च " इति ।

—चतुर्थी कृष्णा । समानता तुल्यत्वम् । सामान्यताऽपरचन्द्रत्वम् ।  
सायुज्यं चन्द्रामेदः ।

सर्वेषां कृच्छ्राणां फलार्थत्वमप्याह व्यासः—

'श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामस्तथैव च ।

देवताराधनपरस्तथा कृच्छ्रं समाचरेत् ॥

रसायनानि मन्त्राश्च तथा चैवौषधानि च ।

तस्य सर्वाणि सिध्यन्ति यो नरः कृच्छ्रकृद्वेत् ॥

वैदिकानि च सर्वाणि यानि काम्यानि कानिचित् ।

सिध्यन्ति सर्वदा तानि कृच्छ्रकर्तुर्न संशयः ॥' इति ।

अथ प्राजापत्यादिप्रत्याम्नायाः ।

तत्र तावच्चान्द्रायणद्वादशाब्दादित्रतविषयेष्वपि पापेषु प्राजापत्य-  
कल्पनामाहुर्यमौशनसौ — (उ. ३।१९)

'यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तमिह पातकनाशनम् ।

प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शोधयेन्नात्र संशयः ॥'

प्राजापत्यश्च व्रतान्तरानुरोधेनावृत्तो वा ।

प्राजापत्यप्रत्याम्नायश्चतुर्विंशमतिमते—

'कृच्छ्रो देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ।

तिलहोमसहस्रं तु वेदपारायणं तथा ॥

विप्रा द्वादश वा भोज्या पावकेष्टिस्तथैव च ।

अन्या वा पावमानेष्टिः समान्याहुर्मनीषिणः ॥'

अपराके—

'समिद्धृतं हविर्धान्यं तिलान्वा मारुताशनः ।

हुत्वा द्वादशसाहस्रं गायत्र्या कृच्छ्रमाप्नुयात् ॥' इति ।

—द्वादशभिरधिकं साहस्रं द्वादशसाहस्रम् ।

१ विशेष्ये एकसङ्ख्यापरिच्छिन्नेऽपि संख्यान्तरपरिच्छिन्नावृत्तिवैशिष्ट्यस्य वक्तुं  
शक्यत्वात् । सहस्रमेव साहस्रम् । -अप.



याज्ञवल्क्योऽपि -- ( ३१३०९ )

‘यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।

तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या वाचनं तथा ॥’

—संकीर्णं पापयुक्तम् । वाचनं दानम् । तिलैरित्यत्रापि संबध्यते तिलदानमित्यर्थः । वेदपारायणं संहितापारायणम्, अयुतगायत्री-भिरूपान्तरितत्वात् । ‘संहिताध्ययनं यावत्तं कालं सगवित्रीं जपेत्’ इत्यपराकं प्रचेतस्स्मृतेश्च ।

पराशरः—

‘कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या उद्वासस्तथैव च ।

धेनुप्रदानं त्रिप्राय सममेतच्चतुष्टयम् ॥’ इति

—उद्वासोऽहोरात्रमिति महर्णवे ।

मार्कण्डेयः—

‘प्राजापत्यक्रियाशक्तौ धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।

धेनोरभावे दातव्यं मूल्यं तुल्यं न संशयः ॥’ इति ।

संवर्तः—

‘गवामभावे दातव्यं तुल्यं मूल्यं न संशयः ।’ इति ।

मूल्यमुक्तं माधवीये ब्रह्मपुराणे—

‘गवामभावे निष्कं स्यात्तदुद्धं पादमेव वा ।’

रूप्यपरिमाणे निष्कपरिभाषामाह याज्ञवल्क्यः — ( ३१३६५ )

‘निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः’ इति

—सुवर्णचतुष्टयं समतोलितं रूप्यं निष्कमित्यर्थः ।

लीलावत्याम्—

‘वराटकानां दशकद्वयं यत्

सा काकिणी ताश्च पणश्चतस्रः ।

१ गायत्र्यावर्तनम् ’ इत्यप०

२ चतुर्विंशतिमते—मा. ।

३ यद्यपि ‘धेनुः स्यान्नवसुतिका’ । (अ. को. २।९।७१) इत्युक्तम्, तथापि धेनुदानाशक्तौ गोमात्रं दद्यात्, बह्वीषु स्मृतिषु गोपदस्याप्युपादानात् । —  
कृ. भ.



ते षोडश ब्रह्म इहावगम्यो

द्रुमैस्तथा षोडशभिश्च निष्कः ॥' इति ।

मूल्यान्तरमपि प्रायश्चित्तविवेके षट्त्रिंशन्मते—

‘धेनुः पञ्चभिराढ्यानां सध्यानां त्रिपुराणिका ।

कार्पापणैकमूल्या हि पवित्राणां प्रकीर्तिता ॥’

द्वित्रिंशन्मिति क्वचित्पाठः । पुराणं द्वात्रिंशत्कृष्णलभितं राजतम् ।

‘द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रूपमाषकः ।

ते षोडश स्याद्वरणं पुराणश्चैव राजतः ॥’ (मनुः ८।१३६)

इति मिताक्षरायां स्मृतेः ।

कार्पापणस्तु—

‘कार्पापणः स विज्ञेयः कार्षिकस्ताञ्जिकः पणः ।’

इति मनूक्तेः ( ८।१३७ )

नारदोक्तोऽपि— ( १८।११६ )

‘कार्पापणो दक्षिणस्यां दिशि रौप्यः प्रवर्तते ।

पौर्णमिद्वदः पूर्वस्यां षोडशैव पणाः स तु ॥’

मूल्याध्याये कात्यायनः—

‘द्वात्रिंशत्पणिका गावश्चतुर्जकार्पापणो वरः ।

वृषे षट्कार्पापणका दद्यान्बहुहि स्मृताः ॥

दशकार्पापणा धेनावश्चे पञ्चदशैव तु ।’ इति ।

एतेषां च गोमूल्यपक्षाणां शताशक्तभेदेन व्यवस्था ।

चतु अपराकै—

‘द्वादशैव सहस्राणि जपेद्देवीमुपोषितः ।

जलांते विधिवन्मौनी प्राजापत्योऽयमुच्यते ॥’ इति ।

—जलांते जलसमीपे । तथा तत्रैव चतुर्विंशतिशतमुच्यते—

‘अतिकृच्छ्रे पराके च प्राजापत्यत्रयं कुर्यात्कृच्छ्रे गोमिथुनम्’ इति ।

अत्र द्वादशसहस्रगायत्रीजपो गोमिथुनं च गौतमाशुक्तप्राजापत्य-  
विषयम्, शक्तविषयं वा । तत्रैव—

१ ‘रूढ’ इति पठित्वा ‘द्रविडविषयादौ इह एक एव लोहः कृतो  
रूपमाजगजनायाम्’ इति व्याख्याति भवस्वामी ।



‘अन्नदानहिरण्येन द्वादश ब्राह्मणान् शुचीन् ।  
 तर्पयेन्मारुताशी च श्रोत्रियान्कृच्छ्र उच्यते ॥  
 उपोष्य श्रद्धया युक्तस्तिष्ठपात्राणि धर्मतः ।  
 द्वादश ब्रह्मवादिभ्यः प्राजापत्येन तत्समम् ॥  
 स्वयमाहृत्य यो मूर्ध्ना तृणभारादुपोषितः ।  
 दद्याद्गोमंढले कृच्छ्रे द्वादशैव न संशयः ॥  
 प्राणायामशतं कृत्वा द्वात्रिंशोत्तरमार्तिषु ।  
 अहोरात्रोपितस्तिष्ठेत्प्राङ्मुखः कृच्छ्र उच्यते ॥  
 नभस्कारसहस्राणि द्वादशैव दृढमतः ।  
 गोविप्रपितृदेवेषु कुर्यात्कृच्छ्रत्रयं भवेत् ॥’

तिष्ठपात्राण्युक्तानि कौर्म —

‘तिष्ठपात्रं त्रिधा प्रोक्तं कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।  
 वाजपात्रं दक्षपलं जघन्यं परिकीर्तितम् ॥  
 द्विगुणं मध्यमं प्रोक्तं त्रिगुणं चोत्तमं स्मृतम् ।’

वसिष्ठः — ( २७।१७ अत्रिः ३।१२ )

‘अथ चेत्स्वरते कर्तुं दिवसं मारुताशनः ।  
 रात्रौ स्थित्वा जले व्युष्टः प्राजापत्येन तत्समम् ॥  
 गोमूत्रेण सभायुक्तं यावकं चोपयोजयेत् ।  
 कृच्छ्रमेकाहिकं प्रोक्तं दृष्टमंगिरसा स्वयम् ॥  
 निर्यासीनो दिवा तिष्ठेन्निराश्रं मारुताशनः ।  
 प्राजापत्यं विजानीयात्कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् ॥’ इति ।

पराशरः ( १२।६३ )

‘कृच्छ्रो देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ।  
 पुण्यतीर्थेऽनाद्रेशिरः स्नानं द्वादशसंख्यया ॥’

माधवीये स्मृत्यन्तरे—

‘प्राजापत्यं चरन्विप्रो यद्यशक्तः कथञ्चन ।  
 अहानि पञ्च विप्राग्र्यान् शो जयेत्सम्यगीप्सितान् ॥’

१ - अनाद्रेशिरस्त्वविशेषणात्स्नानानन्तरं तदङ्गमनुष्ठाय शिरः शोषयित्वा  
 द्वितीयवारं स्नायादित्युक्तं भवति ।— वि. भ.



अत्र कपिञ्जलाधिकरणन्यायेन ( पू. मी. ११।१।६ ) पञ्चस्वप्य-  
हस्सु त्रयस्त्रयो विप्राः ।

कण्वः—

‘ एकमध्ययनं कुर्यात्प्राजापत्यमथापि वा ।

दद्याद्वाद्दशसाहस्रं गवां मुष्टिं विचक्षणः ॥ ’

—एकमध्ययनं सकृत्संहिताध्ययनम् । तथा ‘षडुपवासैरपि प्राजापत्यः’

इति निबन्धकृतः ।

चतुर्विंशतिमते—

‘ प्राजापत्ये तु गामेकां दद्यात्सान्तपने द्वयम् ।

पराकतप्तातिकृच्छ्रे तिस्रस्तिस्त्रस्तु गास्तथा ॥ ’ इति ।

सान्तपनमत्र महत्, इतरत्र सार्द्धप्राजापत्योक्तेः ।

तथा च षट्त्रिंशन्मते—

‘ पराकतप्तातिकृच्छ्रस्थाने कृच्छ्रत्रयं चरेत् ।

सांतपनस्य वाप्यर्द्धमशक्तौ व्रतमाचरेत् ॥ ’ इति ।

स्मृत्यर्थसारे तु ‘ पराके पञ्च, तप्तकृच्छ्रे षट् ’ इति ।

अपराके मार्कण्डेयः—

‘ प्राजापत्यसमा धेनुस्तद्वर्धं तप्तकृच्छ्रके ।

पराके तु सुवर्णं स्याद्धेमशृङ्गी तथैव च ॥ ’ इति ।

—पराके सुवर्णं धेनुद्वयमूल्यसमम् । हेमशृङ्गीग्रहणेन सकलकांस्य-  
दोहाद्युपस्कारवतीं धेनुं लक्षयति ।

कर्मविपाकसारे गोरनुवृत्तौ—

‘ एका कृच्छ्रेऽतिकृच्छ्रे द्वे तिस्रश्चांद्रायणे स्मृताः ’ इति ।

मदनरत्ने स्मृतौ—

‘ प्राजापत्ये तु गामेकामतिकृच्छ्रे द्वयं स्मृतम् ।

चान्द्रायणे पराके च तिस्रो गा दक्षिणास्तथा ॥ ’ इति ।

बृहद्विष्णुः—

‘ चांद्रायणमकुर्वाणाः कुर्युः कृच्छ्रचतुष्टयम् । ’

एतद्यतिचान्द्रायणविषयम् ।

१ एतन्निर्धनविषयम् ।— मा.



स एव—

‘चान्द्रायणपराकाभ्यां निष्कृतिं यो न शक्नुयात् ।

स करोत्यात्मशुद्धयर्थं प्राजापत्यस्य पञ्चकम् ॥’ इति ।

—इदमृषिचान्द्रायणपरम् । पिपीलिकायवमध्ययोरष्टधेनुक्तेः, शिशु-  
चांद्रायणादौ च धेनुत्रयोक्तेः ।

यत्तु चतुर्विंशतिमते—

‘अष्टौ चान्द्रायणे देयाः प्रत्याम्नायविधौ सदा ।’ इति ।

तत्पिपीलिकायवमध्यविषयमतिधनिनः ।

धर्मविवृतौ चतुर्विंशतिमते च—

‘चान्द्रायणं सृगारेष्टिः पवित्रेष्टिस्तथैव च ।

मित्रविदापशुश्चैव कृच्छ्रत्रयमथापि वा ॥

तिलहोमायुतं चैव पराकद्वयमेव च ।

गायत्र्या लक्ष्मेकं तु समान्याहुर्मनीषिणः ॥

नित्यनैमित्तिकानां च काम्यानां चैव कर्मणाम् ।

इष्टीनां पशुबंधानामभावे चरवः स्मृताः ॥’ इति ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रे तु धेनुत्रयम् ।

अत्र—

‘विप्रदंडोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रे निपातने ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसूकपाते कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ॥

(या. ३।२९२)

इत्यतिकृच्छ्रे धेनुत्रयोक्तेस्तद्विषयनिपातनादधिकेऽसूकपाते विहितस्य  
कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यातिकृच्छ्रादाधिक्यावगमाद्धेनुत्रयं प्रत्याम्नायो गम्यते ।  
यदा त्वतिकृच्छ्रे तिस्रस्तदा तु कृच्छ्रातिकृच्छ्रे ततोऽधिके चतस्रः ।

तथा चोत्तरोत्तराधिक्येनाऽऽह हारीतः—

‘अनाश्रमी संदत्सरं प्राजापत्यं चरित्वाऽऽश्रममुपेयात् । द्वितीये-  
ऽतिकृच्छ्रम् । तृतीये कृच्छ्रातिकृच्छ्रम् । अत ऊर्ध्वं चांद्रायणम् ।’ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

“कृच्छ्रे पंचातिकृच्छ्रे त्रिगुणमहरहस्त्रिंशदेवं तृतीये

चत्वारिंशच्च तप्ते त्रिगुणनगुणिता विंशतिः स्यात्पराके ।



कृच्छ्रे सांतापनाख्ये भवति पडधिका विंशतिः सैव हीना  
द्वाभ्यां चान्द्रायणे स्यात्तपसि कुशवलो भोजयेद्विप्रमुख्यान् ॥

अत्र संख्यान्वितमहरहःपदं भोजनान्वयि । तेन कृच्छ्रे प्रत्यहं पञ्च,  
अतिकृच्छ्रे प्रत्यहं पञ्चदश । एवमुत्तरत्रेति केचित् । युक्तं तु संख्या-  
वीप्सयोः परस्परानन्वितयोरेव क्रियान्वयः । तेन कृच्छ्रे पञ्चसु दिने-  
ष्वेकैको भोज्यः । अतिकृच्छ्रे नवस्वेकैकस्त्रिषु द्वौ द्वाविति पञ्चदशैव ।  
तृतीये कृच्छ्रातिकृच्छ्रे त्रिंशद्वादशदिने विभज्य भोज्याः । सांतपने  
चान्द्रायणे च विंशतौ त्रैगुण्यमन्वेति ।

सौम्यकृच्छ्रे एका धेनुः, ब्रह्मकूर्चं द्वे, पराके तिस्रः, मासोपवासे  
सार्द्धसप्तेति निबन्धकृतः ।

शूलपाणिस्तु—पराके पञ्च, चान्द्रायणे सार्द्धसप्त, शिशुचान्द्रायणे  
तप्तकृच्छ्रे च पादोनचतुष्टयम् । कृच्छ्रातिकृच्छ्रे महासांतपने च षट्,  
मासोपवासे पञ्चदशेत्यूचे ।

अथ तीर्थप्रत्याम्नायाः ।

ब्रह्महत्याव्रतमुपक्रम्य भविष्यत्पुराणे—

‘विन्ध्योदुत्तरतो यस्य निवासः परिकीर्तितः ।

पराशरमतं तस्य सेतुबन्धस्य दर्शनम् ॥’

विन्ध्योत्तरवर्तिनमुक्त्वा तत्रैव—

‘चातुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ।

समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥’

१ अस्यार्थः—अहरह इत्यस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् कृच्छ्रे अहरहः पञ्च ब्राह्म-  
णान् भोजयेत्, तेन षष्टिर्भवन्ति । अतिकृच्छ्रे प्रत्यहं पञ्चदश, द्वादशदिने मिलित्वा  
साशीतिशतं विप्रा भवन्ति । कृच्छ्रातिकृच्छ्रे प्रत्यहं त्रिंशत्, मिलित्वा षष्ट्युत्तरं  
त्रिंशत् । तप्तकृच्छ्रे प्रत्यहं चत्वारिंशत्, द्वयहसाध्येऽशीतिः, चतुरहसाध्ये  
षष्ट्यधिकं शतम्, द्वादशाहसाध्येऽशीत्यधिकं शतचतुष्टयम् । पराके प्रत्यहं षष्टिः,  
विंशत्यधिकं सप्तशतम् । सान्तपने प्रत्यहं षड्विंशतिः । चान्द्रायणे प्रत्यहं चतु-  
विंशतिः, तत्र मासो यदि त्रिंशद्दिनस्तदा विंशत्यधिकसप्तशतं विप्रा भवन्ति ।  
अधिकन्यूनदिनके तु संख्यासङ्कलनमूह्यम् ।

कृ. भ.

२ भरणीधरेण ऋक्षोऽयं पराशरस्मृतावेव (१२।७५) पठितो व्याख्यातश्च ।



स्मृतिसंग्रहे स्मृत्यर्थद्वारे च-

‘भागीरथ्यां स्नानं षष्ठियोजनागतस्य षड्वदसम् ।

अत्र यात्रायोजनवृद्धावर्द्धकृच्छ्रवृद्धिः । एकयोजनागतस्य मध्ये  
 पर्वतादिभिर्यवधाने कृच्छ्रत्रयम् । तृतीयांशधिकक्रीडादागतस्य भागी-  
 रथ्यां विध्युक्तस्नानमेककृच्छ्रः, अशक्तस्य त्वर्द्धयोजनागतस्य । शक्त-  
 स्यापि मार्गस्य दुर्गमत्वे भागीरथीस्नानमर्द्धयोजनागतस्यैकः कृच्छ्र इत्यादि  
 कल्पयन्ति । प्रयागस्नानं षष्ठियोजनागतस्य द्वादशाब्दसम् । गंगाद्वारे  
 गङ्गासागरसङ्गमे चैवम् । यमुनास्नानं विंशतियोजनागतस्य द्वादशाब्द-  
 समम् । मथुरायां द्विगुणम् । सरस्वत्यां चतुरव्दकृच्छ्रसमं चत्वारिंशद्यो-  
 जनागतस्य । प्रभासे द्वारवत्यां च द्विगुणम् । अनयोर्नद्योर्जोनवृद्धौ  
 पादकृच्छ्रवृद्धिः । दृषद्वतीशतद्रूविपाशावितस्ताशरावतीमरुदृधादिषु स्नानं  
 त्रिंशत्कृच्छ्रसमं पञ्चदशयोजनागतस्य । चंद्रभागावेत्रवतीशरयुगोमती-  
 देविकाकौशिकीगण्डक्यादिदेवनदीषु स्नानं षोडशकृच्छ्रसमं द्वादश-  
 योजनागतस्य । एतासु महानदीषु परस्परसङ्गमे त्रिनदीफलम् । अन्यासु  
 महानदीषु षट्कृच्छ्रसमम् । महानदेषु महानद्यर्द्धम् । शोणमहानदे  
 गङ्गार्थफलम् । नदेषु नद्यर्द्धम् । वैरोचननदे महानद्यर्द्धम् । नर्मदायां  
 चतुर्विंशतियोजनागतस्य चतुर्विंशतिकृच्छ्रसमम् । कुब्जिकासङ्गमे  
 द्विगुणम् । शुक्रतीर्थे चतुर्गुणम् । ताप्यां दशकृच्छ्रसमं दशयोजनागतस्य ।  
 पयोष्यामष्टयोजनागतस्याष्टकृच्छ्रसमम् । तत्र तत्र सङ्गमे द्विगुणम् ।  
 गोदावर्यां षष्ठियोजनागतस्य त्र्यब्दसम् । त्रिंशद्योजनागतस्यैकाब्दम् ।  
 दशतीर्थेषु प्रतिलोमानुलोमस्नानं षष्टिकृच्छ्रसमम् । वज्ररासङ्गमे प्रयागे  
 तद्विगुणम् । सप्तगोदावर्यां भीमेश्वरे त्रिगुणम् । कुशतर्पणे गयासमम् ।  
 वज्ररायां द्वादशयोजनागतस्य द्वादशकृच्छ्रसमम् । गोदावर्यां विश्लेषे  
 समुद्रान्तं षड्गुणम् । प्रणीतायां चतुःकृच्छ्रसमं चतुर्योजने । पूर्णायां  
 तदर्द्धं योजने । कृष्णवेणायां पञ्चदशयोजने । पञ्चदशकृच्छ्रसमम् ।  
 तुङ्गभद्रायां विंशतियोजनागतस्य विंशतिकृच्छ्रसमम् । मलापहारिण्या-  
 मष्टकृच्छ्रसममष्टयोजनागतस्य । निवृत्त्यां षट्कृच्छ्रसमं षड्योजनागतस्य ।  
 गोदावर्यां यात्रायोजनवृद्धौ योजने पादकृच्छ्रः । सिंहस्थे गुरौ सर्वत्र  
 जाह्नवीसमम् ।



कन्यास्थे गुरौ कृष्णवेण्यां सर्वत्र जाह्नव्यर्द्धम् । तुङ्गभद्रायां तुलास्थे  
गुरौ रवौ वा जाह्नव्यर्द्धम्, कर्कटे, रवौ च । कृष्णवेण्यायां मलापहारिणी-  
सङ्गमे प्रयागे त्रिशद्योजनागतस्य त्रिशत्कृच्छ्रसमम् । आगीरथीसङ्गमे  
प्रयागे द्विगुणम् । तुङ्गभद्रासङ्गमे त्रिगुणम् । निवृत्तिसङ्गमे चतुर्गुणम् ।  
ब्रह्मेश्वरे पञ्चगुणम् । पातालगङ्गायां मलिकार्जुने षड्गुणम् । ततः  
पूर्वे षष्टिकृच्छ्रसमम् । लिङ्गालये द्विगुणम् । समुद्रसङ्गमे चैवम् । कावेर्यां  
प्रतीचीमहानद्यां पञ्चदशकृच्छ्रसमं पञ्चदशयोजनगतस्य । ताम्रपर्णी-  
कृतमालापयस्विनीषु द्वादशयोजने द्वादशकृच्छ्रसमम् ।

सह्यपादोद्भूता वेदाद्रिपादोद्भूताश्च नद्यः स्वदैर्घ्यानुसारेण एकद्वित्रि-  
कृच्छ्रफलदाः । विंध्यशैलोद्भवा द्विगुणाः । हिमोद्भूतास्त्रिगुणाः ।

स्मृतौ पुराणे च यथाकथंचिदनुक्तौ कुल्याः त्रिरात्रफलदाः । अल्प-  
नद्यः कृच्छ्रशः । नद्यो द्विकृच्छ्रशः । महानद्यस्त्रिकृच्छ्रशः । सर्वत्र  
यात्रानुक्तौ कृच्छ्रसंख्या योजनसंख्यया स्यात् ।

एकयोजनगादिषड्योजनगान्ताः सर्वतः कुल्याः । ततो द्वादशयोज-  
नगान्ता अल्पनद्यः । चतुर्विंशतियोजनगान्ता नद्यः । चतुर्विंशति-  
योजनाधिकगाः समुद्रगाश्च महानद्यः । यत्र महानदीसमाख्याऽस्ति  
ताश्च महानद्यः । उपवाससहितं नदीस्नानं कृच्छ्रसमं योजनादर्वागपि ।

शुनीगर्दभीचांडालीशूद्रीकष्टगादिनद्यः पापनद्यश्च वज्र्याः ।

सर्वत्र समुद्रस्नानं दर्शं कार्यम् । देवतासमीपे सरःसरिन्नदीसंगमेषु  
सर्वदा कार्यम् । समुद्रस्नानं पञ्चदशयोजनगतस्य पञ्चदशकृच्छ्रसमम् ।  
प्रख्यातदेवतासमीपे द्विगुणम् । तत्र स्नात्वा तदेवतादर्शने त्रिगुणम् । सेतो-  
र्मनं त्रिशत्कृच्छ्रसमं त्रिशद्योजनगतस्य । स्नात्वा रामेश्वरदर्शने षष्टि-  
कृच्छ्रसमम् । विंध्यदेशीयानां सेतुरामेश्वरे जाह्नव्यां च त्रिगुणं फलम् ।  
जाह्नवीकेदारयोश्च तथैव । दक्षिणदेशीयानां जाह्नव्यां षड्गुणम् ।  
गङ्गादेशीयानां सेतुरामेश्वरे षड्गुणम् । स्कन्ददर्शने त्रिशत्कृच्छ्रसमं  
त्रिशद्योजनगतस्य । यत्र गङ्गासंज्ञाऽस्ति तत्र चैवम् । श्रीरंगपद्मनाभ-  
पुराणोत्तमचक्रकोटंगहालक्ष्मीदर्शने लवणार्णवस्नाने त्रिशद्योजनगतस्य

१ गुरौ इति पाठ उत्तरण सम्बन्धश्च ।

—स्मृ. सा.

२ चित्रकूट— पा.



त्रिशङ्कुच्छसमम् । केदारे त्रिगुणम् । सर्ववैष्णवमाहेश्वरसौरशाक्तादि-  
पीठदर्शने पञ्चदशकुच्छसमम् । प्रख्याते द्विगुणम् । अहोबलेऽपि तथैव ।  
श्रीशैलप्रदक्षिणं षष्टिकुच्छसमम् । श्रीशैले एकैकशृङ्गदर्शनं द्वादशकुच्छ-  
समम् । अन्येषु प्रख्याततीर्थदेवदर्शनेषु षट्कुच्छफलम् । सिद्धक्षेत्रेऽन्य-  
क्षेत्रे स्वयम्भूदर्शनं त्रिशङ्कुच्छसमं त्रिशयोजनागतस्य । सर्वत्र कुच्छ-  
सङ्ख्या योजनसङ्ख्याया ज्ञेया । इति तीर्थप्रत्याम्नायाः ॥

अथ पातित्यहेतवः ।

गौतमः—( ३।३।१-२ ) ‘ ब्रह्महसुरापगुरुतत्पगमातृपितृयोनि-  
सम्बद्धागस्तेन नास्तिकनिन्दितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः  
पतिताः । पातकसंयोजकाश्च । ’

—मातापितृयोनिस्सम्बद्धागो मातृष्वसृपितृष्वस्मात्सभगिनीगामी ।  
स्तेनः सुवर्णतत्त्वमयोः । नास्तिको वेदाप्रामाण्यवादी । अपतितत्यागी  
गुरुमभिशङ्ग्य तत्त्यक्ता । पातकसंयोजकाः स्वसंसर्गेण दोषहेतव इति  
प्राञ्चः । अपराके तु पातकसंयोजकाः प्रयोजकादयस्तेऽपि पतिता  
इति । एवं कल्पतरावपि ।

यमः—‘मातृष्वसा मातृसखी दुहिता च पितृष्वसा ।

मातुलानी स्वसा श्वश्रूगत्वा सद्यः पतेन्नरः ॥’ इति ।

मनुः—( १०।१२ )

‘ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । ’

स एव—( ५।१९ )

‘ छत्राकं विद्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।

पलाण्डुं गुञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेन्नरः ॥ ’

यमः—( २२-२३ वृ. य. १।३-४ )

‘ जलाग्न्युद्गन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ।

विषप्रतपनप्रायशस्त्रघातहताश्च ये ॥

नवैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकवहिष्कृताः ॥ ’ इति ।

१ सर्वत्र भाषामेदपर्वतादिना यात्राहासो भवत्येव ।—स्मृ. सा. । योजन-  
प्रमाणं तत्रैव—‘तिर्यग्यवोदराण्यष्टावृध्वा वा त्रीहयत्रयः । प्रमाणमङ्गुलस्योक्तं  
वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला ॥ वितस्तिर्द्विगुणा रत्निस्ततः किङ्कुस्ततो धनुः । धनुःसहस्रे  
द्वे क्रोशश्चतुष्क्रोशं तु योजनम् ॥ ’ इति ।



उपनयनमुख्यगौणकालातिक्रमेण ब्राह्म्यानां पातित्यमाह याज्ञवल्क्यः—

‘अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः ।

सावित्रीपतिता ब्राह्म्या ब्राह्म्यस्तोमाहते क्रतोः ॥’ (१।३८)

आश्वलायनोऽपि ( गृ. सू. १।१९।६-७ )

‘अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति । नैतानुपनयनेनाध्यापयेन्न  
या नयेन्नैभिर्व्यवहरेयुः ।’ इति

अत्रिः—आरूढपतितं विप्रं मण्डलाच्च विनिस्सृतम् ।

उद्धृष्टं कृमिदष्टं च स्पृष्ट्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

—आरूढो गृहस्थव्यतिरिक्त आश्रमी ब्रह्मचर्यस्खलनाद्विजातिकर्मा  
नधिहारी । मण्डलात्स्वसजातीयेभ्यो विनिस्सृतो बहिर्भूतः । उद्धृष्ट  
उद्धन्धनात् च्युत आत्महन्ता । कृमिदष्टः आदिदंशक्षते उत्पन्नकृमिः ॥

मनुः—( १।१।७५ )

‘चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा मुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।

पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥’

गौतमः—(३।२।८-९) ‘न स्त्रीष्वगुरुतरुं पतन्तीत्येके । भ्रूणहनने  
हीनवर्णसेवायां च स्त्री पतति’ इति ।

मातृपितृयोनिसम्बद्वागः पततीत्यस्यापवादः; तासु गुर्वङ्गनाव्यति-  
रिक्तासु गच्छन्नपि न पततीत्येके मन्यन्ते । किंतु प्रायश्चित्तीयते । गौतम-  
स्तु पततीति मन्यते । ‘सोऽयं बुद्धयबुद्धिपूर्वापेक्षोऽभ्यासानभ्यासा-  
पेक्षो वा व्यवस्थितो विकल्पः’ इति भर्तृयज्ञः । भ्रूणहनने गर्भवधे ।  
हीनसेवायां स्वापेक्षया हीनवर्णपुरुषगमने प्रतिलोमगमने च ।

याज्ञवल्क्यः—( ३।२।९८ )

‘नीचाभिगमनं गर्भपातनं भर्तृहिसनम् ।

विशेषपतनीयानि स्त्रीणामेतान्यपि ध्रुवम् ॥’

—अपिशब्दाद्ब्रह्महत्यादीन्युपपातकान्यप्यभ्यस्तानि । नीचो हीनवर्णः  
शूद्रः । तद्रूपं च गर्भोत्पत्त्यन्तम् ।

‘ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण सङ्गताः ।

अप्रजाता विशुद्धयन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ॥’ ( २।१।१४ )  
इति वासिष्ठात् ।



अत एव—

‘व्यभिचारादृतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते ।

गर्भभर्तृश्रद्धादौ च तथा महति पातके ॥’ ( १।७१ )

इति याज्ञवल्क्यवाक्ये ‘शूद्रकृते गर्भे’ इति प्राचां व्याख्यानम् ।

यत्तु शौनकः—‘पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ।  
ब्राह्मणी हीनवर्णसेवायामधिकं पतति’ इति । तत्र हीनवर्णसेवा गर्भान्तं  
शूद्रगमनं प्रतिलोमगमनमात्रं च ।

वसिष्ठः—( २।८७ )

‘त्रीणि स्त्रियाः पातकानि लोके धर्मविदो विदुः ।

भर्तुर्वधो भ्रूणहत्या स्वस्य गर्भस्य पातनम् ॥’

भ्रूणहत्योक्तिर्द्वैप्रान्तार्था ।

अत एव वामिष्ठे—( २१।१२ )

‘चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या ।

पतिव्री च विशेषेण जुङ्गितोपगता च या ॥’

इति शिष्यगमनादीनामपि पातित्यहेतुपतिवधसाहचर्यत्पातित्य-  
हेतुत्वम् । जुङ्गितः प्रतिलोमगमनः । त्यागश्च ब्रह्मचर्यादौ वासादिजीवन-  
हेतुविच्छेदेन । नीचाभिगमनादावपीड्येव त्यागः ।

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्तीनां त्वत्यागमाह याज्ञवल्क्यः—( ३।२९६ )

‘पतितानामेष एव विधिः स्त्रीणां प्रकीर्तितः ।

वासो गृहान्तिके देयमेजं वासः सरक्षणम् ॥’

मनुः—

‘पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुगं पिबेत् ।

पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥’ इति । ( पग. १०।२५ )

द्विजातिभार्यायाः शूद्रायाः सुरापाननिषेधार्थमिदमिति विज्ञानेश्वरः  
( ३।२५६ ) । माधवस्तु—ब्राह्मण्यादीनामप्ययं निषेधः । स्त्रिया भर्तुर-  
संसर्गेऽपि दोषार्थमुत्तरार्द्धम् । सहाधिकारात् स्त्रिया अर्द्धशरीरत्वम् ।  
पतितमर्धशरीरं यस्येति बहुव्रीहिरित्यूचे । तन्न; ब्राह्मण्यादीनप्रति  
प्रतिषेधे वचोर्वैयर्थ्यापत्तेः, बहुव्रीहौ लक्षणापत्तेश्च । अतो विज्ञानेश्वर-  
एव सम्यगूचे ।

१— त्रिवारं मैथुनं सान्तं गर्भोत्पत्तिवदुच्यते । ( वि. र. ३।५।५१ )



## अथ साधारणप्रायश्चित्तानि ।

संवर्तः— ( २०४ )

‘ हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ।

नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ’

गौतमः—(३ । १ । १७-२० )

‘ संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहः  
षडहस्त्यहोऽहोरात्र इति कालाः । एतान्यनादेशे विकल्पेन क्रियेरन् ।  
एनसि गुरुणि गुरुणि लघुनि लघूनि । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति  
प्रायश्चित्तम् । ’ इति ॥

विष्णुधर्मोत्तरे— ( तृ. खं. ३४१ । ३१ )

‘ सायंप्रातस्तथा कृत्वा वासुदेवस्य कीर्त्तनम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥ ’

प्रभासखंडे श्रीभगवद्वाक्यम्—

‘ नाम्नां मुख्यतरं नाम कृष्णाख्येयं परन्तप ।

प्रायश्चित्तमशेषाणां पापानां मोक्षकं परम् ॥ ’

वाराहे—

‘ वासुदेवस्य सङ्कीर्त्य सुरापो व्याधितोऽपि वा ।

मुक्तो जायेत नियतं महाविष्णुः प्रसीदति ॥

गोविन्देति तथा प्रोक्ते भक्त्या वा भक्तिवर्जितेः ।

ददते सर्वपापानि युगान्तेऽग्निरिवोत्थितः ॥ ’

विश्वामित्रः—

‘ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि शुद्धयभ्युदयकारणम् ।

प्रकाशे च रहस्येव अनुक्ते संशये स्फुटे ॥

प्राजापत्यः सान्तपनः शिशुकृच्छ्रः पराककः ।

अतिकृच्छ्रः पर्णकृच्छ्रः सौम्यकृच्छ्रोऽतिकृच्छ्रकः ॥

महासान्तपनः शुद्धयै तप्तकृच्छ्रस्तु पावनः ।

जपोपवासकृच्छ्रस्तु ब्रह्मकूर्चस्तु शोधकः ॥



एते व्यस्ताः समस्ता वा प्रत्येकं द्व्येकशोऽपि वा ।  
 पातकादिषु सर्वेषु उपवासेषु यत्नतः ॥  
 कार्याश्चान्द्रायणैर्युक्ताः केवला वा विशुद्धये ।  
 शिशुचान्द्रायणं प्रोक्तं यतिचान्द्रायणं तथा ॥  
 यवमध्यं तथा प्रोक्तं तथा पिपीलिकाकृति ।  
 उपवासस्त्रिरात्रं वा सासः पक्षस्तदर्द्धकम् ॥  
 षडहो द्वादशाहादि कार्यं शुद्धिफलार्थिना ।  
 उपपातकयुक्तानामनादिष्टेषु चैव हि ॥  
 प्रकाशे वाऽप्रकाशे वा अभिसन्धाद्यपेक्षया ।  
 जातिशक्तिगुणान्दृष्ट्वा सकृदुद्धि कृतं तथा ॥  
 अनुबन्धादिकं दृष्ट्वा सर्वं कार्यं यथाक्रमम् ।  
 प्रकाश उक्तं यत्किञ्चिद्विशद्भागी रहस्यके ।  
 त्रिंशद्भागः षष्टिभागः कल्प्यो जात्याद्यपेक्षया ॥ १

याज्ञवल्क्यः— ( ३ । ३२६ )

‘अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन च ।  
 धर्मार्थं च चरेदेतच्चंद्रस्यैति सलोकताम् ॥’  
 षट्त्रिंशन्मते त्रयाणां समुच्चयः प्रतिपादितः—  
 ‘यानि कानि च पापानि गुरोर्गुरुतराणि च ।  
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तु शोधयन्ते मनुब्रवीत् ॥’  
 केवलप्राज्ञापत्यस्य तु नैरपेक्ष्यं चतुर्विंशतिमतेऽभिहितम्—  
 ‘लेवुदोषे त्वनादिष्टे प्राज्ञापत्यं समाचरेत् ।’ इति ।  
 द्वयोः समुच्चयमाहोशनाः—

‘दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतामपि ।  
 कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥’ इति ।  
 —दुरितमुपपातकम् । दुरिष्टं पातकम् ।  
 मनुना तु पराकस्य नैरपेक्ष्यमुक्तम्— ( ११।२१५ )

१ ग्रन्थोऽयमेकस्मिन्नेवादशे दृष्टः ।



‘पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापपनोदनः ।’ इति ।

गौतमोऽपि— ( ३ । ८ । २१-२३ )

‘प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति । द्वितीयं चरित्वा यदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मिन्पापात्प्रमुच्यते । तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते ।’

इति प्रथमादिपदैः कृच्छ्रोऽतिकृच्छ्रः कृच्छ्रातिकृच्छ्रश्चोच्यते ।

द्वितीयः—

‘चांद्रायणं पराकं च तुलापुसष एव च ।

गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ।’ इति ।

तथा—

‘गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुसोदकम् ।

एकरात्रोपवासश्च श्लेषाकमपि होषयेत् ।’ इति ।

एतेषां सर्वेषां व्यवस्थोक्ता विष्णुपुराणे—( २।६।३६ )

‘पापे गुरुणि गुरुणि स्वल्पान्मूल्ये च तद्विदुः ।

प्रायश्चित्तानि मैत्रेय जगुः स्वायम्भुवादयः ॥’

अविष्णुपुराणेऽपि—

‘एवं विषयभेदेन व्यवस्थाप्यानि पुत्रक ।

प्रायश्चित्तानि सर्वाणि गुरुणि च लघूनि च ॥

जन्यथा हि महाबाहो लघूनामुपदेशतः ।

गुरुणामुपदेशो हि निष्प्रयोजनतां व्रजेत् ।’ इति ॥

गौतमेनाप्युक्तं— ( ३ । १ । १९ )

‘एतसि गुरुणि गुरुणि लघूनि लघूनि ।’ इति ।

एवमन्यान्यपि द्रष्टव्यानि । इति साधारणप्रायश्चित्तानि ।

अथ महापापसाधारणप्रायश्चित्तानि ।

शङ्खः— ( १७ । १-३ )

‘नित्यं त्रिषवणस्त्रायी कृत्वा पर्णकुटीं वने ।

जपःसायी जटाधारी पर्णमूलकलाशनः ॥



महापापनाधारणप्रायश्चित्तविधिः

६७

ग्रामं विशेद्वा भिक्षार्थी स्वकर्म परिकीर्त्तयेत् ।  
 एककालं समश्रान्तो वर्षं द्वादशमे गते ॥  
 रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।  
 व्रतेनैतेन शुद्ध्यन्ति महापातकिनस्त्रिवमे ॥'

शिववाक्यम्—( प. पु. सु. खं. ३८।१४९ )

‘आराध्यमानं सां राम ! पश्येयुरिह सागरे ।  
 महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विनश्यति ॥’

विष्णुः—( ३५-६ )

‘अश्वमेधेन शुद्धयेयुमहापातकिनस्त्रिवमे ।  
 पृथिव्याः सर्वतीर्थानां तथाऽनुसरणेन वा ॥’

महापापानुद्धृतौ व्यवस्यतः—‘एतेषां प्रायश्चित्तं भवति पृथिवीप्रदक्षिणा-  
 माकर्त्तव्यम् ।’ ख एव ‘उभयशिरसं वा प्रदाय ब्राह्मणेभ्यः’ इति ।

—उभयशिरसमुभयतोगुह्यम् ।

आपस्तम्बः—( १।१।२५।१०।-११ )

‘अथाप्युदाहरन्ति ।

‘स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा गुरुदाराभ्यान्ना ब्रह्महत्यां च कृत्वा ।

चतुर्थकालमितभोजिनः स्युरपोभ्युपेयुः सवनानुकल्पम् ।

स्थानासनभ्यां विरहन्त एते त्रिभिर्वर्षैरपपापं नुदन्ति ।’

महापापादुद्धृतौ कश्यपविश्वामित्रौ—( क. ८।६ )

‘वत्सरजितयं कुर्यान्नरः कच्छं विशुद्धये ।

आत्मतुल्यं सुवर्णं च दद्याद्वा विप्रतुष्टिकृत् ॥

हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ।

नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥’ इति ।

इति सर्वपातकस्याधारणप्रायश्चित्तानि ॥

१ द्वादशम इत्यार्षम्, ‘धान्यन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ॥ (भाग १।३।१७)  
 इतिवत् । २ आगत्य मानवा राजन्’ इति मूले पाठः । कौंसेपि—(पु. २१।  
 ४९, ५०) यश्वया स्थापितं लिङ्गं दक्षयन्तीदं द्विजातयः । महापातकसंयुक्ता-  
 स्तेषां पापं विनश्यति ॥ अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ ।  
 दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं याप्ति न संशयः ॥’ ३ ब्रह्महत्यासकृत्वा’ इति पठित्वा  
 ‘ब्रह्महत्याव्यतिरिक्तानि स्तेयादीनि कृत्वा’ इति व्याख्यातं हरदत्तेन ।



## अथ पापभेदाः ।

विष्णुः—( ३३।३-५ )

‘अतिपातकं महापातकानुपपातकोपपातकेषु प्रवर्तते । जातिभ्रंश-  
कं पुं सङ्करीकरणेष्वपात्रीकरणेषु च । मलावहेषु प्रकीर्णकेषु च ।’

तत्र महापापान्याह मनुः—( ११।५४ )

‘ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वगनागमः ।

महान्ति पातकान्याहुः संयोगं चैव तैः सह ॥’

—ब्रह्महत्या साक्षाद्विप्रमारणम् ।

अकामकृते तस्मिन् प्रायश्चित्तमाह याज्ञवल्क्यः—( ३।२४३ )

‘शिरःकपाली ध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन् ।

ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक् शुद्धिमाप्नुयात् ॥’

—शिरःकपाली स्वहतविप्रशिरोस्थिधृक् । ध्वज आर्पितशव-

शिरा दण्डः ।

यत्तु मध्यमाङ्गिराः—( २।३६ )

‘गवां सहस्रं विधिवत्पात्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ।

ब्रह्महा विप्रमुच्येत सर्वपापेभ्य एव च ॥’ इति ।

तत्—‘द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् ॥’(याज्ञ. ३।२५२)

इत्येतद्वाक्यविहितद्विगुणव्रतचरणाशक्तविषयम् ।

यच्च शंखः—‘प्रमाप्य द्वादश संवत्सरान् षट् त्रीन् सार्द्धं संवत्सरं  
व्रतान्यादिशेत्तेषामन्ते गोसहस्रं तदर्धं तस्यार्द्धमर्द्धं च दद्यात्सर्वेषां  
वर्णानामानुपूर्व्येण’ इति; तन्मातापितृभ्रातृगुर्वादिविषयम् । आनु-  
पूर्व्येणेति तु द्वादशाब्दषड्व्यब्दसार्धाब्दानां गोसहस्रतदर्धतदर्धानां  
सर्वेषां वर्णानां शक्ताशक्तं बोधयति, न तु द्वादशाब्दादिप्रतचतुष्टयं  
गोसहस्रचतुष्टयसहितं ब्राह्मणादिवर्णचतुष्टयस्य ।’

‘पर्वद्या ब्राह्मणानां तु सा राज्ञां द्विगुणा मता ।

वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्वद्वच्च व्रतं स्मृतम् ॥’ इत्यङ्गिरसा (३।१६)

३ तदलाभे त्वन्यस्य । —

प्रा. कौ.



‘शूद्रो वा ब्राह्मणं हत्वा प्रायश्चित्तचतुष्टयम् ।’

इति भविष्यवचनेन च ब्राह्मणापेक्षयेतरवर्णानामधिकप्रायश्चित्तविधानात् । इदं च व्रतं यावज्जीवव्रताचरणाशक्तस्य ।

शक्तस्य तु भविष्यपुराणे—

‘मातरं पितरं हत्वा सोदरं भ्रातरं तथा ।

गुरुं हत्वा श्रोत्रियं च आहिताग्निमथापि वा ।

यावज्जीवं व्रतं चीत्वा प्रतिहन्ता विशुद्ध्यति ।’ इति ।

एवं च यदापस्तम्बनोक्तम्—(ध.सू. १।२४।११)

‘विप्रहाऽरण्ये कुटीं कृत्वा वाग्यतः शवशिरोध्वजः । शाणीय-  
तन्त्र्यामात्मन्युपरि जान्वाऽऽच्छादयेत्’ इत्युपक्रम्य ‘एतेदेव व्रत-  
मोत्तमादुच्छ्वासाच्चरेत् । (२४) नास्मिंल्लोके प्रत्यापत्तिर्विद्यते’  
(२५) इति; तन्मातापितृगुर्वादिवधविषयम् ।

मनुः—(११।७४-७७)

‘यजेत वाऽश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ।

अभिजिद्विश्वजिद्धयां वा त्रिवृताऽग्निष्टुताऽपि वा ॥

जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।

ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्क्षियतेन्द्रियः ॥

सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।

धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्त्रोतः सरस्वतीम् ।

जपेद्वा नियताहारस्त्रिःकृत्वो वेदसंहिताम् ॥’ इति ।

‘सर्वस्वं वा, धनं वा, गृहं वेति प्रायश्चित्तत्रयम् ।’

इति विज्ञानेश्वरः (३।२५९) । ‘उत्तरार्धे पूर्वद्विस्त्रयैव शेषः, न  
स्वतन्त्रप्रायश्चित्तद्वयविधानार्थमिति मेधातिथिः । युक्तं चैतत्, कियत्सर्व-  
स्वमित्याकांक्षापूर्णात् । अन्यथा पणादिसर्वस्वदानेऽपि शुद्धिः स्यात् ।

काश्यपः—(८।६)

‘आत्मतुल्यं सुवर्णं च दद्याद्वा विप्रतुष्टिकृत् ।’ इति ।

एतेषां च प्रायश्चित्तानां व्यवस्थोक्ता भविष्ये—



‘जातिमात्रं यदा विप्रं हन्यादमतिपूर्वकम् ।  
वेदविज्ञाग्निहोत्री च तदा तस्य भवेदिदम् ॥  
‘जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।’ इति ।  
तत्रैव—

‘जातिमात्रं यदा हन्याद्ब्राह्मणं ब्राह्मणो गुह ! ।  
वेदाभ्यासविहीनो वै धनवानग्निवर्जितः ॥  
प्रायश्चित्तं तदा कुर्यादिति पापविशुद्धये ।  
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥’ इति ।

एतस्मिन्नेव विषये पराशर आह—( १२ । ६५-७४ )

‘चातुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ।  
समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥  
सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाहरेत् ।  
वर्जयित्वा विकर्मस्थान् छत्रोपानद्विवर्जितः ॥  
अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ।  
गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ।  
गोकुलेषु च गोष्ठेषु ग्रामेषु नगरेषु च ॥  
तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ।  
एतेषु ख्यापयेदेनः पुण्यं गत्वा च सागरम् ॥  
ब्रह्महा विप्रमुच्येत स्नात्वा तस्मिन्महोदधौ ॥  
ततः पूतो गृहं प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ।  
दत्त्वा वस्त्रं पवित्राणि पूतात्मा प्रविशेद्ब्रह्मम् ॥  
गवां वाऽपि शतं दत्त्वा चातुर्विद्याय दक्षिणाम् ।  
एवं शुद्धिमवाप्नोति चातुर्विद्यानुमोदितः ॥’

अत्र विशेष उक्तो भविष्ये—

‘विध्यादुत्तरतो यस्य निवासः परिकीर्तितः ।

पराशरमतं तस्य सेतुबंधनदर्शनम् ॥’ (परा. १२।७५ ) इति ।

तत्रैव—

‘तिरस्कृतो यदा विप्रो ह्रियमाणो मृतो यदि ।

१ इमानि पराशरवचनानि मिताक्षरात् उद्धृतानि । मूलस्मृतौ तु मृयान् पाठभेदो दृश्यते ।



निर्गुणः सहसा क्रोधादृहक्षेत्रादिकारणात् ॥  
त्रैवार्षिकं व्रतं कुर्यात्प्रतिलोमां सरस्वतीम् ।  
गच्छेद्वापि विशुद्ध्यर्थं तत्पापस्येति निश्चितम् ॥ '

तत्रैव-

'अत्यर्थं निर्गुणो विप्रो ह्यत्यर्थं निर्गुणोपरि ।  
क्रोधाद्वै श्रियते यस्तु निर्निमित्तं तु भर्त्सितः ॥  
वत्सरत्रितयं कुर्यान्नरः कृच्छ्रं विशुद्ध्ये ।' इति ।  
एतस्मिन्नेव विषये निमित्तिनो निर्गुणत्वे तत्रैव-  
'केशश्मश्रुनखादीनां कृत्वा तु वपनं वने ।  
ब्रह्मचर्यं चरन् विप्रो वर्षेणैकेन शुद्ध्यति ॥' इति ।

षट्त्रिंशन्मते -

'षण्ढं वा ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।  
चान्द्रायणं वा कुर्वीत पराकट्यमेव वा ॥' इति ।

पतितविप्रवधे व्यासः-

'ब्रह्माऽऽवृत्रयं विप्र ! गायत्रीमभ्यसेत्सदा ।  
प्राणायामशतं कुर्यात्प्रत्यहं नियतः शुचिः ॥  
भिक्षाशी निवसेन्नित्यमरण्ये संयतेन्द्रियः ।  
षोडश ब्राह्मणान्विप्रो भोजयित्वा समाहितः ॥  
प्रयच्छेद्वस्त्रयुग्मानि हिरण्यं वाऽपि शक्तितः ।' इति ।

एतानि च प्रायश्चित्तान्यनुपेतब्राह्मणवधेऽपि ज्ञेयानि । ब्राह्मण्या-  
विशेषात् । तत्तु षडब्दं निर्गुणविप्रवधे षडब्दस्य वक्ष्यमाणत्वात् । एत-  
स्याप्युपनयनाभावेन निर्गुणत्वात् ।

कामतो विप्रवधे मनुः- ( )

'प्राणान्तिकं तु यत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ।  
तच्च कामकृतं प्राप्य विज्ञेयं नात्र संशयः ॥'

१ मध्यमाङ्गिरा इति मा.



कालिकापुराणे—

‘ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाण्याकामतो द्विजम् ।

कामतो ब्राह्मणवधे जीवतो नास्ति निष्कृतिः ॥ ’

कामानुवृत्तावङ्गिराः—

‘ शरीरं न दहेद्यावद्ब्रह्महा पापकृत्तमः ।

तावत्तस्य न शुद्धिः स्याद्भगवान् मनुरब्रवीत् ॥ ’

मरणेऽशक्तस्यापवाद उक्तस्तेनैव—

‘ स्यात्त्वकामकृते यत्तद्विगुणं बुद्धिपूर्वके । ’ इति ।

मध्यमाङ्गिराः—

‘ विहितं यदकामानां कामात्तद्विगुणं भवेत् । ’ इति ।

क्वचित्तदपवादो भविष्ये—

‘ ब्राह्मणं जातिमात्रं तु कामतो विनिपात्य वै ।

चरेद्वादशवर्षाणि गुणी निर्गुणमेव हि ॥ ’ इति ।

तत्रैव—

‘ हत्वा तु प्रहरंतं वै ब्राह्मणं वेदपारगम् ।

कामतोऽपि चरेद्द्वीर ! द्वादशाब्दख्यमुत्तमम् ’ ॥

अकामतस्त्वर्द्धम् ।

क्षत्रियादीनां विशेषो भविष्ये—

‘ हत्वा तु क्षत्रियो विप्रं गुणाढ्यमिह कामतः ।

प्रायश्चित्तं चरेद्द्वीर ! विधिवत्कायशुद्धये ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयाऽऽत्मनः ।

प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाकुशिराः ॥ ’

(म. स्मृ. ११।७३) इति ।

पतिताग्निषु विशेषमाह कात्यायनः— ( ३।४।४-५ )

‘ महापातकसंयुक्तो दैवात्स्यादग्निमान्यदि ।

पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आ दोषसंक्षयात् ॥

१ ‘ निष्कृतिर्नि विधीयते ’ ( ११ । ८९ ) इति चतुर्थपादे पाठभेदेन मान-  
वीये दृश्यत इदम् ।

२ ‘ नेदं मरणान्तिकम् ’ त्रिरिति नियमात् । उत्थायोत्थाय हि त्रिः पतन्  
यदि दैवाजीवति, तथाप्यसौ शुद्ध एव । ६० द०



प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा प्रियते यदि ।

गृहं निर्वापयेच्छ्रौतमस्त्वस्येत्सपरिच्छदम् ॥ ' इति ।

पालनविधानात्पुत्रोऽग्निदोत्रहोममपि कुर्यात् ।

उशनाः—

‘आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान्भवेत् ।

प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्येत तदग्नीनां तु का गतिः ॥

वैतानं प्रक्षिपेत्तोये शालाग्निं शमयेद्बुधः ।

पतितेनापि प्रायश्चित्तांगत्वेन संध्यावदनं कार्यम् ।

‘संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।

यत्किंचित्कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥’

इति ( २।२७ ) दक्षोक्तेः ।

आरुन्धप्रायश्चित्तमहापातकिनमुपक्रम्य

‘सम्यक्संध्यामुपासीत त्रिकालं स्नानमाचरेत् ॥’

इति स्मृतेश्च ।

ब्रह्मवधव्रतमन्यत्राप्यतिदिशति याज्ञवल्क्यः— ( ३।२५१ )

‘यागस्थक्षत्रविद्याती चरेद्ब्रह्महणि व्रतम् ।

गर्भहा च यथावर्णं तथात्रेयीनिपूदकः ॥’ इति ।

व्रतपदात्तदेवातिदिश्यते, न मरणम् । गर्भश्च विज्ञायां संभूतः । जारजे तु ब्राह्मण्याभावान्न तद्वध इदं प्रायश्चित्तम्, किन्तु गोलकादिवधनिमित्तमिति निबंधकृतः । यद्यप्याचार्यमते कुंडगोलकादिषु ब्राह्मण्यमस्त्येव तथापि कुण्डगोलकादिवधप्रायश्चित्तमेव । अन्यथा तद्विधिव्यर्थः स्यात् ; एतच्च गर्भः स्त्रीपुत्रपुंसकविशेषत्वेनाज्ञातश्चेत् । स्त्रीत्वेन ज्ञाते उपपातकप्रायश्चित्तम् । ब्राह्मण्यादिस्त्रीमात्रवधस्योपपातकत्वमिति विज्ञानेश्वरादयः ( ३।२५१ ) । नपुंसकत्वेन ज्ञाते षण्ढवधप्रायश्चित्तं पूर्वमुक्तम् ।

आत्रेयीमाह वसिष्ठः— ( २०।४२-४३ )

‘रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुः । अत्र होष्यदपत्यं भवति ।’ इति ।

रजस्वला त्रिदिनम्, तदूर्ध्वं त्रयोदशेति षोडश । अत्र होष्यदिति हेतुना वंध्याव्युदासः ।



यस्मिन्-

‘जन्मप्रभृतिसंस्कारैः संस्कृता मंत्रवच्च या ।

गर्भिणी त्वय वा या स्यात्तामात्रेयीं विदुर्बुधाः ॥’ इति ।

विष्णुः—(५०।५-८) ‘एतन्महाव्रतं ब्राह्मणं हत्वा द्वादशवत्सरं कुर्यात् । यागस्थं क्षत्रियं वैश्यं गर्भिणीं रजस्वलां वा अत्रिगोत्रां वा ॥’ इति ।

यत्त्वगिराः—

‘आहिताग्नेर्द्विजातेस्तु हत्वा पत्नीमनिदिताम् ।

ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यादात्रेयीन्नस्तथैव च ॥’ इति ।

तद्यागस्यपत्नीपरम् ।

‘सवनस्थां स्त्रियं हत्वा चरेद्ब्रह्महणि व्रतम् ।’

(१२।७४)

इति पराशरोक्तेः ।

ब्रह्मवधव्रतं प्रक्रम्य मनुः—(११।८८)

‘उक्त्वा चैवानृतं साक्षये प्रतिरभ्य गुरुं तथा ।

अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥’ इति ।

विप्रवधफलिकैव साक्ष्यनृतोक्तिः । स्त्री सवनस्था ।

‘यथावर्णम्’ इत्यनुवृत्तौ याज्ञवल्क्यः—(३।२५२)

‘चरेद्ब्रतमहत्वापि घातार्थं चेत्समाहितः ।’

—अत्रातिदेशिकत्वात्पादोनमिति मदनादयः ।

अथ सवनस्थक्षत्रियादिवधे मनुः—(११।१२७-१२८)

‘अक्रामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ।

ऋषभैकसहस्रा गा दद्याच्छुद्ध्यर्थमात्मनः ॥’

‘उय्वदं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ।’

गोसहस्रं सवनस्थवधेऽतिधनाढ्यस्य तपस्यशक्तस्येति मेधातिथिः ।

‘वैश्यहाऽवदं चरेदेतदद्याद्वैकशतं गवाम् ।

षण्मासान् शूद्रहाऽप्येतद्वेनूर्दद्याद्दशाय वा ॥’ इति ।

क्रामतस्तु हारीतः—

‘ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा षड्वर्षाणि व्रतं चरेत् ।



वैश्यं हत्वा चरेदेवं व्रतं त्रैवार्षिकं द्विजः ॥  
शूद्रं हत्वा चरेद्वर्षं ऋषभैकादशाश्च गाः ॥ ' इति ।

श्रोत्रियवधे तु स एव—

‘तुरीयोऽनं क्षत्रियस्य वधे ब्रह्महणि व्रतम् ।  
अर्द्धं वैश्यवधे कुर्यात्तुरीयं वृषलस्य तु ॥’

यमः— ( ५१५ )

‘कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चांद्रायणमथाचरेत् ।  
दशसंख्याश्च गा दद्यादंगच्छेदो यदा भवेत् ॥’

—अंगच्छेद एतेषां समुच्चय इति शूलपाणिः ।

योगीश्वरः— ( ३१२९२ )

‘विप्रदंडोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने ।  
कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽस्तृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ॥’

—दंडः शस्त्रस्याप्युपलक्षकः ।

बृहस्पतिः— ( ११४३ )

‘काष्ठादिना ताडयित्वा त्वग्भेदे कृच्छ्रमाचरेत् ।  
अस्थिभेदेऽतिकृच्छ्रं तु पराकं वाऽंगकर्तने ॥’

याज्ञवल्क्यः ( ३१२९१ )

‘गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः ।  
बध्वा वा वाससा क्षिप्रं प्रसाद्योपवसेद्दिनम् ॥’

सुमतुः — ‘देवर्षिगोब्राह्मणाचार्यमातापितृनरेंद्राणां प्रतिषेधने  
आक्रोशने जिह्वां दहेत्सहिरण्यं दद्यात्’ इति । — एतदभ्यासविषयम् ।

यमः—

‘आवध्य ब्राह्मण कण्ठे प्रायश्चित्त विधीयते ।

त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥’

मिथ्याभिशंसने याज्ञवल्क्यः— ( ३१२८५ )

‘मिथ्याभिशंसने दोषो द्विःसमो भूतवादिनः ।

मिथ्याभिशस्तदोषं च समादत्ते मृषा वदन् ॥’

प्रायश्चित्तमाह वसिष्ठः— ( २३१३३ )

‘ब्राह्मणमनृतेनाभिशप्य पतनीयेनापतनीयेन वा मासमन्मथः शुद्ध-  
वतीरावत्तेयेत् ।’ शुद्धवतीः ‘एतोन्निन्द्रम्’ (ऋक्सं. ६।६।३१) इत्याद्याः ।



याज्ञवल्क्यः—( ३।२८५ )

‘ महापापोपपापाभ्यां योऽभिशंसन्मृषा परम् ।

अन्भक्षो मासमासीत् स जायी नियतं द्वियः ॥ ’

इदमुपपापाभिशापे आवृत्ते, सकृच्च महापापाभिशंसने । गुरुविषये कामतः तदावृत्तौ तु शंखलिखितौ — ‘ नास्तिकः कृतघ्नः कूटव्यवहारी ब्राह्मणवृत्तिघ्नो मिथ्याभिशंसी चेत्येते षड्वर्णाणि ब्राह्मणगृहेषु भैक्षं चरेयुः । संवत्सरं बौतभैक्ष्यमश्रीयुः षणमासान्वा गा अनुगच्छेयुः’ इति । एतत्सजातीयेन सजातीयेऽभिशस्ते ।

विजातीये तु—

‘ प्रातिलोभ्यापवादे तु द्विगुणस्त्रिगुणो दमः ।

वर्णानामानुलोभ्ये तु तस्मादर्द्धार्द्धहानितः ॥ ’ ( २।२०७ )

इति याज्ञवल्क्योक्तं दण्डानुरूपं बोध्यम् ।

अथ प्रसंगान्मिथ्याभिशस्तस्य याज्ञवल्क्यः—( ३।२८६ )

‘ अभिशस्तो मृषा कृच्छ्रं चरेदाग्नेयमेव वा ।

निर्वपेत्तु पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव च ॥ ’

एतदुपपातकविषयम् । अतिपातके तु ‘ एतेनाभिशस्तो व्याख्यातः ’ इति वासिष्ठं ( २३।३१ ) मासमन्भक्षणम् । पापे महापापे च पैठीनसिः— ‘ अनृतेनाभिशस्यमानः कृच्छ्रं मासं चरेत् पातकेषु । महापातकेषु द्विमासं कृच्छ्रम् ’ इति ।

जातिमात्रक्षत्रियादिवधे तु मनुः—( ११।१२६ )

‘ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।

वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडश ॥ ’ इति ।

क्षत्रियस्य वधं कृत्वा चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ।

वैश्यस्य तु द्वयं कुर्याच्छूद्रस्यैन्दवमेव तु ॥ ’

अस्मिन्नेव विषये मनूक्तानि त्रैमासिकद्वैमासिकमासिकान्युपपातक-सामान्यप्रायश्चित्तानि ज्ञेयानि । अकामतस्तु याज्ञवल्क्यीयं त्रिगत्रो-

१ वृत्तशब्देन चात्र गुणादिकमुच्यते । ‘ गुरुपूजा घृणा शौचं सत्यमिन्द्रिय-निग्रहः । प्रवर्तनं हितानां च तत्सर्वं वृत्तमुच्यते’ ॥ इति मनुस्मरणात् ।—मिताक्षरा ।



पवाससहितमृषमैकादशगोदानम्, मासं पंचगव्याशनम्, कृच्छ्राति-  
कृच्छ्रौ चेति क्रमात् ज्ञेयम् । न चैषां सामान्यविहितत्वाद्विशेषविहितैः  
प्रायश्चित्तैर्वाधः । 'स्त्रीशूद्रविद्वक्षत्रवधे' इति क्षत्रियादिवधस्योपपातक-  
त्वोक्तैरानर्थक्यापातात् । एवं सर्वेष्वप्युपपातकेषु सामान्यविशेष-  
विहितानां व्यवस्था ज्ञेया ।

पराशरः— ( ६।१८ )

‘वैश्यं शूद्रक्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् ।

हत्वा चांद्रायणं तस्य त्रिशङ्गाश्चैव दक्षिणा ॥’ इति ।

—द्विजोत्तमः पतितो विप्रः क्षत्रियश्चेति माधवः ।

अथ धनहर्तृप्रेतक्रियाया अकरणे शंसः— ( १७।६१ )

‘प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा धनहारकः ।

वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्भ्रतं प्रयतश्चरेत् ॥’

अज्ञानाहुर्वृत्तक्षत्रियादिवधे तु संवर्त्तः— ( १२९ )

‘निहत्य क्षत्रियं मोहाग्निभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ।’

तथा—

‘कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत स नरो वैश्यघातकः ।

कुर्याच्छूद्रवधे विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥’ इति ।

पराशरः— ( ६।१६ )

‘शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ।

प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा ॥’ इति ।

एतानि तु प्रायश्चित्तानि क्षत्रियादिहन्तुर्विप्रस्यैव । क्षत्रियादेः  
सजातीयवधे तु पादपादन्यूनम् । वैश्यस्य क्षत्रियवधे द्विगुणम् ।  
शूद्रस्य विद्वक्षत्रिययोर्वधे द्विगुणं त्रिगुणं वेत्युक्तं प्राक् ।

व्यभिचारोत्पन्नवधे तु याज्ञवल्क्यः— ( ३।२६२ )

‘चांद्रायणं चरेत्सर्वानवकृष्टान्निहत्य तु ।’

—अवकृष्टा व्यभिचारजाः ।

१ चतुर्विंशतिमते-माघ.



हारीतः— २०।७१ )

‘चंडालवधत्तंप्राप्तिर्त्राज्ञगस्य भवेद्यदि ।

कारयेद्वा दशं कृच्छ्रं तत्तत्कृच्छ्रं ततो भवेत् ।’ इति ।

अंगिराः— ।

‘सर्वीत्यजानां गमने भोजने च प्रमापणे ।

पराकेण विशुद्धिः स्यादित्यांगिरसभाषितम् ॥’ इति ।

—एतद्ज्ञानतो वधे । ज्ञानतरतु चांद्रायणमिति विज्ञानेश्वरः ।

विपरीतमिति तु माधवः ।

तदाह लौगाक्षिः—

‘हनने प्रतिलोमानां शूद्रजा ॥ कथं भवेत् ।

ज्ञानपूर्वे पराकः स्यादज्ञानाद्वैन्दवं तथा ॥’ इति ।

चांद्रायणं द्विविधमप्रधेनुकं त्रिधेनुकं च । पराकोऽपि पंचधेनुकस्त्रि-  
धेनुकश्चेति द्विविधः । तत्र ज्ञाने महतोश्चान्द्रायणपराकयोर्निवेशः,  
अज्ञानतस्तु अल्पयोरिति ग्रन्थयोरविरोधः ॥

यत्तु ‘मासा’ इत्यनुवृत्तौ ब्रह्मगर्भः - ‘अन्तरप्रभवाणां तु सूतादीनां  
चतुर्द्विषद्’ इति, तत्कामतोऽभ्यासविषयम् । तत्र सूतस्य वधा-  
भ्यासे षणमासाः । वैदेहकस्य चत्वारः । चण्डालस्य द्वौ । मागधस्य  
चत्वारः । क्षत्तुरायोगवस्य च द्वौ ति ॥

श्वपाकं चण्डालयोश्चौरयोर्वधे तु देवलः—

‘चौरः श्वपाकश्चण्डालो विप्रेणाभिहतो यदि ।

अहोरात्रोषितो भूत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

अथ स्त्रीवधे हारीतः—(२०।११-१५) ‘षड्वर्षाणि राजन्ये, त्रीणि  
वैश्ये, अध्यर्द्धं शूद्रे, क्षत्रियवद्ब्राह्मणीषु, वैश्यवत् क्षत्रियासु, शूद्रव-  
द्वैश्यासु, शूद्रार्द्धमितरासु ।’

शूद्रार्द्धं नवमासिकम् । इतरासु शूद्रासु । एतच्च श्रोत्रियपत्न्या गुण-  
वत्याः कामतो वधविषयम् । सप्तमातृभगिनीदुहितृस्तुषात्मपत्न्याद्यति-  
प्रत्या नन्नावय विषयं च । सप्तभगिनीपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलानी-

१ ‘भगवानत्रिरवती’ इति तुर्यपादपाठोपेतमिदमत्रिसंहितायाम् (६।३९) ।



पितृव्यपत्नीभ्रातृभार्याश्च श्रूणां वधेऽप्येतान्येव पादोनानि । सपिण्डास-  
गोत्राणां वधेऽर्हानि । आसामेव श्रोत्रियपत्नीत्वादिगुणविशेषे  
तत्तत्प्रायश्चित्तं द्विगुणं कल्प्यमिति निबन्धकृतः । आसामेवाकामतो  
वधे त्वेतदेवार्हं कल्प्यम् ।

यत्तु गौतमः— ( ३।४।१६-१७ )

‘शूद्रे संवत्सरं वृषभैकादशाश्च गा दद्यात् । अनात्रेय्यां चैवम्’ इति ,  
तदगुणविप्रमात्रपत्नीवधविषयम् ।

यत्तु शातातपः— ( २४ )

‘स्त्रीयाती कृच्छ्रं षण्मासम्’ इति, तदत्रैवाकामतो द्रष्टव्यम् ।  
प्रतिलोमात्प्रसूतानां ब्राह्मण्यादीनामकामतो वधे योगीश्वरः— ( ३।२६८ )

‘दुर्वृत्तब्रह्मविद्भक्षत्रशूद्रयोपाः प्रमाप्य तु ।

हतिं अनुर्वस्तमवि क्रमादद्याद्विशुद्धये ॥

—हतिश्चर्मकोशः । वस्तः छागः । अविर्मेघः ।

व्याघ्रस्तु—

‘चतुर्णामपि वर्णानां नारीहत्वाऽनवस्थिताः ।

शङ्खशुक्तयजमेषांश्च क्रमादद्याद्विशुद्धये ॥’ इति ।

अत्र शङ्खशुक्ती अजापेक्षयाऽधिकमूल्ये ज्ञेये । हत्यादिदाने सुवर्ण-  
मपि दक्षिणा देयेत्यपराकं ।

कामतस्त्वाह ब्रह्मगर्भः—

‘प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणां मासावधि स्मृताः ।

अन्तरप्रभवाणां च सूतानां तु चतुर्द्विषट् ॥’

ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यानां वधे क्रमेण षट्चतुर्द्विसङ्ख्या मासा इत्यर्थः,  
शूद्रायां त्वेकः । अन्तरप्रभवाणामिति व्याख्यातम् ।

वैश्यावधे किञ्चिद्देयम्, ‘वैशिकेन किञ्चित्’ इति गौतमोक्तेः  
( ३।४।२७ ) । किञ्चित् जलम् । ‘शूद्रायामविकं वैश्यां हत्वा दद्याज्जलं  
नरः’ इत्याङ्गिर उक्तेः । अपराकं तु— गौतमीये वैश्ये किञ्चिन्न देय-  
मित्यर्थं कृत्वा आङ्गिरसे ‘वैश्यां हत्वा जलं स्पृशेत्’ इति पठितम् ।

१ वैशिकेन वैश्याकर्मणा जीवन्त्यां ब्रह्मबन्ध्वां हतायां किञ्चिद्देयम् ; ‘अष्टमुष्टि  
भवेत्किञ्चित् —’ इत्येतत् हरदत्तः ।



सकृद्व्यभिचारितविप्रादिवधे प्रचेताः— ‘अनृतुमतीं ब्राह्मणीं हत्वा कृच्छ्राब्दं षण्मासान्वेति । क्षत्रियां हत्वा षण्मासान्मासत्रयं वेति । वैश्यां हत्वा मासत्रयं सार्द्धमासं वेति । शूद्रां हत्वा सार्द्धमासं विंशत्यहानि वेति ।’

योगीश्वरोऽपि— ( ३१२६९ )

‘अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।’

शूद्रहत्याव्रतं योगीश्वरोक्तं ( ३१२६७ ) पाण्मासिकं, दशधेनुदानं वा । अत्र पाण्मासिकमज्ञानाद्ब्राह्मणीवधे ज्ञानात् क्षत्रियावधे च । ज्ञानाद्वैश्यावधे दशधेनुदानमिति विज्ञानेश्वरः ( ३१२६९ ) ।

क्वचित्तु स्त्रीवधे प्रयोजकस्य प्रायश्चित्ताभावसंभ्युदयं चाहापराकं व्यासः—

‘अकामतः स्त्रियं हत्वा ब्राह्मणीं वैश्यवच्चरेत् ।

कामतो द्विगुणं प्रोक्तं प्रदुष्टायां न किञ्चन ॥

पुण्यान् लोकानवाप्नोति शूद्रगां यस्तथा नयेत् ।

पतिव्रीमथ भर्तृव्रीं ता हि सङ्करकारिणीः ॥’

अथ गोवधे मनुः— ( १११०८—११६ )

‘उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ।

कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥

चतुर्थकालमश्रीयादक्षारलवणं मितम् ।

गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥

१ चतुर्थकालमिति— अन्नपानं प्रतिदिनं कालद्वये स्वीक्रियते । ‘तस्माद्विरहो मनुष्येभ्य उपहियते प्रातश्च सायं च’ इत्यान्नातत्वात् । तथा प्रातर्भुक्तवतः सायं द्वितीयः कालः; परेषुः प्रातः कालस्तृतीयः, तत्रैव सायं चतुर्थः कालः । ( तै. आ. टी. १।३२ ) एकाहं भुक्त्वा द्वितीयेऽहि सायं अश्रीयात्— इत्यर्थः । अपराहो वा चतुर्थकालः, ‘लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तगते रवौ । प्रातस्तु स स्मृतः कालो भागश्चाहः स पञ्चमः ॥ सङ्गवस्त्रिमुहूर्तस्तु मध्याहस्तस्तमः स्मृतः । ततस्त्रयो मुहूर्तास्तु अपराहो विधीयते ॥ पञ्चमो दिनभागो यः स सायाह इति स्मृतः ।’ इति सिन्धुटीकोदाहृतपराशरादिवचनात् ॥ —प्रा. त.



दिवानुगच्छेत्ता गास्तु तिष्ठन्नुर्ध्वं रजः पिबेत् ।  
 शुश्रूषित्वा नमस्कृत्वा रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥  
 तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु ब्रजन्तीष्वप्यनुब्रजेत् ।  
 आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥  
 आतुरामभिषिक्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।  
 पतितान् पङ्कलग्नान् वा सर्वप्राणैर्विमोचयेत् ॥  
 उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।  
 न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥  
 आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथ वा खले ।  
 भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥  
 अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गा अनुगच्छति ।  
 स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥  
 वृषभैकादशा गास्तु दद्यात्सुचरितव्रती ।  
 अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥' इति ॥

—यवान गोमूत्रपक्वान् 'गोमूत्रेण यवागूं कृताम्' इति व्यासोक्तेः ।  
 कृतवापः सशिखं कृतवपनः । 'सशिखं वपनं कृत्वा' इति  
 (८।३९बृ.प.८।१२४) पराशरोक्तेः ॥

अत्राद्येन श्लोकेनैकं व्रतमुक्तम्, द्वितीयेनापरम्, अवशिष्टश्लोकै-  
 स्तृतीयमिति व्रतत्रयं क्रमाच्छ्रद्धाक्षत्रियविप्रस्वामिकगोवधेषु व्यवस्थाप्यम् ।  
 विप्रस्वामिकगोवध एवानुमन्त्रानुग्राहकसाक्षात्कर्तृषु वेति विज्ञानेश्वरा-  
 दयः । उक्तावयवत्रयमेकमेव षाण्मासिकं व्रतमिति केचित् । युक्तं चेदम् ।

'एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ।' (१-१।११७) इति ।

मनुनैकत्वेन परामर्शान् । तच्च कामतो गुणवद्विप्रस्वामिकगोवध-  
 विषयम् ।

याज्ञवल्क्यः—(३।२६३—३६४)

'पंचगव्यं पिबन् गोघ्नो मासमासीत संयतः ।

गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुध्यति ॥

१ वीरासनं भित्त्याद्यनाश्रित्योपवेशनम् । उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपविष्टस्तथा  
 निशि । एतद्वीरासनं प्रोक्तं—(अ. पु. १७।१।४) इति परिभाषितं त्वत्र न विव-  
 क्षितम्, रात्रिप्रद्वेषान् ।



कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं च चरेद्वाऽपि समाहितः ।  
दद्याच्चिरात्रं वोषोष्य वृषभैकादशास्तु गाः ॥' इति ।

—एतच्च मनूक्तविषय एवाकामतो ज्ञेयम् ।

न्यायः—

‘गां चेद्धन्यान्नरः कामात्पणसप्तशतं तथा ।

श्रोत्रियाय दरिद्राय दद्याच्छुद्ध्यर्थमात्मनः ॥' इति ।

यत्तु शङ्कः— (१७।९)

‘पादं तु शूद्रहत्वायामुदकयागमने तथा ।

गोवधे च तथा कुर्यादगम्यागमने तथा ॥' इति ।

तच्छ्रोत्रियकुटुम्बविप्रस्वामिककपिलकर्माङ्गभूतगोवधपरम् ।

अत एव बृहस्पतिः— (३।६)

‘गर्भिणीं कपिलां दोग्ध्रीं होमधेतुं च सुव्रताम् ।

खड्गादिना घातयित्वा द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥’

इति विशिष्टायां गवि प्रायश्चित्तविशेषमाह । अत एव प्रचेतसा—  
‘स्त्रीगर्भिणीगोगर्भिणीबालवृद्धवधेषु भूणहा भवति ’ इति ब्रह्महत्याव्रत-  
मतिदिष्टम् ।

अस्मिन्नेव विषये यमः— (५।१९)

‘गोसहस्रं शतं वापि दद्यात्सुचरितव्रतः ।

अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भयो निवेदयेत् ॥ ’ इति ।

गोगर्भवधे तु षट्त्रिंशन्मते विशेष उक्तः—

‘पाद उत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ दृढतां गते ।

पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥

अंगप्रत्यंगसम्पूर्णं गर्भं चेतःसमन्विते ।

द्विगुणं गोव्रतं कुर्यादेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ’ इति ।

बृहस्पतेः—

‘एकवर्षे हते वत्से कृच्छ्रपादो विधीयते ।

अबुद्धिपूर्वं पुंसः स्याद्विपादस्तु द्विहायने ।

त्रिहायने त्रिपादः स्वात्प्राजापत्यमतः परम् ॥ ’ इति ।

एतच्च प्रायश्चित्तमल्पत्वादबुद्धिपूर्वकाधमसंबन्धिगोवधविषयम् ।



यमः— ( ४८-४९, ६१ )

‘ काष्ठलोष्टादिभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि ।  
 प्रायश्चित्तं कथं तत्र शस्त्रे शस्त्रे विधीयते ॥  
 काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ।  
 तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे वाऽप्यतिकृच्छ्रकम् ॥  
 प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्वाह्यभोजनम् ।  
 त्रिंशद्वा वृषभं चैकं दद्यात्तेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥ ’ इति ।  
 सर्वर्तः— ( १३८× परा. ९।४९ )

‘ एका चेद्वहुभिः काचिद्देवाद्व्यापादिता यदि ।  
 पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ’ इति ।

१ ‘ एका चेदित्युपलक्षणम् । अतो बहुभिर्द्वयोर्वहूनां च व्यापादने प्रतिपुरुषं पादद्वयं पादोनं वा कल्पनीयम् — इति मिताक्षरा ।

वस्तुतस्तु— एकाधिकानामेकैकपुरुषस्यैकप्रयत्नजन्यवधे ‘ व्यापन्नानां बहूनां ’ ( सं. १३५ ) इति वचनात् एकैकपुरुषस्य द्विपादं कृत्वा प्रायश्चित्तम्, प्रयत्नभेदे तु ‘ गोघ्नवद्विहितः कल्पश्चान्द्रायणमथापि वा । अभ्यासे तु तयोर्भूयः ’ इत्यनेन तन्त्रतोया अभावात् प्रत्येकं प्रतिपुरुषं द्विपादा वृत्तिरिति ।

एतच्चाकामतो वधे द्रष्टव्यम्, दैवादिति विशेषणोपादानात् । कामकारे बहूनामपि प्रत्येकं कृत्स्नदोषसम्बन्धात् पूर्णप्रायश्चित्तं युक्तम् सत्रिणां फलमिव । प्रतिपुरुषं कृत्स्नव्यापारसमवायात्; ‘ एकं घ्नतां बहूनां च यथोक्ताद्विगुणो दमः । ’ ( या. २।२२१ ) इति प्रत्येकं दण्डे द्वैगुण्यदर्शनाच्चेति मिताक्षरा ।

वस्तुतस्तु— सर्वत्र पापे ‘ स्यात्त्वकामकृते यतु द्विगुणं बुद्धिपूर्वके । ’ इत्यङ्गिरो वचनेनाज्ञानात् ज्ञाने द्वैगुण्यदर्शनादत्रापि ज्ञाने द्विपाद एव युक्तः, सत्रे तु ‘ सप्तादशावरा ऋद्धिकामाः सत्रमुपासीरन् ’ इति श्रवणात्तथा । ‘ एवं घ्नताम् ’ इति वचनं तु गोवधातिरिक्तविषयम् । गोवधे ‘ एका चेत् ’ इत्युपदेशेन ‘ दण्डवत् प्रायश्चित्तानि भवन्ति ’ इत्यतिदेशानवसरात् । तदवसरे तु प्रत्येकं पूर्णप्रायश्चित्तद्वैगुण्यं स्यात्, न पूर्णप्रायश्चित्तमात्रम् — प्रा. तत्वम् ।

हन्तृवहुत्वे यस्य प्रहारेण हता, तस्याधिकप्रायश्चित्तप्रकर्षणार्थमुपायमाह पराशरः— ( ९।४७ ) ‘ एको हतो यैर्वहुभिः संमेतैर्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिघातात् । दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता निवर्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ॥ ’ इति बहुजनप्रहारैर्मृतौ यदीयः प्रहारः प्राणवियोगनिमित्तन ज्ञातः, तत्र तुलाभ्यादिदिव्येन तं निश्चित्य समूहात् पृथक्कृत्य संपूर्णं गोहत्याव्रतं कारयेत् ।— प्रा.मु.



—यादृग्विधगोहत्यायां यद्व्रतमुपदिष्टं तस्य पादमित्यर्थः ।

आपस्तम्बः— ( १।१८ )

‘ पाषाणैर्लकुटैर्वाऽपि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ।  
निपातयन्ति ये गास्तु कृत्स्नं कुर्युर्व्रतं हि ते ॥  
तथैव बाहुजंघोरुपार्थग्रीवादिमोटनैः ॥ ’ इति ।

—लकुटं दंडः ।

‘ अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणतः ।

आर्द्रस्तु सपलाशश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ ’

(परा. १।१० ल. अ. २।८)

इति पराशरोक्ताधिकप्रमाणेऽस्यापि स्थलविशेषे दोषविशेषहेतुत्वमस्त्येव ।

पराशरः— ( १।२ )

‘ दंडाद्धूर्ध्वं यदन्येन प्रहाराद्यदि घातयेत् ।

प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत् ॥ ’ इति ।

स एव— ( १।११-१२ )

‘ मूर्च्छितः पतितो वाऽपि दंडेनाभिहतः स तु ।

उत्थितस्तु यदा गच्छेत्पञ्च सप्त दशैव वा ॥

भ्रासं वा यदि गृहीयात्तोयं वाऽपि पिवेद्यदि ।

पूर्वं व्याध्युपसृष्टश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ’ इति ।

पराशरः— ( १।३ )

‘ रोधबंधनयोक्ताणि घातश्चेति चतुर्विधम् ’ इति ।

स एव— ( १।५-१० )

‘ गोवाटे वा गृहे वाऽपि दुर्गेष्वथ समस्थले ।

नदीष्वथ समुद्रेषु अन्येषु च नदीमुखे ॥

दग्धदेशे मृता गावः स्तंभनाद्रोध उच्यते ।

योक्तामकदोरैश्च कण्ठाभरणभूषणैः ॥

गृहे वाऽपि वने वाऽपि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ।

तदेव बंधनं विद्यात्कामाकामकृतं च यत् ॥

१ वधनिमित्तमिति शेषः—प्रा.मु.



इले वा शकटे पंक्तौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः ।  
 गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्तो भवति तद्वयः ॥  
 मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः ।  
 कामाकामकृतक्रोधो दण्डैर्हन्यादथोपलैः ॥  
 प्रहृता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥ ' इति ।

आपस्तम्बः— ( १।१८ )

‘ दमने दामने चैव रोधे संघातयोजने ।  
 नस्तः सकलपाशैर्वा मृते पादोनमाचरेत् ॥ ’

—दामनं मेढिवंधनम् ।

संवर्त्तः— ( १३५ )

‘ व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेऽपि वा ।  
 भिषङ्मियोपचारे च द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ ’ इति ।

व्यासः—‘ औषधं लवणं चैव पुण्या ( द्रव्य ) र्थमपि भोजनम् ।

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत् ॥

अतिरिक्ते विपत्तिश्चेत्कृच्छ्र ( मेघ ) पादो विधीयते ।’

अपवादमाह स एष— ( आप. १।११-१२ )

‘ औषधे तु न दोषोऽस्ति स्वेच्छया पिबतो यदि ।

अन्यथा दीयमाने तु प्रायश्चित्तं न संशयः ॥ ’ इति ।

एतत्त्वन्भिन्नस्य । अभिज्ञस्य तु न दोषः ।

यथाह संवर्त्तः— ( १३७ आप. १।३२ परा. ९।४४ )

‘ यंत्रणे गोचिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने ।

यत्ने कृते विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥ ’

—यंत्रणं व्याध्यादिनिर्यातनार्थं संदंशादिप्रवेशनम् ।

तथा— ( १३९ )

‘ दाहच्छेदशिराच्छेदभेदनैरुपकुर्वताम् ।

द्विजानां गोहितार्थं तु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ’ इति ।

पराशरोऽपि— ( ९।४३ )

‘ ग्रामघाते शरौघेण वेष्टमभंगनिपातने ।

अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ’ इति ।

१ गूढगर्भः अन्तर्मृतगर्भः— प्रा. त. ।

८



तथा—

‘कूपखाते च धर्मार्थे गृहदाहे च या मृताः ।

भ्रामदाहे तथा घोरे प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’ इति ।

एतच्च बंधनादिरहितस्यैव कथंचिद्दहनादिविषयम् ।

इतरत्र त्वापस्तंबः— ( ३१६ )

‘कांतारेष्वथ दुर्गेषु गृहदाहे खलेषु च ।

यदि तत्र विपत्तिः स्यात्पाद एको विधीयते ॥’ इति ।

पराशरः— ( ९१३० )

‘दहनात्तु विपद्येत अनङ्गान् योक्तयन्त्रितः ।

उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥’ इति ।

बल्ललादिनाऽन्येन कारिते रोधादौ त्वापस्तंबः— ( ११६ )

‘पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ।

योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥’ इति ।

पराशरः— ( ८११ )

‘गवां बंधनयौक्तैस्तु भवेन्मृत्युरकामतः ।

अकामकृतपापस्य प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥

प्रायश्चित्ते तत्तश्च्रीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।

अनङ्गसहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥’ इति ।

व्यासः— ( आप. ११६ )

‘कंठाभरणदोषेण विपत्तिर्याऽत्र गोर्भवेत् ।

गोघ्नोऽर्द्धं तु चरेत्तत्र भूषणार्थं हि तत्स्मृतम् ॥’ इति ।

आपस्तम्बेनातिदाहादौ विशेष उक्तः— ( १२४ )

‘अतिदाहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदने तथा ।

नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥’

१ एतद्वचनं यमस्येति भवदेवभट्टः— प्रा. त.

२ रौघः क्षीणाया गोराहारप्रचारनिर्गमविशेषः । बन्धनमयथाबन्धनमकाल-  
बन्धनं च । योजनं हलशकटादौ योजनम्, तत्रातिवाहादिनेति शेषः । निपातनं  
कूपावटादिषु इति भवदेवः । प्रा. त.



अत्रापवादमाह पराशरः— ( ९।२७ )

‘ अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहने मोचनेऽपि वा ।

सायं सङ्गोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबन्धने ॥’ इति ।

स एव— ( ९।२९ )

‘ अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।

नासिक्ये पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥’ इति ।

तथा— ( हा. १९।१० )

‘ नासाभेदनदाहेषु कर्णच्छेदनबन्धने ।

अतिदोहातिवाहाभ्यां कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥’ इति ।

तत्कपिलत्वाद्यनेकगुणवद्विषयमिति ।

स्वामिनो गोरुपेक्षणे प्रायश्चित्तमाह व्यासः— ( ३।३९-४१ )

‘ जलौघपल्वले मग्ना मेघविशुद्धताऽपि वा ।

श्वभ्रे वा पतिताकस्माच्छ्वापदेनापि भक्षिता ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोस्वामी व्रतमुत्तमम् ।

शीतवातहता वा स्यादुद्धन्धनमृताऽपि वा ।

शून्यागार उपेक्षायां प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥’ इति ।

—स्वामीति पालस्याप्युपलक्षणम् । सत्कार्यान्तरवैयम्यादुपेक्षायां त्वर्षम् ।

अत एव विष्णुः—

‘ पल्वलौघमृगव्याघ्रश्वपदादिनिपातने ।

श्वभ्रप्रपातसर्पाद्यैर्भृते कृच्छ्राद्धमाचरेत् ॥’ इति ॥

अत एव

‘ अपालनात्तु कृच्छ्रः स्याच्छून्यागार उपप्लवे ।’

इत्यनेनैवोपेक्षायां प्राजापत्य उक्तः ।

आपस्तम्बः—

‘ अस्थिभंगं गवां कृत्वा लांगूलछेदनं तथा ।

पाटनं दन्तशृङ्गाभ्यां मासार्द्धं तु यवान्पिबेत्’ इति ॥

—एतत्कामतः ।

१ यम इति भवदेवभट्टः । —प्रा.त.

२ दाहादिना स्थिरचिह्नकरणमङ्कनम् । गोमयहरिदादिना तत्कालिकचिह्नकरणं लक्षम् । —मा.



अकामतस्तु अङ्गिराः—(ल. अं. ३०)

‘शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे वा चर्मनिर्मोचनेऽपि वा ।  
दशरात्रं पिवेद्वज्रं स्वस्यापि यदि गौर्भवेत् ॥ इति ।

पराशरः—(९।१७, १८)

‘पाषाणेनाथ दण्डेन गावो येनाभिघातिताः ।  
शृङ्गभङ्गे चरेत्पादं द्वौ पादौ नेत्रघातने ॥  
लाङ्गुले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने ।  
त्रिपादं चैव कर्णे तु चरेत्सर्वं निपातने ॥’ इति ।

स एव—(९।१९)

‘शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च ।  
यदि जीवति षण्मासात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’ इति ।

व्यासः—

‘यवसं चोपहर्त्तव्यं यावद्रोहेत तद्व्रणम् ।  
सम्पूर्णे दक्षिणां दद्यात्ततः पापात्प्रमुच्यते ॥’

पराशरः—(९।२२)

‘यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा ।  
गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥’

स एव—(९।३६)

‘प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षछेदेषु पातयन् ।  
गवाशनेषु विक्रीणस्ततः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥’ इति ।

कूपवाण्यादिनिम्रेषु पानार्थं, वृक्षछेदनादिदुर्गमेषु भक्षणार्थं प्रेरणे,  
गोमांसाशनहस्ते गोविक्रये च गोवधपापमित्यर्थः ।

स एव—(९।४७)

‘गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः ।  
अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥’

१ वज्रं क्षीरादीति माधवविज्ञानेश्वरादयः । वस्तुतस्तु—‘गोमूत्रेण तु सम्मिश्रं  
यावकं भक्षयेद्द्विजः । एतद्विमिश्रितं वज्रमुक्तं चोशनसा स्वयम् ॥’ (१।२९)  
इत्यापस्तम्बपरिभाषितस्यैव ग्रहणं युक्तम् । अस्मिन्नेव प्रकरणे उक्तत्वात् ।



सम्भावितगोपतनदेशे स्वोपभोगार्थकूपादिखनने दोषमाह स एव—(१।४१)

‘वेदमद्वारनिवासेषु यो नरः खातुमिच्छति ।

स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥’

स्वकार्यपदाद्धर्मार्थे न दोषः ।

तथा स एव—(१।४०)

‘कूपखाते तटाखाते दीर्घखाते तथैव च ।

अन्येषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’ इति ।

—दीर्घखातं बाण्यादि ।

अत्र स्वयमेव जलार्थं गते मृते च न दोष इत्याह स एव—(१।३९)

‘कूपखाते तटाबंधे नदीबंधे प्रपासु च ।

पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’

स एव—(१।४२)

‘निशि बंधनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।

अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’

एतच्च हितार्थं विहितरज्जुबंधे ज्ञेयम् ।

अपरांके व्यासः—

‘अथात्र चेद्भवेच्छंका सायं गोगोपने मृते ।

गोमूत्रेण तु संमिश्रं त्रिरात्रं यावकं पिबेत् ॥’ इति ।

एतन्निषिद्धरज्जुबंधनपरम् ।

रज्जुविधिनिषेधौ चोक्तौ पराशरेण—(१।३३-३४)

‘नै नारिकेलैर्न च शाणवालैर्न वाऽपि मौजेन न वर्ध्नेशृङ्खलैः ।

एतैस्तु गावो न निबंधनीया बद्धा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ॥’

१ अगाधः कूपः कूपखातः । तटेन तीरेण आसमन्ताद्ध्यत इति तटाबन्धः । प्रौढतयाकः । नदीबन्धः सेतुः । धर्मकाले गवामुदकपानार्थं निर्मिताः प्रौढाः पाषाणादिद्रोण्यः प्रपाः । — मा. २ अग्निर्ग्रामदाहः । ननु—‘दहनातु विपयेत—’ (पृ. ८६ प. १०) इत्यनेन प्रायश्चित्ताभिधानेन इदं प्रायश्चित्तनिराकरणं विरुद्धमिति चेत्, सत्यम् ; ‘यत्ने कृते’ (पृ. ८५ प. २४) इत्यस्य सर्वशेषतयाभिहितत्वेन प्रायश्चित्तापवादस्याग्निनिर्वाणार्थकृतप्रयत्नविषयत्वात्, तत्रैवाकृतप्रयत्नविषयं प्रायश्चित्तमिति न विरोधः—वि. म. ३ ‘शाणबाणैः’ इति नन्दपण्डितादृतः पाठः । नारिकेलं नारिकेलवृक्षत्वद्विमितम् । शाणं शणनिर्मितम् । बाणं बाणवृक्षत्वद्विमितम् । मौञ्जं मुञ्जनिर्मितम् । वर्धा चर्मरज्जुः, बल्केति पाठे पलाशादिवल्कल—



‘कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम् ।’ इति ।  
अन्यगोवधे विशेषमाह मनुः—( ८।२८८ )

‘यो यस्य हिंस्याद्गव्याणि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।  
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् ॥’

पराशरः—( ९।२६ )

‘प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ।  
तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यत्रवीचमः ॥’

ब्राह्मे—

‘आदौ गोपत्वये दत्त्वा गोमूल्यं साधु कल्पितम् ।’ इति ।

एतानि च सर्वाणि प्रायश्चित्तानि वृषवधेऽपि भवन्ति । निमित्तवाक्ये गवामनुवादेन तद्गतस्त्रीलिङ्गस्याविवक्षितत्वात् । दानं तु स्त्रीगव्रीनामेव, तद्वाक्ये गवां विधेयत्वेन तद्गतस्त्रीत्वस्य विवक्षितत्वात् । ‘गोहसंशतं वापि’ ( यमः ५।१९ ) इत्यादौ लिंगविशेषनिर्देशाभावेऽपि स्त्रीगव्रीनामेव, तासां दुग्धादिद्वारा बहूपकारकत्वात् । अत एव ‘गौश्चाश्वश्चाश्वतरश्च’ इत्यत्र लिंगविशेषानिर्देशेऽपि ‘तस्य द्वादशशतं दक्षिणा’ इति तच्छब्देनाऽश्वादींस्तिरस्कृत्य गोपरामर्श इव स्त्रिया एवास्याग्रहणे बहूपकारकत्वमेव निदानमिति भाति । अन्यथा तत्र वृषाणामपि दानमापयेतेति दिक् ।

यान्नवलक्यः—( ३।२७१ )

‘गजे नीलवृषाः पंच शुके वत्सो द्विहायनः ।

खराजमेपेषु वृषो देयः क्रौंचे त्रिहायनः ॥’

मनुः—( ११।१३६ )

‘वासो दद्याद्धयं हत्वा पंच नीलान् वृषान् गजम् ।

अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥’ इति ।

—निर्मितं दाम । अनेन दृढरज्जुमात्रमुपलक्ष्यते— इति तदीयं व्याख्यानं च । तत्र नारिकेलफलत्वङ्निर्मितमेव नारिकेलं ज्ञेयम्, वृक्षत्वङ्निर्मितमित्युक्तिस्तद्व्यादर्शनमूला ।

१ प्रतिरूपकं तत्तुल्यप्राण्यन्तरम् । प्रा. त. २ न चैतद्ग्रहणे दोषः, तद्ग्रहणस्य विक्रयत्वेन व्यवहाराभावात् । — प्रा. त. ३ ‘भागित्वाद्वा गवां स्यात्’ (मी. सु. १०।३।४७) गवां द्वादशशतं स्यात् । कुतः ? भागित्वात्, भागवत्यो हि गवो महाभागाः । महति उपकारे यतन्ते इत्यर्थः । ४ ‘लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥’—प्रा. सु.



एतानि प्रायश्चित्तानि धनिकविषयाणि ।

निर्द्धनस्य तु जाबालिः —

‘ हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषं गां तथैव च  
कृच्छ्रं सान्तपनं कुर्याद्रोभूकन्यानृतेषु च ॥ ’

विष्णुः— ( ५०।२५-२९ ) ‘ गजं हत्वा पञ्चनीलान् वृषभान्  
दद्यात् । तुरगं वासः । एकहायनमनड्वाहं खरवधे । मेवाजवधे च ।  
सुवर्णकृष्णलसमुष्ट्रवधे । ’ इति ।

संवर्तः — ( १४१ )

‘ हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषौष्ट्रौ कपिं तथा ।

एषु सर्वेषु कुर्वीत सप्तरात्रमभोजनम् ॥ ’

बृहस्पत्यासविषयम् ।

अस्मिन्नेव विषये जाबालिः—

‘ सिंहव्याघ्रतुरंगांश्च मृगखंज्जरद्विपान् ।

हत्वा सांतपनं कुर्याद्रोभूकन्यानृतेषु च ॥ ’

सुमंतुः— ‘ वानरसिंहमार्जारमंडूकाश्ववधे प्राजापत्यम् । ’ इति ।

पराशरः— ( ६।९ )

‘ हत्वा मूषकमार्जारसर्पाजगरडुंडुभान् ।

कृशरं भोजयेद्विपान् लोहदंडं च दक्षिणा ॥ ’ इति ।

विष्णुः— ( ५०।३१ ) ‘ हत्वा मूषकमार्जारनकुलमंडूकडुंडुभाजगराणा-  
मन्यतमं ( उपोषितः ) कंसरात्रं भोजयित्वा लोहदंडदक्षिणां दद्यात् । ’

यत्तु शंखः— ( १७।११ )

‘ हत्वा द्विजस्तथा सर्पौ बिलेशयजलेशयौ ।

सप्तरात्रं तथा कुर्याद्भ्रतं ब्रह्मवधे तु यत् ॥ ’ इति ।

तत्कामकृते ।

१ ललाटे शृङ्गवान् पशुः खड्गः— गदाधरः ।

विहृतबहुविषाणः शम्बराकारदेहः सलिलतदचरत्वाच्छम्बरेभ्यो विचित्रः ।  
त्यजति शरदि शृङ्गं रौत्यतोऽसौ रुहः स्यात्पृथुलमृगविशेषः प्रायशब्देदिदेशे ॥ १

२ कसरस्तिलमिश्र ओदनः । ओदनस्तिलमिश्रस्तु कसरः परिकीर्तितः । तिल-  
कल्कान्विनिक्षिप्य कृतो वा कसरो भवेत् ॥ ’ इति वृत्तिकृत्तिखितवचनात् ।— प्रा.मु.



यज्वोशनाः— 'खरमार्जारमंडूकक्षर्पाजगरमृषकान् । हत्वा कृच्छ्रं  
द्वादशरात्रं चरेत्किंचिदद्यात् ॥' इति । तदकामाभ्यासे ।

विष्णुः— ( ५०-३० ) 'श्वानं हत्वा त्रिरात्रमुपवसेत् ।' इति ।

यत्तु माधवीये पैठीनसिः— 'काकोल्लुककुलसकंङ्खरवृकशृगाल  
भांसवर्हिणमूषकचक्रवाकहंसप्लवनकुलमंडूकविडालश्वध एतेषामेकैक-  
स्मिन् शूद्रवधवद्विहितम् ।' इति । तत्कामतोऽत्यंताभ्यासविषयम् ।

मनुः— ( ११।१३५; १३७ )

'हत्वा हंसं बलाकां च वकं बर्हिणमेव च ।  
वानरं श्येनंभासौ च स्पर्शयेद्वाह्मणाय गाम् ॥  
क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा घेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।  
अक्रव्यादो वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥'

स एव— ( ११।१३३ )

'अग्निं कार्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।  
पलालभारकं षण्डे सैसकं चैव माषकम् ॥  
तित्तिरौ तु तिलद्रोणं गवादीनामशकुवन् ।  
दानं दातुं चरेत्कृच्छ्रमेकैकस्य विशुद्धये ॥'

प्रत्येकं प्राजापत्यं कुर्यादिति केचित् । विज्ञानेश्वरस्तु कृच्छ्रपदं  
तपोमात्रपरम् । तर्पांसि च 'संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतु-  
विंशत्यहोद्वादशाहः षडहश्चयहोऽहोरात्रा इति कालाः । एतान्येवाना-  
देशे विकल्पेन कियेरन् । एनसि गुरुणि गुरुणि लघुनि लघूनि'  
इति गौतमोक्तानि ( ३।१।१७-१२१ ) ।

१ 'कङ्कः स्यात् कङ्कमल्लखयो वाणपत्रार्हपक्षकः । लोहपृष्ठो दीर्घपादःपक्षाधः—  
पाण्डुवर्णभाक् ॥' सु. टी. ड.

२ भासः श्येनाकृतिः पीनतुण्डः— उज्ज्वला । भस्मवर्णपक्षी शिक्षावान् प्रस-  
हादः— । च. टी., च. द. । गोष्ठकुक्कुटः— शिवदासः । चक्रवाको द्वन्द्वचरो  
निशावियोगी.— सु. टी. बह्मणः ।

३ ह्रवो जलकुक्कुटः— स्मृ. चं. । महाप्रमाणः प्रसेवकगलः— सु. टी. ड.

४ श्येनः सिञ्चानो गरुडान्वयः— सु. टी. ड.



तानि दानतारतम्येन व्यवस्थाप्यानीत्याह याज्ञवल्क्यः—(प्रा. ३।२७३)

‘उरगेष्वायसो दंडः पंडके त्रपुसीसकम् ।

कोले घृतघटो देय उष्ट्रे गुंजा हर्येऽशुकम् ॥’

—कोलः शूकरः । पंडकश्च मृगपक्षिसमभिव्याहारात्स एव, न तु गो-  
विप्रादिः । तत्र तु तद्वधनिमित्तमेव लघुप्रायश्चित्तमिति विज्ञानेश्वरः । मम  
तु यथा गोब्राह्मणवधनिषेधस्य जात्यवच्छेदेनैव प्रवृत्तेर्न तज्जातीयपंड-  
वधे इदं प्रायश्चित्तम्, तथा मृगादिविशेषजातिपुरस्कारेणापि प्रायश्चित्त-  
स्योक्तत्वात्तत्रापि न प्रवर्तते । अतो यत्र जातिविशेषपुरस्कारेण प्राय-  
श्चित्तं नोक्तम्, तज्जातीयपंडकवध एवैतत्प्रायश्चित्तमिति प्रतिभाति ।

माधवीये कश्यपः—(३।१) ‘मृगमहिषवराहकुंजरगंडकशेरभतरक्षु-  
वानरसिंहव्याघ्रवृषवत्सशंखकादीनामन्येषां च वधेऽहोरात्रोषितश्ची-  
र्णति घृतं दद्यात् ।’

व्यासः—

‘सर्वांश्च प्राणिनः स्थूलान्मंडूकनकुलेष्वहः ।’ इति ।

—इदमज्ञानतः सकृद्वधे ।

ज्ञानतस्तु याज्ञवल्क्यः—(प्रा. ३।२७०)

‘मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्च पतत्रिणः ।

हत्वा ज्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥’

विष्णुः—(५०-३२) ‘गोधोल्कचाषकावधे त्रिरात्रमुपवसेत् ।’

व्यासः—‘शूकरोष्ट्रखरान्हत्वा ज्यहमेतद्वतं चरेत् ।’

यत्तु वसिष्ठः—(२१।२४) ‘श्वमार्जारिमंडूकनकुलसर्पदहरमूषकान्  
हत्वा कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्’ इति तदकामतोऽभ्यासविषयम् ।

—दहरोऽल्पमूषकः ।

यत्तु मनुः—(११।१३१-१३२)

‘मार्जारनकुलौ हत्वा चापं मंडूकमेव च ।

श्वगोधोल्ककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥’

१ शरभोऽष्टापद उष्ट्रप्रमाणो महाशृङ्गः पृष्ठगतचतुष्पादः काश्मीरे प्रसिद्धः—च. द.  
तरक्षुव्याघ्रमेदः—च. द. । २ शल्यकः शलाकासन्निभतनूरुहशाली मृगविशेषः—  
स्मृ. चं. । वृक्षशकलः बृहद्गोधानुकारी । सु. टी. ।

३ चः—यः शकुनसूचकत्वेन प्रसिद्धो हरितवर्णः खर्वकायः पक्षिविशेषः  
स चाषः—स्मृ. चं. । इन्द्रनीलमणिसदृशपक्षः शस्तदर्शनः—सु. टी.



—शूद्रहत्यात्रतं षाण्मासिकम् ।

‘पयः पिबेन्निरात्रं वा योजनं वाऽध्वनौ ब्रजेत् ।  
उपस्पृशेत्स्नवन्त्यां वा सूक्तं वाऽब्दैवतं जपेत् ॥’

पराशरः—( ६।४ )

वृककाककपोतानां सारीतित्तिरघातकः ।  
अंतर्जले उभे संध्ये प्राणायामेन शुध्यति ॥’

—वृकः पक्षिविशेषः । संध्ये इत्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया । अतो यावद्भिः  
प्राणायामैः संध्याद्वयं समाप्यते तावतः कुर्यात् । ‘प्राणायामेनेत्येक-  
वचनमविवक्षितम्’ इति साधवः । इदमकामतः सकृद्वधे ।

स एव—(६।७,८)

‘कारुण्डवचकोराणां पिंगलाकुररस्य च ।  
भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं पूज्य विशुध्यति ॥  
भारुण्डचापभासांश्च पारावतकपिंजलैः ।  
पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥’

यत्तु संवर्तः—( १४५-१४६ )

‘चक्रवाकं तथा क्रौंचं तित्तिरिं शुक्रसारिकै ।  
गृध्रं दयेनमुल्लूकं च तथा पारावतानपि ॥

१ वृको वृकरः, चरकेण—(सु. स्था. २७।४७) ‘ककरो वृकरश्चैव वारटश्चेति  
विष्किराः ।’ इति पठित एव भवितुमर्हति ।

२ कारण्डवः शुक्रहंसभेदोऽल्पः । अन्ये करहवमाहुः, उक्तं च—‘कारण्डवः  
काकवक्त्रो दीर्घाङ्घ्रिः कृष्णवर्णभाक् ।’—सु. टी.

चकोरो रक्ताक्षो विषसूचकः स्वनाम्ना ख्यातः—सु. टी.

कुररश्चीरलयाकारो नादोत्थापितमत्स्यः हस्तमत्स्यग्राही ‘कुरल’ इति लोके  
प्रसिद्धः—सु. टी.

३ कपिञ्जलो गौरतित्तिरिः—डल्हः, सजातीयैः सह कलहकारी पक्षिविशेषः—  
स्मृ. चं.

४ क्रौञ्चः ‘कोञ्च’ इति ख्यातः—च. द. ।



टिट्ठिं जालपादं च मैतुं कुक्कुटमेव च ।

एवं पक्षिषु सर्वेषु दिनमेकमभोजनम् ॥ ’

यद्यपि पराशरः— ( ६।२ )

‘ क्रौंचसारसहंसाश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् ।

जलपादं च शरभमहोरात्रेण शुध्यति ॥ ’

यद्यपि स एव ( ६।५ )

‘ गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः ।

अपक्वाशी दिनं तिष्ठेच्चिकालं मारुताशनः ॥ ’ इति ।

तत्कामकृतवधपरम् ।

यत्तु संवर्तः— ( १४४ )

‘ हंसं बकं बलाकां च श्वाविधं बर्हिणं तथा ।

सारसं चापभासं च हत्वा त्रीन्दिवसान् क्षिपेत् ॥ ’ इति ।

तदभ्यासपरमिति माधवः ।

यत्त्रंगिराः—

‘ काके भासे च गृध्रे च टिट्ठिमे खञ्जरीटके ।

यथा गवि तथा हत्या भगवानंगिराब्रवीत् ॥ ’ इति ।

तत्कामतोऽत्यन्ताभ्यासविषयम् ।

१ टिट्ठिः ‘टिट्ठि’ इति निष्ठुरशब्दभाषी पक्षिविशेषः ।— स्मृ. चं. । २ मनुः  
जलकाकः— सु. टी. ३ सारसः पुष्करः, स च दीर्घकलजङ्घो नीलाङ्गः पक्षि-  
विशेषः ।— स्मृ. चं. । सारसो लक्ष्मणः रक्तशिराः प्रसिद्ध एव — सु. टी.

४ शशादी-शशघ्नी, शशघातीति चरकसुश्रुतयोः श्येनात्पृथगुपवर्णितः ।  
शशघ्नी ‘ पाञ्जिः ’ इति खयाता — च. द. । चीरलयाकारो महाचरणनखः  
प्रहारेण शशकाहरणशीलः शशग्निरिति लोके प्रसिद्धः— सु. टी. । अत एव  
श्येनः कपोतादीन् पक्षिणो निहन्ति, न तु शशमति । अतः श्येनशशादौ  
भिन्नजातीयौ— इति माधवः ।

५ श्वावित्— सूचीसदृशरोमयुक्तः ‘सिंहा’ इति लोके, — सु. टी. । श्वभक्षको  
प्रविशेषः— अप. । वराहविशेषः, यस्य नाराचाकाराणि लोमानि—उज्ज्वला ।

६ वायोर्मधपर्यन्तमाकाशरोहणं लीलया करोति स खञ्जरीटः— स्मृ. चं. ।  
सितासितवर्णो द्रुतललितगतिः । सु. टी.



अतिथनिकस्य तित्तिर्यादौ विशेषमाह मनुः— ( १११३४ )

‘ घृतकुंभं वराहं तु तिलद्रोणं तु तित्तिरम् ।

शुकं द्विहायनं वत्सं कौचं हत्वा त्रिहायनम् ॥ ’

धनिकस्य कामतो बलाकादिवधे माघवीये कश्यपः— ( ४११-३ )

‘ वक्त्रलाकाहंससारसकारंडवचक्रवाककुररगृध्रश्येनखंजरीटट्टिभो-  
ल्लुकशुकसारिकातित्तिरमयूरमद्गुमेचककलंकिंकपोतपारावतादीनां वधे  
प्रायश्चित्तमहोरात्रोषितः सर्वबीजानि च दद्यात् । ’ इति ।

धनिकस्याकामतो वधाभ्यासे तु याज्ञवल्क्यः— ( ३१२७२ )

‘ हंसश्येनकपिक्रंयाज्जलस्थलशिखंडिनः ।

भासं हत्वा तु दद्याद्दामक्रव्यादस्तु वत्सिकाम् ॥’

जलशब्देन वकादयः । स्थलशब्देन बलाकादय इति मिताक्षरायाम् ।

याज्ञवल्क्यः ( ३१२७५ )

‘ किंचित्सास्थिवधे देयं प्राणायामस्त्वनस्थिके । ’ इति ।

—किंचिदष्टमुष्टिधान्यम् ।

मनुः— ( १११४० )

‘ अस्थन्वतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमाणे ।

पूर्णे वा नस्यनस्थनां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥’ इति ।

शूद्रहत्याव्रतं पाण्मासिकम् ।

अथात्मघाते यमः ( २२-२३ वृ.य. १।३-४ )

‘ जलाग्न्युद्गंधनध्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ।

विषप्रपतनप्रायाः शस्त्रघातहताश्च ये ॥

नवैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकवर्हिष्कृताः ।

चांद्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकुच्छ्रद्वयेन च ॥’ इति ।

आत्मघातिपुत्रादिर्मृतजातीयवधप्रायश्चित्तसमुचितमेतत्कुर्यात् ।

१ कलविद्धः कालचटको घृङ्गराजाद्विन्नः, अपरे भृङ्गराजमाहुः, अन्ये तु रक्त-  
शिरसं कृष्णप्रीवं ग्रामचटकाकारमाहुः— सु.टी.

२ क्रव्याद्याप्रसृगालादिर्मृगविशेषः, वानरसाहचर्यात् । हंसश्येनसमभि-  
व्याहारात्कङ्कगृध्रादिपक्षिविशेषाश्च गृह्यन्ते ।

३ अनस्थनां मत्कुणादीनाम् ।



मरणमध्यवस्य निवृत्ते तु वसिष्ठः—( २३।१८-१९ ) 'आत्महनना-  
ध्यवसाये त्रिरात्रं जीवन्नात्मत्यागी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेन्निरात्रं  
चोपवसेत्' इति ।—एतदल्पाध्यवसाये ।

अग्निपातादिवह्मध्यवसाये तु पराशरः—(१२।५)

‘ जलाग्निपतने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ।  
प्रत्यावसितवर्णानां कथं शुद्धिर्विधीयते ॥  
प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च ।  
वृथैकादशदानेन वर्णाः शुध्यन्ति ते त्रयः ॥  
ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथे ।  
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥  
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ।  
मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥’ इति ।

अध्यवसायावृत्तौ त्वंगिराः—( १४०-१४१ आप.९।७-८ )

‘ यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्याग्निजलादिभिः ।  
अनाशकनिवृत्तस्तु गृहस्थत्वं चिकीर्षति ॥  
चारयेन्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि तु ।  
जातकर्मादिभिः प्रोक्तैः पुनः संस्कारमर्हति ॥’

वैश्वं मरणमध्यवसाय त्यजतां तु परोशरः—

जलाग्निपतने चैव प्रव्रज्यानशने तथा ।  
अध्यवस्य निवृत्तानां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥  
ब्राह्मणानां प्रसादेन तीर्थानुसरणेन च ।  
गवां च शतदानेन वर्णाः शुद्ध्यन्ति ते त्रयः ॥  
ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि गत्वाऽरण्यं चतुष्पथम् ।  
सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥  
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेच्चैव दिनेदिने ।  
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥

१ प्रत्यावसित इति पठित्वा प्रत्या गृहीतव्रताः कृतसङ्कल्पा इति यावत् ।  
ते च तेऽवसिताश्च प्रत्यावृत्ता इति यावत्— इति व्याचक्षुष्यौ नन्दपण्डितः ।

२ बृहपराशरः — पा.

९



भिक्षार्थी प्रविशेदग्रामं गृहान्सप्त वने वसन् ।

धौतभिक्षां समश्रीयादब्दार्धेन विशुध्यति ॥' इति ।

अनुगमनान्निवृत्तौ त्वापस्तंभः—( अत्रिः ७।१ )

‘चित्तिभ्रष्टा तु या नारी मोहात्प्रचलिता ततः ।

प्राजापत्येन शुष्येत तस्माद्वै पापकर्मणः ॥’ इति ।

आत्मघातिप्रेतक्रियायां तु वसिष्ठः—( २३।१४ )

‘य आत्मघातिनः कुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियां नरः ।

स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥’

उशनाः—

‘प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोद्वन्धनृणोदकैः ।

काष्ठाद्यैश्चात्मनो हन्तुर्नृपब्रह्मसरीसृपैः ॥

शृङ्गिदंष्ट्रिश्च वाण्डालविशुताऽभिहतस्य च ।

नथा सङ्करजातस्य नाशौचोदकवह्नयः ॥

तत्स्पर्शे यदि वाऽऽक्रोशे दिनमेकमभोजनम् ।

अज्ञानादहनादौ तु कृच्छ्रं सान्तपनः स्मृतः ॥

बुद्धिपूर्वं पुनस्तस्य कृच्छ्रो गोमूत्रयावकः ।

तप्तकृच्छ्रोऽपि वाऽशक्तौ मांसभिक्षाशनोऽपि वा ॥

कृत्वा च वहनादीनि प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।

तप्तकृच्छ्रद्वयाच्छुद्धिरेक एवानुयायिनाम् ॥’

आत्मघातनिमित्तं प्रायश्चित्तमकुर्वतामात्मघातिपुत्रादीनामित्यर्थः ।

च्यवनः—‘आत्मघातकस्पर्शनवहनदहने तप्तकृच्छ्रं चरेद्विशतिगावो दक्षिणा ब्राह्मणेभ्यः’ इति ।

पराशरः—( ५।१०-१३ )

‘चांडालेन श्रमाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ।

आहिताग्निर्हतो विप्रो विषेणात्महतोऽपि वा ॥

१ ततः सहगमनसङ्कल्पोत्तरं सहगमनकर्मणः प्रचलिता परदत्ताग्निभयादिना, सा नारी चित्तिभ्रष्टेत्युच्यते । प्रा. सु.

२ तप्तकृच्छ्रभ्यां सहितमिति निगूह्य तप्तकृच्छ्रद्वययुतं चान्द्रायणमिति व्याख्यातं सम्भुज्जेन ।



लौकिकाग्निना स दग्धव्यो मंत्रसंस्कारवर्जितः ।  
 स्पष्टा वोढा च दग्धा च सर्पिण्डेषु च तस्य यः ॥  
 प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनम् ।  
 दग्ध्वाऽस्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरे प्रक्षालयेद्बुधः ।  
 सामिभिश्च पुनर्दाहः स्वमंत्रेण पृथक् पृथक् ॥'

—एतच्च बुद्धिपूर्वक आत्महनने 'प्रायोनाशकशस्त्राभिविषोदकोद्वधन-  
 प्रपतनैश्चेच्छताम्' इति गौतमोक्तेः ( २।५।११ ) ।

अथापमृत्यौ तु अविष्यत्पुराणे—

'चंडालगोब्राह्मणाग्निपशुदंष्ट्रिसरीसृपैः ।  
 प्रमादोन्मरणे चाद्रं तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥'

स्मृत्यर्थसारे तु—'तप्तकृच्छ्रद्वयं पंचपंचदशकृच्छ्राणि वा कृत्वा  
 दाहादि कार्यम्' इति ।

अंगिराः—

'अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः ।  
 तस्याशौचं प्रकर्त्तव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥' इति ।

ऊर्ध्वोच्छिष्टादिमरणे पराशरांगिरसौ—( प. १२।६२ )

'ऊर्ध्वोच्छिष्टे ह्यधोच्छिष्टे अंतरिक्षे मृतिर्यदि ।  
 कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचिमरणेऽपि च ॥'

१ कचिदात्मघातदोषो नास्तीत्युक्तमादित्यपुराणे—असाध्यव्याधिना युक्तः  
 स्वव्यापाराक्षमः पुमान् । प्रविशत्यनलं दीप्तं करोत्यनशनं तु वा ॥ अगाधतोय-  
 राशिं वा भृगोः पतनमेव वा । गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात् ॥ प्रयाग-  
 वटशालाप्रादेहत्यागं करोति वा । स्वयं देहविनाशं च प्राप्ते काले महामतिः ।  
 उत्तमानामुयाल्लोकानात्मघाती भवेत्कचित् । एतेषामधिकारस्तु सर्वेषां सर्वजन्तुषु ।  
 नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥' इति । एतच्च कलिव्यतिरिक्तयुगविषयम् ,  
 'भृग्वग्निपतनैश्चैव बृहस्पत्य मरणं तथा' इति कलौ तन्निषेधात् । अनशनव्रतं भव-  
 त्येव, निषेधाभावात् । प्रा. सु.

२ बान्तादिकमूर्ध्वोच्छिष्टम्, सूत्रादिकमधोच्छिष्टम् । मन्त्रादौ मरण-  
 मन्तरिक्षमृतिः । मा.



तथा—

‘उर्ध्वोच्छिष्टे ह्यधोच्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च ।

अस्पृश्यस्पर्शमरणे खट्वादौ मरणे तथा ॥

श्वानक्रव्यादसंस्पर्शे कृमिकीटोद्भवेऽपि च ।

एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

कृच्छ्रांस्त्रिषट्पञ्चदशान् चान्द्रायणमथापि वा ।’ इति ।

शक्त्या कृच्छ्रादिव्यवस्था ।

अथ पर्युषितशवदाहे गालवः—

‘दिवा वा यदि वा रात्रौ शवस्तिष्ठति कर्हिचित् ।

तत्पर्युषितमित्याहुर्दहने तस्य का गतिः ? ॥

पञ्चगव्येन संस्नाप्य प्राजापत्यत्रयं चरेत् ।’

द्विजस्य शूद्रप्रेतानुगमने विष्णुः—(५२।६२) ‘द्विजः शूद्रप्रेतानु-  
गमनं कृत्वा स्रवन्तीमासाद्य तन्निमग्नस्त्रिरवमर्षणं कृत्वोत्तीर्य गायत्र्यष्ट-  
सहस्रं जपेत् ।’ इति ।

अथ सुरापाने—

‘सुरा वै मलमन्त्रानां पाप्मा च मलमुच्यते ।

तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥’

१ मदन्तरत्ने स्मृत्यन्तरे । नि. सिं.

२ मरणे इत्यस्य प्रत्येकं सम्बन्धादूर्ध्वोच्छिष्टादेरस्पृश्यस्पृष्टस्यात्र मरणं  
कथ्यते ।

कृ. भ.

३ वस्तुतस्तूर्ध्वोच्छिष्टादीनां यथोत्तरं गौरवस्य स्पष्टत्वात्, पृथगुपादान-  
स्वारस्याच्च त्रिषडादीनां प्रदर्शनमात्रत्वमभ्युपेत्य सन्दर्शन्यायेन नवद्वादशानामपि  
ग्रहणेन यथासङ्ख्ययोजनैव युक्ता । ततश्च ऊर्ध्वोच्छिष्टे कृच्छ्रत्रयम्, अधरोच्छिष्टे  
षट्कम्, उभयोच्छिष्टे नवकम्, अस्पृश्यस्पर्शनेद्वादशकम्, खट्वादौ पञ्चदशकम्, श्व-  
स्पर्शादौ च चान्द्रायणमित्यर्थः । तथा च गृह्यकारिकायाम्— ‘उर्ध्वोच्छिष्टाधरो-  
च्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च । अस्पृश्यस्पर्शने चैव अन्तरालमृतौ तथा ॥ खट्वादां  
मरणे चैव त्रींस्त्रीन् कृच्छ्रान् प्रकल्पयेत् ।’ इति । त्रींस्त्रीनित्यस्य पूर्वनिमित्तका-  
दुत्तरनिमित्तके कृच्छ्रत्रयमधिकं कल्पयेदित्यर्थः । अन्तरालमृतिखट्वामरणयो-  
श्चैकरूपत्वं ज्ञेयम् ।



इति मनूक्तेः ( ११।९३+सं. स्मृ. ११८ ) ।

—सुरा पैष्टयेव ।

‘ गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।

यथैवैका तथैवान्या न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ’

इति तु तदुक्तिः ( ११।९४ ) समदोषतयेतरनिन्दार्था ।

अत एव भविष्यत्पुराणे—

‘ सुरा तु पैष्टी विज्ञेया न तस्यास्त्विदरे समे । ’ इति ।

पुलस्त्योऽपि—( १।१२-१३ )

‘ पानसं द्राक्षमाधूकं त्वार्जूरं तालमैश्वरम् ।

मनूत्थं सैरमारिष्टं मेरेयं नारिकेरजम् ॥

समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैव तु ।

द्वादशं तु सुरामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम् ॥ ’

इति द्वादशापि मद्यानि विप्रस्य निषिद्धानि, ‘ नित्यं मद्यं ब्राह्मणो वर्जयेत् ’ ( गौ. १।२।२५ ) इति स्मृतेः । सुरा तु क्षत्रियविशोरपि पूर्वोक्तमनूक्तेः ।

तत्र सुरापाने प्रायश्चित्तमाह याज्ञवल्क्यः—( ३।२५४ )

‘ बालवासा जटी वाऽपि ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । ’ इति ।

तच्च द्वादशाब्दम् ।

प्रायश्चित्तान्तरमाह स एव—( ३।२५४ )

‘ पिण्याकं वा कणान् वाऽपि भक्षयेत्तु समां निशि । ’

—समाम्बदम् ।

‘ कणान्वा भक्षयेद्द्वंद्वं पिण्याकं वा सकृन्निशि । ’

इति मनूक्तेः ( ११।९२ ) ।

१ तदेतन्मद्यपानप्रायश्चित्तं ब्राह्मणस्यैव, न तु क्षत्रियवैश्ययोः ब्राह्मणं प्रत्येव मद्यपानस्य निषिद्धत्वादित्याहुः । वस्तुतस्तु—‘ नराश्वमेधौ मद्यं च कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः । ’ इति माधवोदाहृतब्रह्मपुराणवचनेन कलौ सर्वान्प्रति तन्निषेधोऽस्त्येवेत्यवधेयम् । प्रा.—कौ.



व्यवहारार्थमेव तन्न तु परलोकायेति चापराधैः । केचित्तु 'भक्षयेन्निः  
समाः' इति पेटुः; मानत्रं तु व्रतान्तरमेवेत्याहुः, परे 'समा निशि'  
इति बहुवचनान्तं पेटुः; तन्न केपिञ्जलन्यायेनाऽऽवृत्तयं भवति । मानवीये  
एकवचनं तु जात्यभिप्रायेणेत्याहुः । इदं तु छर्दने सति ज्ञेयम् ।

‘एतदेव व्रतं कुर्यान्मद्यपश्छर्दने कृते ।

पञ्चगव्यं तु तस्योक्तं पवित्रं कायशोधनम् ॥’

इति व्यासोक्तेः ।

गौडीमाध्वयोः सकृत्पानेऽप्येतदेवेति विज्ञानेश्वरः ।

यत्तु पञ्चमहापापिन उक्त्वा आपस्तम्बः—( १२७।११ )

‘चतुर्थकालाभितभोजिनः स्युरपोऽभ्युपेयुः सवनानुकल्पम् ।

स्थानासनाभ्यां विहरन्त एने त्रिभिर्वर्षैरपपापं नुदन्तः ॥’ इति ।

यच्च यमः—

‘बृहस्पतिसवेनेष्टा सुरापो ब्राह्मणः पुनः ।

समत्वं ब्राह्मणैर्गच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥

भूमिप्रदानं यः कुर्यात्सुरां पीत्वा द्विजोत्तमः ।

पुनर्न च पिबेत्तां तु संस्कृतः स विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

तानि याज्ञवल्कीयत्रैवार्पिकसमानविषयाणीति विज्ञानेश्वरः ।

यत्तु भविष्ये—( ३।२५४ )

‘अकामतः सुरां पीत्वा पैष्टीं सत्कुञ्जन्दन ! ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कृत्वा वै पुनः संस्कारतः शुचिः ॥

कणान्वा भक्षयेद्वन्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ॥’ इति ।

तत्सुरामात्रापनेयरोगार्थपानविषयम् ।

तथा च तत्रैव—

‘तथाऽस्मिन्नेव विषये वासिष्ठं परिकीर्तितम् ।

यदि रोगैर्भवेद्दुष्टो नेतरस्य कदाचन ॥

कृच्छ्रश्चात्र सुरश्रेष्ठ तप्तश्चैव उदाहृतः ।’

१ ‘कपिञ्जलेषु त्रित्वाद्याः पाक्षिकास्त्रित्वमेव वा ? आद्यो बहुत्वसाम्यात् ;  
न, त्रित्वेनैव कृतत्वतः ॥’

२ अङ्गिराः । मा.



यत्तु मनुः—(११।१४६)

‘अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुध्यति ।

मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥’ इति ।

तत्र वारुणीपदं पैष्टीपरम्, उत्तरार्द्धे प्राणान्तिकनिर्देशात् । पूर्वार्द्धे तु रोगिपरमेव । अत्र संस्कारमात्रमेव प्रायश्चित्तमिति केचित् । तत्र;

‘अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।

तप्तकृच्छ्रान्वितेनेह केवलेन विशुद्ध्यति ॥’ इति भविष्योक्तेः ।

—अज्ञानादौषधार्थम् ।

अत एव बृहस्पतिः—(४।६१)

‘गौडीं माध्वीं तथा पैष्टीं पीत्वा विप्रः समाचरेत् ।

तप्तकृच्छ्रं पराकं च चान्द्रायणमनुक्रमात् ॥’ इति ।

ज्ञानादज्ञानतश्च पानसादिमद्यपानाभ्यासे क्रमाद्वयोर्व्रतयोरा-  
वृत्तिमाह यमः—

‘गोत्रवद्विहितः कल्पश्चान्द्रायणमथापि वा ।

अनभ्यासे तयोर्भूयस्ततः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥’

१ पैष्टिकं तालजं कैरं माधूकं गुडसम्भवम् । क्रमाद्वयूनतरं पापं तदधोर्ध्व-  
तस्तथा ॥ (ब्रह्मा. उ. भा. ७।६४)

२ यद्यपि द्रवद्रव्यस्य कण्ठदेशादधोनयनमात्रं पानम् ; तच्च एकस्मिन्नेव प्रयोगेऽनेकधैव भवति, तथापि न तथाविधोऽभ्यासोऽपेक्षितः । यतः ‘पिबति’ धात्वर्थस्याभ्यासो ह्यभ्यासः । एकफलोद्देशेन प्रवृत्तकृतिव्याप्यानां चैकोपक्रमाणां व्यापारनिचयानामप्येकधात्वर्थत्वम् । यथा — एकफलोद्देशेनैकप्रयत्नोपक्रमाणां स्थालीमार्जनादीनामोदनपरीक्षणपर्यन्तानां व्यापारनिचयानामेक ‘पिबि’ धात्वर्थत्वम् ; यथा वा प्रहारलक्षणानां भिन्नत्वेऽपि एकफलोद्देश्यैकप्रयत्नोपक्रमत्वेनैकमेव ‘हन्ति’ धात्वर्थत्वम् । अन्यथा पशुयागे प्रतिप्रहारं ‘प्रहतं रक्ष’ इत्येवमादिमन्त्रावृत्तिप्रसङ्गात् ।

तेनात्रापि एकफलोद्देशेन एकप्रयत्नोपक्रमाणामपि व्यवहाराणामेकस्मिन् प्रयोगे सकृत्पानत्वम्, नाभ्यासः । प्रयोगभेदे त्वभ्यास एवेति सिद्धम् । इति भवदेव । एतेन चाण्डालायन्नभक्षणेऽपि सकृदभ्यासविचारो व्याख्यातः ।



कामतः सकृत्पाने पराशरः—( १२।७५ )

‘मद्यपश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।

चान्द्रायणे तत्तश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।

अनङ्कुत्सहितां गां च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥’

इदं च गवाधिक्यं शक्तं प्रति ।

अज्ञानतः सकृत्पाने तु विष्णुवृहस्पती—( बृ. ४।२३ )

‘पीत्वा प्रमादतो मद्यमतिकृच्छ्रं चरेद्विजः ।

कारयेत्तस्य संस्कारं भक्त्या विप्रांश्च भोजयेत् ॥’

पानसादीन्येकादशमद्यान्युक्त्वा अपर्युषिततत्पाने प्रायश्चित्तमाह  
पुलस्त्यः—( १। )

‘द्राक्षेक्षुदङ्कं खर्जूरं पानसादेश्च यो रसः ।

सद्यो जातस्तु तं पीत्वा त्र्यहाच्छुद्धिर्द्विजोत्तमः ॥’

इदं तु त्रिरात्रं द्राक्षादिरसानां मादकत्व एव द्रष्टव्यम् । अन्यथा  
सद्योजातेश्चुरसादावपि स्यात् ।

सुरासंस्पृष्टद्रव्यस्याज्ञानतो भक्षणे आह मनुः—( ११।१५० )

‘अज्ञानात्प्राश्य विष्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।

पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥’ इति ।

पुनः संस्कारश्च पुनरुपनयनमिति निबन्धकृतः । तस्य विधिरक्तः  
संस्कारमयूखे ( पृ. ३९ ) ।

यत्तु सुमन्तुः—‘ब्राह्मणस्य सुरापस्य षण्मासानुद्धृतसमुद्रोदक-  
स्नानम् । सावित्र्यष्टसहस्रं जुहुयात्प्रत्यहम् । त्रिरात्रमुपवासः । तप्त-  
कृच्छ्रेण पूतो भवति’ इति । तत्रैवार्षिकविषयम् ।

कामतः सकृत्सुरापाने याज्ञवल्क्यः—( ३।२५३ )

‘सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसन्निभम् ।

सुरापोऽन्यतमं पीत्वा मरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥’ इति ।

यत्तु वसिष्ठः—( २०।२५ ) ‘अभ्यासे तु सुराया अग्निवर्णी सुरां  
पिबेत्’ इति तदकामपरम् ।

१ गोमूत्रसाहचर्याद्व्ये एव घृतपयसी, घृतपयःसाहचर्याच्च स्त्रैणमेव  
गोमूत्रम् ।—विज्ञा.



गौडीमाध्योर्मत्याऽभ्यासेऽमत्या वाऽत्यन्ताभ्यासे तु माधवीये  
व्याघ्रः—

‘मत्या मद्यममत्या वा पुनः पीत्वा द्विजोत्तमः ।  
ततोऽग्निवर्णां तां पीत्वा मृतः शुद्धयेत्स किल्बिषात् ॥’

अथाभक्ष्यभक्षणे विष्णुः—

‘अभोज्यानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे ।  
कृच्छ्रपादं विशुद्धयर्थं चरेयुः क्षिप्रशोधनम् ॥’

इदं त्वज्ञानात्सकृद्भक्षणे ।

ज्ञानतस्तु संवर्त्तः—

‘अभोज्यभोजनं कृत्वा ब्रह्मक्षत्रविशां गणः ।  
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति ॥’

अभ्यासे तु बृहस्पतिः—

‘अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे ।  
रेतोमूत्रपुरीषाणां शुद्धयै चान्द्रायणं चरेत् ॥’ इति ।

शिष्टविगीतमात्रे तमाखुभंगादिद्रव्यविशेषे तु अपराके भरद्वाजः—

‘शिष्टा नाश्रन्ति यत्किञ्चिद्भक्ष्यमूलफलादिकम् ।  
न तद्भोज्यं द्विजातीनां भुक्त्वा चोपवसेदहः ॥’ इति ।

अथ विशेषतः । तत्र जातितो दुष्टे पलाण्ड्वादौ अज्ञानात्सकृद्भुक्ते  
बृहस्पतिः—

‘लशुनं कवकं चैव पलाण्डुं गृञ्जनं तथा ।  
चत्वार्यज्ञानतो जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥’ इति ।

१ एतत्प्रायश्चित्तमाद्रिवासोवता कार्यम्, ‘सुराप आद्रिवासाश्च अग्निवर्णां सुरां  
पिवेत्’ इति पैठीनसिवचनात् । तथा लोहपात्रेणापि, ‘सुरापोऽग्निवर्णामायसेन  
पात्रेण तात्रेण वा पिवेत्’ इति प्रचेतःस्मृतेः । — प्रा. सु.

२ तच्च ‘तमाखु’ इति प्रसिद्धमिति भट्टोजिदीक्षिताः । ‘गांजा’ इति  
प्रसिद्धमेवेत्यस्माकं भाति । विशेषः श्राद्धमयूखे ( पृ. ६४ ) द्रष्टव्यः ।



ज्ञानतस्तु याज्ञवल्क्यः—( १।१७६ )

‘पलाण्डुं विड्वराहं च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् ।  
लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

गृञ्जनं लशुनतुल्यः कन्द इति विज्ञानेश्वरः । यदीयं चूर्णं गायकाः  
कण्ठशुद्धयै विटाश्च मदार्यमश्नन्ति, स पत्रविशेष इति माधवः ।

‘विषदिग्धेन श्लयेन यो मृगः परिहन्त्यते ।

अभक्ष्यं तस्य तन्मांसं तद्धि गृञ्जनमिष्यते ॥’—इत्यपराकः ।

यत्तु—हेमाद्रिमाधवौ गाजराख्यं मूलमिति, तत्र;

हेमाद्रावेव—

‘गृञ्जनं चुक्रिकां चुक्रं गाजरं पोतिका तथा ।’

इति ब्राह्म पृथङ्निर्देशात् ।

शातातपः—( ५।३ )

‘लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनीम् ।  
इत्युक्त्वा ‘उपायनं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः ।’ इति’

चान्द्रायणानुवृत्तौ विष्णुः—( ५।३-४ ) ‘लशुनपलाण्डुगृञ्जन  
विड्वराहग्रामकुक्कुटनरगोमांसभक्षणे सर्वेष्वेतेषु द्विजातीनां प्रायश्चित्तान्ते  
पुनः संस्कारं कुर्यात् ।’ इति ।

यत्तु मनुः—( ५।१९-२० )

‘छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।

पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मर्या जग्ध्वा पतेन्नरः ॥

अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।

यतिचान्द्रायणं वाऽपि शेषेषूपबसेदहः ॥’ इति ।

१ पादमात्रमिदं दृश्यते ब्राह्मे ( ११२।१०६ ) ‘पलाण्डुस्तीक्ष्णकन्दश्च उल्ली च  
मुखदूषणः ।’

—रा. नि.

२ शुनादिसाहचर्याच्छुन्यत्र शाकविशेषः, स च गोरक्षदुग्धेति प्रसिद्धः ।  
‘गोरक्षदुग्धा गोरक्षी नान्नदुग्धा रसायणी । अपि स्याद्बहुपत्री च मृतसञ्जीवनी  
शुनी ॥’ ( १०।५८३ ) इति कल्पद्रुः । निर्णयसिन्धौ तु ‘शुनः, शुनम्’ इति  
वा पाठः, अग्रे च ‘उग्रमानुषकेभाश्वरासभक्षीरभोजनात् ।’ इत्यर्थम् । तत्र  
‘शुनम्’ इति पाठे जग्ध्वेत्यत्रान्वयः, ‘शुन’ इति पाठे क्षीरभोजनादित्यत्र ।  
—इति कृष्णभट्टः ।



अत्र कामतोऽभ्यासे पतनम् । अज्ञानत औषधार्थं सकृदभक्षणे  
सान्तपनम् । औषधार्थमेव ज्ञानतः सकृदज्ञानतोऽभ्यासे च चान्द्रम् ।  
पलाण्ड्याद्येकनाश्वरीगे तु नैव दोषः ।

तथा च पलाण्ड्याद्यनुवृत्तौ सुमन्तुः—‘एतान्येवातुरस्य भिषक्क्रिया-  
यामप्रतिषिद्धानि’ इति ।

चतुर्विंशतिमते—

‘लशुनं गृञ्जनं चैव तृणराजफलं तथा ।

उल्लीं चैव द्विजो भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥’ इति ।

तृणराजस्तालः । उल्ली पलाण्डुः ।

पराशरः—( ११।१०-११ )

‘पीयूषं श्वेतलशुनं वृन्ताकं फलगृञ्जनम् ।

पलाण्डुं वृक्षनिर्यासं देवस्त्वं कवकानि च ॥

उष्ट्रीक्षीरमविक्षीरमज्ञानाद्भुज्यते द्विजः ।

स त्रिरात्रोपवासेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’

सुमन्तुः—‘लशुनपलाण्डुगृञ्जनभक्षणे सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्द्धि  
सम्पाताजयेत्’ इति ।

एतन्मुखप्रवेशमात्रपरम् ।

मिताक्षरायां स्मृतिः—( १।१७५ )

‘नालिकाशणलत्राककुसुम्भालावुविडभवान् ।

कुम्भीकम्बुकवृन्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥

१ यद्यपि अन्नादीनां कण्ठादधोनयनमेव भक्षणम्, न तु निष्ठीबन्तय  
शुण्ठ्यादः कपोलधारणम्, तथाविधे प्रयोगाभावात् । तथापि पापविषये तथा-  
विधानुबन्धेऽपि प्रायश्चित्तम्, ब्रह्मवधे तथा दर्शनात् ।...

ततश्च ‘विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने ।’ या. ३।२९२ ) इति  
दण्डोद्यमे दण्डनिपातप्रायश्चित्ताद्धेवत् भक्षणोद्यमे कण्ठादधोनयनसम्भावनारहितेऽर्द्धे  
प्रायश्चित्तं ज्ञेयम् । —तत्त्वम् ।

२ उशनाः ।—मा. ।

३ नालिका दीर्घनालाग्रगताल्पपल्लवा । कुम्भी श्रीपर्णिका । कम्बुकं  
वृत्तालावु ।—मा. । कोविदारो युगपन्नकवृक्षः, तस्य फलं वा-पुष्पं वा कोविदारम्,  
तत् कोमलावस्थं शाकत्वेन प्राप्तं प्रतिषिद्ध्यते ।—स्मृ. चं.



तथा कालप्ररूढानि पुष्पाणि च फलानि च ।  
 विकारवच्च यत्किञ्चित्प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥' इति ।  
 तथा 'वटप्लक्ष्माश्चत्थद्वित्थनीपकदम्बमातुल्लिङ्गफलानि वर्जयेत्' ।  
 ( हा. स्मृ. १३।२१ ) ।

यमः—

'तण्डुलीयककुम्भीकव्रश्चनप्रभवांस्तथा ।  
 एतेषां भक्षणं कृत्वा प्राजापत्यव्रतं चरेत् ॥' इति  
 कामतोऽभ्यासे तु बृहद्यमः—( य. ३।४९ )  
 'नालिकां नालिकेरीं च श्लेष्मातकफलानि च ।  
 खट्वा वार्त्ताककुम्भीकव्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥  
 'भूतृणं शिशुकं चैव कुसुम्भं कवकानि च ।  
 एतेषां भक्षणं कृत्वा चरेच्चान्द्रायणं द्विजः ॥'  
 द्विजपदाच्छूद्रादेरनिषेधः ।  
 आपस्तम्बः—( ६।९ )  
 'भक्षयेद्यदि नीलीं तु प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् ।  
 चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥' इति ।  
 षट्त्रिंशन्मते—  
 'शणपुष्पं शात्मलं च करनिर्मथितं दधि ।  
 बहिवेदिपुरोडाशं जग्ध्वा नाद्यादहर्निशम् ॥'

१ नालिका नालिकेरी च शाकविशेषौ, खट्वाख्यश्च ।—मि. नारिकेली  
 तद्रसमवंगुडमिति केचित्—भो. कु. । 'पथ्येष्कपालिका खट्वा खट्वाङ्गीदधिपुण्यपि ।'  
 ( ६।१४५ ) कल्पद्रुः । वार्त्ताकं क्षुद्रवार्त्ताकीसंज्ञकं बृहतीफलम् ।—स्मृ. चं.

२ भूतृणो भूस्तृणः । सुडागमशून्यो निर्देशश्छान्दसः । यस्य नाग्रेऽन्ते (!)  
 स्थानेषु परिमण्डलावयवा भवन्ति स भूस्तृणाख्यः शाकविशेषः स्मृ. चं. ।  
 भूस्तृणं काश्मीरदेशे प्रसिद्धम्—नि. सिं. । द्विविधस्यापि कुसुम्भस्य नवपत्राणि  
 शाकत्वेनोपयुज्यन्ते स्मृ. चं. । विज्ञानेश्वरस्तु—'खुखण्डं कवकानि च' इति  
 पठित्वा कवकं राजमर्षपाख्यं शाकम्, खुखण्डं तद्विशेषो गोबलीवर्दन्यायेन  
 निर्दिष्टः' इति व्याचक्ष्यौ ।



कामे—( २।३३।२१ )

‘अलातुं शिशुकं चैव जग्न्वाऽप्येतद्भ्रतं चरेत् ।  
औदुम्बरं च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥’ इति ।

शंखः—( १७।२९—३० )

‘माहिषं गव्यमाजं च भक्ष्यं क्षीरेषु निर्दिशेत् ।  
भुक्त्वा परस्य च क्षीरं मांसं कुर्याद्भ्रतं बुधः ॥  
अनिर्दशाहं गोक्षीरं माहिषं वाऽजमेव च ।  
गोश्च क्षीरं विवत्सायाः सन्धिन्याश्च तथा पयः ॥  
सन्धिन्यमेध्यभक्ष्याया भुक्त्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥  
क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ।  
सप्तरात्रव्रतं कुर्याद्यत्तेस्तत्परिकीर्तितम् ॥’ इति ।

अनभ्यासे तु संवर्तः—

‘अवत्सैकशफाल्मीणां क्षीरं प्राश्य द्विजोत्तमः ।  
अनिर्दशाया गोश्चैव त्रिरात्रं यावकं पिबेत् ॥’ इति ।

अकामतोऽनभ्यासे ‘शेषेपूपवसेदहः’ ( ५।२० ) इति मनूक्त  
उपवासः ।

उष्ट्र्यादिक्षीरे तु शातातपः—( १०, १५ )

‘उष्ट्रीक्षीरणे मानुषीक्षीरणे पुनरुपनयनं तप्तकृच्छ्रं च ।  
मृतवत्सासन्धिन्यनिर्दशाया गोः क्षीरप्राशने वृथामांसभक्षणे च  
प्राजापत्यम् ।’

कपिलाक्षीरणे विशेषमाहापस्तम्बः—

‘अत्रियश्चैव वृत्तस्थो वैश्यः शूद्रोऽथ वा पुनः ।  
यः पिबेत्कापिलं क्षीरं न ततोऽन्योऽस्त्यपुण्यकृत् ॥’

भविष्यपुराणे—( १।१७।५१ )

‘कापिलं यः पिबेच्छूद्रो नरंके स विपच्यते ।  
हुतशेषं पिबेद्विप्रो विप्रः स्यादन्यथा पशुः ॥’

अन्यथा हुतशेषापाने ।

५ गौर्या वृषेण सन्धीयते, सा सन्धिनी । या चैकां वेलां मतिक्रम्य दुहते,  
या च वत्सान्तरेण सन्धीयते, सापि सन्धिनी ।—मि. २ ‘देवकार्यार्थनिमित्तम् ।  
स’ पच्यते मद्वाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥’ इति द्वितीयपादादिपाठो मूले ।



तत्र शूद्रस्य कपिलाक्षीरपाने ज्यवनेन 'ब्रह्महा' इति तादृष्यातिदेशः  
कृतस्तेन तस्य तत्र नवाब्दम् । इतरयोश्चान्द्रायणम्, अनादिष्टत्वात् ।

ब्रह्मपुराणे—

‘घृतात्फेनं घृतान्माण्डं पीयूषमथ चार्द्रगोः ।  
दधिक्षीरमथाज्यं च दुष्टायाश्चैव गोः पयः ॥  
अनिर्दशायाश्च तथा सन्धिन्याश्च तथैव च ।  
स्रग्गुडं मरिचाक्तं च तथा पर्युषितं दधि ॥  
जीर्णतक्रमपेयं तु नष्टस्वादं च फेनवत् ।  
प्रमादाद्बद्धितैरेभिर्वने पक्षत्रतं चरेत् ॥’ इति ।

—आर्द्रगोः सद्यः प्रसृतायाः । दुष्टाया व्याध्यादिना ।

अथ मांसभक्षणे मनुः—( ५।४८ )

‘नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पाद्यते कश्चित् ।  
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥’

तत्र विशेषानुक्तावकामतः सकृद्भक्षणे ‘शेषेपूपवसेदहः’ (५।२०) इति  
मनूक्तम् ।

कामतस्तु ‘अनुपाकृतमांसानि’ ( या. १।१७१ ) इत्याद्युपक्रम्य—

‘मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्यहं वसेत् ।’

( या. १।१७५ ) इति ।

अकामाभ्यासे मनुः—( ११।१५२ )

‘भुक्त्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्निषेत् ।’ इति ।

कामतोऽभ्यासे विष्णुः—( ५।१२० ) ‘अनर्चितं वृथामांसं भुक्त्वा  
मांसं पयसा वर्तेत’ इति ।

नरमांसादिभक्षणे उशनाः—( ९।२५ )

‘नरमांसं श्वमांसं च गोमांसं चाश्वमेव च ।

भुक्त्वा पञ्चनखानां च महासान्तपनं चरेत् ॥’

१ घृतादुद्धृत्य तत्फेनमात्रं न पेयम्, एवं मण्डं तदग्रे च ।

२ भुक्त्वेत्याद्यनुवृत्तम् [ ५।१७ ) मूले ‘सप्तरात्रं’ इति ।



स्मृत्यन्तरे—

‘जग्ध्वा मांसं नराणां च विद्वराहं खरं तथा ।  
गवाश्चकुञ्जरोष्ठाणां सर्वं पाञ्चनखं तथा ॥  
क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राभ्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ।’

यमः—

‘मांसमूत्रपुरीषाणि प्राश्य गोमांसमेव च ।  
श्वगोमायुकपीनां च तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥  
वपोष्य वा द्वादशाहं कूष्माण्डैर्जुहुयाद् व्रतम् ।’ इति ।

अत्राद्यमकामतः, कामतोऽपरम् ।

बृहद्यमः—

‘शुष्कमांसाशने विप्रो व्रतं चान्द्रायणं चरेत् ।’ इति ।  
षट्त्रिंशन्मते—‘अजाविमहिषमृगाणामाममांसभक्षणे केशनखरुधिर-  
प्राशने मतिपूर्वं त्रिरात्रमज्ञानादुपवासः’ इति ।

कचिन्मांसभक्षणमनुजानाति याज्ञवल्क्यः—( १।१७९ )

‘प्राणात्यये तथा आद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया ।  
देवान्पितृन्समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक् ।’ इति ।

यत्तु मनुः—( ५।५६ )

‘न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।  
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ।’ इति ।

तदनुज्ञातपरम्, न तु निषिद्धपरम्; निषिद्धानाचरणस्य पुण्या-  
जनकत्वादिति शूलपाणिः । तन्न; सत्यपि पुरुषार्थे ‘नानृतं वदेत्’  
(तै.सं.२।५।५) इति निषेधे दार्शपूर्णमासिकेन तेन निषिद्धानाचरणस्यैव  
कृतूपकाराख्यपुण्यजनकत्वदर्शनात् । तत्त्वतस्तु—नात्र निषिद्धानाचरणं  
पुण्यजनकम्, किन्तु प्रजापतिव्रत इव मांसनिवृत्तिसङ्कल्पः; यथा  
‘एकादश्यां न भुञ्जीत’ इति निषेधसत्त्वेऽपि व्रतविधिना भोजना-  
भावसङ्कल्पः फलाय विधीयते । एतेन—

‘गृहेऽपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् ।’ ( १।१८१ )  
इति याज्ञवल्कीयमपि व्याख्यातम् । एतच्च फलं सांवत्सरिकसङ्कल्पस्य ।



‘वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।

मांसानि च न खादेयस्तयोः पुण्यफलं समम् ।’ ( ५।५३ )

इति मनुक्तेः ।

योगीश्वरः—( १।१८० )

‘वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः ।

सम्मितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून् ॥’

हन्तूनाह मनुः—( ५।५१ )

‘अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।

संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥’

अत्र च देवान्पितृनिनि सामान्यतोऽनुज्ञातमप्यजादिमांसं विप्रेण न भक्ष्यम् ।

तथा च मनुः—( ११।९५ )

‘यक्षरक्षःपिशाचाञ्च मद्यं मांसं सुरासवम् ।

तद्वाहणेन नात्तव्यं देवानामभ्रता हविः ॥’

यत्तु मेधातिथिः—‘निषिद्धमांसपरमेतत्’ इत्याह, तत्र, विशेषनिषेध-  
वैयर्थ्यापत्तेः । न चायं दोषातिशयार्थः । यस्य हि निषेधस्य निषिद्ध-  
विषयत्वमेव नियतं, तत्र निषिद्धविषयालाभादगत्या दोषविशेषः कल्प्यते;  
यथा नन्दासु अभ्यङ्गनिषेधे सति पुनः षष्ठ्यां निषेधो दोषातिशयार्थः ।  
केचित्तु मांसरसलोलुपा अपक्रमांसविषयत्वमस्याहुः । उपक्रमे ‘यक्षरक्षः-  
पिशाचाञ्च’ इत्युक्तेः । यक्षादीनां च क्रव्यात्त्वादपक्रमेव मांसमन्नम् । तथोप-  
संहारेऽपि ‘देवानामभ्रता हविः’ ( म. ११।९५ ) इत्युक्तेः । देवानां च  
हविः पक्रमेव भवति । अतः पक्रमेव विप्रैर्भक्ष्यं नापक्रमिति । तत्तुच्छं  
न हि यक्षादयः पकं नाभ्रन्ति, क्रव्यात्त्वं तु तेषां पक्वालाभेऽपक्रम-  
प्यभ्रन्तीत्याभिप्रायेण । देवानां हविश्चाममपि विहितं यथाऽग्निहोत्रे—  
‘तण्डुलैर्जुहोति’ इति, चित्रायां च—‘दधिमधुघृतं धाना उदकं तण्डुला-  
स्तत्ससृष्टप्राजापत्यम्’ इति । तथा ‘पर्यग्निकृतानारण्यानुत्सृजन्ति’  
इत्यत्र पशुरूपांमांसस्यैव देवतासम्बन्ध उक्तः । तस्मादुपक्रमो



मांसमात्रनिन्दार्थ एव । उपसंहारोऽपि ब्राह्मणस्तुत्यर्थ एव । अत्र विशेषः श्रीपितृचरणकृते द्वैतनिर्णये द्रष्टव्यः ।

अथ ब्रह्मचारिणो मधुमांसभक्षणे प्रायश्चित्तम् ।

देवलः—

‘मृतात्रं मधुमांसं च यद्यभ्राति व्रती क्वचित् ।

त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् रात्रिमेकां जले वसेत् ॥’

इदमज्ञानतः सकृद्भक्षणे ।

ज्ञाने संवर्त्तः—(२५)

‘ब्रह्मचारी तु योऽभ्रीयान्मधुमांसं कथञ्चन ।

प्राजापत्यं च कृत्वाऽसौ मौञ्जीहोमेन शुद्ध्यति ॥’

—मौञ्जीहोमः पुनरुपनयनम् ।

वसिष्ठः—(२३।८-९) ‘ब्रह्मचारी चेन्मधुमांसमभ्रीयच्छिष्ट-  
भोजनीयं द्वादशरात्रं चरित्वा व्रतशेषं समापयेत् । श्राद्धसूतक-  
भोजनेषु चैवम्’ इति ।

—शिष्टभोजनीयं शिष्टभोजनयोग्यम् । विहितमित्यर्थः । अभक्ष्यमां-  
सादिभक्षणे प्रातिस्विकं तदपि कार्यम् ।

अपवादमाह स एव—(२३।१०) ‘अकामापन्नं वाजसनेये न  
दुष्यति’ इति ।

—अकामापन्नं अकामं भक्षितम् ।

तथा ब्रह्मचार्यधिकारे बौधायनः—(२।१।३०-३३) ‘स चेष्ट्या-  
धीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भैषज्यार्थं सर्वं प्राश्रियात् । येनेच्छेत्तेन  
चिकित्सेत् । स यदाऽगदः स्यात्तदादित्यमुपतिष्ठेत् । हंसः शुचिपत्’  
(तै. सं. १।८।१५) इति ।

लघुहारीतः—(४४)

आमिषस्य तु यो भाण्डे पक्वमभ्राति सव्रतः ।

कुशमूलविपकेन त्र्यहं क्षीरेण वर्त्तयेत् ॥’ इति ।

१ मृतात्रं मधु मांसं च यस्तु मुञ्जीत ब्राह्मणः । स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं  
चोदके वसेत् ॥ (भ. पु. १।१८।५९)



अथ शरीरमलभक्षणप्रायश्चित्तम् ।

तत्र मलानाह मतुः—( ५।१३४ )

‘ वसाशुक्रममृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविण्णखाः ।

श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदो द्वादशैते मला नृणाम् ॥ ’

प्रायश्चित्तमाह योगीश्वरः—( ३।२५५ )

‘ अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतोविण्मूत्रमेव च ।

पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ’

—पुनःसंस्कारः पुनरुपनयनम् । इदं च प्रातिस्विकैः शारीरमलभक्षण-  
प्रायश्चित्तैः समुच्चीयत इति शूलपाणिः । स्वतन्त्रमेव प्रायश्चित्त-  
मित्यन्ये ।

अज्ञानतः सकृद्रक्षणे तु संवर्तः—( १८९ )

‘ विण्मूत्रभक्षणे विप्रः प्राजापत्यं समाचरेत् ।’

ज्ञानतः सकृद्रक्षणे अङ्गिराः—

‘ प्राजापत्यं चरेद्द्वैत्योऽतिकृच्छ्रं क्षत्रियश्चरेत् ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रो विण्मूत्रभक्षणे ॥ ’ इति ।

यत्तु वसिष्ठः—( २०।२२-२३ ) ‘ मत्या मद्यपाने सुरायाश्चाज्ञाने  
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ घृतप्राशनं पुनः संस्कारश्च । मूत्रशकृच्छुकाभ्यवहारेषु  
चैवम् ’ इति; तदपि विप्रस्य ज्ञानतः सकृद्रक्षणे ।

अस्मिन्नेव विषये गौतमः—( ३।५।२-३ ) ‘ अमत्या मद्यपाने  
पयोघृतमुदकं वायुः प्रतित्रयहं तप्तानि स तप्तकृच्छ्रः, ततः संस्कारः  
मूत्रपुरीषरेतसां प्राशने चैवम् ’ इति ।

यत्तु बृहस्पतिः—

‘ रेतोमूत्रपुरीषाणां शुद्ध्यै चान्द्रायणं चरेत् ’ इति;

तदनतिपूर्वाभ्यासविषयम् ।

केशादिभक्षणे षट्त्रिंशन्मते—‘ केशनखरुधिरप्राशने मतिपूर्वं  
त्रिंशत्त्रयमज्ञानादुपवासः । ’

यत्तु स्मृत्यन्तरम्—

‘ केशकीटनखं प्राश्य मत्स्यकण्टकमेव च ।

हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुध्यति ॥ ’ इति;

तन्मुखमात्रप्रवेशविषयम् ।



प्रचेताः—

‘अन्ने भोजनकाले तु मक्षिकाकेशदूषिते ।

अनन्तरं स्पृशेदापस्तञ्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥’

अथ क्रियादुष्टभक्षणे ।

तत्रोच्छिष्टभक्षणे मनुः—(११।१५९)

‘विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च ।

केशकीटावपन्नं च पिवेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥’

पानं त्वेकस्मिन्नेव दिने । एतच्चाकामतः सकृद्भक्षणे ।

कामतस्तु विष्णुः—

‘पक्षिश्चापदजग्धस्य रसस्यान्नस्य भूयसः ।

संस्काररहितस्यापि भोजने कृच्छ्रपादकम् ॥’

अकामतोऽभ्यासे शातातपः—‘श्रकाकावलीढशूद्रोच्छेषणभोजने त्वतिकृच्छ्र’ इति ।

कामतोऽभ्यासे यावकं व्रतं प्रकृत्य शङ्खः—(१७।४६)

‘शुनामुच्छिष्टकं भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत् ।

काकोच्छिष्टं गवाघ्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ॥’

वृद्धविष्णुः—(५१।५०-५३) ‘ब्राह्मणः शूद्रोच्छिष्टाशने सप्तरात्रं पञ्चगव्यं पिवेत् । वैश्योच्छिष्टाशने पञ्चरात्रम् । राजन्योच्छिष्टाशने त्रिरात्रम् । ब्राह्मणोच्छिष्टाशने त्वेकाहम्’ इति । अकामतो विप्रस्य विप्राशुच्छिष्टभोजने मिताक्षरायां शङ्खः—‘ब्राह्मणोच्छिष्टाशने महाव्याहृतिभिरभिमन्त्र्यापः पिवेत् । क्षत्रियोच्छिष्टाशने ब्राह्मीरसविपकेन व्यहं क्षीरेण वर्तयेत् । वैश्योच्छिष्टाशने त्रिरात्रोपोषितो ब्राह्मीं सुवर्चलां पिवेत् । शूद्रोच्छिष्टभोजने षड्रात्रमभोजनम्’ इति ।

अकामतोऽभ्यासे तु यमः—(६।१-२)

‘भुक्त्वा सह ब्राह्मणेन प्राजापत्येन शुद्धयति ।

भूभुजा सह भुक्त्वाऽन्नं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥

१ ब्राह्मीं सुवर्चलां तत्कथितमुदकमित्यर्थः । ब्रह्मसुवर्चला चोक्ता कल्पद्रुकोशे (१०।६०१) ‘सक्षीरां पद्मिनीप्रख्या देवी ब्रह्मसुवर्चला । अरतिमात्रक्षुपकां पत्रयङ्गुलसम्मिताः ॥’ इति ।



वैश्वेन सह भुक्त्वाऽन्नमतिकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।

शूद्रेण सह भुक्त्वाऽन्नं चान्द्रायणमथाचरेत् ॥' इति ।

इदं कामाभ्यासाविषयमिति विद्वानेश्वरः । कामतोऽभ्यासे त्वेतदेव द्विगुणं कल्प्यम् । विद्वानेश्वरमते त्वकामतोऽभ्यासेऽर्द्धम् ।

अन्योच्छिष्टभोजने तु आपस्तम्बः—( ५१९ )

‘अन्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ।

चान्द्रं कृच्छ्रं तदर्थं च ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥’ इति ।

—चान्द्रं चान्द्रायणम् ।

मङ्गिराः—( २७ )

‘चण्डालपतितादीनामुच्छिष्टान्नस्य भक्षणे ।

चान्द्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सान्तपनं चरेत् ॥

षड्रात्रं च त्रिरात्रं च वर्णयोरनुपूर्वशः ।’ इति ।

‘द्विजः शुद्धयेत्पराकेण शूद्रः कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।’

इति तूत्तरार्द्धं पपाठ शूलपाणिः । सान्तपनं महत् । इदमज्ञानतः सकृद्भक्षणे । ज्ञानतस्तु द्वैगुण्यम् ।

पीतोच्छिष्टपाने वृद्धशातातपः—

‘पीतोच्छिष्टं तु पानीयं पीत्वा तु ब्राह्मणः कश्चित् ।

त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्द्वामहस्तेन वा पुनः ॥’ इति ।

इदं चाकामतोऽभ्यासे । कामतश्च सकृत्पाने ।

कामतोऽभ्यासे तु वृद्धशातातपः—( ४८ )

‘पीतशेषं तु यत्किञ्चिद्भोजने सुखनिःसृतम् ।

अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

स्त्रीणामुच्छिष्टभोजने त्वापस्तम्बः ( १।२६।४-५ )—‘शूद्रोच्छिष्ट-भोजने सप्तरात्रमभोजनम् । स्त्रीणां च’ इति । इदं च कामतः, सकृ-

१ इदमेव मुद्रितस्मृतौ ।

२ पीतोच्छिष्टं भूमौ निहिते पात्रे जायते, न हस्तसंस्थापने; ‘पानीयं च पिबेयेन तत्पात्रं द्विजसत्तमः । अनुच्छिष्टं भवेत्तावयावद्भूमौ न निक्षिपेत् ॥’ इति वचनात् ।—प्रा. सु.



द्रक्षणे च । अकामतः पद्मात्रम्, एतत्सहचारिशूद्रोच्छिष्टभोजने दर्शना-  
दिति केचित् । परेऽर्द्धमेवाहुः ।

सहभोजने तु बृहस्पतः—( ६।९ )

‘माता वा भगिनी वाऽपि भार्या वाऽन्याश्च योषितः ।

न ताभिः सह भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’ इति ।

यत्त्वङ्गिराः—( आप. ५।७ )

‘ब्राह्मण्या सह योऽभीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ।

तत्र दोषं न मन्यन्ते सर्व एव मनीषिणः ॥’ इति ।

तदापद्विषयं विवाहविषयं वा ।

उच्छिष्टापवादमाहापस्तम्बः—( १।४।११ ) ‘पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातु-  
रुच्छिष्टं भोज्यम् ।’

आपदि शूद्रगृहभोजने तु पराशरः—( ११।२० )

‘आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ।

मनस्तापेन शुद्धयेत्तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥’

दीपोच्छिष्टभक्षणे षट्त्रिंशन्मते—

‘दीपोच्छिष्टं तु यत्तैलं रात्रौ रथ्याहृतं च यत् ।

अभ्यङ्गाच्चैव यच्छिष्टं भुक्त्वा नक्तैः शुध्यति ॥’

तैलग्रहणाद्धते न दोषः ।

अथ श्राद्धभोजने शङ्खः—( ल. शं. ३३—३४ )

‘चान्द्रायणं नैवश्राद्धे पराको मासिके मतः ।

पञ्चत्रयेऽतिकृच्छ्रं स्यात्पण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥

१ कदाचनेति वचनात्— सा. । तथा च हेमाद्रौ गालवः—‘एकयानसमारोह-  
मेकपात्रे च भोजनम् । विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषमाक् ॥’ इति ।

२ ‘द्रुपदादिवेत्’ ( तै. ब्रा. २।६।६ ) ‘द्रुपदादिव’ ( शु. य. २०।२० )  
इतीयं द्रुपदा ।

३ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽङ्गिराः—‘प्रथमेऽङ्गि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा ।  
नवमैकादशे चैव तनवश्राद्धमुच्यते ॥’ शिवस्वामी—‘नवश्राद्धाणि पञ्चाहुराध-  
नायनशाखिनः । आपस्तम्बाः षड्वित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥’ नि. सि.



आब्धिके कृच्छ्रपादः स्यादेकाहः पुनराब्दिके ।

अत ऊर्ध्वं न दोषः स्याच्छ्रद्धास्य वचनं यथा ॥' इति ।

मासिके आद्ये । द्वितीयादिषु तु प्रायश्चित्ततारतम्यं कल्प्यम् ।  
षण्मासिकशब्देन ऊनषाण्मासिकमपि गृह्यते । एवमाब्दिकपदेन  
ऊनाब्दिकमपि । न दोषः पूर्ववदिति शेषः । तृतीयाद्याब्दिकेऽपि 'त्रिरात्रं  
वाऽन्यमासेषु प्रत्यब्दं चेदहः स्मृतम्' इति षट्त्रिंशन्मतं प्रायश्चित्तोक्तेः ।

यत्तु भरद्वाजः—

‘भुक्तं चेत्पावर्णश्राद्धे प्राणायामान्बडाचरेत् ।

उपवासस्त्रिमासादि वत्सरान्तं प्रकीर्तितम् ॥

प्राणायामत्रयं वृद्धावहोरात्रं सपिण्डने ।

असरूपे स्मृतं नक्तं व्रतपारणके तथा ॥

द्विगुणं क्षत्रियस्यैतन्निगुणं वैश्यभोजने ।

साक्षाच्चतुर्गुणं ह्येतत्स्मृतं शूद्रस्य भोजने ॥' इति ।

तत्र त्रिमासादीत्यापद्विषयम् ।

यत्तु हारीतः—( ५।३९ )

‘चान्द्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मिश्रके ।

एकाहस्तु पुराणेषु प्रायश्चित्तं विधीयते ॥' इति ।

तच्छ्रद्धावक्यसमानविषयम् । मिश्रकं संवत्सरान्तर्गतश्राद्धमित्य-  
पराकं । एकादशाहिकमित्यन्ये । ‘चान्द्रायणं नवश्राद्धे’ इत्येतदाद्य-  
नवश्राद्धविषयम् । ‘प्राजापत्यं तु मिश्रके’ इत्याद्यमासिकविषयम् ।

द्वितीयनवश्राद्धादिषु षट्त्रिंशन्मतोक्तम्— ( य. स्मृ. २।२६-२७ )

‘प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके ।

त्रैपक्षिके तदर्द्धं स्याद्द्वौ पादौ मासिके तथा ॥

पादोनं कृच्छ्रमुद्दिष्टं षण्मासे च तथाब्दिके ।

त्रिरात्रं चान्त्यमासेषु प्रत्यब्दं तदहः स्मृतम् ॥' इति ।

क्षत्रियादिश्राद्धभोजने तु तत्रैव— ( य. स्मृ. २।३१-३४ )

‘चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः ।

त्रैपक्षिके सान्तपनं कृच्छ्रं मासद्वये स्मृतम् ॥



क्षत्रियस्य नवश्राद्धे व्रतमेतदुदाहृतम् ।  
 वैश्यस्यार्द्धाधिकं प्रोक्तं क्षत्रियात्तु मनीषिणः ॥  
 शुद्रस्य तु नवश्राद्धे चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ।  
 सार्द्धेचान्द्रायणं मासि त्रिपक्षे त्वैन्दवं स्मृतम् ॥  
 मासद्वये पराकः स्यादूर्ध्वं सान्तपनं स्मृतम् ॥<sup>१</sup> इति ।

यत्तु हारीतः—

‘अहमेकादशाहे तु भुक्त्वा सञ्चयने तथा ।  
 उपोष्य विधिदुक्त्वा कूर्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम् ॥’

यदपि विष्णुः— ( ५१।५० )

‘प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं त्वाद्यमासिके ।  
 त्रैपक्षिके तदर्द्धं तु पञ्चगव्यं द्विमासिके ॥’ इति ।

तदुभयमापद्विषयम् ।

भारद्वाजः—

‘अपाङ्केयान्यदुद्दिश्य श्राद्धमेकादशेऽहनि ।  
 ब्राह्मणस्तत्र भुक्त्वाऽन्नं शिशुचान्द्रायणं चरेत् ॥  
 आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।  
 सङ्कल्पिते तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं क्षपणं भवेत् ॥’ इति ।

आमश्राद्ध इति नवश्राद्धविषयम् । यत्तु तत्रैव विष्णुः— ( ५१।४९ )  
 ‘आमश्राद्धाशने त्रिरात्रम्’ इति; तदापद्विषयम् ।

यत्तु शङ्खः— ( १७।४३ )

‘आमश्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रतं चरेत् ।  
 इति, तदभ्यासविषयम् । सङ्कल्पित इति षाण्मासिकादिविषयम् ।

मनुः— ( ११।१५७ )

‘मासिकान्नं तु योऽश्रीयादसमावर्तिको द्विजः ।  
 स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहमुदके वसेत् ॥’ इति ।

१ त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति—इति चतुर्थपादः सु. स्मृतौ ।



यत्तु संवर्तः—( २३, २५ )

‘मृतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ।

ब्रह्मचारी तु योऽश्रीयान्सधुमांसं कथञ्चन ॥

प्राजापत्यं तु कृत्वाऽसौ मौजोहोमेन शुद्धयति ।’ इति ।

तद्विपूर्वविषयम् ।

अनुक्तप्रायश्चित्ते तु सर्वत्र उशनाः—( ३।७ )

‘दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्विजः ।

ततः सन्ध्यामुपासीत शुद्धयेत्तु तदनन्तरम् ॥’ इति ।

आमश्राद्धे तु सर्वत्रार्द्धम् ।

तथा च षट्त्रिंशन्मते—

‘आमश्राद्धे भवेद्धर्द्धं प्राजापत्यादि सर्वदा ।’ इति ।

अथ संस्कारान्नभोजने प्रायश्चित्तविवेकेऽङ्गिराः—

‘जन्मप्रभृतिसंस्कारे बालस्यान्नस्य भोजने ।

असपिण्डैर्न भोक्तव्यं श्मशानान्ते विशेषतः ॥’

व्यासः—( २।२३-२४ + ल. अं. ६३+ आप. ९।२२ )

‘निवृत्ते व्रतहोमे तु प्राङ्गामकरणान्तथा ।

चरेत्सान्तपनं भुक्त्वा जातकर्मणि चैव हि ॥

अतोऽन्येषु तु भुक्त्वाऽन्नं संस्कारेषु द्विजोत्तमः ।

नियोगादुपवासेन शुद्धयते निन्द्यभोजने ॥’

धौम्यः—

‘ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा ।

जातश्राद्धे नवश्राद्धे द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥’

आपस्तम्बः—( ९।२२ )

‘याजकान्नं नवश्राद्धं सङ्गृहे चैव भोजनम् ।

स्त्रीणां प्रथमगर्भे च द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥’ इति ।

स्त्रीणां सङ्गृहो विवाहः ।

१ अत्र ब्रह्मौदनारूयं कर्माधानाङ्गभूतं सोमसाहचर्यात् । इति विज्ञानेश्वरः । अन्ये तु उपनयनाङ्गभूतोऽनुपवचनीयो ब्रह्मौदन इति व्याचक्षते । सोमे दीक्षोत्तरमग्निषोमीयवपायागात् पूर्वमित्यर्थः । भो. कु.



अथ हस्तदत्तादिभक्षणे प्रायश्चित्तमाह यमः—

‘माक्षिकं फाणितं शाकं गौरसं लवणं घृतम् ।

हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु भोक्ता सान्तपनं चरेत् ॥’

एतत्कामतः । सान्तपनं दिनत्रयसाध्यम् ।

अकामतस्त्वाह पराशरः—

‘माक्षिकं फाणितं शाकं गौरसं लवणं घृतम् ।

हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु दिनमेकमभोजनम् ॥’ इति ।

—फाणितं इक्षुरसविकारविशेषः ।

पर्यायदत्तान्नभोजने वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

‘ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् ।

द्वयमेतदभोज्यं स्याद्भुक्त्वा तूपवसेदहः ॥’ इति ।

शूद्रहस्तभोजनादौ तु ऋतुः—( सं. स्मृ. २९ )

‘शूद्रहस्तेन यो भुङ्क्ते पानीयं वा पिबेत्कचित् ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ।’

एवं याज्ञवल्क्योक्तेषु—( १।१६८ )

‘गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदा स्पृष्टं च कामतः ।’

इत्यादिष्वपि कल्प्यं प्रायश्चित्तम् ।

मनुः—

‘घृतहीनं तु यो भुङ्क्ते नरस्त्वाहुतिपञ्चकम् ।

पश्चाद् घृतेन यो भुङ्क्ते भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

वृथापाकान्नभक्षणे तु शातातपः—

‘यत्र नाश्नन्ति देवाश्च पितरश्च यथाविधि ।

वृथापाकः स विज्ञेयस्तस्य नाद्यात्कथञ्चन ॥

१ ‘हस्तदत्तभोजने... त्रिरात्रमभोजनम्’ इति हारीतोक्तेः । भो. कु.

२ ‘उमावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्’ । इति शातातपस्मृतौ ( ६४ ) अत्रिस्मृतौ ( १।१० ) चोत्तरार्धम् ।

३ अत्रिसंहितायां तु—( ८।९ ) ‘योऽगृहीत्वा विवाहार्णि गृहस्थ इति मन्यते । अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः’ ॥ इति वृथापाकं लक्षयित्वा ‘वृथापाकस्य’ ( ८।१० ) इत्याहुक्तम् ।



वृथापाकस्य भुञ्जानः प्रायश्चित्तं चरेद्विजः ।  
प्राणायामं त्रिरभ्यस्य घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥'

लिखितोऽपि—

‘यस्य चाग्रौ न क्रियते यस्य चाग्रं न दीयते ।  
न तद्भोज्यं द्विजातीनां भुक्त्वा तूपवसेदहः ॥’

तथा—

‘वृथाकृसरसंयावपायसापूपशङ्कुलीः ।  
आहिताग्निर्द्विजो भुक्त्वा प्राजापत्यं चरेदिति ॥’

अनाहिताग्नेस्तूपवासः ।

पराशरः—( ११।८ )

‘एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।  
यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥  
मोहाद्भुज्येत यस्तत्र पक्तावुच्छिष्टभोजनः ।  
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रसान्तपनेन तथा ॥’

एतच्च कामतः ।

यत्तु माधवीये स्मृत्यन्तरम्—( अं. स्मृ. ५।१ )

‘यस्तु भुङ्क्ते द्विजः पङ्क्त्यामुच्छिष्टायां कदाचन ।  
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

तदकामतः ।

निन्दितपङ्क्तिभोजनेऽङ्गिराः—

‘यस्तु पङ्क्तिषु भुञ्जीत कुत्सितानां विशेषतः ।  
अहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’

१ यस्य अन्नस्य—अग्रौ न क्रियते, न हूयते । यस्य च ‘अन्नाग्रं च समुद्रृत्य हन्तकारोपकल्पितम् । निर्वापभूतं भूपाल ! श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ॥’ ( वि. पु. ३।१।१।६२ ) इति विहितमग्रं न दीयते । ‘अग्रं ग्रामचतुष्टयम् ।’ इति मार्कण्डेय-पुराणे ( २९।५३ ) ।

२ वृथा देवतायुदेशमन्तरेण साध्विनाः ।... कृमरं तिलमुद्गसिद्ध ओदनः । संयावः क्षीरगुडघृतादिकृत उत्तरिकाख्यः प्राकविशेषः । पायसं पयसा घृतमन्नम् । अपूपोऽस्नेहपक्वगोधूमविकारः । शङ्कुली स्नेहपक्वो गोधूमविकारः ।—मि.



क्षत्रियादिपङ्क्तिषु विष्णुः—‘ब्राह्मणः क्षत्रियपङ्क्तावुपनिश्यासंस्पृशन्त्यदा  
भुङ्क्ते तदा नक्तमाचरेद्वैश्यपङ्क्त्यामेकरात्रं शूद्रपङ्क्त्यां ब्रह्माचरेत्’ इति ।  
इति क्रियादुष्टाशनप्रायश्चित्तम् ॥

अथाभोज्यानाः ।

व्यासः— ( ४।६५-६६ )

‘गृध्रो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शूकरः ।

श्वा चैव सप्तजन्मानीत्येवं मनुस्वाच ह ॥

शूद्राग्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्निग्रयते द्विजः ।

स भवेच्छूकरो भ्रान्त्यस्तस्य वा जायते कुले ॥’

आपस्तम्बः— ( ८।८ )

‘आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्राग्नेन प्रवर्त्तते ।

पञ्च तस्य विनश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽमयः ॥’

किञ्चिदपवदति हारीतः—

‘कन्दुपकं स्नेहपकं पायसं दधिसक्तवः ।

यतान्यशूद्रान्नभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत् ॥’

कन्दुभ्राष्ट्रम् । ‘छीवेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रोना कन्दुर्ना स्वेदनी क्षियाम् ।’  
इति कोशात् ( अम. २।१।३० ) ।

याज्ञवल्क्यः— ( १।१६६ )

‘शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ।

भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥’

१ भ्राष्ट्रशाला... अपुपादिपचनार्थं परिमण्डलाकृत्या कृतमयोमयं पात्रम् ।  
—स्मृ. चं. । विष्णुरहस्ये—( ३।५।१६ ) ‘विनोदकेन यत्पकं यत्पकं तैल-  
सर्पिषा । तदन्नं फलवद्वाह्यं नात्र कार्या विचारणा ॥

२ दासादीनां लक्षणमाह पराशरः— ( १।१।२२-२४ ) ‘शूद्रकन्यासमुत्पन्नो  
ब्राह्मणेन तु संस्कृतः । असंस्काराद्भवेदासः संस्कारादेव नापितः ॥ क्षत्रियाच्छू-  
द्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः । स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥  
वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः । स ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो  
विप्रैर्न संशयः ॥’ इति । यद्यपि क्रमप्राप्तस्य कुलमित्रस्य लक्षणं नोक्तम्,—



एतेषां चान्नं सम्प्रोक्ष्य ग्राह्यम् ।

‘सम्प्रोक्षयित्वा गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतम् ।’

इति विष्णुपुराणात् ।

आपस्तम्बः— ( ८।१७ )

‘नाममन्नं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ।

गुडमांसरसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥’

सुमन्तुः—

‘गोरसश्चैव सक्तुं च तैलं पिण्याकमेव च ।

अपूपान् भक्षयेच्छूद्राद्यन्नान्यत्पयसा कृतम् ॥

पराशरः— ( ११।१३ )

‘घृतं तैलं तथा क्षीरं गुडं तैलेन पाचितम् ।

गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम् ॥’

चतुर्विंशतिमते—

‘आरनालं तथा क्षीरं काञ्जिकं दधिसक्तवः ।

स्नेहपक्कं तथा चान्नं शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥’

लिखितः—

‘भुक्त्वा वार्ष्णेयस्य भोजनमन्नस्य सुतस्य च ।

शूद्रस्य च तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥’

इदमकामतः ।

—तथापि शब्दसामर्थ्यात् प्रक्रमबलाद्वा तल्लक्षणमुच्येयम् ॥ शब्दसामर्थ्यतस्तावत् कुलस्य मित्रं कुलमित्रमिति व्युत्पत्त्या पितृपितामहादिक्रमादायात आतः शूद्रः कुलमित्रमित्यभिधीयते । प्रक्रमानुसारेण तु वैश्यः शूद्रकन्यामूढा तस्यां यं पुत्र-सुत्पादयति, स कुलमित्रमिति ॥ यस्तु वाङ्मनःकायकर्मभिस्तवाहमित्यात्मानं निवेदयति, स आत्मनिवेदकः । यद्वा—आदिक्रमाहचर्यात् क्षत्रियायां ब्राह्मणेनो-त्पादितः कमतः संस्कृत आत्मनि वेदकोऽस्तु । अस्मिन्पक्षे यद्यप्यशूद्रावादिक्का-त्मनिवेदकौ, तथापि नीचजातित्वसामान्येनाभोज्यत्वशङ्कायां तदपनोदनायेदमभि-धीयते—इत्यदोषः—मा । अत्र चकारात् कुम्भकारश्च । —मि । इदं च कलौ वर्ज्यम्, ‘शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणाम् । भोज्यान्नता—’ इति माधवी-यादौ आदित्यपुराणे तत्प्रकरणे पाठात् ।

१ तत्क्रमित्यत्रिसंहिता—( ८-५ ) पाठः । ‘तदेतत्सर्वमापद्विषयम्’ ।—स्मृ. चं. ।



कामतस्तु शूद्रादीनुक्त्वा सुमन्तुः—

‘भुञ्जानोऽन्यतमस्यान्नममर्या क्षपणं व्यहम् ।

मर्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥’ इति ।

आवृत्तावधिकं कल्प्यम् ।

याज्ञवल्क्यः—

‘यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनाभुभौ ।

तयोरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

अथ रजकाद्यन्ने आपस्तम्बः—( ९।३२ )

‘रजकव्याधिशैलूपवेणुचर्मोपजीविनाम् ।

यो भुङ्क्ते ब्राह्मणश्चान्नं बुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ॥’

एतत्कामतः । अकामतोऽर्द्धम् ।

यत्तु रजकादीनभिधायाह यमः—( ३४ )

‘भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वापः प्रतिगृह्य च ।

कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥’ इति ।

एतदभ्यासे ।

यत्तु संवर्तः—

‘अन्त्यजान्नं यदा भुङ्क्ते शूद्रो मोहात्कथञ्चन ।

एकरात्रोषितो भूत्वा दानं दत्वा विशुध्यति ॥’ इति;

तदापदि ।

१ व्याधः—‘नापिताहोपकन्यायां सर्वस्वी तस्य योषिति । अत्राद्वभूत  
व्याधश्च बलवान्मृगर्हिसकः ॥’ ( ब्र. वै. १।१०।११३ ) । शैलूपः—‘स्थकारस्य  
दुहिता सायोगवसमागता । मृते यं तनयं सोऽपि सुत्रधार इतीरितः ॥ जायाजीवश्च  
शैलूपो नाट्यशास्त्रविशारदः ।’ ( शू. क. ) । ‘वृत्त्यन्वेषी नटानां तु स तु  
शैलूपिकः स्मृतः ।’ ( भा. त. ) वेणुः—‘विप्रायां नापिताज्जातो वेणुकः  
परिकीर्तितः ।’ ( सू. सं. १।१२।३३ ) वेणुपदस्योपजीविपदेन सम्बन्धाभ्युपगमे  
तु ‘चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ।’ ( १०।३७ ) इति मनुदितो  
प्राह्यः । चर्मोपजीवी—‘वैदेहिकास्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ।’ ( औ. २१ )  
इत्युक्तश्चर्मकारादन्य एव ।

२ कृच्छ्राब्दं अब्दं व्याप्य कृच्छ्रम् प्राजापत्यमित्यर्थः ।



अथ कापालिकाग्ने—

आपस्तम्बः— ( बृ. य. २।२ )

‘ कापालिकाभोजनं तन्नारीगामिनां तथा ।

ज्ञानात्कृच्छ्रावदमुद्दिष्टमज्ञानादैन्दबद्धम् ॥ ’

कृच्छ्रावदमभ्यासविषयम् ।

अथ चाण्डालाग्ने—

अङ्गिराः— ( ३।१६ )

‘ अन्त्यावसायिनामन्नप्रश्रीयाद्यस्तु कामतः ।

स तु चान्द्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥ ’

अत्र कामतश्चान्द्रायणमकामतस्तप्तकृच्छ्रम् ।

यत्तु कृच्छ्रपादानुवृत्तौ वसिष्ठः— ( २०।१९ ) ‘ एतदेव चण्डालान्न-  
भोजने, ततः पुनरुपनयनम् ’ इति; तदपि चान्द्रायणसमानविषयम् ।

विष्णुः— ( ५।५७-५८ ) ‘ चण्डालान्नं भुक्त्वा त्रिरात्रमुपवसेत् ।  
सिद्धं भुक्त्वा पराक ’ इति; तद्वलाद्भोजनविषयम् ।

यत्तु मनुमुनू— ( म. १।१७५+ल. शा. १५९ )

‘ चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।

पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥ ’ इति ।

१ कापालिकाः— ‘ सद्यः कृतद्विजशिरःपङ्कजार्चितभैरवैः । न ध्वस्ता लोक-  
मर्यादा का वा कापालिकाधमैः ? ॥ ’ ( शं. दि. १।३७ ) इत्यादावुपवर्णिता  
नरबलिपुरोपहारादिभिर्महाभैरवपूजकाः । एतेषां धर्माचारादिवर्णनं प्रबोधचन्द्रोदये  
( ३।१२-१३ ) द्रष्टव्यम् ।

२ अन्त्यावसायिनः मूले वक्ष्यन्ते ( पृ. ) । तद्विज्ञोऽप्युक्तो मनुना—  
निषादद्वी तु चण्डालास्तुत्रमन्त्यावसायिनम् । श्मशानगोचरं सृते बाह्यानामपि  
गर्हितम् ॥ ’ ( १०।३९ ) ।

३ चण्डालः ‘ ब्राह्मण्यां.... शूद्राज्जातस्तु चण्डालः सर्वधर्मवहिष्कृतः । ’  
( या. १।१३ ) अङ्गिरसा त्वन्येऽपि चण्डाला उक्ताः— ‘ यस्तु प्रव्रजिताज्जातो  
ब्राह्मण्यां यश्च शूद्रजः । तावुभौ विद्धि चण्डालौ सगोत्रायश्च जायते ॥ ’ ( शू. क. )

४ अन्ते भवा अन्त्या; यतोऽधमजातयो न सन्ति ।—दीपकलिका ।



तत्र ह्यानतोऽत्यन्ताभ्यासे तु पातित्योक्तेर्द्वादशाब्दम् । कामतस्तु  
चतुर्विंशत्यब्दम् ।

म्लेच्छादिभिर्बलाद्भोजितस्य कारिताशुभकर्मणश्च प्रायश्चित्तमाहाप-  
स्तम्बः- ( दे. स्मृ. १७-२२ )

‘ बलाद्वासीकृता ये तु म्लेच्छचाण्डालदंशुभिः ।  
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् ॥  
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भोजनम् ।  
खरोष्ट्रविट्पराहाणामामिषस्य च भक्षणम् ॥  
तत्स्त्रीणां च तथा सङ्गं ताभिश्च सह भोजनम् ।  
मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम् ॥  
चान्द्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथ वा भवेत् ।  
चान्द्रायणं पराकं च चरेत्संवत्सरोषितः ॥  
संवत्सरोषितः शूद्रो मासार्द्धं यावकं पिबेत् ।  
मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छ्रपादेन शुद्ध्यति ॥  
ऊर्ध्वं संवत्सरात्कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः ।  
संवत्सरैस्त्रिभिश्चैव तद्भावं सन्निगच्छति ॥ ’

शूलपाणिस्तु-

‘ संवत्सरैश्चतुर्भिश्च तद्भावं सोऽधिगच्छति ।

‘हासो न विद्यते तस्य प्रायश्चित्तैर्दुर्गात्मनः ॥ ’

१ म्लेच्छाः- ‘ क्षत्रवीर्येण शूद्रायामृतदोषेण पापतः । बलवन्तो दुरन्ताश्च  
बभूवुर्म्लेच्छजातयः ॥ ’ ( ब्र. वै. १।१०।११९ ) । ‘ ब्राह्मण्यां वैश्यतो जातः  
क्षत्ता भवति नामतः । अस्यामनेन चौर्येण म्लेच्छो विप्राः ! प्रजायते ॥ ’  
( सु. मं. १।१२।२२ ) इत्याद्यनेकविधाः ।

दस्यवः- ‘ पौण्ड्रकाश्चौडूद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः । पारदा पड्वा-  
थीनाः किराता दरदाः खशाः ॥ मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।  
म्लेच्छवाचश्चार्यवानः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ ’ ( १०।४४।४५ ) इति मनुक्ताः ।

२ अशुभं कर्मोक्तं नारदेन- ( पा६-७ ) ‘ गृहद्वाराशुचिस्थानरथ्यावस्कर-  
शोधनम् । गुह्याङ्गरुपर्शनोच्छिष्टविण्मूत्रप्रहणोज्जनम् ॥ इष्टतः स्वामिनश्चाङ्गैरुप-  
स्थानमथान्ततः । अशुभं कर्म विज्ञेयम् ’ इति ।



इत्यन्ते पपाठ । प्राजापत्यचान्द्रायणादि मासं वासमात्रे । गवादि-  
हिंसायां तु प्रातिस्विकं तत्तत्प्रायश्चित्तमेवाकामतो विहितं ज्ञेयम् ।

आशौच्यत्रे छागलेयः—

‘प्राणायामशतं कृत्वा शुद्धयते शूद्रसूतके ।  
वैश्ये षष्टिर्भवेद्वाज्ञि विशतिर्ब्राह्मणे दश ॥  
एकाहं च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम् ॥’

इदमकामतः ।

यत्तु मार्कण्डेयः—

‘भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचे चरेत्सान्तपनं द्विजः ।’

यच्च शङ्खः— ( १७।४१ )

‘ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वाशौचे मासं व्रती भवेत् ।’ इति;  
तदभ्यासविषयम् । अत्र सर्वत्र सूतकग्रहणं मृतकस्याप्युपलक्षणम् ।  
अङ्गिराः ( ८१-८२ )

‘सूतके तु यदा विप्रो ब्रह्मचारी विशेषतः ।  
पिवेत्पानीयमज्ञानात्समभ्रीयात्स्पृशेत्तथा ॥  
पानीयपाने कुर्वीत पञ्चगव्यस्य भक्षणम् ।  
त्रिरात्रं भोजने प्रोक्तं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥’

ब्राह्मे—

‘योगो मघात्रयोदश्याः कुञ्जरच्छायसंज्ञकः ।  
भवेन्मघायां संस्थेन्दौ हंसश्चैव करे स्थितः ॥  
सूतके मृतके वाऽथ प्रस्तयोः शशिसूर्ययोः ।  
छायायां कुञ्जरस्याथ भुक्त्वा तु नरकं व्रजेत् ॥  
भुक्त्वा प्रमादाद्विप्रस्तु सकृच्चान्द्रायणं चरेत् ॥’

एतच्च प्रायश्चित्तं यज्जातीयस्याशौचिनोऽन्नं भुक्तं, तज्जात्युचितमा-  
शौचं कृत्वा तदन्ते कार्यम् ।

तथा च विष्णुः—(२२।७-८) ‘ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदन्नमभ्राति  
तस्य तावदाशौचं यावत्तेषाम् । आशौचापगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात्’ इति ।  
ब्राह्मे— ‘मत्तोन्मत्तातुराणां च मुमूर्षोर्वा कदाचन ।’



तथा—

‘तद्गृहे नान्नमश्रीयात्प्रवसत्यग्निहोत्रिणि ।

एतेषां तु गृहे भुक्त्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥’ इति ।

आपस्तम्बः—

‘म्लेच्छादीनां पयः पीत्वा पुष्करिण्यां हृदेऽपि वा ।

जानुदघ्नं शुचि ज्ञेयमथस्तादशुचि स्मृतम् ॥

तत्तोयं यः पिबेद्विप्रः कामतोऽकामतोऽपि वा ।

अकामान्नक्तभोजी स्यादहोरात्रं तु कामतः ॥’

इति, तत् जानुदघ्नोक्तम् ।

अत एव शातातपः—

‘अन्त्यैरपि कृते कूपे सेतौ वाप्यादिकेऽपि वा ।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥’

अथान्त्यजभाण्डजले—

पराशरः— ( ६।३०-३१ )

‘भाण्डस्थमन्त्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥

ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः ।

शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तिः ॥’ इति ।

इदमकामतः ।

कामतस्त्वापस्तम्बः—

‘मदान्धो म्लेच्छभाण्डेभ्यो यस्त्वापः पिबते द्विजः ।

कृच्छ्रपादेन शुष्येत पुनः संस्कारमर्हति ॥’

शूद्रोदकपाने शातातपः—

‘यदि विप्रः प्रमादेन शूद्रतोयं पिबेत्स्वयम्’ ।

१ शूद्राणां नोपवासोऽस्ति दानेनैव विशुद्ध्यति । ( प. पु. ब्र. खं. १९।१६ )



इत्युपक्रम्य—

‘उपोष्य विल्वपत्राणां पलाशस्य कुशस्य च ।  
एतेषामुदकं पीत्वा तेन शुद्धिमवाप्नुयात् ॥’

अपवादमाह जाबालः—

‘नवभाण्डे तु पानीयं शूद्रविद्वक्षत्रजन्मनाम् ।  
पेयं तदपि विप्राणां पर्यो दधि तथैव च ॥’

शङ्खः—‘घृतदधिपयस्तक्राणामाकरभाण्डस्थितानामदोषः’ इति ।

शातातपः—

‘घृतं तैलं दधि क्षीरं तथैवेक्षुरसो गुडः ।  
शूद्रभाण्डस्थितं तर्कं तथा मधु न दुष्यति ॥’

प्रपादिजलपाने लघुहारीतः—

‘प्रपाजलं सीरघटस्य चैव द्रोणीजलं कौशविनिर्गतं च  
पीत्वाऽवगाहेन जलं सवासा उपोषितः शुद्धिमवाप्नुते च ॥’

—सीरघटः सीरवृक्षनिर्यासाधारभूतं पानम् । द्रोणी नौकाजलनिः-  
सारणपानम् । कौशविनिर्गतं कूपादेश्वर्मपुटकनिःसारितम् । एतत्कामतः ।  
सकृत् आपदि तु न दोष इत्याह स एव—

‘द्रोण्यामायसयुक्तायां छत्रे प्रावर्त्तके तथा ।  
ग्रामप्रपाजलं चैव पीत्वाऽऽपत्सु न दुष्यति ॥’

छत्रे प्रावर्त्तके सेचके अज्ञात इति शूलपाणिः ।

यमः—

‘प्रपास्वरण्ये घटके स्वकूपे द्रोणीजलं कौशगतास्तथापः ।  
ऋतेऽपि शूद्रात्तदपेयमादुरापद्रुतो भूमिगताः पिबेच्च ॥’

१ अज्ञानात्पिबतो तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु । अहोरात्रोषितः ज्ञात्वा पञ्च-  
गव्येन ॥ ( अ. सं. ८।७ ) इति, तद्वस्तुसम्बन्धमात्रेण । इदं तु तत्पात्रस्थपान-  
विषयम् । भो. कु. ।

२ प्रपास्वरण्येषु जलेषु वै गिरौ द्रोण्यां जलं केशविनिःसृतं च । श्वपाक-  
चाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पञ्चगव्येन शुद्धिः ॥ ’ ( २।२ ) इत्यापस्तम्बस्मृतौ ।  
तत्र ‘घटके च सौरे’ इति मिताक्षरापाठः, ‘घटके’ इति माधवीये । अत्रि-  
संहितायां तु—‘घटकस्य कूपे... कौशविनिर्गतं च’ इति ( ७।२१ ) ।



संसर्गदुष्टाशने रजस्वलादिस्पृष्टाशने च प्रायश्चित्तम् १३१

आपदि तदेव जलं भूमिष्ठं कृत्वा पात्रान्तरेणोद्धृतं पेयमित्यर्थः ।

अथ संसर्गदुष्टे विष्णुः—

‘मृदारिकुसुमादींश्च फलकन्देक्षुमूलकान् ।

विण्मूत्रदूषितान्प्राश्य चरेत्कच्छं च पादतः ॥

सन्निकृष्टेऽर्द्धमेव स्यात्कच्छोऽप्यशुचिभोजने ।’

दूषितत्वमीषत्संसर्गः सन्निकृष्टत्वं महान्तंसर्गः । इदं चाज्ञानतः सकृद्रक्षणे रसानुपलब्धौ च, ज्ञानतस्तु द्विगुणम्, अभ्यासे त्वावृत्तिः ।

रसोपलब्धौ तु कामतो व्यासः—

संसर्गदुष्टं यच्चान्यत्क्रियादुष्टं च कामतः ।

भुक्त्वा स्वभावदुष्टं च तप्तकच्छं समाचरेत् ॥’

अज्ञानतो रसोपलम्भे त्वर्द्धम् ।

संवर्तः—

‘केशकीटावपन्नं च नीलीलाक्षोपघातितम् ।

स्नाय्वस्थिचर्मसंस्पृष्टं भुक्त्वा तूपवसेदहः ॥’ इति ।

शातातपोऽपि—‘केशकीटावपन्नरुधिरमांसास्पृश्यस्पृष्टभ्रूणहन्यवेक्षित-  
पतच्यवलीढश्चशूकरगात्रातशुक्तपर्युषितवृथापकदेवान्नद्विषां भोजने  
उपवासः पञ्चगव्याशनं च’ इति । एतदुभयमापद्यकामतः ।

यत्तु शङ्कः— ( १७।४६ )

‘दूषितं केशकीटैश्च मार्जारैर्मूषकैस्तथा ।

मक्षिकामशकैश्चैव त्रिरात्रं तु व्रतं चरेत् ॥’ इति;

तदनापदि कामतः ।

रजस्वलादिसंस्पर्शे तु शङ्कः— ‘अमेध्यपतितचाण्डालपुष्कसरज-  
स्वलावधूतकुणिकुष्ठिकुनखिसंस्पृष्टानि भुक्त्वाऽतिकृच्छं चरेत्’ इति ।

—कुणिहस्तविकलः । एतत्कामतः, अकामतोऽर्द्धम् ।

आदिस्पृष्टभोजने तु लघुविष्णुः—

‘शूद्रदृष्टं शुना वाऽपि संस्पृष्टं प्राश्य भोजनम् ।

तप्तकच्छेण शुध्येत प्राजापत्येन वा पुनः ॥

शक्त्या पराको दातव्य इति धर्मस्य निश्चयः ॥



क्षत्रवैश्यादिकैर्दृष्टं गर्ह्यैः शूकरैस्तथा ।

पादहीनं चरेत्कृच्छ्रं शक्यं सर्वं चरेद्विजः ॥ १

पाकोत्तरं केशकीटादिपाते तु प्रचेताः—

‘अन्नं भोजनकाले तु मक्षिकाकेशदूषितम् ।

अनन्तरं स्पृशेदापस्तञ्चानं भस्मना स्पृशेत् ॥ २

तेन सह पक्वं तु त्याज्यम् ।

‘विशुद्धमपि चाहारं मक्षिकाकृमिजन्तुभिः ।

केशरोमनखैर्वाऽपि दूषितं परिवर्जयेत् ॥ ३

इति हारीतोक्तेः ।

चण्डालादिदृष्टे तु ब्रह्मपुराणे—

‘चण्डालपतितामेध्यैः कुनखैः कुष्ठिना तथा ।

ब्रह्मप्रसूतिकोदक्याकौलेयंकुटुम्बिभिः ॥

दुष्टं वा केशकीटाक्तं मृदस्मकनकास्त्रुभिः ।

शुद्धमद्यात्सहस्रं प्रदुष्टं व्युष्टमेव च ॥ ४ इति ।

—कौलेयकः श्वा । कुटुम्बी प्राणिविशेषः । सहस्रं विष्टादिस्मारकम् ।

व्युष्टं पर्युषितम् । एतत्स्पृष्टभक्षणे तु ब्रह्मपुराणे—

‘चण्डालपतितामेध्यैः कुनखैः कुष्ठिना तथा ।

उदक्यासूतिकास्पृष्टं भुक्त्वा मांसं वने वसेत् ॥ ५ इति ।

ह्रीवादिदृष्टे तु शातातपः—

‘ह्रीवाभिः शस्तपतितैः सूतिकोदक्यनास्तिकैः ।

दृष्टं नाद्यात्तदन्नं तु तस्य निष्कृतिरुच्यते ॥

तद्वत्त्वोपवसेद्रात्रिं तत्स्पृष्टे तु चतुर्गुणम् ।

उन्निष्टे षड्गुणं प्रोक्तमभ्यासेऽष्टगुणं भवेत् ॥ ६ इति ।

१ माधवीये तु देवलः ।

२ कौलेयककुटुम्बी श्वपाल इति भाति । कुटुम्बी कृषीवलो वा, ‘कृषीवलः कुटुम्बी स्यात् ।’ ( ६।१. ) इति कल्वदुः ।

३ विचिकित्सा तु हृदये यस्मिन्ने प्रजायते । सहस्रं तु विशेषं पुरीषं तु स्वभावतः ॥ ४—अप. ।



काकादिस्पृष्टास्थ्यादिदूषितान्नाशनादौ प्रायश्चित्त

१३३

काकादिस्पृष्टमपवदति प्रायश्चित्तविवेके यमः—( व.भ.सू. १४।२२ )

‘देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च ।  
काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विवर्जयेत् ॥  
अन्नं तन्मात्रमुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति ।  
घृतानां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्द्विनाशनामभिपातनात् ॥  
संपर्शाच्च भवेच्छुद्धिरपामग्रेष्वृतस्य च ।  
छागेन मुखसंस्पृष्टं शुचि चैव हि तद्भवेत् ॥’

यमः—‘गुडादिद्रव्यसंयुक्तं वर्ज्यं पर्युषितं दधि ।  
तथैव यावकादीनि मन्यादिरचितान्यपि ॥’

अत्र प्रायश्चित्तं ब्रह्मपुराणे—

‘सगुडं न विशुद्धं च तथा पर्युषितं दधि ।  
दीर्णतन्त्रमपेयं च तद्वस्त्रादं च फेनवत् ॥  
प्रमादाद्भक्षितैरेभिर्वने पक्ष्यन्नं चरेत् ।  
भुक्त्वा तु क्षारलवणं त्रिरात्रं तु वने वसेत् ॥’  
‘सगुडं मरिचाक्तं च वर्ज्यं पर्युषितं दधि ।’

—इति मदनः पपाठ ।

अस्थ्यादिदूषितान्नाशने ब्रह्मपुराणे—

‘अस्थना तु दूषितं चान्नं भुञ्जानस्तु यदा भवेत् ।  
स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा तु घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति

शिवदूषितजलपाने पराशरः—( ११।४१—४५ )

‘कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटम् ।  
अस्थिचर्मादिपतितं पात्वाऽमेध्या अपो द्विजः ॥  
नारं तु कुणपं काकं विह्वराहं खरोष्ट्रकम् ।  
गावयं सौप्रतीकं च मायूरं खाद्गकं तथा ॥

‘देवद्रोणी देवयात्रा । प्रकृतेष्ववश्यम्भाषिपर्वत्सवेषु’ । —कृष्णभट्टः ।  
देवद्रोणी स्वयम्भूलिङ्गाद्यवस्थानगह्वरम् । स्मृ.

२ दीर्णं स्फुटितम् । सा.

१२

X-10



वैयाघ्रमार्धं सैहं वा कूपे यदि निमज्जति ।  
 तडागस्याथ दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ।  
 प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसां क्रमेणैतेन सर्वशः ॥  
 त्रिप्रः शुष्येन्निरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ।  
 एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुष्यति ॥'

—सुप्रतीको गजः । खड्गो मृगविशेषः । क्रक्षो भल्लकः ।

हारीतः—( २१।३ )

‘ छिन्ने भिन्ने शवे तोयं तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् ।

शुद्धयै चान्द्रायणं कुर्यात्तत्र कृच्छ्रमथापि वा ॥ ’ इति ।

तत्कामतोऽत्यन्ताभ्यासे, कामतो मानुषशरीरपहतजलपानाभ्यासे वा ।

चान्द्रायणतत्रकृच्छ्रयोः शक्त्या व्यवस्था ।

शब्ददूषिते स्नानमात्रेऽपि हारीतः—( २१।४ )

‘ यदि कश्चित्ततः स्नायात्प्रमादेन द्विजोत्तमः ।

जपंस्त्रिषवणस्नानादहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ’

कामतो द्वैगुण्यादि कल्प्यम् ।

बृहद्विष्णुः—( २३।४४ )

‘ जलाशयेष्वथालपेषु स्थावरेषु महीमले ।

कूपवत्कथिता शुद्धिर्भूतसुं न तु दूषणम् ॥ ’

हारीतः—( २१।३ )

‘ बापीकूपतडागेषु दूषितेषु विशोधनम् ।

चटानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत् ॥ ’ इति ।

अत्रिराः—( ११ )

‘ कूपे विष्णुमंत्रसंसृष्टे पीत्वा तोयं द्विजोत्तमः ।

त्रिरात्रेण विशुद्ध्येत्तु कुर्यात् स्नानं स्मृतम् ॥ ’

अथ गुणदुष्टाशने ।

नञ्ज स्मृ—( ११।१५३ )

१ कुर्यात् स्नानतपनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति । इति सुदितस्मृतौ । त्रिरात्रे-  
 गेत्यादि तु अत्रिस्मृतौ ( ७।२२ ) ।



‘शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा मेघ्यानधि द्विजः ।

‘वावद्भवस्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥’

—शुक्तं यत्कालपरिवासमात्रेण, द्रव्यान्तरसंसर्गकालपरिवासाभ्यां वा अम्लीभवति ।

अत्राकामतः ‘शेषेपूपवसेदहः’ (५।२०) इति मनूक्त उपवासः ।

विष्णुरदि—(५।१३५) ‘यवगोधूमजं पर्योविकारं स्नेहाक्तं चुक्रुषानवं वर्जयित्वा पर्युषितं प्राश्योपवसेत् ।’

—चुक्रुषानवं सूषशास्त्रोक्तो व्यञ्जनविशेषः ।

कामतस्तु शङ्खः—(१७।३१)

‘लोहितान्वृक्षनिर्यासान् ब्रश्चनप्रभवांस्तथा ।

केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं तु यत् ।

ऋजीषक भुक्त्वा च त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥’ इति ।

—ऋजीषं पिष्टपचनम् । एतच्चामलकादिफलयुक्तकाञ्जिकादिव्यतिरेकेण ।

‘कुण्डिका सफला येषु गृहेषु स्थापिता भवेत् ।

तस्यास्तु कञ्जिका ग्राह्या नेतरस्याः कदाचन ॥’

इति मिताक्षरायां स्मरणात् ।

इधि भक्ष्यं तु शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवम् ।

यानि चैवाभिपूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥’ इति ॥

उद्धृतस्नेहादिषु तु गौतमः—(१।१९।५८) ‘उद्धृतस्नेहविलय-  
नपिण्याकमथितप्रभृतीनि चाऽऽत्तवीर्याणि नाभ्रीयात्’ इत्युक्त्वा  
‘प्राक्पञ्चनखेभ्यश्छर्देन घृतप्राशनं च’ (३।५।२६) इति ।

१ शुक्तस्वरूपं वृहस्पतिनोक्तम्—‘अत्यम्लं शुक्तमाख्यातं निन्दितं  
ब्रह्मवादिभिः ।’ इति । अनम्लमीषदम्लं वा यद्वस्तु कालान्तरेण द्रव्यान्तर-  
संसर्गेण वात्यम्लं भवति तच्छुक्कम् । न तु स्वभावतोऽत्यम्लम् । प. मा.

२ शुष्कखण्डवमिति मूले माधवीये च ।

३ उद्धृतस्नेहे उद्धृताप्रमण्डे दधिपयसी । विलयनं नवनीतमलम् । यन्त्रे  
पीडितानां तिलानां कल्कः पिण्याकम् । यस्य मथनमात्रं नाम्बुसंसर्गः, तदधि  
मथितम् । तच्च द्विविधम्—आत्तनवनीतमितरच्च । तत्रायस्येह ग्रहणम्—हरदत्तः ।



पर्युषितापवादमाह याज्ञवल्क्यः—(११६९)

‘अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम् ।

अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥’

अहुतान्नभोजने तु लिखित आह—

‘यस्य चाग्नौ न क्रियते यस्य चाग्रं न दीयते ।

न तद्भोज्यं द्विजातीनां भुक्त्वा तृपवसेदहः ॥’

संवर्तः—(२९)

‘शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने ।

अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चाग्न्येन शुद्ध्यति ॥’

भिन्नापवादमाह देवलः—‘ताम्ररजतसुवर्णाश्मशङ्खशुक्तिस्फटिकानां  
भिन्नमभिन्नमिति ।’

—भिन्नभाजनं च कांस्यमेव ।

‘भिन्नकांस्ये तु योऽश्रीयान्नद्यां स्नात्वा जपेद्विजः ।

गायत्र्यष्टसहस्रं तु एकभक्तस्तदा शुचिः ॥’

इति बौधायनोक्तेः । एतच्च ज्ञानतः ।

अज्ञानतस्तु पराशरः—

‘भिन्नभाण्डे तु भुञ्जानो ह्यज्ञानेन द्विजोत्तमः ।

सुवर्णौदकसंस्पृष्टं घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥’

मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे—

‘वटाकश्चित्पत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः ।

कोविदारकदम्बेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥’

तथा—

‘पलाशपत्रपत्रेषु गृही भुक्त्वैन्दवं चरेत् ।

वानप्रस्थो यतिश्चैव लभते चांद्रकं फलम् ॥’

(व्या. स्मृ. ३।६३)

—पलाशो वल्लीपलाश इति स्मृत्यर्थसारे हेमाद्रौ च ।

१ पोरिजाते—‘वल्लीपलाशपत्रे च स्थलजे पौष्करे तथा । गृहस्थश्चेत्तु नाश्रीय-  
डुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्’—एतेन ब्रह्मचारियतीनां वल्लीपलाशस्थलपत्रपत्रेष्वपि  
भोजनमनिषिद्धं भवति । भो. कु. ।



## अथ कालदुष्टाशने ।

ब्रह्मपुराणे—

‘सूतके सूतके वाऽपि अस्त्योश्चन्द्रसूर्ययोः ।  
छायायां कुञ्जरस्याथ भुक्त्वा तु नरकं व्रजेत् ॥  
भुक्त्वा प्रमादाद्विप्रस्तु सम्यक् चांद्रायणं चरेत् ।’

यत्तु षट्त्रिंशन्मते—

‘चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।’

इति; तदकामतः ।

बृहन्नारदीये— ( २९।५६ )

‘अर्केऽह्नि पर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमी दिवा ।  
एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥’

ग्रहणसन्निहितनिषिद्धकाले अज्ञानतो भोजने तु चन्द्रसूर्यग्रहं प्रकृत्य  
षट्त्रिंशन्मते—

‘तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ।’ इति ।

प्रायश्चित्तविवेके संवर्तः—

‘अपोशानमकृत्वा तु यो भुंक्तेऽनापदि द्विजः ।  
भुञ्जानस्तु यदा ब्रूयाद्गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥’

—अष्टशतमष्टोत्तरशतम् ।

स एव— ( १४ )

‘अनाचान्तः पिवेद्यस्तु भक्षयेद्वापि किञ्चन ।  
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जप्यं कृत्वा विशुध्यति ॥’

लघुहारीतः— ( २१ )

‘विना यज्ञोपवीतेन भुंक्ते च ब्राह्मणो यदि ।  
स्नानं कृत्वा जपं चैव उपवासेन शुद्ध्यति ॥’

ब्रह्मपुराणे—

‘रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गश्चेत्प्रमादतः ।  
तदादौ तु प्रकर्तव्या तेन शुद्धिर्मदंबुभिः ॥  
पश्चाद्वाचम्य तु जले जप्तव्यमथमर्पणम् ।’

—एतदनगीर्णप्रासेन ।



सकृन्निगीर्णग्रासे तु आपस्तम्बः— (१।१-२)

‘भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्सवते गुदम् ।  
 छच्छिष्टमशुचित्वं च प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥  
 आदौ कृत्वा तु वै शौचं ततः पश्चादुपस्पृशेत् ।  
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’

अथ शातातपः— (वृ. शा. १३)

‘मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं मोहाद्भुक्तेऽथ वा पिबेत् ।  
 त्रिरात्रं तत्र कुर्वीत इति शातातपोऽत्रवीत् ॥’ इति ।  
 तद्भूयो ग्रासाशने ।

आपस्तम्बः— (१।३७)

‘मूत्रोच्चारं सकृत्कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ।  
 मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु ध्वान्नीत्वा विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

—मूत्रपद पुरीषादेरुपलक्षणम् ।

शातातपः— (वृ. शा. १६)

‘अथ भोजनकाले चेदशुचिर्भवति द्विजः ।  
 भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ॥  
 भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुद्ध्यति ।  
 अशित्वा सर्वमन्नं तु त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

तैत्तिर्यभ्यङ्गादिना स्नाननिमित्ते अकृतस्नानस्य संवर्तः—

‘समुत्पन्ने द्विजः स्नाने भुञ्जीताथ पिबेत्तथा ।  
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥’

अष्टसहस्रमष्टाधिकसहस्रम् । एतच्च सकृत् ।

अभ्यासे शङ्खः— (१।७।५०)

‘नीलं वस्त्रं परीधाय मुक्त्वा स्नानार्हको भवेत् ।  
 त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याच्छिष्ट्वा गुल्मलतां तथा ॥’ इति ।

ऋतुः— ‘आसनारूढपादो वा ब्रह्माह्निप्राकृतोऽपि वा ।

मुखेन धमितं मुक्त्वा कृच्छ्रं स्नात्पन्नं चरेत् ॥’ इति ।

१ गव्यम् । मू. ‘बुद्धा सान्तपनं चरेत्’ (शा. स्म. २।६।४) ।



एवमेव स्थितप्रवृत्तगच्छच्छयान्तरभोजने एकाहत्र्यहादीन्यभक्ष्य-  
भक्षणप्रायश्चित्तानि योजनीयानि ।

पराशरः— ( ६।६५-६६ )

‘ भुञ्जानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् ।  
स्वमुच्छिष्टमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते भुक्तभाजने ॥  
पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्यकस्थः स्थितोऽपि वा ।  
श्चानचंचालदृष्टौ च भोजनं परिवर्जयेत् ॥ ’ इति ।  
इति कर्तृदुष्टाशने प्रायश्चित्तम् ।

अथ वाग्दुष्टभावदुष्टाशने ।

ब्रह्मपुराणे—

‘ भक्ष्यं त्वभक्ष्यवाक्येन यो दद्याद्रोधधर्मतः ।  
गुरोरपि न भोक्तव्यं वाग्दुष्टं तन्महावकृत् ॥ ’ इति ।  
यत्र वर्णाकारादिनाऽभक्ष्यबुद्धिर्विषादिशंका वा जायते, तद्भावदुष्टम् ।  
तत्राकामतः सकृद्भक्षणे भावदुष्टादि प्रकृत्य गौतमः— ( ३।५।२६ )  
‘ छर्दनं घृतप्राशनं च ’ इति ।

कामतस्तु शंखः— ( १७।९२ )

‘ वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते ।  
भुक्त्वाऽन्नं ब्राह्मणः पश्चाच्चिरान्नं तु व्रती भवेत् ॥ ’ इति ।  
हारीतः— ( १३।२-३ )

‘ शंकितं प्रतिषिद्धानं विद्विष्टान्नमथापि वा ।  
यदि भुञ्जीत विप्रो यः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।  
एकशत्रोपवासश्च गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।  
प्राशयेत्पंचभिर्मित्रैः पंचगव्यं पृथक्पृथक् ॥ ’ इति ।  
इति सुरापानप्रसक्तानुपसक्तप्रायश्चित्तम् ।

१ प्रायश्चित्तं चोक्तं चतुर्विंशतिमते— ‘ स्वमुच्छिष्टं तु यो भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते  
भुक्तभाजने । एवं वैवस्वते प्राह भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ’ विद्वन्मनीहरा  
( ६।६६ ) ।



## अथ सुवर्णस्तेये ।

आयस्तंबः— 'ब्राह्मणसुवर्णपहरणं महापातकम् ।' इति ।

'ते सुवर्णस्तु षोडश' ( १।३६३ ) इति याज्ञवल्क्योक्तेः सुवर्ण-  
शब्दः षोडशमापोन्मितहेमवचनः । एवं चेतोन्यूनहरणे न महापातकम् ।

प्रायश्चित्तमाह याज्ञवल्क्यः—( ३।२५८ )

'अनिवेद्यं नृपे शुद्धयेत्सुरापत्रतमाचरन् ।' इति ।

—सुरापत्रतं द्वादशाब्दम् ।

सुवर्णस्तेयानुवृत्तौ 'महाव्रतं वा द्वादशाब्दानि कुर्यात्' इति  
कल्पतरौ विष्णुकेः ( ५२।३ ) । 'द्वादशभिर्वर्षैर्महापातकिनः  
पूयंते' इति हारीतोक्तेश्च ।

युगपद्नेकसुवर्णहरणेऽप्येकमेव प्रायश्चित्तं नावृत्तिः; हरणक्रियाया  
एकत्वात् । ब्रह्मवधादौ तु हननाक्रियाभेदादावृत्तमेव प्रायश्चित्तम् ।

प्रायश्चित्तांतरे आह स एव—( याज्ञ. ३।२५८ क. स्मृ. ८।६ )

'आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दद्याद्वा विप्रतुष्टिकृत् ।'

अत्रात्मसमस्वर्णदानं धनवद्विषयम्, तत्राशक्तस्तु विप्रतुष्टिकृतसुवर्णं  
दद्यात् ।

१ स्तेयं लक्षितं नारदेन—( १४।१६ ) 'उपायैर्विविधैरेषां छलयित्वा-  
पकर्षणम् । सुप्तमत्तप्रमत्तेभ्यः स्तेयमाहुर्मनीषिणः' ॥ इति ।

शूलपाणिस्तु— 'परस्वत्वेन विशेषतो ज्ञायमाने द्रव्ये परानुमतिमन्तरेण  
ममेदं यथेष्टं विनियोज्यमिति कृत्वा व्यवहारः स्तेयम् । एवं वस्त्रापहारे  
तदञ्चललब्धस्याविज्ञातस्य सुवर्णस्य नापहारः, अज्ञातत्वात् । यत्रासुवर्णस्य सुवर्ण-  
शुद्ध्यापहारस्तत्र सुवर्णस्य नापहारः, सुवर्णस्य यथेष्टविनियोज्यत्वेन व्यवहारकर्म-  
त्वाभावात् । यत्र सुवर्णमेव पारदरसोपलितत्वेन सीसकबुद्ध्यापहरति, तत्र परस्ये-  
दमिति जानत एव पुरुषस्य सुवर्णं विनियोगसङ्कल्पविषयः, अतः स्तेयमिति;  
किन्तु सुवर्णजात्यज्ञानादज्ञानकृतं तत्, अतो न तत्र प्राणान्तिकमिति ॥

तथा—सुवर्णस्तेयपदे समस्ते समस्ते सत्यपि लिङ्गसन्देहे संज्ञाविधिसार्थकत्वाय  
परिमितहेमयीः मुलिङ्गधीरपि, अतः परिमितहेमापहारो महापातकं, न जाति-  
आत्रापहार—इति प्रतिपादयामास ।



यत्तु व्यासः—

‘एतदेव व्रतं स्तेनः पादन्यूनं समाचरेत् ।’

इति; तन्निर्गुणस्वामिकसुवर्णापहारविषयमिति निबन्धकृतः । वयं तु—  
पादोनसुवर्णापहारविषयमिति प्रतीमः ।

यदप्यपराकै—

‘त्रिः षड्वदं चरेत्कृच्छ्रं यजेद्वा क्रतुना द्विजः ।

तीर्थानि वा भ्रमन् विप्रस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ॥’

इति, तत् क्षुत्क्षामकुटुम्बभरणाय निर्गुणस्वामिकसुवर्णापहार-  
विषयमिति केचित् । युक्तं तु— पूर्वरीत्याऽर्द्धसुवर्णापहारविषयत्वम्,  
साम्यानिदेशविषयीभूताश्रयत्नाद्यपहारविषयत्वं वा । क्रतुरत्र स्वर्जि-  
दादिः । तीर्थभ्रमणं चाशीत्यधिकशतयोजनगमनं द्रष्टव्यम् ।

यत्त्वापस्तम्बः— ( १।२५।११ )

‘स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा गुरुतल्पं च गत्वा ब्रह्महत्यामकृत्वा ।

चतुर्थकालमितभोजनाः स्युरपोऽभ्युपेयुः सवनानुकल्पम् ।

स्थानासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैरपपापं नुदन्ति ॥’ इति;

यदप्यङ्गिराः—

‘महापातकसंयुक्ता वर्षैः शुद्ध्यन्ति ते त्रिभिः ।’ इति;

तदुभयं यदापहारोत्तरमेवानुतापेन स्वामिने प्रत्यर्पयति तद्विषय-  
मिति प्राञ्चः । अन्ये तु— सुवर्णचतुर्थांशापहारविषयत्वमाहुः । वस्तुतः—  
सगुणविप्रस्य निर्गुणविप्रस्वामिकसुवर्णापहारविषयत्वं युक्तम् ।

तथा च भविष्ये—

‘विप्रस्य गुणवान्विप्रो निर्गुणस्यापहृत्य च ।

चतुर्थकाले भुञ्जानस्त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥’ इति ।

विषयान्तरमप्युक्तं तत्रैव—

‘यदा च निर्गुणः स्वामी क्षत्रियो वैश्य एव च ।

हत्वा च ब्राह्मणो वीर ! तदापस्तम्बभाषितम् ॥’

तत्रैव— ‘क्षत्रियस्य गुणाढ्यस्य हत्वा विप्रस्तु निर्गुणः ।

चतुर्थकाले भुञ्जानस्त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥’ इति ।

इदं च वाक्यद्वयं न्यूनाधिकपरिमाणविषयत्वादविरुद्धम् ।



यत्तु सुमन्तुः— 'सुवर्णस्तेयी मासं सात्रित्र्याऽष्टसहस्रमाज्याहुती-  
र्जुहुयात्प्रत्यहं त्रिरात्रमुपवासस्तप्तकृच्छ्रेण च पूतो भवति' इति;

यच्चापस्तम्बः— ( १।२५ ) 'स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा' 'संवत्सरं  
चरेत्' इति; तत्सुवर्णद्वादशभागापहारविषयम् ।

यत्तु सुमन्तुः— 'सुवर्णस्तेयी द्वादशरात्रं वायुभक्षः पूतो भवति'  
इति; तन्मानसापहारविषयमिति प्राञ्चः । निष्फलकामिकप्रवृत्तिविषयत्व  
तु सम्यक् ।

मिताक्षरायाम्—( २।२।५८ ) 'इदं मनसि पापं ध्यात्वा प्रणवपूर्वा  
व्याहृतीर्मनसा जपेत् । व्याहृत्य प्राणायामं त्रिरात्रं चरेत् । प्रवृत्तौ  
कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्' इति ।

—व्याहृत्याभिलष्य ।

षट्त्रिंशन्मते—

'यवमाने सुवर्णस्य प्रायश्चित्तं दिनद्वयम् ॥

सुवर्णकृष्णलं ह्येकमपहत्य द्विजोत्तमः ।

कुर्यात्सान्तपनं कृच्छ्रं तत्पापस्यापनुत्तये ॥

अपहत्य सुवर्णस्य माषमात्रं द्विजाधमः ।

गोमूत्रयावकाहारस्त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥' इति ।

'सुवर्णस्यापहरणे वत्सरं यावकी भवेत् ।

ऊर्ध्वं प्राणान्तिकं ज्ञेयमथ वा ब्रह्महन्तम् ॥'

वत्सरमिति सुवर्णपरिमाणद्वादशांशमाषाधिकदेमविषयम् । प्राणा-  
न्तिकं तु ज्ञानपूर्वकापहारविषयम् । अज्ञानतस्तु द्वादशाब्दं विप्रस्य ।

यत्तु भवदेवः—

'विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम् ।

वैश्येऽर्द्धं पादशेषस्तु शूद्रजातिषु शस्यते ॥'

इति विष्णुक्तेः 'क्षत्रियादेः पादपादहानिः' इति; तदयुक्तम्, द्विविधं  
हि स्तेयम्—बलावष्टम्भेन क्रियमाणं साहसाख्यमेकम्, अपरं च चौर्यम् ।  
तत्राद्ये पादोनादिबाधकेन चतुर्विधसाहसविषयेण 'पर्वद्या ब्राह्मणा-  
नां' इत्यङ्गिरोवचसोक्तस्य द्वैगुण्यस्यैव न्याय्यत्वात्, द्वितीयेऽपि  
विप्रस्वामिकसुवर्णस्य 'देवब्राह्मणराज्ञां तु विज्ञेयं द्रव्यमुत्तमम्' (१४।१६)



इति नारदेनोत्तमद्रव्यतोक्तेस्तत्र च दण्डभूयस्त्वात्, तथा 'गोषु  
ब्राह्मणसंस्थासु' ( मनुः ८।३२५ ) इत्यनेन विप्रस्वामिकगोवधे  
दण्डगौरवात्, 'विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वम्' इति वचनाच्चापि  
क्षत्रियादीनां प्रायश्चित्ताधिक्यमेवोचितं; न तु पादन्यूनमिति ।

कामतः सुवर्णस्तेये तु याज्ञवल्क्यः—( ३।२५७ )

‘ब्राह्मणस्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत् ।

स्वकर्म खयापयंस्तेन हतो मुक्तोऽथ वा शुचिः ॥’

—मुक्तः प्रहृतोऽपि जीवन्न त्वप्रहृत एवेत्यर्थः । ‘अन्नमेनस्त्री  
राजा’ ( २।३।४२ ) इति गौतमेनाप्रहारे राज्ञो दोषोक्तेः ।

‘ततो मुसलमादाय सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।

यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ॥’ ( १२१ )

इति संवर्ताच्च । एतेन ‘स्तेनपोष्याणां बहूनां मृतिसम्भावनायाम-  
प्रहृतोऽपि जीवन् शुद्धः’ इति माधवोक्तिरपास्ता । मानाभावाच्च ।

भविष्ये—

‘महंत्यपहृते पुत्र ! तथारूपे वा हृते गुह ! ।

हृतद्रव्यविशेषाद्वै स्नामिनस्तत्स्करस्य च ॥

प्रयोजनविशेषाच्च विशेषादेशकालयोः ।

अनुबन्धविशेषाच्च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥’

तत्रैव—

‘यद्यस्यापहृतं द्रव्यं तत्तस्यैव विनिर्दिशेत् ।

प्रायश्चित्तं ततः कुर्यादेवं कृद्धिमवाप्नुयात् ॥’

विष्णुः—( ५२।१४ )

‘दत्तैवापहृतं द्रव्यं धनिकस्याभ्युपायतः ।

प्रायश्चित्तं ततः कुर्यात्कल्मषस्यापन्नतये ॥’

१ शुद्धमध्यमद्रव्याण्युक्तानि नारदेन—( १।४।१३-१५ ) मृद्भाण्डासन-  
खट्वास्थिदारुचर्मतृणादि यत् । फलं चान्यकृतान्नं च शुद्धद्रव्यमुदाहृतम् । मध्यम-  
द्रव्यस्य वक्ष्यते । उत्तमस्य तृक्मेव ।



अत्र विशेषमाह मनुः—( ११।१६४ )

‘ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये । ’ इति ।

तद्ब्रह्मं निर्यात्य स्वामिने दत्त्वा शुद्धये प्रायश्चित्तयोग्यत्वार्थमित्यर्थः ।

अत एव भविष्ये—

‘ तन्निर्यात्येति वाक्यं तु प्रवदन्ति मनीषिणः ।

तत्पूर्वं चैव योग्यस्य सूचकं नात्र संशयः ॥ ’

—तत्पूर्वं प्रातिस्विकप्रायश्चित्तात् पूर्वम् । योग्यस्येति भावप्रधानो निर्देशः, योग्यत्वस्येत्यर्थः । केचित्तु—सुवर्णपरिमाणादूनं चोरितं धनं स्वामिने दत्त्वा स्वशुद्धये सान्तपनकृच्छ्रं कुर्यादिति मानवीयस्यार्थः । तच्छब्देन सुवर्णमितं पूर्वं ततो न्यूनं योग्यस्य शुद्धेः कारकमिति तु भविष्यस्यार्थ इत्याहुः । सुवर्णस्तेये तु एकादशांशाधिकं चोरितं धनं स्वामिने देयम् ।

तथा च मिताक्षरायाम्—

‘ स्तेये ब्रह्मस्वभूतस्य सुवर्णादेः कृते पुनः ।

स्वामिनेऽपहृतं देयं हर्त्रा त्वेकादशाधिकम् ॥ ’

लघुविष्णुः—

‘ स्तेये ब्रह्मस्वभूते तु सुवर्णहरणे कृते ।

पश्चात्तेनैव दातव्यं तस्मै हेकादशाधिकम् ।

गुणसंशुद्धिभावाय ततश्चांद्रायणत्रयम् ।

संबत्सरेण दातव्यं निपुणां शुद्धिमिच्छता ॥

अभावे कांचनस्य स्याद्भूतमेतच्चतुर्गुणम् ।

चरेद्यतात्मा निःसंगः पूर्णं वर्षचतुष्टयम् ॥

समाप्ते कांचनं गाश्च रजतं चापि शक्तितः ।

देयमन्नं द्विजान्येभ्यः शुभं पापोपशान्तये ॥ ’ इति ।

—गुणसंशुद्धिरात्मशुद्धिः । चांद्रायणत्रयमिति यवमृष्यादीनि त्रीणि चांद्रायणानि वत्सरमभ्यसेदित्यर्थः । इदं च दोषप्रायश्चित्तादिकं रसवेधा-  
द्यापादितसुवर्णसादृश्ये ताम्रादौ न भवति; सुवर्णत्वजातिसमवायाभावात् ।

अथ सुवर्णस्तेयसमेषु मनुः—( ११।५७ )

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ।

भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ ’



स्मृत्यन्तरे- ( मनुः ८।३२३ )

‘पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।  
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥’

याज्ञवल्क्यः- ( ३।२३० )

‘अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधनुहरणं तथा ।

निक्षेपस्य च सर्वस्य सुवर्णस्तेयसंमितम् ॥’

मनुष्यग्रहणेनैव सिद्धे स्त्रीपदं षड्व्यावृत्त्यर्थम् ।

विष्णुः-(३६।३) ‘ब्राह्मणभूहरणं सुवर्णस्तेयसमम् ।’ इति ।

अत्र षड्वदमित्युक्तं परिभाषायाम् ( पृ. १४ ) ।

अल्पमूल्यरत्नादौ तु चतुर्विंशतिमते-

‘रत्नानां हरणे विप्रश्चरेच्चांद्रायणत्रयम् ।’ इति ।

मनुरपि- ( ११।१६७ )

‘मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।

अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कृणान्नता ॥’

स पक्व- ( ११।१६३ )

‘मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्थ च ।

वापीकूपतडागानां शुद्धिश्चांद्रायणं स्मृतम् ॥’ इति ।

-मनुष्यो दासः । स्त्री दासी ।

स्मृत्यन्तरे-

‘रूप्यं हत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चांद्रायणत्रयम् ।

गद्याणदशकादूर्ध्वमाशताद्विगुणं चरेत् ॥

आसहस्राच्च त्रिगुणमूर्ध्वं हेमविधिः स्मृतः ।’ इति ।

-गद्याणो गुर्जरदेशे प्रसिद्धः । रत्नताम्रायः कांस्यमनुष्यापहारेष्वपि प्रायश्चित्तेयत्तार्थमियमेव मूल्येयत्ता ज्ञेया ।

मनुः-( ११।१६२ )

‘धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्विजोत्तमः ।

सजातीयगृहादेव कृच्छ्राव्देन विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

१ चतुर्विंशतिमते. मि.

१३



स्मृत्यन्तरे—‘अष्टापद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य, द्विगुणोत्तराणीतरेषाम्,’ इति ।

—किल्बिषं दंडः । स शूद्रस्यापह्नियमाणद्रव्यादष्टगुणः । विदूक्षत्र-  
निपाणां तु षोडशद्वाविंशचतुःषष्टिगुण इत्यर्थः ।

अथ एव प्रतुः—( ८।३३८ )

‘अष्टापद्यं हि शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ।

षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य तु ॥

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत् ।’

शंखः—( १७।१५ )

‘तथा धनस्यापहारे मेणीनां रजतस्य च ।

धान्यापहरणे चैव कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥’ इति ।

इदं च दशकुंभधान्ये तन्मूल्ये च धनादावपहृते ज्ञेयम् ।

‘धान्यं दशभ्यः कुंभेभ्यो हरतोऽभ्यधिके वधः ।’

( ८।३२१ ) इति मनूक्तेः ।

कुंभमाह कात्यायनः—

‘दशद्रोणा भवेत्खारी कुंभोऽपि द्रोणविंशतिः ।’ इति ।

द्रोणस्तु—

‘पलं च कुडवः प्रस्थ आढको द्रोण एव च

धान्यमानेषु विज्ञेयाः क्रमशोऽमी चतुर्गुणाः ॥’

इत्येवं क्रमाज्ज्ञेयः ।

यत्तु जावालः—

‘पक्वान्नमौषधं तैलं शय्यावास उपानहौ ।

कांस्यायस्ताम्रसीसं वा अर्द्धं कृच्छ्रार्द्धमेव च ॥

उदके फलमूलेषु पुष्पपर्णसुगंधिषु ।

सृङ्गादमधुमांसेषु संतोष्य स्वामिनं ततः ॥

षापं निवेद्य विप्रेभ्यः प्रायश्चित्तेन युज्यते ।’ इति ।

—कृच्छ्रार्द्धं पादमित्यर्थः । तदधिकपरिमाणगुडादिविषयम् ।



जाबालः—

‘मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।

अथःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणाजला ॥’ इति ।

द्वादशगुणप्रायश्चित्तदर्शनात् तन्मूल्याद्द्वादशगुणमूल्यमणिमुक्ताद्यप-  
हार इदम् ।

यत्तु विष्णुः— ‘रजतश्च गोभूमिकन्यानां सकृद्वरणे चांद्रायणम् ।’  
इति; तत्किंचिदधिकविषयम् ।

मनुः—( ११।१६८ )

‘कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ।

पक्षिगंधावधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥’ इति ।

—कीटजाः पट्टादयः ।

देवद्विजद्रव्यापहारे सुमंतुः—‘देवद्विजद्रव्यहर्ताऽऽपु निमग्नोऽघसर्पणमा-  
वर्त्तयेत्’ इति । अत्र संवत्सरप्रक्रमान्तावत्कालीनावृत्तिज्ञेया ।

स्तेयप्रसंगाद्द्रव्यच्छेदे प्रायश्चित्तमाह शंखः—( १७।१३-१४ )

‘यस्य यस्य तु वर्णस्य वृत्त्युच्छेदं समाचरेत् ।

तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

अपहत्य तु वर्णानां विप्रो भूमिं प्रमादतः ।

प्रायश्चित्तं वधे प्रोक्तं ब्राह्मणानुमते चरेत् ॥’ इति ।

—एतच्च वृत्त्यहंभूम्यपहारे ज्ञेयम् । अत्र चापहारशब्दस्य  
बलाद्ब्रह्मानपूर्वं परस्वादानवाचित्वात्प्रमादत इति शास्त्रार्थपरिज्ञान-  
परम् । अत्रोभयत्र वधनिमित्तकप्रायश्चित्तातिदेशात्पादोनम् । तत्र  
कामे कामोक्तस्य, अकामे त्वकामस्योक्तेति ।

स्तेयापवादमाह शंखः—

‘अस्तेयमग्नये काष्ठमस्तेयं च तृणं गवे ।

कन्याहरणमस्तेयं यो हरत्यनलंकृताम् ॥’ इति ।

कन्याहरणं राक्षसविवाहपरम् ।

१ तत्र कलियुगातिरिक्तयुगे बोध्यम्, कलौ तन्निषेधात् । प्रा. सु.



मनुरपि- ( ८।३४२ )

‘ द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्विविक्षू द्वे च मूलके ।  
आददानः परक्षेत्राजं दंडं दातुमर्हति ॥ ’

तथा-

‘ चणकव्रीहिनीधूमयवानां मुद्रमाषयोः ।  
अनिषिद्धैर्गृहीतव्यो मुष्टिरेकः पथि स्थितैः ॥  
तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्रता ।  
अश्वस्तनविधानेन हर्त्तव्यं हीनकर्मणः ॥’ (म. ११।१६) इति ।  
इति भट्टनीलकण्ठकृते प्रायश्चित्तमयूखे स्तेयप्रायश्चित्तानि ।

### अथागम्यागमनप्रायश्चित्तानि ।

तत्र गुरुतल्पे शङ्खः- ( १७।१-३ )

‘ अथःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ।  
एककालं समश्रन्वै वर्षे तु द्वादशे गते ॥  
रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।  
ब्रतेनैतेन शुद्धयन्ति महापातकिनस्त्वमे ॥ ’ इति ।

-गुरुतल्पगो गुरुभार्यागामी । गुरुः पिता ।

अत एव संवर्त्तः- ( १६५ )

‘ पितृदारान्समारुह्य मातृवर्जं नराधमः ।

भगिनीं च निजां गत्वा निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ’ इति ।

- निष्कृतिर्ब्रतरूपा । मरणरूपा त्वस्त्येव,

‘ पितृभार्या तु विज्ञाय मातृवर्जं नराधमः ।

जननीं वाऽप्यविज्ञाय नामृतः शुद्धिमाप्नुयात् ’ ॥

इति षट्त्रिंशन्मतात् ।

अत्र जननीगमनं न महापातकं किन्त्वतिपातकम् । ‘ मातृगमनं  
दुहितृगमनं स्नुषागमनम् ’ इत्यतिपातकानि । इति विष्णुक्तेः (३४।१);  
‘ मातृ-दुहितृ-भगिनी-स्नुषागमनान्यतिपातकानि ’ इति भवदेवीये  
बृहदारण्यकोक्तेश्च ।

एतेन गुरुश्चासावङ्गनेति कर्मधारयेण ‘ जननीगमनं महापापम् ’ इति  
भवदेवीक्तिरपास्ता ।



यत्तु शूलपाणिः—

‘आचार्यस्तु पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः ।

मातुलः श्वशुरस्त्राता भ्रातामहपितामहौ ॥

वर्णश्रेष्ठः पितृव्यश्च पुंस्येते गुरवो मताः ।’

इति देवलोक्तेः; ‘आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणाम्’ इति गौतमोक्तेः  
( १।१।५६ ); ‘त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति माता पिता आचार्यश्च’  
( ३।१।१-२ ) इति विष्णूक्तेश्चाचार्यादिपत्नीगमनमपि महापाप-  
मित्याह; तन्न;

आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतत्त्वगमनः ।’ (याज्ञ.३।२३३)

इत्याचार्यादिपत्नीषु गुरुतत्त्वातिदेशविरोधात् । न चातिदेशो हीन-  
वर्णपत्नीपरः, मानाभावान् । देवलादिवचांसि त्वाचार्यादीनां पूज्यत्व-  
पराणि । कथं च ‘गुरोश्चालीकनिर्बन्धः’ ( म. १।१।५५ ) इत्यत्र  
गुरुपदं केवलपितृपरम्, अत्र त्वाचार्यादिपरमिति विरुद्धं शूलपाणेर्वचः  
श्रद्धेयम् ?

प्रायश्चित्तान्तरमाहाङ्गिराः— ( ६।१३ )

‘महाव्रतं चरेद्वाऽपि दद्यात्सर्वस्वमेव वा ।’ इति ।

व्यभिचारितायां सवर्णार्यां मातरि सकृद्गमने तु योगी— ( ३।२६० )

‘चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसन्वेदसंहिताम् ।’ इति ।

गर्भोत्पत्तौ तु एतान्येव प्रायश्चित्तानि द्विगुणानि ।

‘गमने यद्गतं प्रोक्तं गर्भे तद्द्विगुणं भवेत् ।’ ( १।३७ )

इत्युशनोवाक्यात् गमनावृत्तावपि प्रायश्चित्तावृत्तिः ।

कामतो जनन्यतिरिक्तगुरुभार्यागमने तु याज्ञवल्क्यः— ( ३।२।५९ )

‘तप्तेऽयःशयने सार्द्धमायस्या योषिता स्वपेत् ।’

—तप्ते शरीरदाहक्षमे ।

मनुरपि— ( १।१।१०४ )

‘स्वयं वा शिश्रुवृषणानुत्कृत्याधाय चांजलौ ।

नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानीपातादजिह्वागः ॥’ इति ।

—आतिष्ठेद्गच्छेत् । निपातो मरणम् । अयमेव च दंडः;



‘आसामन्यतमां गच्छन् गुरुतल्पग उच्यते ।

शिश्रत्योत्कर्तनात्तत्र नान्यो दंडो विधीयते ॥’

( १२।७५ ) इति नारदोक्तेः ।

जनन्यामकामतोऽपि गमने एतदेव मरणांतं प्रायश्चित्तद्वयं बोध्यम् ।

जनन्यां कामतस्तु वसिष्ठः—( २०।४६ ) ‘निष्कालको वा घृताक्तो गोमयामिना पादप्रभृत्यात्मानमवदाहयेत्’ इति । अभ्यासे गर्भोत्पत्तौ चेदमेव, अन्यानुक्तेः । एतानि च प्रायश्चित्तान्यौरसपुत्रस्यैव । दत्तका-दीनां न्यूनं कल्प्यमिति निबंधकृतः । जनन्यां कामतः प्रवृत्तस्य रेतः—सेकादवाङ्मिथुनौ द्वादशाब्दम् । अकामतः षडब्दम् । तत्सपत्न्यां कामतः षडब्दम् । अकामतस्तदर्द्धमित्यादि कल्प्यम् ।

शूद्रस्य विप्रागमने तु प्रचेताः—

‘शूद्रस्य ब्राह्मणीं मोहाद्गच्छतः शुद्धिभिच्छतः ।

पूर्णमेव व्रतं देयं माता यस्माद्धि तस्य सा ॥’

इति गुरुपभुक्तास्वपि साधारणस्त्रीषु गमने गुरुतल्पदोषो नास्ती-  
त्याह व्याघ्रपादः—

‘जात्युक्तं पारदार्यं च कन्यादूषणमेव च ।

साधारणस्त्रियो नास्ति गुरुतल्पत्वमेव च ॥’ इति ।

—साधारणस्त्री वेद्या ।

अथ भगिन्यादिगमने मनुः—( ११।५८ )

‘रेतःसेकः कुमारीषु स्वयोनिष्वंत्यजासु च ।

सल्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥’ इति ।

—स्वयोनिर्भगिनी । कुमारी उत्तमजावीया कन्या ।

‘सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः ।

दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां बधस्तथा ॥’ ( बा. २।२८८ )

इति तत्रैव दंडविशेषोक्तेः ।

१ काशरस्यवस्थिता अलकाः केशाः कालकाः । निर्गताः कालकाः यस्मादसौ निष्कालकः, मुण्डितशिरा इत्यर्थः—मां । निष्कालक इति निर्गतकेशदमधुलोमा-  
भिधीयते ।—मि. ।



याज्ञवल्क्यः— ( ३।२३१ )

‘ सखिभार्यकुमारीषु स्वयोनिष्वन्यजासु च ।  
सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतत्त्वसमं स्मृतम् ॥ ’ इति ।

अन्त्यावसायिन आह मध्यमांगिराः—

‘ चंडालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहकस्तथा ।  
मगधायोगवौ चैव सप्तैतेऽत्यावसायिनः ॥ ’ इति ।

चंडालादीनाह याज्ञवल्क्यः— ( १।९३-९४ )

‘ ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा ।  
शूद्राज्जातस्तु चंडालः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥  
क्षत्रिया मागधं वैश्या शूद्राक्षत्तारमेव च ।  
शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ॥ ’ इति ।

विष्णुः— ( ३६।४-६ ) ‘ पितृव्यमातामहमातुलपत्न्यभिगमनं गुरु-  
द्वारगमनसमम् । पितृष्वसृमातृष्वसृस्वसृगमनं श्रोत्रियत्विगुपाध्याय-  
मित्रपत्न्यभिगमनं च ’ इति । अत्र साम्यातिदेशादद्वै प्रायश्चित्तमित्युक्तं  
परिभाषायाम् ( पृ. १४ पं. ४ ) ।

याज्ञवल्क्यः ( ३।२३२, ३३३ )

‘ पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्तुषामपि ।  
मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यव्रतनयां तथा ॥  
आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतत्त्वगः । ’ इति ।

मातुः सपत्नी हीनवर्णा; समोत्तमवर्णागमनस्य गुरुतत्त्वोक्तेः ।

नारदः— ( १२।७३-७५ )

‘ माता मातृष्वसा श्वभ्रूमातुलानी पितृष्वसा ।  
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्तुषा ॥  
उहिताऽऽचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता ।

‘ श्वपचस्तुक्तः सुतसंहितायाम्— ‘ द्विजोत्सवायां चण्डालाद्यः पुमाश्चायते  
शुचि । श्वपचः स तु विज्ञेयः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ’ ( १।१२।३६ ) इति



राज्ञी प्रव्रजिता साध्वी धात्री वर्णोत्तमा च या ॥

आसामन्यतमा गच्छन्गुरुतरुपग उच्यते ॥ ' इति ।

—राज्ञी अभिषिक्तश्चत्रियपत्नी । क्षत्रियांतरपत्न्यां लघुप्रायश्चित्तस्य  
वक्ष्यमाणत्वात् । मातृग्रहणं दृष्टान्तार्थम् । अत्र च ताद्रूप्यातिदेशेऽति-  
दिश्यमानं प्रायश्चित्तं पादोनं भवतीति व्युदपादि परिभाषायामेव  
( पू. १४ पं. ४ ) । तच्चाकामत एकरात्रादूर्ध्वं अत्यन्ताभ्यासविषयम् ।

अत्रैव कामतोऽत्यन्ताभ्यासे तु बृहद्यमः— ( ५४१ )

' रेतः सिक्त्वा कुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च ।

सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते ॥ ' इति ।

चण्डाल्यादीनां कामाकामयोः सकृद्रमने यमः— ( २९ )

' चण्डालपुंक्षसानां तु भुक्त्वा गत्वा च योषितम् ।

कृच्छ्राच्छमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥ ' इति ।

इदमेव च कुमार्यादिगमनेऽपि ज्ञेयम् । बृहद्यमयाज्ञवल्क्याद्यनेक-  
वचनोपात्तत्वेन तुल्यधर्मत्वात् ।

' बहूनामेकवर्माणामेकस्यापि यदुच्यते ।

सर्वेषां तद्वेत्कार्यमेकरूपा हि ते स्मृताः ॥ ' इति ।

इत्युशनःस्मृतेरिति विज्ञानेश्वरादयः ।

अकामत एकरात्राभ्यासे तु त्रैवार्षिकम् ।

तथा च मनुः— ( ११।१७८ )

' यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्विजः ।

तद्वैभ्रमुजपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ ' इति ।

वृषली चात्र चण्डालीत्यपरार्कमिताक्षराकल्पतरुभवदेवीयादिषु ।

तथा च मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरम्—

' चण्डाली बन्धकी वेश्या रजःस्था या च कन्यका ।

ऊढा या च सगोत्रा स्याद्वृषत्यः पञ्च कीर्तिताः ॥ ' इति ।

१ साध्वीति वर्णोत्तमाविशेषणम्—भवस्वामी ।

२ ' जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुंसः । ' ( म. १०।१८ )



शूद्रीति शूलपाणिः, स्मृत्यन्तरवाक्यं त्वनाकरमिति मेने । अत्र चैक-  
रात्रेणेत्यन्तसंयोगवाचिन्या तृतीययाऽभ्यासोऽवगम्यते । कामत एक-  
रात्राभ्यासे तु द्विगुणम् ।

माधवीये व्याघ्रः—

‘आश्रितस्यापि विदुष आहिताग्रेष्व योषितः ।  
आचार्यस्य च राज्ञश्च भार्या प्रव्रजितां तथा ॥  
धात्रीं पुत्रीं च पौत्रीं च सखीं मातुस्तथैव च ।  
पितुः सखीं तथा गत्वा गुरुतत्पत्रतं चरेत् ॥’

एकरात्रादूर्ध्वं कामतोऽत्यन्ताभ्यासपरमिदम् ।

अस्मिन्नेव विषये मनुः— ( २१।१७५ )

‘चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।  
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥’ इति ।

अत्राज्ञानान्नवाब्दम् । ज्ञानतो मरणम् ।

‘जनन्यां च भगिन्यां च स्वसुतायां तथैव च ।  
स्नुषायां गमनं चैव विज्ञेयमतिपातकम् ॥  
अतिपातकिनस्त्वेते प्रविशेयुर्दुःताशनम् ।  
न ह्यन्या निष्कृतिस्तेषां विद्यते हि कथञ्चन ॥’

( विष्णुः ३४।२ )

इति कात्यायनोक्तेः ।

बृहद्वारीतोऽपि— ‘मातृदुहितृभगिनीस्नुषागमनान्यतिपातकानि ।  
सद्योऽग्निप्रवेशोऽतिपातकिनाम्’ इति ।

यत्तु संवर्तः— ( १६५ )

‘मातरं यदि गच्छेत्तु स्वस्नुषां पुरुषाधमः ।  
न तस्य निष्कृतिं विद्यात्स्वकां दुहितरं तथा ॥’ इति ।

आतृभार्यागमने संवर्तः— ( १६२ )

‘पितृव्यदारगमने आतृभार्यागमे तथा ।

गुरुतत्पत्रतं कुर्यान्नान्या निष्कृतिरुच्यते ॥’ इति ।

—एतच्चाकामतो बहुकालाभ्यासविषयम् । कामतस्तु मरणान्तिकमेव ।



यत्तु याज्ञवल्क्यः— ( ३।२८७ )

‘ अनियुक्तो भ्रातृजायां गच्छन् चान्द्रायणं चरेत् । ’ इति ।

तदसर्वण्यभिचरितभ्रातृजायाविषयमिति ।

कनिष्ठभ्रातुर्भार्यागमने चतुर्विंशतिमते—

‘ भ्रातुश्चैव कनिष्ठस्य भार्या गत्वा तु कामतः ।

कृच्छ्रद्वयं सान्तपनं प्रकुर्वीताथवाऽपि वा ॥ ’ इति ।

आचार्यादिभार्यागमने जातूकर्ण्यः—

‘ आचार्यादेस्तु भार्यासु गुरुतल्पव्रतं चरेत् । ’ इति ।

आदिपदादुपाध्यायादीनां ग्रहणम् ।

यत्तु चतुर्विंशतिमते—

‘ चरेच्चान्द्रायणं विप्रो गत्वोपाध्याययोषितम् ।

आचार्यस्य पराकं तु बौधायनवचो यथा ॥ ’ इति ।

तद्व्यभिचरितोपाध्यायादिपत्नीगमनपरम् ।

यत्तु बृहद्यमः— ( अग्निपु. १७३।५३-५४ )

‘ चाण्डालीं पुष्कसीं म्लेच्छीं स्तुषां च भगिनीं सखीम् ।

मातापित्रोः स्वसारं च निक्षिप्तां शरणागताम् ॥

मातुलानीं प्रव्रजितां सगोत्रां नृपयोषितम् ।

शिष्यभार्यां गुरोर्भार्यां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ’ इति ।

यत्तु सुमन्तुः— ‘ मातृष्वस्वस्तुषाभागिनेयीगोचाण्डालीगमनेषु तप्त-  
कृच्छ्रत्रयं सान्तपनं च ’ इति ।

यश्चाङ्गिराः— ( २८ )

‘ पतितोऽत्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।

मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणमथापि वा ॥ ’ इति ।

यच्च संवर्तः— ( १७२ )

‘ चाण्डालीं पुष्कसीं म्लेच्छीं श्वपार्कीं पतितां तथा ।

एता गत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ ’

यच्च हारीतः— ‘ गुरुतल्पो मृन्मयी स्त्रीप्रतिकृतिमन्निवर्णा कृत्वा  
तामालिङ्ग्य मृत्युना पूतो भवेत् । एवमेव पितृव्यस्त्रीगमने स्वसृमातृ-



पितृष्वसृगमने कन्यासगोत्रास्वस्त्रीयाभगिनीगमने चांद्रायणं वा ' इति;  
तत्र चांद्रायणं रेतःसेकादूर्वाङ्गितौ ज्ञेयम् ।

यदपि संवर्त्तः—( १६२ )

‘ भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ।

एता गत्वा स्त्रियो मोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

कुमारीगमने चैव व्रतमेतद्विनिर्दिशेत् । ’

तथा—( १६०—१५९ )

‘ गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च ।

तस्या दुहितरं चैव चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥

मातुलस्य सुतां गत्वा मातुलानीं सनाभिनीम् ।

एता गत्वा स्त्रियो मोहात्पराकेण विशुद्धयति ॥ ’ इति ।

तद्व्यवहितपतिताभगिन्यादिगमनविषयम् ।

यत्तु विष्णुः—( ५३।५ ) ‘ चाण्डालीगमने तत्साम्यमाप्नुयात् ।

अज्ञानाच्चान्द्रायणम् । ’

यच्च गौतमः—( ३।५।३२—३३ ) ‘ चाण्डालीगमने कृच्छ्राब्दः,

अमत्या द्वादशरात्रः ’ इति ।

तत्र साम्यकृच्छ्राब्दयोर्विषय उक्तः, चांद्रायणस्यापि । अज्ञानतः  
सकृदारोहणमात्रे तु द्वादशरात्रः ।

वौधायनः—‘ मातृष्वसापितृष्वसाभागिनेयीस्तुषामातुलानीत्यगम्या-  
गमने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चांद्रायणम् ’ इति ।

संवर्त्तः—( १६४ )

‘ सखिभार्यी समारुह्य श्वश्रूं चैव हि मानवः ।

अहोरात्रोषितो भूत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं चरेत् ॥ ’

चतुर्विंशमते—

‘ मातुश्च स्वस्त्रियां गत्वा पितृव्यतनयां तथा ।

तप्तकृच्छ्रं प्रकुर्वीत षड्रात्रं तत्सुतासु च ॥

१ ‘ अन्त्यावसाभिनी ’ इति मूले ।



गुरोर्दुहितरं गत्वा पराकं च समाचरेत् ।  
 भागिनेयीं द्विजो गत्वा चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥  
 मातुलस्य सुतां गत्वा पितुश्च स्वस्त्रियां तथा ।  
 प्राजापत्यं प्रकुर्वीत हारीतवचनं यथा ॥  
 मातुश्च स्वस्त्रियां गत्वा भार्यां गत्वा तु कामतः ।  
 पितृव्यतनयां चैव सपादं कृच्छ्रमाचरेत् ॥  
 दौहित्रीं पुत्रतनयां चरेच्चांद्रायणव्रतम् ।  
 तत्सुतां तत्सुतां गत्वा पराकं तु समाचरेत् ॥  
 संबन्धिनः स्त्रियं गत्वा पादकृच्छ्रं समाचरेत् ।  
 विधवागमने कृच्छ्रमहोरात्रसमन्वितम् ॥  
 चरेच्चान्द्रायणं विप्रो गत्वोपाध्याययोषितम् ।  
 आचार्यस्य पराकं तु बौधायनवचो यथा ॥  
 सखिभार्यां समारुह्य जातिस्वजनयोषितम् ।  
 स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रपादं कुर्यात्ततः पुनः ॥  
 कुमारीगमने विप्रश्चरेच्चांद्रायणव्रतम् ।  
 पतितां तद्विजो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत् ॥ ' इति ।

बृहन्मनुः—

' स्वमातुर्मातृगमने पितृमातृगमे तथा ।  
 एतास्त्वकामतो गत्वा द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ '

संवर्त्तः— ( १५९ )

' असतीं मातुलानीं च स्वसारं चान्यमातृजाम् ।  
 एता द्विजः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ '

इत्याद्यनेकस्मृतिवचनानि संवन्धसन्निकर्षविप्रकर्षापेक्षया योजन-  
 यानि ।

वपांणीत्यनुवृत्तौ गौतमः—( ३।४।२९-३२ ) ' द्वे परदारौ । त्रीणि  
 श्रोत्रियस्य । द्रव्यलाभे वोत्सर्गः । यथास्थानं वा गमयेत् ' इति । तथा  
 ग्रहं च यनं तदुत्सृष्टव्यम्, तदीयं तत्रैव वा प्रत्यपेणीयमित्यर्थः ।



अतुलोमादिगमने व्यभिचरितक्षत्रियादिगमने च प्रायश्चित्तम् १५७

वार्षिकप्राकृतव्रतमुक्त्वा स एव—(३।४।३४) 'उपपातकेषु चैवम्' इति ।

यमः—'द्वे वर्षे परभार्यासु त्रीणि श्रोत्रियपत्नीषु' इति ।

तत्रेयं व्यवस्था—ऋतुकाले कामतो जातिमात्रब्राह्मणीगमने वार्षिकम् । तत्रैव गुणविशेषशालिन्यां द्वे वर्षे । तादृश्या एव श्रोत्रियभार्याया गमने त्रीणि वर्षाणीति । अथवा—श्रोत्रियगुणवद्ब्राह्मणक्षत्रियादिभार्याविषय-त्वेनैतानि व्यवस्थापनीयानि ।

अत एव शंखः—'वैश्यायामवकीर्णः संवत्सरं ब्रह्मचर्यं त्रिषवणं वाऽनु-तिष्ठेत् । क्षत्रियायां द्वे वर्षे, त्रीणि ब्राह्मण्याम्, वैश्यावच्च शूद्रायाम्;' इति ।

वैश्यावचेति ब्राह्मणपरिणीतायाम् । शूद्रपरिणीतायां तु षण्मासिकमेव ।

शूलपाणिस्तु—'सच्छूद्रां वैश्यवत्, असच्छूद्रां षण्मासिकम्' इत्याह । तेन क्षत्रियागमने द्विवार्षिकमेव ।

तदाह प्रजापतिः—( ३।६९ )

'विप्रो नृपस्य भार्यायां यत्करोति समागमे ।

तदेव क्षत्रियस्यापि कुर्यादत्रैव सङ्गमे ॥' इति ।

एवं क्षत्रियस्य वैश्यादिस्त्रीषु क्रमेण वार्षिकं षण्मासिकं च । एवं वैश्यस्यापि वैश्याशूद्रोर्वार्षिकषण्मासिके । शूद्रस्य शूद्रां षण्मासिकमेव ।

अनुपभुक्तागमन आपस्तम्बः—( २।२७।११-१३ ) 'सवर्णायाम-नन्यपूर्वायां सकृत्सन्निपाते पादः पतति । एवमभ्यासे पादः पादश्चतुर्थं सर्वम्' इति ।

अनुपभुक्तायां एकस्यां श्रोत्रियपत्न्यां द्वादशाब्दम् । अनन्यपूर्वाया-मित्युक्तेरेकस्यामेव चतुरभ्यासे नेदं प्रायश्चित्तं, किन्तु पादपादन्यूनं कल्पयामिति शूलपाणिविज्ञानेश्वरौ ।

व्यभिचरितक्षत्रियावैश्यागमने संवर्तः—( १५५ )

'क्षत्रियां वाऽथ वैश्यां वा गच्छेद्यः काममोहितः ।

तस्य सान्तपनं कृच्छ्रं भवेत्तत्पापमोचकम् ॥'

तत्सवर्णानुलोमविषयम् ।

यत्तु स एव—( १५७ )

'विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ।' इति;

तद्व्यभिचरितब्राह्मणीविषये ब्राह्मणस्य ।



यत्तु वसिष्ठः— ( २१।१७ ) ‘ब्राह्मणश्चेदप्रेक्षापूर्वकं ब्राह्मणद्वारा-  
भिगच्छेन्नवृत्तधर्मकर्मणः कृच्छ्रोऽनिवृत्तधर्मकर्मणोऽतिकृच्छ्रः’ इति ।

—अप्रेक्षा अज्ञानम् । निवृत्तधर्मकर्मणो दारानित्यन्वयः ।

ब्राह्मणस्य स्वैरिण्यां प्रायश्चित्तमाह यमः—

‘ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गत्वा द्विजे दद्यान्मृगाजिनम् ।

क्षत्रियायां धनुर्दद्याद्वैश्यायामायसीं शिलाम् ॥

शूद्रां गत्वा तथा विप्र उदकुम्भं द्विजातये ।

त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा दद्यात्सम्भारजनीं तथा ॥’ इति ।

अत्र ‘त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा’ इति प्रत्येकं सम्बध्यते । एतच्च  
बन्धकीविषयमित्यन्ये ।

स्वैरिण्यां प्रायश्चित्तान्तरमाह तुः शङ्खलिखितौ— ‘स्वैरिण्यां वृष-  
ल्यामवकीर्णः सचैलत्नात् उदकुम्भं ब्राह्मणाय दद्यात् । वैश्यायां चतुर्थ-  
कालाहारो ब्राह्मणान् भोजयेत् । क्षत्रियायां त्रिरात्रोपोषितो यवाढकं  
दद्यात् । ब्राह्मण्यां त्र्यहमुपोषितो घृतपात्रं दद्यात्’ इति ।

कल्पतरुकारस्तु ‘प्रकीर्णास्वेवमस्वतंत्रासु’ इति वाक्यशेषं पपाठ ।  
—प्रकीर्णा केनचिदनवरुद्धा, अस्वतंत्रा त्ववरुद्धा । तदेवं द्विविधस्वैरिणी-  
गमनेऽप्येतदेव प्रायश्चित्तमित्यर्थः ।

शूलपाणिस्तु—‘स्वैरिण्यां वृषल्यामवकीर्ण’ इत्यत्र ‘प्रसूत’ इति  
पठित्वा प्रसूत इत्यनेन स्वैरिण्यामपत्योत्पादनेऽप्येतदेव प्रायश्चित्तमि-  
त्याह । तन्न; तादृशपाठस्य कल्पतरुप्रभृतिष्वदृष्टत्वात्, गर्भोत्पादने  
द्विगुणप्रायश्चित्तस्य वक्ष्यमाणत्वाच्च ( पृ. १५९ ) ।

बन्धकीगमने तु षट्त्रिंशन्मते—

‘ब्राह्मणीं बन्धकीं गत्वा किञ्चिद्दद्याद्विजातये ।

राजण्यां च धनुर्दद्याद्वैश्यां गत्वा तु चैलकम् ॥’

शूद्रां गत्वा तु वै विप्र उदकुम्भं द्विजातये ।

दिवसोपोषितो वा स्याद्दद्याद्विप्राय भोजनम् ॥’ इति ।

—किञ्चिदष्टमुष्ट्यात्मकं धान्यम्, ‘अष्टमुष्टि भवेत्किञ्चित्’ इति  
स्मृतेः ।



प्रायश्चित्तान्तरमाह प्रचेताः— 'बन्धकीगमने उपस्पृश्य प्राणायामं कुर्यात् । ब्राह्मणबन्धकीं गत्वा कमण्डलुं दद्यात्, क्षत्रियबन्धकी-मायुधम्, वैश्यबन्धकीं प्रतोदम्' इति । अत्र त्रिषु वर्णत्रयोपादानात्प्रथमं शूद्रबन्धकीपरम् ।

स्वैरिणीबन्धक्योर्लक्षणमुक्तं स्मृत्यंतरे—( यमः ५।३७ )

'चतुर्थे स्वैरिणी प्रोक्ता पंचमे बंधकी मता ।' इति ।

महाभारतेऽपि—( १।१२३।७७ )

'अतःपरं स्वैरिणी स्यात्पंचमे बंधकी तथा ।' इति ।

यत्तु मनुः—( ३।१७ )

'शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।

जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥'

इति; तत्पापगौरवपरम् । एतानि च प्रायश्चित्तानि गर्भानुत्पत्ति-विषयाणि । तदुत्पत्तौ तु यद्विशेषे यत्प्रायश्चित्तमुक्तं, तदेव तत्र द्विगुणं कर्तव्यम् ।

तथा चोशनाः—( १।३७ )

'गमने तु व्रतं यत्स्याद्गर्भे तु द्विगुणं भवेत् ।' इति ।

आपस्तंबः—

'चांडालमेदंश्चपचकपालव्रतधारिणाम् ।

अकामतः स्त्रियं गत्वा पराकव्रतमाचरेत् ॥

कामतस्तु प्रसूतो वा तत्समो नात्र संशयः ।

स एव पुरुषस्तस्यां गर्भो भूत्वाऽभिजायते ॥' इति ।

कामतः प्रसूतो वेति—यथा कामतो द्विगुणमुक्तम्, तथा गर्भेऽपीत्यर्थः ।

चतुर्विंशतिमते तु जातिभेदेन गर्भप्रायश्चित्तविशेष उक्तः

'ब्राह्मणीगमने कृच्छं गर्भे सांतपनं स्मृतम् ।

राज्ञीगर्भे पराकः स्याद्विगर्भे तु त्र्यहाधिकम् ॥

शूद्रगर्भे द्विजः कुर्यात्तद्वृचान्द्रायणं स्मृतम् ।

चांडाल्यां गर्भमारोप्य गुरुतल्पव्रतं चरेत् ॥' इति ।

१ विप्रायां वैश्यजो वैदेहः । तस्मात् निषाद्यां मेदः—मेधातिथिः (१०।३६)



तत्रैव—‘वृषल्यामभिजातस्तु त्रीणि वर्षाणि चतुर्थकालसमये नक्तं भुंजीत’ इति । एतच्च कामतोऽत्यन्ताभ्यासेन गर्भोत्पत्तौ ।

—अभिजातः उत्पादितगर्भः ।

यत्तु हारीतः—

‘ब्राह्मणो वृषलीं गत्वा त्र्यहं भवति सूतकी ।

अथास्यां गर्भमाधत्ते ब्राह्मण्यादवकीर्यते ॥’ इति ।

तथा—

‘ब्राह्मणो वृषलीं गत्वा सद्यो गच्छेदधोगतिम् ।

अथास्यां गर्भमाधत्ते पतत्याशु न संशयः ॥’ इति ।

तदेतानि पापगौरवख्यापनपराणि ।

कण्वः—

‘प्रसूतो यस्तु वेश्यायां भैक्षमुद्धियतेन्द्रियः ।

शतं सहस्रमभ्यस्य सावित्रीमेति शुद्धताम् ॥’ इति ।

अत्र—

‘कैवर्ती रजकीं चापि वेश्यां चापि गतो नरः ।

प्राजापत्यविधानेन कृच्छ्रेणैकेन शुद्ध्यति ॥’ ( ३।११ )

इति शातातपवाक्ये वेश्यासमभिव्याहृतकैवर्त्यादिषु गर्भोत्पादे-  
ऽपीदमेव प्रायश्चित्तमिति ।

प्रातिलोम्यव्यावाये तु शंखः—

‘प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्त्तनम् ॥’ इति ।

—वधः प्रायश्चित्तं दंडश्च । नार्याः कर्णादिकर्त्तनं तु यथोक्तप्राय-  
श्चित्तमनिच्छन्त्याः ।

वधे प्रकारविशेषमाह वसिष्ठः—( २।११ ) ‘शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छे-  
द्वीरणवैष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कार-  
यित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य नग्नां कृष्णखरमारोप्य महापथमनुसंब्राजयेत्पूता  
भवतीति विज्ञायते । वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदग्नेर्वैष्टयित्वा वैश्य-  
मग्नौ प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य नग्नां  
गौरखरमारोप्य महापथमनुसंब्राजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते । राजन्य-



श्रेद्वाह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा क्षत्रियमग्नौ प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य नम्रां श्वेतखरमारोप्य महापथ-  
मनुसंभ्राजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते । एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च  
राजन्यवैश्ययोः ' इति ।

—महापथत्राजनं दंडः प्रायश्चित्तं च । पूतवोक्तेरिति मिताक्षरायाम् ।  
अपराके तु प्रायश्चित्तयोस्येति व्याख्यातम् । एतच्च कामतः, अकाम-  
नस्तु शूद्रस्य मरणवैकल्पिकचतुर्विंशत्यब्दार्द्धं द्वादशाब्दम् । शूद्रस्यैव  
क्षत्रियावैश्ययोर्नववार्षिकषड्वार्षिके वा

यत्तु वृद्धप्रचेताः—

‘ शूद्रस्य ब्राह्मणीं मोहाद्गच्छतः शुद्धिमिच्छतः ।

पूर्णमेतद्भूतं देयं माता यस्माद्धि तस्य सा ॥

पादहान्यान्यवर्णासु गच्छतः सार्ववर्णिकम् ।

प्रायश्चित्तमिदं देयमगम्यागमने कमात् ॥ ’

एतद्दिशा वैश्यस्याज्ञानतो विप्रागमने नवाब्दम् । क्षत्रियस्य तु  
षडब्दम् । एवमेव शूद्रपाणिरपि ।

यत्तु माधवीये संवर्तः—( १६९ )

‘ कथंचिद्ब्राह्मणीं गच्छेत् क्षत्रियो वैश्य एव वा ।

गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ ’

इति; तदत्यंतव्यभिचारितायामकामतो गमने ज्ञेयम् ।

मिताक्षरायां त्वाद्यश्लोकोत्तरार्द्धमेवम्—

‘ कृच्छ्रं सांतपनं वा स्यात्प्रायश्चित्तं विशुद्धये । ’ इति ।

रजस्वलागमने प्रायश्चित्तमाह योगी—( ३१८७ )

‘ त्रिरात्रांते घृतं प्राश्य गत्वोदक्यां विशुद्ध्यति । ’

त्रिरात्रोपवासांत इत्यर्थः । इदमकामतः सकृद्रतौ ।

अत्रैव कल्पतगौ शंखलिखितौ—‘ रजस्वलाव्यूताभिगमने त्रिरात्रोप-  
वासो गुडप्राशनं च । ’

१ पूता प्रायश्चित्तयोग्या भवतीत्यर्थः । इति ।



कामतः सकृद्गमने शातातपः—(२६) 'रजस्वलागमने सप्तरात्रम्' इति ।  
यत्तु वसिष्ठः—( २३।३ ) 'रजस्वलाव्यवाये शुक्लमृषभं दद्यात्कृष्ण-  
पिङ्गलम्' इति ।

यदप्यापस्तंबः—( ९।३८ )

'उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ।

प्राजापत्येन शुद्धयेच्च ब्राह्मणानां च भोजनात् ॥'

इति; तदकामतोऽभ्यासे, कामतः सकृद्गतौ च ।

कामतोऽत्यंतानवच्छिन्नाभ्यासे तु शंखः—( १७।९ )

'पादं तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ।' इति ।

कामतोऽभ्यासमात्रे तु संवर्त्तः—( १६७ )

'रजस्वलां तु यो गच्छेद्भूमिर्णो पतितां तथा ।

तस्य पापस्य शुद्धयर्थमतिकृच्छ्रं विशोधनम् ॥' इति ।

दिनभेदात्प्रायश्चित्तविशेषश्चतुर्विंशतिमते—

'रजस्वलां तु यो गच्छेत्पराकं तु समाचरेत् ।

सांतापनं द्वितीयेऽहि प्राजापत्यं परेऽहनि ॥' इति ।

—'सांतापनो महासांतापन' इति मदनपारिजाते ।

यत्तु माधवीये शातातपः—(१३) 'अनुदकमूत्रपुरीषकरणे श्रंपाकस्पर्शे  
सचैल्लानं महाव्याहृतिहोमश्च । रजस्वलागमने चैतदेव ।' इति;  
तदकामतः प्रवृत्तस्य रेतःसेकादवीङ्गितौ बोध्यम् । कामतस्त्वैतदेव  
द्विगुणम् ।

यत्तु विष्णुना—( ३६।७ ) 'स्वसुः सख्याः सगोत्राया उत्तमवर्णाया  
रजस्वलायाः शरणागतायाः प्रव्रजिताया निक्षिप्तायाश्च गमनमित्ये-  
तान्यनुपातकानि' इत्यनेन रजस्वलागमने अनुपातकप्रायश्चित्तमुक्तम्;  
तच्छ्रोत्रियपत्न्यां कामतोऽत्यंतानवच्छिन्नाभ्यासविषयम् । एतानि च  
रजस्वलान्तर्वर्त्यादिगमनप्रायश्चित्तानि स्वपत्न्यामेव । परपत्न्यां तु

१ चान्द्रायणेन ।— मू. पा.

२ 'क्षुर्जातस्तयोप्रायां श्रंपाक इति कीर्त्यते ।' ( म. १०।१९ )



सादृश्यां पारदार्यप्रायश्चित्तैर्विजातीयैः समुचीयन्ते । साजात्ये तु  
अधिकेन न्यूनस्य प्रसंगसिद्धिः । साम्ये तु तन्त्रमिति । एवं विधवा-  
दिगमनेऽपि योज्यम् ।

तत्र प्रायश्चित्तं चतुर्विंशतिमते-

‘विधवागमने कृच्छ्रमहोरात्रसमन्वितम् ।

व्रतस्थागमने कृच्छ्रं सपादं तु समाचरेत् ॥’

अर्थात्यजागमनप्रायश्चित्तम् ।

आपस्तम्बः—( अत्रिः ६।१६—यमः ३३ )

‘रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च

कैवर्त्तमेदमिहोऽथ सप्तैते त्वन्त्यजाः स्मृताः ॥’

चूहत्संवर्त्तः—( १।२७ )

‘रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनीः ।

एतास्तु ब्राह्मणो गत्वा चरेच्चांद्रायणद्वयम् ॥’ इति ।

आपस्तम्बः—( २।२६ )

‘ब्लेच्छी नटी चर्मकारी रजकी बुरुडी तथा ।

एतासु गमनं कृत्वा चरेच्चांद्रायणद्वयम् ॥’ इति ।

१ ‘तीवरेण च चाण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह ।’ ( ब्र.वै. १।१०।१०३ )  
इति, ‘आयोगवेन ब्राह्मण्यां चर्मकारः प्रजायते ।’ (सू. सं. १।१२।४०) इति  
चोक्तश्चर्मकारः । ‘मल्लोऽपि पिच्छलस्तेन नटाख्यो जायते भुवि ।’ (सू. सं. १।१२।४२)  
इत्येषो नटः । मनुस्तु—( १०।२२ ) ‘मल्लो मल्लश्च राजन्याद्वात्यामिच्छिविरेव  
च । नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥’ इत्यन्यथा नटमाह । ‘एतान्येकस्यैव  
नामानि’ इति कुल्लुकः । बुरुडः—‘कर्मचण्डालकात्पुत्रं वैदेही पाण्डुशोपकम् । लेभे  
बुरुडजातित्वं सदा वंशविदारणम् ॥’ ( शू. क. ) इति वर्णितः । शूलपाणिस्तु-  
बुरुड इति पठित्वा कोष्ठभूर इति प्रसिद्ध इति व्याचख्यौ । कैवर्त्तः—‘क्षत्र-  
वीर्येण वैश्यायां कैवर्त्तः परिकीर्तितः ।’ ( ब्र. वै. १।१०।१११ ) इति, ‘निषादो  
मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् । कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यवर्तनिवासिनः ॥’  
( म. १०।३४ ) इति चोक्तः । भिल्लः—‘कारावारी यदा नारी धीवराज्जनये-  
त्सुतम् । स भिल्लसंज्ञः कथितः कन्दमूलादिजीवनः ॥’ ( जा. भा. ) भिल्लो  
गण्डवारः—शू. पा.



इदं च विप्रस्य कामतः सकृद्रमने । क्षत्रियादेस्तु पादपादहीनं करण्यम् ।  
यत्तु संवर्तः—( १५४ )

‘ रजकव्याधशैलपवेणुचर्मोपजीविनाम् ।

स्त्रियो विप्रो यदा गच्छेत्कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ॥ ’

इति; तदकामतः ।

अत्रैवाहापस्तंबः—

‘ चंडालमेदश्चपचकपालव्रतचारिणाम् ।

अकामतः स्त्रियो गत्वा पराकव्रतमाचरेत् ॥ ’ इति ।

यत्तूशनाः—( यमः ५।१२ )

‘ कापालिकान्नभोक्तृणां तन्नारीगामिनां तथा ।

ज्ञानात्कृच्छ्राब्दमुद्दिष्टमज्ञानादैर्द्वयम् ॥ ’

तत्कामतोऽभ्यासे ।

यत्तु शातातपः—( ३।११ )

‘ कैवर्ती रजकीं चैव वेणुचर्मोपजीविनीम् ।

प्राजापत्यविधानेन कृच्छ्रेणैकेन शुद्ध्यति ॥ ’

इति; तच्छूद्रपरम् ।

अस्मिन्नेव विषये द्विस्त्रिगमनाभ्यासे हारीतः—

‘ कैवर्ती ध्वजिनी चैव याश्चान्या अन्त्यसंभवाः ।

कामतस्तु वसन्विप्र एतानेव समाचरेत् ॥

द्वौ मासौ भैक्ष्यभक्षेण द्वौ मासौ यवयावकैः ।

द्वौ मासौ पंचगव्येन षण्मासांश्चरितव्रतः ॥

एवं शुद्धिमवाप्नोति प्रायश्चित्तानुरोधतः । ’ इति ॥

१ गच्छन्निति शेषः ।—मा.

२ तद्वेतः सेकात्प्राद्विद्वत्तिविषयम् ।—मा.

३ ध्वजी ध्वजनिर्माणोपजीवी अम्बष्ठः, ‘ वैश्यायां विधिना विप्राज्जातो ह्यम्बष्ठ उच्यते । कृष्याजीवो भवेत्तस्य तथैवाग्नेयनर्तकः ॥ ध्वजविश्राविका वापि अम्बष्ठः शस्त्रजीविनः ’ ( औ. ३।१-३।२ ) इत्युक्तेः । तत्स्त्री ध्वजिनी । ‘ ध्वजी सुराविक्रयो ’ ( अप. १।४१ ) तस्य स्त्री वा ।



ये त्वन्त्यावसायिनश्चांडालादयस्तेषां स्त्रीगमने गुरुप्रायश्चित्तमुक्तं गुरुतल्पातिदेशे । एतासां च रजकाद्यंत्यजस्त्रीणां मध्ये यदेकस्या व्यवाये प्रायश्चित्तमभिहितं, तत्सदृशत्वात्सर्वासु भवति ।

तथा चोशनाः—

‘बहूनामेकवर्माणामेकस्यापि यदुच्यते ।

सर्वेषां तद्वेत्कार्यमेकरूपा हि ते स्मृताः ॥’ इति ।

एतासु गर्भोत्पत्तौ तु विशेष उक्त उशनसा—

‘चांडाल्यां गर्भमारोप्य गुरुतल्पव्रतं चरेत् ।’ इति ।

एतच्च व्रतातिदेशाज्जवाब्दम् । तच्चाकामतः ।

कामतः पुनरापस्तंबः—

‘अंत्यजायां प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ।

निर्वासनं कृतांकस्य तस्य कार्यमसंशयम् ॥’ इति ।

अथ स्त्रीणां व्यभिचारे प्रायश्चित्तम् ।

मनुः—( ११।१७६ )

‘यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ।’ इति ।

एतच्च वाचनिकातिदेशात्पादोनमिति केचित् । पूर्णमेव तु युक्तम् ।

तथा च बृहस्पतिः—

‘यत्पुंसः परदारेषु समानेषु विधीयते ।

व्यभिचारेऽपि भर्तुः स्त्री तदशेषं समापयेत् ॥’ इति ।

समानेष्वित्यनुलोमानामप्युपलक्षणार्थम् । तच्च प्रातिलोम्यव्यवायव्या-  
वृत्त्यर्थम्, तत्र गुरुप्रायश्चित्तोक्तेः । भर्तुः पुंसः । अव्यवस्थितकल्पना  
त्वन्याय्यैवेति । अतश्च सवर्णानुलोमव्यवाये स्त्रीपुंसयोरौत्सर्गिकं तुल्यं  
प्रायश्चित्तम् ।

तस्य कचिदपवादः, तथा च संबर्त्तः—

‘बलात्प्रमथ्य भुक्ता चेद्दह्यमानेन चेतसा ।

प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्तत्तस्याः पावनं परम् ॥’ इति ।



पराशरोऽपि—( १०।२६-अत्रिः ६।१८ )

‘सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छंती पापकर्मभिः ।  
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन वा ॥’ इति ।

बृहस्पतिरपि—

‘अनिच्छती तु या भुक्ता गुप्तां वा कारयेद्बृह ।  
मलिनांगीमथः शय्यां पिंडमात्रोजीविनीम् ॥  
कारयेन्निष्कृतिं कृच्छ्रं पराकं वा समं गताम् ।  
हीनवर्णोपभुक्ता या त्याज्या बंध्याऽपि वा भवेत् ॥’ इति ।

—समं समानजातीयम् । अत्र सकृदुपगमे कृच्छ्रः, द्विरभ्यासे पराकः, अभ्यासे तु चांद्रायणम् ।

तदाहोशनाः—‘व्यभिचारिणीं भार्यां कुचैर्लपिंडगुप्तां निवृत्ताधि-  
कारां चांद्रायणं पराकं प्राजापत्यं ( वा ) चारयेत् ।’ इति ।

मनुः—( ११।१७७ )

‘सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सहशेनोपयंत्रिता ।  
कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तदाऽस्याः पापशोधनम् ॥’ इति ।  
इदं चाकामतः, कामतस्तु द्विगुणम् ।

यत्तु ऋष्यशृंगः—

‘बलेन कामिता नारी सवर्णेन कथंचन ।  
प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं वै तस्याः शुद्ध्यर्थमादिशेत् ॥’ इति ।

तद्व्रतःसेकात्प्राङ्निवृत्तौ द्रष्टव्यम् ।

पराशरोऽपि—( १०।२४ )

‘बन्दिप्राहेण या भुक्ता हत्वा बध्वा बलाद्धयात् ।  
कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं शुद्ध्येत्पाराशरोऽब्रवीत् ॥’

इच्छया प्रवृत्तौ तु तस्याः पुंस्तुल्यमेव प्रायश्चित्तम् ।

१ वधोऽत्र नासाकर्णच्छेदो न तु देहात्मवियोगः, तादृशवधस्य निषेधात् ।—प्रा.मु.  
२ प्रासादमाख्य प्रेक्षते, इत्यस्मिन्नर्थे ‘प्रासादात्प्रेक्षते’ इति यथा पञ्चमी;  
तथा भयमुत्पाद्येत्यस्मिन्नर्थे ‘भयात्’ इति पञ्चमी द्रष्टव्या ।—मा.



तदाह तुः शंखलिखितौ—‘ इच्छया व्यभिचारिणीं परदारेषु पुंसो विहितमेनां चारयेत् ’ इति ।

अंगिराः—

‘ व्रतं यच्चोदितं पुंसां पतितस्त्रीनिषेवणात् ।

तच्चापि कारयेन्मृदां पतितासेवनात्स्त्रियम् ॥ ’ इति ।

आसेवनादिति छेदः । एतच्च कामतः ।

अकामतस्त्वाह संवर्तः—( १६८—६९ )

‘ ब्राह्मण्यकामाद्रुच्छेत्क्षत्रियं वैश्यमेव च ।

गोमूत्रयावकैर्मासात्तदुद्धाच्च विशुद्ध्यति ॥

ब्राह्मण्याः शूद्रसंपर्के कथंचित्समुपागते ।

चांद्रायणेन शुद्धिः स्यात्तत्तस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ’ इति ।

शूलपाणिस्तु — ‘ अनिच्छतीविषयमेतदिति । मासादिति वैश्ये, क्षत्रिये त्वर्द्धम् ’ इति ।

षट्त्रिंशन्मतेऽपि— ‘ ब्राह्मणीक्षत्रियवैश्यसेवायामतिकृच्छ्रं कृच्छ्राति-  
कृच्छ्रौ चरेत् । क्षत्रिययोषितो ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्राद्धं  
प्राजापत्यमतिकृच्छ्रं च । वैश्ययोषितो ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां  
कृच्छ्रपादं कृच्छ्राद्धं प्राजापत्यं च । शूद्रायाः शूद्रसेवने प्राजापत्यम् ,  
ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां त्वहोरात्रं त्रिरात्रं कृच्छ्राद्धम् ’ इति ।

बृहत्पचेताः—

‘ विप्रा शूद्रेण संयुक्ता न चेत्तस्मात्प्रसूयते ।

प्रायश्चित्तं स्मृतं तस्याः कृच्छ्रं चान्द्रायणत्रयम् ॥

चान्द्रायणे द्वे कृच्छ्रश्च विप्रायां वैश्यसङ्गमे ।

कृच्छ्रचान्द्रायणे स्यातां तस्याः क्षत्रियसङ्गमे ॥

क्षत्रियाशूद्रसम्पर्के कृच्छ्रं चान्द्रायणद्वयम् ।

चांद्रायणं सकृच्छ्रं तु चरेद्वैश्येन सङ्गता ॥

शूद्रं गत्वा चरेद्वैश्या कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम् ।

आनुलोम्येन कुर्वीत कृच्छ्रं पादावरोपितम् ॥ ’ इति ।



‘न चेत्तस्मात्प्रसूयते’ इति सर्वत्र सम्बध्यते ।

‘ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण सङ्गताः ।

अप्रजाता विशुद्ध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ॥’ (२१।१४) ।

इति वसिष्ठोक्तेः ।

—पादावरोपितं पादहान्या । शूद्र्याः शूद्रगमने यत्प्रायश्चित्तम्, तद्विप्रक्षत्रियवैश्यगमने पादार्द्धत्रिपादोनं भवति । एवं वैश्याया यद्वैश्य-गमन उक्तं, तत्क्षत्रियविप्रगमने पादोनमर्द्धं च भवति । क्षत्रियाया यत्क्षत्रियगमने तद्विप्रगमने पादोनमित्यर्थः ।

गर्भोत्पत्तौ तु चतुर्विंशतिमते—

‘विप्रगर्भे पराकः स्यात् क्षत्रियस्य तथैन्दवम् ।

ऐन्दवं च पराकं च वैश्यस्याकामकारतः ॥

शूद्रगर्भे भवेत् त्यागश्चाण्डालो जायते यतः ।

गर्भेस्त्रावे धातुदोषैश्चरेचान्द्रायणत्रयम् ॥’

एतच्च — ‘अकामकारतः’ इति विशेषणादकामतः । कामतः पुनः पराकादिद्विगुणं कुर्यात् । गर्भेस्त्रावे इति शूद्रगर्भेस्त्रावे । यदा तु सम्पूर्ण-शूद्रगर्भस्य प्रसवस्तदा प्रायश्चित्ताभावः ।

‘अप्रजाता विशुद्ध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ।’ ( २१।१४ ) इति वसिष्ठोक्तेः ।

यदा त्वाहितगर्भेन व्यभिचरति, तदा गर्भपातशङ्कया प्रसवोत्तर-कालमेव प्रायश्चित्तं कार्यम् ।

तदुक्तं मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे—( शा. स्मृ. ३।७-८ )

‘अन्तर्वत्नी तु या नारी समेनोत्क्रम्य कामिता ।

प्रायश्चित्तं न कुर्यात्सा यावद्गर्भो न निस्सृतः ॥

जाते गर्भे व्रतं कुर्यात्पश्चान्मासं तु यावकम् ।

न गर्भदोषस्तत्रास्ति संस्कार्यः स यथाविधि ॥’ इति ।

‘अन्त्यजंगमनेऽपि स्त्रीणां प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृत्यन्तरे—(सं. १६७-१६८)

‘चाण्डालं पुरुकसं म्लेच्छं श्वपाकं पतितं तथा ।

ब्राह्मण्यकामतो गत्वा चान्द्रायणचतुष्टयम् ॥’



तथा—

‘रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ।

ब्राह्मण्येतान्यदा गच्छेदकामादैन्दवद्वयम् ॥’ इति ।

अङ्गिराः—( १।२१-१७-२२ )

‘चण्डालेन तु सम्पर्कं यदि गच्छेत्कथञ्चन ।

सशिखं वपनं कुर्याद्भुजीयाद्यावकौदनम् ॥

त्रिरात्रभुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ।

आत्मना सम्मिते कूपे गोमयोदककर्दमे ॥

तत्र स्थित्वा निराहारा सा त्रिरात्रं ततः क्षिपेत् ।

शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम् ॥

क्षीरं सुवर्णसम्मिश्रं काथयित्वा ततः पिवेत् ।

एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥

बहिस्तावच्च निवसेद्यावच्चरति तद्गतम् ।

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धयै स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।’ इति ।

एतच्चाज्ञानविषयम् ।

कामतः सकृद्गमने तु ऋष्यशृङ्गः—

‘सम्पृक्ता स्यादथान्त्यैर्या सा कृच्छ्राब्दं समाचरेत् ।’ इति ।

कामतोऽत्यन्तसम्पर्के तूशनाः—( २।६ )

‘अन्त्यजेन तु सम्पर्के भोजने मैथुने कृते ।

प्रविशेत्सम्प्रदीप्ताग्नौ मृत्युना सा विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

यत्तु शातातपः—

‘स्लेच्छेनाधिगता शूद्रा अकामा वा कथञ्चन ।

कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत ज्ञाने तु द्विगुणं भवेत् ॥’ इति ।

अत्र च स्लेच्छग्रहणमेकवाक्योपात्तानां चाण्डालादीनामप्युपलक्षणम्,

‘बहूनामेकधर्माणां’ इत्युशनसो वाक्यात् ।

१ पराशरसंहितायामपि ( १०।१९-२२ ) इमानि वचनानि किञ्चिदिव भेदेन दृश्यन्ते ।



यत्तु संवर्त्तः— ( १७२ )

‘चाण्डालं पुष्कसं म्लेच्छं श्वपाकं पतितं तथा ।

एतान् गत्वा स्त्रियः श्रेष्ठाः कुर्युश्चान्द्रायणं परम् ॥’

इति; तत्कामतोऽप्रवृत्तस्य रेतःसेकात्प्राङ्निवृत्तौ द्रष्टव्यम् ।

आहितगर्भायाश्चाण्डालादिव्यवाये तु ऋष्यशृङ्गः—

‘अन्तर्वत्नी तु युवतिः सम्पृक्ता चान्त्ययोनिना ।

प्रायश्चित्तं न सा कुर्याद्यावद्गर्भो न निस्सृतः ॥

न प्रचारं गृहे कुर्यान्न चाङ्गेषु प्रसाधनम् ।

न शयीत समं भर्त्रा न वा भुञ्जीत बान्धवैः ॥

प्रायश्चित्तं गते गर्भे विधिं कृत्वाऽऽव्दिकं चरेत् ।

हिरण्यमथवा धेनुं दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥’ इति ।

मानसिकवाचिकव्यभिचारयोः प्रायश्चित्तमाह वसिष्ठः— ( २१।७८ )  
‘मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरोदनं वा भुञ्जाना अधःशयीत  
ऊर्ध्वं त्रिरात्रादप्सु निमग्नायाः सावित्र्या चतुर्भिरष्टशतैः शिरोभि-  
र्जुहुयात् पूता भवतीति विज्ञायते । वाक्सम्बन्धे एतदेव मासं चरित्वा  
ऊर्ध्वं मासादप्सु निमग्नायाः सावित्र्या चतुर्भिरष्टशतैः शिरोभिर्जुहु-  
यात्’ इति ।

—अष्टाधिकं शतमष्टशतम्, तैश्चतुर्भिः शिरोऽभि शिरसीत्यर्थः ।

इदं च मानसिकव्यभिचारे प्रायश्चित्तं रजोदर्शनादवगम्यवहार्यत्व-  
सिद्धये । रजोदर्शने तु सति तेनैव शुद्धिः ।

तथा च मनुः— ( ५।१०७ )

‘मृत्तौयैः शुध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ।

रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥’ इति ।

अन्त्यजादिव्यवाये तु पराशरः—

‘हीनवर्णोपमुक्ता या साऽङ्कया वध्याऽपि वा भवेत् ।’ इति ।

अङ्कनपक्षे त्याग एव

‘चतसस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या ।

पतिघ्नी च विशेषेण जुद्धितोपगता च या ॥’ ( २१।१२ ) ।

इति वसिष्ठोक्तेः ।

१ चान्द्रायणव्ययमिति—मू.



—जुद्धितः प्रतिलोमजः । अत्र च विशेषविधानात् परित्यागो गृहा-  
न्निर्वासनमेव । अन्यत्र तु—

‘विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुध्यादेकवेशमनि ।’ ( २१।१७६ )  
इति मन्त्रो निरोधः ।

याज्ञवल्क्योऽपि— ( १।७० )

‘हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।

परिभूतामथः शय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम् ॥’ इति ।

अत्र च वासनं वैराग्यजननार्थमेव ।

यत्तु चतुर्विंशतिमते—

‘स्त्रीणां नास्ति परित्यागो ब्रह्महत्यादिभिर्विना ।

तत्रापि गृहमध्ये तु प्रायश्चित्तानि कारयेत् ॥

परित्यक्ता चरेत्पापं बह्वल्पं वाऽपि किञ्चन ।

तत्पापं शतधा भूत्वा बान्धवाननुगच्छति ॥’

इति; तद्भर्तृत्पत्तिपरम् ।

तद्युक्तायास्तु परित्यागमाह पराशरः— ( १०।२९ )

‘जारेण जनयेद्गर्भं मृत्युव्यक्ते गते पतौ ।

तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥’ इति ।

अपरे राष्ट्र इत्युक्तेर्गृहान्निष्कासनं गम्यते ।

अत एव चतुर्विंशतिमते—

‘चतस्र एव संत्याज्याः पतने सत्यपि स्त्रियः ।

श्वपाकोपहता या तु भर्तृव्री पितृपुत्रगा ॥’ इति ।

अत्र च शिष्यगादीनां त्यागो गर्भविषय एव,

‘व्यभिचारादृतौ शुद्धिगम त्यागो विधीयते ।

गर्भभतृवधादौ च तथा महति पातके’ ॥

इति याज्ञवल्क्योक्तेः ( १।७२ ) ।

—गर्भः शूद्रादिकृतः ।

‘ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः ।

अप्रजाता विशुद्ध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः’ ॥

इति वसिष्ठस्मरणात् ( २१।१४ ) ।



शूद्रग्रहणं प्रतिलोमजोपलक्षणार्थम् । तत्रैवर्णिकव्यावृत्त्यर्थम् ; तेन शिष्यगागुरुगयोरपि त्रैवर्णिकयोः प्रसवे न त्यागः । अयं च त्यागो न गर्भमात्रे, किन्तु प्रसवमात्र इति प्राग्व्याख्यातम् (पृ. १७०) । अयमेवाभिप्रायो माधवाचार्याणाम् । मिताक्षरायां तु व्यवहारनिरोध एव त्यागशब्देनोक्तो न तु गृहान्निर्वासनमपीति ।

इति स्त्रीप्रायश्चित्तम् ॥

अथ पशुगमने ।

शङ्खलिखितौ—‘तिर्यग्योनिषु गोवर्जं सचैलं स्नातो यवसभारं दद्यात् ।’

पराशरः—( १०।१५ )

‘महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ।’ इति ।

इदमकामतः ।

कामतस्तु जाबालः—

‘इतरेषां पशूनां तु कृच्छ्रपादो विशोधनम् ।’ इति ।

कामतोऽभ्यासे संवर्त्तः—( १६४ )

‘पशुवेद्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ।’

शुनीगमने विशेषश्चतुर्विंशतिमते—

‘शुनीं चैव द्विजो गत्वा अतिकृच्छ्रं समाचरेत्’ इति ।

यत्तु गौतमः—( ३।४।३६ ) ‘अमानुषीषु गोवर्जं स्त्रीषु गमने कूष्माण्डैर्घृतहोमः’ इति, तत्कामाकामसकृदभ्यासेष्वष्टाविंशत्यष्टोत्तरशताष्टोत्तरसहस्रादिसङ्ख्या योज्यम् ।

अथ गोगमने ।

पराशरः—( १०।१५ ) ।

‘गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददन् ।’

इदमकामतः सकृद्गमने ।

कामतो विष्णुः—( ५३।३ ) ‘गोव्रतं गोगमने च ।’

कामतोऽभ्यासे तु शङ्खलिखितौ—‘गोष्ववकीर्णः संवत्सरं प्राजापत्यं चरेत्’ इति ।



यत्तु गौतमः— ( ३।५।१२ ) ‘ गवि गुरुतल्पसमः ’ इति तज्ज्ञाना-  
दाजन्माभ्यासे ।

अथ व्रतलोपे ।

योगीश्वरः— ( १।२८० )

‘ अवकीर्णी भवेद्भत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम् ।

गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतं स विशुद्ध्यति ॥ ’

मनुः— ( ११।११८-११९, १२२-१२३ )

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।

पाकयज्ञविधानेन यजेत् निर्ऋतिं निशि ॥

हुत्वाऽग्नौ विधिवद्भोमानन्ततश्च समित्यूचा ।

वाय्विन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतीः ॥

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ।

सप्तागारं चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्त्तयन् ॥

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्त्तयन्नेककालिकम् ।

उपस्पृश्यंस्त्रिषवणमब्देन स विशुद्ध्यति ॥ ’

पाकयज्ञविधानम्— ‘ अथ पशुकल्प ’ ( गृ. सू. १।९।१ ) इत्या-  
श्रलायनाद्युक्तम् । अत्राहुतीरिति बहुवचनात्कपिश्रलन्यायेन ( जै. न्या.  
११।१।६ ) आहुतित्रयमेव ज्ञेयम् । वसिष्ठोऽपि— ( २३।१-३ )  
‘ ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौ रक्षोदैवतं गर्दभं  
पशुमालभेत् । नैर्ऋतं वा चरुं निर्वपेत् । तत्र तस्य जुहुयात् । कामाय  
स्वाहा, कामकामाय स्वाहा, रक्षोदेवताभ्यः स्वाहा ’ इति ।

अत्र गर्दभयागात्पूर्वं ‘ वायवे स्वाहा ’ इत्यादिचतुर्भिराज्यहोमः । गर्दभ-  
यागोत्तरं ‘ सं मा सिञ्चन्तु ’ इत्यृचा होम इत्यपराकं । ‘ अत्र पशोरसंभवे  
चरुः ’ इति विज्ञानेश्वरः । ‘ ओत्रियस्य पशुरओत्रियस्य चरुः ’ इति  
माधवः । अयं चामावास्यायां कार्यः; तथा च तैत्तिरीयश्रुतिः—  
( आर. २।१८ ) ‘ यो ब्रह्मचार्यवकिरेदमावास्यायां रात्र्यामग्निं प्रणीयो-  
पसंमाधाय ’ इत्यादि । एतच्च कामत एव ‘ कामतो रेतसः सेकं ’ इति



निमित्तवाक्ये मनूक्तेः ( ११।१२० ) । अत्राशक्तस्य स्त्रिया प्रोत्साहित-  
स्य वा योगीश्वरोक्तो गर्हभयाग एव । शक्तस्य तु मनूक्तयागाङ्कित-  
तपसोः समुच्चयः ।

समुच्चयमेवाह गौतमः—(३।५।१७—१९) ‘ गर्हभेनावकीर्णी निर्ऋतिं  
चतुष्पथे यजेत् । तस्याजिनमूर्ध्ववालं परिधाय लोहितपात्रः सप्त गृहान्  
भैक्षं चरेत् कर्माचक्षणः । संवत्सरेण शुद्धयेत् ’ इति । इदं च वार्षिकं  
व्रतमश्रोत्रियविप्रपत्न्यां श्रोत्रियवैश्यपत्न्यां च ।

यत्तु शंखलिखितौ—‘ गुप्तायां वैश्यायामवकीर्णः संवत्सरं त्रिषवण-  
मनुतिष्ठेत् । क्षत्रियायां द्वे वर्षे । ब्राह्मण्यां त्रीणि वर्षाणि ’ इति,  
तद्ब्राह्मणीक्षत्रिययोः श्रोत्रियभार्ययोरवकिरणे ज्ञेयम् ।

यत्तु पैठीनसिः—‘ अवकीर्णी गर्हभाजिनं वसेत्संवत्सरं प्राजापत्यं  
चरेत् ’ इति, तन्मान्यशूद्रभार्याविषयम् ।

स्वैरिण्यादिभिरवकिरणे त्वाहतुः शंखलिखितौ—‘ स्वैरिण्यां वृषत्या-  
मवकीर्णः सचैलस्नात उदकुम्भं दद्यात् । ब्राह्मण्यां वैश्यायां चतुर्थ-  
कालाहारो ब्राह्मणान् भोजयेत्, यवसभारं च गोभ्यो दद्यात् । क्षत्रिया-  
यां त्रिरात्रमुपोषितो घृतपात्रं दद्यात् । ब्राह्मण्यां षड्रात्रमुपोषितो गां  
दद्यात् । गोष्ववकीर्णः प्राजापत्यं चरेत् । षण्ढायामवकीर्णः पलालभारं  
सीसकमाषकं च दद्यात् ’ इति । कल्पतरौ हारीतः—‘ तस्मात्स्त्री-  
ष्ववकीर्णो निर्ऋत्या एव चतुष्पथे गर्हभं पशुमालभेत् । भूमौ पशुपुरो-  
डाशश्रपणमवदानैः प्रचर्य प्राक् स्विष्टकृत आज्यस्य जुहोति ।  
कामावकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा । कामावपन्नोऽस्म्यवपन्नोऽस्मि  
कामकामाय स्वाहा । कामाभिवृद्धोऽस्म्यभिवृद्धोऽस्मि कामकामाय  
स्वाहा । कामाभिदुग्धोऽस्म्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहा ।

‘ सं मा सिंचतु मरुतः समिद्रः सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिंचतु यशसा ब्रह्मवर्चसेन ॥ इति ।

तां छवीमूर्ध्ववालं परिधाय मृन्मयं पात्रमादाय सप्तागारं भैक्षं  
चरेत् स्वकर्म परिकीर्त्तयन् त्रयोदशे मासे पूतो भवति । ’ इति ।



—छवी चर्म ।

विशेषमाह बौधायनः ( २।१।३५-४२ ) ' यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपे-  
यात्सोऽवकीर्णो । स गर्दभं पशुमालभेत । नैर्ऋतः पशुपुरोडाशश्च रक्षो-  
दैवतो यमदैवतो वा । शिश्रात्प्राशित्रमप्स्ववदानैश्चरतीति विज्ञायते ।

अथावकीर्ण्यमावास्यायामग्निमुपसमाधाय ( सम्यक् परिस्तीर्य )  
दार्विहौमकीं परिचेष्टां कृत्वा द्वे आज्याहुती जुहोति-कामावकीर्णो-  
ऽस्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा, कामायाभिदुग्धोऽस्यभि-  
दुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहा इति हुत्वा करौ तिर्यग्भिमन्त्रयेत्  
' सं मा सिञ्चन्तु ' इति ।

—परिचेष्टेतिकर्तव्यता ।

स एव— ( ३।४।१-१० ) ' अथ ब्रह्मचर्यव्रत्यभिचरेन्मांसं वाऽग्नी-  
यात्स्त्रियं चोपेयात्सर्वास्वार्तिष्वन्तर्गागारेऽग्निमुपसमाधाय संपरिस्तीर्य  
प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति । कामेन कृतं कामः करोति कामायैवेदं सर्वं  
यो मा कारयति तस्मै स्वाहा । मनसा कृतं मनः करोति मनस एवेदं  
सर्वं ० । रजसा कृतं रजः करोति रजस एवेदं ० । तमसा कृतं तमः  
करोति तमस एवेदं ० । पाप्मना कृतं पाप्मा करोति पाप्मन एवेदं ० ।  
मन्युना कृतं मन्युः करोति मन्यव एवेदं ० । जयाप्रभृतिसिद्धमा  
धेनुवरप्रदानात् । अपरेणाग्निं कृष्णाजिनेन प्राचीनग्रीवेणोत्तरलोम्ना-  
वृत्य वसति । व्युष्टायां जघनादात्मानमपकृष्य तीर्थं गत्वा स्नात्वा  
आचम्याभिमंज्याविलगाभिर्वारुणीभिर्हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरिति  
मार्जयित्वान्तर्जलगतोऽघमर्षणेन षोडश प्राणायामान् धारयित्वोत्तीर्य  
वासः पीडयित्वाऽन्यद्वौतं वासः परिधायाचम्य प्रसिद्धमादित्यो-  
पस्थानात् कृत्वा आचार्यस्य गृहानेति ' ।

जयापदेन जयाहोमाः, प्रभृतिना ' अग्निर्भूतानामधिपतिः '  
( तै. सं. ३।४।५ ) इत्यादिसाध्याः होमाः । अतो जयाहोमाद्धेनु-  
वरप्रदानान्तमत्र कुर्यादित्यर्थः । अपरेणाग्निमग्निपश्चिमभागे । वसती-

१ ' नितं च स्वाहा ' ( तै. सं. ३।४।४ ) इत्यादयो जयाः ।

२ एते अभ्यानातसंज्ञाः ।



त्यस्याग्रे रात्राविति शेषः । व्युष्टायामिति चषःकाले, जघनात् कृष्णा-  
जिनजघनप्रदेशादात्मानमपकृष्य निःसार्येत्यर्थः ।

शङ्खलिखितौ— 'समरात्रेणावकीर्णैर्द्वैक्षाम्निकार्यै कुर्वन्सद्यः कामा-  
दुत्सर्गे रेतसोऽन्यत्र स्वप्रातःत्र प्रायश्चित्तं महाव्याहृतिभिर्जुहुयादौ-  
पूर्विकाभिः संवत्सरं वा नक्तं भैक्षं चरेत् । चतुर्थकाले मितभुक्  
गायत्री वा वत्सरानुगां जपेत्' इति ।

महाव्याहृतिर्होमोऽत्र लघुत्वाद्वैक्षाम्निकार्यकरणे । संवत्सरं वेत्या-  
दिना च प्रायश्चित्तद्वयमुक्तं तत्पूर्वोक्तसंवत्सरव्रतसमानविषयम् ।  
वत्सरानुगां वत्सरपर्यन्तमित्यर्थः ।

स्वप्ने रेतस उत्सर्गे मनुविष्णू— ( म. २।१८१ वि. २८।५१ स्कं.  
पु. का. खं. ३६।६० )

‘स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।

स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्माभित्यृचं जपेत् ॥’ तै. ब्रा. १।३०।१

दिवा स्वप्ने उत्सर्गे बलादुत्सर्गे च नैर्ऋतयागमात्रम् ‘एतदेव रेतस  
उत्सर्गे दिवा स्वप्ने वा’ ( २३।२ ) इति वसिष्ठेन यागमात्रातिदेशात् ।  
कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रतान्तरेष्वतिदिष्टब्रह्मचर्येषु रेतःस्कन्दनेऽपीदमेव ।  
‘व्रतान्तरेषु चैवम्’ ( २३।२ ) इति तेनैवातिदिष्टत्वात् । इदमेव च  
दीक्षितस्यापि ।

वानप्रस्थयत्योरपि रेतःस्कन्दने ब्राह्म शाण्डिल्यः—

‘वानप्रस्थो यतिश्चैव खण्डने सति कामतः ।

पराकत्रयसंगुक्तमवकीर्णव्रतं चरेत् ॥’

इदं च ब्रह्मचर्यातिदेशेऽवकीर्णव्रतं गुरुत्वात् परस्त्रीगमन एव ।

कश्यपः— ( ६।११ )

‘सूर्यस्य त्रिर्नमस्कारं स्वप्ने सिक्त्वा गृही चरेत् ।

वानप्रस्थो यतिश्चैव त्रिः कुर्यादघमर्षणम् ॥’

स्त्रीसम्भोगमन्तरेण कामादुत्सर्गे तु कण्वः—

‘यत्नोत्सर्गे गृही कृत्वा वारुणीभिरुपस्पृशेत् ।

वानप्रस्थो यतिश्चैव चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥’



सप्तरात्रं सन्ध्यादित्यागेनावकीर्णत्वे तु बृहस्पतिः—

‘सन्ध्योपासनमुद्दिष्टं प्रथमं ब्रह्मचारिणः ।

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यां चैतत्कुर्वीत प्रत्यहम् ॥

अत्र त्रयस्याकरणाद्ब्रवी रोगविवर्जितः ।

अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्सप्तरात्रं न संशयः ।’

याज्ञवल्क्योऽपि— ( ३।२८१ )

‘भैक्षाम्निकार्यं त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः

‘कामावकीर्ण’ इत्याभ्यां हुत्वा चाज्याहुतिद्वयम् ॥

उपस्थानं ततः कुर्यात्सं मा सिचन्त्वेनेन तु ।’

‘कामावकीर्ण’ इत्येतौ पूर्वमुक्तौ, ‘सं मा सिचन्तु’ इति च । इदं च कार्यव्यासङ्गादिनाऽग्न्यादित्यागे । तदभावे तु—

‘अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् ।

अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥’ ( २।१८७ )

इति मनूक्तं बोध्यम् ।

नैष्ठिके विशेषमाह हारीतः—

‘अपकुर्वाणस्तु यत्कुर्यात्कामतोऽकामतोऽपि वा ।

तदेव द्विगुणं कुर्याद्ब्रह्मचारी तु नैष्ठिकः ॥’ इति ।

एतानि चावकीर्णिप्रायश्चित्तानि त्रैवर्णिकस्यापि ब्रह्मचारिणः समानानि ।

‘अवकीर्णी द्विजो राजा वैश्यश्चापि खरेण तु ।

इष्ट्वा भैक्षाशिनो नित्यं शुद्धयन्त्यन्दात्समाहिताः ॥’

इति शाण्डिल्योक्तेः ।

१ इदं चावकीर्णिप्रायश्चित्तं गुरुदारतत्समव्यतिरिक्तागम्यागमनविषयम् ; तत्र गुरुप्रायश्चित्तस्य दर्शितत्वात् ।... न चात्रागम्यागमनप्रायश्चित्तं पृथक्कर्तव्यम् ; ब्रह्मचारिणो योषिति ब्रह्मचर्यस्खलनस्यागम्यागमनेन नान्तरीयकत्वात् ।... ननु ब्रह्मचारिणो योषिति ब्रह्मचर्यस्खलनस्यागम्यागमननान्तरीयकत्वं नास्त्येव ; पुत्रिकागमनेऽगम्यागमनदोषाभावात् ... इति, तदसत् ; पुत्रिकाया अपि पर-भायास्वन्तर्भावात् । प्रदानाभावेऽपि विवाहसंस्कारेण संस्कृतत्वात्, गान्धर्वादि-विवाहपरिणीतावत् ।—मि. ( ३।२८० ) ।



—द्विजो विप्रः । अत्र यदगम्यागमनप्रायश्चित्तमेतत्प्रायश्चित्तौत्समं  
न्यूनं वा, तस्यानेनैव सिद्धिः । यत्त्रयिकं, तेनैवास्य सिद्धिः । गद्भ-  
यागस्तु पृथगेव कार्यं इति ।

ब्रह्मचारिणो वेदव्रतान्याम्नातानि, तेषां लोपे प्रायश्चित्तमाहात्रिः—

‘पिता भ्राताऽपरो वाऽपि प्राजापत्यत्रयं चरेत् ।

महापगासु संस्नाप्य ‘पाहि नो अग्न’ आहुतीः ॥

पञ्चर्गिभरिदमाहान्तव्रतलोपे कृते सति ।’ इति ।

संवत्सरमध्य एव व्रतलोप एतत्प्रायश्चित्तमिति केचित् । महा-  
नाम्यादिव्रतलोपे प्रायश्चित्तपूर्वकं तानि समावर्त्तनदिन एव कार्याणीति  
प्रयोगपारिजाते ।

व्यासोऽपि—

‘वेदव्रतानि कृत्वैवं तथैवारण्यकव्रतम् ।

स्वशाखाविहितं सर्वं कृत्वा वेदमुपक्रमेत् ॥

अकृत्वेमानि सर्वाणि वेदो वाऽभ्यस्यते यदि ।

प्रायश्चित्तानि कृत्वैव व्रतान्यपि तथा क्रमात् ॥

गोदानिकं ततः कृत्वा समावर्त्तनमारभेत् ।’ इति ।

तत्र प्रायश्चित्तमाह शौनकः—

‘व्रतानि विधिवत्कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत् ।

अकृत्वाऽभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः ॥

कृच्छ्रं द्वादशरात्रं तु चरित्वाज्याहुतीः शतम् ।

हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः ॥’

१ ब्रह्मचारिणो व्रतानि ऋग्वेदिनाम्— ‘प्रथमं स्यान्महानात्री द्वितीयं  
स्यान्महाव्रतम् । तृतीयं स्यादुपनिषद्गोदानाख्यं ततः परम् ॥ इति, यजुर्वेदिनाम्—  
प्राजापत्यैन्द्राग्नेयसौम्यानि, सामवेदिनाम्— केशान्तगोदानमहानात्रीज्येष्ठसाम-  
व्रतानि, आथर्वणानाम्— गोदानसावित्रीव्रतवेदव्रतविसर्जनव्रतानि ।— द्वै. नि.  
वाचस्पतिमिश्रः ।

२ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं— नि. सि.



देवलोऽपि व्रतान्युपक्रम्य—

‘कालातिक्रमणे कुर्यात्प्रायश्चित्तं विधानतः ।

कृच्छ्रं द्वादशरात्रं तु हुत्वा चाज्याहुतीः शतम् ॥

अष्टाविंशतिमष्टौ वा क्रमात्कुर्याद्व्रतानि हि ।

व्यत्यये यावदभ्यस्तं वेदं तावत्पुनः पठेत् ॥’ इति ।

एतच्च कामतः ।

रागादावबुद्धिपूर्वं त्यागे तु मनुः— ( २१।२०३ )

‘वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।

स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥’ इति ।

इति व्रतलोपप्रायश्चित्तम् ।

अथ परिवेदनम् ।

मनुः— ( ३।१७१ )

‘द्वाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ।

परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥’

गार्ग्योऽपि—

‘सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्धारसंग्रहम् ।

आवसथ्यं तथाधानं पतितस्त्वन्यथा भवेत्’ इति ॥

सोदर्यग्रहणादसोदर्ये न दोषः ।

तदाह शातातपः— ( ४२ )

‘पितृव्यपुत्रसापत्नपरनारीसुतेषु च ।

ज्येष्ठेष्वपि च तिष्ठत्सु भ्रातृणां तु कनीयसाम् ॥

द्वाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ।’

— परनारीसुताः क्षेत्रजदत्तकाद्याः । पुत्रदानेन प्रतिग्रहीतृकुले  
पितृत्वपुत्रत्वादिप्रयुक्तकार्यप्रवृत्तिर्जनककुले च तन्निवृत्तिः सप्रमाणमुक्ता

१-आवसथ्यो गृह्यः, शालाग्निरित्यनर्थान्तरम् ; तस्याधानं स्थापनमात्मसा-  
त्करणमिति यावत्— कर्कः ।



व्यवहारमयूखे ( पृ. ७१-७४ ) । तेन दत्तकसोदरस्यापि कनिष्ठस्य दत्तकमुत्क्रम्योद्वाहे न दोषः ।

शास्त्रातपः- ( ४१ )

‘ कृत्रि देशांतरस्थे च पतिते भिक्षुकेऽपि वा योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ ’

-भिक्षुको यतिः । योगशास्त्राभियुक्तो विरक्तः ।

कात्यायनोऽपि- ( १।६।४-७ )

‘ देशांतरस्थस्त्रीवैकृषणानसहोदरान् ।

वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥

जडमूकांधवधिरकुब्जवामनषण्डकान् ।

अतिवृद्धानभार्याश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥

धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोऽकारिणस्तथा ।

कुहंकांस्तस्करांश्चापि परिविद्वन् दुष्यति ॥ ’

-षण्डको भग्नचरणद्वयः । अभार्यो मृतभार्यः । कामतोऽकारिणः स्वेच्छयैव नित्यं विवाहमकुर्वाणः । अत्र ये सर्वात्मना विवाहानभिकारिणः स्त्रीवादयस्तेषु सत्सु कालविशेषमन्तरेणापि परिवेदने न दोषः ।

१-अत्र सिन्धुटीका— ‘ सोदरो हि त्रिविधः— एकमातृपित्रुभयजः, एकमातृमात्रजश्च, एकप्रितृमात्रजश्चेति । तत्र आय औरसः, द्वितीयः क्षेत्रजः, तृतीयो भिनोदर्यः । तत्रान्त्ययोस्त्रिकाण्डमण्डनेनाधिकाराविधात् उक्तः— ‘ क्षेत्रजादावनीजाने विद्यमानेऽपि सौदरे । नाधिकारविधातोऽस्ति भिनोदर्येऽपि चौरसे ॥ ’ इति । न तु प्रथमे, ‘ सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे—’ इति वचने हि समानमुदरं यस्येति सोदरः, स एव सोदर्य इति व्युत्पत्तेरभिनोदरोत्पन्नत्वलाभात् । इदं च मातापित्रोः, मातापित्रुभयमेव वा । एवं च तादृशो निषेधस्य विषयः । अन्यादृशो मण्डनकारिकाविषयः । तथा च—यथा दत्तककनिष्ठस्य दत्तकविवाहाधाने विना न तत्राधिकारः, एवं दत्तकस्य कनिष्ठस्य सोदरज्येष्ठेऽकृतविवाहाधाने न तत्राधिकार इति भावः ॥ यत्तु महाभारतादावनिविष्टे युधिष्ठिरेऽर्जुनस्य द्रौपदीविवाहविलम्बनम्, तदर्जुनस्यानौरसत्वात् । सजातीयेष्वेव लाघवेन निषेधप्रवृत्तेः ।—इति ।

२-खड्ग-खोड-खोट-खेट इ. पाठः ।

३-कुटिलोन्मत्तचोरांश्च । स्मृ. चं.—नि. सिं. टी. ।

४-अभार्या नैष्ठिकब्रह्मचारिणः— स्मृ. चं.



ये तु कालांतरेऽपि संभावितविवाहाधिकारा विरक्तवेश्यातिस्त्रक्तशूद्र-  
तुल्यकृषिसक्तराजपरतंत्रधनवृद्धिप्रसक्तकामतोकारिकुहकतस्कराः, तेषु  
तत्त्वभावत्वानुधारणे न दोषः ।

देशांतरस्थे विशेषमाह वृद्धवसिष्ठः— ‘अष्टौ दश द्वादशवर्षाणि ज्येष्ठ  
भ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्तीभवति’ इति । धर्मार्थमर्थार्थं  
विद्यार्थं वा देशांतरस्थे द्वादशवर्षं प्रतीक्षा कार्यतरार्थं त्वष्टौ दश वा’ इति ।

तथा च स एव—

‘द्वादशैव तु वर्षाणि ज्यायान्धर्मार्थयोगतः ।

न्याय्यः प्रतीक्षितुं भ्राता श्रूयमाणः पुनः पुनः ॥’

इति हेमाद्रिः ।

शूलपाणिस्तु—‘द्वादशवर्षाणि ब्राह्मणस्य विद्यासंबन्धेन’ (२।१।१७)  
इति गौतमवाक्ये ब्राह्मणग्रहणात्स एव द्वादशवर्षाणि प्रतीक्ष्यः,  
क्षत्रियवैश्यशूद्रास्तु दशाष्टौ षट् इति, तत्तुच्छम्; अश्रुतषट्कल्पनायां  
प्रमाणाभावात्; धर्मार्थयोश्च क्षत्रियादावपि संभवादिति ।

विवाहे तु ज्येष्ठानुज्ञायामपि दोषमाह हारीतः—

‘सोदराणां च सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत् ? ।

दारैस्तु परिवेद्यंते नामिहोत्रेण नेज्यया ॥’ इति ।

अथ प्रायश्चित्तम् ।

वसिष्ठः—(२०।१) ‘परिविविदानः कृच्छ्रातिकृच्छ्रो चरित्वा तस्मै  
दत्त्वा पुनर्निवेशेत्’ ।

अत्रापराकं कनिष्ठेनोढां ज्येष्ठ उद्धेत्, अशास्त्रीयविवाहेन कनिष्ठ-  
निरूपितभार्यात्वानुत्पत्तेर्ज्येष्ठोद्वाहयोग्यत्वात्; कनिष्ठस्त्वन्यामुद्धेदिति ।  
तन्न; ‘तां चैवोपगच्छेत्’ (वसि. २०।८) इति विज्ञानेश्वरोक्तवाक्य-  
शेषात् । भार्यात्वानुत्पत्तिस्तु कनिष्ठोद्वाहेऽपि साधिका ।

स्पष्टं च हारीतेन ज्येष्ठस्याब्दं व्रतमुक्त्वाऽन्योद्वाह एवोक्तः—

‘समाप्तेऽब्दे तां कन्यां ज्येष्ठायोपपादयेयुः । स तामनुमान्यान्यया  
निविशेत्तैवं धर्मो न लुप्यत’ इति ।

तस्मात्परिवेत्ता कृच्छ्रातिकृच्छ्रोत्तरं स्वोढां ज्येष्ठाय ब्रह्मचार्याहृतभैक्ष-  
वद्रूपपरिभ्रमपरिहारार्थं निवेद्य तेनानुज्ञातां तामेवोद्धेदिति वासिष्ठार्थः ।

१६



यत्तु सुमंतुः परिवेत्तादिपंचानां द्वादशरात्रं सक्तुप्राशनमुक्त्वा कनीयसं-प्रत्याह- 'न भूयश्चैनामभिगच्छेत्' इति, तत्पुनर्विवाहात्प्रा-  
ग्वेदितव्यम् । तत्रैव व्यवस्था-सन्निधावकामतः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ । याज्ञ-  
वल्क्यीयं वक्ष्यमाणमुपपातकसामान्यव्रतचतुष्टयं च वर्णशक्त्याद्यपेक्षया  
बोजनीयम् । कामतः सन्निधौ कन्यापित्राद्यनुज्ञायां संवत्सरमिति ।

अत्रैव शंसः- 'परिवित्तिः परिवेत्ता च संवत्सरं द्वादशरात्रं भैक्षं  
चरेयाताम्' इति । कामतः पित्राद्यनुज्ञातोद्वाहे तु मानवं त्रैमासिकम् ।

यत्तु विष्णुः- (५४।१६) 'परिवित्तिः परिवेत्ता च यया च  
परिविद्यते । तदाता याजकश्च चांद्रायणं कुर्युः' इति; तत्कृच्छ्राति-  
कृच्छ्रविषयम् ।

यत्तु यमः-

'कृच्छ्रौ द्वयोः परिवेद्ये कन्यायाः कृच्छ्र एव च ।  
अतिकृच्छ्रं चरेद्वाता होता चांद्रायणं चरेत् ॥' इति ।

तद्विज्ञानतः क्षत्रियविषयम् । द्वयोः परिवेत्तृपरिवित्तयोः प्रत्येकं द्वौ कृच्छ्रौ ।

यत्तु सुमंतुः- 'परिवित्तिपरिवेत्तृकन्यादातृयाजकानां द्वादशरात्रं  
सक्तुप्राशनं ब्राह्मणतर्पणं च । तां पुनर्भवेमाचक्षते । न भूयश्चैनामभि-  
गच्छेत्' इति । तच्छूद्रपरम् ।

प्रसंगादुच्यते । देवलः-

'ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामूढ्यतेऽनुजा ।

या साऽप्रेदिधिपूर्ज्जेया पूर्वा तु दिधिपूः स्मृता ॥' इति ।

प्रायश्चित्तमाह वसिष्ठः- (२०।१०) 'अप्रेदिधिपूर्पतिः कृच्छ्रं द्वादश-  
रात्रं चरित्वा निविशेत् तां चैवोपयच्छेत् । दिधिपूर्पतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ  
चरित्वा सस्मै दत्त्वा पुनर्निविशेत्' इति ।

१. याजको विवाहहोमकारकः, आधानकारकः, यज्ञकारकादिश्च । 'परीश्रिदोष-  
सम्प्राप्तौ न यष्टव्यं कदाचन । दर्शेष्टिं पौर्णमासेष्टिं सोमेज्यामग्निसङ्ग्रहम् ॥ अग्नि-  
होत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथमे स्थितम् । न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे वाप्यकुर्वति ॥'  
इति त्रिकाण्डमण्डनाभिधानात् ।-क. अ.



‘अग्नेदिधिपूषतिः प्राजापत्यं चरित्वा तामेव ज्येष्ठां पश्चादन्येनोदा-  
मुद्वहेत् । दिधिपूषतिस्तु कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कृत्वा स्वोदां ज्येष्ठां कनीयस्याः  
पूर्वं विवोदे दत्त्वाऽन्यामुद्वहेत्’ इति मिताक्षरायां कल्पतरौ च ।  
न्याख्यांतरमपि स्मृत्यर्थसारे— ‘कनिष्ठापतिः द्वादशरात्रं कृत्वा तां  
स्वोदामेव ज्येष्ठोद्वाहे जाते वृद्धहेत् । ज्येष्ठापतिस्तु कृच्छ्रातिकृच्छ्रे कृत्वा  
स्वोदां कनिष्ठापतये ब्रह्मचार्याहितभैक्षवन्निवेद्य तदनुज्ञातां ज्येष्ठामेवो-  
द्वहेत्’ इति । अपराकं तु— अग्नेदिधिपूषतिस्थाने दिधिपूषतिरिति  
पठितं दिधिपूषतिस्थाने त्वग्नेदिधिपूषतिरिति । तथा च प्रायश्चित्त-  
विकल्प इति ।

यत्तु गौतमः— ‘परिवित्तिपरिवेत्तृपर्याहितपर्याधात्रग्नेदिधिपूषति-  
दिधिपूषतीनां संवत्सरं प्राकृतं ब्रह्मचर्यम्’ इति, तत्परिवेत्तृसंवत्सर-  
समानविषयम् ।

पर्याहितपर्याधात्रोः स्वरूपमुक्तं संवत्सेन—

‘अनाहिताग्नौ ज्येष्ठे तु कनीयानादधीत चेत् ।

पर्याधाता कनिष्ठः स्याज्ज्येष्ठः पर्याहितः स्मृतः ॥’ इति ।

इति गुरुतरूपप्रसक्तानुप्रसक्तप्रायश्चित्तानि ।

अथ संसर्गप्रायश्चित्तम् ।

तत्र संसर्गभेदानाह बृहस्पतिः—

‘एकशय्यासनं पंक्तिर्भाण्डपंक्यन्नमिश्रणम् ।

याजनाध्यापने योनिस्तथा च सहस्रोजनम् ॥

नवधा संकरः प्रोक्तो न कर्तव्योऽधमैः सह ।’ इति

योनिः पातकिने कन्यादानम्, तत्कन्यापरिणयनं वेति विज्ञानेश्वर-  
कल्पतरुकारादयः । पातकिस्त्रीगमनमित्यपरार्कशूलपाणी । योगापरि-  
त्यागात्स्विदमेव युक्तम् ।

छागलेयः— ( ग. पु. पू. ११५।६ )

‘आलापाद्वात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ।

संहशय्यासनाद्यानात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥’ इति ।

१ ‘आसनादेकशय्यायां भोजने पङ्क्तिसङ्करात् । ततः सङ्क्रमते पापं घटादृ-  
द्वोदकम् ॥’ ( ग. पु. पू. ११५।८ )



देवलः—( ३३ )

‘ संलापस्पर्शनिःश्वाससह्यानासनाशनात् ।

याजनाध्यापनाद्यौनात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥ ’ इति ।

वसिष्ठः—( २०१५० ) ‘ पतितसंप्रयोगे तु ब्राह्मेण वा यौनेन वा या-  
स्तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संपिबेत् ’ इति ।

—मात्रा द्रव्यम् ।

एतेषां कर्मणां मध्ये केन कर्मणा कियता कालेन पातित्यं ? तदाह  
विष्णुः—( ३५३-५ ) ‘ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।  
एकयानभोजनासनशयनैः । यौनसौवमुख्यैस्तु संबंधैः सद्य एव ’ इति ।  
मुख्यो मुखभवोऽध्ययनमध्यापनं च । एकामत्रभोजनेऽपि सद्यःपातित्यम्—

‘ याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् ।

कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ॥ ’ ( ३४ )

इति देवलोक्तेः । यौनसौवमुख्यैरिति सत्यपि द्वंद्वनिर्देशे प्रत्येकमेवैषां  
पातित्यहेतुत्वम् । ‘ यः पतितैः सह यौनमुख्यसौवाणामन्यतमं संबंधं  
कुर्यात्तस्याप्येतदेव प्रायश्चित्तम् ’ इति सुमंतूक्तेः । कल्पतरौ तु—‘ यश्चैत-  
यौनप्रमुख्यसौवाणां संबंधानामन्यतमेन सह संवत्सरं संपर्कमियात्तस्याप्ये-  
तदेव प्रायश्चित्तम् ’ इति पाठः । तत्रात्यन्तापद्यज्ञानतः पंचमहायज्ञादि-  
याजनम्, तथैवांगाध्यापनम्, तथैव योनिसंबंधो व्यवहितो विवाह-  
संबंधश्चेति ज्ञेयम् । एतेन—

‘ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।

याजनाध्यापनाद्यौनादेकशय्यैकभोजनात् ॥ ’

इति हारीतीयं

‘ पाष्ठासिके तु संसर्गे याजनाध्यापनादिभिः ।

एकत्राशनशय्याभिः प्रायश्चित्तार्द्धमाचरेत् ॥

संवत्सरेण संस्पर्शं योनियुक्ते विशेषतः ।

पूर्वोक्तेन विधानेन पतितव्रतमाचरेत् ॥ ’

इति च बार्हस्पत्यं व्याख्यातम् ।

जिनकस्तु-समुच्चित्तानामेव याजनादीनां सद्यःपतनहेतुत्वम् ; प्रत्येक-  
हेतुत्वं तु संवत्सरसंसर्ग-इति युक्तमूचे । परंतु तद्वहुग्रंथविरुद्धम् ।



कौर्मै—( ब्र. सं. द. ३०।१०-११ )

‘याजनं योनिसंबन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः ।

कृत्वा सद्यः पतेज्जानन्सह भोजनमेव च ॥

अज्ञानादथ वा मोहात्कुर्यादध्यापनं द्विजः ।

संवत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च ॥’ इति ।

द्वितीयवचनसंगादध्यापनपरम् ।

बौधायनः—( २।१।८८ )

‘संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।

याजनाध्यापनाद्यौनात्सद्यो न शयनासनात् ॥’ इति ।

शयनात्स सद्यो न, किंतु संवत्सरेणेति संबन्धः । एतेन—

‘संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।

याजनाध्यापनाद्यौनात् तु यानाशनासनात् ॥’ (१।१।७९)

इति मानवमपि व्याख्यातम् । पैठीनसिस्तु—‘न त्वेकशयनासनात्’ इत्यंतपादं पपाठ । अत्र ज्ञानकृत एव संसर्गं पातित्यं नाज्ञानकृते;

‘संवत्सरं तु पतितैः संसर्गं कुरुते तु यः ।

यानशय्याशनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत् ॥’

( ब्र. सं. २।३०।९ ) इति कौर्मोक्तेः,

‘पतितेन सहोषित्वा जानन्संवत्सरं द्विजः ।

मिश्रितस्तेन सोऽब्दं ते स्वयं च पतितो भवेत् ॥’

इति देवलोक्तेश्च ।

अत्र संवत्सरमित्यत्यंतसंयोगवाचिद्वितीयाश्रुतेः षष्ठ्यधिकशतत्रयदिन-  
व्यापिन्येव संसर्गं पातित्यं भवति, न तु तन्न्यूनत्वे—इति विज्ञानेश्वरादयः ।  
अत एव—

‘संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।

भोजनासनशय्यादि कुर्वाणः सार्वकालिकम् ॥’ ( ३५ )

इति देवलीयं सार्वकालिकपदमपि संगच्छते । ब्रह्महादिचतुष्टयसंसर्गं  
एव च महापातकं, न तु संसर्गिसंसर्गोऽपि ।

‘ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तुथैव गुरुतल्पगः ।

एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत् ॥’ ( ३।२२७ )



इति याज्ञवल्क्यीयादिषु 'तैः' इति सर्वनाम्ना ब्रह्मादिचतुर्णा-  
मेव परामर्शात् ।

‘संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।’

इत्यादिषु पतितपदमपि ब्रह्मादिचतुःपरमेव । दोषस्तु संसर्गि-  
संसर्गोऽप्यस्त्येव;

‘एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं कंचित्समाचरेत्’ ( २१।१८९ )

इति मनूक्तेः ।

अयं तु संसर्गस्त्रिविधः—उत्तमो मध्यमः कनीयांश्च । तत्रायश्चतुर्धा—  
गौनस्त्रौवमोरवैकपात्रभोजनभेदात् । मध्योऽपि—एकयानासनशय्यैकपङ्क्ति-  
भोजनभेदाच्चतुर्धा । अंत्यस्तु—संलापस्पर्शनिःश्वासैकभाण्डपंक्तिवदीयान्न-  
भोजनतत्प्रतिग्रहतत्स्पृष्टान्नभोजनादिभेदादनेकविध इति निबन्धकृतः ।

कचित्संसर्गदोषमपवदति वसिष्ठः—( १३।२०—२१ ) ‘पतितोत्पन्नः  
पतितो भवत्यन्यत्र स्त्रियाः । सा हि परगामिनी भवति । तामरिक्थामुप-  
यच्छेत्’ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि—( ३।२६१ )

‘कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामर्किकचनाम् ।’ इति ।

सोपवासां कृतसंसर्गानुरूपप्रायश्चित्तामिति विज्ञानेश्वरः । तन्न; अकृत-  
संसर्गायाः प्रायश्चित्ताभावेन नित्यवच्छ्रवणविरोधात् । अतस्तस्या  
नित्यं पूर्वदिने उपवासोऽनेन विधीयते । अर्किकनां अगृहीतपितृवस्त्रा-  
दिकाम् ।

वृद्धहारीतः—‘पतितस्य कुमारी विवस्त्रामहोरात्रोपोषितां प्रातः  
शुक्लेनाहतेन वाससाच्छादितां नाहमेतेषां न ममैत—इति त्रिरुच्चैरभि-  
दधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्वहेत्’ इति

उद्वहेदित्यनेन स्वयमेव त्यक्तपतितसंसर्गः शुद्धहेन पुनः पतितात्  
प्रतिगृहीयादिति लभ्यते ।

पातक्युत्पन्नयोः स्त्रीपुमपत्ययोः प्रायश्चित्तमाह बौधायनः—  
( २।१।७३—७४ ) ‘अशुचिशुक्रोत्पन्नानां तेषां शुद्धिमिच्छतां प्रायत्यं  
पत्नीयानां तृतीयोऽंशः स्त्रीणामंशात्तृतीयम् ॥’ इति ।



—प्रायत्यं प्रायश्चित्तम् । पतनीयानां—नरके पतंतीति पतनीयाः, कर्त-  
व्यनीयम् । कृत्यल्युटो बहुलम् ( पाणि. ३।३।११३ ) इति स्मृतेः । कर्म-  
प्रवचनीयवत् । तेन पतितोत्पन्नस्य पुत्रस्य तृतीयोऽंशः । कन्यायास्तु न  
तृतीयोऽंशो मौलिकनवमांश इति यावत् ।

यत्तु पराशरः—( १।२५—२६ )

‘त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ।

द्वापरे कुलमेकं तु कर्त्तारं तु कलौ युगे ॥

कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ।

द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥’ इति ।

तत्रार्थश्लोके कर्त्तारं त्विति तुशब्देनैवकारार्थेन पूर्वप्रकृतयुगभेदेन  
व्यवस्थयोक्तं देशग्रामकुलसंसर्गत्रयमेव वार्यते, न त्वप्रकृतो याजनादि-  
संसर्गोऽपीति । द्वितीयश्लोकेऽपि कृते सम्भाषणादेवेत्येवकारेणोत्तर-  
वाक्यद्वये च तदनुषङ्गे— कृते सम्भाषणमात्रात्पतति, त्रेतायां स्पर्श-  
मात्रात्, द्वापरे तु तत्स्वामिकान्नप्रतिग्रहमात्रात्, कलौ तु कृत्स्नेन  
निषिद्धकर्मणा याजनादिभिरित्यर्थः । अन्यथा-पूर्ववाक्ये ‘कर्त्तारं तु  
कलौ त्यजेत्’ इत्यनेन साक्षाद्वन्त्रादेः संसर्गो निषिद्धः; द्वितीयवाक्ये  
तु ‘कलौ पतति कर्मणा’ इत्यनेन साक्षात्कर्तुर्गैव दोषः, न संसर्ग-  
कर्तुरिति परस्परविरोधः स्यात् ! । एवं च माधवस्य कलौ संसर्गदोषा-  
भावोक्तेरत्रैव तात्पर्यम् । तथा च कलिनिषिद्धेषु ‘संसर्गदोष’ इत्युक्तिः—  
यो देशादिमात्रसंसर्गः कृतयुगादौ दोषजनकत्वेनोक्तः पराशरपूर्वश्लोके,  
यश्चोत्तरश्लोके कृतयुगादौ सम्भाषणमात्रादोष उक्तः,— तद्विषयो ।

१ बहुलग्रहणादित्यर्थः । कर्मप्रवचनीय इत्युदाहरणम् ।

२ अन्ये तु— ‘त्यजेद्देशं कृतयुगे’ इत्यायुक्तदेशादित्यागस्य, ‘कृते सम्भाष्य  
पतति’ इति सम्भाषणादिजन्यपातित्यस्य वा न निषेधः, कलौ युगान्तरोक्ता-  
प्राप्तेर्निषेधासम्भवात् । तस्मात् ‘कलौ पतति कर्मणा’ इति कलौ कर्मणा  
ब्रह्महन्नादिना पतति, न तु संसर्गोऽपि व्याख्येयम् । इदानीन्तनानां संसर्ग-  
निमित्तकप्रायश्चित्ताचरणं च पापक्षयार्थमेवेति ग्रन्थं समर्थयन्ते ।—



## अथ प्रायश्चित्तम् ।

मनुः— ( ११।१८१ )

‘यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।

स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥’ इति ।

पतितपदं पापिमात्रोपलक्षकम् ,

‘संसर्गी येन संसर्गं कुर्यात्तद्व्रतमाचरेत् ।’

इति जाबालोक्तेः । मतिपूर्वेऽपि संसर्गे न मरणातिदेशः, किंतु द्वादशाब्दस्यैव; व्रतपदात् । अत्र च सत्यप्यतिदेशे पूर्णमेव द्वादशाब्दं

— अत्र केचिदुपन्यस्यन्ति— पापस्याव्यवहार्यत्वं नरकोत्पादकत्वम् ; ‘द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनम्’ (३।३।४) इति गौतमात्, ‘अधोऽधः पतनात् पुंसां पातकं परिकीर्तितम् । नरकामिषु घोरेषु पतनात् पापमुच्यते ॥’ इति भविष्याच्च । तत्र नरकोत्पादकत्वसत्वेऽप्यव्यवहार्यत्वं नास्तीति कथमुच्यते ? । न च प्रायश्चित्तेन नरकोत्पादकत्वेऽपि व्यवहारनिरोधिकाया नाशवदेतदिति वाच्यम्, वैषम्यात् । तथा हि— अकामकृतस्य महापापादेः प्रायश्चित्तेन नाशः, कामकृते तु व्यवहार्यतामात्रम् ; ‘प्रायश्चित्तैः ( याज्ञ. ३।२२६ ) इति शास्त्रात्, ‘विहितं यदकामानां’ ( पृ. १२ ) इति वचनान्यथानुपपत्तेश्च । इह तु ‘पतितेन सहोषित्वा’ ( पृ. १८५ ) इति देवलोक्तेः संसर्गिणोऽप्यब्दान्ते पातित्येन प्रायश्चित्तं विना व्यवहाराङ्गीकारासम्भवात् ब्रह्महननादिना शक्तिद्वयवत्पापं जायते, संसर्गेण त्वेकशक्तिमत्पापमित्यत्र नियामकाभावाच्च । महापापे मरणान्तस्य प्रायश्चित्तत्वे व्यवहारानुपयोगित्वात्तरकनिवर्तकमात्रं परिशेषात् प्रतात्मकं व्यवहारोपयोगि, प्रकृते तु व्यवहारस्य प्रागेव सिद्धत्वात्तद्ब्रह्म इत्यादि-दूषणगणापत्तेः; ‘कामतोऽव्यवहार्यस्तु’ ( याज्ञ. ३।२२६ ) इत्यत्राकारप्रश्लेषेणाव्यवहार्यत्वादिनां शङ्कराचार्याणां संसर्गपात्ये व्यवहाराभावस्येष्टत्वात् । तस्मात् ‘संसर्गदोष’ इत्यस्य ब्रह्महननादौ प्रायश्चित्ते कृतेऽपि व्यवहाराभावः; संसर्गे तु कलौ प्रायश्चित्ते कृते स नास्तीत्येवार्थः— इति ।

‘संसर्गदोष’ इत्यत्र संसर्गपदं संसर्गिसंसर्गपरम्, ‘क्तरारं तु कलौ युगे’ इति कर्तृत्यागविधिना तत्संसर्गे दोषप्रत्ययात् । ‘कलौ कर्तैष’ इति तु साक्षात् संसर्गिणः पातित्यामावव्यञ्जकमिति तु भट्टदिनकरः ।—कृ. भ.

१ न हि मरणस्य व्रतशब्दवाच्यत्वमस्ति, येन तस्यातिदेशसम्भवः । तस्मादुक्तैव व्याख्या गरीयसी ।—प्रा. मु.



भवति, 'द्वादशभिर्बर्षैर्महापातकिनः पूयन्ते' इति हारीतोक्तैः । न चेदं संसर्गिभिन्नमहापातकिपरम्,

‘रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।

व्रतेनैतेन शुद्ध्यन्ति महापातकिनस्त्वमे ॥’ ( १७।३ )

इति शङ्खवाक्येनोपसंहारादिति वाच्यम् ; महापातकसंज्ञाया आनर्थ-  
क्यापत्तेः । शङ्खवाक्यं तु संसर्गिणोऽप्युपलक्षणार्थम् । कामकृते ब्रह्मवधे  
तत्संसर्गोऽपि च कामकृते मरणतुल्यचतुर्विंशत्यब्दं, अकामतस्तु द्वादशा-  
ब्दमिति केचित् । विज्ञानैश्वरादयस्तु चतुर्विंशत्यब्दस्य मरणतुल्यत्वे  
मानाभावात्कामकृते वधे संसर्गे च द्वादशाब्दमेव । अकामकृते तु  
षडब्दमित्याहुः । अकामतः सद्यःपतनहेतुसंसर्गे तु वसिष्ठः—(२०—५०)  
‘पतितसम्प्रयोगे तु ब्राह्मेण वा सौवेण वा यौनेन वा यास्तेभ्यः  
सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदुदीचीं दिशं  
गत्वाऽनश्नन् संहितामधीयानः पूतो भवति’ इति ।

पराशरः ( ४।८—१३ )

‘संसर्गमाचरन्विप्रः पतितादिष्वकामतः ।

पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥

मासार्द्धं मासमेकं वा मासत्रयमथापि वा ।

अब्दार्द्धमब्दमेकं वा भवेदूर्ध्वं तु तत्समः ॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ।

चरेत्सान्तपत्नं कृच्छ्रं तृतीये पक्षे एव तु ॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पञ्चमे मतः ।

षष्ठे चान्द्रायणं कुर्यात्सप्तमे त्वैन्दवद्वयम् ॥

अष्टमे वा तथा पक्षे षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ।’ इति ।

ऊर्ध्वमित्यनेन वर्षद्वयव्यापी संसर्गो गृह्यते; अज्ञानतः कृतस्य  
तादृशस्यैव पातित्यापादकत्वात् । एतानि प्रायश्चित्तान्यकामकृतसंसर्ग-  
विषयाणि ।

कामकृते तु मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे—

‘पञ्चाहे तु चरेत्कृच्छ्रं दशाहे तप्तकृच्छ्रकम् ।

पराकस्त्वर्द्धमासे तु मासे चान्द्रायणं चरेत् ॥

१ एषु श्लोकेषु भूयान् पाठभेदो मूले ।



मासत्रये तु कुर्वीत कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम् ।  
 वाष्मासिके तु संसर्गे कृच्छ्रं त्वद्वार्धमाचरेत् ॥  
 संसर्गे त्वान्दिके कुर्याद्वद्वं चान्द्रायणं ततः ।' इति ।

—आन्दिक् इति किञ्चिन्न्यूने द्रष्टव्यम् । पूर्णे तु द्वादशाब्दविधानात् ।  
 उशनाः— 'कृतलक्षणैर्दर्शनस्पर्शनसम्भाषणादि वर्जयेत् । दर्शने  
 ज्योतिषां दर्शनं, स्पर्शने हृदयालम्भनम्, सम्भाषणे ब्राह्मणसम्भाषणं,  
 पुनरुपस्पर्शनं च' इति । कृतलक्षणैः श्रपदादिनाङ्कितैः— पतितैरिति  
 यावत् । स्पर्शनं च परम्परया विवक्षितम्, साक्षात्पतितस्पर्शं ज्ञान-  
 विधानात् ।

यथा मनुः— ( ५।८४ )

'दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सृत्तिकां तथा ।

शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥'

सम्भाषणं द्विचतुराद्यावृत्तम्, सकृत्सम्भाषणे—

'पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्'

इति लघुप्रायश्चित्तश्रवणात् ।

बृहस्पतिः—

'पतितानां गृहं गत्वा भुक्त्वा च प्रतिशृण्व च ।

मासोपवासं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ॥'

अत्र चान्द्रायणमज्ञानाभ्यासे । मासोपवासस्तु ज्ञानाभ्यासे ।  
 भोजनं तदन्नस्येति केचित् । एकपङ्कावित्यपरे । भोजने वर्षस्य पातित्या-  
 पादकत्वाद्वृहगमनप्रतिग्रहयोरपि वर्षमेव । इत्यमेव शूलपाणिः । शङ्खः—  
 'अमेध्यपतितचण्डालपुष्कसरजस्वलावधूतकुणिकुम्भिकुनखिस्पृष्टान्नानि  
 भुक्त्वा कृच्छ्रमाचरेत्' इति । इदं च सकृदज्ञानतः । ज्ञानतस्तु कृच्छ्रद्वयम् ।

पतितस्वामिकान्नभोजने त्वाह प्रचेताः—

'पतितान्नं तु यो भुङ्क्ते सप्ताहमुदके वसेत् ।

पानीयपानतश्चैव कुशवारि पिबेन्न्यहम् ॥'

इदं च सकृदज्ञानविषयम् । पतितामान्नभक्षणे तत्सिद्धान्नभक्षणस्य  
 चतुर्थो भागः, चाण्डालान्नभक्षणे तथा दर्शनात् ।



तथा च विष्णुः— ( ५१।५७-५८ ) ‘चाण्डालान्नं मुक्त्वा त्रिरात्र-  
मुपवसेत् । सिद्धान्नं मुक्त्वा पराकः’ इति ।

पतितोच्छिष्टभक्षणेऽङ्गिराः— ( २७ )

‘चाण्डालपतितादीनामुच्छिष्टस्य च भक्षणे ।

द्विजः शुष्येत्पराकेण शूद्रः कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥’ इति ।

एतदपि सकृदज्ञानत एव ।

मार्कण्डेयः—

‘अपाङ्केयस्य यः कश्चित्पङ्क्तौ मुङ्क्ते द्विजोत्तमः ।

अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

अत्र ब्रह्महादिचतुष्टयसंसर्गे पूर्णमेव व्रतमतिदिश्यते । इतरपापिसंसर्गे  
तु चतुर्थीशोनम्—

‘यो येन संपिबेदूर्ध्वं सोऽपि तत्तुल्यतामियात् ।

पादन्यूनां चरेत्सोऽपि तस्य तस्य व्रतं द्विजः ॥’

इति व्यासोक्तेः ।

इतरपापेषु यो येन पापिना संसृज्यते, स तदीयमेव प्रायश्चित्तं  
पादोनं कुर्यात् । तेनाद्यः संसर्गी नवाब्दे, द्वितीयः पादोनं सप्ताब्दमित्यादि ।

यत्तु महापापविषये विज्ञानेश्वरः—‘द्वितीयसंसर्गी पादोनं, तृतीयो-  
ऽर्द्धं, चतुर्थः पादं’ इत्याह; यच्च शूलपाणिः—आद्यः पादोनं, द्वितीयोऽर्द्धं,  
तृतीयः पादं, चतुर्थो न किञ्चित्’ इति;—

‘एतदन्नाशिनो विप्राः कृच्छ्रं तेषां विधीयते ।

तद्भोजिनोऽर्द्धकृच्छ्रेण तदन्नादास्तु पादतः ॥’

इति चाण्डालान्नसंकरे व्यासोक्तेः,

‘मुक्तं यैस्तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां विधीयते ।

तेषामपि च यैर्मुक्तमर्द्धं तेषां विधीयते ॥

तेषामपि च यैर्मुक्तं कृच्छ्रपादो विधीयते ।’

इति तत्रैवापस्तंबोक्तेश्च; तत्र एतयोर्वाक्ययोश्चाण्डालान्नसंसर्गीविषय-  
त्वेन साक्षात्पापिसंसर्गविषयत्वेन तत्र लिंगदर्शनता वाच्या; सा तु  
प्रत्यक्षव्यासवाक्येन बाध्यते ।



अथ निषिद्धस्पर्शे ।

याज्ञवल्क्यः—

‘चंडालपुष्कसम्लेच्छभिलषारसिकादिकान् ।

महापातकिनश्चैव स्पृष्ट्वा स्नायात्सचैलकः ॥’

षट्त्रिंशन्मते—

‘बौद्धान्पोशुपेतांश्चैव लोकायतिकनास्तिकान् ।

विकर्मस्थान् द्विजान् स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥’

मनुः—( ५।८४ )

‘दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ।

शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ॥’

—दिवाकीर्तिश्चांडालः । एतदकामतः,

तथा च बृहस्पतिः—

‘दिवाकीर्तिं चितिं यूपं पतितं च रजस्वलाम् ।

स्पृष्ट्वा प्रमादतो विप्रः स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥’

कामतोऽपि स एव—

‘पतितं सूतिकांस्तस्य शवं स्पृष्ट्वा च कामतः ।

स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’

स्नाने विशेषमाह शातातपः—( वृ.—२२-२३ )

‘चांडालं पतितं व्यंगमुन्मत्तं शवमन्त्यजम् ।

सूयकां सूतिकां नारीं रजसा च परिप्लुताम् ॥

श्वकुक्कुटवराहांश्च ग्राम्यान्संस्पृश्य मानवः ।

सचैलं सशिरः स्नात्वा तदानीमेव शुद्ध्यति ॥’

छागलेयोऽपि—

‘चांडालं पतितं स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ।

शवं तत्स्पृष्टिनं चैव चैत्ययूपं रजस्वलाम् ॥’

अत्र श्वादिस्पर्शे यत्स्नानं, तत्त्वशिरोदेशस्पर्शे । अन्यत्र त्वाचमनम् ।

तदाह शातातपः—

‘रजकश्चर्मकारश्च व्याधजालोपजीविनौ ।

निर्णेजकः सूचिकश्चटकः शैलूपकस्तथा ॥



मुखेभगस्तथा श्वा च वनिता सर्ववर्णगा  
चक्री ध्वजी वधयघाती ग्राम्यशूकरकुक्कुटौ ॥  
एभिर्यदङ्गं संस्पृष्टं शिरोवर्जं द्विजातिषु ।  
तोयेन क्षालनं कृत्वा आचांतः शुचितामियात् ॥ '

कामतः शिरःस्पर्शे तु वायुपुराणे—

‘उदक्यां सूतिकां चैव श्रानमंत्यावसायिनम् ।  
नग्नादीन्मृतहारांश्च स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥  
स्नात्वा सचैलं मृद्धिञ्च शुद्धयेद्वाद्दशभिर्नरः ।’

—नग्नाः बौद्धादयः ।

तथा च विष्णुपुराणे—( ३।१७।५ )

‘सर्वेषामेव वर्णानां त्रयी संवरणं नृप ।  
तां समुज्जति यो मोहात्स नम्रः पापकृन्तरः ॥’ इति ।

गार्ग्यः—

‘क्रव्यादश्चखरोष्ट्रैश्च स्पर्शे व्यवहिते द्विजः ।  
अचैलं वा सचैलं वा स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥’

मतिपूर्वे सचैलमन्यदाऽचैलम् । तथा—

‘शूद्रं स्पृष्ट्वा निषोदं च शुद्धयेदाचमनाद्विजः ।  
तद्धीनस्पर्शनाद्यत्नात्प्राणायामैस्तपोबलात् ॥’

अत्राचमनं स्नानासमर्थस्य, सच्छूद्रस्पर्शे वा ।

अत एवापराके स्मृत्यन्तरम्—

‘एडकं कुक्कुटं काकश्चशूद्रांत्यावसायिनः ।  
दृष्ट्वैतानाचमेत्कर्म स्पृष्ट्वा तान् स्नानमाचरेत् ॥’

—कर्म इति कर्मकाल इत्यर्थः ।

१ ऋग्यजुःसामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृत्तिर्द्विज ! । एतामुज्जति यो मोहात्स नम्रः  
पातकी स्मृतः ॥—मू. पा.

२ येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् । ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भि-  
स्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ ( ३२-६८ )



वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

‘चंडालपुल्कसस्लेच्छमल्लकापालिपारदान् ।

उपपातकिनां चैवं स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ॥’

सर्वर्तः—

‘कैवर्त्तमृगगुव्याधशौनिशाकुनिकानपि ।

रजकं च तथा स्पृष्ट्वा स्नात्वैवाशनमाचरेत् ॥’

यस्त्वापस्तंबः—

‘चर्मकारं च रजकं धीवरं नटमेव च ।

एतान्स्पृष्ट्वा द्विजो मोहादाचामेत्प्रयतौऽपि सन् ॥

एतैः संस्पृष्ट उच्छिष्ट एकरात्रं पयः पिबेत् ।

तैरुच्छिष्टैस्त्रिरात्रं स्याद् घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

तत्राचमनमशक्तस्य, अकामतो वा ।

शाट्यायनिः—

‘कापालिकानां संस्पर्शं स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ।

प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’

शातातपः—

‘यस्तु छायां श्रृपाकस्य ब्राह्मणो ह्यधिगच्छति ।

तत्र स्नानं तु तस्यैव घृतप्राशो विशोधनम् ॥’

एतच्च चिरकालाधिष्ठान इति भवदेवः ।

सर्वांगीणे तु चंडालस्पर्शं प्रचेताः — ‘स्वकायेन चंडालकायाभि-  
स्पर्शने त्रिरात्रं शुद्धिः’ इति ।

यस्त्वापस्तंबः—

‘सर्वेषामंत्यजादीनां स्पर्शनाचमनं विदुः ।’

इति; तदातुरस्य ।

भदिरास्पर्शं तु मनुः—

‘जान्वयः स्नानमात्रं स्यादानामेरेकरात्रकम् ।

नाभेरुर्ध्वं त्रिरात्रं स्यान्मदिरास्पर्शने विधिः ॥’



यत्तु भवदेवीयं स्मृत्यन्तरम्—

‘मद्येन स्पृश्यते यस्तु ब्राह्मणः शंसितव्रतः ।

उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥’

इति; तद् व्रतस्थस्य जान्वद्यःस्पर्शे ।

मार्कण्डेयपुराणे— ( ३२।४१-४२ )

‘अभोज्यसूतिकाषण्डमाज्जरीराखुश्रुकुक्कुटान् ।

यतितापविद्धचांडालान्मृतहारांश्च धर्मवित् ॥

संस्पृश्य शुद्ध्यति स्नानादुदक्याग्रामशूकरौ ।’

—अभोज्याः रजकादयः । अपविद्धो लोकबाहिष्कृतः । मृतहारो मूल्येन शवहारकः ।

तथांगिराः—

‘भासवायसमार्जारखरोष्टं च श्रूकरान् ।

अमेध्याति च संस्पृश्य सचैलो जलमाविशेत् ॥’ इति ।

अत्र मार्जारो वनमार्जारो न तु गृहस्थः, तस्य शुचित्वात् ।

यथा सुमंतुः — ‘स्त्रीबालमशकमक्षिकामाज्जरीरमूषिकाछायासन-  
शयनान्बुविप्रुषो नित्यं मेध्याः ।’

बृहस्पतिरपि—

‘स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कथंचन ।

मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः ॥’

मशकमक्षिकासहचर्यान्मार्जारोऽत्र गृहस्थ एवेति शूलपाणिः  
मिताक्षरायां तु मार्जारस्पर्शे स्नानमुच्छिष्टसमये अनुष्ठानसमये वेति ।

आपस्तंबः—( ७।१४ )

‘एकशाखां समारूढश्चांडालो वा रजस्वला ।

ब्राह्मणस्तत्र निवसन् सवासा जलमाविशेत् ॥’

शाखाग्रहणमेकावयव्युपलक्षणार्थं, तेनैकपाषाणादेरपि ग्रहणम् । एत-  
दकामतः, कामतस्तु द्विगुणम् ।

१ ‘देवत्यागी गुरुत्यागी गुरुपत्न्युज्जकस्तथा । गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः  
प्रचक्षते ॥’ मार्क. पु. ३२।६७



अभ्यासे तु स एव—

‘ एकवृक्षसमारूढश्चांडालोऽथ रजस्वला ।

अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ’

एतच्च स्नानानंतरं कार्यम् ।

यमः—

‘ चांडालैः श्वपेचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ।

न वसेच्चैव यो रात्रौ सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥

अथ तत्र वसेद्रात्रावज्ञानादविचक्षणः ।

तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्त्तते ॥ ’

पराशरः—( ७।२१ )

‘ अस्तंगते यदा सूर्ये चंडालं पतितं स्त्रियम् ।

सूतिकां स्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ? ॥

जातवेदः सुवर्णं च सोममार्गं तथैव च ।

ब्राह्मणानुगतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ’ इति ।

रात्रौ स्नाने विशेषमाह देवलः—

‘ दिवाहृतैर्जलैः स्नानं निशि कुर्यान्निमित्ततः ।

प्रक्षिप्य च सुवर्णं च सन्निधाप्य च पावकम् ॥ ’

शातातपः—( वृ. शा. २६-२७ )

‘ आदित्येऽस्तमिते रात्राऽवस्पृश्यं स्पृशते यदि ।

भगवन्केन शुद्धिः स्यात्तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥

अनस्तमित आदित्ये संगृहीतं तु यज्जलम् ।

तेन सर्वात्मना शुद्धिः शवस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥ ’

पराशरः—

‘ स्नानमाचमनं प्रोक्तं दिवोद्धृतजलेन तु । ’

शिशोर्विशेषमाह वृद्धशातातपः—

‘ शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम् ।

रजस्वलादिसंस्पर्शं स्नातव्यं तु कुमारकैः ॥ ’

स एव—

‘ प्राक्चूडाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः ।

कुमारस्तु स विज्ञेयो यावन्मौजीनिबन्धनम् ॥ ’



शवस्य चंडालसंस्पर्शे षट्त्रिंशन्मते—‘चंडालशवसंस्पर्शे कृच्छ्रं कुर्यात् ।  
यानशय्यासने तु त्रिरात्रम् । जीवचंडालेन सह पानादिषु त्रिरात्रम् ।’  
तथा—‘ब्रणबंधनाभ्यंजनरुधिरौत्पादनेषु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्’  
ब्रणबंधनादीनां चंडालं प्रतिकरणे, चंडालेन वाऽऽत्मनि तत्करणे ।

आपस्तम्बः—

‘येनकेनचिदभ्यक्तश्चण्डालं पतितं स्पृशेत् ।

उपवासेन चैकेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥’

एतच्चाभ्यासे ।

अनभ्यासे त्वपराकं प्रचेताः—

‘चंडालो यदि कायस्य रक्तमुत्पादयेत्कचित् ।

त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादेकहासेन चोत्तरे ॥’

उत्तरे क्षत्रियादौ, त्रिरात्रादेकैकस्य हासः ।

ऋतुः—‘चंडालस्योच्छिष्टदाने चंडालऋतुदर्शने गीतवादित्रश्रवण-  
भैषज्यक्रियायां च द्विरात्राभोजनेन शुद्धिः । अशुचिं दृष्ट्वाऽऽदित्यमीक्षेत ।  
प्राणायामं कृत्वा पंचदशमात्रकम् ।’

सुमंतुः—‘चंडालदर्शने सूर्यदर्शनम् । भाषणे ब्रह्माभिव्याहारः । स्पर्शने  
सचैलं स्नानम्’ इति ।

—ब्रह्म गायत्री । कचिदशुचिदर्शनेऽपि गायत्रीजपः ।

तथा च शंखलिखितौ—‘अशुचिदर्शने गायत्रीमेव जपेत्’ इति ।

गौतमः—(१।१।१७—१९) ‘न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत ।  
संभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् । ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत’ इति ।

गौतमः—( ३।४।२८ ) तत्पान्नघनलाभबधेषु पृथग्वर्षाणि’ इति ।

—तत्पं भार्या । वधो विघ्नः । पृथक् प्रत्येकम् ।

वृद्धपराशरः—

‘दारान्नघनलाभानां बुद्ध्वा विघ्नं समाचरेत् ।

प्रत्येकं प्राकृतं कुर्याद्ब्रह्मचर्यं तु वार्षिकम् ॥’ इति ।

मनुः—( ५।८५ )

‘आचस्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ।

सौरान्मंत्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तिवः ॥’



देवलः—

‘चंडालधर्मसंयोगे प्राजापत्यं समाचरेत् ।  
चरेन्निरात्रं चंडालकूपतीर्थनिषेवणात् ॥’

धर्मसंयोग उपदेशः ।

पराशरः—

‘चंडालैः सह सुप्त्वा तु त्रिरात्रमुपवसेत् ।  
चंडालैकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥’

एतच्चालोकालसाध्ये, अन्यत्र प्रायश्चित्ताधिक्यस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।

अपराकें वसिष्ठः—

‘चाण्डालेन तु संस्पृष्टं कांस्यभांडं समृन्मयम् ।  
अज्ञानात्कांस्यभोजी तु मृन्मये जलपानकृत् ॥  
कांस्यं भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं जलपाने तु कृच्छ्रकम् ।’

—कृच्छ्रकः पादकृच्छ्रः ।

अथ चांडालसंकरे ।

पराशरः—( ६३४-४९ )

‘अविज्ञातस्तु चांडालो यत्र वैशमनि तिष्ठति ।’

इत्युपक्रम्य—

‘दध्ना सर्पिःप्रयोभ्यां च युक्तं गोमूत्रयावकम् ।  
भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥  
त्र्यहं भुंजीत दध्ना च सर्पिषा त्र्यहमेव च ।  
त्र्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥  
भावदुष्टं न भुंजीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ।  
त्रिपलं क्षीरदध्नोश्च पलमेकं तु सर्पिषः ॥  
अकारेषु भवेच्छुद्धिरारकूटे सकांस्यके ।  
जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागस्तु मृन्मये ॥  
कुसुंभगुडकार्पासं लवणं तैलसर्पिषी ।  
द्वारे कृत्वा च धान्यानि दद्याद्वैशमनि पावकम् ॥



एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ।  
 त्रिशतं गोवृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥  
 पुनर्लेपनस्नातेन होमजप्येन शुद्ध्यति ।  
 आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥ ' इति ।

—स्वल्पकालसम्पर्के एतत् ।

यत्तु संवर्तः—

‘अन्त्यजः पतितो वाऽपि निगूढो यत्र तिष्ठति ।  
 सम्यग्ज्ञात्वा तु कालेन ततः कुर्याद्विशोधनम् ॥  
 चान्द्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ।  
 प्राजापत्यं तु शूद्राणां शेषाणामिदमुच्यते ॥  
 यैस्तत्र भुक्तं पक्वान्नं तेषामुक्तो विधिक्रमः ।’

—शेषाणां प्राजापत्य इत्यर्थः ।

‘तेषामपि तु यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादो विधीयते ।  
 कूपैकपानदुष्टा ये तथा संसर्गदूषिताः ।  
 सर्वानेवोपवासेन पञ्चगव्येन शोधयेत् ॥  
 बालापत्या तथा रोगी गर्भिणी वृद्ध एव वा ।  
 तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ॥’

बहुकालाभ्यास एतत् ।

अत्र विशोधनप्रकारं प्रायश्चित्तान्तरं चाह च्यवनः— ‘चण्डालसङ्घरे  
 भवनदहनम् । सर्वशृङ्गाण्डमेदनम् । दारवाणां तु तक्षणम् । शङ्खशुक्ति-  
 मुवर्णरजतचैलानामग्निः प्रक्षालनम् । कांस्यताम्राणामाकरे शुद्धिः ।  
 सौवीरदधितक्राणां परित्यागः । शेषरसद्रव्यरक्षणम् । गोमूत्रयावकाहारो  
 मासं भक्षयेत् । बालवृद्धस्त्रीणामर्द्धप्रायश्चित्तम् । आपोदशाद्वालाः,  
 सप्तस्यूर्ध्वं वृद्धाः । चीर्णे प्रायश्चित्ते ब्राह्मणभोजनम् । गोशतं दद्याद-  
 भावे सर्वस्वम्’ इति ।

—एतदतिचिरकालसङ्घरे पराशरः— ( ६।४३ )

‘चण्डालैः सह संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ।  
 गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥’ इति ।



कृत्वेति शेषः । मासाद्धेन मासश्चाद्धं च मासाद्धः । मासासम्पर्कं मासेन, तदद्धसम्पर्कं त्वद्धेन । चाण्डालशब्देन तत्समाः पुल्कसादयोऽप्युपलक्ष्यन्ते ।

अत एव संवर्तः— ( १८० )

‘चाण्डालैः सङ्करे विप्रः श्वपाकैः पुल्कसैरपि ।

गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥’

मासादधिककिञ्चित्कालसङ्करे तु हारीतः— ( २०।३०—३२ )

‘चाण्डालैः सह संयोगे प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।

विप्रान्दशावरान्कृत्वा तैरनुज्ञाप्य शासनात् ॥

आकण्ठस्य प्रमाणं तु कुर्याद्गोमयकर्दमम् ।

तत्र स्थित्वा त्वहोरात्रं वायुभक्षः समाहितः ॥

वालकृच्छ्रं ततः कुर्याद्गोष्ठे वसति सर्वथा ।

सकेशं वपनं कुर्यात्परमां शुद्धिमृच्छति ॥’

इति वालकृच्छ्रलक्षणमुक्तम् ( पृ. ४१ पं. २१ पृ. ४२ पं. १ ) ।

यत्तु हारीतः—

‘चण्डालश्चपचानां च सङ्करे समुपस्थिते ।

अहोरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं षडहं स्मृतम् ॥

अविज्ञातकचण्डालः सप्ताहं निवसेद्यदि ।

तस्य ज्ञात्वोपपन्नस्य विप्राः कुर्युरनुग्रहम् ॥

दधिक्षीरघृतैर्युक्तं कृच्छ्रं गोमूत्रयावकम् ।

प्राशयेत्सह भृत्यैस्तु मासमेकं निरन्तरम् ॥’ इति ।

—तदहोरात्राद्यतिसङ्करे ।

पराशरः— ( ६।४४—४५ )

‘रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी ।

चातुर्वर्ण्यस्य गेहे तु अज्ञाता ह्यधितिष्ठति ॥

ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्याद्धमेव तु ।

गृह्दाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥’ इति ।

१ पूर्वोक्तस्य ‘दध्ना सर्पिःपयोम्यां च—’ ( ६।३६—४० ) इत्यादि-  
नोक्तस्य ।



अत्र यादृशचाण्डालसंसर्गे यत्, रजकादितादृशसंसर्गे तदर्थम् ।  
रजक्यादिषु लिङ्गमविवक्षितम् ।

बृहस्पतिः—

‘अकामतश्चापदि वा यदा जायेत सङ्करः ।  
तदा कार्य्यस्तिर्लैर्होमो गायत्र्या जपनं तथा ॥  
स्नात्वाऽघमर्षणं कुर्यात्प्राणायामाश्च सङ्करे ।  
गायत्रीसूक्तजपनं तिलैर्होमं च शक्तिः ॥  
अकामतः कृते स्वल्पे शुद्धिरेषा प्रचोदिता ॥’ इति ।

अथोच्छिष्टादिस्पर्शे आपस्तम्बः— ( ४ )

‘येनकेनचिदुच्छिष्टः संस्पर्शं यः परैः सह ।  
गच्छेत्सद्यः समाप्लुत्य प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥  
चण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विष्मूत्रे कुरुते द्विजः ।  
त्रिरात्रं तत्र कुर्वीत भुक्त्वोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥’ इति ।

अत्र षडुपवासे प्राजापत्यतुल्यता । अत्रानुच्छिष्टस्य यत्स्पर्शे स्नानं,  
तस्योर्ध्वोच्छिष्टस्य कामतस्तत्स्पर्शे षडुपवासतुल्यः प्राजापत्यः ।

तथा च हारीतः—

‘अनुच्छिष्टस्य संस्पर्शे स्नानं येन विधीयते ।  
उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥’ इति ।

तथा च सुमन्तुः—

‘चण्डालं पतितं स्पृष्ट्वा तथा नारीं रजस्वलाम् ।  
उच्छिष्टां तु द्विजः स्पृष्टः प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥’

—एतत्कामतः ।

यत्तु आपस्तम्बः—

‘भुक्त्वोच्छिष्टोऽन्त्यजैः स्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ।  
अर्द्धोच्छिष्टे स्मृतः पादः पादं आमामशने तथा ॥’ इति ।  
तत्र अर्द्धोच्छिष्ट इति येन मुखे ग्रासप्रक्षेपमात्रं कृतं, न तु निगीर्णः ।  
अकामतः स एव—( ४।३-४ )

‘भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा ।  
प्रमादात्स्पर्शनं गच्छेत् तत्र कुर्याद्विशोधनम् ॥



गायत्र्यष्टसहस्रं तु दुपदानां शतं तथा ।

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥' इति ।

यत्तु स एव—

‘चण्डालेन तु संस्पृष्टो विशौचस्तु द्विजोत्तमः ।

उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

तदप्यकामतः ।

काश्यपः—

‘श्वशूकरान्त्यचाण्डालमद्यभाण्डरजस्वलाः ।

यद्युच्छिष्टः स्पृशेत्तत्र कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥’

—एतत्कामतोऽभ्यासे । मद्यं सुरा । अन्यत्रालपप्रायश्चित्तस्योक्तत्वात् ।

तथा च वृद्धशातातपः— ( २५ )

‘उच्छिष्टः संस्पृष्टोऽपि मद्यं शूद्रं शुनोऽशुचीन् ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’

यत्तच्छिष्टादेः आदिस्पर्शो संबर्तः— ( १८२ )

‘कृतमूत्रपुरीषो वा मुक्तोच्छिष्टोऽथवा द्विजः ।

आदिस्पर्शो जपेदेव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥’ इति ।

तदकामतः ।

यत्त्वपराकं आपस्तम्बः—

‘उदक्या स्पृष्ट उच्छिष्टो विद्वराहश्च कुकुटैः ।

काकमाज्जरक्रव्याद्भिरुपवासेन शुद्ध्यति ॥’

इति; तदप्यकामतः ।

यत्तु व्याघ्रः—

‘चंडालोदकसंस्पृष्टः स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ।

उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्टस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥’

इति; तदप्यकामत एव ।

यत्तु दक्षः—

‘पाने मैथुनसंसर्गे तथा मूत्रपुरीषयोः ।

संस्पर्शे यदि गच्छेत्तु शबोदक्यांत्यजैः सह ॥



दिनमेकं चरेन्मूत्रे पुरीषे तु दिनद्वयम् ।

दिनत्रयं मैथुने स्यात्पाने तु स्याच्चतुष्टयम् ॥ १

इति; तत्कामतः ।

संवर्तः—

‘कर्मारं रजकं वेणं धीवरं नटमेवं च ।

एतैः स्पृष्टस्तथोच्छिष्ट एकत्रायं पयः पिबेत् ॥

तैश्चोच्छिष्टैस्त्रिरात्रं स्याद् घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

अधोच्छिष्टविषयं चेदम् । अध्वोच्छिष्टे तु त्रिरात्रम् ।

तथा च लघुहारीतः—( १२-१३ )

‘उच्छिष्टः संस्पृश्यस्तु नटरजकमोचकान् ।

अधोच्छिष्टो यदा स स्यादेकरात्रमभोजनम् ॥

अध्वोच्छिष्टो यदा स स्यात्प्रायश्चित्तं भवेद्विदम् ।

उपवासस्त्रिरात्रं स्याद्घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

अतश्च अध्वोच्छिष्टस्य तैश्चोच्छिष्टैः स्पर्शं षड्रात्रम् । एवमेव यत्रो-  
च्छिष्टस्य चांडालादिस्पर्शं षड्रात्रं, तत्राधोच्छिष्टस्य तद्वद् त्रिरात्रम् ।

अत एव शातातपः—

‘उच्छिष्टस्तु स्पृशेद्विप्रश्चांडालं तु कथंचन ।

अध्वोच्छिष्टस्तु संस्पृश्य द्विजः सांतपनं चरेत् ॥

अधोच्छिष्टस्त्रिरात्रांते पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

सांतपनमिह सप्ताहसाध्यम् ।

यत्तु चांडालादीनुपक्रम्य वृद्धशातातपः—( २४ )

‘अशुद्धान्स्वयमप्येतानशुद्धश्च यदा स्पृशेत् ।

विशुद्ध्यत्युपवासेन त्रिरात्रेण ततः शुचिः ॥’

तथा एतानेव प्रकृत्याह देवलः—

‘अशुद्धान्स्वयमप्येतानशुद्धो यदि संस्पृशेत् ।

विशुद्ध्यत्युपवासेन पुनः कृच्छ्रेण वा पुनः ॥’

१ कर्मारो लोहकारः ‘लोहकारश्च कर्मारः’ ( स, सं. १।१२।३० ) ।

२ मोचकश्चर्मकारः—प्रा. वि. टी. ‘आयोगव्यां द्विजाज्जातो विगवणः कवचा-  
दिहत् । ( मोचिकः । )—शु. क. ।

३ ‘शातातपश्चो यथा’ इति पाठान्तरम् ।



इति; तत्राहुद्वानिति स्वरूपकीर्तनम् । मूत्रादिकरणेन वा । स्वयमशुद्ध  
इत्यथोच्छिष्टादिना । एकरात्रमापद्यज्ञानतः । त्रिरात्रं ज्ञानतः । कृच्छ्रस्व-  
भ्यासे । मिताक्षरायां तु कृच्छ्रः श्रपाकादिविषयः, आदिषु तूपवास इति ।

यत्तु शापातपः—

‘अंत्यजे हस्तकाष्ठेन वाससा स्पृष्ट एव वा ।

प्रक्षाल्यांगं तदाचामेदुच्छिष्टस्तु निशां क्षिपेत् ॥’

इति; तदप्युक्त एव विषये ।

उच्छिष्टस्य पुरीषस्पर्शं लघुहारीतः—( २-३ )

‘श्वविष्टां काकविष्टां वा कङ्कगृध्रनरस्य च ।

अथोच्छिष्टस्तु संस्पृष्टः सचैलो जलमाविशेत् ॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टस्तु संस्पृष्टश्च प्रायश्चित्तमिदं चरेत् ।

उपोष्य रजनीमिकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥’

उच्छिष्टस्य चांडालान्नस्पर्शं विशेषमाह हारीतः—( ल. हा. १० )

‘उच्छिष्टस्तु स्पृशेद्विप्रश्चांडालान्नं कथंचन ।

ऊर्ध्वोच्छिष्टस्तु संस्पृष्टो द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥

अथोच्छिष्टो यदा स स्यात्प्रायश्चित्तं भवेदिदम् ।

त्रिरात्रमुपवासः स्यात्पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

पराशरः—( ७।२१ )

‘उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः ।

उपोष्य रजनीमिकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥’

उच्छिष्टश्चासावुच्छिष्टसंस्पृष्टश्चेति विग्रहः । सवर्णविषयमेतत् ।

अत्रिः—

‘उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन तु ।

दंशरूपं जपेत्पश्चाद्रायत्र्या शोधनं भवेत् ॥’

ब्रह्मपुराणे—

‘उच्छिष्टेन तु विप्रेण द्विजः स्पृष्टस्तु तादृशः ।

उभौ स्नानं प्रकुरुतः सद्य एव समाहितौ ॥’ इति ।

१ दशरूपं दशवारम् ।



उच्छिष्टं विप्रं प्रकृत्याह पराशरः—( ७।२२ )

‘अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते ।

तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥’ इति ।

यत्तु ब्राह्मे—

‘उच्छिष्टेनाथ शूद्रेण विप्रः स्पृष्टस्तु तादृशः ।

उपवासेन शुद्धः स्याच्छुना संस्पृष्ट एव च ॥’

इति; तदापचयशक्तस्य ।

देवलोऽपि—

‘उच्छिष्टं मानवं स्पृष्ट्वा भोज्यं वाऽपि समाहितः ।

तथैव हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्याचम्य शुद्ध्यति ॥’ इति

द्रव्यहस्तस्योच्छिष्टस्पर्शे मनुः—( ५।१४२ )

‘उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन ।

अनिधायैव तद्द्रव्यमाचांतः शुचितामियात् ॥’

एतच्च पेयविषयम् ।

भोज्यविषये तु वसिष्ठः—

‘प्रचरन्नन्नपानेषु यद्युच्छिष्टमुपस्पृशेत् ।

भूमौ निधाय तद्द्रव्यमाचांतः प्रचरेत्ततः ॥’

द्रव्यस्य त्वभ्युक्षणं कार्यमित्याहतुः शंखलिखितौ—‘द्रव्यहस्त उच्छिष्टो निधायाम्युक्ष्येद्रव्यम्’ इति । ।

—उच्छिष्ट उच्छिष्टस्पृष्टः । एतच्चानुच्छिष्टहस्तादिना स्पर्शे । साक्षा-  
दुच्छिष्टहस्तादिस्पर्शे त्वभोज्यमेव । यथाह वसिष्ठः—( १४।१७ )  
‘उच्छिष्टमगुरोरभोज्यं, स्वमुच्छिष्टमुच्छिष्टोपहतं च’ इति ।

उच्छिष्टस्य तैलाभ्यक्तस्य च मूत्रादिकरणे आपस्तबः—

‘तैलाभ्यक्तस्त्वनाचांतः श्मश्रुकर्मणि मेशुने ।

मूत्रोच्चारं यदा कुर्यादहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥’

उच्छिष्टस्य सूर्यादिदर्शने दोष उक्तो मार्कण्डेयपुराणे—( १४।५८ )

‘सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैः ( स्तु कामतः ) कदाचन ।

तेषां यास्यैर्नरैरक्षिन्यस्तो बहिः समिद्ध्यते ॥’



यत्र च— 'स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्' (११।२०३)

इति मनुक्तं द्रष्टव्यम् ।

तस्यैव चांडालादिदर्शने बौधायनः— 'चांडालादिदर्शने ज्योतिषां दर्शनम् । संभाषणे ब्राह्मणसंभाषणम् । उच्छिष्टदर्शने त्वेकरात्र-मुपवासः । संभाषणे द्विरात्रम् । संस्पर्शने त्रिरात्रम् । सहगमने सचैलं स्नानम्' इति ।

चांडालदर्शन इत्यनुच्छिष्टस्य । उच्छिष्टदर्शने इति उच्छिष्टस्य चांडालदर्शने इत्यर्थः । एवमग्रेऽपि ।

उच्छिष्टस्य पलांड्वादिस्पर्शे बृहस्पतिः—

'सुरापलांडुलशुनस्पर्शे कामकृते द्विजः ।

त्र्यहं पिबेत्कुशजलं सावित्रीं च जपेत्तथा ॥'

इदमूर्ध्वोच्छिष्टस्येति शूलपाणिः ।

यत्तु स एव—

'पलाण्डुलशुनस्पर्शे स्नात्वा नक्तं समाचरेत् ।

कृतोच्चारस्त्रहोरात्रमुच्छिष्टो ज्यहमाचरेत् ॥' इति ।

तद्योच्छिष्टविषयम् । ऊर्ध्वोच्छिष्टे अकामविषयं वा ॥

अथानुच्छिष्टस्य नीलीवस्त्रपरिधाने ।

अविष्यत्पुराणे— ( १।६५।८-१५ )

'शृणु दिण्डे ! महाबाहो नीलीवस्त्रस्य धारणे ।

दूषणं गणशार्दूल ! गदतो मम कृत्स्नशः ॥

पालनाद्विक्रयाच्चैव तद्वृत्तेरुपजीवनात् ।

पतितस्तु भयेद्विप्रस्त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्धयति ॥

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यत्कर्म कुरुते द्विजः ।

ज्ञानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।

वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवस्त्रस्य धारणात् ।

नीलीरक्तं यदा वस्त्रं कश्चिद्विप्रस्तु धारयेत् ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥

गोमकूपे यदा गच्छेद्भक्तो नील्यादिकः क्वचित् ।

त्रिवर्षेषु च सामान्यं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥



नीली दारु यदा भिन्वाद्वाहणस्य शरीरकम् ।

शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥<sup>१</sup>

—इदमज्ञाने । ज्ञाने तु द्विगुणम् ।

अत्रापवादः— नीलीत्यनुवृत्तावापस्तम्बः— ( ६।१ )

‘स्त्रीणां क्रीडार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति ।’ इति ।

एवमेव केशनिर्मितवस्त्रधारणे चोपवासः । ‘पञ्चगव्यं घृतं हिरण्योदकं चाधिकम्’ इति स्मृत्यर्थसारे ।

अथ रुद्रनिमोत्यस्पर्शे ।

कालिकापुराणे—

‘स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्मात्यं सवासा आप्लुतः शुचिः ॥’

अथ रजस्वलाया अस्पृश्यस्पर्शे ।

तत्र रजस्वल्योः सप्तन्योरेकगौत्रयोः स्पर्शे वसिष्ठः—

‘स्पृष्टे रजस्वलेऽन्योन्यं सगोत्रे त्वेकभर्तृके ।

कामादकामतो वाऽपि सद्यः स्नानेन शुद्ध्यतः ॥’

असप्तन्योस्तु सवर्णयोः स्पर्शे मार्कण्डेयः—

‘उदक्त्वा तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत्स्यादुदक्यया ।

तस्मिन्नेवाह्नि स्नाता शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥’

इदं चाकामतः ।

कामतस्तु काश्यपः— ( अत्रिः ९।३ )

‘रजस्वला तु संस्पृष्टा ब्राह्मण्या ब्राह्मणी यदि ।

एकरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’

यत्तु पराशरः— ( ७।११ )

‘स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा ।

तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥’

इति; तत्कामतोऽभ्यासे । सहशयनादिचिरस्पर्शे वा ।

असवर्णस्पर्शे पुनः स एवं— ( ७।१२-१४+अत्रिः ९।४-६ )

१ सकृत् स्पर्शे—माधवः ।

२ पराशरस्मृतौ भूयानेव पाठभेदो दृश्यते ।



‘रजस्वला तु संस्पृष्टा राजन्या ब्राह्मणी च या ।  
 त्रिरात्रेणैत्र शुद्धिः स्याद्वायस्य वचनं यथा ॥  
 रजस्वला तु संस्पृष्टा वैश्यया ब्राह्मणी च या ।  
 पञ्चरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥  
 रजस्वला तु संस्पृष्टा शूद्रया ब्राह्मणी च या ।  
 षड्रात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मण्या कामकारतः ॥  
 अज्ञानतश्चरेद्धर्तुं ब्राह्मणी सर्वजातिषु ।’

अत्र यथा ब्राह्मणीरजस्वलयोः स्पर्शो उपवासः पञ्चगव्याशनम् ।  
 तथाऽन्यासामपि सवर्णरजस्वलास्पर्शो तदेव । यथा ब्राह्मण्याः क्षत्रिया-  
 स्पर्शो त्रिरात्रं तथा क्षत्रियाया वैश्यास्पर्शो । वैश्यायाः शूद्रास्पर्शोऽपि तदेव ।  
 तथा च भवदेवनिबन्धे स्मृतिः—

‘रजस्वला तु या नारी अन्योन्यमुपसंस्पृशेत् ।  
 सवर्णे पञ्चगव्येन त्रिरात्रमसवर्णके ॥’

पञ्चगव्येन उपवाससहितेनेति भवदेवः ।

तथा शातातपः— ( वृ. शा. २० )

‘रजस्वले उभे नार्यावन्योन्यं स्पृशतौ यदि ।

सवर्णे पञ्चगव्येन ब्रह्मकूर्चमतः परम् ॥’ इति ।

यत्तु बृहद्यमः— ( ३।६६-७० )

‘स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा ।

कृच्छ्राद्धाच्छुद्ध्यते पूर्वा उत्तरा तु तदूर्ध्वतः ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजापि वा ।

पादहीनं चरेत्पूर्वा कृच्छ्रपादं तथोत्तरा ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजाऽपि वा ।

कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं क्षत्रिया शूद्रजापि वा ।

उपवासैस्त्रिभिः पूर्वा त्वहोरात्रेण चोत्तरा ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं क्षत्रिया वैश्यजापि वा ।

त्रिरात्राच्छुद्ध्यते पूर्वा उत्तरा तु दिनद्वयात् ॥

वर्णानां कामतः स्पर्शो शुद्धिरेषा पुरातनी ॥’ इति ।

एतच्च कामतोऽभ्यासे । दानेन पादकृच्छ्रप्रत्याम्नायेन ।



पतितचाण्डालादिस्पर्शे वृद्धवसिष्ठबृहस्पती—

पतितान्त्यश्वपाकेन संस्पृष्टा चेद्रजस्वला ।

तान्यहानि व्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

प्रथमेऽहि त्रिरात्रं स्याद्वितीये ब्रह्मेव तु ।

अहोरात्रं तृतीयेऽहि चैतुर्थे नक्तमेव च ॥

शूद्रयोच्छिष्टया स्पृष्टा शुना च ब्रह्माचरेत् ॥ ’

तान्यवशिष्टानि दिनानि व्यतिक्रम्य । अनाशकेन नीत्वेत्यर्थः ।

अत्र सर्वत्र पञ्चगव्यप्राशनमपि कर्तव्यमिति भवदेवः ।

यत्तु बौधायनः— ( अत्रिः ९।१+ल.शं. ४९+अं. ४७ )

‘ रजस्वला तु संस्पृष्टा चाण्डालान्त्यश्ववायसैः ।

तावन्तिष्ठेन्निराहारा यावत्कालेन शुद्ध्यति ॥ ’ इति ।

एतदशक्तायाः, अकामे वा ।

यत्तु वृद्धशातातपः— ( १८ )

‘ उदक्या स्रुतिका वाऽपि शवान्त्यं संस्पृशेद्यदि ।

त्रिरात्रेणैव शुद्ध्येत इति शातातपोऽब्रवीत् ॥ ’

तथा—

‘ चण्डालैः श्वपचैर्वाऽपि आत्रेयी स्पृश्यते यदि ।

त्रिरात्रोपोषिता भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ’

काश्यपः—

‘ चाण्डालेन तु संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ।

तान्यहानि व्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

त्रिरात्रमुपवासः स्यात्पञ्चगव्येन शोधनम् ।

ता निशास्तु व्यतिक्रम्य अजाघ्रातं तु कारयेत् ॥ ’

इति; तदेतत्प्रथमदिनविषयम् । शूलपाणिस्तु— काश्यपवाक्ये प्रथमा-  
दिदिनव्यवस्था नास्ति, ‘ त्रिरात्रेणैव ’ इति वृद्धशातातपवाक्यात् ।  
तथा च कामविषयमित्याह । तत्र; बार्हस्पत्येन प्रथमदिन एव त्रिरात्रस्य  
व्यवस्थितत्वात् । तद्विषयत्वमेव च न्याय्यमिति ।



उपवासासमर्थायां त्वंगिराः— ( ४६ )

‘चण्डालः श्वपचो वाऽपि यद्यात्रेयीं स्पृशेद्यदि ।

अफालकृष्टैर्वर्तेत पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ’

पञ्चगव्यपानं तु स्नानानन्तरं कार्यम् ।

चाण्डालेन सहैकवृक्षाद्यारोहणे पराशरः—

‘एकवृक्षसमारूढश्चाण्डालोऽथ रजस्वला ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ’

श्वादिस्पर्शे विशेषमाह यमः— ( १२+अत्रिः ९।१ )

‘रजस्वला तु संस्पृष्टा शुना जंवुकवायसैः ।

निराहारा भवेत्तावद्यावत्कालेन शुद्ध्यति ॥ ’

एतदकामनः ।

कामतस्तु रजस्वलानुवृत्तौ बृहस्पतिः—

‘शुना चोच्छिष्टया शूद्रा संस्पृष्टा ब्रह्माचरेत् ।

अहोरात्रं तृतीयेऽहि परतो नक्तमाचरेत् ॥ ’ इति ।

प्रथमद्वितीयदिने श्वादिस्पर्शे त्र्यहम् , परतश्चतुर्थे ।

अत्रापि ‘तान्यहानि व्यतिक्रम्य’ इति योज्यम् । ( पृ. २०९ प. २२ )

यत्तु बौधायनः— ( ल. हा. १७ )

‘रजस्वला तु संस्पृष्टा ग्राम्यकुक्कुटसूकरैः ।

श्वभिः स्नात्वा पिबेत्तावद्यावच्चंद्रस्य दर्शनम् ॥ ’ इति ।

चंद्रदर्शनं नक्तमित्यर्थः । एतदशक्तायाः । चतुर्थदिनविषयं वा । रजका-  
दिस्पर्शे तु श्वस्पर्शसमानमेव, तयोः समानत्वादिति शूलपाणिः ।

यत्तु प्रचेताः—

‘रजस्वला तु भुंजाना श्वांत्यजादि स्पृशेद्यदि ।

पंचरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ’

इति; तत्कामतोऽभ्यासे ।

भोजनकाले श्वांत्यजादिस्पर्शे तु बौधायनः—( १।३।४ )

१ संस्पृष्टा शुना चांडालराक्षसैः—पा.



‘रजस्वला तु भुंजाना आत्यजादिं स्पृशेद्यदि ।  
गोमूत्रयानकाहारा षड्त्रेण विशुद्ध्यति ॥  
अशक्तौ काञ्चनं दद्याद्विप्रेभ्यो वापि भोजनम् ॥’ इति ।

उच्छिष्टयोः परस्परं स्पर्शं त्यज्जिहाः—( ४९ )

‘उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ।

कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानैरुपोषिता ॥’ इति ।

अत्र पूर्वाशब्देन ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यस्त्रियोऽभिधीयन्ते । तेन रज-  
स्वलयोः समानजातीययोरुच्छिष्टयोः ।

ब्राह्मणीक्षत्रियवैश्यानां परस्परं स्पर्शं प्राजापेत्यः ‘स्वत्वानंतरस्पर्शं  
त्वेकैकवृद्धिरुहनीया । तद्विशुद्ध्योः परस्पर्शं तृपवाससहितप्राजापत्य-  
प्रत्याम्नायदानेन शुद्धिः । एतच्च कामतः । अकामतस्तदुद्धम् ।

शूलपाणिस्तु—

‘उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ।

कृच्छ्रेण तु विशुद्ध्येत शूद्रा दानेन शुद्ध्यति ॥’

इति पपाठ । तत्र चोच्छिष्टेन चांडालादिना । दानेन कृच्छ्र-  
प्रत्याम्नायेन । एषु रजस्वलात्वमेव निमित्तम्, अतो न क्षत्रियवैश्ययो-  
र्ब्राह्मण्यादिभ्यो विशेष इत्याह ।

उच्छिष्टद्विसंस्पर्शं तु मार्कण्डेयः—

‘द्विजान्कथंचिदुच्छिष्टान् रजःस्त्री यदि संस्पृशेत् ।

अधोच्छिष्टे त्वहोरात्रमूर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत् ॥’ इति ।

अत्र यद्यप्यविशेषः श्रूयते, तथापि ब्राह्मण्यपेक्षया उच्छिष्टक्षत्रिया-  
दिस्पर्शं ब्राह्मण्या अधिकं कल्प्यम् । एवं हीनाया उच्छिष्टोत्तमस्पर्शं न्यूनम् ।

भोजनकाले रजस्वलांतरं दृष्ट्वा पुनर्भोजने त्वापस्तंबः—( ७ )

‘उदकया यदि वा भुंक्ते दृष्ट्वाऽन्यां तु रजस्वलाम् ।

आस्नानकालं नाश्नीयाद्ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत् ॥’

एतच्च कामतः ।

१ पूर्वा कृच्छ्रं प्रकुर्वीरन्—मू.



चाण्डालदर्शने त्वत्रिः— ( वृ. आत्रे. ( ५।५६ )

‘ रजस्वला तु भुञ्जाना चाण्डालं यदि पश्यति ।

उपवासत्रयं कुर्यात्प्राजापत्यं तु कामतः ॥ ’ इति ।

रजस्वलायाः श्वादिदर्शने व्यासः—( ३।६९ )

‘ रजस्वला यदा दृष्टा शुना जंबूकरासभैः ।

पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ’ इति ।

रजस्वलाया आशौचिस्पर्शे शातातपः—( २।१२७ )

‘ आर्तवाभिप्लुता नारी स्पृशेच्चैच्छवसूतकम् ।

ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ ’

स्पृष्टा भोजनादौ अत्रिः—( ५।८ )

‘ आर्तवाभिप्लुता नारी मृतसूतकयोः स्पृशेत् ।

भुक्त्वा पीता चरेत्कृच्छ्रं स्पृष्टा तु त्र्यहमेव च ॥ ’ इति ।

आशौचिस्पर्शे स्नानात्प्राग्जोदर्शने मार्कण्डेयः—

‘ मृतसूतकसंस्पर्शे ऋतुं दृष्ट्वा कथं भवेत् ।

नास्नानकालमग्नीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ’ इति ।

आस्नानकालं चतुर्थदिनपर्यंतम् ।

मदनरत्ने स्मृत्यंतरे—

‘ अप्रायत्ये समुत्पन्ने मलवद्वाससा यदि ।

अभिषेकेण भुक्तिः स्याद्दिनत्रयमभोजनम् ॥ ’

—अभिषेकेण भुक्तिः सद्यःस्नानेन भोजनम् । इदमशक्तायाः, बाला-  
यत्यविषयं वा । अन्यस्यास्तु न त्रारात्रोपवासः ।

बंधुभरणश्रवणादौ व्यासः—( ३-४४ )

‘ मलवद्दसनायास्तु अप्रायत्यं भवेद्यदि ।

अभिषेकेण शुद्धिः स्यान्नाशनं वा दिनत्रयम् ॥ ’ इति ।

—अत्रापि पूर्ववदव्यवस्था । दिनत्रयमित्यवशिष्टकालोपलक्षणम् ।  
अप्रायत्यं बंधुभरणादि ।



स एव—( ३।४३-४४ )

‘आर्तवाभिप्लुता नारी नावगाहेत्कदाचन ।  
वद्धतेन जलेनैव स्नात्वा शेषं समापयेत् ॥  
स्वर्कं गात्रं भवेदद्भिः सांगोपांगमलैर्युतम् ।  
न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यवासा भवेत्पुनः ॥’ इति ।

तथा पराशरः—

‘स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ।  
पात्रांतरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥  
सिक्तगात्रा भवेदद्भिः सांगोपांगात्कथंचन ।  
न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ॥’ इति ।

अथ परंपरास्पर्शे ।

तत्राचेतनदंडादिनाव्यवधाने याज्ञवल्क्यः—( १।१६८ )

‘उदक्याशुचिभिः स्नायात्तत्स्पृष्टस्तेरुपस्पृशेत् ।  
अर्किलगानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृत् ॥’ इति ।

चेतनव्यवधाने तु मानवम्—( ५।८५ )

‘शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

अशुचिलशुनादिस्पृष्टिस्पर्शे तु शातातपः—( १३७ )

‘अशुचिं संस्पृशेद्यस्तु एक एव प्रदुष्यति ।  
तत्स्पृष्ट्वाऽन्यो न दुष्येत सर्वद्रव्येष्वयं विधिः ॥’ इति ।

तथा—

‘संहतानां तु पात्राणां यद्येकमुपहन्यते ।  
तस्य तच्छोधनं प्रोक्तं न तु तत्स्पृष्टिनामपि ॥’

क्वचिदचेतनव्यवधाने तु बचनात्प्रायश्चित्ताधिक्यम् ।

यथाहापस्तंबः—( ७।१४ )

‘एकशाखां समारूढश्चांडालादिर्यदा भवेत् ।  
ब्राह्मणस्तत्र निवसन्स्नानेन शुचिस्तामियात् ॥’

१ व्रतं रजस्वलाधर्मपालनरूपम् ।—प्रा. मु.

२ तैस्सदक्याशुचिसंस्पृष्टादिभिः संस्पृष्ट उपसंस्पृष्टोदाचामेदित्यर्थः ।



आदिशब्दादुदक्यादीनां ग्रहणम् । शाखाग्रहणमवयव्युपलक्षणमिति प्राग्व्याख्यातम् ।

तथा स एव—( ४१९-१० अत्रिः ५१४४-४५ )

‘एकवृक्षसमारूढौ चाण्डालब्राह्मणौ यदि ।

फलं भक्षयतस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ॥

ब्राह्मणानामनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ’

तथा स एव—( अत्रिः ५१४६ )

‘एकशाखासमारूढः फलान्यभ्रात्यसौ यदि ।

प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्यात्पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ’ इति ।

अत्र व्यवधानसन्निधानाभ्यामेकरात्रत्रिरात्रे । मतिपूर्वं चैतत् ।

अमतिपूर्वं तु ब्रह्मपुराणे—

‘विप्रश्चण्डालसहितो यत्रैकस्मिन्वनस्पतौ ।

अज्ञानात्तु फलं भुङ्क्ते चरेत्तत्राघमर्षणम् ॥ ’

अत्रापवादमाह पराशरः—( ७१३६ )

‘रथ्याकर्द्धमतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ।

स्पर्शनात् प्रदुष्यन्ति पक्वेष्टकचित्तानि च ॥ ’

अत्र परस्परस्पर्शेऽपि स्पर्शशब्दो गौणः । तत्र वचनात्प्रायश्चित्तम् ।

स्पर्शप्रायश्चित्तापवादमाह बृहस्पतिः—

‘तीर्थे विवाहयात्रायां संग्रामे देशविप्रवे ।

नगरग्रामदाहेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ॥ ’ इति ।

एवमन्यान्यपि उच्चावचवचनानि व्यवस्थापनीयानि ।

१ पक्वेष्टकादिभिश्चित्तानि प्रासादधवलगृहादीनि ।—मि. । चैत्यवृक्षवदि  
कादीनि ।—मा. २ स्पृष्टोऽस्पृष्टिः अस्पृष्टो येन सः ।—गोविन्दानन्दः ।  
—यत्र स्पर्शज्ञानासम्भवस्तद्विषयकमिदम् ।—स्पृ. चं.—‘स्पृष्टास्पृष्टी’ तिपाठे—  
स्पृष्टं हस्तपादाद्यवयवावच्छेदेन, अस्पृष्टिः तदितरगात्रावच्छेदेन, तयोः समाहारः ।  
जनसंमर्देऽप्युद्धिपूर्वकमेकदेशस्पर्शो न दोषजनक इति; कश्चन स्पृष्टः, तदन्यथास्पृष्टः,  
तयोर्द्वयोरपि स्पर्शः समान एव मन्तव्य इति वार्थः । नतु चाण्डालाद्यस्पृश्यानाम-  
स्पृश्यत्वाभावे तात्पर्यम् । ‘स्पृष्टास्पृष्टं’ इत्यपि पाठः, एव मेव व्याख्येयम् ।



ब्राह्मणस्य चैत्यवृक्षादिस्पर्शं पराशरः— ( १२।२७ )

‘चैत्यवृक्षश्चितिर्यूपश्चाण्डालः सोमविक्रयी ।

एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥’ इति ।

क्षत्रियादीनां न्यूनं कल्प्यम् । इत्यस्पृश्यस्पर्शप्रायश्चित्तानि ।

अथ आदिदंशे ।

तत्र मनुः— ( ११।१०९ )

‘श्वशृगालखरैर्दंष्ट्रो ग्राम्यैः ऋग्याद्विरेव च ।

नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

प्राणायामे विशेषं घृतप्राशनं चाह याज्ञवल्क्यः— ( ३।२७७ )

‘पुंश्चलीवानरखरैर्दंष्ट्रश्चोष्ट्रादिवायसैः ।

प्राणायामं जले कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

एतच्च नाभेरधस्तादीषदृष्टस्य ।

यत्तु सुमन्तुः— ‘श्वशृगालमृगमहिषाजाविखरकरभनकुलमाज्जर-  
मूषिकाप्लववककाकपुरुषदष्टानामापोहिष्ठीयाभिः स्नानं प्राणायामत्रयं  
च’ इति; एतच्च पादयोः किञ्चिदधिकदंशे ।

यत्तु गद्यदेवलः— ‘विषाणिदंष्ट्रिश्चशृगालविड्वराहखरनरवायसपुंश्चली-  
भिर्दंष्ट्रः स्रवन्तीमासाद्य षोडश प्राणायामान्कुर्यात्’ इति; एतदपि  
ततोऽप्यधिकदंशे ।

नाभेरूर्ध्वं दंशे तु बौधायनः— ( १।५।१४६+ वसि. २३।२६ )

‘शुना दष्टु यो विप्रो नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।

प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

नाभेरधस्तादतिगाढदंशविषयं वा ।

एतस्मिन्नेव विषये देवलः— ‘श्वदष्टः सागरगायां नद्यां स्नातो  
निगहारः प्राणायामशतमावर्तयंस्त्रिरात्रादपगतपाप्मा भवति’ इति ।  
तन्नाभेरूर्ध्वं गाढदंशे ।

१ चितेर्योग्यं श्मशानस्थानं चैत्यम्, तत्र समारोपितो वृक्षश्चैत्यवृक्षः ।—मा.  
चयनोद्भवो वा वृक्षः ।—नं. प.



अत्रैव शङ्कः— ( १७।४८ )

‘ नीलीकाष्ठक्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ।

त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्यात्पुंश्चलीदशनक्षते ॥ ’ इति ।

यमोऽपि—

‘ श्वश्रुगालशूकरखरोष्ठ्रुश्वानरकुंजरैः ।

एतैस्तु ब्राह्मणो दष्टस्त्रिरहः समुपस्पृशेत् ॥

हविष्यं भोजयेदन्नं ब्राह्मणान्सप्त पंच वा । ’ इति

ब्रह्मचार्यधिकारे हारीतः—( २३।११-१२ ) ‘ शुना दष्टरुयहमेकाहारः  
( ज्यहं यावकाहारः ) समुद्रगां नदीं गत्वा प्राणायामशतं कृत्वा घृतं  
प्राश्य ततः शुचिरेवमेव गोमायुमार्जारनकुलमूषकैर्दष्टानाम् । ब्रह्मचार्य-  
धिकारे पैठीनसिरपि—‘ शुना दष्टस्य त्रिरात्रमुपवासो विप्रगृहे वासश्च ।

यत्तु शातातपः— ( ८८ )

‘ गवां शृंगोदकस्नातः शुना दष्टस्तु ब्राह्मणः ।

समुद्रदर्शनाद्वाऽपि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥

अविष्ये—( १।१८४।४९ )

‘ वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टस्तु वै द्विजः ।

हिरण्योदकमिश्रं च घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ’

तन्नाभेरधस्तादीषदष्टविषयम् । वचनाद्विशिष्टब्राह्मणमात्रविषयं वा ।  
समुद्रदर्शनं तत्तीर्वासिनाम् ।

व्रतस्थस्य विशेषमाह बौधायनः—( अत्रिसं. ३।४ )

‘ व्रतस्थस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ।

सघृतं यावकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ’

यत्तु शातातपः— ( ८९ )

‘ अत्रतः सव्रतो वाऽपि शुना दष्टो भवेद्विजः ।

हिरण्योदकमिश्रं तु घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ’

इति; तदत्यन्ताशक्तविषयम् ।

ब्राह्मणरहितग्रामे तु पराशरः—( ५।९ )

‘ असद्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः ।

घृतं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ’



स्त्रीणां विशेषमाह पराशरः— ( ५।७+अत्रिः ३।३ )

‘ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।  
उदितं ग्रहनक्षत्रं दष्टा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥’

बौधायनोऽपि—

‘ब्राह्मणी तु शुना दष्टा सोमे दृष्टिं निपातयेत् ।  
नक्षत्रदर्शनाद्वाऽपि शुना दष्टा शुचिर्भवेत् ॥  
कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ।  
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं त्ववलोकयेत् ॥’ इति ।

अङ्गिरसा त्वत्र पञ्चगव्यप्राशनमप्युक्तम्— (भ.पु. १।१८४।५२-५३)

‘ब्राह्मणी तु शुना दष्टा सोमे दृष्टिं निपातयेत् ।  
यदा न दृश्यते सोमः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ॥  
यां दिशं तु गतः सोमस्तां दिशं वाऽवलोकयेत् ।  
सोममार्गेण सा पूता पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥’ इति ।

ब्राह्मणीग्रहणमुपलक्षणम् ।

व्रतस्थास्त्रीविषये पराशरः— ( ५।४ )

‘त्रिरात्रमेवोपवसेच्छुना दष्टा तु सत्रता ।  
समृतं यावकं भुक्त्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥’

रजस्वलायां विशेषमाह पुलस्त्यः— ( व्या. स्मृ. ३।६९ )

‘रजस्वला यदा दष्टा शुना जम्बूकरासभैः ।  
पञ्चरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥  
ऊर्ध्वं तु द्विगुणं नाभेर्वक्त्रे तु त्रिगुणं तथा ।  
चतुर्गुणं स्मृतं मूर्ध्नि दष्टेऽन्यत्राप्लुतिर्भवेत् ॥’ इति ।

अन्यत्र रजस्वलावस्थाया इति शेषः ।

शुनात्रातादिषु शातातपः—

‘शुनात्रातावलीढस्य नखैर्विदलितस्य च ।  
अद्भिः प्रक्षालनं शौचमग्निना चोपचूलनम् ॥’ इति ।

—उपचूलनं तापनम् ।



व्रणे कृम्युत्पत्तौ तु बौधायनः— ( १।५।१४१-४२ )

‘ ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे ।

कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।

त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ’ इति ।

एतच्च नाभेरधस्ताज्ज्ञेयम् ।

मनुरपि—

‘ ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे ।

कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ॥

गवां मूत्रपूरीषेण त्रिसन्ध्यं स्नानमाचरेत् ।

त्रिरात्रं पञ्चगव्याशी त्वधो नाभ्यां विशुद्धयति ॥

नाभिकण्ठान्तरोद्धूते व्रणे चोत्पद्यते कृमिः ।

षड्रात्रं तु तदा प्रोक्तं प्राजापत्यं शिरोव्रणे ॥ इति ।

यत्तु शातापतः— ( ९१-९२ )

‘ ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे यदा सम्पद्यते कृमिः ।

प्रायश्चित्तं तदा कार्यमिति शातापतोऽब्रवीत् ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।

स्नात्वा पीत्वा च कृत्वा च कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ’

इति; तदीषदुष्टविषयम् ।

पराशरेण तु वर्णभेदेन प्रायश्चित्तभेद उक्तः— ( ६।४८-५१ )

‘ ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे ।

कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ॥

गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा ।

त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत् ॥

शत्रियोऽपि सुवर्णस्य पञ्चमाषान्प्रदापयेत्

गोदक्षिणा तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥

शूद्राणां नोपवासः स्यात् शूद्रो दानेन शुद्ध्यति ’ । इति

स्नानं पानं च पञ्चगव्येनैव । दानं गोदानम् । एतदपि नाभेरध-  
स्ताज्ज्ञेयम् ।



नाभेरुपरि विशेष उक्तो भविष्यत्पुराणे— ( १।१८४।५४-५७ )

‘ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशौणितसम्भवे ।

कृमिरूतपयते यस्य निष्कृतिं वच्मि तस्य ते ॥

गवां मूत्रपुरीषेण त्रिसन्ध्यं स्नानमाचरेत् ।

दधिक्क्षीरघृतं प्राश्य त्रिरात्रेण विशुद्धयति ॥

अथो नाभेः प्रदष्टस्य आपादाद्विनतात्मज ! ।

एतद्विनिर्दिशेत्प्राज्ञः प्रायश्चित्तं खगाधिप ! ॥

नाभिकण्ठान्तरे वीर ! यदा चोत्पद्यते कृमिः ।

षड्मात्रं तु तदा प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ॥’ इति ।

एवमन्यान्यपि वचनानि व्यवस्थापनीयानि । इति संसर्गप्रायश्चित्तम् ।

अथोपपातकेषु प्रायश्चित्तानि ।

तान्याह याज्ञवल्क्यः— ( ३।२३४-२४२ )

‘गोवधो ब्राह्म्यता स्तेयमृणानां चानपक्रिया ।

अनाहितान्निता पण्यविक्रयः परिवेदनम् ॥

भृतादध्ययनादानं भृतकाध्यापनं तथा ।

पारदार्यं पारिवित्त्यं वार्धुष्यं लवणक्रिया ॥

स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो निन्दिताथोपजीवनम् ।

नास्तिक्यं व्रतलोपश्च सुतानां चैव विक्रयः ।

धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् ।

पितृमातृसुतत्यागस्तडागारागविक्रयः ॥

कन्यासन्दूषणं चैव परिविन्दकयाजनम् ।

कन्याप्रदानं तस्यैव कौटिल्यं व्रतलोपनम् ॥

आत्मनोऽर्थं क्रियारंभो मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।

स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च ॥

इन्धनार्थं द्रुमच्छेदः स्त्रीहिंसौषधजीवनम् ।

हिंस्रयन्त्रविधानं च व्यसनान्यात्मविक्रयः ॥

शूद्रप्रेष्यं हीनसख्यं हीनयोनिनिषेवणम् ।

तथैवान्नाश्रमे वासः परान्नपरिपुष्टता ॥



असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता ।

भार्याया विक्रयश्चैवामेकैकमुपपातकम् ॥ ' इति ।

तत्र [ १ ] गोवध उक्तं वधप्रायश्चित्तप्रसङ्गेन । तत्रत्यान्त्रैव मान-  
वानि त्रैमासिकादीनि याज्ञवल्क्यीयानि च चान्द्रायणादीनि वक्ष्य-  
माणेषु ब्राह्म्यतादिष्वपि विशेषविहितैः प्रायश्चित्तैः सह तुल्यविकल्पतया  
व्यवस्थया वा योज्यानि । न च विशेषविहितैः सामान्यविहितानां  
बाधः, उपपातकसंज्ञानर्थक्यापत्तेः । सामान्यप्रायश्चित्तं प्रकृत्यैव हि  
सार्थवती, नान्यथा । प्रयोजनान्तराभावात् ।

अत एव याज्ञवल्क्यः— ( ३।२६५ )

‘उपपातकशुद्धिः स्यादेवं चान्द्रायणेन च ।

पयसा चापि मासेन पराकेणथवा पुनः ॥ ’ इति ।

मनुश्च— ( ११।११७ ) .

‘एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ।

अवकीर्णिवर्जं शुद्धयर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥ ’ इति ।

एतदेव त्रैमासिकम् । अवकीर्णिपर्युदासादेवोक्तानुक्तप्रायश्चित्तेष्वे-  
तद्व्याप्तिर्गम्यते ।

[ २ ] अथ ब्राह्म्यतायाः ।

याज्ञवल्क्यः— ( १।३७ )

‘आ षोडशाह्वाविंशाश्च चतुर्विंशाश्च वत्सरात् ।

ब्रह्मक्षत्रविंशां काल औपनायनिकः परः ॥ ’ इति ।

अत्र— ‘सावित्री पतिता यस्य दशवर्षाणि पञ्च च ।

सशिखं वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितः ॥

एकविंशतिरात्रं च पिबेत्प्रसृतियावकम् ।

हविषा भोजयेच्चैव ब्राह्मणान्सप्त पञ्च च ॥

ततो यावकशुद्धस्य तस्योपनयनं स्मृतम् । ’

इति ( य. स्मृ. ५।२७—२९ ) व्यासोक्तेः;

आ षोडशादित्याहुर्मर्यादायां नाभिव्याप्तौ; द्वाविंशाश्चतुर्विंशाश्च-  
त्समापि तदर्थक एवानुषज्यते । तेन पञ्चदशैकविंशतित्रयोविंशतिवर्षसमा-  
प्त्युत्तरमेव विप्रक्षत्रियविंशां क्रमात्पातित्यमिति ।



शारङ्गवल्क्यः— ( ११३८ )

‘अत ऊर्ध्वं पयन्त्येते सर्वधर्मवहिष्कृताः ।

सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः ॥’ इति ।

एतदशक्तस्याहृतुर्मनुविष्णु— ( म. १११९१ वि. ५४।२६ )

‘येषां द्विजानां सावित्री नान्यूच्येत यथाविधि ।

तांश्चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥’ इति ।

उपनेत्रभावकृतव्रात्यतायां तु पूर्वोक्तमेकविंशतिरात्रम् ।

उपनेत्रसत्त्वे कामतः पञ्चदशवर्षातिक्रमे वसिष्ठ आह— ( ११।७६ )

‘पतितसावित्रीक उद्दालव्रतं चरेत् । द्वौ मासौ यावकेन वर्त्तयेन्मासं  
पयसाऽर्द्धमासमाभिमिक्षयाऽष्टरात्रं घृतेन पद्मात्रमयाचितं त्रिरात्रमम्भक्षः  
अहोरात्रमुपवसेत्’ इति ।

यस्त्वापस्तम्बः— ( ११।२५—२७ ) ‘अतिक्रान्ते सावित्र्याः  
कालं ऋतुत्रयं त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत् । अथोपनयनम् । ततः संवत्सर-  
मुदकोपस्पर्शनम् । अथाध्याप्य’ इति ।

—ब्राह्मणादीनां षोडशवर्षाद्यात्मक उपनयनकालेऽतिक्रान्ते ऋतु-  
मासद्वयं त्रैविद्यकं वेदत्रयार्थं भैक्षाशनं गुरुशुश्रूषणादिकम् ;

तदुद्दालकव्रताशक्तस्य ।

स एव—( घ. सू. १।१।२८—३२+१।२।१—१० ) ‘यस्य पिता  
पितामह इत्यनुपेतौ स्यातां ते ब्रह्महंसंस्तुताः । तेषामभ्यागमनं भोजनं  
विवाहमिति च वर्जयेत् । तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तम् । यथा प्रथमेऽतिक्रम-  
ऋतुमेवं संवत्सरः । अथोपनयनं तत उदकोपस्पर्शनम्’ ॥

‘प्रतिपुरुषं संख्याय संवत्सरान्यावंतोऽनुपेनीताः स्युः । सप्तभिः  
षोडशमानीभिः ‘यदंति यच्च दूरक’ इत्येताभिर्यज्ञपवित्रेण सामपवित्रेणां-  
ऽगिरसेनेति । अपि वा व्याहृतिभिरेव । अथाध्याप्यः । अथ यस्य  
प्रपितामहादीनां न स्मर्यत उपनयनं ते श्मशानसंस्तुताः । तेषामभ्या-  
गमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत् । तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं, द्वादश-  
वर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत् ; अथोपनयनम्, तत उदकोपस्पर्शनं  
षोडशमानीभिः । अथ गृहमेधोपदेशनम् । नाध्यापनं ततो योऽभिवर्त्तते  
तस्य संस्कारो यथा प्रथमेऽतिक्रमे । तत ऊर्ध्वं प्रकृतिवत्’ इति ।

१ ‘यजुष्पवित्रेण’ इति पठित्वा ‘यजुष्पवित्रेण’ ‘आपो अस्मान्मातरः  
शुन्धयन्तु’ इत्यनेन, इति व्याख्यातमुज्ज्वलायाम् ।



—ब्रह्महंसस्तुताः ब्रह्महंसवद्वाच्याः । यथा प्रथमेऽतिक्रम ऋतुमेवं  
 संवत्सरमिति । प्रथमातिक्रमवद्वस्तुस्थाने संवत्सरस्तेन प्रतिपुरुषं त्र्यब्दं  
 ब्रह्मचर्यमुपनयनानन्तरं यावन्तोऽनुपनीताः पुरुषास्तावत्संख्याकवर्षपर्यन्तं  
 प्रत्यहमेभिर्मन्त्रैः प्रायश्चित्तार्थस्तानं कार्यम् । तत्र मंत्राः— ‘ यदंति यच्च ’  
 ( ऋक्सं. ७।२।१७ ) इति ‘ सप्त पावमान्यः । ‘ येन देवाः पवित्रेण ’  
 ( तै. ब्रा. १।४।८ ) इति यज्ञपवित्रम् । ‘ कया न ’ ( सा. सं. उ. १।१।१२ ) इति  
 सामपवित्रम् । ‘ हंसः शुचिषत् ’ ( अथ. सं. ) इत्यांगिरसम् । श्मशानसं-  
 स्तुताः श्मशानवन्निरसनीयाः । द्वादशाब्दं ब्रह्मचर्यप्रायश्चित्तम् । उदकोप-  
 स्पर्शनं तु पुरुषसंख्याकाब्दानि यावत् । मंत्रास्त एव । गृहमेथो गार्हस्थ्यम् ।  
 तेषामध्यापनं नास्ति । तत उत्पन्नस्य प्रकृतिवत् यथाकालोपनयनमिति  
 इति व्रात्यता ।

अथ ऋणानापाकरणे ।

तच्चतुर्विधम् । परद्रव्यमृणत्वेन गृहीत्वा तस्याप्रदानम् । तथा  
 ‘ जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन  
 देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः ’ ( तै. सं. ६।३।१० ) इति ।

—यज्ञेनेति सत्यधिकारम् ।

मनुः—( ११।२७ )

‘ इष्टिं वैश्वानरीं चैव निर्वपेद्वदपर्यये ।

कल्प्रानां पशुयज्ञानां निष्कृत्यर्थमसंभवे ॥ ’ इति ।

—अवदपर्यये संवत्सरांते । कल्प्रानां प्रारब्धानामिति केचित् ।  
 नित्यतया कल्प्रानामिति तु युक्तम् ।

प्रजापतिः—

‘ समांते सोमयज्ञानां हानौ चांद्रायणं चरेत् । ’ इति ।

तथा च स्वाधिकारोत्तरवर्षगणनया कामाकामयोस्त्रैमासिकचांद्रायणा-  
 दीनि योज्यानि । अतश्च—

‘ प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा ।

कर्त्तव्याऽग्रयणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि ॥

एषामसंभवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः । ’ ( १२५-१२६ )



इति याज्ञवल्कीयमपि सोमादेर्द्वितीयादिवर्षेऽप्यननुष्ठाने वेदितव्यम् ।

अथानाहिताग्नितायां प्रायश्चित्तम् । तच्च सत्यधिकारे आधानाभावे वेदितव्यम् । तत्रानाहिताग्नेः संवत्सरादूर्ध्वमापदि याज्ञवल्कीयमुपपातक-  
सामान्यव्रतचतुष्टयं वर्गशक्त्याद्यपेक्षया योज्यम् । अनापदि तु तत्रैव मानवं त्रैमासिकम् ।

अवक्तुं संवत्सरात्काष्णार्जिनिराह—

‘काले त्वाधाय कर्माणि कुर्याद्विप्रो विधानतः ।

तदकुर्वेत्स्त्रिरात्रेण मासि मासि विशुद्ध्यति ॥’

काल इत्यधिकारोपलक्षणम् । तन्-आधानम् ।

स एव—‘अनाहिताग्नौ पित्रादौ यक्ष्यमाणः सुतो यदि ।

स हि ब्राह्मेन पशुना यजेत्तन्निष्क्रयाय तु ॥’

—यक्ष्यमाण आधाता यष्टा च इति स्मृत्यर्थसारे । ब्राह्मेन क्रिय-  
माणो ब्राह्मेन वा निमित्तेन विहितः पशुरिति वैयधिकरणेनान्वयः ।  
अत्र ब्राह्मो यथाकालेऽनुपनीतो न गृह्यते, तत्र ब्राह्मस्तोमाख्यसोम-  
यागविशेषस्यैव विधानात् । किंतु ‘यस्य पिता पितामहो वा सोमं न  
पिबेत्स ब्राह्मः’ इति वाक्योक्तो गृह्यते, तस्यैव ब्राह्मपशोर्विधानात् ।  
तथा च श्रुतिः—‘यस्य पिता पितामहः सोमं न पिबेदथ पिपासेत्स  
पेंद्रामं पुनरुत्सृष्टमालभेत’ इति ।

आवसथ्याधानेऽपि विशेषमाह काष्णार्जिनिः—

‘कृतदारो गृहे ज्येष्ठो योऽनादध्यादुपासनम् ।

चांद्रायणं चरेद्वर्षं प्रतिमासमहोऽपि वा ॥’ इति ।

ज्येष्ठप्रहणात्तस्मिन्नकृतावसथ्याधाने कनिष्ठस्यानधिकारः । ज्येष्ठोऽपि  
पितर्य्यकृतावसथ्याधाने सति नादध्यात्,

‘पितुः सत्यप्यनुष्ठाने नाधीयीत कथंचन ।’

इत्यस्य स्मार्त्ताधानेऽपि प्रवृत्त्यविशेषात् । तथा ज्येष्ठप्रहणात्कनिष्ठः  
कृतदारोऽपि गृहपतिमरणाद्विभागात्प्रागनधिकारित्वान्न प्रायश्चित्तीयत  
इति सिद्धम् ।

१ गालितवृषणो बलीवर्द उत्सृष्टः, स एव जीर्णो लाङ्गलवहनादेर्मुक्तः  
पुनरुत्सृष्टः ।—तै. सं. भा. २।१।५



इदं च प्रायश्चित्तं 'आवसथ्याधानं दारकाले दायघकाले प्रेते वा गृहपतौ' इति वात्यायनोक्तकालत्रयातिक्रमे द्रष्टव्यम् ।

अथाविक्रयविक्रये प्रायश्चित्तानि ।

शंखलिवितौ—'न विक्रीणीयादविक्रेयाणि । तिलतैलदधिकौद्रलवण-  
द्राक्षामद्यमांसकृतान्नखीपुरुषहस्त्यश्ववृषगंधरसक्षौमकृष्णाजिनसोमोदक-  
नीलीविक्रयात्सद्यः पतति ब्राह्मणः' इत्युपक्रम्य 'वत्सरं तप्तकृच्छ्रमाच-  
रेत्' इति ।

हारीतः—'गुडतिलपुष्पमूलफलपक्वान्नविक्रये सोमायनम् । लाक्षालवण-  
मधुमांसतैलक्षीरदधितकघृतगंधचर्मवाससामन्यतमविक्रये चांद्रायणम् ।  
तथोणाकेशकेशरभूधेनुवेदमाश्मशस्त्रविक्रये च । मत्स्यमांसस्त्राग्वस्थिशृंग-  
नखशुक्तिविक्रये तप्तकृच्छ्रम्, हिंगुगुगुलुहरितालमनःशिलांजनगैरिक-  
क्षारलवणमणिमुक्ताप्रवालवैणववेणुमृन्मयेषु च । आराधतडागोदपान-  
पुष्करिणीसुकृतविक्रये त्रिषवणस्त्राग्वयधःशायी चतुर्थकालाहारो दश-  
सहस्रं जपन् गायत्रीं संवत्सरेण पूतो भवति । हीनमानोन्मानसंकर-  
व्याजद्रव्यसंकीर्णविक्रये च' इति ।

बृद्धपराशरः—

'विक्रीय कन्यकां गां च कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ।' इति ।

चतुर्विंशतिभते—

'सुराया विक्रयं कृत्वा चरेत्सौम्यचतुष्टयम् ।

लाक्षालवणमांसानां चरेच्चांद्रायणत्रयम् ॥

मध्वाज्यतैलसोमानां चरेच्चांद्रायणद्वयम् ।

पयःपायसपूपानां चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥

दध्नश्चेक्षुरसस्यैव गुडखंडादिविक्रये ।

सर्वेषां स्नेहपक्वानां पराकं तु समाचरेत् ॥

कदलीं नारिकेलं च नारिंगं बीजपूरकम् ।

एतेषां पादकृच्छ्रं स्याज्जंवीरादेस्तथैव च ॥

कस्तूरिकादिगन्धानां विक्रये कृच्छ्रमाचरेत् ।

कर्पूरादेस्तदूर्ध्वं स्याद्दिनं हिंवादिविक्रये ॥

तिलानां विक्रयं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ।

धर्मार्थं कृमिजातांश्च यज्ञार्थं विक्रयं नयेत् ॥



रक्तपीतादिवस्त्राणि कृष्णाजिनमथापि वा ।  
 विक्रये त्र्यहमेतेषां गर्गस्य वचनं यथा ॥  
 गोविक्रयं नरः कृत्वा लाभार्थं धनमोहितः ।  
 प्राजापत्यं प्रकुर्वीत गजानामैन्दवं स्मृतम् ॥  
 खराश्वाश्चतराणां च करभाणां च विक्रये ।  
 पराकं तत्र कुर्वीत सुतानां द्विगुणं चरेत् ॥  
 नारीणां विक्रयं कृत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ।  
 द्विगुणं पुरुषस्यैव व्रतमाहुर्मनीषिणः ॥  
 चान्द्रायणं प्रकुर्वीत एकाहाद्वेदविक्रये ।  
 बज्रानां तु पराकः स्यात्स्मृतीनां कृच्छ्रमाचरेत् ॥  
 इतिहासपुराणानां चरेत्सान्तपतं द्विजः ।  
 रहस्यपञ्चरात्राणां कृच्छ्रमेव समाचरेत् ॥  
 गाथानां नीतिशास्त्राणां प्राकृतानां तथैव च ।  
 सर्वासामेव विद्यानां पादकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ' इति ।

च्यवनः— ' दधिमधुपिष्टसर्पिःपक्वान्नतैलतकक्षीररसविषशस्त्रतिलाश्व-  
 नीलीकौशेयवासोलाक्षारक्तलवणविक्रये प्राजापत्यं चरेत् ॥ '

शातातपः— ( ८७ )

' आममाससुरासोमलाक्षालवणसर्पिषाम् ।  
 विक्रये सर्वपण्यानां द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ '

विष्णुः— ( ५४।२०;१७ ) ' रक्तवस्त्ररङ्गरत्नगुडगन्धमधुरसोर्णा-  
 विक्रयी त्रिरात्रमुपवसेत् । प्राणिभूपुण्यसोमविक्रयी तप्तकृच्छ्रं कुर्यात् ।  
 तं च भूयश्चोपनयेत् ॥ '

शङ्खः— ( १७।५८-५९ )

' धारयित्वा तुलां वक्रां विषमां कारयन्वणिक् ।  
 सुरालवणमद्यानां कृत्वा क्षीरस्य विक्रयम् ॥  
 लाक्षायाश्चैव मांसस्य कुर्यादेव महाव्रतम् ।  
 विक्रेता प्राणिनामब्दं तिलस्य च तथाऽऽचरेत् ॥ ' इति ।

—महाव्रतं द्वादशशब्दम् । भूयोऽभ्यासविषयमेतत् ।



## अथाविक्रेयाणि ।

पैठीनसिः— 'ब्राह्मणस्य लवणं पकान्नं मधु क्षीरं दधि घृतमुदकं सर्वगन्धास्तिला रक्तं वासो गुडतैलप्राभ्यपशूनामेकशफः केशरिणश्च सर्वे चारण्याः पशवो विद्या गावः शङ्खश्चोर्णश्चेति विक्रयणेनैकैकपा-  
मेकैकस्मिन्प्राजापत्यं चरेत् ' इति ।

तथा पुनः स एव— 'आरामतडागोदपानपुष्करिणीसुकृतसोमविक्रये त्रिषवणस्त्रायधःशायी चतुर्थकालाहारः दशसाहस्रं गायत्रीं जपन् संवत्सरेण पूतो भवति ' इति ।

सुमन्तुः— 'देवर्षिसोमचैत्यात्मापत्यकूपोदपानदानात्मनां विक्रये कृच्छ्रत्रयं चरेत् ' इति ।— देवर्षीति प्रतिमाभिप्रायेण ।

भविष्यपुराणे— ( १।१८४।४६ )

'गुडं तिलांस्तथा नीलीं केशगोधूमकान्यवान् ।

विक्रीय ब्राह्मणो गां च कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ' इति ।

गोविक्रये निन्दार्थवादमाह यमः—

'गवां विक्रयकारी तु गवि रोमाणि यानि तु ।

तावद्वर्षसहस्राणि गवां गोष्ठे कृमिर्भवेत् ॥ ' इति ।

एतानि च लघुगुरुप्रायश्चित्तानि कामाकामसकृदसकृच्छ्रकृत्याद्य-  
पेक्षया योजनीयानि । एतन्निमित्तव्यतिरिक्तेषु तूपपातकसामान्य-  
प्रायश्चित्तानि तथैव योज्यानि ।

इदं च सर्वं प्रायश्चित्तजातमापदि वैश्यवृत्त्या जीवतो ब्राह्मणस्यैव ।  
इतरेषां त्वापदि न दोषः ।

'वैश्यवृत्तावविक्रेयं ब्राह्मणस्य पयो दधि । ' ( १।५७ )

इति नारदस्मृतेरिति मिताक्षरायाम् ।

यत्र च निषेधस्तत्रैव प्रायश्चित्तविधयः प्रवर्तन्ते । अत एव कचि-  
त्प्रायश्चित्तविधौ ब्राह्मणग्रहणं कृतम् । शूलपाणिस्त्वापदि शूद्रस्यैव  
दोषाभावमाह ।



तथा च पराशरः— ( १।६२ )

‘लवणं मधु मद्यं वा दधि तक्रं घृतं पयः ।

न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥’

कालिकापुराणेऽपि—

‘विक्रयं सर्ववस्तूनां कुर्वन् शूद्रो न दोषभाक् ।

मधु चर्म सुरां लाक्षां त्यक्त्वा मांसं च पञ्चमम् ॥’ इति;

तत्र, अनयोर्वाक्ययोरपद्विषयत्वे प्रमाणाभावात् । न च निषेधा-  
नामापदि ब्राह्मणमात्रविषयत्वाच्छूद्रे प्रतिप्रसवानुपपत्तिरिति वाच्यम्;

‘शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा’ (याज्ञ. १।१२०) इति नियमेनोपायान्तराणां व्या-  
वर्तितत्वात् । अतश्च शूद्रस्य नापद्यपि मन्वादिव्यतिरिक्तानि विक्रयाणि ।

क्षत्रियवैश्ययोस्त्वनापदि शूद्रवत्प्रतिप्रसवाभावात् सर्वाण्यविक्रयाणि ।  
आपदि त्वदोषः । निषेधानां प्रायश्चित्तानां च ब्राह्मणमात्रविषय-  
त्वोक्तेः । ब्राह्मणानामेव त्वापदि वैश्यवृत्त्या जीवने दोष इति निष्कर्षः ।

इदंच प्रायश्चित्तज्ञातमपण्यविक्रयार्जितधनपरित्यागपूर्वकं कार्य-  
मित्याह मनुः— ( ११।१९३ )

‘यद्गृहितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।

तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जायेन नपसैव वा ॥’ इति ।

अत्र च जपतपसोर्विकल्पः उत्सर्गस्य नृभयत्र समुच्चय इति ।

मनुः— ( १०।९० )

काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः ।

विक्रीणीत तिलान् शुद्धान् धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥’

कृष्यादिग्रहणं नियमार्थम् । तेन क्रीतानां तिलानां विक्रये दोष एव ।

इत्यपण्यविक्रये ।

परिवेदने उक्तम् ।

भृतकाध्यापकभृतकाध्यापितयोश्च पूर्वोक्तत्रयानि देशकालशक्त्य-  
पेक्षया योज्यानि ।

अशक्तस्य विष्णुराह—

‘भृतकाऽध्यापनं कृत्वा भृतकाध्यापितस्तथा ।

अनुयोगप्रदानेन त्रीन्पक्षान्नियतः पिबेत् ॥’ इति ।



ब्राह्मीं सुवर्णलामिति शेषः । अधीयानस्य विप्रस्य तिरस्कारोऽनुयोग  
इति मिताक्षरायाम् ।

अथ सुतानां विक्रये पैठीनसिः—‘ सुतविक्रये त्रिषवणस्त्राययःशायी  
चतुर्थकालाहारः संवत्सरेण पूतो भवति ’ ।

—इदं चैकपुत्रस्य कामतोऽनापदि । ‘ सुतविक्रयं कृत्वा तप्तकृच्छ्रं  
चरेत् ’ इति शंखोक्तं त्वापद्यनेकपुत्रस्याकामतो ज्ञेयम् । अत्रैव कामतस्तु  
‘ देवर्षिसोमचैत्यान्नापत्यकूपोदपानद्वारात्मनां विक्रये कृच्छ्रद्वयम् ’ इति  
सुमेतूक्तम् ।

कामतोऽनेकपुत्रस्यानापदि कन्यापुत्रयोर्विक्रेतुश्चतुर्विंशतिमते—

‘ नारीणां विक्रयं कृत्वा चरेद्वांद्वायणव्रतम् ।

द्विगुणं पुरुषस्यैव व्रतमाहुर्मनीषिणः ॥ ’ इति ।

आपद्यकामतः कन्याविक्रये तु

‘ विक्रीय कन्यकां गां च कृच्छ्रं सांत्तपनं चरेत् ।

इति वृद्धपराशरोक्तम् ।

इत्यपत्यविक्रये ।

अथायाज्ययाजने मनुः—( ११।१९७ )

‘ व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्यकर्म च ।

अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ ’

परेषां शूद्रादीनाम्, अंत्यकर्मैर्ध्वदैहिकम् । यद्वा परेषामसृष्टिदानां  
स्वजातीयानामेव । अस्मिन्पक्षे आवृत्तावेतत्प्रायश्चित्तम् । अत्र चैकस्यैव  
कृच्छ्रस्याभ्यासः, संख्यायाः पृथक्त्वनिवेशितत्वात् । तेन भिन्नास्त्रयः  
कृच्छ्राः कार्याः । ते च प्राजापत्यसांत्तपनातिकृच्छ्राख्या इति शूलपाणिः ।

तेषां च गुरुलघुभूतानां त्रित्वं निमित्तगौरवत्वाद्यपेक्षया योज्यम् ।  
अहीनो द्वित्रादिर्द्वादशाहपर्यंतोऽहर्गणयागः । एतच्चाकामत उप-  
पातकसामान्यप्रायश्चित्तापवादार्थम् ।

व्रात्यस्य कामतो याजने तु शातातपः—‘ पतितसावित्रीकान्नोपनये-  
न्नाध्यापयेद्य एतानुपनयेद्याजयेद्वा स उद्दालकव्रतं चरेत् ’ इति ।

१ युक्तं तु वचनात्तादृशार्थप्रतीत्यभावात् पूर्वोक्तं प्रायश्चित्तमेवेति । प्रा. मु.



उद्दालकव्रतं तु व्रात्यताप्राश्रित्ते उक्तम् ।

यत्तु पैठीनसिः—‘ शूद्रयाजकः सर्वद्रव्यत्यागात्पूतो भवति । प्राणा-  
यामसहस्रेषु दशकृत्वोऽभ्यस्तेषु ’ इति; तदकामतोऽभ्यासविषयम् ।

अत्रैव कामतोऽभ्यासे तु शूद्रयाजकादीन्पठित्वा उशना आह—  
( हा.२।४।५ ) ‘ एते पंचतपोऽध्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुः क्रमेण  
ग्रीष्मवर्षाहिमंतेषु, मासं गोमूत्रयावकमग्नीयुः ’ इति ।

यत्तु यमः—‘ पुरोधाः शूद्रवर्णस्य ब्राह्मणो यः प्रवर्तते ।

लोभादर्थप्रसंगाद्वा तस्य कृच्छ्रो विशोधनम् ॥ ’

इति; तदकामतोऽशक्तविषयम् ।

चंडालादिसन्निधौ श्रुत्यादीनामकामतः पाठे तु षट्त्रिंशन्मते—  
‘ चंडालश्रोत्रावकाशे श्रुतिस्मृतिपाठे त्वेकरात्रम् ’ इति ।

यत्तु वसिष्ठः—( २३।२९—३० ) ‘ पतितचंडालारावश्रवणे त्रिरात्रं  
वाग्यता अनश्रन्त आसीरन्सहस्रपरमं वा तदभ्यस्यंतः पूता भवंतीति  
विज्ञायते । एतेनैव गर्हिताध्यापकजापकयाजका व्याख्याता दक्षिणा-  
त्यागाच्च पूता भवन्ति ’ इति; तद्वृद्धिपूर्वविषयमिति विज्ञानेश्वरः ।

इत्ययाज्ययाजतम् ।

२६—२८ अथ पितृमातृसुताचार्यभार्यात्यागे ।

तत्र श्राद्धप्रकरणे—

‘ अकारणे परित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा । ’ ( ३।१५७ )

इत्यपांक्त्यमध्ये पाठः ।

तत्र प्राश्रित्तमाह मनुः—( ११।२०० )

‘ षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव हि ।

होमश्च शाकलो नित्यमपांक्त्यानां विशोधनम् ॥ ’ इति ।

शाकलो ‘ यदेवा देवहेडनम् ’ इत्यादियजुर्मंत्रकरणकः ॥

३१—अथ कन्यासंदूषणे ।

[ तत्र सवर्णकन्यादूषणे त्रैमासिकद्वैमासिकचांद्रायणानि क्रमेण

१ कन्यादूषणमङ्गुल्यादिना योनिविदारणमिति विज्ञानेश्वरप्रभृतयः । अहं तु  
ब्रुवे—‘ यावन्न लज्जया याति कन्या पुरुषसन्निधौ । योन्यादीनामगृहेत तान्न-  
द्भवति कन्यका ॥ ’ इति लक्षणोक्तकन्यायां हठाद्वीर्यनिक्षेपः कन्यासन्दूषणशब्दार्थ-  
२०



कामाकामशक्त्याद्यपेक्षयां योज्यानि । अनुलोम्येन तु दूषणे मासं पयोत्रतप्राजापत्यं वा पूर्ववद्योज्यं,

‘सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः ।’

(याज्ञ. २।२८८) इति तत्र दंडस्याल्पत्वात् । प्रातिलोम्येन तु दूषणे क्षत्रियवैश्ययोः ]

संख आह—‘कन्यादूषी सोमविक्रयी च कृच्छ्रमवदं चरेयावाम्’ इति ।

हारीतोऽपि कन्यादूषीत्याद्युपक्रम्य—( २।४-५ ) ‘एते पंचतपो-  
ऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुर्ग्रीष्मवर्षाहिमंतेषु । मासं गोभूत्रयावक-  
मश्रीयुः’ इति ।

शूद्रस्य तु प्रातिलोम्येन कन्यादूषणे वध एव—

‘दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा’

( याज्ञ. २।२८८ ) इति वचनात् । इति कन्यादूषणे ॥

३९—अधाम्नित्यागे ।

मनुः—( ११।४१ )

‘अग्निशोऽपविध्याग्नीन् ब्राह्मणः कामकारतः ।

चांद्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥’

—इति भट्टदिवाकरः । तत्र यद्यपि ‘कन्याया दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्षाया न विज्ञहे ।’  
( भाग. १०।६।२९ ) इत्यादिव्यवहारदर्शनादनुदायाः सम्भोगमात्रमपि कन्या-  
दूषणमुच्यते, ‘योऽकामां दूषयेत् कन्याम्’ ( म. ८।३६४ ) इत्यादौ च भोग  
एव प्रतीयते, तथापि तस्य ‘सखिभार्याकुमारीषु’ ( या. ३.२३१ ) इति  
गुस्तल्पगमसमत्वस्योक्तत्वात् नासावत्र विवक्षितः । नापि दर्शितलक्षणेन निर्वाहः,  
‘कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ।’ ( ८।३६५ ) इत्यादेरनुपपत्तेः ।  
अङ्गुलिच्छेदरूपदण्डविधानमपि भोगवक्षे नागुणमिति व्यक्तमेव । अतो विज्ञानेश्वरा-  
शुक्तमेव युक्तमिति प्रतीमः । अत एव प्रायश्चित्तविवेकटीकायां तत्त्वार्थकौमुद्याम्—  
‘न तु कन्यागमनम्, तस्यानुपातकत्वात्’ इत्युक्तम् । कन्याया दूषणम् अकन्या  
इत्युक्तिर्वा ।—प्रा. वि.

१ ग्रीष्मे पञ्चतपाः — चतुर्दिगवस्थितैरग्निभिर्हृष्यं चादित्यतेजसात्मानं  
तापयेयुः । वर्षाषु—अप्रावकाशं यत्र देशे देवो वर्षति, तत्र छात्राद्यावरणरहितस्तिष्ठेत् ।  
हेमन्ते जलशयनं जलक्रियदेशे आर्द्रवाससः शयेयुरित्यर्थः । तथा च मनुः—  
( ६।२३ ) ‘ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते  
क्रमशो वर्षयन्तपः ॥ इति ।



—अपविध्य त्यक्त्वा । वीरो यजमानः । मासमपविद्धयेत्यन्वयः ।  
इदं च कामतः ।

यत्तु हारीतः—‘संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रे चांद्रायणं कृत्वा पुन-  
रादध्यात् । द्विषोत्सन्ने सोमायनचांद्रायणे कुर्यात् । त्रिषोत्सन्ने  
संवत्सरकृच्छ्रमभ्यस्य पुनरादध्यात् ’ इति; तदकामे ज्ञेयम् ।

शंखस्तु त्रिषोत्सादे गोदानमप्यधिकमाह—‘अग्न्युत्सादी संवत्सरं  
प्राजापत्यं चरेद्वां च दद्यात् ’ इति ।

विष्णुरपि—( ५४।१३ ) ‘वेदाग्न्युत्सादी त्रिषवणस्नायी अधःशायी  
संवत्सरं भैक्षेण वर्त्तयेत् ’ इति । कामतस्त्वेतान्येव स्वस्वविषये द्विगुणानि ।

यत्तु वसिष्ठः—( २१।३० ) ‘योऽग्नीनपविध्येत्स कृच्छ्रं द्वादशरात्रं  
चरित्वा पुनराधानं कारयेत् ’ इति ।

व्याघ्रः—

‘मासद्वयं तु यो वह्निं त्यजेदेवं समाचरेत् ।

नास्तिक्यात्कृच्छ्रमेकं तु होमद्वयं ददाति चेत् ॥ ’

होमद्वयं यावत्कालं होमो न कृतस्तावद्धोमपर्याप्तम् ।

तथा च भरद्वाजगृहे—

‘यावत्कालमहोमी स्यात्तावद्द्वयमशेषतः ।

तद्दानं चैव विप्रेभ्यो यथा होमस्तथैव च ॥ ’ इति ।

जातूकण्योऽपि—

‘अतीतकालं जुहुयादग्नौ विप्राय वा स्वयम् ।

दद्याद्वेदविदे सम्यक् कृत्वाऽऽधानं पुनर्द्विजः ॥ ’ इति ।

इदं च होमद्वयदानं समाप्ताग्नित्यागाविषयमिति माधवः । उभयत्यागे-  
ऽपि युक्तमिति तु प्रतिभाति ।

मासचतुष्टयत्यागे तु स एव—

‘चतुष्टये तु संपूर्णं मासानां तु हुताशनम् ।

त्यक्त्वाऽपि कृच्छ्रं कुर्वीत ततः पापात्प्रमुच्यते ॥ ’

षण्मासत्यागे पराकः । अत ऊर्ध्वमब्दपर्यंतं पयोव्रतम् ।

यथाहोशनाः—

‘षण्मासांस्त्यजते यो वै पराकं तु समाचरेत् ।

ऊर्ध्वं पयोव्रतं कुर्यान्मासमेकं समाहितः ॥



वर्षपर्यन्तमेवाहुर्मुनयः शंसितव्रताः ।<sup>१</sup>

मासषट्कादूर्ध्वं संवत्सरं यात्रद्याज्ञवल्क्योक्तान्युपपातकसामान्य-  
प्रायश्चित्तानि जातिशक्तिगुणाद्यपेक्षया योजनीयानि । संवत्सरादूर्ध्वं तु  
मनूक्तद्वैमासिकत्रैमासिके कालाल्पत्वमहत्वापेक्षया योज्ये । एतानि च  
सर्वप्रायश्चित्तानि नास्तिक्यादभित्यागे ।

यदा तु प्रमादात्त्यजति तदा भरद्वाजगृहे विशेष उक्तः—‘प्राणा-  
यामशतमा त्रिरात्रादुपवासः स्यादा विंशतिरात्रात् । अत ऊर्ध्वमा  
षष्टिरात्रात्तिस्रो रात्रीरुपवसेत् । अत ऊर्ध्वमा संवत्सरात् प्राजापत्यं  
चरेत् । अत ऊर्ध्वं कालबहुत्वे दोषबहुत्वम् ’ इति । इदमेव वाकामतो  
गृह्याभित्याग इत्यपराकं ।

अत्रैव विषये स्कांदे—

‘हुताशनं तु यो विप्रः प्रमादात्त्यजति प्रभो ।

प्राणायामशतं कुर्यादुपवासमथापि वा ॥ ’ इति ।

कामतस्यागेऽपि तत्रैव—‘द्वादशाहातिक्रमे त्र्यहमुपवासः । मासा-  
तिक्रमे द्वादशाहमुपवासः । संवत्सरातिक्रमे मासोपवासः पयोभक्षणं  
वा । कूष्मांडीभिर्होमः क्रमेणोभयं च ’ इति । उपवासाशक्तौ मासं  
पयोभक्षणम् । संवत्सरानंतरमधिककालातिक्रम उभयमिति ।

मदनपारिजाते—इदमेव चालस्येन श्रौताभित्यागविषयमिति ।

तथा च स्मृत्यंतरे—

‘चालस्येन यदा वह्निं द्वादशाहं त्यजेत्प्रभो ।

त्रिरात्रमुपवासं च चरेत्पापविशुद्धये ॥ ’ इति ।

इत्यभित्यागे ।

कौमारदारत्यागे तु विशेषमाह शातातपः—‘कौमारदारत्यागान्मासं  
पयोभक्षः शुद्ध्यति । ’ इदं चाल्पकालत्यागे ।

बहुकालत्यागे तु कौमारदारत्यागं प्रक्रम्य हारीतः—‘पञ्चतपोऽभ्राव-  
काशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुर्ग्रीष्मवर्षाहिमन्तेषु मासं गोमूत्रयावकमश्रीयुः ’  
इति ।

४३ अथ द्रुमच्छेदे मनुविष्णू—(११।१४२+५०-४८)

‘फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ।

गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥ ’



यत्तु यमः— 'वृक्षलतागुल्मतृणच्छेदनेऽर्धकृच्छ्रं फलवतां प्राजा-  
पत्यम्' इति ।

प्रायश्चित्तविवेकेऽपराके च— 'वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने वृद्धकृच्छ्रं'  
इति पाठ उक्तः । वृद्धकृच्छ्रो दिनसाध्य इति प्रागुक्तम् ।

यच्च हारीतः— ( २११४९ ) 'स्थावरसरीसृपादिवधे 'यस्येदं  
प्राणम्' इत्येतयाऽऽज्यं हुत्वा तिलपात्रं ब्राह्मणाय दद्यात्, इति तदश्वत्थादि-  
पुण्यवृक्षविषयमिति केचित् । युक्तं तु चैत्यश्मशानादिस्थलजवृक्षाणां  
कामतः छेदनविषयत्वम् । तत्र दण्डद्वैगुण्यादिदर्शनात् ।

यथाह याज्ञवल्क्यः— ( २१२२८-२२९ )

'चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये ।

जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षेऽथ विश्रुते ॥

गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् ।

पूर्वस्मृतादर्धदण्डः स्थानेषूक्तेषु कर्त्तने ॥' इति ।

—गुल्मा मालत्यादयः । गुच्छाः कुरण्टकादयः । क्षुपाः करवी-  
रादयः । लता द्राक्षाद्याः । प्रतानाः सारिवाद्याः । औषध्यः शाल्याद्याः ।  
वीरुधो गुडूच्याद्या इति विज्ञानेश्वरः । यस्येदमिति मन्त्रस्तु तैत्तिरीये-  
'यस्येदं प्राणं निमिषद्यदेजति यस्य जातं जनमानं च केवलम् ।  
स्तौम्यमि नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्व' इति ॥'  
( तै. सं. ४।७।१५ ) इति ।

यत्तु—

'संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छित्त्वा वृक्षं फलप्रदम् ।' ( १७।५३ )

इति शङ्खोक्तम् ; तन्महाफलप्रदनारिकेलादिवृक्षाणां कामतश्छेदनात्य-  
न्ताभ्यासविषयम् । वृक्षमित्येकवचनं त्वनुवाद्यविशेषणत्वादविवक्षितम् ।

यत्तु विष्णुपुराणे— ( १।१२।१० )

'भिनन्ति वीरुधो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे ।

पत्रं वा शातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विंदति ॥' इति ।

तदर्थवादमात्रम् । शूलपाणिरप्येवमेव । इति द्रुमच्छेदे ।

१ यदि कृषिकर्त्रा भूमिसमीकरणार्थं हन्यते, तदा न दोषः ।—प्रा. सु.



व्यसनेषु प्रचेताः— ‘अनृतवाक्तस्करो राजभृत्यो वृक्षारोपकवृत्ति  
गर्गदोऽग्निदोऽश्वरथगजारोहणवृत्ती रङ्गोपजीवी श्वागणिकः शूद्रोपाध्यायो  
वृषलीपतिभाण्डिको नक्षत्रोपजीवी श्ववृत्तिर्ब्रह्मजीवी चिकित्सको  
देवलकः पुरोहितः कितवो मद्यपः कूटकारकोऽपत्यविप्रयो मनुष्यपशु-  
विक्रेता चेति । तानुद्धरेत्समेत्य न्यायतो ब्राह्मणव्यवस्थया सर्वद्रव्य-  
त्यागेन चतुर्थकालाहाराः संवत्सरं त्रिषवणमनुतिष्ठेयुस्तस्यान्ते देवपितृ-  
तर्पणं गवाहिकं चेत्येवं व्यवहार्या’ इति; तदमत्याभ्यासे ।

श्वागणिको यः श्रमणेन जीवति, ‘श्रमणादृञ् वा’ (पाणि. ४।४।११)  
इति ठञ् । भाण्डिकस्तूर्यादिस्वनै राज्ञः प्रबोधयिता । श्ववृत्तिः सेवकः ।  
ब्रह्मजीवी मूल्यान वैदिककार्यकर्ता । गवाहिकं गोवधप्रायश्चित्तमुत्तम् ।

यदपि बौधायनः ( २।१।६३-६५ ) ‘अथाशुचिकरणानि । द्यूतमभि-  
चारोऽनाहिताग्नेरुज्ज्वलवृत्तिता । समानृतस्य भैक्षचर्या तस्य च गुरुकुले  
वास ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यस्तस्य चाध्यापनं नक्षत्रनिर्देशनं चेति ।  
द्वादशमासान् द्वादशार्द्धमासान् द्वादशद्वादशाहान् द्वादशषडहान्  
द्वादशत्रयहान् द्वादशाहं षडहं त्रयहमहोरात्रमेकाहं च’ इति द्यूते संवत्सर-  
माहः; तदप्यत्यन्ताभ्यासविषयमेव ।

४८ यत्तु शूद्रसेवायां बौधायनः— ( २।१।५१-५८ ) ‘समुद्रयानं  
ब्राह्मणस्य न्यासापहरणं, सर्वाण्यैर्व्यवहरणं, भूष्यनृतं, शूद्रसेवा, शूद्रा-  
भिजननं तदपत्यत्वं च, एषामन्यतमं कृत्वा

चतुर्थकालमितभोजिनः स्युरपोऽभ्युपेयुः सवनानुकल्पम् ।

स्थानासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैरुपगन्ति पापम् ॥’

इति; तद्बहुकालं शूद्रसेवाविषयम् ।

५१ अथानाश्रमे हारीतः— ‘अनाश्रमी संवत्सरं प्राजापत्यं कृच्छ्रं  
चर्गित्वाश्रममुपेयात् । द्वितीयेऽतिकृच्छ्रस्तृतीये कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽत ऊर्ध्वं  
चान्द्रायणम्’ इति ।

इति याज्ञवल्क्योक्तोपपातकप्रायश्चित्तानि ॥



अथ मनुस्मृतौ पपातकप्रायश्चित्तानि ।

तत्राभिचारे मनुः— ( ११।१९७ )

‘ व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्यकर्म च ।

अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ॥ ’

—अहीनो द्विशत्रादिः । अहीनो धार्मिकस्तद्विषयमभिचारमिति समानाधिकरण्यमिति शूलपाणिः । केचित्स्वेतद्राक्योक्तकर्मयाजनं एवै-  
तत्प्रायश्चित्तं न तु यजन इत्याहुः । त्रिभिः कृच्छ्रैः प्राजापत्यसान्तपनादि-  
कृच्छ्रैरित्यर्थः । एतच्च सकृत्करणे । अत्राभ्यासे मूलकर्मणि च  
साधारणप्रायश्चित्तानि जातिशक्तिगुणाद्यपेक्षया योज्यानि ।

अथासत्प्रतिग्रहे ।

तत्र दुष्टप्रतिग्रहनिषेधमाह मनुः—

‘ असत्प्रतिग्रहीतारस्तथेवायाज्ययाजकाः ।

नक्षत्रैर्जीवते यश्च सोऽन्धकारं प्रपद्यते ॥ ’

मात्स्थे—

‘ तस्मात्तीर्थे न गृहीयात्तीर्थेष्वायतनेषु च ।

निमित्तेषु च सर्वेषु न प्रमत्तो भवेद्विजः ॥ ’

मनुः— ( ४।१८८ )

‘ हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान् घृतम् ।

अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवन्ति दारुवत् ॥ ’

अत्र मन्त्राद्यविदुष एतत्प्रतिग्रहो निषिध्यते; न तु हिरण्यादीनां  
कृष्णाजिनादिवदप्रतिग्राह्यत्वम् ।

स्कान्दे—

‘ अजिनं मृतशय्यां च मेषीं चोभयतोमुखीम् ।

कुरुक्षेत्रे च गृह्णानो न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ ’

पाद्ये—

‘ महादानानि ये विप्रा गृह्णन्ति ज्ञानदुर्बलाः ।

वृक्षास्ते द्विजरूपेण जायन्ते ब्रह्मराक्षसाः ॥ ’

अयं च निषेध एकस्यैव नानेकेषाम् ।

तथा च वह्निपुराणे—

‘ महादानमिदं यस्मात्तस्मादेको हि नार्हति । ’



वसिष्ठः—(१३।२३) 'शस्त्रं विषं सुरा चाप्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य ।'

पाद्मे—( स्म. खं. ३४।४१० )

'ब्रह्माण्डं भूमिदानं च ग्राह्यं नैकेन तद्ववेत् ।

गृह्यन् दोषमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥ '

भूमिदानं षोडशमहादानान्तर्गतकाञ्चनमेदिनीदानमिति ।

धर्मप्रकाशे हेमाद्रौ—

'ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयादृत्यर्थं साधुतः सदा ।

अश्वं च मणिमातङ्गतिललोहानि वर्जयेत् ॥

कृष्णाजिनतिलग्राही न भूयः पुरुषो भवेत् ।

शय्यालङ्कारवस्त्राणि प्रतिगृह्य मृतस्य च ।

नरकात् निवर्त्तते धेनुं तिलमयीं द्विज ॥ '

बृहत्पुराणे—

'हस्त्यश्वरथयानानि मृतशय्यासनादि यः ।

कृष्णाजिनं च गृह्णाति अनापत्सु गतो द्विजः ॥

तथोभयमुखीं घोरां सशैलां मेदिनीं द्विजः ।

कुरुक्षेत्रे च यद्दानं चंडालात्पतितान्तथा ।

मासिके च नवश्राद्धे भुञ्जन्प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥ '

हेमाद्रौ स्मृत्यंतरे—

'कृष्णाजिनप्रतिग्राही विक्रयी चैव रेतसः ।

गजच्छायाश्रितो भुक्त्वा न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ '

पाद्मे—

'न तीर्थे प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कंठगतैरपि ।

अपि कामातुरो जंतुरेकां रक्षति मातरम् ॥

तीर्थे प्रतिग्रहो यस्तु तीर्थविक्रय एव सः ।

विक्रीतायां तु गंगायां विक्रीतः स्याज्जनार्दनः ॥

जनार्दने तु विक्रीते विक्रीतं भुवनत्रयम् ।

यस्तु लौल्याद्विजः क्षेत्रे प्रतिग्रहश्चिर्भवेत् ।

नैव तस्य परो लोको नायं लोको दुरात्मनः ॥ '



ब्राह्मे—

‘प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ।  
तत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन ॥  
तत्र न प्रतिगृहीयात्प्राणैः कंठगतैरपि ।’

दानधर्मे—

‘भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम् ।  
तावद्धर्मे विजानीयात्तदूर्ध्वं तीरमुच्यते ॥’

ब्राह्मे—

‘सार्द्धहस्तशतं यावद्धर्मतस्तीरमुच्यते ।’

स्कांदे—

‘तीराद्गव्यूतिमात्रं तु परतः क्षेत्रमुच्यते ।  
अन्नदानं जपो होमो गंगायां नात्र संशयः ॥’

तटयोः प्रत्येकं गव्यूतिमात्रं क्रोशद्वयम् । गंगायां क्षेत्रम् । अन्यत्र  
नद्यादावनुक्तेनेति धर्मप्रकाशे ।

याज्ञवल्क्यः— (१२०२)

‘विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।  
गृह्यन्प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ॥’ इति ।

एते च निषेधा अनेकविधाः कालदेशद्रव्यकृतृदात्रादिभेदात् । तत्र  
कालत उपरागादौ, देशतः कुरुक्षेत्रादौ, द्रव्यतो मेघ्यादेः, कर्तृतस्तु  
विद्यातपोहीनस्य । दातृतस्तु द्वेषा-जातितः कर्मतश्च; यथा चंद्रालादेः  
पेतितादेश्च ।

प्रायश्चित्तमाह योगीश्वरः— (३१२८९)

‘गोष्ठे वसन्ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः ।  
गायत्रीजप्यनिरतः शुद्धयतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥’

मनुरपि— (१११९४)

‘जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।  
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥’

मासमित्यत्यंतसंयोगवाचिन्या द्वितीयया त्रिसहस्रजपस्य प्रतिदिन-  
व्यापित्वं गम्यते । इदं च गुरुत्वान्निमित्तद्वयसमुच्चयम् ।



यत्तु षट्त्रिंशन्मते—

‘पवित्रेष्ट्या विशुद्ध्यन्ति सर्वे घोरप्रतिग्रहाः ।

ऐन्दवेन मृगारेष्ट्या कदाचिन्मित्रविदया ॥

देव्या लक्षजपेनैव शुद्ध्यन्ते दुष्प्रतिग्रहाः ।’

इति; तद्देशकालकर्तृद्रव्याणामन्यतरदुष्टत्वे ज्ञेयम् । अनयैव दिशा  
त्रिचतुःसन्निपाते प्रायश्चित्तगौरवं कल्प्यम्; पूर्वोक्तगायत्रीलक्षजपो  
वेति केचित् ।

षट्त्रिंशन्मतेऽपि—

‘भिक्षामात्रे गृहीते तु पुण्यं संत्रमुदीरयेत् ।’

हारीतः—( २१।३-७ ) ‘मणिवासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यष्टसहस्रं  
जपेत् । पंच मध्यमे । दशोत्तमे । द्वादशरात्रं पयोव्रतं शतसहस्र-  
मसत्प्रतिग्रहेषु’ इति ।

उत्तमत्वादिकं च मण्यादीनां मूल्यतो वचनाच्च । तत्र वचनानि  
नोरदः—(१४।१६)

‘देवब्राह्मणराज्ञां च विज्ञेयं द्रव्यमुत्तमम्’

छांदोग्ये—(म. भा. अनु. ६२ पं. पु. उ. खं. ३२।१८ व. सू. २९।३०)

‘त्रोण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।’ इति ।

देवलः—

‘नवोत्तमानि चत्वारि मध्यमानि विधानतः ।

अधमानीति शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः ॥

अन्नं दधि मधु त्राणं गोभूरुक्माश्वहस्तिनः ।

दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः ॥

विद्यादाच्छादनं वासः परिभोगोपधानकम् ।

दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ॥

उपानत्प्रेखदानानि छत्रयानासनानि च ।

दीपकाष्टफलादीनि चामरं बहुवार्षिकम् ॥

१ ‘हिरण्यरत्नकौशेयस्त्रीपुंगोगजवाजिनाम् ।’ इति पूर्वार्धम् ।



बहुत्वादर्थजातानां संख्यादेशेषु नेष्यते ।

अधमान्यवशिष्टानि सर्वदानान्यनेकशः ॥ ' इति ।

आदेशेषु गणनासु संख्या इयत्ता परिच्छेद इति यावत् ।

नारदः—( १४/१५ )

‘ वासः कौशेयवर्जं च गोवर्जं पशवस्तथा ।

हिरण्यवर्जं लोहं च मध्यं त्रीहियवा अपि ॥ ’

देवलः—‘ रत्नक्षेत्रवेदमहेमकुप्याभरणान्युत्तमानि चतुष्पदद्विपद-  
धान्यफलोदकवस्त्रकार्पासादीनि मध्यमानि ’ ।

स्मृत्यर्थसारे—‘ सर्वत्रानुक्तौ दातृदेशकालद्रव्येष्वदुष्टेषु द्वादशनिष्क-  
प्रमाणद्रव्यप्रतिग्रहे कार्यम् । एवं सर्वत्र द्रव्यानुसारात् प्रायश्चित्तवृद्धि-  
हासौ ’ इति ।

आह्वहेमादौ पादौ—

‘ अतिदुष्टा प्रेतशय्यां न ग्राह्या द्विजसत्तमैः ।

गृहीतायां तु तस्यां च पुनः संस्कारमर्हति ॥ ’

एतानि च प्रायश्चित्तानि प्रतिगृहीतद्रव्यमुत्सृज्यैव कार्याणि ।

तथा च मनुः—( ११/१९३ )

‘ यद्रहितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।

तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति दानेन तपसैव वा ॥ ’

इदं तु देशकालदानाद्यनेकनिषेधसत्त्वे । एकतरनिषेधसत्त्वे तूत्सर्ग-  
प्रायश्चित्तयोर्विकल्पः ।

तथा च कल्पतरौ यमः—

‘ कर्मणा गृहितेनैव यद्वित्तं समुपार्जितम् ।

तस्य त्यागेन शुद्ध्यन्ति धर्मस्यान्वेषणेन वा ॥ ’

उत्सर्गप्रकारमाह स एव—

‘ अप्सु प्रास्येतु तद्रव्यमन्यायेन यदागतम् ।

प्रतिग्रहो वा दातव्यः शिष्टानां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ’

यत्तु चतुर्विंशन्मते—

‘ प्रतिग्रहेषु सर्वेषु षष्ठांशं परिकल्पयेत् ।

जपहोमादिकं कुर्यात्कृत्वा यज्ञप्रतिग्रहम् ॥ ’

१ अत्र शय्याग्रहणं धोरप्रतिग्रहोपलक्षणार्थम् , अतिदोषवत्त्वात् ।—प्रा. सु.



यच्च पादो-

‘अथ चेत्प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिकर्षितः ।

दशांशमर्जितं दद्यादेवं तत्र न हीयते ॥’

इति; तत् क्षुद्रद्रव्यप्रतिग्रहविषयम् । उपपातकसामान्यप्रायश्चित्तान्यपि जातिशक्त्याद्यपेक्षया योज्यानि । इति दुष्टप्रतिग्रहप्रायश्चित्तम् ।

अथ कौशील्ये ।

तत्र यमः—( बृह. १।२७-३१ )

‘नटनर्तकतक्षाणश्चर्मकारः सुवर्णकृत् ।

स्थाणुकापण्डगणिका अभोज्यान्नाः प्रकीर्त्तिताः ॥

१ नर्तकः—‘वैश्यायां रञ्जकाज्जातो नर्तको गायको भवेत् ।’ (ओं.स्मृ. १९)

तक्षा—‘करणायां तु विप्रेन्द्रा ! माहिष्याद्यो विजायते । स तक्षा रथकारश्च प्रोक्तः शिल्पी च वर्धकी ॥’ (सू. सं. १।१२।३०) । सुवर्णकृत्—‘सुवर्णकर्ता धातुवादादिना इति प्रायश्चित्तविवेकः । एतच्च कपटेन स्वर्णं कृत्वा धिक्नुः, न तु स्वरूपस्वर्णसिद्धिकर्तुरिति तटीका—तत्त्वार्थकौमुदी । ‘स्थाणुपापण्ड’ इति पठित्वा स्थाणुः शिल्पी, पाषाणभेदको वा इति केचित् । ‘स्थाणु’ इति पाठमाश्रित्य

‘स्थाणुकोऽधिकृतो ग्रामे’ (अम. २।८।७) इति कोशात् ग्रामाधिकारीत्यन्ये ।

पण्डः—‘न जुहोत्युचिते काले नाश्राति न ददाति च । पितृदेवार्चनादीनः पण्डः

स परिगीयते ॥’ (मार्क. पु. ३।२।६२) इत्युक्तः, अन्यस्तु प्रसिद्ध एव ।

पापण्डस्तु—‘वैदिककुले समुत्पन्नो वेदवेदमार्गमुत्सृज्य जैनबौद्धादिमार्गे वर्तमानः—

मा. । गान्धर्वो गायकः । चकोपजीवी शकटोपजीवी ।—मा. । कितवो—दूतकरः,

कितं वातीति पणपूर्वजीवी वा—गौ. ध. सू. टी. । ध्वजी-मद्यविक्रयी । अत्र

‘यजमानोपजीवी’ इति माधवीये बृहस्पतिपाठः । शूद्रयाजकः—स्यपतीष्ट्यामृत्वि-

गृत्यर्थं प्रतार्य शूद्रार्थं पाकयज्ञादिकर्ता वा ।—स्मृ. चं । कुलालः कुम्भकारवृत्त्यु-

पजीवी । स्मृ. चं. ‘कुलटश्चित्रकर्मा’—मा. पा. । ‘वृथारामाश्रमाणां च भेदकः

पुण्यविक्रयी । विक्रयी ब्रह्मणो यश्च—मा. पा. । कुण्डाशी भगभक्षः—म. भा. टी. नील-

कण्डः (१३।९०।७) पाकभाजनं कुण्डम्, तत्रैव क्वचिद्देशेऽश्नन्ति, तत् न

त्यजन्ति, ते कुण्डाशिनः,—गा. ध. सू. टी. (२।६।१८) इति विशेषः ।

—‘कूटाशः कुहको गुरुगुप्तिकः ।’ मा. पा. । तत्र-ख्यापने स्वमाहात्म्यहानिभिया

यो गुरुं न वक्ति, स गुरुगुप्तिकः । ‘सौनिको वर्णिकश्चैव—’ इ. मा. पा. । तत्र

वर्णिकया जीवतीति वर्णिकः भूमिका ग्रहणकर्तेति केचित् । भिषक्—भैषज्यवृत्तिः,

धर्मार्थं तु ये संपदशर्दाश्चिकित्सन्ति, ते भोज्यान्नाः ।—आप. ध. सू. टी. ।

पार्ष्णिः—पार्ष्णिस्मृता स्त्री, तया जीवतीति पार्ष्णिः । ‘पार्ष्णिः पाश्चात्यभागे

स्यात् पादमूलेन्मद्विभयोः ।’ इति विश्वः । अन्यत् प्रसिद्धमेव, किञ्चिद्द्वयाख्यातपूर्वम् ।



गान्धर्वो लोहकारश्च सौचिकस्तन्तुवायकः ।  
 चक्रोपजीवी रजकः कितवस्तत्करस्तथा ॥  
 ध्वजी मालोपजीवी च शूद्राध्यापकयाजकौ ।  
 कुलालश्चित्रकर्मा च वार्धुषिश्चर्मविक्रयी ॥  
 समर्थं पण्यमाहृत्य महर्षे यः प्रयच्छति ।  
 स वै वार्धुषिको नाम यश्च वृद्ध्या प्रयोजयेत् ॥  
 वृथाश्रमी वृथादाता आश्रमाणां च भेदकः ।  
 पुण्यस्य विक्रयी यश्च योनिसङ्करकस्तथा ॥  
 रङ्गोपजीवी कुण्डाशी वीरहा गुरुगुप्तिगः ।  
 भिषक् च गरदश्चैव रूपाजीवी च सूचकः ॥  
 सौनिकः पार्थिकश्चैव निषादेन समाः स्मृताः ॥  
 कर्मस्वेतेषु यो मोहाद्ब्राह्मणो वर्त्तते सदा ।  
 प्रायश्चित्तेऽपि चरितेऽपरिहार्यो भवेत्स हि ॥  
 एते ब्राह्मणचाण्डालाः सर्वे ब्रह्महणः किल ।  
 तस्माद्देवे च पैत्र्ये च वर्जितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥  
 एतेषामेव सर्वेषां प्रत्यापत्तिं तु मार्गताम् ।  
 भैक्षान्नमुपयुज्जानो द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ '

-स्थाणुका अश्रातृमती इति मदनः । वृथाश्रमी वेदबाह्यजटा-  
 धारणादिना । आश्रमाणां तु भेदकः तद्विरुद्धकारित्वात् आश्रमधर्म-  
 हिंसक इति कल्पतरौ । योनिसङ्करिको व्यभिचारी । कुण्डाशी चतुः-  
 षष्टिपलान्नभक्षक इति शूलपाणिः । युक्तस्तु-

‘पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्त्तरि गोलकः ।

यस्तयोरन्नमश्नाति कुण्डाशीत्युच्यते तुषैः ॥’ ( ३।१७४ )

इति मनूक्त एव । वीरहाऽभित्यागी । गुरुगुप्तिगो दण्डादिना  
 गुरोः शास्तेति प्राच्याः । गुरुनिहवकारीति मदनः । रूपाजीवी  
 वेशकरः, ताम्रादीनां स्वर्णादिसदृशरूपकारी वा । सूचकः पिशुनः ।  
 सूना घातस्थानं, तेन जीवत्यसौ सौनिकः । अत्रापि कौशीलव्याजित-  
 धनत्यागः ।



अथ विष्णूदिष्टेषु—

विष्णुः—( ५४१४ ) ‘ समुत्कर्षानृते गुरोश्चालीकनिर्वन्धे तदाक्षारणे च मासं पयसा वर्त्तेत ’ इति ।

—इदं च प्रतिपूर्वम् । आक्षारणं व्यभिचाराभिज्ञापः ।

शङ्खोऽपि—( १७५५ )

‘ क्षिप्त्वाऽप्रावशुचि द्रव्यं तदेवाग्भसि मानवः ।

मासमेकं व्रतं कुर्यादुपाक्रम्य तथा गुरुम् ॥ ’

अस्मिन्नेव विषये सुमन्तुः— ‘ देवर्षिब्राह्मणाचार्यपितृमातृनरेन्द्राणां प्रतिष्ठीवने आक्रोशने चोत्सुकेन जिह्वां दहेद्विरण्यं दद्यात् ’ ।

अमतिपूर्वं गुरोर्निर्वन्धे तु वसिष्ठः—( २१३१ ) ‘ गुरोर्लीक-निर्वन्धे कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा सचैलक्षांतो गुरुप्रसादात्पूतो भवति ।’

याज्ञवल्क्यः—( ३१२९१ )

‘ गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः ।

बध्वा वा वाससा क्षिप्रं स्नात्वा चोपवसेद्दिनम् ॥ ’

बृहस्पतिना तूत्तरार्द्धम्

‘ ताडयित्वा तृणेनापि प्रसाद्यैव विशुद्ध्यति ’ ( २१२७

इति पठितम् । इदमकामतः ।

कामतस्तु शङ्खलिखितौ— ‘ आक्रोशानृतवादे एकरात्रं त्रिरात्रं चोपवासः ’ इति ।

यत्तु वसिष्ठः—( १५११५ ) ‘ आचार्यमातृपितृहन्तारस्तत्प्रसादा-दपापाः ’ इति; तदप्यज्ञानतः । हन्तारोऽल्पतरदुःखकराः ।

यत्त्वापस्तम्बः—( ११२६१३-६ ) ‘ अनाक्रोश्यमाक्रोश्य त्रिरात्रमक्षार-लवणभोजनम् । शूद्रस्य सप्तरात्रमभोजनम् । स्त्रीणां च ’ तदपि ज्ञानतः । अत्रानुक्तविशेषप्रायश्चित्तेषु वार्द्धप्यलवणक्रियादिषु, उक्तविशेषप्रायश्चित्तेषु च गोवधादिपूपातकसामान्यप्रायश्चित्तानि जातिशक्त्याद्यपेक्षया योज्यानि । तत्रोत्तमं मानवं वृषभैकादशगोयुतं त्रैमासिकम् । ततो न्यूनं द्वैमासिकम्, ततो न्यूनं मासं यवागूपानमिति । —एतानि कामतः ।



अकामतस्तु—

‘उपपातकशुद्धिः स्यादेवं चान्द्रायणेन वा ।

पयसा वाऽपि मासेन पराकेणाथ वा पुनः ॥’ (३।२६५)

इति याज्ञवल्क्योक्तानि ।

इत्युपपातकप्रायश्चित्तानि समाप्तानि ।

अथ जातिभ्रंशकराण्याह मनुः— (११।६७)

‘ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्रातिरग्रेथमद्ययोः ।

जैहयं पुंसि च मैथुन्यं जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥’ इति ।

विष्णुस्तु— (३।८४) पशुमैथुनमपि पपाठ ।

तेषु प्रायश्चित्तमाह मनुः— (११।१२४)

‘जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वाऽन्यतममिच्छया ।

चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥’

एतच्चाभ्यास इति शूलपाणिः ।

[१] सङ्करीकरणान्याह मनुः— (११।६८)

‘खराश्रोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा ।

सङ्करीकरणं ज्ञेयं भीनाहिमहिषस्य च ॥’ इति ।

विष्णुः— (३।९१) ‘प्राप्त्यारण्यपशूनां हिंसनं सङ्करीकरणम्’ इति ।

[२] अपात्रीकरणान्याह मनुः— (११।६९)

‘निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।

अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥’ इति ।

उपपातकेषु शूद्रसेवानापदि, इदं तु सच्छूद्रस्यापि सेवनमिति  
भेदः । एवमन्यत्र ।

[३] मलिनीकरणान्याह मनुः— (११।७०)

‘कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ।

फलैधःकुसुमस्तेयमथैर्यं च मलावहम् ॥’ इति ।

विष्णुः— (४१-१)

‘पक्षिणां जलजानां च पावनं तु मलावहम् ॥’ इति ।

१ यद्भोज्यमपि शाकादि एकत्र पिटकादौ मयेन सहानीतं, तस्य भोजनम् ।  
मेधातिथिस्तु—मद्यानुगतं मद्यसंस्पृष्टमाह । तन्न, तत्र प्रायश्चित्तगौरवात् ।—कुल्लुकः ।



अत्र जातिभ्रंशकरत्वादिसंज्ञा रूढा, न यौगिकी । अत्रेयाघ्राणेऽपि जातिभ्रंशापत्तेः । क्षत्रियादीनां पात्रत्वाभावात्तान्प्रत्यपात्रीकरण-संज्ञाबाधाय ।

त्रिषु प्रायश्चित्तमाह मनुः— ( ११।१२५ )

‘सङ्करापात्रकृत्यासु मासः शोधनमन्दवः ।

मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकरुग्रहम् ॥’ इति ।

विष्णुः—( ३९।२ )

‘सङ्करीकरणं कृत्वा मासमश्रीत यावकम् ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तं तु कारयेत् ॥’

—अत्राज्ञानात्सङ्करीकरणानुष्ठाने मासं यावकाशनम् । ज्ञानात्कृच्छ्रा-तिकृच्छ्रम् । अज्ञानाभ्यासे चान्द्रायणम् । ज्ञानाभ्यासे तु चान्द्रायणद्वयं कल्प्यम् ।

विष्णुः—( ४०।२ )

‘अपात्रीकरणं कृत्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।

शीतकृच्छ्रेण वा भूयो महासान्तपनेन वा ॥’

अज्ञानादपात्रीकरणे तप्तकृच्छ्रं शीतकृच्छ्रं वा, ज्ञानात् महासान्त-पनम् । चान्द्रायणं पूर्ववत् ।

विष्णुः—( ४१।५ )

‘मलिनीकरणीये तु तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥’

अज्ञानान्मलिनीकरणानुष्ठाने त्र्यहं यावकम् । ज्ञानात्तप्तकृच्छ्रः । अज्ञानतोऽभ्यासे कृच्छ्रातिकृच्छ्रम् । एतानि जातिभ्रंशकरादिषु सामान्य-प्रायश्चित्तानि ब्राह्मणरुजःकरणादिमध्ये यत्र प्रातिस्विकं प्रायश्चित्तं नोक्तं तत्र, यत्र वोक्तं तत्रापि जातिशक्तिगुणाद्यपेक्षया योज्यानि । विशेष-वधप्रायश्चित्तमुक्तं प्राक् ।

इति जातिभ्रंशकरादिप्रायश्चित्तम् ।

अथ प्रकीर्णकप्रायश्चित्तानि ।

तत्स्वरूपमुक्तं विष्णुना—( ४२।१ ) ‘यदनुक्तं तत्प्रकीर्णकम्’ इति ।

—महापातकादिमलिनीकरणान्तेषु यज्ञ परिगणितं, तत्प्रकीर्णकमित्यर्थः ।



मनुः— (११।१९८)

‘शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ।

संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥’ इति ।

वेदविप्लावनम् । चाण्डालादिश्रुतिपथे अनध्यायेषु च पाठः ।

वसिष्ठः— (२३।२९) ‘पतितचण्डालशवश्रावणे त्रिरात्रं वाग्यता  
अनश्रंत आसीरन्सहस्रपरमं वा तदभ्यस्यन्तः पूता भवन्तीति विज्ञा-  
यते’ इति ।

—शवश्रावणं शवसन्निधावध्ययनम् । सहस्रपरममिति यावान् भाग-  
श्चाण्डालादिभिः श्रुतस्तावन्तं भागं सहस्रकृत्वो जपेदित्यर्थः ।

यत्तु षट्त्रिंशन्मते—‘चण्डालश्रोत्रावकाशे श्रुतिस्मृतिपाठ एकरात्रम-  
भोजनम्’ इति; तदबुद्धिपूर्वं सकृच्छ्रावणे ।

नित्याकरणे सामान्यप्रायश्चित्तं मनुराह— (२१।२०३)

‘वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।

स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥’ इति ।

नित्ययज्ञाद्यकरणे आचारमाधवीये प्रजापतिः—

‘दर्शं च पूर्णमासं च लुप्त्वाऽथोभयमेव वा ।

एकस्मिन् कृच्छ्रपादेन द्वयोरर्धेन शोधनम् ॥

हविर्यज्ञेष्वशक्तस्य लुप्तमप्येकमादितः ।

प्राजापत्येन शुध्येत पाकसंस्थासु चैव हि ॥

सन्ध्योपासनहानौ तु नित्यस्नानं विलोप्य च ।

होमं च नैत्यकं शुध्येद्वायत्र्यष्टसहस्रकृत् ॥

समान्ते सोमयज्ञानां हानौ चान्द्रायणं चरेत् ।

अकृत्वाऽन्यतमं यज्ञं यज्ञानामधिकारतः ॥

उपवासेन शुद्ध्येत पाकसंस्थासु चैव हि ।’ इति ।

कात्यायनः— (२।८।१९-२०)

‘पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवात्ययेऽपि च ।

अनिष्टा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥

भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ।’ इति ।

१ अनध्याप्यं वेदमध्याप्यं । कुं.



निहितदक्षिणापर्याप्तद्रव्यालासेऽपि नित्यं न लोपयेत् ।

तदाह बौधायनः—

‘यस्य नित्यानि लुप्तानि तथैवागन्तुकानि च ।

विषयपि न स स्वर्गं गच्छेत् पतितो हि सः ॥

तस्मात्कन्दैः फलैर्मूलेर्मधुनाऽऽज्यरसेन वा ।

नित्यं नित्यानि कुर्वीत न च नित्यानि लोपयेत् ॥’

पञ्चमहायज्ञाकरणे तु बृहस्पतिः— ( २।१३-१४ )

‘अनिवर्त्य महायज्ञान्यो भुङ्क्ते प्रत्यहं गृही ।

अनातुरः सति धने कृच्छ्राद्धेन स शुद्धयति ॥’

एतच्च त्रिदिनातिपात इति केचित् ।

तथा—

‘आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि ।

ऋतौ न गच्छेद्भार्या वा सोऽपि कृच्छ्राद्धमाचरेत् ॥’

विष्णुरपि— ( ५४।८ ) ‘पेर्नारोग्यवर्जं ऋतावगच्छन्पत्नीं

त्रिरात्रमुपवसेत् ।’ ऋतुरत्र स्नानदिनादारभ्य द्वादशदिनानि ।

यत्तु संवर्तः— ( बौ. ४।१।२३ )

‘ऋतौ नोपैति यो भार्यां नियतां व्रतचारिणीम् ।

नियमातिक्रमात्तस्य प्राणायामशतं स्मृतम् ॥’ इति ।

तदकामतः । एतच्च समानदेशविषयम् ।

‘ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति ।

घोरायां भ्रूणहत्यायां पितृभिः सह मज्जति ॥’ ( परा. ३।१५ )

इति मितक्षरावचनात् । एतदेव प्रायश्चित्तं स्त्रिया अपि ऋतौ  
भर्तुरनुपसर्पणे भवति । तस्या अपि नारदीये दोषदर्शनात् ।

‘आहूता या तु वै भर्त्रा नोपयाति त्वरान्विता ।

सा ध्वाङ्गी जायतेऽपुत्री दशवर्षाणि पञ्च च ॥’ इति ।

तासु तु स्त्रीत्वादद्धम् ।

हारीतः—

‘बहन्कमण्डलं रिक्तमस्नातोऽभ्रंश्च भोजनम् ।

अहोरात्रेण शुद्धः स्यादेनजप्येन चैव हि ॥’



अत्र चकारेणोपवासदिनजपयोः समुच्चयः ।

ऋष्यशृङ्गः—

‘इन्द्रचापं पलाशमिं यद्यन्यस्य प्रदर्शयेत् ।

प्रायश्चित्तमहोरात्रं धनुर्दण्डश्च दक्षिणा ॥’ इति ।

धनुषो दण्डस्य च क्रमेण दानं ज्ञातव्यम् ।

कक्षिराः— ( अत्रि. ५।२९ )

‘अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धां भिक्षां गृहे वसन् ।

दशरात्रं पिबेद्वज्रमापत्काले श्रयहं द्विजः ॥’ इति ।

—‘वैश्रं वज्रकृच्छ्रसम्बन्धि द्रव्यम् ।

एकस्यां पङ्क्तौ विषमदाने तु यमः—

‘न पङ्क्त्यां विषमं दद्यान्न याचेत् न दापयेत् ।

याचको दापको दाता न वै स्वर्गस्य गामिनः ॥

प्राजापत्येन कृच्छ्रेण मुच्यन्ते कर्मणस्ततः ॥’

स एव—

‘नदीसङ्गमहन्तुश्च कन्याविघ्नकरस्य च ।

समे विषमकर्तुश्च निष्कृतिर्नोपपद्यते ॥

त्रयाणामपि चैतेषां प्रत्यापत्तिं तु मार्गताम् ।

भैक्षलब्धेन चाग्नेन द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥’

—सङ्गम उदकावतरणमार्गः । समे विषमकर्ता पूजादौ ।

शङ्खः— ( १७।५७ )

‘एकपङ्क्त्युपविष्टानां विषमं यः प्रयच्छति ।

यश्च याचत्यसौ पक्षं कुर्याद्ब्रह्महणि व्रतम् ॥’

१ पलाशमिं पलाशवने जातमग्निम् ।—गोविन्दानन्दः । पलं मांसमश्रतीति पलाशः कव्यादः—श्मशानाग्निरिति तु युक्तम् । इदं शकधनुरिति व्यपदिश्य कामतो दर्शयित्वा रूप्यमाषकत्रयं देयम् । प्रा. वि.

२ ‘गोमूत्रेण तु सम्प्रिभ्रं यावकं धृतपाचितम् । एतद्वज्रमिति प्रोक्तं भगवान-  
त्रिरब्रवीत् ॥’ ( अत्रि. ५।३० )



वसिष्ठः— ( १९।२६—२७।२०।७ ) ‘ दण्ड्योत्सर्गे राजैकरात्रमुप-  
वसेन्निरात्रं पुरोहितः । कृच्छ्रमदण्ड्यदण्डने पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा । ’

‘ कुनखी श्यावदन्तश्च कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वोद्धरेयाताम् ’ इति ।

—उद्धरेयातां कुत्सितानां दन्तानां नखानां चोद्धरणं कुर्यातामित्यर्थः ।

ब्राह्मणस्य क्षत्रियाद्यभिवादाने हारीतः— ( २१।७—९ ) ‘ क्षत्रियाद्यभि-  
वादानेऽहोरात्रमुपवसेत् । द्वे वैश्यस्य । शूद्रस्याभिवादाने त्रिरात्रमुपवास’ इति ।  
समित्पुष्पहस्ताभिवादानेऽग्रेवमिति केचित् । तथा—‘ शय्यारूढपादुको-  
पानदारोपितपादोच्छिष्टान्धकारस्थश्चाद्धकृज्जपदेवपूजाभिरताभिवादिने  
त्रिरात्रमुपवासः स्यादन्यत्र निमन्त्रितेनान्यत्र भोजनेऽपि त्रिरात्रम् ’ इति ।

देवादीनामाभिमुख्येन स्त्रीवनादौ सुमन्तुः— ‘ देवर्षिगोब्राह्मणाचार्य-  
मातृपितृनरेन्द्राणां प्रतिष्ठीवन आक्रोशने जिह्वां दहेद्धिरण्यं दद्यात् ’ इति ।  
—प्रतिष्ठीवनमाभिमुख्येन स्त्रीवनम् ।

अथ मण्डपोद्यानदेवतागारादिभेदने ।

काश्यपः— ( १।१५—२१ ) ‘ वापीकूपारामसेतुलतातडागवप्रदेवता-  
यतनभेदने प्रायश्चित्तम् । ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात्  
‘ इदं विष्णुः ’ इति प्रथमां ‘ मा नस्तोक ’ इति द्वितीयां, ‘ विष्णोः  
कर्माणि ’ इति तृतीयां ‘ पादोस्यात्याम् ’ इति चतुर्थीम् । यां देवतामुच्छे-  
दयति तस्यै देवतायै ब्राह्मणान् भोजयेत् ’ इति । एतच्चाल्पोपघाते ।  
महतोपघातेऽभ्यासे प्राजापत्यादि कल्पनीयम् । देवता चात्र मृन्मयी  
पूजोज्जिता च ग्राह्या, प्रायश्चित्तस्याल्पत्वात् । अन्यत्र तु दंडगौरवदर्शनेन  
प्रायश्चित्तगौरवं कल्प्यम् । ‘ दंडवत्प्रायश्चित्तानि भवन्ति ’ इति वचनात् ।

तथाऽत्र दंडगौरवमाह कात्यायनः—

‘ हरेच्छिद्यादहेद्वाऽपि देवानां प्रतिमां यदि ।

! तदृहं चैव यो भियात्प्राप्नुयात्पूर्वस्त्राहसम् ॥ ’

विष्णुरपि— ( ५।१६९ )— ‘ अभक्ष्यस्याविक्रयस्य विक्रयी प्रतिमा-  
भेदकश्च उत्तमसाहसं दंडनीयः ।

१ ‘ युवा सुवासा ’ इति तृतीया ‘ दंष्ट्राभ्यां ’ इति चतुर्थी पन्यसुपाय्येन  
तस्यै च देवतायै पूर्णाहुतिं जुहुयात् ’ इति मृ. पा. ।



अत्र भग्नोद्धारादिकमप्याहुः शंखलिखितौ—‘ प्रतिमारामकूपसं-  
क्रमणध्वजसेतुनिपातभंगेषु तत्समुत्थापनं प्रतिसंस्कारेऽष्टशतं च ’ इति ।

मनुः— ( १।२८५ )

‘ संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।

प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ ’ इति ।

अत्र च प्रतिमातद्वेदतारतम्येन दंडप्रायश्चित्तयोर्व्यवस्थोज्ञेया ।

पत्न्या दारिद्र्यादिना भर्तुरतिक्रमे आपस्तंबः—( ध.सू.१।२८।२० )

‘ भर्तुरतिक्रमे कृच्छ्रं ’ इति ।

—अतिक्रमो दारिद्र्यक्रोधमात्सर्यादिनाऽवमाननम् ।

पर्वणि मैथुने विष्णुपुराणे निन्दाश्रवणम्—( ३।११।१४-१५ )

‘ चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याऽथ पूर्णिमा ।

पर्वण्येतानि राजेंद्र रविसंक्रांतिरेव च ॥

स्त्रीतैलमांससंभोगी पर्वस्वेतेषु यो नरः ।

विष्णुत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृतः ॥ ’

मिताक्षरायां स्मृत्यंतरे—

‘ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ।

कृत्वा सचैलं स्नात्वा च वारुणीभिश्च मार्जयेत् ॥ ’ इति ।

आद्धदिनमैथुने च ‘ स्नातकत्रतलोपे च ’ ( म. १।१।२०३ )

इत्यनेनोपवास एव ।

वमने शातातपः—

‘ विच्छर्दने द्विजातीनां भिन्नभांडे च भोजने

पंचगव्येन शुद्धिः स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ ’

माषादिवमने तु विशेषमाह यमः—

‘ मयूरमाषमांसानि भुक्त्वा वा वमति द्विजः ।

त्रिरात्रमुपवासोऽस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥

प्राणायामैस्त्रिभिः स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति । ’

तथा यज्ञोपवीतादिनाशे “ मेखलादंडाजिनयज्ञोपवीतावपतेषु च  
मनोव्रतवतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनर्यथार्थं प्रतीयात् । असकृद्भैक्ष-  
भोजनमभ्युदितेऽभिनिर्मुक्ते वांते दिवास्वप्ने नमस्त्रीदर्शने नमस्वापे



इमं शानमाक्रम्य हयादींश्चारुह्य पूज्यातिक्रमे चैसाभिरेव जुहुयात् । अभ्य-  
समिधने स्थावरसरीसृपादीनां वधे 'यदेवा देवदेवनं' इति कूष्मांडीभि-  
राज्यं जुहुयात् । मणिवासोगवादीनां प्रतिग्रहे स्नानिष्यष्टसहस्रं जपेत्<sup>१</sup>  
इति । 'मनो ज्योतिर्जुषताम्' इति मनोर्लिङ्गाभिः । 'त्वमग्ने व्रतपा  
असि' इति व्रतलिङ्गाभिश्च । यथार्थं उपनयनोक्तेन विधिना । समंत्रकं  
प्रतीयाद्गृहीयात् ।

अभ्युदितादिस्वरूपमाह यमः—

‘सूर्योदये तु यः शेते स सूर्योदित उच्यते ।

अस्तंगते तु यः शेते सूर्ये निर्मुक्त एव सः ॥’ इति ।

अकामतोऽभ्युदिते प्रायश्चित्तमाह यमः—

‘अजीर्णेऽभ्युदिते त्रांते इमं कर्मणि भोजने ।

दुःस्वप्ने दुर्ज्वनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते ॥’

अत्रैव कामतो गौतमः ( ३।५।२१ ) ‘सूर्याभ्युदितो ब्रह्मचारी  
तिष्ठेदहरभुञ्जानोऽभ्यस्तमितश्च रात्रिं सावित्रीं जपेत्’ । अभ्यासे  
त्वावृत्तिरूपा ।

गर्भाधानादिसंस्कारातिपत्तौ तु आश्वलायनः—

‘आरभ्याधानमा चौलात्कालेऽतीते तु कर्मणाम् ।

व्याहृत्याज्यं सुसंस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम् ॥

एतेष्वेकैकलोपेऽपि पादकृच्छ्रं समाचरेत् ।

चूडाया अर्द्धकृच्छ्रः स्यादापदि त्वेवमीरितम् ॥

अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत् ॥’

कात्यायनोऽपि—

‘लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते ।

प्रायश्चित्ते कृते पश्चात्लुप्तं कर्म समाचरेत् ॥

१ लज्जाश्वलायनः— ( १।११।२० ) ‘यदुक्तं च यथाकाले कुर्यात्संस्कार-  
कर्म च । असामर्थ्यात्कृतं नो चेद्विधितस्य कथं भवेत् ? ॥ प्रायश्चित्तं विधा-  
यादावेकैकस्य च कर्मणः । कृत्वादौ कृच्छ्रमेकैकं लुप्तकर्माणि कारयेत् ॥ इत्याह ।



‘ त्वं नः ’ ‘ स त्वं न ’ इत्याभ्यां ‘ इमं मे ’ त्वेतया कृत्वा ।

‘ ये ते शत ’ ‘ मयाश्चाभ्यामुदुत्तम ’ मृचाहुंतीः ॥

हुत्वा पृथक् पृथक् पादमर्द्धं चौले समाचरेत् ।

स्त्रीणामप्येवमेव स्याज्जाताधामंत्रिका क्रिया ॥’ इति ।

गर्भाधानाकरण एवाश्वलायनः—

‘ गर्भाधानस्याकरणे तस्यां जातस्तु दुष्यति ।

अकृत्वा गां ततो दत्त्वा कुर्यात्पुंसवनं पतिः ॥’ इति ।

क्षुतादौ वृद्धपराशरः—( ८।२९६, ९८ )

‘ विप्रः क्षुत्कृत्य निष्ठीव्य कृत्वा चानृतभाषणम् ।

वचनं पतितैः कृत्वा दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥

प्रेक्षणं शशिनोऽर्कस्य ब्रह्मेशविष्णुसंस्मृतिः ।’

एतच्च जलाभावे कर्मणि व्यापृतो वा ।

अत एव वृद्धशातातपः—

‘ क्षुत्वा निष्ठीव्य वासस्तु परिधायाचमेद्बुधः ।

कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्य च दर्शनम् ॥

यथाविभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम् ।

अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥ ’ इति ।

संवत्सरं क्रियातिपाते विष्णुपुराणम्—( ३।१८।४०—४१ )

‘ संवत्सरं क्रियाहानिर्यस्य पुंसः प्रजायते ।

तस्यावलोकनात्सूर्यो निरीक्ष्यः साधुभिः सदा ॥

स्पृष्टे स्नानं सचैलं तु शुद्धिहेतुर्महामते ।

पुंसो भवति तस्योक्त्या न शुद्धिः पापकर्मणः ॥ ’ इति ।

१ ‘ त्वं नो अग्ने ’ ( शु. य. २।१।३ ) ‘ स त्वं नो ’ ( शु. य. २।१।४ )  
 ‘ इमं मे ’ ( शु. य. २।१।१ ) ‘ ये ते शतं ’ ( कात्या. श्रौ. सू. २।१।१।११  
 आप. श्रौ. सू. १।१।३।१ ) ‘ अयाश्चामेः ’ ( मैत्रा. १।४।३ काठकसं. ५।४  
 आश्व. श्रौ. सू. १।१।१।१३ आप. श्रौ. सू. ३।१।१।२ हि. के. य. सू. १।२६।१३  
 उदुत्तमं ’ ( ऋ. मं. १।२।४।१५ शु. य. १।२।१२ तै. सं. १।१९।१।१।३ )



अत्र च प्रायश्चित्तविशेषाश्रवणादेकाहातिक्रमे चैकाहमभोजनस्योक्त-  
त्वात्तदनुसारेण च षष्ठ्यधिकशतत्रयदिनापचारे तावदुपवासकरणाशक्ते-  
स्तत्प्रत्याम्नायत्वेन षडुपवासैरेकैकप्राजापत्यकल्पनया त्रिचत्वारिंशत्प्रा-  
जापत्या उपवासद्वयं च योज्यम् ।

निमंत्रणं गृहीत्वा त्यागे तु यमः—

‘ केतनं कारयित्वा तु योऽतिपातयति द्विजः ।

ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयोनीं च जायते ॥

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते ब्राह्मणो नियतव्रतः ।

यतिचांद्रायणं चीर्त्वा ततः पापात्प्रमुच्यते ॥ ’ इति ।

निमंत्रितस्यानाह्वानेऽप्येतदेव । एतच्च कामाभ्यासे ।

अन्यत्र भोजने तु हारीतः—( २१।१२ )

‘ अन्यत्र निमंत्रितेनान्यत्र भोजनेऽपि त्रिगात्रम् ’ इति ।

अनृतवचनादौ तु शंखलिखितौ— ‘ आक्रोशनानृतवादे एकरात्रं  
त्रिरात्रं चोपवास ’ इति ।

कामतोऽभ्यासे तु— ‘ असत्यभाषणं शूद्रसेवनमपात्रीकरणं कृत्वा  
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ’ (४०।२) इति त्रिष्णूक्ते ज्ञेयम् । वधफलकेऽनृते त  
व्यसनप्रायश्चित्तप्रसङ्गेनोपपातकेषु प्रागुक्तम् ।

निषिद्धदेशगमने देवलः—( १६ )

‘ सिन्धुसौराष्ट्रसौवीरांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः ।

अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ’ ॥

कर्मनाशाज्जलस्पर्शादौ स एव—

‘ कर्मनाशाज्जलस्पर्शत्किरतोयाविलङ्घनात् ।

गण्डकीबाहुतरणात्पुनः संस्कारमर्हति ॥’

तीर्थयात्रां विना चैतत् ,

‘ अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रमगधानपि ।

तीर्थयात्रां विना गच्छेत्पुनःसंस्कारमर्हति ॥ ’

इति स्मरणात् । तद्देशवासिनां तु प्रायश्चित्ततारतम्यं कल्पनीयम् ।



ब्रणमध्ये कृमिपाते गरुडपुराणे—

‘जायन्ते यस्य शिरसि कृमयो विनतात्मज ! ।

कृच्छ्रं तदाचरेत्प्राज्ञः शुद्धये कश्यपात्मज ! ॥’ इति ।

यत्तु च्यवनः— ‘कृमिदर्शने सान्तपनं वृषभो दक्षिणा’ इति; तद्युग-  
पदनेकब्रणेषु कृस्युत्पत्तौ ज्ञेयम् । अत्र क्षत्रियादीनां पादपादं न्यूनम् ।

खरयानाचारोहणे याज्ञवल्क्यः— ( ३।२९० )

‘प्राणायामी जले स्नात्वा खरयानोष्ट्रयानगः ।

नम्रः स्नात्वा च भुक्त्वा च गत्वा चैव दिवा स्त्रियम् ॥’

—खरयुक्तयानं शकटादि । एतच्च—

‘उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ।

संवासा जलमाप्लुत्य प्राणायामेन शुध्यति ॥’ (म. १।१२०१)

इति मनुबृहस्पतिस्मरणात्कामकारविषयम् । अकामतस्तु स्नान-  
मात्रम् ।

अत्रैव विष्णुः— ( ५४।२३ ) ‘उष्ट्रेण खरेण वा गत्वा नम्रः स्नात्वा  
च भुक्त्वा च प्राणायामं कुर्यात्’ इति ।

साक्षात्खरोष्ट्राचारोहणे तु यमः—

‘खरयानमुष्ट्रयानं वा योऽविरोहेद्द्विजोत्तमः ।

अपो वा प्रविशेन्नमस्त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ॥’ इति ।

दिवा मैथुनादौ तु प्रायश्चित्तमाह शङ्खः— ( १७।५४ )

‘दिवा तु मैथुनं कृत्वा नम्रः स्नात्वा तथाऽम्भसि ।

नम्रां परस्त्रियं दृष्ट्वा दिनमेकमभोजनम् ॥’ इति ।

अत्र नम्रस्नानादावेकरात्रत्रिरात्रयोगभ्यासाद्यपेक्षया व्यवस्था द्रष्टव्या ।

१ शिराव्यतिरिक्ताहेतु वसिष्ठः— ‘तृणद्वारे कृमिर्यस्य सम्भवेत्तु कदाचित् ।  
प्राजापत्येन शुद्धयेत् हिरण्यं गौर्वसो दक्षिणा ॥’ ( १८।१४ ) इति ।

२ ‘स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः’ इति पाठान्तरम् ।

३ अत्रापवादो भोजनकुतूहले— ( ३.३ ) व्यासः— ‘अनृणां युक्ताले वा दिवा  
रात्रौ तथापि वा । प्रोषितस्तु स्त्रियं गच्छेत् प्रायश्चित्तो भवेन्न च ॥’ इति ।



अनुदकमूत्रपुरीषकरणे यममनू—

‘आपद्रवो विना तोयं शारीरं यो निषेवते ।

एकाहं क्षपणं कृत्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ॥’ इति ।

अनापदि द्विगुणम् । एतच्च कामतः ।

अत्रैव सुमन्तुः— ‘अनुदकमूत्रपुरीषकरणे नखकेशशिरप्राशने सद्यःस्नानं घृतकुशहिरण्योदकपानं च’ इति । अत्र घृतादिपानस्य प्रायश्चित्तार्थत्वाद्भोजननिवृत्तिः ।

यत्त्वङ्गिराः—

‘कृते मूत्रपुरीषे वा यदा नैवोदकं भवेत् ।

स्नात्वा लब्धोदकं पश्चात्सचैलस्तु विशुध्यति ॥’ इति,

यच्च शातातपः— ( १३ ) ‘अनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलं स्नानं महाव्याहृतिहोमश्च’ इति; तदकामतः ।

अत्रैव मनुः— ( ११।२०२ )

‘विनाऽद्विगुणं चाप्यन्तः शारीरं सन्निषेव्य तु ।

सचैलो वहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

यत्तु स एव—

‘अटव्यामटमानस्य ब्राह्मणस्य विशेषतः ।

प्रणष्टसलिले देशे कथं शुद्धिर्विधीयते ॥

अपां दृष्ट्वैव विप्रस्तु कुर्याच्चैव सचैलकम् ।

गायत्र्यष्टशतं जप्यं स्नानमेतत्समाचरेत् ॥

देशं कालं समासाद्य अवस्थामात्मनस्तथा ।

धर्मशौचेऽवतिष्ठेत न कुर्याद्वेगधारणम् ॥

त्रिरात्रं चाप्युपवसेज्यहं त्रिषवणी भवेत् ।

तथैवाम्भसि मग्नस्तु त्रिःपठेद्दधमर्षणम् ॥’ इति ।

—धर्मशौचं शास्त्रीयं शौचम् । वेगधारणं शास्त्रीयशौचप्रतीक्षया मूत्र-पुरीषोत्सर्गविलम्बं न कुर्यादित्यर्थः । त्रिरात्रोपवासस्त्वेनापदि कामतः ।

अप्सुकामतो मूत्रपुरीषोत्सर्गयोरभ्यासे शङ्कलित्वितौ—‘रितोमूत्रपुरीषा-प्युदके कृत्वा त्रिरात्रोपोषित ‘इदमापः प्रवहत’ इति जपेत्’ इति ।

यत्तु सुमन्तुः— ‘अप्स्वमौ वा मेहवस्तप्तकृच्छ्रम्’ इति; तत्कामतो-ऽन्यन्ताभ्यासे ।



विना यज्ञोपवीतेन मूत्रोत्सर्गादिकरणे प्रायश्चित्तम्

२५५

स्वपुरीषदर्शनादौ यमपराशरौ- ( य. ५।१३ )

‘प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत् ।

दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षेत गामग्निं ब्राह्मणं तथा ॥’ इति ।

यज्ञोपवीतं विना वान्तिकमूत्रोत्सर्गादिकरणे तु मदनरत्ने  
स्मृत्यन्तरम्

‘विना यज्ञोपवीतेन यत्तुच्छिष्टो भवेद्विजः ।

प्रायश्चित्तमहोरात्रं गायत्र्यष्टशतं तु वा ॥’ इति ।

ऊर्ध्वोच्छिष्टे उपवासः । अधरोच्छिष्टे गायत्र्यष्टशतजप इति  
व्यवस्था ।

यत्तु तत्रैव—

‘पिबतो मेहतश्चैव भुञ्जतोऽनुपवीतिनः ।

प्राणायामत्रिकं षट्कं नक्तं च त्रितयं क्रमात् ॥’

इति; तदकामतः ।

यत्तु वृद्धपराशरः— ( ८।२९४-९५ )

‘यज्ञोपवीतेन विना भोजनं कुरुते द्विजः ।

अथ मूत्रपुरीषे वा रेतासेचनमेव वा ॥

त्रिरात्रोपोषितो विप्रः पादकृच्छ्रं तु भूमिपः ।

अहोरात्रोषितो वैश्यः शुद्धिरेषा पुरातनी ॥’

इति; तत्कामतोऽभ्यासे ।

भुक्तवतोऽनाचान्तस्योत्थानेऽपि तत्रैव— ( म. भा. १४।१०६।२० )

‘यदोत्तिष्ठत्यनाचान्तो भुक्तवानशनात्ततः ।

सद्यः स्नानं प्रकुर्वीत सोऽन्यथाऽप्रयतो भवेत् ॥’ इति ।

१ विना यज्ञोपवीतेन द्विजातिर्यद्युपस्पृशेत् । प्राजापत्यं प्रकुर्वीत निष्कृति-  
नान्यथा भवेत् ॥ विना यज्ञोपवीतेन भुङ्क्ते तु ब्राह्मणो यदि । स्नानं कृत्वा जपं कुर्वन्तु-  
पवासेन शुद्ध्यति ॥’ ( ल. हा. २१, २३ ) मरीचिः— ‘ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते  
विष्मूत्रं कुरुतेऽथ वा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥’ मण्डनः—  
‘यज्ञोपवीतस्याभावे बह्वोपव्यानमाचरेत् । तदभावे तु सूत्रेण त्रिवृत्ता संव्ययीत  
सः ॥’ यज्ञोपवीतनाशे हारीतः— ‘मनोव्रतपतिभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा  
पुनर्यथार्थं प्रतिपादेयत्’ इति । मनोलिङ्गकाभिः, ‘त्वमग्रे व्रतपा असि’  
इत्यादिव्रतलिङ्गकाभिश्चेत्यर्थः ।—प्रा. सु.



पलाशशयनाचारोहणे शङ्कः— ( १७।५१ )

‘अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ।

पलाशस्य द्विजश्रेष्ठस्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥’ इति ।

निषिद्धकाष्ठेन दन्तधावने वृद्धपराशरः— ( ८।३०७ )

‘पालाशशिशिपाकाष्ठदन्तधावनकृत्तरः ।

दिवाकीर्तिसमस्तावद्यावद्वा नैव पश्यति ॥’ इति ।

एतच्च निषिद्धकाष्ठान्तराणामप्युपलक्षणम् ।

अन्तरा गमनेऽपि तत्रैव—

‘द्वौ विप्रौ ब्राह्मणाम्नी च दम्पती द्वौ द्विजोत्तमौ ।

अन्तरेण यदा गच्छेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥

होमकाले तथा दोहे स्वाध्याये दारसंग्रहे ।

अन्तरेण यदा गच्छेद्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥’

यत्त्वङ्गिराः— ( ६१ )

दम्पत्योर्विप्रयोरग्न्योर्विप्राग्न्योर्गोर्द्विजातिषु ।

अन्तरा यदि गच्छेत्तु द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥’ इति ।

तत्कामतः । एतदेव च—

‘विप्राग्न्योर्विप्रपिण्डानां भवोक्ष्णोर्विष्णुताक्षर्ययोः ।

भानुव्योमादिकानां च न कुर्यादन्तरागतिम् ॥’

इति पराशरोक्तेऽपि द्रष्टव्यम् ।

वृद्धपराशरः— ( शं. स्मृ. १७।२० )

‘पादप्रतापनं कृत्वा कृत्वा वह्निं तथा ह्यधः ।

कुशैः प्रमृज्य पादौ तु दिनमेकं व्रतं चरेत् ॥’

स्नातकव्रताधिकारे क्रतुः— ‘एतेषामाचाराणामेकैकस्य व्यभिचारे  
एकरात्रोपोषणम्’ इति ।

ब्रह्मचारिधर्मलोपे बौधायनः— ‘अत्रैव शौचाचमनसन्ध्यावन्दन-  
दर्भभिक्षाभिकार्यराहित्यशूद्रादिस्पर्शनकौपीनकटिसूत्रयज्ञोपवीतमेखला-  
दण्डाजिनत्यागदिवास्वापलत्रधारणपादुकाध्यारोहणमालाधारणोद्वर्तना-  
नुलेपनाञ्जन-जलक्रीडा-द्युतनृत्यगीतवाद्याद्यभिरतिपाखण्डादिसम्भाषण-



पर्युषितभोजनादि-ब्रह्मचारिव्रतलोपज-सकलदोषनिर्हारार्थं ब्रह्मचारी  
 कृच्छ्रत्रयं चरेत् । महाव्याहृतिहोमं च कुर्यात् । प्रथमं व्यस्तसमस्नाभि-  
 व्याहृतिभिश्चतस्र आध्याहुतीर्हुत्वा ॐ भूर्भुवो च पृथिव्यै च महते  
 च स्वाहा । ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा ।  
 सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा । ॐ भूर्भुवः सुवश्चन्द्रमसे च  
 नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा । ॐ पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा ।  
 ॐ पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा । ॐ यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा ।  
 ॐ सर्वं पाहि शतक्रतो स्वाहा । ॐ पुनरुर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषा-  
 युषा । पुनर्नः पाहंहसः स्वाहा । सह रयानिवर्त्तस्वाग्ने पित्र्यन्व  
 धारया । विश्वस्मिन् विधत्स्वस्वस्वाहा । (तै. सं. १।५।३) पुन-  
 व्याहृतिभिः हुनेत्' इति ।

—हुनेज्जुहुयात् । एतदल्पधर्मलोपे ।

बाहुल्ये प्रायश्चित्तविशेषमाह ऋग्विधाने शौनकः— (ल. क्र. २१९)

‘तं वोधिया’ (क्र.सं. ४।७।१०) जपेन्मन्त्रं लक्षं चैत्येशिवा लये ।

ब्रह्मचारिणो धर्मस्य न्यूनं चेत्पूर्णमेव तत् ॥’ इति ।

इति ब्रह्मचारिधर्मलोपप्रायश्चित्तम् ।

क्षत्रियस्य रणे पृष्ठदर्शने शङ्खः— (१७।५३)

‘क्षत्रियस्तु रणे पृष्ठं दत्वा प्राणपरायणः ।

संवत्सरं व्रतं कुर्यान्नित्वा वृक्षं फलप्रदम् ॥’

एतच्च कामतोऽभ्यासे । अन्यत्र तु त्वद्धीदि योज्यम् ।

गृहीतव्रतभङ्गे वायुपुराणे—

‘लोभान्मोहात्प्रमादाद्वा व्रतभङ्गो यदा भवेत् ।

उपवासत्रयं कुर्यात्कुर्याद्वा केशमुण्डनम् ॥

प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।’

—वा शब्दः संसृज्ये ।

मिथ्याशपथे यमः— (६।१६)

‘विप्रस्य वधसंयुक्तं कृत्वा तु शपथं मृषा ।

ब्रह्महा यावक्कात्रेण व्रतं चान्द्रायणं चरेत् ॥’

एतच्च शपथान्तरस्याप्युपलक्षकम्



सुकृतं ये प्रयच्छन्ति यावज्जीवकृतं नराः ।

ते पिष्यन्ते शिलापेष्यैर्यथैते पापकारिणः ॥' ( १४।७२ )

इति मार्कण्डेयपुराणवाक्यात् ।

'यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तम्' इत्यौशनसवाक्यात्तत्र प्राजापत्यः कल्पनीयः।

ब्राह्मणस्य क्षत्रियादिवृत्त्या धनार्जने प्रचेताः— 'ब्राह्मणस्यापत्काले  
पितृमातृबहुभृत्यस्यानन्तरं क्षत्रोपनिवेशः । तत्र संवत्सरमर्थप्राप्तौ  
चान्द्रायणं चरेत्' इति ।

वैश्यवृत्तिजीवने तु किञ्चिदधिकम् । तत्र वर्षाभ्यन्तरे मासद्विमासादौ  
चान्द्रायणभागहारः कल्पनीयः । संवत्सरादूर्ध्वं द्वैगुण्यादि च कल्पनीयम् ।

शूद्रवृत्त्याऽर्जने मनुः—

'न कथञ्चन कुर्वीत ब्राह्मणः कर्म वर्षलम् ।

वृषलः कर्म वा ब्राह्मं पतनीये हि ते तयोः ॥'

—वर्षेष्टं कर्म सेवा ।

एवमुपक्रम्य पुनरुपनयनसहितकृच्छ्राद्यनुवृत्तौ स एव— ( ११।१९२ )

'प्रायश्चित्तं न कुर्वन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ।

ब्राह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतमादिशेत् ॥'

एवं शूद्रस्यापि द्विजकर्मकरणेऽप्येतदेव । तस्यापि तद्विकर्मत्वात् ।

अर्जितवनत्यागपूर्वकं चैतत् । 'यद्रहितेनार्जयति' इति मनूक्तेः ( ११।१९३ )

स्त्रीधनोपजीवने तु—

चाद्रायणेन चेकेन सर्वपापक्षयो भवेत्'

इत्यापस्तंबोक्त चाद्रायणं स्त्रियै तद्धनं दत्वा कार्यम् ।

भार्याया मुखमैथुने नृगताः ( २।३१-३२ ) 'यस्तु पुनर्ब्राह्मणो  
भ्रमपत्नीमुखे मैथुनं सेवेत स दुष्यति इति वैवस्वतः । प्राजापत्येन  
शुध्यति इति हारीतः' इति ।

गोयुक्तयानस्थस्य मैथुने यमः— ( ५।३-४ )

'यदि गोभिः समायुक्तं यानमारुह्य वै द्विजः ।

मैथुनं सेवते तत्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥



इवञ्चिपोऽगम्यतां कृत्वा पुनरुपभोगे प्रायश्चित्तम्

२५९

त्रिरात्रं क्षपणं कृत्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ।

गोमूत्रो यवादकं दद्याद्धृतं प्राश्य विशुध्यति ॥ ' इति ।

यत्तु स्मरणम्—

'मैथुनं तु समानाद्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।

गोयानेऽसु दिवा चैत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ '

तदकामतः सकृत्करणे द्वेयम् ।

क्रोधात्स्वभार्या त्वं मे मात्रा सदृशी अगम्येत्युक्त्वा पुनरुपभोगे प्रायश्चित्तमाह पराशरः— ( १२।५७-५९ )

'यस्तु क्रुद्धः पुमान् त्रूयाज्जायायास्तु अगम्यताम् ।

पुनरिच्छति भार्या च विप्रमध्ये तु वाचयेत् ॥

आर्त्तः क्रुद्धस्तमोऽन्धो वा क्षुत्पिपासाभयार्दितः ।

दानं पुण्यमकृत्वा वा प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥

उपस्पृशेत्त्रिपवणं महाननुपसंगमम् ।

चीर्णाति चैव गां दद्याद्वाह्मणान् भोजयेद्दश ॥ ' इति ।

—वाचयेत्स्वस्य प्रायश्चित्तोपदेशं कारयेत् । पुण्यं यागादि । संकल्पितं शानाद्यकृत्वेत्यर्थः ।

वस्तिकर्मणि यमः—

'वस्तिकर्मणि रुद्धैश्च प्रच्छेदनविरेचनैः ।

शिशुकृच्छ्रेण शुद्धयेत्तु तस्मात्पापात्र संशयः ॥ '

प्रच्छेदनविरेचनयोरभ्यास एव शिशुकृच्छ्रः । अन्यत्र तु स्नानमात्रम् ।

नथा च स एव—

'अजीर्णेऽभ्युदिने वाते इवभुकर्मणि मैथुने ।

दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते ॥ ' इति ।

देवागारशिलादिना स्वगृहकरणं निन्दति यमः—

'इष्टकाकाष्ठाश्मलौहान् देवालयसमन्वितान् ।

गृहीत्वाऽऽत्मगृहे ये तु लोभाद्वै योजयन्ति च ॥

एकाकिनस्तथोद्विग्नाः क्षुत्तृषापरीपीडिताः ।

बन्धने ते तु तिष्ठन्ति यावत्पापस्य संक्षयः ॥ '

अत्र प्राजापत्यचान्द्रायणादि कल्प्यम् ।



वानप्रस्थयत्योत्रैतभङ्गे 'वानप्रस्थो दीक्षामेदे कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा महाकक्षं वर्द्धयेत् । भिक्षुर्वानप्रस्थवत्सोमवृद्धिर्वर्जं स्वशास्त्र-संस्कारश्च' इति ।

—दीक्षामेदो यमनियमातिक्रमः । महाकक्षमौषधवनप्रदेशं उदक-सेवनादिना वर्द्धयेत् । सोमशब्देनौषधिसामान्यं लक्ष्यते । तद्वृद्धिः परं भिक्षोर्निवर्त्तते, परं तु सर्वं सममित्यर्थः । स्वशास्त्रसंस्कारः प्राणायामाभ्यासः ।

हारीतः— 'अनृतपिशुनवचने भिक्षूणां तप्तकृच्छ्रः क्रोधादङ्कार-पिशुनेषु च ।'

छागलेयः—

'व्रतानि शानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ।

एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥

अहोरात्रोपितो भूत्वा कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ।

कृच्छ्रपरं चान्द्रायणविशेषणम् ।

व्रतोपव्रतान्याह वौधायनः—( २।१०।५४-५६ )

अथमानि व्रतानि भवन्ति ।

'अहिंसासत्यमस्तेन्यं मैथुनस्य च वर्जनम् । त्याग ' इति ।

अथ पञ्चैवोपव्रतानि । 'अक्रोधो गुरुशुश्रूषाप्रमादः शौचमाहारः शुद्धिश्च' इति ।

जले प्रतिविम्बदर्शनादौ याज्ञवल्क्यः—( ३।२७९ )

'मयि तेज' इति छायां स्वां दृष्ट्वाऽम्बुनि वै जपेत् ।

सावित्रीमशुचौ दृष्टे चापल्ये वाऽनृतेऽपि च ॥'

'मयि तेज' ( बृ. उ. ६।४।६ ) इति मन्त्रो वाजसनीये प्रसिद्धः ।

—अशुचौ मूत्रपुरीषादौ । चापल्ये वृथाचेष्टायाम् ।

प्रतिश्रुत्यानृतोक्तौ हारीतः—

'प्रतिश्रुत्यानृतं ब्रूयान्मिथ्यासत्यमथापि वा ।

स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चाद्रायणव्रतम् ॥' इति ।

गुरुवस्तुविषयकप्रतिश्रुताकरणपरमेतत् । प्रायश्चित्तस्य गुरुत्वात्



अन्नपात्रेण पशुवन्मुखेन च जलपाने प्रायश्चित्तम्

२६१

भोजनकालीनमौनस्यागे पराशरः— ( १२।३७ )

‘मौनव्रतं समासाद्य-आसीनो न वदेद्विजः ।

भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥’ इति ।

अर्द्धं भुक्त्वाऽन्नपात्रेण जलपाने स एव— ( १२।३८ )

‘अर्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् ।

हतं दैवं च पित्र्यं च आत्मानं चोपघातयेत् ॥’

पशुवन्मुखेन जलपाने स एव— ( १२।५३ )

‘विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।

तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥’ इति

अन्नोपवासः प्रायश्चित्तम् ।

असपिण्डैः सह रोदने पारस्करः—

‘मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम् ।

वर्जयेत्तदहोरात्रं दानं श्राद्धादिकर्म च ॥’

इत्यनेनैकाहः । एतच्च कामतः । अकामतस्तु स्नानमेव ।

प्रेतालङ्करणे शङ्खः—

‘कृच्छ्रपादोऽसपिण्डस्य प्रेतालङ्करणे कृते ।

अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते ॥’ इति ।

कामतो द्विगुणम् ।

यत्तु तप्तकृच्छ्रानुवृत्तावङ्गिराः— ‘आत्मत्यागिनां संस्कृतौ तदश्रुपात-  
कारी च’ इति; तदभ्यासे ।

‘अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ।

स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥’ इति ।

अत्रेच्छयेति ग्रहणादेतत्कामतः । अकामतस्तु स्नानमेव ।

यत्तु याज्ञवल्क्यः— ( ३।२६ )

‘ब्राह्मणेनानुगन्तव्यो न शूद्रो न द्विजः कश्चित् ।

अनुगम्यांभसि स्नात्वा स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतभुक् शुचिः ॥’ इति ।

—ब्राह्मणेनासपिण्डेन । द्विजो विप्रादिः । अस्य च घृतप्राशनस्य  
भोजनकार्ये विधाने प्रमाणाभावान्न भोजननिवृत्तिरिति मिता-  
क्षरायाम् । तन्मानवसमानविषयम् । वस्तुतो घृतप्राशनस्य प्रायश्चित्तार्थ-  
त्वादभोजनमेव युक्तम् ।



अत एव च वसिष्ठेन- ( २३।२१-२२ ) 'मानुषास्थिस्निग्धं  
स्पृष्ट्वा त्रिरात्रमस्निग्धे त्वहोरात्रम् । शवानुगमने चैवम्' इत्यनुगमने  
एकाहस्योक्तत्वात् । क्षत्रियवैश्यानुगमने त्वधिकं कल्प्यम् ।

ब्राह्मणस्य शूद्रानुगमने पराशरः- ( ३।४६-४७ )

'प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।

अनुगच्छेन्नियमानं स त्रिरात्रेण शुद्ध्यति ॥

त्रिरात्रे तु ततश्चीर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।

प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥' इति ।

अत्र घृतप्राशनस्य शुद्ध्यर्थत्वाभिधानात् भोजननिवृत्तिः । एतच्च  
कामतः । अकामतस्त्वर्थम् । एवं क्षत्रियस्य वैश्यशूद्रानुगमने वैश्यस्य च  
शूद्रानुगमने कल्प्यम् ।

'इष्टापूर्तशुभमहाकर्मस्वनुपहतानामपि ऋत्विगाचार्यादीनां कृच्छ्राति-  
कृच्छ्रचान्द्रायणाख्यं सर्वप्रायश्चित्तं तत्स्थाने द्वादशप्राजापत्यत्वात्तदर्थं  
वा वदन्ति' इति स्मृत्यर्थसारे ।

कन्याया विवाहात्पूर्वं रजोदर्शने प्रायश्चित्तमाह प्रयोगपारिजाते  
आचार्यः-

'कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मवान् ।

तथा च कारयित्वा तामुद्वहेतानृशंसधीः ॥

पिता ऋतून्स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः ।

दानावधि गृहे यत्नात्पालयेच्च रजोवतीम् ॥

दद्यात्तदनुसङ्ग्या गाः शक्तः कन्यापिता यदि ।

दातव्यैकाऽपि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥

दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वेनामतिनिःस्वः सदक्षिणाम् ।

तस्यातीतर्तुसङ्गेषु वराय प्रतिपादयेत् ॥

उपोष्य त्रिदिनं कन्या रात्रौ पीत्वा गवां पयः ।

अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् ॥

तामुद्वहन्वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद्धूतम् ॥' इति ।

श्राद्धोपवासदिने दन्तधावने विष्णुरहस्ये-

'श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् ।

गायत्र्या शतसम्पूतमन्त्रु प्राश्य विशुद्ध्यति ॥' इति ।



एवमन्यान्यपि प्रकीर्णप्रायश्चित्तानि द्रष्टव्यानि ।

इति प्रकीर्णप्रायश्चित्तानि ।

अथ पतितत्यागविधिः ।

स च महापातकिन एवेति केचित् । युक्तं तु 'पतितस्य बहिः कुर्युः' ( या. ३।२९४ ) इत्यादौ पतितमात्रोपादानात्सङ्कोचे मानाभावादुपपापादिना पतितस्यापि भवतीति प्रतीमः । तथा यदि बन्धुभिः प्रेर्यमाणोऽपि प्रायश्चित्तं न करोति तदा कार्यः ।

यथा शङ्खः— 'तस्य तद्गुरोर्वान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषान् विख्याप्य पुनः पुनराचारं लभस्वेति, स यद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्पात्रं विपर्यस्येत् ।'

अत्र कालमाह मनुः— ( ११।१८२ )

'पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्वान्धवैः सह ।

निन्दितेऽहनि सायाहे ज्ञात्यृत्विगुरुसन्निधौ ॥'

—निन्दितेऽहनि रिक्तादितिथौ ।

देशमाह योगीश्वरः— ( ३।२९४ )

'पतितस्य बहिः कुर्युः सर्वकार्येषु चैव तम् ।

दासीकुंभं बहिर्प्राप्तान्नियेरन् स्वबांधवाः ॥'

नियमनविधिमाह गौतमः ( ३।२।२-७ ) 'तस्य विद्यागुरुर्योनि-संबद्धाः सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युः । पात्रं चास्य विपर्यस्येयु-र्दक्षिणामुखः पद्मादासः कर्मकरो वाऽवकरादमेध्यपात्रमानीय दासी-घटात्पूरयित्वा विपर्यस्येदमनुदकं करोमीति नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालमेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखाः । विद्यागुरवो योनिर्बद्धाश्च वीक्षेरन्नप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः ।'

—योनिर्बद्धाः पित्रादयः । उदकदानादीत्यनेनां जलिप्राग्भाविदाहादि-निवृत्तिः । प्रेतकर्माणीति सपिण्डीकरणांतानामेव प्राप्त्यर्थम् । दासो गर्भदासः । कर्मकरो वेतनसंपादितः । दासीघटादास्याहृतघटजलेन । नामग्राहममुमित्यस्य स्थाने पतितनाम गृहीत्वा ।

स्मृत्यर्थसारे तु 'अस्माकं त्वं मृत इत्युक्त्वा निनयेत्' इत्युक्तम् । दास्येव वा निनयेत् ।



यथा मनुः— ( ११।१८३ )

‘दासीघटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा  
अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बांधवैः सह ॥’

प्रेतवदित्यपसव्यदक्षिणमुखत्वाद्यतिदेशार्थम् ।

ततः स न व्यवहार्यः ।

यथा मनुः— ( ११।१८४ )

‘निवर्त्तेरस्ततस्तस्मात्संभाषणसहासने ।

दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रामेव च लौकिकीम् ॥’

स्त्रीत्यागे विशेषमाह योगीश्वरः—( ३।२९६ )

‘पतितानामेष एव विधिः स्त्रीणां प्रकीर्त्तितः ।

वासो गृहांतिके देयमन्नं वासः सरक्षणम् ॥’

—अन्नं जीवनमात्रक्षमम् । वस्त्रं मलिनम् ।

यत्तु वसिष्ठः—( २१।१३ )

‘चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या ।

पतिप्री च विशेषेण जुंगितोपगता च या ॥’

इति; तत्पुंवदेवासामन्नवस्त्राद्याच्छादनादित्यागार्थम् । अन्यासां तु

पतितानामन्नवस्त्रादि देयमिति विज्ञानेश्वरः ।

—जुंगितः प्रतिलोमजः ।

संभाषणे प्रायश्चित्तं मिताक्षरायाम्—‘अत ऊर्ध्वं तेन संभाष्य  
तिष्ठेदेकरात्रं जपन् सावित्रीमन्त्रानपूर्वं ज्ञानपूर्वं च त्रिरात्रम्’ इति ।

त्यागोत्तरमनुतापादिना प्रायश्चित्तं कृत्वा समायाते विशेषमाह  
मनुः— ( १२।१८६ )

‘प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुंभमपां नवम् ।

तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥’

गौतमोऽपि —( ३।२।१०-१७ ) ‘यस्तु प्रायश्चित्तेन शुध्येत्तस्मिन्  
शुद्धे शांतकुंभमयं पात्रं पुण्यतमाद्भदात्पूरयित्वा स्रवंतीभ्यो वा तत  
एनमप उपस्पर्शयेयुः । अथास्मै तत्पात्रं दधुस्तत्प्रतिगृह्य जपेच्छांता द्यौः  
शांता पृथिवी शांतं शिवमंतरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः



पावमानीभिस्तरसमन्दीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुवात् हिरण्यं ब्राह्मणाय दद्याद् वा गां आचार्याय च । यस्य तु प्राणांतिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्धयेत् । एतदेव शांस्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु ।'

तत एनं कृतप्रायश्चित्तं नैव कुत्सयेयुः । तथा सर्वकार्येषु कयविक्रयादिषु तेन सह संव्यवहरेयुरिति । उपस्पर्शनेयुरामचनं कारयेयुः । उपपातकेष्वभ्यासेन महापापतौल्येन पातित्यापादकेषु ।

अत्र विशेषमाह हारीतः—'स्वशिरसा यवसमादाय गोभ्यो दद्याद्यदि ताः प्रतिगृहीयुरथैनं प्रवर्त्तयेयुरितरथा नेत्यभिप्रेतम् ।'

—प्रतिग्रहो भक्षणम् । इतरथा भक्षणाभावेन स संव्यवहार्य इत्यर्थः । भिक्षाक्षरायां स्मृत्यर्थसारे च भक्षणाभावे प्रायश्चित्तावृत्तिरुक्ता ।

वसिष्ठः—(१५।१७) 'तथाभिषिक्तस्य प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मनाख्यात' इति ।

—अभिषिक्तस्य पूर्वोक्तरीत्या स्नातस्य । प्रत्युद्धारः संग्रहः । स च पुत्रजन्मना व्याख्यातः । संग्रहोत्तरं जातकर्मादिना संस्क्रुर्यादित्यर्थः ।

कचित्प्रायश्चित्तोत्तरमपि संव्यवहारापवादमाह योगीश्वरः—(३।२९८)

‘शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संविशेन्न तु ।

चीर्णव्रतानपि सतः कृतव्रतसहितानिमान् ॥’

—संविशेन्नवहरेत् । इति पतितस्यागविधिः ।

अथ रहस्यप्रायश्चित्तम्—रहस्यं कर्त्तृतिरिक्तेनाज्ञातम् । अगम्यागमने च द्वयोः कर्त्तृत्वं व्यासक्तमतस्तत्र तदरिक्तेनाज्ञाते रहस्यत्वम् । एतेन पापमात्रे तृतीयेनाज्ञाते रहस्यत्वमिति वदंतः प्राच्याः परास्ताः । अत्र प्रायश्चित्तमपि रहस्यमेव कुर्यात् ।

तथा च हारीतः—(३०।१) ‘रहस्ये रहस्यं प्रकाशे प्रकाशम्’ इति । अत्र पर्वदुपस्थानमपि नास्ति ।

तथा याज्ञवल्क्यः—(३।३००)

‘विख्यातदोषः कुर्वीत पर्वदोऽनुमतं व्रतम् ।

अनभिख्यातदोषस्त रहस्ये व्रतमाचरेत् ॥’

१ यद्यपि व्यभिचारिण्या स्त्रिया वधेऽल्पं प्रायश्चित्तम्, तथापि तत्प्रतिग्रहे वाचनिकोऽयं निषेधः; ‘नास्ति वचनस्यातिभारः’ इति न्यायादित्याहुः । द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्यापि सङ्ग्रहः । सवर्णान्याजनादुष्टैः संसर्गः शोधितरपि ॥’ इत्यादिकलितिविद्वमध्ये प्रागेवोक्तम् ।—प्रा. कौ.



तत्र यद्यनभिज्ञः कर्त्ता तदाऽमुकस्मिन् रहस्यपापे किं प्रायश्चित्तमिति  
व्याजांतरेण पृष्ट्वा कुर्यात् ।

तत्र साधारणप्रायश्चित्तानि मनुः—( ११।२२६ )

‘एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैरनसः ।

अनाविष्कृतपापांस्तु मंत्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ ’

संवर्त्तः—( २०३ )

‘दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजातयः ।

पातकेभ्यः प्रमुच्यन्ते वेदाभ्यासान्न संशयः ॥ ’

वसिष्ठः—( २६।१२ )

‘जपिनां होमिनां चैव ध्यायिनां तीर्थसेविनाम् ।

निवसन्ति न पापानि ये च स्नाताः शिरोव्रतैः ॥

मनुः ( ११।२४५—४६, ४८ )

‘वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।

नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥

अथैवस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।

तथाज्ञानकृतं पापं कृत्स्नं दहति वेदवित् ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।

अपि भ्रूणहनं मासात्पुनर्त्यहरहः कृताः ॥ ’

अन्वहमित्यत्रापि कालाकांक्षायां मासादित्यन्वेति ।

माधवीये यमः—

‘सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।

गायत्रीं स जपेन्नित्यं महापातकनाशिनीम् ॥

विरजं द्विगुणं जप्त्वा तदहैव विशुध्यति ।

वामदेव्यं द्विगवर्त्त्य तदहैव विशुध्यति ॥

पौरुषं सूक्तमावर्त्त्य मुच्यते सर्वकिल्बिषात्

वृषभं शतशो जप्त्वा तदहैव विशुध्यति ॥

१ शिरोव्रतान्युपनिषद्गतानि महानाम्न्यादीनि । माधवस्तु—‘आथर्वणिकानां  
वेदमतेषु मुख्यं व्रतं शिरोव्रतम् । ( ८।१३ ] इत्याद्याह, तदत्र बहुवचननिर्देशाद-  
नभिप्रेतम् ।



वेदमेकगुणं कृत्वा तदहैव विशुद्धयति ।  
रुद्रैकादशकं जप्त्वा तदहैव विशुद्धयति ॥

चतुर्विंशतिमते—

‘पावमानीस्तथा कौत्सं पौरुषं सूक्तमेव च ।

जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत पवित्रं मधुच्छन्दसम् ॥

१ पावमानीः— ‘यः पावमानीरध्येति०’ ( ऋ. सं. ७।२।१८ ) इत्यादि-  
ऋच इति कुल्लूकः । ‘स्वादिष्ठया’ इत्याद्याः पूर्वोक्ता एवेति तु युक्तम् । कौत्सम्—  
‘अप नः शोशुचत् ०’ ( ऋ. सं. १।७।५ ) इति अष्टर्चं सूक्तम् । तथा च  
मनुः— ( १।१।२४९ ) ‘कौत्सं जप्त्वाप इत्येतत्’ इति । पौरुषं सूक्तं ‘सहस्र-  
शीर्षाः’ ( ऋ. सं. ८।४।१७ ) इत्यादि षोडशर्चम् । पवित्रम्—‘पवित्रं ते  
( ऋ. सं. ७।३।८ ) इति पञ्चर्चम् । मधुच्छन्दसम् ‘अग्निमीळे०’ ( ऋ. सं.  
१।१।१ ) इति नवर्चम् । मण्डलब्राह्मणम्—‘आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं’  
( तै. आ. १०।१४ ) इति तैत्तिरीयाणाम् । ‘यदेतन्मण्डलं’ ( )  
इति वाजसनेयिनाम् । अष्टोत्तरशतोपनिषत्सु पञ्चाशत्तमी ‘याज्ञवल्क्यो ह वै’  
इत्यादिका उपनिषद्वा । रुद्रः—‘कद्रुदाये’ ( ऋ. सं. १।३।२६ ) इति पञ्चरुद्र-  
सूक्तानीति स्मृ. चं. । ‘नमस्ते रुद्र’ ( तै. सं. ४।५।१ ) इत्यादिः प्रश्नस्तैत्ति-  
रीयाणाम्, तदादिरेव ( शु. य. १६।१ ) वाजसनेयिनां च । शुक्रियः—‘ऋचं  
वाचं प्रपये’ ( शु. य. ३६।१ ) इत्यध्यायः । मोक्षकः—‘ईशावाक्यमिदं०’  
( शु. य. ४०।१ ) इत्यध्यायः । वामदेव्यम्—‘कया नः०’ ( सा. सं. उ. १।  
१।१२ ) इति तृचे गीतं साम । बृहत्साम—‘त्वामिद्धि हवामहे’ ( सा. सं. उ.  
२।१।१२ ) इति । यज्ञायज्ञीयम्—‘यज्ञायज्ञा वो अमये.’ ( सा. सं. उ. १।१।२० )  
इत्यत्र गीतम् । आदित्यम्—‘यदद्य सूर उदिते.’ ( सा. सं. उ. ६।१।२ )  
इत्यत्र गीतमिति केचित् । ज्येष्ठसाम—‘मूर्धानं दिवो.’ ( सा. सं. उ. ४।१।३ )  
राजनम्—‘इन्द्रं नरो नेमधिता.’ ( सा. सं. पू. ४।१।३ ) इति । पारुच्छेपम्—  
‘अग्निं होतारं मन्ये.’ ( सा. सं. उ. ९।१।१८ ) इति । अथर्वशिरसम्—अष्टो-  
त्तरशतोपनिषत्सु त्रयोविंशं ‘देवा ह वै स्वर्गे’ इत्यादि । पौरुषं सूक्तम्—‘सहस्र-  
बाहुः’ ( अथ. सं. १९।१।६ ) इत्यथर्ववेदोक्तमत्राभिप्रेतमिति भाति, पूर्वोत्तर-  
साहचर्यात् । ‘सहस्रशीर्षा’ ( सा. सं. पू. ६।३।१३ ) इत्यादिषु गीतं साम  
इति उत्सर्गमयूखे । नीलरुद्रान्—‘अपश्यं त्वावरोहन्तं’ इत्याद्योपनिषत् प्रसिद्धैव  
ऐन्द्रम्—‘इन्द्राय साम गायतं०’ ( सा. सं. पू. ४।२।१० ) इति पू. ऋ. ।-



मंडलप्रादणं रुद्रं शुक्रियो मोक्षकस्तथा ।

वामदेव्यं बृहत्साम जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥

( संवर्तस्मृ. २२७-२८ )

यज्ञायज्ञीयमादित्यं ज्येष्ठसाम च राजनम् ।

पारुष्ट्यं च सामानि जप्त्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥

अथर्वशिरसं चैव पौरुषं सूक्तमेव च ।

नीलरुद्रं तथैवैन्द्रं जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥

आथर्वणाश्च ये केचिन्मन्त्राः कामविवर्जिताः ।

ते सर्वे पापहन्तारो याज्ञवल्क्यवचो यथा ॥

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ।

सामानि सरहस्यानि अथर्वाङ्गिरसस्तथा ॥

ब्राह्मणानि च कल्पांश्च षडङ्गानि तथैव च ।

आख्यानानि तथान्यानि जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥

इतिहासपुराणानि देवतास्तवनानि च ।

जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत धर्मस्थानैस्तथापरैः ॥ ' इति ।

बौधायनः— ( ४।१।३-४ )

विधिना शास्त्रदृष्टेन प्राणायामान् समाचरेत् ।

यदुपस्थकृतं पापं पद्भ्यां वा यत्कृतं भवेत् ।

बाहुभ्यां मनसा वाचा श्रोत्रत्वक्घ्राणचक्षुषा ॥ ' इति ।

प्राणायामाः मासपर्यन्तं षोडश । पूर्वोक्तमनु—(११२४८) वाक्यात् ।

—सामानि सरहस्यानि—ब्राह्मणोपनिषत्सहितानि । ' साम्नां वा सरहस्यानाम् । ( म. १।१२६२ ) इत्यत्र कुल्लुकेन तथा व्याख्यातत्वात् । अथर्वाङ्गिरसः—अथर्व-भिरङ्गिरोभिश्च दृष्टा मन्त्रा इति तै.आ. ( २।९ ) भाष्ये । आथर्वणं सूक्तं ' छन्दो-गाय बृहद्गाय ' इत्यादि, आङ्गिरसं ' अङ्गिरसो जन्मानि ' इत्यादीत्युत्सर्गमयूखे ( पृ. १४ ) । कल्पानां षडङ्गान्तर्गतत्वेऽपि पृथगुक्तिः केवलानामपि पापमोचकत्व-बोधनार्था । धर्मस्थानैरिति ' पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः । वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ ( याज्ञ. १।३ ) इत्येतेषु उक्ताधिकै-न्यायादिभिरित्यर्थः ।

२ ' सर्वपापैः प्रमुच्यते । ' ( २२६ ) इति संवर्तपाठः ।



चतुर्विंशतिमते— ( ११।२४८ )

‘मृगारेष्टिः पवित्रेष्टिस्त्रिहविः पावमान्यपि ।

इष्टयः पापनाशिन्यो वैश्वानर्या समन्विताः ॥’

कौमि— ( ब्र. सं. २।३४।९९-१०७ )

‘जपस्तपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् ।

ग्रहणादिषु कालेषु महापातकशोधनम् ॥

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ।

देवताभ्यर्चनं पुंसामशेषाघविनाशनम् ॥

अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद्भवम् ।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

कृष्णाष्टम्यां महादिवं तथा कृष्णचतुर्दशीम् ।

सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम् ।

दृष्ट्वेवं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः ॥

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।

द्वादश्यां शुक्रपक्षस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः ।

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।

वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥

प्रत्येकं निलसंयुक्तान् दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन् ।

स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः ॥’

तत्रैव— ( ब्र. सं. १।२९।३० )

‘नान्यत्पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ।

सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे ॥’

यमः—

‘जपेद्वाऽप्यस्यं वामीयं पावमानीरथापि वा ।

कुन्तापवालखिल्यांश्च निवित्प्रैषान् वृषाकपिम् ॥

होतृन् रुद्रान्सकृज्जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ।’

१ अस्यवामीयं— ‘अस्य वामस्य’ ( ऋ. सं. २।३।१४ ) इत्यादि-  
द्विपञ्चाशद्वचम् । कुन्तापाः— ‘इदं जना उपभुत’ इत्याद्यध्यायः । वालखिल्यानि—  
‘अभिप्रवः’ ( ऋ. सं. ६।४।१४ ) इत्यादीन्येकादश सूक्तानि । निविदः—  
‘अभिर्देवेभ्यः’ इत्याद्याः । प्रैषाः— ‘होता यक्षदमि’ इत्याद्याः । एते कुन्तापाद्याः—



मनुः— ( ११।२५२ )

‘एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ।

अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किञ्चेदमितीति च ॥’

अवेत्यृक्— ‘अव ते हेळो वरुण नमोभिः’ (ऋ. सं. १।२।१५।४)

इत्यादिका । जपस्त्वर्थान्तराविरुद्धे काले ।

शातातपः— ( १।७१ )

‘मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा ।

भस्मच्छन्नो भस्मशय्यां शयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः ॥’

इदमकामतः सकृत्करणे ।

अभ्यासे तु षट्त्रिंशन्मते—

‘महाव्याहृतिभिर्होमैस्तिलैः कार्यो द्विजन्मना ।

उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसङ्ख्यया ॥

महापातकसंयुक्तो लक्षहोमेन शुद्ध्यति ।’

हारीतः— ‘पातकातिपातकोपपातकमहापातकानामेकतमसन्निपाते वाऽघमर्षणमेव त्रिर्जपेत् ।’

यमः—

‘दशप्रणवसंयुक्तैः प्राणायामैश्चतुःशतैः ।

मुच्यते ब्रह्महत्यायाः किं पुनः शेषपातकैः ? ॥’

अत्र महापापातिपापानुपापोपपापेषु क्रमाच्चतुस्त्रिंशद्व्येकशतं प्राणायामाः । सङ्करीकरणादौ ‘प्रकीर्णकेषु च हासः कल्प्यः’ ( ३।३०५ ) इति मिताक्षरायाम् ।

अत्रिः— ( ८।१०-११ )

‘ब्रह्महा गुरुतल्पी वागभ्यागामी तथैव च ।

सुवर्णस्तेयश्चौरश्च गोघ्नो विश्वासघातकः ॥

शरणागतघाती च कूटसाक्षी त्वकार्यकृत् ।

एवमादिषु वाऽन्येषु पापेषु निरताः सदा ॥

—ऋक्संहितायाः परिशिष्टत्वेन पठ्यन्ते । वृषाकपिः—‘विहि सौतोरसृक्षत’ (ऋ. सं. ८।४।१) इति त्रयोविंशत्यृचम् । होतृन्—चित्तिः सुक् ।’ ( तै. भा. ३।१ ) इत्यादीन् । ‘होतृन् रुद्रान् पितृन्’ इति पठित्वा पितृन्—‘परेयिवांसं’ (ऋ. सं. ७।६।१४) इत्यादीनिति स्मृ. चं. ।



प्राणायामत्रयं कृत्वा कृत्वा केल्यं समाहितः ।

अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ ’

इति सामान्यतो रहस्यप्रायश्चित्तानि ।

अथ विशेषतः— तत्र योगीश्वरः— ( ३।३०१ )

‘ त्रिरात्रोपोषितो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम् ।

अन्तर्जले विशुद्धयेत गां च दत्त्वा पयस्विनीम् ॥ ’

जपश्चान्तर्जले निमग्नेन त्रिरावर्त्तनीयः ‘ देवद्विजगुरुन् हत्वाऽघमर्षणं  
त्रिरावर्त्तयेत् ’ इति सुमन्तूक्तेः । इदमकामतः सकृद्वधे ।

यत्तु मनुः— ( ११।२४८ )

‘ सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।

अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ ’

इति; तदस्मिन्नेव विषये गोदानाशक्ताविति विज्ञानेश्वरः (३।३०१) ।  
उपवासत्रयाशक्तावित्यपरे ।

यच्च गौतमेन— ( ३।६।९ ) मासव्रतमुक्त्वोक्तम् ‘ एतद्व्रत एव वा  
ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः श्रान्तोऽघमर्षणं  
जपेत् ’ इति । तदकामाभ्यासे ।

योगीश्वरः— ( ३।२४७ )

‘ लोमभ्यः स्वाहेत्यथवा दिवसं मारुताशनः ।

जले जप्त्वाऽभिजुहुयाच्चत्वारिंशद्भृताद्भृतीः ॥ ’

इदमप्यकामतः सकृद्वधविषयम् ।

यत्तु मनुः— ( ११।२५८ )

‘ अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ।

मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥ ’

इति; तत्कामतोऽभ्यासविषयम्, कामतः श्रोत्रियादिवधविषयं वा ।

यच्च बौधायनः— ( ३।५।२-७ ) ‘ ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा दिश-  
मुपनिष्क्रम्य स्नातः शुचिः शुचिवासा उदकान्ते स्थण्डिलमुपलिप्य  
संकृत् कृत्वा वासाः सकृत्पूतेन पाणिनादित्याभिमुखोऽघमर्षणं स्वाध्याय-

१ कल्यं ‘ प्रत्युषोऽहमुखं कल्यम् ’ इत्यमरः ‘ कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ’  
( पाणि. २।३।९ ) इति द्वितीया । बीप्सा त्वभ्यासार्था । यावदुषः कालं प्राणा-  
यामत्रयं पुनः पुनरावर्त्येत्यर्थः ।



मधीयीत । प्रातः शतं मध्याह्ने शतमपराह्णे शतमपरिमितं वा । उदितेषु नक्षत्रेषु प्रसृतियावकं प्राश्नीयात् । ज्ञानकृतेभ्योऽज्ञानकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः समरात्रात्प्रमुच्यन्ते । द्वादशरात्रान्महापातकेभ्यो ब्रह्महत्यां सुवर्णस्तेयं सुरापानमिति वर्जयित्वा । एकविंशतिरात्रेण तान्यपि तरति ' इति; तत्कामतः सकृद्वधविषयम् ।

यत्तु वृद्धविष्णुः— ' ब्रह्महत्यां कृत्वा ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा दिश-  
मुपनिष्क्रम्य प्रभूतेन्धनेनाग्निं प्रज्वालयाद्यमर्षणेनाष्टसहस्रमाहुती-  
र्जुहुयात्तदेतस्मात्पूतो भवति ' इति; तदनुग्राहकविषयम् ।

यदपि मनुः— ( ११।२५९ )

' अयं तृपवसेत्युक्त्वास्त्रिहोऽभ्युपयन्नपः ।

मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जप्त्वा वाऽघमर्षणम् ॥ '

इति; तदतिनिर्गुणविषयम् ।

यच्च हारीतः— ' महापातकातिपातकपातकोपपातकानामेकतम-  
सन्निपाते वाऽघमर्षणमेव त्रिर्जपेत् ' इति; तन्निमित्तिपरम् । सवनस्य-  
स्त्रीक्षत्रियविप्राहितामिस्त्र्यात्रेयीगर्भिण्यविज्ञातगर्भवधेऽप्येतान्येव प्राय-  
श्चित्तानि पादोनानि योज्यानि । इति ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम् ।

### अथ सुरापाने—

यमः— ' सुरापः कण्ठमात्रमुदकमवतीर्य सुतप्तोमात् प्रसृतिमादायो-  
ङ्कारेणाभिमंज्य पिबेत् । ' इदमौषधार्थपाने ।

याज्ञवल्क्यः— ( ३।३०३ )

' त्रिरात्रोपोषितो हुत्वा कूष्माण्डीभिर्घृतं शुचिः । '

पूर्वलिखितैवत्पूर्वाद्धस्थं चत्वारिंशदित्यनुवर्तते । कूष्माण्ड्यो ' यदेवा  
देवहेडनम् ' ( तै. आ. २।३-६ ) इत्यादिकाः । इदमकामतः  
सकृत्पाने ।

एतदशक्तौ मनुः— ( ११।२४९ )

' मासं जपित्वा ' अप नो ' वासिष्ठं च ज्यूचं प्रति ।

माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्ध्यति ॥ '



अप नो-‘अप नः शोशुचदधम्’ (ऋ.सं. १।७।५) इत्यष्ट्वचम् ।  
वासिष्ठं-‘प्रति स्तोमेऽभिरुषसं वसिष्ठा’ (ऋ. सं. ५।५।२७) इति  
तृचम् । माहित्रं ‘माहि त्रीणामवोऽस्तु’ (ऋ. सं. ८।८।४३) इति  
तृचम् । शुद्धवत्य ‘एतोन्विन्द्रं स्तवाम’ (ऋ. सं. ६।६।३१) इत्याद्याः ।  
एतेषां च जपो मासं प्रत्यहं षोडशवारमिति विज्ञानेश्वरः ।

कामतः सुरापाने मनुः- (११।२५६)

‘मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ।

सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥’

देवकृतस्यैनस इत्यष्टौ शाकलहोमीया मन्त्राः । ‘नम इदुग्रं नम  
आविवास’ (ऋ. सं. ४।८।१२।३) इत्यस्या वा ऋचो जपः । प्रत्यहं  
संवत्सरपर्यन्तम् ।

तदपि स एव- (११।२५७)

‘महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्वाः समाहितः ।

अभ्यस्योब्दं पावमानीर्भिक्षाहारो विशुष्यति’ ॥

इति; तत्कामतोऽभ्यासविषयम्, अनेकमहापापविषयं वा ।

इति सुरापानप्रायश्चित्तम् ।

अथ सुवर्णस्तेये—

तत्र याज्ञवल्क्यः- (३।३०३)

‘ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु रुद्रजापी जले स्थितः ॥’

पूर्वल्लिखितैतत्पूर्वाद्धस्थं ‘त्रिरात्रोपोषित’ इति ‘विशुष्येत्’ इति  
चाऽत्राप्यनुषज्यते ।

अत्रिः- (७।७)

‘एकादशगुणान्वाऽपि रुद्रानावर्यं धर्मवित् ।

महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥’

अनुग्राहकादिषु गुणवतो निर्गुणस्वामिकापहरणे च मनुक्तम्- (११।२५०)

‘सकृज्जस्वाऽस्यवामीयं शिवसङ्कल्पमेव च ।

सुवर्णमपहृत्यापि सकृद्भवति निर्मलः ॥’

—अस्यवामीयं ‘अस्य वामस्य पलितस्य होतुः’ इति द्वापञ्चाश-  
द्वकं च सूक्तम् (ऋ.सं. २।३।१४-२३) । ‘यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम् ।

(शु. य. ३।४।१-६) इति । इति षट् शिवसङ्कल्पमन्त्राः ।

१ ‘प्रकृतत्वात् मासमेकं प्रत्यहमेकवारं’—(११।२५१) इति कुल्लूकः ।



यत्तु माधवीये यमः— 'ब्राह्मणः सुवर्णस्तेयं कृत्वा हिरण्यं शालायां प्रक्षिप्याप्सु निष्णातो हिरण्यवर्णाभिश्चतसृभिरात्मानमभ्युक्ष्य त्रीन् प्राणायामान्कृत्वा तदेतस्मात्पापात्पूतो भवति ' इति; तद्गुणवतोऽति-निर्गुणस्वामिकसुवर्णो न परिमाणहेमहरणप्रयोजकत्वे द्रष्टव्यम् ।

इति स्तेयप्रायश्चित्तम् ।

अथ गुरुतल्पगमने मनुः— ( ११।२५१ )

' हविष्पान्तीयमभ्यस्य न तमंह इतीति च ।

जप्त्वा च पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ ' इति ।

—हविष्पान्तीयं—' हविष्पान्तमजरं स्वर्वित् ' ( ऋ.सं. ८।४।१०—१३ ) इति । ' न तमंहो न दुर्गितम् ' ( ऋ. सं. ८।७।१३ ) इति न तमंहः इति—' इति वा इति मे मनः ' ( ऋ. सं. ८।६।२७ ) इति । पौरुषं—' सहस्रशीर्षा ' ( ऋ. सं. ८।४।१७—१९ ) इति । एतदन्यतमस्य मासं प्रत्यहं षोडश षोडशकृत्वो जप इति मिताक्षरायाम् ( ३।३०४ ) । इदमकामतः सकृद्गमने ।

कामतस्तु याज्ञवल्क्यः— ( ३।३०५ )

' सहस्रशीर्षाजापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः ।

गौर्देया कर्मणोऽस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी ॥ ' इति ।

जापी इति ताच्छील्यप्रत्ययादावृत्तिः ।

अत्र पुरुषसूक्तकरणकं होममुपवासत्रयं चाह वृद्धविष्णुः— ' त्रिरात्रोपोषितः पुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः शुष्येत् ' ( ५१.६ ) इति । आवृत्तौ होमे च सङ्ख्यापेक्षायां पूर्वश्लोकगता ' चत्वारिंशद्वृताहुतीः ' इति चत्वारिंशत्सङ्ख्यात्रापि सम्बध्यते— इति विज्ञानेश्वरः ( ३।३०४ ) । एभिरिति बहुवचनेन सुरापस्तेन गुरुतल्पगा गृह्यन्ते । तेन तैः स्वस्वप्रायश्चित्तान्ते एका धेनुर्देया । गुरुतल्पसमे तदतिदेशविषये वाऽर्द्ध पादोनं च क्रमेण योज्यम् । महापातकिसंसर्गिणस्तु येन सह संसर्गस्तदीयमेव प्रायश्चित्तम् । प्रकाशप्रायश्चित्तभाजो रहस्य-संसर्गे तु रहस्यमेव व्रतम्, संसर्गाख्यनिमित्तस्य रहस्यत्वात् ।



केचित्तु—रहस्यप्रायश्चित्तभाजः प्रकाशसंसर्गो प्रकाशप्रायश्चित्तता-  
माहुः, तन्न; संसर्गस्य हि प्रकाशत्वमशुक्रपापवत्संसर्गोऽयमिति परस्परज्ञाने  
भवति । एवं च परेण ज्ञाते प्रकाशपापवत्संसर्गत्वमेव तस्य भवति, न  
तु रहस्यपापवत्संसर्गत्वम् । यौनाध्यापनादिसंसर्गस्यानेककर्तृत्वाच्च  
रहस्यत्वमिति, तन्न; तन्नानेककर्तृत्वस्य व्यासक्तत्वात्तदतिरिक्तेनाज्ञाते  
भवत्येव रहस्यत्वम् । तथातिपातक्यादिसंसर्गिणस्तदीयमेव व्रतम् ।

इति रहस्यमहापापप्रायश्चित्तम् ।

अथोपपापादिषु ।

याज्ञवल्क्यः—( ३।३०६ )

‘प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापानुत्तये ।

उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि ॥’

बौधायनोऽपि—( ४।१।५—११ ) ‘अपि वाक्चक्षुःश्रोत्रत्वक्घ्राण-  
मनोव्यतिक्रमेषु त्रिभिः प्राणायामैः शुष्यति । शूद्रस्त्रीगमनात्तदभोजने  
पृथक् पृथक् सप्ताहं सप्त प्राणायामान् धारयेत् । अभक्ष्याभोज्यामेध्य-  
प्राशनेषु तथा चापण्यविक्रयेषु मधुमांसघृततैललाक्षालवणरसान्नवर्जेषु  
यच्चान्यदप्येवं युक्तं स्याद्द्वादशाहं द्वादशप्राणायामान् धारयेत् । अथ  
पातकोपपातकवर्जं यच्चान्यदप्येवं युक्तं स्यादर्द्धमासं द्वादशद्वादशप्राणा-  
यामान् धारयेत् । अथ पातकपतनीयवर्जं यच्चान्यदप्येवं युक्तं द्वादशार्द्ध-  
मासान् द्वादशद्वादशप्राणायामान् धारयेत् । अथ पातकवर्जं यच्चान्य-  
दप्येवं युक्तं द्वादशार्द्धमासं द्वादशद्वादशप्राणायामान् धारयेत् । अथ  
पातकेषु संबत्सरं द्वादशद्वादशप्राणायामान् धारयेत्’ इति ।

अत्र प्राणायामत्रयं प्रकीर्णकेषु, सप्ताहो द्वादशाहश्च गणितेषूप-  
पातकविशेषेषु, अर्द्धमासो जातिभ्रंशकरादिषु, मासो वधाद्युपपापेषु,  
षण्मासा अतिपापानुपापेषु, संबत्सरो महापापेषु । तत्र सप्ताहे प्राणा-  
यामाः ४९, द्वादशाहे १४४, अर्द्धमासे १८०, मासे ३६०, षण्मा-



२७६

प्रायश्चित्तमयूखः

सिके २१६० संवत्सरे ४३२०, एतानि च प्राणायामत्रयसप्ताहादि-  
त्रतानि पूर्वोक्तेषु प्रकीर्णकौषपापादिविषयेषु भवन्तीति मिताक्षरायाम् ।  
( ३।३०५ )

कामतोऽभक्ष्यभक्षणे सुमन्तुः— 'रेतोविष्मूत्रप्राशनं कृत्वा, लघुन-  
पलाण्डुगृध्रनकुम्भीकादीनामन्येषां वाऽभक्ष्याणां भक्षणं कृत्वा, ततः  
कण्ठमात्रमुष्कमवतीर्य शुद्धवतीभिः प्राणायामत्रयं कृत्वा महाव्याहृति  
भिरुरोगमुदकं पीत्वा तदेतस्मात्पूतो भवति ' इति ।

अकामतो याज्ञवल्क्यः— ( ३।३०७ )

'ॐकाराभिष्टुतं सोमस्रलिलं पावनं पिबेत् ।

कृत्वा तु रेतोविष्मूत्रप्राशनं हि द्विजोत्तमः ॥ '

दुष्टप्रतिग्रहे मनुः— ( १।१२५३ )

'प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाऽन्नं तु विगर्हितम् ।

जपंस्तरत्समन्दीयं(क्र.सं.७।१।१५)पूयते मानवरूप्यहात्॥'इति ।

एतदभ्यासविषयम् ।

स एव— ( १।१२५५ )

'अप्रशस्तं तु कृत्वाऽप्सु मासमासीन भैक्षभुक् । '

इदं कामतोऽत्यन्ताभ्यासविषयम् ।

अज्ञानकृतप्रकीर्णकवाचिकमानसोपपातकंवाह योगीश्वरः—(३।३०८)

'निशायां वा दिवा वाऽपि यदज्ञानकृतं भवेत् ।

त्रैकाल्यसन्ध्याकरणात्तत्सर्वं प्रविणश्यति ॥ '

बमोऽपि—

'यद्वा कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा ।

आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्निहन्ति तत् ॥ '

शातातपः— ( ल. शा. १।५ )

'अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च ।

पुनाति वृषलाश्रमं च बहिःसन्ध्या उपासिता ॥ '



शङ्खः— ( १२।१५-१७ )

‘ शतं जप्ता तु सावित्री सर्वकल्मषनाशिनी ।

सहस्रजप्ता च महापातकेभ्यः प्रमोचिनी ॥

दशसाहस्रजापेन सर्वकल्मषनाशिनी’ ।

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पाः ।

सुरापश्च विशुद्ध्यन्ति लक्ष्यजप्यान् संशयः ॥’ इति ।

— सर्वपापानि प्रकीर्णकानि । महापातकान्युपपातकानि । सर्व-  
कल्मषाण्यतिपातकानि वेति विज्ञानेश्वरः ।

सर्वपापेषु रहस्यप्रायश्चित्तप्रकारमाह प्रायश्चित्तविवेके विश्वामित्रः—

‘ प्रकाश उक्तं यत्किञ्चिद्विंशद्भागो रहस्यके ।

त्रिंशद्भागः षष्टिभागः कल्पो जात्याद्यपेक्षया ॥’

आदिशब्देन शक्तिगुणकर्माभ्यासानभ्यासादि गृह्यते-इति शूलपाणिः।

अत्र द्वादशशब्दस्य विंशांशप्राजापत्याः १८, त्रिंशांशः १२,  
षष्ट्यंशः ६ । चतुर्विंशत्यब्दे एतद्विगुणा अंशाः । षडब्दे तदूर्ध्वम् ।

यत्तु शूलपाणिः— ‘यत्र प्रकाशे मरणान्तिकं प्रायश्चित्तं, तत्र  
रहस्येऽपि मरणान्तिकमेव; मरणे ह्यासासंभवात्, इत्याह । तत्र, यद्यपि  
मरणे ह्यासो न सम्भवति, तथापि तद्वैकल्पिके चतुर्विंशत्यव्दादौ स  
सम्भवत्येव । तेन चतुर्विंशत्यव्दषष्टिर्त्रिंशद्विंशांशा द्वादशचतुर्विंशति-  
षट्त्रिंशन्मिताः प्राजापत्याद्यपेक्षया कर्त्तव्याः । मरणान्तिकस्य तु  
तद्विधिना प्रकाशपापविषयत्वेनोक्तत्वाद्ग्रहस्ये प्रापकप्रमाणाभावात्प्राप्ति-  
रेव दूरापास्तेति सर्वं शिवम् ॥

परिभाषणमादितः कृतं गदितम् शुद्धिरथो समानतः ।

वधपानपरस्वसङ्गहव्यभिचारे बुधपापिसङ्गतौ ॥ १ ॥

उपपापेष्वथो जातिभ्रंशके सङ्करीकरे ।

अपात्रीकरणे प्रोक्तं मलिनीकरणे तथा ॥ २ ॥

१ ‘ लक्षं जप्ता तु सा देवी महापातकनाशिनी ’ इत्युत्तरार्ध-मि. ।

२४

X-19\*



प्रकीर्णके ततः कृतं घटापवर्जनं ततः ।

रहस्यपापनिष्कृतिर्विनिर्णयाः क्रमादिमे ॥ ३ ॥

चर्मण्वतीतरणिप्राशुभसङ्गमस्य

सान्निध्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे ।

ख्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा

राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥ ४ ॥

इति श्रीसङ्गरवंशावतंस-महाराजाधिराज-भगवन्तदेवोद्योजितेन

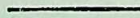
मीमांसक-शङ्करभट्टात्मजेन भट्टनीलकण्ठेन कृते भगवन्त-

भास्करे प्रायश्चित्तमयूखो दशमः ॥ १० ॥



‘ भट्टयज्ञेश्वरानन्तधूपकारविनिर्मिता ।

प्रायश्चित्तमयूखस्य टिप्पणी तत्त्वदर्शिनी ॥ ’





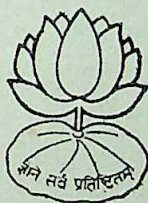
श्रीमद्भनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे

# शुद्धिमयूखः

( एकादशः )

विद्यालङ्कार-भट्टानन्तयज्ञेश्वरैः संशोधितः

तत्त्वदर्शिन्या विभूषितश्च ।



## चौरम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७







॥ श्रीः ॥

## शुद्धिमयूखस्थविषयानुक्रमणिका ।

| विषयः                          | पृष्ठम् | विषयः                            | पृष्ठम् |
|--------------------------------|---------|----------------------------------|---------|
| मङ्गलम् ... ..                 | १       | नदीशुद्धिः ... ..                | ९       |
| प्रतिष्ठा ... ..               | "       | सर्वापवादः ... ..                | "       |
| द्रव्यशुद्धिः ... ..           | "       | गर्भस्त्रावायाशौचम् ... ..       | "       |
| सौवर्णादिपात्राणाम् ... ..     | "       | स्त्रावादिलक्षणम् ... ..         | "       |
| काकादिमुखावच्छृष्टस्य ... ..   | २       | स्त्रावाशौचम् ... ..             | १०      |
| गवाघ्रातादीनाम् ... ..         | "       | जन्माशौचम् ... ..                | ११      |
| सुरामूत्रायुपहतानाम् ... ..    | ३       | मृतजाते ... ..                   | "       |
| मृद्भाण्डानाम् ... ..          | "       | नालच्छेदात्प्राङ्मृतौ ... ..     | "       |
| शिलाकाष्ठादिपात्राणाम् ... ..  | "       | जनननिमित्तमस्पृश्यत्वम् ... ..   | "       |
| वज्रधान्यादीनाम् ... ..        | "       | मातुर्वैधकार्ये ... ..           | १२      |
| तूलिकादीनाम् ... ..            | ४       | विंशतिरात्रादिगणेनाविचारः ... .. | "       |
| अहतवाससाम् ... ..              | "       | प्रथमदिनादौ दानायधिकारः ... ..   | "       |
| कांस्यभिन्नतैजसानाम् ... ..    | ५       | अनुपनीतमृताशौचम् ... ..          | १३      |
| अल्पधान्यादेः ... ..           | "       | नामकरणात्प्राङ्मृतौ ... ..       | १३      |
| सिद्धान्नस्य ... ..            | "       | नामकरणोत्तरम् ... ..             | १४      |
| देवयात्रादिष्वपवादः ... ..     | "       | कृतचूडस्य ... ..                 | "       |
| द्रोणाधिकान्नस्य ... ..        | ६       | अनुपनीतस्य ... ..                | १५      |
| ऐकाहिकान्नस्य ... ..           | "       | शुद्धस्याविवाहितस्य ... ..       | १६      |
| द्रवाणाम् ... ..               | "       | अकृतचूडायाः कन्यायाः ... ..      | "       |
| देशकालायनुसारेण शुद्धिः ... .. | ७       | अनूढकन्यायाः ... ..              | १७      |
| खीमुखादीनां शुचित्वम् ... ..   | "       | विवाहितकन्यायाः ... ..           | "       |
| भूशुद्धिः ... ..               | ८       | पितृमरणे कन्यायाः ... ..         | १८      |
| सन्ततधारादेः शुचित्वम् ... ..  | "       | अस्याशौचस्य साधारणता ... ..      | "       |
| अशुचिस्पृष्टस्य स्पर्शे ... .. | "       | अनौरसपुत्राणाम् ... ..           | "       |
| बालादिस्वरूपम् ... ..          | ९       | अन्यगतभार्यायाः ... ..           | "       |



( ११ )

| विषयः                          | पृष्ठम् | विषयः                           | पृष्ठम् |
|--------------------------------|---------|---------------------------------|---------|
| दत्तकस्य ... ..                | १९      | प्रमादमृते ... ..               | ३३      |
| सपिण्डमरणाशौचम् ...            | २१      | ऊर्ध्वोच्छिष्टादिमृतौ ...       | ३५      |
| महागुरुविषये ... ..            | २३      | ब्रह्मचारिमरणे ... ..           | ११      |
| क्षत्रियाद्याशौचम् ... ..      | १२      | स्नातकमरणे ... ..               | ३६      |
| अनाहिताग्नेर्मरणदिनात् ...     | २४      | कुष्ठिमरणे ... ..               | ११      |
| आहिताग्नेर्दाहदिनात् ...       | ११      | पर्युषितदाहे ... ..             | ११      |
| सञ्चयनं दाहदिनात् ... ..       | ११      | मृतेतिकर्तव्यता ... ..          | ३७      |
| सर्वणसपिण्डमरणे ... ..         | ११      | प्रेतधनहारिणः क्रियाकरणे ...    | ११      |
| दास्यादीनाम् ... ..            | २५      | निर्हरणाशौचम् ... ..            | ११      |
| युद्धादिमृतानां सद्यःशौचम्     | ११      | मृतगृहवासमात्रे ... ..          | ११      |
| रात्रिविभागः ... ..            | २६      | तदन्नाशने ... ..                | ११      |
| रजस्वलाविषये ... ..            | ११      | अन्यवर्णनिर्हरणे ... ..         | ११      |
| रजस्वलाशुद्धिविषये ... ..      | २७      | अनाथनिर्हरणे ... ..             | ११      |
| रजस्वलासूतिकयोर्मृतौ ...       | ११      | सत्यासिनामाशौचाभावः ...         | ११      |
| गर्भिणीमरणे ... ..             | २८      | ब्रह्मचारिणोऽपि ... ..          | ३८      |
| आतुरशुद्धिः ... ..             | ११      | हीनानुगमने ... ..               | ११      |
| वैधर्म्यतौ विशेषः ... ..       | २९      | द्यन्तरत्वे ... ..              | ११      |
| चाण्डालादिना मरणे ... ..       | ११      | अग्निविशेषनिषेधः ... ..         | ११      |
| सूतिकाया मरणे आद्यत्रयहे       | ११      | अनाहिताग्निदाहनिर्णयः ...       | ११      |
| द्वितीयत्रयहे ... ..           | ३०      | प्रेतस्नानादि ... ..            | ३९      |
| तृतीयत्रयहे ... ..             | ११      | रात्रौ दाहे पिण्डादि ... ..     | ११      |
| दशाहादूर्ध्वं मासात्प्राक् ... | ११      | दाहोत्तरस्नानोदकदानादि ...      | ११      |
| ब्रह्मशापादिना मरणे ... ..     | ११      | आशौचनियमाः ... ..               | ४०      |
| आत्मघात्यग्निप्रतिपत्तिः ...   | ११      | आकाशे क्षीरोदकदानम् ...         | ११      |
| आत्मघाते प्रायश्चित्तम् ...    | ३१      | पिण्डदानम् ... ..               | ४१      |
| तद्वाहादौ ... ..               | ११      | त्रिरात्राशौचे पिण्डक्रमः ...   | ११      |
| तप्तकृच्छ्रस्वरूपम् ... ..     | ११      | अग्निद एव दशाहं समापयेत्        | ४२      |
| गवादिहतानां दाहादि ... ..      | ३२      | दाहाशौचम् ... ..                | ४२      |
| तदर्थं नारायणबलिः ... ..       | ११      | मृत्येन दाहे प्रायश्चित्तम् ... | ११      |
| तत्प्रयोगः ... ..              | ११      | ब्रह्मचारिणो दाहादिनिषेधः       | ४३      |
| संप्रहृते विधानम् ... ..       | ३३      | पित्रादावपवादः ... ..           | ११      |



( १२ )

| विषयः                              | पृष्ठम् | विषयः                             | पृष्ठम् |
|------------------------------------|---------|-----------------------------------|---------|
| अनुगमनाशौचम् ... ..                | ४५      | अग्निसंस्कारः ... ..              | ५९      |
| हीनवर्णानुयाने ... ..              | ,,      | अतीतसंस्कारे आशौचम् ... ..        | ६०      |
| पिण्डद्रव्याणि ... ..              | ४६      | पालाशप्रतिकृतिकरणम् ... ..        | ,,      |
| पिण्डलक्षणम् ... ..                | ४७      | पात्रप्रतिपत्तिः ... ..           | ६३      |
| अस्थिसञ्चयनम् ... ..               | ,,      | मृताहाह्वाने ... ..               | ,,      |
| तत्प्रक्षेपः ... ..                | ,,      | तज्ज्ञाने ... ..                  | ६४      |
| वपनम् ... ..                       | ,,      | मासाह्वाने ... ..                 | ,,      |
| प्रथमेऽब्देऽस्थिक्षेपनिषेधः ... .. | ४८      | उभयाज्ञाने ... ..                 | ,,      |
| अनुपनीतस्य पुत्रस्य दाहादि         | ,,      | सर्वाज्ञाने ... ..                | ,,      |
| षट्पिण्डाः ... ..                  | ,,      | धनिष्ठापञ्चकमृतौ ... ..           | ,,      |
| पिण्डैः प्रेताङ्गोत्पत्तिः ... ..  | ४९      | पुत्तलविधिः ... ..                | ६५      |
| नवश्राद्धानि ... ..                | ५०      | पञ्चकमृतौ शान्तिः ... ..          | ,,      |
| सूतकसम्पाते पिण्डदानम् ... ..      | ,,      | रजस्वलायाः सहगमनार्थं शुद्धिः     | ६७      |
| दशाहमध्ये दर्शपाते ... ..          | ५१      | बालादिमरणे विधिः ... ..           | ,,      |
| मातापितृविषये ... ..               | ,,      | सहगमननिर्णयः ... ..               | ६८      |
| वृषोत्सर्गः ... ..                 | ,,      | ब्राह्मण्याः सहगमनेऽनधिकारः       | ६९      |
| स्त्रियो वृषोत्सर्गनिषेधः ... ..   | ५२      | तत्र व्यवस्था ... ..              | ,,      |
| विष्णुतर्पणम् ... ..               | ,,      | सहगमनप्रयोगः ... ..               | ,,      |
| एकादशेऽहि श्राद्धम् ... ..         | ,,      | आशौचसन्निपातादौ निर्णयः           | ७१      |
| मृताग्निहोत्रप्रकारः ... ..        | ५३      | आशौचलक्षणम् ... ..                | ७२      |
| आहिताग्निपत्नीदाहादि ... ..        | ५४      | तदुत्पत्तिविचारः ... ..           | ,,      |
| अग्निसमारोपोत्तरमाहिताग्निदाहे     | ,,      | सूतके मृतकप्राप्तौ ... ..         | ७३      |
| अग्निनाशे यज्ञमानमृतौ ... ..       | ,,      | पित्रोराशौचसम्पाते ... ..         | ,,      |
| उत्सन्नाग्नेररणिसद्भावे ... ..     | ५५      | अन्त्यरात्रावाशौचान्तरपाते ... .. | ७४      |
| अरण्योरभावे ... ..                 | ,,      | अतिक्रान्ताशौचनिर्णयः ... ..      | ७६      |
| प्रेतक्रियायां निषिद्धकालः ... ..  | ,,      | दशाहादूर्ध्वं ज्ञाने ... ..       | ,,      |
| त्रिपुष्करयोगः ... ..              | ५६      | त्रिपक्षादूर्ध्वं ज्ञाने ... ..   | ७७      |
| निषेधापवादाः ... ..                | ५८      | प्रसवे देशान्तरे ... ..           | ७८      |
| प्रोषितमरणे विधिः ... ..           | ,,      | मृतौ देशान्तरे ... ..             | ,,      |
| अनाहिताग्नेर्विशेषः ... ..         | ५९      | मातापितृविषये ... ..              | ७९      |



( १३ )

| विषयः                      | पृष्ठम् | विषयः                                  | पृष्ठम् |
|----------------------------|---------|--|---------|
| सपत्नमातृविषये ... ..      | ७९      | आशौचे केषाञ्चन धर्माणां                |         |
| देशान्तरलक्षणम् ... ..     | ८०      | प्रतिप्रसवः ... ..                     | ८३      |
| अतिक्रान्ताशौचस्य सर्वेषां |         | आशौचे सन्ध्या ... ..                   | ८४      |
| तुल्यत्वम् ... ..          | ८१      | आशौचात्रभोजनविचारः ... ..              | ८५      |
| सोदकाशौचम् ... ..          | ८२      | विवाहादिपूर्वसङ्गस्थितस्य ... ..       | ८६      |
| सोदकाः ... ..              | ८३      | भोजनमध्य आशौचपाते ... ..               | ८७      |
| उपाध्यायसतीर्थ्याशौचम्     | ८४      | विवाहादौ प्रारम्भोत्तरं न ... ..       | ८८      |
| आचार्यस्य ... ..           | ८५      | प्रारम्भलक्षणम् ... ..                 | ८९      |
| मातामहादीनाम् ... ..       | ८६      | विवाहादौ नान्दीश्राद्धावधि ... ..      | ९०      |
| ऊढस्त्रीणां पित्रोः ... .. | ८७      | कार्यादीनां सद्यःशुद्धिः ... ..        | ९१      |
| मातुलश्वशुरादीनाम् ... ..  | ८८      | नित्यस्नाने तर्पणविचारः ... ..         | ९२      |
| दौहित्रादीनाम् ... ..      | ८९      | पितृमरणोत्तरं प्रथमाब्दे विशेषः ... .. | ९३      |
| विदेशस्यभगिन्यादिषु ... .. | ९०      | दर्शश्राद्धादीनां क्वचिदनुज्ञा ... ..  | ९४      |
| ग्रामे नगरे चाशौचम् ... .. | ९१      | पितृमरणोत्तरमन्यश्राद्धकरणम् ... ..    | ९५      |
| आशौचापवादः ... ..          | ९२      |  |         |



शुद्धिमयूखे प्रमाणत्वेनोपात्तग्रन्थग्रन्थकृत्नामानि ।

— 222 —

|                    |                  |                 |                 |
|--------------------|------------------|-----------------|-----------------|
| अङ्गिराः           | जातुकर्ण्यः      | बह्वचपरिशिष्टम् | विश्वादर्शः     |
| अग्निपुराणम्       | जाबालिः          | बृहन्नारदीयम्   | विष्णुः         |
| अत्रिः             | जैमिनिः          | बृहस्पतिः       | विष्णुपुराणम्   |
| अन्त्येष्टिपद्धतिः | ज्योतिःपराशरः    | बौधायनः         | वृद्धमनुः       |
| अमरकोशः            | तातचरणाः         | ब्राह्मम्       | वृद्धवसिष्ठः    |
| आपस्तम्बः          | त्रिस्थलीसेतुः   | भविष्यम्        | वृद्धशातातपः    |
| आश्वलायनः          | दक्षः            | भविष्योत्तरम्   | वैयाघ्रपादः     |
| उशनाः              | दिवोदासः         | भृगुः           | (व्याघ्रपादः)   |
| ऋग्वेदः            | दीपिका           | मण्डनः          | व्यासः          |
| ऋग्यजुः            | देवलः            | मदनः            | शङ्खः           |
| कर्मप्रदीपः        | नागरखण्डम्       | मदनरत्नम्       | शङ्खलिखितौ      |
| कल्पतरुः           | निगमः            | मनुः            | शाटयायनिः       |
| कश्यपः             | निबन्धकृत्       | मरीचिः          | शातातपः         |
| कृतीयसूत्रम्       | निर्णयसिन्धुः    | महाभारतम्       | शुद्धिविवेकः    |
| कात्यायनः          | निर्णयामृतम्     | मात्स्यम्       | शुनः पुच्छः     |
| कारिका             | पराशरः           | माधवः           | शौनकः           |
| कौर्मम्            | परिशिष्टम्       | माधवीयम्        | श्राद्धमयूखः    |
| गारुडम्            | पारस्करसूत्रम्   | मिताक्षरा       | षट्त्रिंशन्मतम् |
| गार्गिः            | पारस्करस्मृतिः   | मेधातिथिः       | षडशीतिः         |
| गार्ग्यः           | पारिजातः         | यमः             | सङ्ग्रहः        |
| गालवः              | पितामहचरणाः      | याज्ञवल्क्यः    | संवर्तः         |
| गृह्यकारिका        | पुराणम्          | रत्नमाला        | सत्यव्रतः       |
| गृह्यपरिशिष्टम्    | पृथ्वीचन्द्रोदयः | रुद्रधरः        | समयमयूखः        |
| गोभिलः             | पैठीनसिः         | लघुहारीतः       | सुमन्तुः        |
| गौतमः              | प्रकाशः          | लौगाक्षिः       | स्मृतिसङ्ग्रहः  |
| ग्रन्थकृतः         | प्रचेताः         | वराहपुराणम्     | स्मृत्यर्थसारः  |
| चन्द्रिका          | प्रजापतिः        | वसिष्ठः         | हरिहरभाष्यम्    |
| छन्दोगपरिशिष्टम्   | प्रदीपः          | विज्ञानेश्वरः   | हारीतः          |
| छागलेयः            | प्रभासखण्डम्     |                 |                 |







श्रीनीलकण्ठभट्टकृते भगवन्तभास्करे

## शुद्धिमयूखः ।

[ एकादशः ]

अनन्तयज्ञेश्वरकृतया ' तत्त्वदर्शिन्या ' टिप्पण्या विभूषितः ।

मङ्गलाचरणम् ।

यो लीलया सन्तनुतेऽत्र विश्वं  
तत्पालयत्यात्मनि विश्वरूपं ।  
लयं नयत्याशु च पूर्णरूपः  
शिवं तनोत्वाशु रविर्ममासौ ॥ १ ॥  
श्रुतीः स्मृतीर्वीक्ष्य पुराणजातं  
तत्तन्निबन्धानपि सन्निबन्धान् ।  
श्रीशङ्करस्यात्मजनीलकण्ठो  
द्रव्यादिशुद्धिं विवृणोति सर्वाम् ॥ २ ॥  
प्रतारकैराहतमत्र किञ्चि-  
न्मया तु निर्मूलतया तदुज्झितम् ।  
ऊनोक्ताऽतो न हि तेन काचित्  
खपुष्पहीनापचितिर्न हीयते ॥ ३ ॥

भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिन् शिष्टसम्भवे च ततः ।

शुद्धिविधानमयूखः प्रतन्यते नीलकण्ठेन ॥ ४ ॥

अथ द्रव्यशुद्धिः ।

आदित्यपुराणे —

सुवर्णरूप्यशङ्काश्मशुक्तिरत्नमयानि च ।

कांस्यायस्ताम्ररैत्यानि त्रपुसीसमयानि च ॥

१ अपराकं त्वादियपुराणे, शुद्धिविवेकशुद्धितत्त्वविद्वन्मनोहरादौ ब्राह्मे इति ।  
न तु ब्राह्मे दृष्टम् ।



निलेपानि च शुद्ध्यन्ति केवलेन जलेन च ।

शूद्रोच्छिष्टानि शोध्यानि त्रिधां क्षाराम्लवारिभिः ॥ ' इति ।

शङ्खः—' कृष्णशकुनिमुखावमृष्टं निलिखेत् । श्वापदमुखावमृष्टं पात्रं न प्रयुञ्जीत ' इति ।

—निलेखस्तक्षणम् ।

आपेस्तम्बः—( ८।१० शाता. १४१ परा. ७।२४ )

' गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ।

शुद्ध्यन्ति दशभिः क्षारैः श्वकाकोपहतानि च ॥ '

—क्षारो भस्म । एतच्च स्वल्पोपहतविषयम् ।

१ क्षारादिद्रव्यत्रित्वात् त्रिधात्वम् । मार्जनं तु दशकृत्व एव—अप. । योग्य-  
तानुसारादम्लोदकं ताम्रेण सम्बद्धयते, इतरेषु क्षारोदकम् । जलेन तृभयत्र  
समुच्चयः—शु. वि. । सौवर्णादीनामप्यत्यन्तोपहतौ तु तापनमेव । ' सौवर्णराजत-  
ताम्रमयान्यद्भिः शोधयति, अग्नौ वा स्पर्शयेत् ' ( ३।३।१० ) इति वैखानस-  
सूत्रात् । अग्नौ स्पर्शयेत् ईषत्तापयेदित्यर्थः । ' मयैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा छीवनैः पूय-  
शोणितैः ।... एतैरेव तथा स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् । शुद्ध्यत्यातापितं पश्चादन्यथा  
केवलाम्भसा ॥ ' ( २।७९।२-३ ) इति विष्णुधर्मोत्तरात् । मयान्युक्तानि तत्रैव—  
' खार्जूरमैक्षवं टाङ्कं मृद्रीकारसमेव च । मयान्येतानि जानीयाच्छुक्तासवमेव  
च ॥ ' ( ३।२३।१।१० ) इति ।

२ कृष्णशकुनिः कौकः ' यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद ' ( ऋ. सं. १०।१६।६ )  
इत्यत्र ' कृष्णः शकुनः काकाख्यः ' इत्युद्गीथाचार्यभाष्यदर्शनात् ।

३ दशभिः दशवारमावर्तितैः—वि. मनो. । दशभिरित्यनेन प्रतिवारं भस्म  
पृथगेव ग्राह्यम् । न तु प्रयुक्तमेव पुनरावर्तनीयमिति लभ्यते । अत्रायन्तयोर्जलेन  
क्षालनमपि कार्यम्—' आयन्तयोस्तु शौचानामद्भिः प्रक्षालनं विधिः । ' ( मध्य.  
१।४।६५ ) इति ब्रह्माण्डवचनात् । कचिन्मिताक्षरायां तु—' तिलमुष्ककशिग्रूणां  
कोकिलाक्षपलाशयोः । काकजङ्घा तथा वज्रचिश्चाश्वत्थवटस्य च । एभिस्तु दशभिः  
क्षारैः शुद्धिर्भवति कांस्यके ॥ ' इति दशक्षारा दृश्यन्ते ।



अधिके तु स्मृत्यन्तरे— ( अङ्गि. १।५६ आप. ८।१ )

‘ भस्मना शुद्धयते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ।

सुरामूत्रपुरीषैस्तु शुद्धयते तापलेखनैः ॥

आमिषेण तु यल्लिप्तं पुनर्द्विहेन शुद्धयति ॥ ’

बौधायनः— ( १।६।३५-३७ ) ‘ तैजसानां मूत्राद्युपघाते पुनःकरणं,  
गोमूत्रे वा सप्तरात्रं परिवासनम् । ’

—पुनःकरणाशक्तौ गोमूत्रे वासनम् ।

अङ्गिराः— ( ५८ )

‘ गण्डूषं पादशौचं च यं कुर्यात्कांस्यभाजने ।

पण्मासं भुवि निक्षिप्य पुनराकारमादिशेत् ॥ ’

— पुनराकारः पुनःकरणम् ।

मृद्धाण्डानामलपोपहतौ ‘ पुनःपाकान्महीमयम् ’ ( १।१८७ ) इति  
याज्ञवल्क्येन शुद्धिरुक्ता ।

तथा—

‘ लोहानां दहनाच्छुद्धिर्भस्मना गोमयेन वा ।

दहनात् खननाद्वपि शैलौनामम्भसापि वा ॥

काष्ठानां तक्षणाच्छुद्धिर्मृद्गोमयजलेरपि । ’

यदि तैर्न शुद्धयेत्तदा तावन्मात्रछेदनं दाहो वा ।

स्मृत्यन्तरे—

‘ वस्त्रधान्यादिराशीनामेकदेशस्य दूषणे । ’

तावन्मात्रं समुद्धृत्य शेषं प्रोक्षणमर्हति ॥

१ ‘ गौडी पैथ्री च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा । ’ ( ३।२३।११० ) इति  
विष्णुधर्मोत्तरे ।

२ य इत्यार्षत्वात् विभक्तिव्यत्ययेन सप्तम्यर्थे प्रथमा ।—शु. वि । भूनिक्षेपः  
पृथक् शोधकः । तेन दोषानुसारेण सप्ताहादि भुवि खात्वादृत्य भस्मादिना  
मार्जनाच्छुद्धिरिति लभ्यते ।

३ शैलानि शिलामयानि । सर्वत्रापि छिन्नदग्धयोः शुद्धयमिधानं दुर्लभोत्तम-  
विषयम् ।—नि. सिं. टी. । काचपात्रविषये तु विष्णुधर्मोत्तरे— ( २।७९।२४ )

‘ शुद्धिश्च काचपात्राणां केवलेन तषाऽम्भसा । ’ इति ।



—असमुद्धृतं तु प्रोक्षणाच्छुद्धयतीति भावः ।

याज्ञवल्क्यः— ( १।१८६-१८७ )

‘सोषैरुदकगोमूत्रैः शुद्धयत्याविककौशिकम् ।

सश्रीफलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपं तथा ॥

सगौरसर्षपैः क्षौमं ’ इति ।

—अव्यूर्णमयमाविकम् । कोशसम्भवं तसरीपट्टादिकौशिकम् । बल्कल-  
तन्तुनिर्मितमंशुपट्टम् । श्रीफलं बिल्वफलम् । पर्वतीयछागलोमनिर्मितं  
कुतपः । अरिष्टं फेनिलफलम् । अतसीसूत्रनिर्मितं क्षौमम् ।

एतच्चाधिकोपघाते । किञ्चिदुपघाते तु प्रोक्षणेव ।

क्षालनासहतूलिकादिविषये मिताक्षरायां विशेषः—

‘तूलिकामुपधानं च पुष्परक्ताम्बरं तथा ।

शोषयित्वाऽऽतपे किञ्चित्करैः संमार्जयेन्मुहुः ॥

पश्चाच्च वारिणा प्रोक्ष्य विनियुञ्जीत कर्मणि ॥

तान्यप्यतिमलिष्ठानि यथावत् परिशोधयेत् ॥ ’ इति ।

‘अहतानां प्रोक्षणम् ’ इति स्मरणाद्यन्त्रमुक्तनूतनवाससां प्रोक्षणा-  
च्छुद्धिः ।

‘शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ।’

इत्यस्यापवादः शुद्धिविवेके—

‘सप्तवाताहतं वस्त्रं शुष्कवत्प्रतिपादयेत् ।’ इति ।

शङ्कः—

‘सूतिकोच्छिष्टभाण्डस्य सुरामद्यहतस्य च ।

त्रिःसप्तमार्जनाच्छुद्धिर्न तु कांस्यस्य तापनम् ॥ ’

१ ‘पुंस्युषः क्षारसूतिका ।’ इति कल्पद्रुः । ‘सोषरोदकगोमूत्रैः’ इति पाठान्तरम् ।

२ तूलिका कार्पासपुरिता शय्योपयुक्ता । उपधानमुच्छीर्षकम् । पुष्पं कुसुम्भादि  
तेन रक्तम् ।

३ ‘अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।’ वस्त्रशुद्धिविषये विशेषो लेखे  
( पू. ८९।६८ ) ‘देवकार्योपयुक्तानां प्रत्यहं शौचमिष्यते । इतरेषां हि वस्त्राणां  
शौचं कार्यं मलागमे ॥ ’ इति ।



## द्रव्यशुद्धिः

—कांस्यातिरिक्तैजसानामल्पोपघाते मार्जनं तापनं च । प्रति-  
मार्जनमुदकक्षालनमावर्तते तापनं च । कांस्ये तथा न, अपि तु  
क्षालनं मार्जनं चेत्यर्थः ।

अल्पधान्यादिविषये बौधायनः—

‘त्रीहयः प्रोक्षणादद्भिः शाकमूलफलानि च ।

तन्मात्रस्यापहाराद्वा निस्तुषीकरणेन वा ॥’

अनेकपुरुषोद्धार्यविषये पर्यग्निकरणं प्रोक्षणं वा कश्यपोक्तम् ।

विष्णुः—

‘मृत्पर्णतृणकाष्ठानां श्वभिश्चण्डालवायसैः ।

स्पर्शने विहितं शौचं सोमसूर्याशुमारुतैः ॥’

तथा ‘प्रोक्षणेन तु पुस्तकम्’ ( वि. स्मृ. २३।५४ ) इति कचित् ।

सिद्धान्ते मनुः— ( ५।१२४ )

‘पक्षिजग्धं गवाघ्रातभवधूतमवक्षुतम् ।

दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥’

—अवधूतं यस्योपरि वासोऽवधूतम् ।

याज्ञवल्क्यः— ( १।१८९ )

‘सलिलं भस्म मृदाऽपि प्रक्षेप्यं विशुद्ध्ये ।’

यत्तु गौतमः— ( १७।८-९ ) ‘नित्यमभोष्यं केशकीटावपन्नम्’ इति,

तत्सहपकाभिप्रायम् ।

[ वसिष्ठः— ( १४।२२ )

‘देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च ।

काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विवर्जयेत् ॥’ इति ।

‘तन्मात्रमन्नमुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति ।’ इति निर्णयामृते ।

देवद्रोणी यात्रा । ]

१ पर्यग्निकरणं परितोऽन्यभिमर्शः । नि. सि. टी. ।



पराशरः— ( ६।६८—७४ )

‘ पक्वं द्रोणाधिकं त्वन्नं काकश्चाद्युपधातितम् ।  
 ग्रासमुद्धृत्य तन्मात्रं यत्तु लालाकृतं भवेत् ॥  
 हेमोदकेन चाभ्युक्षेद्राजतेनाम्बुनाऽथ वा ।  
 अग्निज्वालोपसंस्पर्शात्सुवर्णमधुसर्पिषा ॥  
 विप्राणां ब्रह्मघोषेण पूतं भोज्यं च तद्भवेत् ॥ ’

तथा—

‘ अन्नमैकाहिकं पक्वं श्वकाकाद्युपधातितम् ।  
 केशकीटावपन्नं च तदप्येवं विशुध्यति ॥  
 क्रीतस्यापि विधिर्दृष्ट एव एव मनीषिभिः । ’

इदमल्पधनविषयं ज्ञेयम् ।

द्रवविषये शङ्कः—

‘ श्रैपणं घृततैलानां प्लावनं गोरसस्य च ।

भाण्डानि क्षालयेदद्भिः शाकमूलफलानि च ॥ ’

—चकारात् घृततैलयोरपि । प्लावनं वस्त्रान्तरिते पात्रे प्रक्षेपः ।

‘ तद्युक्तपात्रस्य तज्जातीयद्रव्येण तथा पूरणं यथा द्रव्यं बहिर्निस्सरति,  
 तत्प्लावनम् ’ इति— केचित् ।

तथा—

‘ आधारदोषे तु नयेत् पात्रात् पात्रान्तरं द्रवम् । ’

१ अत्र मूले भूयान् पाठभेदो दृश्यते । द्रोणपरिमाणं तु तत्रैव—‘ प्रस्थद्वा-  
 विंशतिद्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः । ’ ( परा. ६।७० ) इति । उद्धृतावशिष्टेऽपि  
 यावति लालास्पर्शः सम्भावितः, तावदपनयेत् । ब्रह्मघोषेण शुद्धिहेतूनां पवमान-  
 सूक्तादीनां घोषेणेति माधवः । ‘ पवमानः सुवर्जनः ’ इत्यनुवाकस्य घोषेणेति  
 नन्दपण्डितः ।

२ जमदग्निः— इत्यपराकैः ।

३ श्रपणं पाचनम् । एतच्च विलीनघृतादिविषयम् । घनीभूतयोस्तु तन्मात्रो-  
 द्हरणम् । तथा च शातातपः—‘ तन्मात्रमुद्धृतं शुद्धयेत् कठिनं तु पयो दधि । अवि-  
 लीनं तथा सर्पि विलीनं पचनेन तु ॥ ’ इति ।



तथा बौधायनः— ( १।५।४७ )

‘ देशं कालं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ।

उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥ ’

याज्ञवल्क्यः— ( १।१९१ )

‘ वाक्शस्तमम्बुनिर्गित्तमज्ञातं च सदा शुचि ॥ ’ इति ।

—अज्ञातं स्पर्शविषयकसंशयनिश्चयसाधारणज्ञानाभाववत् ।

चर्मकोशानां कषायद्रव्येण शोधनमिति केचित् ।

मनुः— ( ५।१३० )

‘ श्वभिर्हृतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ॥ ’ इति ।

—श्वभिर्मृगयायाम् । तदपि भक्ष्यस्य ।

तथा— ( ५।१२९ )

‘ नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने ।

प्रसवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ ’ इति ।

तथा— ( ५।१२८ बौ. १।५।५६ )

‘ नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यच्च प्रसारितम् ।

ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्मृतम् ॥ ’

—कारुहस्तस्तत्कर्मणि । भैक्ष्यमनाचान्तरूपादिदत्तम् ; न तु चाण्डालादिस्पर्शे ।

तथा—

‘ शुचिरग्नी रजो वायुरापो दधि घृतं पयः ।

सर्वाण्येतानि मेध्यानि स्पर्शे छाया च नित्यशः ॥ ’

—छाया चाण्डालादेरन्या ।

१ रतिविषयमेतत् इत्यपरार्कमिताक्षरादयः । तथा च वात्स्यायनीयेऽपि— ( २।९।३० ) ‘ स्त्रीमुखं रतिसङ्गमे ’ इति । ‘ रतिसङ्गमे रत्यर्थसङ्गमे स्त्रीमुखं कृतौपरिष्कमन्त्यद्वा मेध्यम्, नान्यदा, सर्वाशुचिनिधानत्वादिति । अस्मिन् स्मृत्यर्थे सर्वदा चुम्बनप्रसङ्गे ’ इति जयमङ्गला । तत्रापि गृहस्थस्यैव स्वभार्याया एव, ‘ स्वदारास्यं गृहस्थानां रतौ भार्याभिकाङ्क्षया । ’ इति लैङ्गात् ( पृ. ८९।६८ ) ‘ स्तनद्वयं शुचि स्त्रियाः ’ ( ११३।१२२ ) इति ब्राह्मण्येतत्समानविषयम् । केचित्तु—नित्यपदस्वारस्यात् स्त्रीमुखं सर्वकालमेव शुचि । तेन रतिभिन्नसमयेऽपि चुम्बने न दोषः, ब्राह्मं बालविषयम्, ‘सर्वगात्राणि योषिताम् ।’ इति च रतिविषयमिति वदन्ति ।



तथा ब्रह्मपुराणे—

‘चाण्डालपतितच्छायास्पर्शं दृष्ट्वा तनुर्भवेत् ॥’ इति ।

रजोऽपि रासभादेरन्यत् ।

तथाऽऽह शातातपः—

‘रेणवः शुचयः सर्वे वायुना ये समीरिताः ।

अन्यत्र रासभाजाविश्वशूकरविमार्जनी ॥’

अन्ते पञ्चम्या अभावश्छादसः ।

तथा—

‘पादौ शुची ब्राह्मणस्य अजाश्वानां मुखं शुचि ।

गवां पृष्ठानि मेध्यानि सर्वगात्राणि योषिताम् ॥’

भूशुद्धिमाह याज्ञवल्क्यः— ( १।१८८ )

‘भूशुद्धिर्मार्जनाद्वाहात्कालाद्गोक्रमणादपि ।

सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहं मार्जनलेपनात् ॥’

देवलः—

‘अदृष्टा संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ।

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥

दधि सर्पिः पयः क्षौद्रभाण्डे दोषो न विद्यते ।

मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः ॥’

—मार्जारः शुचिः कर्मकालादन्यत्र । तत्र तु स्पर्शं स्नानम् ।

तथा— ( बौ. सू. १।५।६१ )

‘आत्मशय्यासनं वस्त्रं जायाऽपत्यं कर्मण्डलुः ।

शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीनि हि ॥’

तथा—

‘उपस्पृश्याशुचिस्पृष्टं तृतीयं चापि मानवः ।

हस्तौ पादौ च तोयेन प्रक्षाल्याचम्य शुद्धयति ॥’

ः बृहस्पतिः—अप.



प्रथमोऽशुचिः, तत्स्पृष्टो द्वितीयः, तत्स्पृष्टस्तृतीयः, तत्स्पर्शे जाचमन-  
मात्रम् । चतुर्थादौ न, मानाभावात् ।

हरिहरभाष्ये वृद्धशातातपः—

‘ शिशोरभ्युक्षणं कार्यं बालस्याचमनं स्मृतम् ।

रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नातव्यं च कुमारकैः ॥ ’

बालादिस्वरूपं च तत्रैवोक्तम्—

‘ प्राक्चूडाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः ।

कुमारस्तु स विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ॥ ’ इति ।

नदीशुद्धिमाह गार्ग्यः—

‘ अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत् ।

शौध्यस्य मृच्च तौयं च सज्यासो वै द्विजन्मनाम् ॥ ’ इति ।

सर्वापवादं मरीचिराह—

‘ येषु स्थानेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः ।

तत्र तत्पावनं मन्ये धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥

येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः ।

येषु स्थानेषु यत्तौयं या च यत्रैव सृत्तिका ॥ ’

—तत्पावनमिति शेषः ।

पराशरोऽपि— ( १।३३ )

‘ युगे तीर्थे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ।

तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते स्मृताः ॥ ’

तथा—

‘ यद्यपि स्यात्स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्याकर्षणक्षमः ।

तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥ ’

अथ गर्भसावाद्याशौचम् ।

तत्र पराशरः— ( ३।१६ )

‘ आ चतुर्थ्यवेत्सावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।

अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ ’ इति ।

१ कालाद्यपनोदः पिण्डोदकदानादि विधेर्हेतुभूतोऽभ्ययनादिपर्युदासस्य च  
निमित्तभूतः पुरुषगतोऽतिशयः कश्चिदाशौचम् ।—शु. चं.

२ गार्ग्यः—‘ बोध्यः सूतकशब्दोऽयं रूढया योगेन निर्वृतः । जातके मृतके  
वापि रजस्यपि तथा बुधैः ॥ ’ ( स्मृ. सा. सू. २।४।७८ )



स्नावाशौचमाह मरीचिः—

‘गर्भस्रुत्यां यथामासप्रचिरे तूत्तमे त्रयः ।

राजन्ये तु चतुरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव तु ॥

अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्त्तिता ।’ इति ।

—अचिरे आद्यमासत्रये । उत्तमे ब्राह्मणे । इदं च प्रसूनाया एव,

न सपिण्डानाम् ।

तथा ‘चतुर्थे मातुरेव चत्वारि’ इति विज्ञानेश्वरमाधवादयः ।

एवं मातुः पंचमे पंच, षष्ठे षट् । सपिण्डानामपि पंचमषष्ठयोरुग्रहः ।

‘पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दिनत्रयम् ।’

इति मारीचात् ।

अत्राशौचप्रकरणे रात्रिपदं दिनपदं चाहोरात्रलक्षकं ज्ञेयम् । एव-  
मन्यत्रापि ।

एतच्च गर्भनाशप्रयुक्तशौचं सर्ववर्णेषु समम् । मरीचिवचनं तु  
विगीतत्वान्नादरणीयम् । न हि वैश्यशूद्रयोस्त्रिषु मासेषु क्रमेण पञ्चाष्ट-  
दिनानि, चतुर्थमासे तु माससप्तसङ्ख्यानि चत्वारि दिनानीति युज्यत  
इत्यष्टममासादिषु स्वस्वजात्युक्तं सम्पूर्णमेव प्रसवाशौचं कार्यमिति  
द्रष्टव्यम् ।

स्वपत्न्यां व्यभिचारोद्भूतगर्भस्य प्रसवेऽपि जनकक्षेत्रिणोरुभयो-  
रप्येकाहः ।

तथा चैकाहानुवृत्तौ याज्ञवल्क्यः— ( १।२५ )

‘अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥’ इति ।

मातुस्तु तत्राप्युक्तैव व्यवस्था, विशेषानुक्तेः । स्वभार्यास्वन्यं प्रति-  
लोमव्यतिरिक्तमाश्रितासु प्रसूतासु मृतासु चाहोरात्रमाशौचम् ।  
सपिण्डानां तु स्नानमात्रमिति मिताक्षरायाम् ।

इति गर्भस्नावाशौचम् ।

१ यत् प्रतिवर्णं भिन्नमाशौचमुक्तं मरीचिना, तत्सर्वैः स्वस्वजात्याशौचानुष्ठान-  
पक्षे । सर्वेषां दशरात्रपक्षे तु आद्यमासत्रये त्रिरात्रमेव ।—शु. चं.



## जन्माशौचम् ।

सप्तममासप्रभृतिसूतिविषये हारीतः — 'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहमाशौचम् ।' इति ।

जननोत्तरं नालच्छेदोत्तरमेव शिशुमरणे सपिण्डानां दशाहं जन्माशौचम् । पूर्वं मरणे तु व्यहो वक्ष्यते । दशाहमिति तत्तद्वर्णाशौचोपलक्षणम् । मनुरपि—

‘दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः ।

शावशौचं न कर्त्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते ॥’

यच्च—‘जाते मृतजाते वा कुलस्य सद्यःशौचम्’ इति स्मृत्यन्तरम्, तच्छिशुमरणनिमित्ताशौचाभावपरम् । मरणाशौचनिमित्तं स्नानमात्रमस्त्येवेति ग्रन्थकृतः ।

नाभिच्छेदात्प्राङ्मरणे मातुः सम्पूर्णं सूतकम्, सपिण्डानां तु जन्मनिमित्तं त्रिगत्रम् ।

तथा च मनुः—

‘जीवज्जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु ।

सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिगत्रकम् ॥’

—ततस्तदनन्तरमेव । नाभिर्वर्द्धनादवर्गिति यावत् ।

यत्तु जैमिनिः—

‘यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्रोति सूतकम् ।

छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ॥’

इति, तन्नालच्छेदोत्तरं शिशुपरमे सपिण्डानां दशाहजन्माशौचपरमिति केचित् । शिशुजन्मनिमित्तकदानाद्यधिकारेऽवधित्वप्रतिपादनपरमिति तु युक्तम् । अन्यथोत्तरार्धे मृतपदाध्याहारापत्तेरिति ।

जनननिमित्तमस्पृश्यत्वं मातुर्दशाहम्, पितुस्तु सचैलस्नानादस्पृश्यत्वं गच्छतीत्याह संवर्त्तः— ( ४२ )

‘जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ।

माता शुद्धयेदशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥’ इति ।

‘पुत्रे जाते पिता सद्यः सचैलं स्नानमाचरेत् ।

स्पर्शयोग्यस्ततः पश्चादित्याह भगवान् मनुः ॥’ इति ।



पुत्रे इति पुंस्त्वमावेवंक्षितम्, अनुवाद्यगतत्वात् । तेन रुयपत्येऽपि पितुः स्नानमावश्यकम् । सपिण्डानामस्पृश्यत्वं नास्त्येव, अतो न तेषां स्नानमपि ।

यदाहाङ्गिराः—

‘सूतके सूतिकावर्जं संस्पर्शो न निविध्यते ॥’ इति ।

वैधकार्ये तु पैठीनसिः ‘सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्म कारयेन्मासेन स्त्रीजनम्’ इति ।

दशाहपर्यन्तमाशौचैर्नैव कर्मानधिकारप्राप्तेर्जन्मप्रभृति गणनायां विंशतिरात्रमासपदयोः प्राप्तदशाहान्शेऽनुवादोऽप्राप्तावशिष्टदिनांशे विधिरिति विध्यनुवादवैरूप्यापत्तेर्मासाशौचवन्तं शूद्रं प्रत्यानर्थक्यप्रसङ्गाच्च यस्य यावदाशौचं प्राप्तम्, तदुत्तरमेव विंशतिरात्रं मासं च कर्मानधिकार इति कश्चित् ।

तत्तुच्छम्, यत्र हि एकेनैव पदेन स्वार्थ एकं पदार्थं प्रत्युद्दिश्यते-  
ऽन्यं च प्रत्युपादीयते तत्र वैरूप्यम् । यथा—‘वाजपेयेन स्वाराज्य-  
क्रामो यजेत’ इति यजिपदे । इह तु दशाहोत्तरदिनेष्वधिकानधिकारमात्र-  
बोधनान्न तत् । अन्यथा ‘द्वादशाहीनस्य’ इत्यत्रापि प्रकृतित-  
स्तिसृणामुपसदां प्राप्तेस्तदंशेऽनुवादोऽधिकांशे विधिरिति वैरूप्यं स्यात् ।  
अतो जन्मप्रभृत्येव विंशतिरात्रं मासं च यावदप्राप्ताहः कर्मानधिकारो  
बोध्यते इति ।

तातचरणास्तु प्राप्तदशमदिनादिकर्मानधिकारावधिवाधेनावध्यन्तरमे-  
वेदं बोध्यते । ‘दीक्षितो न ददाति, न जुहोति’ इति होमानधिकारावधि-  
भूतदीक्षोन्मोचकावभृथोत्तरवाधेन ‘एतया पुनराधेयसंमितयेष्टयेष्ठाऽग्नि-  
होत्रं जुहोति’ इत्युदवसानीयरूपावध्यन्तरवत्—इति युक्तमुत्पश्यन्ति ।

प्रथमषष्ठदशमदिवसेषु दानसूतिकागृहदेवतापूजनमात्रार्थं नाशौचम् ।

१ इदं च वाक्यं त्रैवर्णिकविषयमेव, शूद्रे तु मासं कर्मानधिकारसिद्धेस्तत्र न प्रवर्तते । तेन यदुक्तं ‘शूद्रं प्रत्यानर्थक्यप्रसङ्गाच्च’ इति, तत्परास्तम् ।

शुद्धिचन्द्रिकाकृतु—‘विंशतिरात्रेण स्नातां सर्वकर्माणि कारयेत्’ इति पठित्वा  
‘दशमदिनीयस्नानानन्तरं विंशतिरात्रे मासे चातीते पुनः स्नानमिति स्नातापदो-  
पादानस्य तात्पर्यम् ; तथा च त्रिंशच्चत्वारिंशद्दिनानि जननदिनाद्भवन्ति’ इति  
व्याचष्टे ।



यद्वाह व्यासः—

‘प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा ।

त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥

स्मृत्यन्तरेऽपि—

‘तत्र सर्वं प्रतिग्राह्यं कृतान्नं तु न भक्षयेत् ।

भक्षयित्वा तु तन्मोहाद्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥’

इति जन्माशौचम् ।

अथानुपनीताशौचम् ।

तत्र नामकरणात् प्राङ्मृतौ शङ्कः—‘प्राङ्नामकरणात्सद्यःशुद्धिः ।’ इति ।

नामकरणादिति स्वकालोपलक्षणम्, ‘दन्तजननात्’ (वसि. ४।१०) इतिवत् । नामकरणकालस्तु एकादशेऽहनि त्रयोदशे षोडशे एकत्रिंशे इति क्रमाच्चतुर्वर्षेषु । स्वरूपत एव नामकर्म सद्यः शुद्धयवधिरिति केचित् । नामकरणानन्तरमग्न्युदकदानं वैकल्पिकम् ।

तथा च मनुः— ( ५।६९ )

‘नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।

जातदन्तस्य वा कुर्यान्नाग्निं वाऽपि कृते सति ॥’

उदकमग्नेरप्युपलक्षणम्, नात्रिवर्षस्येत्युक्तेः । चूडोत्कर्षेऽपि वर्ष-त्रयादूर्ध्वमग्न्युदकदानादि नियतम् ।

‘चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।

प्रथमे वा तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिनोदनात् ॥’ इति ।

( मनुः २।३९ )

आद्यवर्षीयचूडाकर्मानन्तरमप्यग्न्युदकदानं नियतम् ।

तदुक्तम्—

‘तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च ।

सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम् ॥’

१ प्रतिग्राह्यमित्यनेनान्यदा प्रतिग्रहीतुरेव दोष इति सूचितम् । तथा च संवर्तः— ‘सूतके सर्वदानानि कर्तव्यानि न संशयः । दातुश्चेदक्षयं पुण्यं ग्रहीतुर्वहु घातकम् ॥’



—अन्यत्र नामकरणादूर्ध्वं इच्छयाऽन्युदकदानं निखननं वा ।

तथा च याज्ञवल्क्यः— ( ३।१ )

‘ऊनद्विवर्षं निखनेन कुर्यादुदकं ततः ।

आशमशानमनुव्रज्य इतरो ज्ञातिभिर्मृतः ॥’

—इतरः पूर्णद्विवर्षः । ऊनद्विवर्षस्य निखननमेवेत्याचारः ।

मनुरप्यूनद्विवर्षमधिकृत्य— ( ५।६९ )

‘अरण्ये काष्ठवत्यक्त्वा क्षपेयुरुयहमेव तु ।’ इति ।

नामकरणात्प्राक् सर्वेषां सद्यः शौचम् , नामकरणादूर्ध्वं दन्तजनन-  
कालात्सप्तममासलक्षणात् अभिसंस्कारे एकाहः । असंस्कारे सद्यः  
शुद्धिः । मातापित्रोस्तु नामकरणादूर्ध्वं उपनयनपर्यन्तं सर्वथा त्र्यह एव;

‘निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्य विशुध्यति ।

वैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादयं त्र्यहम् ॥’ (मनुः ५।६३)

इति कार्यकारणसंबन्धे त्र्यहोक्तेः । ततो दन्तजननादूर्ध्वं प्रथम-  
वार्षिकचूडाकर्मपर्यन्तं अहोरात्रम् , प्रथमवर्षादूर्ध्वं त्रिवर्षपर्यन्तमकृत-  
चूडस्य कृतदाहस्याप्येकाहः ।

यत्त्वङ्गिरोवचनम्—

‘यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः ।

दाहयित्वा तथाप्येनमाशौचं त्र्यहमाचरेत् ॥’

इति, तत्कुलधर्मानुरोधेन वर्षत्रयादूर्ध्वं चूडोत्कर्षे ज्ञेयम् ।

‘विप्रे न्यूनत्रिवर्षे तु मृते शुद्धिस्तु नैशिकी ।’

इति तेनैवोक्तत्वात् । कृतचूडस्य तु त्रीणि । वर्षत्रयादूर्ध्वं कुलधर्मा-  
नुरोधेनाकृतचूडस्यापि त्रीण्येव । उपनयनादूर्ध्वं दशरात्रादिकम् ।

अत्र सर्वत्र—

‘आदन्तजन्मनः सद्य आचूडात्रैशिकी स्मृता ।

त्रिरात्रमात्रतादेशाद्दशरात्रमतःपरम् ॥’ ( याज्ञ. ३।२३ )

इत्यादीनि वचनानि मिताक्षरादौ अनुसन्धेयानि ।

अत्र दन्तजननपदेन दन्तजन्मकालो लक्ष्यते । स च सप्तमो मासः ।



‘दन्तजन्म सप्तमे मासि’ इत्युपनिषद्बचनस्य, मिताक्षरादौ अनुवाददर्शनात् । चूडापदेनापि स्वकालो लक्ष्यते । स च तृतीयं वर्षम्, ‘तृतीये वर्षे चौलं यथाकुलधर्मं वा’ इत्याश्रलायनोक्तेः (१।१९।१) ।

यद्यपि ‘प्रथमे तृतीये वा’ इति प्रथमवर्षविधानम्, तथापि

‘विप्रे न्यूनत्रिवर्षे तु मृते शुद्धिस्तु नैशिकी ।’

इति तृतीयवर्षपर्यन्तमेकरात्राविधानात्तृतीयाब्दसमाप्तिदिनमेव लक्ष्यते । त्रतमुपनयनम् । तेनापि स्वकालः पञ्चर्षानन्तररूपो लक्ष्यत इति रुद्रधरः । तत्र वचनमप्याहुः केचित् । अनुपनीतमुपक्रम्य-

‘म्रियते यत्र तत्र स्यादाशौचं त्र्यहमेव हि ।

द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिकः ॥’ इति ।

मेधातिथिस्तु अष्टमैकादशद्वादशवर्षरूपः क्रमेण त्रयाणां, षष्टवर्षरूपो वा सर्वेषामित्याह ।

अत्र षडब्दपदं मासत्रयाधिकपडब्दपरम् । तेन गर्भाष्टमाब्दसम्भवेन द्वयोरप्यविरोधः ।

१ दन्तजन्मनो भिषक्शास्त्रे कालद्वयमभिहितम्-‘दन्तोत्पत्तिः कुमारस्य षण्मासे वत्सरेऽपि वा ।’ इति । तत्र ‘संवत्सरे सर्वेषां दन्तोत्पत्तिरिति संवत्सर एव मुख्यतया ग्राह्यः’ इत्याशौचाष्टकव्याख्या ।

२ नामकमदन्तजननयोरिव कालोपलक्षणत्वं, न तु चूडाकरणस्य । एवमुपनयनस्यापि-इति त्रिंशच्छ्लोकीविवृतौ खुनाथभट्टः । निर्णयसिन्धौ तु-चौलवनामदन्तजननयोरपि स्वरूपेण निमित्तत्वोपपत्तेः, तद्विशिष्टकालानुवादे वाक्यभेदात्, सप्तमासादर्वाक् दन्तजनने तदभावप्रसङ्गाच्चित्यादि प्रतिपादनपूर्वकं न कालोपलक्षणं कापीति सिद्धान्तितम् । तथा शुद्धिचन्द्रिकायामपि-‘कालोपलक्षका एवैते शब्दाः इत्याहुः । तत्र, मुख्यायै वाधकाभावात्, कालोपलक्षकत्वे प्रमाणाभावाच्च । न च संस्काराणां देशकालकुलधर्मादिदिवसेनानियतत्वात् नियताशौचावधित्वासम्भव एव मानमिति वाच्यम् ; नालच्छेदनामकरणयोरपि तथात्वेन कालोपलक्षकत्वापातात् । न च अस्तु तथेति वाच्यम् ; नालच्छेदे नियतकालविशेषाभावेनोपलक्षणासम्भवात् । किञ्च नामकरणे दशद्वादशदिनानाम्, चूडाकरणे प्रथमद्वितीयतृतीयकुलक्रमागतवर्षाणाम्, उपनयने सप्तमाष्टमकुलक्रमागतवर्षाणां कथमुपलक्षणम्-अनियतत्वात् ? । यदि संस्कारशब्दोपलक्षितानामनियतानामपि तत्कालानां नियताशौचावधित्वम्, तर्हि अनियतानां संस्काराणामेव शब्दशक्त्युपस्थितानामाशौचावधित्वमस्तु, लाघवात्, प्रथमोपस्थितत्वाच्च-इत्यादिना प्रतिक्षितोऽयं कालोपलक्षणपक्षः ।



विशेषमाह हारीतः—

‘आ मौजीवन्धनाद्विप्रः क्षत्रियश्चा धनुर्ग्रहात् ।

आ प्रतोदग्रहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात् ॥’

धनुःप्रतोदावष्टमेऽब्दे । वस्त्रद्वयग्रहो द्वादशेऽब्दे । तेन शूद्रस्य मासा-  
शौचं द्वादशाब्दप्रभृति ॥

अपरार्कं तु—

‘अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ।

मृत्युं समधिगच्छेच्चैन्मासात्तस्यापि बान्धवाः ॥

शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा ।’ (१५।६-७)

इति शङ्खेन विशेष उक्तः । ‘अत्र च देशाचाराद्व्यवस्था ज्ञेया ।

रूपपत्यमृतौ तु नामकरणादूर्ध्वं वर्षत्रयपर्यन्तं अकृतचूडायाः सद्यः  
शौचम् ।

‘अचूडायां तु कन्यायां सद्यः शौचं विधीयते ।’

इत्यापस्तम्बोक्तेः ।

ततो वाग्दानपर्यन्तमहोरात्रम्, प्रथमवर्षकृतचूडायामपि श्रुतायां  
यावद्वाग्दानमहोरात्रमेव ।

‘अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः ।

त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वहा विधीयते ॥’

इत्यङ्गिरसोक्तेः ।

पुंविषयकत्रयहविषय एव कन्यास्वेकाह इति ग्रंथकृतः ।

याज्ञवल्क्योऽपि— (३।२४)

‘अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।’

१ वस्त्रद्वयं षोडशवर्षपरमेव । यत्तु मदनो द्वादशे वस्त्रद्वयमाह तन्नि-  
र्मूलम् ।—शु. कम.

२ वस्तुतस्तु—हारीतवाक्यं विवाहितशूद्रविषयम्, शङ्खवचनं त्वविवाहितशूद्र-  
विषयमिति व्यवस्थैव श्रेयसी । न च षोडशाब्दात्प्राक् शूद्रस्य विवाहासम्भवः,  
‘त्रैवर्णिकानां संस्कारबाहुल्याद्गृहिणीविधिः । यथोक्तैर्नैव कालेन शूद्राणां स  
निजेच्छया ॥’ इति शूद्रवसिष्ठवचनेन तेषां शैशवेऽपि विवाहप्राप्तेः सम्भवात् ।  
एवं च ‘शूद्राणां विवाहादूर्ध्वमेव जात्याशौचम्’ इति वयोविशेषनैरपेक्ष्येण  
स्मृत्यर्थसारोक्तमपि सङ्गच्छते । नन्दपण्डितोऽप्येयम् ।



वालेष्वजातदन्तेष्वग्निसंस्कारे इति विज्ञानेश्वरः । वाग्दानादर्थ्यं  
विवाहसंस्कारात्प्राक् पतिपक्षे पितृपक्षे च त्रीण्यहोगात्राणि ।

‘स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्धयन्ति बान्धवाः ।

यथोक्तैर्नैव कल्पेन शुद्धयन्ति तु सनाभयः ॥’ (मनुः ५।७२)

इत्युक्तेः । बान्धवाः पतिसपिण्डाः, सनाभयः पितृसपिण्डाः । एत-  
द्वचनात् ऊर्ध्वं विवाहात्प्राक् रुयाशौचं त्रिपुरुषमेव ।

‘अपरिणीतानां स्त्रीणां त्रैपुरुषं सापिण्ड्यम्’ इति स्मृत्यन्तरे ।

‘अप्रतानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते’ (४।१८) इति वासिष्ठात् ।

अत्र सर्वत्र मातापित्रोः पुमपत्यवदेवाशौचम्, विशेषाश्रवणात्  
इति केचित् ।

मदनरत्ने निर्णयामृते च शङ्खस्तु विशेषमाह— ‘अजातदन्तासु  
पित्रोरेकरात्रम्’ इति । इदं च नाद्रियन्ते शिष्टाः ।

विवाहानन्तरं विष्णुः— (२२।३२-३३) ‘संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं  
पितृपक्षे । तत्प्रसवमरणे चेत्पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च’ इति ।

प्रसवे एकरात्रं मरणे त्रिरात्रमिति भेदः । पित्रोगैह इति विशेषणात्  
पतिगृहे प्रसवमरणयोः प्रसवे सर्वेषामाशौचं नास्त्येव, मरणे पित्रो-  
स्त्रिरात्रमस्त्येव ।

‘वैजिकादभिसंबन्धादनुरन्ध्यादघं त्र्यहम् ।’ (मनुः ५।६३)

‘प्रैप्ताप्रैप्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु वा ।

मातापित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि ॥’

इत्यविशेषेण स्मरणात् ।

१ असंस्कृतालक्षणं मिताक्षरायां मरीचिः— ‘वारिपूर्वं प्रदत्ता तु या नैव  
प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम् ॥’ इति । उभयोः  
पितृपतिपक्षयोः ।

२ माधवोऽपि— ‘सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः ।’ इति  
शुलस्त्योक्तैर्दन्तोत्पत्तेः प्रागेकरात्रं पित्रोरित्याह । सम्मतं चैतन्नन्दपण्डितकमला  
करभूयैः ।

३ काष्णार्जिनिः— माघ.



साधवस्तु—

‘दत्ता नारी पितुर्गेंहे स्रयेताथ म्रियेत वा ।

तद्वन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः ॥’

इति ब्राह्मवचनात् प्रसवे पित्रोस्त्रिरात्रं, भ्रात्रादिवन्धुवर्गस्यैकरात्रमित्याह ।

पित्रोर्मरणे विवाहितकन्यायास्त्रीण्यहोरात्राणि ।

‘पित्रोरुपरमे स्त्रीणां व्यूढानां तु कथं भवेत् ।

त्रिरात्रेण तु शुद्धिः स्यादित्याह भगवान्यमः ॥’

इति वेचनात् । अविवाहितायास्तु पुत्रादीनामिवाशौचमित्यादि

ज्ञेयम् ।

एतदाशौचं सर्ववर्णसाधारणं वयोविशेषकृतत्वादिति ।

‘तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च ।

उपनीते तु विज्ञेयं तस्मिन्नेवातिकालजम् ॥’

इति व्याघ्रपादोक्तेः ।

अनौरसेषु दत्तक्रीतक्षेत्रजादिभूतपत्नेषु मृतेषु वा क्षेत्रिणोः, प्रति-  
लोमव्यतिरिक्तमाश्रितासु पत्नीषु प्रसूतासु मृतासु च त्रिरात्रम्, न तु  
सत्यपि सापिण्ड्ये दशाहादि ।

तथा च त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णुः— (२३।४२)

‘अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च ।

परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च ॥’ इति ।

१ वृद्धमनुः— साधवः । इदं च दशाहाभ्यन्तरे दशाहायाशौचकालमध्ये  
भवेत् । ऊर्ध्वं पुनः पक्षिण्येव, ‘दशाहानन्तरं पुत्री पक्षिण्याशौचभागभवेत् ।’  
इति ब्राह्मात्, इति नन्दपण्डितः । नवमदशमदिनयोस्तु पुत्रवच्छेषेण शुद्धिर्युक्ते-  
त्याहुः । अन्ये तु ‘त्रिरात्रेणैव’ इति पाठमाश्रित्यैवकारस्यायोगव्यवच्छेदार्थ-  
कतां चाम्युपगम्यात्र शेषशुद्धिर्नास्तीति वदन्ति ।

पित्रोरित्येकशेषेऽत्र माता जनन्येव । सापत्नमातरि तु पक्षिणी । ‘मातुः  
सपत्न्यां तुल्यायामतुल्यायामहो भवेत् ।’ इति ब्राह्मात् । धर्माब्धौ तु सापत्न-  
मातृमरणेऽपि त्रिरात्रमुक्तम्, तत्र मूलं चिन्त्यम् ।



याज्ञवल्क्येन त्वेकाह उक्तः— ( ३।२५ )

‘अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।’ इति ।

एते च त्रिरात्रैकरात्रे सन्निधिविदेशभेदेन व्यवतिष्ठेते । अनौरस-  
पदेन ‘औरसो धर्मपत्नीजः’ ( याज्ञ. २।१२८ ) इति परिभाषितौ-  
रसभिन्ना गृह्यन्ते । तेन जनकस्य क्षेत्रजादौ त्रिरात्रैकरात्रे सुस्थे । यदा  
पितुस्त्रिरात्रं तदा सपिण्डानामेकरात्रम् ,

‘सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः ।

एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः ॥’

इति मारीचात् । पितृग्रहणं पत्युपलक्षणम् ।

तथा च हारीतः—

‘परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च ।

भर्तृपित्रोस्त्रिरात्रं स्यादेकाहस्तु सपिण्डने ॥’ इति ।

पितुरेकरात्रपक्षे सपिण्डानां स्नानमात्रम् ।

‘अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च ।

गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता ॥

इति प्रजापत्युक्तैर्यद्यपि स्नानस्य पितुस्त्रिरात्रसमानविषयत्वं प्रतीयते;  
तथापि हारीतमरीचिभ्यामविरोधाय पितुरेकरात्रविषय एव सपिण्डानां  
स्नानं कल्पनीयम् ।

यत्तु सद्यः शौचानुवृत्तौ शङ्कः—

‘अन्यपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च ।’

इति; तत् भार्यापुत्रशब्दयोः संबन्धिशब्दत्वादुपस्थितयोः पतिपित्रोः  
सपिण्डानामित्यध्याहारेण सपिण्डविषयं, हीनवर्णभार्याशास्त्रीयपुत्रविषयं  
वा व्याख्येयमिति । तस्मादुक्तक्रमेण त्रिरात्रमिति प्राञ्चः ।

तातचरणास्तु— उपनीतदत्तक्रमेण सापिण्ड्यात्प्रतिग्रहीतृत्स-  
पिण्डादयो दशाहमाचरन्तीति शिष्टाचारः । उक्तवचसां व्यवस्था चैवम्—

१ वस्तुतस्त्वेतदाग्रहमात्रम् ; दत्तकजनकयोर्मिथ्यह्यहंशौचस्य वाचनिकत्वात्  
वचनविषये च न्यायानवतारात् । तथा च निर्णयसिन्धौ—जनकेऽपि ‘वैजिका—



विष्णुयाज्ञवल्क्योक्तं त्रिरात्रैकरात्रं तु प्रतिग्रहीतृसंबन्धिविदेशभेदेना-  
नुपनीतदत्तकादिमरणे; 'एकाहस्तु सपिण्डानाम्' इति मारीचं प्रति-  
ग्रहीतृसपिण्डानां चूडाकरणकालानन्तरमरणे; 'गोत्रिणः स्नानशुद्धाः  
स्युः' इति प्राजापत्यं तु दन्तजननोत्तरमरणे ज्ञेयमिति प्राहुः ।

अत्र दत्तकपुत्रमरणे जनकादेर्जनकादिमरणे च दत्तकस्य नाशौचम्,  
मानाभावात् ।

यत्तु कैश्चित्-

'वैजिकादभिसंबन्धादनुसन्ध्यादधं त्र्यहम् ।' (मनुः ५।६३)

इति वचनात् त्र्यहमित्युक्तम्; तत्तुच्छम्,

'गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्विप्रः सुतः ।

गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥' (१।१४२)

इति मनुवचने गोत्ररिक्थस्वधापदैर्जनकादीनां परस्परसम्बन्ध-  
प्रयुक्तं कार्यं लक्ष्यते, 'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत' इत्यत्रैव  
वयोऽवस्थाविशेषः । तेन लक्षितकार्यमात्रनिवृत्त्या आशौचस्यापि निवृत्ति-  
सिद्धेः । अन्यथा 'यावद्वचनं वाचनिकम्' इति न्यायादत्तकसोदरादीनां  
परस्परसम्बन्धानिवृत्त्या आशौचरिक्थग्रहणादौ परस्परमधिकारा-  
पत्तेश्चेति दिक् ।

—दभिसम्बन्धादनुसन्ध्यादधं त्र्यहम् ।' (मनुः ५।६३) इति वाचनिकाशौचस्या-  
निवार्यत्वात् । पितृमरणेऽपि दत्तकादीनां त्रिरात्रम्; शुद्धितत्त्वे ग्राह्ये—'दत्तकश्च  
स्वयंदत्तः क्रीतः कृत्रिम एव च ।' इत्युपक्रम्य 'सूतके मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य  
भागिनः ।' इत्युक्तेः इति ॥ अत्र दत्तकतिलकः—'भिन्नगोत्राः पृथक् पिण्डा  
पृथगवशकराः स्मृताः । जनने मरणे चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः ॥'...एतद्वच-  
नस्य दत्तकप्रकरणीयत्वेन क्षेत्रजपुत्रिकयोः समानार्थत्वेनोक्तत्वाच्च न कृत्रिमादि-  
पुत्रविषयत्वं, किन्तु दत्तकविषयत्वमेव । 'जनने मरणे चैव' इत्याशौचमपि दत्तक-  
स्यैव, न कृत्रिमादेः । क्षेत्रजस्य मातृवर्णाशौचविधानात्, पुत्रिकायाः कन्यात्वेन  
त्रिरात्रैकरात्रादिविधानाच्च ।

ननु 'गोत्रमाजः प्रचक्षते' (२।२।३७) इत्युक्तबोधायनीयेन गोत्रप्राप्त्या-  
शौचविधानमप्यास्तां कृत्रिमादेरिति चेत्, तथा सति दत्तकस्य विशेषविधानं-



## अथोपनीतसपिण्डमरणाशौचम् ।

मनुः— ( ५।५९, ६१ )

‘ दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । ’

‘ जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ॥ ’

अत्र सपिण्डेष्विति मृतविशेषणम् । तेन मूलपुरुषमारभ्याष्टमादर्जनन-  
मरणयोर्मूलपुरुषस्यापरसंततेर्द्वितीयादेष्टमावधिकाया दशाहमेवाशौचम् ;

—व्यर्थं स्यात् । परश्रैषां गोत्रभागित्वेनैवाशौचभागित्वमित्यर्थं किं मानम् ? गोत्रं  
तु आदिपुरुषब्राह्मणरूपम् । न चास्ति गोत्रजत्वेन दशरात्रत्रिरात्राद्याशौचभागित्वे  
प्रमाणम् । वयं त्वत्र ‘ गोत्रजानामहः स्मृतम् ’ इति वचनात् श्राद्धाद्यनुरोधे  
सत्येकाहः, न चेत् स्नानमात्रमिति प्रतीमः ।

‘ त्र्यह्नाशौचस्य भागिनः ’ इत्यत्र भागित्वोपादानं समानाभिप्रायम् । तथा हि—  
दत्तकस्य पुत्रस्य मरणे सपिण्डानां त्रिरात्रम्, सकुल्यादीनां मरणे आशौचाभावः ।  
एवं जनने जातिपुत्रादीनां सपिण्डजननमरणयोर्न त्रिरात्रम्, अपि तु स्वजात्यु-  
क्तमेव । कालाशौचं तु दत्तकस्य व्यवहारविरुद्धममूलम् ।

न च दत्तकस्य जनकमरणेऽप्याशौचबाधकं प्रमाणमस्ति । तथा हि— दानं  
विक्रयश्च शरीरसाध्यव्यवहारार्थं पिण्डाद्युपकारार्थं वा । तच्च तदांशशरीरशेषिक-  
कर्मणां स्वसाध्यानां यागादीनां चापूर्वभागित्वं प्राहकादीनामिति ॥ न च जनक-  
ताप्रयोज्यशुक्रशोणितजन्यत्वाभावस्तत्रास्ति, तथात्वं उपादाननाशात् शरीर-  
नाशापत्तेः, घटनाशवत् ।

न चाप्यस्ति प्राहकस्य महागौरवम्, येन देहाशुद्धिरापद्येत । सा हि विहित-  
कर्मानर्हताप्रयोजकादृष्टरूपा समवायनात्मन्यवतिष्ठते । न चास्त्यात्मकलेवरयोरेक-  
धर्मिकत्वम् । अत एव ‘ प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । नास्ति दैवं  
न वा पित्र्यं यावत् पूर्णं न वत्सरः ॥ ’ इत्यत्र शुक्रशोणितसम्बन्धाद्देहस्यैवा-  
शुचित्वमुक्तम् । तदेव परम्परयात्मन्यदृष्टरूपेणाश्रयति । शरीरं हि पुण्यपापसाधनं  
न तु तत् फलभोक्तृ इति ।

तथा हि देहसम्बन्धादेव जनकयोर्मृत्यौ कालाशौचमिति ।

यत्तु सिन्धुटीकाकर्त्रा जनकेऽपीत्यत्र ‘ उपनीतदत्तकरणेऽपीत्यभिप्रायः ’  
इत्युक्तम्, तत्सिन्धुमते उपनीतदत्तकाभावाद्यत्किञ्चिदेव ।



द्वितीयादिं प्रति मूलपुरुषस्य सपिण्डत्वेन तत्सन्ततेः सपिण्डत्वात् । मूलपुरुषमारभ्य द्वितीयादेर्जननमरणयोरष्टमादेः सोदकत्वप्रयुक्तं त्रिरात्रम् । अष्टमादिं प्रति सोदकत्वेन तत्सन्ततेरपि सोदकत्वात् । नह्यनयोः स्वतः सापिण्ड्यं, किन्तु मूलपुरुषद्वारकमेव । तस्मात्सापिण्ड्यं प्रतियोगिभेदेन भिन्नं प्रत्येकपर्याप्तमेकतो निवृत्तमन्यतो न निवर्तत इति केषाञ्चिदाचरणानुसारी निष्कर्षः ।

वस्तुतस्तु—

‘दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके ।’

‘दशाह एव विप्रस्य सपिण्डमरणे सति ॥’

इत्यादिवचनेन परस्परं सपिण्डजननमरणयोरेव दशाहप्रतीतेः सप्रतियोगिकत्वेन एकतो निवृत्तौ अन्यतो निवृत्तिर्युक्ता । तेन पूर्वोक्तोदाहरणे परस्परसोदकत्वप्रयुक्तं त्रिरात्रमेव युक्तम् । एवं च सपिण्डसन्ततेः सपिण्डत्वं न निरवधिकम्, किन्तु अष्टमावधेयम् ।

तथा च मनुः— ( ५।६० )

‘सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।

समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥’

अग्निपुराणे तु— ( १५।३० ) ‘निवर्तता चतुर्दशात्’ इति चतुर्थः पादः ।

सप्तमेऽतीते मूलपुरुषस्य तत्सन्ततेश्च परस्परं विनिवर्तत इति शेषः । मात्स्येऽपि— ( १।२९ )

‘लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।

पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं सार्पघ्नौरुषम् ॥’

—पिण्डदस्य मूलपुरुषमभिव्याप्य, मूलपुरुषस्य च पिण्डदमभिव्याप्य परस्परं सापिण्ड्यमित्यर्थः । अत एव सपिण्डानां सप्तपुरुषावधिकानां अविशेषेण दशरात्रम्, समानोदकानां तु त्रिरात्रमिति वदतां विज्ञानेश्वरादीनामयमेवाभिप्रायः । यद्यप्यनया रीत्या सापिण्ड्यस्यैकतो निवृत्तत्वादष्टमादेर्वरस्य द्वितीयादिका उदाह्या स्यात्तथापि

‘पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।’ ( १।५३ )



इति याज्ञवल्क्येन मातृपितृकुले सप्तमपञ्चमपर्यन्तसापिण्ड्योक्तेन  
तदापत्तिः । मातृतो मातरं गृहीत्वा गण्यमाने यः पञ्चमस्तदूर्ध्वम्, एवं  
पितृतः पितरं गृहीत्वा यः सप्तमस्तदूर्ध्वं सापिण्ड्यं निवर्त्तत इत्यर्थः ।  
तदुक्तं स्पष्टमभियुक्तैः—

‘वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः ।

पञ्चमी चेत्तयोर्माता सापिण्ड्यं विनिवर्त्तते ॥’ इति दिक् ।

महागुरुविषये तु—‘द्वादशरात्रं वा दानाध्ययने वर्जयेरन्’ (गृ. सू.  
४।४।१७) इत्याश्रलायनोक्तम् ।

क्षत्रियाद्याशौचमाह याज्ञवल्क्यः— (३।२२)

‘क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु ।

त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्धं न्यायवर्त्तिनः ॥’

पाकयज्ञद्विजशुश्रूषादिरतः शूद्रो न्यायवर्त्ती । तस्य पक्षः ।

अङ्गिरास्तु—

‘सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा ।

दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ॥’

इत्याह । अत्र देशाचारतो व्यवस्था ।

इदं च दशाहादि मृताशौचं उपनयनोत्तरम् । ततः पूर्वं त्र्यहादे-  
रुक्तत्वात् । स्त्रीणामुपनयनस्थानीयविवाहोत्तरं जात्याशौचम् ।

‘वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः ।’

इति वचनात् । स्त्रीसमानत्वेनोक्तः—

‘अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाहत्सरात् परम् ।

मृत्युं समधिगच्छेन्मासं तस्यापि बान्धवाः ।

शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥’

(शङ्खः १९।६-७) इति केचित् ।

‘ऊर्ध्वमष्टभ्यो वर्षेभ्यः शुद्धिः शूद्रस्य मासिकी ।’

१ उपनीय कृत्स्नं वेदमध्यापयति स महागुरुः । नात्राशौचं विधीयते, अपि  
तु दानाध्ययनवर्जनमात्रम् । शावाशौचं तु स्मृत्युक्तं द्रष्टव्यम्—१-नारायणः ।



इति वचनात् इत्यतिरिच्यते ।

‘शूद्रो वल्लपरिहात्’ इति वचनादुपनयनस्थानीयवस्त्रप्रहोत्तरं मृतः शूद्रः स्वाशौचनिमित्तम् ।

इदं चाशौचं अनाहिताग्नेर्मरणदिनात्कार्यम् । आहिताग्नेस्तु दाह-  
दिनात् ।

तथा च पैठीनसिः—

‘अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचं च द्विजातिषु ।

दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशमरणे सति ॥’

‘आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्निभ्येत पुनःसंस्कारं कृत्वा शववदाशौचम्’  
( ४।६७ ) इति वसिष्ठोक्तेश्च । अस्थिसञ्चयनं तु द्वयोरपि दाहदिन-  
मारभ्यैव ।

‘अनग्निमत उत्क्रान्तेः साग्नेः संस्कारकर्षणः ।

शुद्धिः सञ्चयनं दाहान्मृताहस्तु यथातिथिः ॥’ इति ।

विप्रस्य सच्छूद्रयोश्च समानधर्मत्वात् शूद्राणामप्येवम् । विवाहश्च  
कालोपलक्षणमिति विशेषः । स च कालः प्रागुक्तः ।

सवर्णसपिण्डजमृत्योराशौचमाह हारीतः— ( ८४ )

‘दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ।

षड्भिस्त्रिभिरेकैकं क्षत्रविट्शूद्रयोः ॥’

क्षत्रियवैश्ययोराह विष्णुः— ( २२।२२-२३ ) ‘क्षत्रियस्य विट्शूद्रेषु  
षड्भ्रात्रिभ्रात्राभ्याम् । वैश्यस्य शूद्रे सपिण्डे षड्भ्रात्रेण । शुद्धिरिति शेषः ।

१ यत्तु धूर्तस्वामिना रामाण्डारेण चोक्तम्— आहिताग्नेरपि मरणाद्येव दश-  
रात्रम् ‘दशाहं शवमाशौचं’ ( मनुः ५।५९ ) इति मरणनिमित्तत्वात्तस्य ।  
यत्तु— दाहादेवाशौचमुक्तम्, तत् संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव । तेन गृह्याग्नेः  
संस्काराङ्गं त्रिरात्रम्, श्रौताग्नेस्तु दशरात्रम् । मरणनिमित्तं त्वभयोर्दशाहं दाहात्  
प्रागपीति; तद्वचनविरोधात् पूर्वस्यैवोत्कर्षान्मुलकल्पनालाघवाच्च चिन्त्यम्—  
इति नि. सिं.

२ पुनः संस्कारोऽत्र देहास्थिपर्णशराद्यन्यतमदाहः । तथैकादशाहश्चाहमपि  
दाहदिनादेवैकादशाहे कार्यम्—शु. चं.



दास्यादीनां तु स्वामिशुद्ध्या शुद्धिः । कर्मानधिकारस्तु मासः ।  
तथा चाङ्गिराः—

‘दासी दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत् ।

तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्या मासस्तु सूतकम् ॥’ इति ।

‘प्रतिलोमा धर्महीनाः’ इति स्मरणान्न तेषामाशौचम्, किन्तु  
केवलं जनने मरणे च मलापकर्षणार्थं शौचमात्रम् ।

कचित्सद्यःशौचमाह देवलः— (म. ५।९८)

‘उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ।

सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथा शौचमिति स्मृतम् ॥’

सद्यः शौचमित्यन्वयः । यज्ञो दशाहकर्म, सद्य एक दिन एव ।  
तथा— (म. ५।९५)

‘डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ।

गोत्राह्वणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥’

शस्त्रं विना कलहो डिम्बाहवः । राजा यं स्वकार्यार्थमिच्छति तस्य  
सद्यःशौचमित्यर्थः ।

यत्तु यमः—

‘डिम्बाशनिहतानां च तथैव प्राणसन्निभाम् ।

नदीश्वापददंष्ट्रिभ्यः सद्यः शौचं विधीयते ॥’

इति, तत्र नदीग्रहणं जलमात्रोपलक्षणम् । तच्च प्रायश्चित्ताद्यर्थे  
मृतानां न प्रमादेनेति शुद्धिविवेके । प्राणसन्निभः पररक्षार्थं प्राण-  
त्यागिनः ।

यत्तु बृहस्पतिना—

‘महाहवे विद्युता च राज्ञा गोविप्रपालने ।

सद्यःशौचं हतस्याहुरुयहं चान्ये महर्षयः ॥’

१ ज्योतिष्टोमादियज्ञः सन्तिष्ठते, समाप्तिमेति, तत्पुण्येन युज्यत इत्यर्थः—  
कुल्लूकः ।

२ डिम्बाहवो नृपरहितयुद्धम्—कुल्लूकः । डिम्बो जनसम्मर्दः—हरदत्तः ।

३



इति त्रयहमुक्तम्, तत्पराङ्मुखहतस्य युद्धे गाढप्रहारपीडया युद्ध-  
विरामोत्तरं रणाङ्गणाद्विर्मृतस्य वा ज्ञेयम् ।

इदं च युद्धमृतस्य सद्यःशौचादिकं युद्धोद्देशेन प्रवृत्तस्य ज्ञेयम् ।  
नायुध्यतः प्रेक्षकादेः; युद्धस्योभयनिष्ठत्वात् । अतस्तन्मृतौ यथोक्तमेव ।

रात्रौ जन्ममृतिरजःसु विशेषमाह कश्यपः—

उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः ।

जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी ॥

अर्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते ।

रात्रिं कुर्यान्निभागां तु द्वौ भागौ पूर्व एव तु ।

उत्तमोऽशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके ॥ ’

रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके ।

पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नाभ्युदितो रविः ॥ ’ इति ।

अत्राचारतो व्यवस्था । तत्रापि त्रिभागपक्षमेवाद्वियन्ते शिष्टाः  
वृद्धाश्च ।

रजस्वलाविषये स्मृत्यन्तरे— ( शङ्खः १६।१७ )

‘शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला ।

दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽह्नि शुद्ध्यति ॥ ’

पञ्चमेऽहनीति रजोनिवृत्त्युपलक्षणम् । स्पर्शादिष्वनुपरतेऽपि रजसि  
चतुर्थेऽह्नि स्नानेन शुद्ध्यति । दैवपित्र्यकर्मविषये चतुर्थेऽह्नि स्नाताऽपि  
रजोरहितैव योज्येत्यर्थः ।

विशेषमाहात्रिः— ( वृ. आत्रे. १।७०-७१ )

‘रजस्वला यदि स्नाता पुनरेव रजस्वला ।

अष्टादशदिनादवर्गागशुचित्वं न विद्यते ॥

१ शिष्टा इति महाराष्ट्रा इत्यर्थः । अन्यत्र त्वर्धरात्रेण विभागो ज्ञेयः । तथा  
च स्मृतिधारसमुच्ये हारीतः— ‘त्रिभागकल्पना यत्र महाराष्ट्रेषु शस्यते । प्रागर्ध-  
रात्रमेतद्दि सर्वविषेषु सम्मतम् ॥ ’ इति ।

२ भर्तुः शुश्रूषादौ ।—माध.

३ ‘कुर्याद्भोजनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादि कर्म च ।’ ( परा. ७।१६ )



एकोनविंशतेरर्वागैकाहं स्यात्ततो ब्रह्म ।

विंशप्रभृत्युत्तरेषु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥' इति ।

रजोदर्शनमारभ्य पुनः सप्तदशदिनाभ्यन्तरे रजोदर्शने अशुचिता नास्ति । अष्टादशे त्वेकाहाच्छुद्धिः । एकोनविंशे ब्रह्मात् । विंशप्रभृतिषु त्र्यहाच्छुद्धिरित्यर्थः । यस्या विंशतिदिनोत्तरमेव बहुधा रजोदर्शनं तद्विषयोऽयमशुचित्वप्रतिषेधः । यस्याः पुनर्युवत्या अष्टादशदिनादर्वागेव प्राचुर्येण रजोनिस्सरणम्, तस्यास्त्रिरात्रमेवाशुचित्वमिति मितार्क्षरायाम् ।

यत्तु— 'चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते'

इति स्मृत्यन्तरम्, तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतमिति न विरोधः ।

रजस्वलासूतिकयोर्मृतौ विशेषः स्मृत्यन्तरे—

'अन्तरिक्षे मृता ये च वह्नावप्सु प्रमादतः ।

उदक्या सूतिका नारी चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥'

संग्रहे— (ग. पु. २।४।१७५)

'पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम् ।

वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥'

तथा— (ग. पु. २।४।१७२-७३)

'सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ।

कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं तथैव च ।

पुण्यग्निभरभिमन्त्र्यापो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः ॥

तेन तां स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ।' इत्यादि ।

पुण्या ऋचः 'आपो हिष्ठा' (ऋ.सं. ७।६।५) इति तिस्रः । हिरण्यवर्णाश्चतस्रः (य. सं. ५।६।१) । 'पुनंतु मा' (ऋ. सं. ७।२।१८) इति

१ स्नानमात्रं सिन्धुक्तं युक्तम् ।

२ अस्याः 'एकादशदिन एकरात्रम्, द्वादशे द्विरात्रम्, ऊर्ध्वं त्रिरात्रम्' इति स्मृत्यर्थसारे ।

३ पृथकारिकायाम्— नि. सिं.

४ 'शतशुषोदकेनादौ स्नापयित्वा यथाविधि ।' इत्यधिकं सूत्रे ।



नवचोऽनुवाकः । 'यदंति यच्च दूरकम्' (ऋ.सं.७।२।२९।१७) इति सप्त ।

गर्भिणीमरणेऽपि स्मृत्यन्तरे विशेषः—

'यदा गर्भवती नारी सशल्या संस्थिता भवेत् ।

कुक्षौ भित्वा ततः शल्यं निर्हरेद्यदि जीवति ॥

प्रमीतं निक्षिपेत्तं तु प्रायश्चित्तं ततः परम् ।

त्रयस्त्रिंशता कृच्छ्रैस्तु शुद्ध्येत शल्यदोषतः ॥

सगर्भदहने तत्तद्वर्णजं वधपातकम् ॥' इति ।

आतुरशुद्धिमाह पराशरः— ( ७।१९ )

'आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वौ ह्यनातुरः ।

स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥'

उशनाः—

'ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता ।

कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्याच्छौचकर्मणि ॥

चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम् ।

सा सचैलाऽवगाह्याऽपेः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत् ॥

१ 'आपो हि ष्ठेति तिसृभिर्हिरेण्यवर्णांश्चतसृभिः । पवमानानुवाकेन यद-  
न्तीति च सप्तभिः ॥' तत्र पवमानानुवाकः— 'पवमानः सुवर्जनः' इत्यादि-  
स्तैत्तिरीयब्राह्मणे ( १।४।८ ) ग्रन्थकारोक्तिस्तु चिन्त्या ॥ एष च विधिः सङ्कट  
एवेति सिन्ध्वाशयः ।

अत्र स्मृतिसारसमुच्चये स्नापने सङ्ख्यामाह गालवः— 'गायत्रीमन्त्रशुद्धेन  
घटेनादाय तज्जलम् । शतवारं स्नापयित्वा शुद्धैव स्यात् प्रसृतिका ॥' इति ।  
शूर्पस्नानं तु क्षत्रियादिविषयम्, 'शतशूर्पजलस्नानं क्षत्रियादिषु सम्मतम् ।  
विप्रेषु वैष्णवो मन्त्रः सूतिकां पावयिष्यति ॥' इति तत्रैव शाकटायनोक्तेः । वैष्णवो  
विष्णुदैवत्यः । स चोक्तो गार्ग्येण— 'इदं विष्णुरिति प्रोक्त्वा सूतिकामभि-  
षिञ्चति । रजस्वला ततो नारी कर्मयोग्या भविष्यति ॥' ( २।४ ) इति ।

२ गृह्यकारिकायाम्—नि. सिं.

३ एतदसम्भवे तु स्मृतिसारसमुच्चये— 'कांस्यपात्रेण सहितां गर्भिणीं परि-  
दाहयेत् । अतिष्ठन्तीति मन्त्रेण गोक्षीरं सावयेत्ततः ॥' इति ।



दशद्वादशकृत्वौ वा आचामेच पुनः पुनः ।

अन्ते च वाससां त्यागस्ततः शुद्धा भवेत्तु सा ॥

दद्याच्छक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुध्यति ॥ ’ इति ।

वैधर्म्यतौ विशेषः— अत्रिः ( ८।७-८ )

‘ वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ।

आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वरन्यनशनाम्बुभिः ॥

तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः ।

तृतीये तूदकं दत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥ ’

इत्यादिना त्रिरात्रमुक्तम् । वृद्धादिविशेषणादासन्नमृतिकालपरमेतत् । अनासन्नमरणानां वेणीप्रवेशपतिसहगमनादिना वैधर्म्यतौ तु दशाहमेव साधारणम् । शुद्धिविवेके तु वेणीप्रवेशादौ सद्यःशौचमुक्तम्, न तु तत्र किञ्चिदसाधारणं मूलम् । चण्डालादिमृतस्याशौचादिनिषेधो गृह्य-परिशिष्टे ‘ चाण्डालान् ’ इत्याहुक्त्वा—

‘ न संस्कारविधिस्तेषां नैव कार्योदकक्रिया ।

रोदनं नैव कर्तव्यं सूतकं च न बन्धुभिः ॥

दग्ध्वा शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः ।

प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायणत्रयम् ॥ ’

इति काष्ठवद्वाहनिमित्तं चान्द्रायणत्रयं कार्यम् ।

विशेषं वदत्यङ्गिराः—

‘ चण्डालादुदकात्सर्पाद्वाहणाद्वैद्युतादपि ।

दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मिणाम् ॥

उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते ।

नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति ॥ ’ इति ।

अन्त्येष्टिपद्धतौ—

‘ सूतिका तु यदा नारी विस्त्राता मरणं गता ।

त्रिवर्षपूर्णपर्यन्तं शुद्धयेत्कृच्छ्रेण सर्वदा ॥ ’

एतदाद्यत्रयहविषयम् ।

‘ सूतिका तु यदा नारी रजसा तु परिप्लुता ।

ध्रियते चेत्तु सा नारी द्विवर्षं कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ’



एतत् द्वितीयत्रयहविषयम् ।

‘सूतिका तु यदा साध्वी विस्त्राता मरणं गता ।  
अब्दकृच्छ्रेण शुद्धयेत व्यासस्य वचनं यथा ॥’

एतत् तृतीयत्रयहविषयम् ।

अत्राशक्तौ पक्षान्तरमुक्तं तेनैव—

‘सूतिका तु यदा नारी विस्त्राता मरणं गता ।  
त्रिषण्णवदिनादर्वागेकाब्देन विशुद्ध्यति ॥’

दशाहप्रभृति मासाभ्यन्तरे विशेषमाह—

‘सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत् ।  
मासमेकावधिर्यावन्निभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥  
नाशौचं नोदकं नाशु न दाहाद्यन्तकर्म च ।

ब्रह्मदण्डहतानां च न कुर्यात्कटधारणम् ॥’ इति ।

सम्भवात् ब्रह्मदण्डो ब्रह्मशापः, अभिचारो वा । कटशब्देन शव-  
वहनोपयोगि खट्वादि । एतच्चात्मघातोद्देशकस्वव्यापारे सति ।

‘प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम् ।’ (१४।११)  
इति गौतमोक्तेः । —प्रायो महाप्रस्थानम् ।

‘हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् ।’

इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च ( ३।२१ ) ।

तद्देहप्रतिपत्तिर्मिताक्षरोदाहृतस्मृत्यन्तरे—

‘आत्मनस्याग्निनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ।

तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम् ॥’

गङ्गेति सम्भवाभिप्रायेण ।

अत एव स्मृत्यन्तरे—

‘गङ्गायां प्रक्षिपेद्देहं सरित्स्वन्यासु वा ततः ।’ इति ।

अन्यादेस्तु मिताक्षरायाम्—

‘वैतानं प्रक्षिपेदप्सु गृह्णामि च चतुष्पथे ।

पात्राणि च दहेदग्नौ यजमाने वृथा मृते ॥’

—वृथाऽऽत्मघातेन ।

१ अनुगतमक्षमन्वक्षम् । प्रत्यक्षं दृश्यमाने शरीरे तत्सपिण्डानामाक्षौचमित्यर्थः ।



तथा—‘महापातकसंयुक्तो दैवात्स्यादग्निमान् यदि ।

पुत्रस्तान्पालयेदग्नीन् युक्त आ दोषसङ्ख्यात् ॥

प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन् वा म्रियते यदि ।

गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वास्येत्सपरिच्छदम् ॥’ इति ।

आत्मघाते प्रायश्चित्तं निगमे—

‘आत्मघातकशुद्धयर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ।

तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च त्रिंशन्निष्काणि चाचरेत् ॥’ इति ।

आत्मघातिदाहादौ प्रायश्चित्तं मिताक्षरायाम्—( ग. पु. २।४।१६० )

‘कृत्वाऽग्निमुदकं स्नानं स्पर्शनं वहनं कथाम् ।

रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥’ इति ।

यत्तु मिताक्षरायाम्—( ३।६ ) ‘स्पर्शमात्रे चैकरात्रोपोषणम्’ इति,

तत् तप्तकृच्छ्राशक्तौ काष्ठाद्यन्तरितस्पर्शे वा ज्ञेयम् ।

तप्तकृच्छ्रस्तु—( याज्ञ. ३।३१७ ग. पु. २।४।१६४ )

‘तप्तक्षीरघृताम्वूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत् ।

एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः ॥’ इति ।

१ एतद्ज्ञाने । बुद्धिपूर्वं तु वसिष्ठः—‘य आत्मत्यागिनां कुर्यात् स्नेहात् प्रेतक्रियां नरः । स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेत् चान्द्रायणव्रतम् ॥’ इति । तप्तकृच्छ्राभ्यां सहितमिति विग्रह्य तप्तकृच्छ्रद्वययुक्तं चान्द्रायणमिति व्याचष्टे शम्भुभट्टः । युक्तं चेत्तत्, ‘तप्तकृच्छ्रद्वयेनैव तस्य शुद्धिर्न चान्यथा ।’ इति ब्राह्मवचनात् ॥ स्नानं शवस्नपनम्, रज्जुच्छेदः काचित्कः, अश्रुपातं चेति चकारादिदमपि सर्वेषां दाहादिकरणे ।

२ किञ्चिन्न्यूनचतुरुपवासात्मकस्यास्य न दाहाद्यष्टकपापनिवर्तकत्वसम्भवः, प्रत्येकं दाहादिकरणे उपवासोक्तेस्तदष्टकस्यौचित्येन ततोऽतिन्यूनत्वात् । अतः ‘तप्तकृच्छ्रं चरन् विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् । प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत् स्नायी समाहितः ॥’ ( ११।२६४ ) इति मनुपदिष्टो द्वादशाहसाध्योऽत्र ज्ञेय इति सिन्धुटीका । वस्तुतस्तु गार्ग्ये पूर्ववचनस्य तप्तकृच्छ्रशब्दव्याख्यात्वेनास्य ‘तप्तक्षीर-’ इत्यादिवचनस्य प्रवृत्तत्वात् न्यूनस्यापि वाचनिकं पापनिवारकत्वं निर्बाधमेव ।



संवत्सरोर्ध्वं तु गवादिहतानामपि दाहादि कार्यमेव ।

‘गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ।

ऊर्ध्वं संवत्सरात्कार्यं सर्वमप्यौर्ध्वदैहिकम् ॥’

इति षट्त्रिंशन्मतात् ।

नारायणवलिं कृत्वा तु तदैव कार्यम् ।

‘अर्वाक्संवत्सरात्कुर्याद्दहनादि यथोदितम् ।

कृत्वा नारायणवलिमनित्यत्वात् सदायुषः ॥’

इति स्मृतेः ।

‘नारायणवलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः ।

तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद्यमः ॥’ (ग. पु. २।४)

इति छागलेयोक्तेश्च ।

‘विष्णुं समर्चयेद्देवं यमं वैवस्वतं तथा ।

एकादश्यां च शुक्लायां पञ्चम्यां श्रवणेन वा ॥

वृथामृतानां शुद्धयर्थं कार्यो नारायणो बलिः ।

दशपिण्डान् घृताभ्यक्तान् दर्भेषु मधुसंयुतान् ।

तिलमिश्रान् प्रदद्याद्द्वै संयुतो दक्षिणामुखः ॥’ इति ।

शौनकस्मृत्यर्थसारानुसारी नारायणवलिः ।

शुक्लैकादश्यां पञ्चम्यां श्रवणेन वा तिथ्यादि स्मृत्वा ‘अमुकशर्मेण और्ध्वदैहिके सम्प्रदानत्वसिद्धयर्थं नारायणवलिं करिष्ये’ इति सङ्कल्प्य पञ्चकलशान् सजलान् ब्रीहिषु यवेषु वा गन्धसर्वोषधदूर्वा-पलवसप्तमूल्फलरत्नसुवर्णशकलयुतान् वस्त्रवेष्टितान् संस्थाप्य तेषामुपरि ताम्रादिपात्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवान्वैवस्वतं यमं प्रेतं च पूजयेत् । तत्र क्रमान्मन्त्राः— ‘हिरण्यगर्भः’ (ऋ. सं. ८।७।३) पुरुषसूक्तं (ऋ. सं. ८।४।१७-१९) ‘कद्रुद्राय’ (ऋ. सं. १।३।२६) ‘यमाय सोमं’ (ऋ. सं. ७।६।१६) चतुर्थ्यन्तमोऽन्तं च प्रेतनाम । ततो गृह्योक्तमार्गेणाग्नि-

१ ‘विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा । ब्रह्मा रूप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ॥ सीसकं तु भवेत् प्रेतमथवा दर्भकं भवेत् ।’ इति गारुडे (२।४०।३२) प्रतिमाद्रव्याणि ।



स्थापनादिनारायणदैवत्यचरुश्रपणान्तं कृत्वा पुरुषसूक्तेन (क्र. सं. ८।४। १७-१९) प्रत्यूचं षोडशाहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्य कलशसमीपे 'अमुकगोत्रायामुकशर्मणे प्रेताय विष्णुरूपिणेऽयं पिण्ड उपतिष्ठताम्' इति मधुघृततिलयुतान् दशपिण्डान् प्राचीनावीती दक्षिणाप्रकुशेषु दत्त्वा 'यत्ते यमं' (क्र. सं. ८।१।२०) इति सूक्तेनानुमन्त्र्य शङ्खोदकेन कुशैरभ्युक्ष्याभ्यर्च्य प्रवाहणान्तं कृत्वा नद्यां प्रक्षिप्य 'अमुकशर्मा अमुकगोत्रो विष्णुरूपी तृप्यतु' इति पुरुषसूक्तस्य प्रत्यूचमन्त्रे उच्चारयन् षोडशवारं प्रेतं सन्तर्प्य-

‘ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव सकिङ्करः ।

बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभां गतिम् ॥’

इति ब्रह्मादीन् प्रार्थयेत् । तेभ्यः पुरुषाहारमितमन्नं बलिं दत्त्वा प्रतिदेवतं त्रिविधफलघृतशर्करामधूनि निवेद्य परदिनकर्त्तव्यश्राद्धार्थं पञ्च विप्रानामन्त्र्य रात्रिं जागरणेनातिवाह्य परदिने मध्याह्ने ब्रह्मादीन्संपूज्य तिथ्यादि सङ्कीर्त्य 'अमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्यौर्ध्वदैहिके सम्प्रदानत्व-योग्यतासिद्धये पञ्चैकोद्दिष्टश्राद्धानि तन्त्रेण करिष्ये' इति सङ्कल्प्य श्राद्धानि कुर्यात् । तत्र देवता ब्रह्मादय एव । ब्रह्मादीनां पूजापिण्डदानादिषु सव्यम् । प्रेतविप्रायाऽधिका दक्षिणा भूहिरण्यादिका । अक्षय्यस्थाने कुशतिलतुलसीयुतशङ्खजलधारेति विशेषः । ततस्ते विप्राः पवित्रहस्ताः अमुकशर्मणेऽमुकगोत्राय प्रेताय विष्णुरूपिणे इदं तिलोदकमुपतिष्ठता-मिति प्रत्येकं तिलोदकं दद्युः । यजमानः स्नात्वा गुडशर्करापायसादियुतं स्वजनयुतो भुञ्जीतेति नारायणबलिप्रयोगः ।

मरणोद्देशेन सर्पसमीपगमनादिना सर्पेण हते तु वर्षपर्यन्तं प्रतिपञ्चमि नागं सम्पूज्य वर्षान्ते नारायणबलिं कृत्वा सौवर्णं नागं गां च विप्राय दत्त्वा सर्वमौर्ध्वदैहिकं कुर्यात् ।

१ दशपिण्डदानमपसव्येन कुर्यात् । यज्ञोपवीत्येवेति आधुनिकेन केनचित् कल्पितः पाठः- इति सिन्धुटीकाकृत । तत्र, गारुडेऽपि 'यज्ञोपवीती' ( २।४।४।८ ) इत्युक्तेः ।

२ नागो दारुमयो मृन्मयो वा पञ्चफण इति भट्टाः । पिष्टमय इति सिन्धुः । तस्य प्रतिमासमनन्तो वासुकिस्तक्षकः शङ्खः पद्मः कम्बलः कर्कोटकोऽश्वतरो धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालीयः कपिलश्चेति पृथङ्नामभिः पूजेति भट्टाः ।



तथा च व्यासः पुराकल्पं पपाठ— ( ग. पु. २।४।१३३ )

‘सुवर्णतारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम् ।

विप्राय विधिवदत्वा पितुरानृण्यमाप्नुयात् ॥’

भारनिष्पन्नमिति वा पाठः । भारः पलसहस्रद्वयम् ॥ ‘तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः’ इति कोशात् (अमरसिंहः २।९।९७३) । एतत्पाठे प्रायोऽशक्यार्थविधिः ।

प्रमादमृतानां तु—

‘चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये ।’

इति प्रायश्चित्तं कृत्वा सद्य एव दाहादि कार्यम् ।

तथा चाङ्गिराः—

‘अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताम्युदकादिभिः ।

तस्याशौचं विधातव्यं कर्त्तव्या चोदकक्रिया ॥’ इति ।

आदित्यपुराणे—

‘असाध्यव्याधिना युक्तः स्वव्यापाराक्षमः पुमान् ।

प्रविशत्यनलं दीप्तं करोत्यनशनं तु वा ॥

अगाधतोयराशिं वा भृगोः पतनमेव वा ।

गच्छेन्महापथं वाऽपि तुषारगिरिमादरात् ॥

प्रयागवटशाखाग्रादेहत्यागं करोति वा ।

स्वयं देहविनाशस्य प्राप्ते काले महाभतिः ॥

उत्तमानाप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत्कचित् ।

महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान् भोगान्समश्नुते ॥

एतेषामधिकारोऽस्ति सर्वेषां सर्वजन्तुषु ।

नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥’ इति ।

‘ईदृशं मृतकं येषां जीवानां कुत्रचिद्भवेत् ।

आशौचं स्यात् त्र्यहं तेषां वज्रानलहते तथा ॥’

इत्येतदपि वृद्धादीनामेवोक्तमनुवाक्योक्तमृतिविषये त्रिरात्रमाशौच-  
विधायकं बोध्यम् ।

१ ‘तारं च रजते—’ इति विश्वः ।



ऊर्ध्वोच्छिष्टादिमरणे ब्रह्मचारिमरणे च विशेषः

३५

ऊर्ध्वोच्छिष्टादिमरणे पराशरः—

‘ऊर्ध्वोच्छिष्टे ह्यधोच्छिष्टे अन्तरिक्षे मृतिर्यदि ।

कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणेऽपि च ॥’ इति ।

तथा—‘ऊर्ध्वोच्छिष्टे ह्यधोच्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च ।

अस्पृश्यस्पर्शमरणे खट्वादौ मरणेऽपि च ॥

श्वानक्रव्यादसंस्पर्शे कृमिकीटोद्भवेऽपि च ।

तत्तदोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥

कृच्छ्रस्त्रिषट्पञ्चदशान् चान्द्रायणमथापि वा ।’ इति ।

अत्र दोषानुसारेण प्रायश्चित्ते तारतम्यं कल्प्यम् ।

ब्रह्मचारिमरणे स्मृत्यन्तरे विशेषः—

‘येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि ।

तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोऽपि दुर्गतिमाप्नुयात् ॥

ग्रहत्वं प्राप्नुयाद्बोधिद्रुमेऽन्तरतं वसेत् ।

तस्यापि तस्य वंशस्य गतिमिच्छन्महीयसीम् ।

विधानं च विधायानु और्ध्वदैहिकमाचरेत् ॥

मृतस्य म्रियमाणस्य पटव्दं व्रतमादिशेत् ।

त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनकान्नवान् ॥

हस्तमात्राः कर्णमात्रा दद्यात्कृष्णाजिनानि च ॥

पादुकाछत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च ।

मणिप्रवालमालाश्च ब्रह्मसूत्राणि चार्पयेत् ॥

मन्त्रैस्तत्तल्लिङ्गैश्च ब्रह्मसायुज्यसिद्धये ।

अभावे व्रतिनां पूज्या गृहस्थाः साधवः शुभाः ॥

एवं कृते विधाने तु विघ्नस्तस्य न जायते ।’ इति ।

१ मात्रा मुद्रिकाः ‘मात्रा कर्णविभूषणे’ इति विश्वः ।

२ उपनयनोत्तरं चतुर्दिनान्तराले ब्रह्मचारिमरणे तु वृद्धमनुः—‘चतुर्दिना-  
न्तराले तु बटुः प्रमीयते यदि । दण्डादिकं जले क्षिप्वा वह्निना तेन दाहयेत् ॥’  
तेन औपनायनिकेन । रत्नः प्रायश्चित्तमाह—‘अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेण वह्नौ होमं  
विधाय च । तेनैव वह्निना नूनं बटोर्दाहो विधीयते ॥’ इति (स्मृ. सा. स.



स्नातकमरणे वा शौनकः— ( ९१ )

‘ स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि ।

संयोज्य चार्कविधिना संयोज्यौ तौ ततः परम् ॥ ’ इति ।

कुष्ठिमरणे यमः—

‘ मृतस्य कुष्ठिनो देहं निखनेद्रोष्ठभूमिषु ।

वासरत्रितयं पश्चादुद्धृत्यान्यत्र तं दहेत् ॥

न गङ्गाप्लवनं कार्यं निक्षेपे विधिरुच्यते ।

षडब्दव्रतपूर्णेन विधिनाऽन्त्यं क्रतुं चरेत् ॥

ततोऽस्थिसञ्चयं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत् सुधीः ।

मासि मासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणान् ॥

सङ्कल्पविधिना केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ’ इति ।

पर्युषितदाहे गालवः—

‘ दिवा वा यदि वा रात्रौ शवस्तिष्ठति कर्हिचित् ।

तत्पर्युषितमित्याहुर्दहने तस्य का गतिः ॥

पञ्चगव्येन संस्नाप्य प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥ ’

प्रेतधनहारिणः प्रेतक्रियाकरणे शङ्कः—

‘ प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा धनहारकः ।

वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत् ॥ ’

—२।५।७-८) उपनयनामित्यागोत्तरं तु ‘ ब्रह्मचारी यती चैव दहेदुत्पनाग्निना । ’

इति कृतं द्रष्टव्यम् । मसुरिकामरणे स्मृतिसारसमुच्चये— पैठीनसिः— ‘ त्रिपक्षादुत्तरं

कार्यं मसुर्या म्रियते यदि । शाखासंस्कारतः सिद्धिस्तन्मृतौ तु विनिश्चयः ॥ ’

लौगाक्षिः— ‘ मसुरिकामृतो यस्तु दहनं नास्य कारयेत् । खननं तस्य विज्ञेय-

मन्यथा ग्रामनाशनम् ॥ ’ ‘ तिलायुतं प्रकर्तव्यं नारायणवलिस्तथा । मसुरिकाया

मरणे पैशाच्यं विनिवर्तते ॥ ’ इति ।

३ अत्र विशेषो निर्णयपारिजाते— ‘ कुष्ठो यत्र मृतस्तमेव निखनेद्रोष्ठे दिनानां  
त्रयं षड्गोदानमथ प्रदाय मुदितस्तं शास्त्रवद्वाहयेत् । कृत्वा कर्म दशाहमत्र परतो  
नारायणाख्यं वलिं कृत्वा तं परिशोध्य सर्वमखिलं कुर्वीत शुद्धो भवेत् ॥ ’ इति ।



## अथ मृतेतिकर्तव्यता ।

मनुः— ( ५।१०३ )

‘न विप्रं स्वेपु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण हारयेत् ।  
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसम्पर्कदूषिता ॥’

निर्हरणाशौचमाह मनुः— ( ५।१०० )

‘असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।  
विशुद्ध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥  
यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहं नैव शुद्ध्यति ।  
अनदन्नन्नमहैव न चेत्तस्मिन् गृहे वसेत् ॥’ इति ।

तद्गृहवासिनस्तदन्नमखादतो निर्हृतवतरुग्रहम् ।

तद्गृहवासिनस्तदन्नाशिनोऽपि तस्य दशाहम् । अतद्गृहवासिनस्तदन्ने-  
भोजितश्च तस्याहोरात्रमित्याशयः ।

बन्धुकद्वित्यनेन धनग्रहणोपाधिना सवर्णशवनिर्हरणे दशाहाद्या-  
शौचमिति निबन्धकृतः ।

ग्रामान्तरवासिनो निर्हृतवतः सज्योतिः । ‘प्रेतस्पर्शिनो ग्रामं न प्रवि-  
शेयुरा नक्षत्रदर्शनाद्वात्रौ चेदादित्यस्य’ इति पारस्करसूत्रे (३।१०।३५) ।

अन्यत्रणेनिर्हरणे तत्तदुक्ताशौचं गौतमोक्तम्— ( २।५।२६ )  
‘अवरश्चेद्वर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत्पूर्वो वावरं तत्र शवोक्तमाशौचम् ।’ इति ।  
—उप स्पृशेन्निर्हरेत् ।

अनाथनिर्हरणे पराशरः— ( ३।३९-४० )

‘अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।

पदे पदे यज्ञकलमानुपूर्व्यालभन्ति ते ॥

न तेषामशुभं किञ्चित्पापं वाऽशुभकर्मणाम् ।

जलावगाहनात्तेषां सद्यःशौचं विधीयते ॥’

सन्न्यासिनां मृतावाशौचं नास्ति इति स्मृत्यर्थसारं ।

तथा ‘ब्रह्मचारिसन्न्यासिनामप्याशौचं नास्ति’ इति ।



ब्रह्मचारिविषये योगी- ( ३११५ )

‘ आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हत्यापि व्रती व्रती ।

सकटांनं च नाश्रीयान्न च तैः सह संवसेत् ॥ ’

—कट आशौचित्वापाद्यर्थः, तदन्नमाशौच्यन्नम् । अर्थादितदन्य-  
निर्हरणे व्रतभङ्गः ।

हीनानुगमने आशौचमाह याज्ञवल्क्यः- ( ३१२६ )

‘ ब्राह्मणेनानुगन्तव्यो न शूद्रो नाद्विजः कश्चित् ।

अनुगम्यान्भसि स्नात्वा स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतमुक् शुचिः ॥ ’

—अद्विजो विप्रभिन्नः । स्वाव्यवहितहीनवर्णानुयाने तु ब्राह्मणा-  
देवसिष्ठोक्तमहोरात्रम् । एकान्तरानुव्रजने पक्षिणी । दिवस्त्रातुभयतः  
पक्षाविव यस्या रात्रेः सा पक्षिणी ।

अन्तरत्वे पराशरः— ( ३१४५-४६ )

‘ प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।

अनुगच्छेन्नीयमानं सं त्रिरात्रेण शुद्धयति ॥

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।

प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥ ’ इति ।

योगी- ( ३१२ )

‘ स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताभ्यावृताथर्ववत् । ’

—उपेत उपनीतः । आहिताभ्यावृता आहिताग्निदाहप्रक्रियया  
लौकिकाग्निना ।

अग्निविशेषं निर्विशेषं निषेधति देवलः—

‘ चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित् ॥

पतिनाग्निश्चिनाग्निश्च न शिष्टग्रहणोचिताः ॥ ’ इति ।

यमः—

‘ यम्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च ।

प्रेतत्वं हि सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते ॥ ’

अत्रानाहिताग्नेर्गृह्याग्निना, आहिताग्नेस्तु श्रौताग्निभिरिति । तत्रापि  
स्वगृह्योक्तविधिर्नैव ।

१ सकटं सहेति युक्तम् । २ ‘ त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ’ इति स्मृतौ पाठः ।



कात्यायनः—‘आहुतिं जुहोति पुत्रो भ्राता अन्यो वा ब्राह्मणो-  
ऽस्मान्धमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय  
स्वाहा’ इति ।

असावित्यत्र प्रेतनाम प्रथमान्तं वदेत् ।

प्रचेताः—

‘स्नानं प्रेतस्य पुत्रार्चैर्वस्त्रार्चैः पूजनं ततः ।

नम्रदेहं दहेन्नैव किञ्चिद्देयं परित्यजेत् ॥’

किञ्चिद्देयं शववस्त्रैकदेशादिकं स्मशाने प्रक्षिपेदिति मिताक्षरायाम्  
( ३१२ ) ।

स्मृत्यन्तरे—

‘रात्रौ वा रात्रिशेषे वा म्रियन्ते चेद्भिजातयः ।

दाहं कृत्वा यथान्यायं द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः ॥’

‘परदिने आद्यद्वितीयौ द्वावयवपिण्डौ निर्वपेत्’ इति केचित् :  
रात्रावेवैकोऽवयवपिण्डो विषमभ्राद्धीयश्चापर एवं द्वाविति परे ।

स्मृतिसंग्रहेऽपि—

‘रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डान्तं कृत्वा वपनवर्जितम् ।

वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तना वपनक्रिया ॥’

‘सन्ध्यायां वा तथा रात्रौ दाहः’ इत्यादि पारिजातोदाहृतनिषेधक-  
निगमवचनं तु दिनस्मृतस्य न सन्ध्यादौ दाहादिकमित्येवंपरम् ।

दाहानन्तरं याज्ञवल्क्यः—( ३१३ )

‘सप्तमादशमाद्वाऽपि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः ।

अप नः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥’

सप्तमादशमाद्वा दिनादर्वाक् ‘अप नः’ इति मन्त्रेण प्रथमतृतीय-  
पञ्चमसप्तमनवमेषु प्रेतस्य नामगोत्रे उच्चार्य तृप्त्यतिव्युदकं दद्युः, इति  
विज्ञानेश्वरः । युक्तं तु स्नान एव मन्त्रोऽङ्गमिति ।

‘‘अप नः शोशुचदघम्’ इति दक्षिणाभिमुखा मज्जन्ति प्रेतायोदकः  
सकृत् प्रसिञ्चन्ति अञ्जलिनाऽसावेतत्ते उदकम्’ (३१०।१९-२१)  
इति पारस्करोक्तेः । प्रतिदिनमञ्जलिवृद्धिरपि ज्ञेया । अत्र ‘दक्षिणा-  
भिमुखा ब्राह्मणस्योदङ्मुखा प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः’ इति प्रचेतसा

३ इदं हेमाद्रिमतम् । अपराकोऽप्येवम् ।



विशेष उक्तः । अत्र 'विप्रे दशाञ्जलयः, क्षत्रिये द्वादश, वैश्ये पञ्चदश, शूद्रे त्रिंशत्' इति यमाक्तौ विशेषोऽनुसन्धातव्यः ।

एतच्चोदकदानं मातापितृमातामहाचार्यादीनां नित्यम्, भागिनेयादीनामनित्यम् ।

तथा च याज्ञवल्क्यः—( ३१४ )

‘ एवं मातामहाचार्यप्रेतानामुदकक्रिया ।

कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्तीयश्चशुरर्त्विजाम् ॥ ’

ज्ञातित्वे सत्यपि कचिन्निषेधस्तेनैवोक्तः—( ३१५ )

‘ न ब्रह्मचारिणः कुर्युदकं पतितास्तथा । ’

—पतिताः प्रच्युतद्विजातिकर्माधिकाराः । ब्रह्मचारिणामुदकदानादि-निषेधो मातृपित्रादिव्यतिरिक्तविषय इत्युक्तं प्राक् ( पृ. ३८ )।

आशौचनियमानाह याज्ञवल्क्यः—( ३१६।१७ )

‘ क्रीतलब्धाशना भूमौ शयीरंस्ते पृथक्पृथक् ।

पिण्डयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम् ॥

जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ॥ ’

—आकाशे शिक्यादौ । द्रव्यद्वयनिधानसामर्थ्याद्वयोः शरावयोर्भेदेन निधानम् । ‘प्रेतात्र स्नाहि’ इति मंत्रश्च ‘प्रेतेदं पिब’ इत्युह्य इति विज्ञानेश्वरादयः । हरिहरस्तु मृन्मय इति पात्रैकवचनसामर्थ्यात्प्रेतात्र स्नाहीति मन्त्रेणैकत्रोभयनिधानं मन्यते ।

गारुडे दुग्धनिधानं त्र्यहमुक्तम्—( २।३४।१२ )

‘ अपके मृन्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम् । ’ इति ।

मात्स्ये—( १८।६-७ )

‘ तस्मात्प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशोऽहनि नीयते ।

गृहपुत्रकलत्रं च द्वादशाहं स पश्यति ॥

१ पिण्डपितृयज्ञप्रक्रियया प्राचीनावीतित्वादिरूपया—मि.

२ ‘ जलं त्रिदिनमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये । अत्र स्नाहि पिवात्रेति मंत्रेणानेन काश्यप ! ॥ काष्ठत्रये गुणैर्वद्धे प्रीत्यै रात्रौ चतुष्पथे । ’ (ग.पु. २।५।१४) इति विशेषः ।



तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा ।

सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥ ' इति ।

विष्णुर्यावन्त्याशौचदिनानि तावत्पिण्डदानमाह — ( १९/१३ )

' यावदाशौचं तावत्प्रेतायोदकं पिण्डं च दद्युः ' इति ।

पारस्करः—

' प्रेतेश्यः सर्ववर्णेश्यः पिण्डान् दद्युर्दशैव तु । '

मरीचिः—

' प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम् ।

प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ॥ '

—दर्भवर्जितत्वमनुपनीतविषयम् ' असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्,  
संस्कृतानां तु कुक्षेषु ' इति प्रचेतोवचनात् ।

षाषाणे वा देयाः । ' भूमौ माल्यं पिण्डं पानीयं, उपले वा दद्युः '  
इति शङ्खोक्तेः ।

शातातपः—

' दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एव क्रमेण तु ।

सद्यःशौचे प्रदातव्याः सर्वेऽपि युगपत्तथा ॥

आशौचस्य ह्रासेऽपि पिण्डान् दद्यादशैव तु । '

त्रिरात्राशौचे पारस्करः—

' प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः ।

द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा ॥

त्रीस्तु दद्यात्तृतीयेऽहि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः । ' इति ।

गृह्यकारिकायाम्—

' यत्र त्रिरात्रमाशौचं द्वितीयेऽह्नयस्थिसञ्चयः ।

नवश्राद्धं वृषोत्सर्गं चतुर्थेऽहि समाचरेत् ॥

आशौचं तु यदा सद्यो भवेत्तत्र कथञ्चन ।

यथाकालं नवश्राद्धमिति सत्यव्रतोऽवधीत् ॥

वृषोत्सर्गादि यत्तत्र कुर्यादेकादशेऽहनि ॥ ' इति ।



परिशिष्टे—( ग. पु. प्रे. खं. ५।१९ )

‘असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् ।  
प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत् ॥’

प्रदीपधृतं वचः—

‘सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः ।

सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धयेत्तु दशमेऽहनि ॥’ इति ।

अत्रापि समानकर्तृत्वामात्रमेव विधेयम् । दशमेऽहनीति तु माना-  
न्तरप्राप्ताशौचावधेरनुवादः । ‘यदि सत्राय दीक्षितानां साम्युतिष्ठासे-  
त्सोममपभज्य विश्वजिताऽतिरात्रेण यजेत’ इत्यत्र प्राप्तविभाज्यद्रव्यो-  
पलक्षकसोमपदवत् । तेन क्षत्रियादिर्द्वादशाहादिभिः शुद्धयेत् । त्रिरात्रा-  
शौचवांस्तु तावतैव । पक्षिण्येकाहादिमानपि त्रिरात्रेणैव ‘असंबन्धि-  
द्विजान्दित्वा दहित्वा च सद्यःशौचम् । संबन्धे त्रिरात्रम्’ इति पैठी-  
नसिना दाहमात्रे संबन्धिनस्त्रिरात्रविधानात् । दाहवहनयोः साहित्यं  
त्वविवक्षितम्, अनुवाद्य विशेषणात् ।

यत्तु केचित् — दाहविण्डदानादिनिमित्तं दशाहादिजात्याशौचं  
चरन्ति, तन्निर्मूलम् ।

यत्तु—‘निरन्वये सपिण्डे तु मृते सति दयान्वितः ।

तदशौचं पुरा चीर्त्वा कुर्यात्तु पितृवत् क्रियाम् ॥’

इति वचः, तदाशौचाप्रयोजकमृतावाशौचमचीर्त्वाऽकृत्यैव दयया  
धर्मार्थं क्रियां कुर्यादित्येतत्परम् । अथवा धर्मार्थत्वाभावे स्नेहानुबन्धेऽपि  
क्रियानिमित्ताशौचे मानाभावाद्दाहनिमित्तं त्रिरात्रं कृत्वा दशाहपर्यन्तं  
क्रियां कुर्यात्—इत्येतत्परम् । अत एव चीर्त्वेति क्त्वावगतमाशौचसमाप्त्यु-  
त्तरकालत्वं क्रियासमाप्तेः सङ्गच्छते । उत्तमवर्णदाहे तु ‘अवरश्चेद्वर्णः  
पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत्पूर्वं वाऽवरं ततस्तच्छवोक्तमाशौचम्’ ( २।५।२६ )  
इति गौतमीयम्, तज्जात्याशौचे । यद्यपि तत्रोपस्पर्शनं निर्हरणं व्याख्यातं  
मिताक्षरायाम्, तथापि कैमुतिकन्यायेन दाहेऽपि तद्वति ।

ब्राह्मे—‘योऽसवर्णं तु मृत्येन नीत्वा चैव दहेन्नरः ।

आशौचं तु भवेत्तस्य प्रेतजातिसमं नृप ! ॥’ इति ।

मनुः—( १।१।१९७ )

‘ब्राह्मणानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।

अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥’ इति ।



अहीनयाजकान्त्येष्टियाजकयोरेव तत्प्रायश्चित्तमिति विज्ञानेश्वरः ।  
मेधातिथिस्तु—अहीनस्य विहितत्वेन न तत्रेदं प्रायश्चित्तम्, किंतु  
रागप्राप्ते तद्याजन एव । परान्त्यकर्मणस्तु निषिद्धत्वात्तत्साक्षात्कर्तुरेवे-  
दमिति युक्तमूचे । वचःस्वरसोऽप्येवम् ।

देवलः—

‘ब्रह्मचारी न कुर्वीत शक्नवाहादिकाः क्रियाः ।

यदि कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥’ इति ।

आदिपदमलङ्कारादेर्ग्राहकं, न तु दाहादेः; तत्र प्रायश्चित्तस्य गुरुत्वात् ।

पैठीनसिरपि—‘ब्रह्मचारिणः शक्नवर्मिणो व्रतानिबृत्तिः’ इति ।

उदकदानप्रतिषेधमाह याज्ञवल्क्यः—( ३।९ )

‘न ब्रह्मचारिणः कुर्युदकं पतितास्तथा ।’

ब्रह्मचर्योत्तरकालं पूर्वमृतानां सपिण्डानामुदकदानमाशौचं चाह  
मनुः—( ५।८७ )

‘आदिष्टी नोदकं कुर्यादा व्रतस्य समापनात् ।

समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥’ इति ।

—आदिष्टी ब्रह्मचारीति विज्ञानेश्वरः । केचित्तु प्रक्रान्तप्रायश्चित्त  
आदिष्टीति मन्यन्ते ।

वस्तुतस्तु व्रतादेशोऽस्यास्तीत्यादिष्टीति व्युत्पत्त्या द्वावप्यादिष्टिना-  
विति । स्नेहलोभहेतुक्रियायाः सामान्यवचनेनैव निषेधे सिद्धे ब्रह्मचारि-  
णां प्रति पुनर्निषेधः धर्मार्थमपि गोचरयति । अन्यथा वैयर्थ्यात् ।

मनुः—( ५।९० )

‘आचार्यं स्वमुपाध्यायं मातरं पितरं गुरुम् ।

निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं व्रतेन न विद्युज्यते ॥’ इति ।

मिताक्षरायाम्—

‘गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत् ।

प्रेताहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥’

प्रेताहारैस्तदन्नभोजनैः । एतदशरात्रं तदन्नभोजन एव । तदभावे  
त्वेकशरात्रं वक्ष्यते । पुनरुपनयनं तु न भवति, क्रियाया विहितत्वात् ।  
आचार्याद्यतिरिक्तक्रियायां त्वाशौचं पुनरुपनयनं प्रायश्चित्तं च भवति ।



अत एव याज्ञवल्क्यः—( ३।१५ )

‘ आचार्यपिनुपाध्यायान्निर्हत्यापि व्रती व्रती । ’ इति ।

—निर्हरणमग्निदानादिक्रियान्तरस्याप्युपेक्षणम् ।

अत एव भविष्यपुराणे—

‘ व्रतस्थोऽपि यथा पुत्रः पितुः कुर्यात्क्रियां नृप ।

तथा मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हति ॥ ’ इति ।

माधवीये ब्राह्मे—

‘ आचार्यं वाऽप्युपाध्यायं गुरुं वा पितरं तु वा ।

मातरं वा स्वयं दग्ध्वा व्रतस्थस्तत्र भोजनम् ॥

कृत्वा पतति नो तस्मात्प्रेतान्नं तन्न भक्षयेत् ।

अन्यत्र भोजनं कुर्यान्न च तैः सह संवसेत् ॥

एकाहमशुचिर्भूत्वा द्वितीयेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ’ इति ।

तुशब्देनैतदाशौचवैलक्षण्यं गम्यते । तेन पित्रादिभिन्नक्रियायां दाहे वहने तदन्नभोजने वा पूर्णाशौचप्रायश्चित्तपुनरुपेयनयनानि भवन्ति । चंद्रिकायां संवर्त्तः—( ल. हा. ९३-९४ )

‘ पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्यपि यः सुतः ।

सव्रतश्चापि कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम् ॥

तेनाशौचं न कर्त्तव्यं सन्ध्या चैव न लुप्यते ।

अग्निकार्यं च कर्त्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः ॥ ’ इति ।

इदं च प्रागुक्ताग्निदाननिमित्तत्रयहनिषेधार्थं, न तु दशाहादेः; प्रसक्त्यभावात् । ‘ ताताम्बाचार्यकेभ्योऽनलजलतिलद्वौ ब्रह्मचारी तदीयाशौचः ’ (१४) इति त्रिशत्पद्यस्य, और्ध्वदैहिकपृष्ठलभं दशाहाद्या-शौचमिति केषाञ्चिल्लेखस्य चाभिप्रायं न जाने ।

यत्तु प्रकाशे प्रजापतिः—

‘ ब्रह्मचारी यदा कुर्यात्पिण्डनिर्वपणं पितुः ।

तावत्कालमशौचं स्यात्पुनः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥ ’ इति ।

तत्र तावत्कालं ब्राह्मोक्तमेकाहमित्यर्थः । दिवोदासादयस्तु आद्यदिने पूर्णमाशौचं सन्ध्यादिकर्मलोपश्च, द्वितीयादिदिनेषु पिण्डदानादिकाल



एवाशौचम्, न तु ततः पूर्वोत्तरकालयोरित्याहुः । तन्न, ब्राह्मवाक्य-  
मूलान्मूलान्तरकल्पनापत्तेः, प्रत्यहमनेकाशौचोत्पत्तिनाशकल्पनागौरवाच्च  
हारीतः—

‘विहितं हि सपिण्डस्य प्रेतनिर्हरणादिकम् ।

दोषः स्यात्सप्तपिण्डस्य तत्रानाथक्रियां विना ॥’ इति ।

याज्ञवल्क्यः—( ३।२६ )

‘ब्राह्मणेनानुगन्तव्यो न शूद्रो न द्विजः कचित् ।

अनुगम्याम्भसि स्नात्वा स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतमुक् शुचिः ॥’ इति ।

मनुः—( ५।१०३ )

‘अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ।

स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

ज्ञातिः सज्जातीयमात्रं, न तु सपिण्डः, तदनुगमने दोषाभावात् । इदं  
च घृतप्राशनं कृच्छ्रेष्वपाठेन तत्त्वभावेऽपि तप आत्मकप्रायश्चित्तत्वात्  
भोजननिवर्तकम् ।

स्वानन्तरहीनवर्णानुयाने एकाहं प्रकृत्य वसिष्ठः—( २३।२२ ) ‘शवा-  
नुगमने चैवम्’ इति । ‘विप्रस्य वैश्यानुयाने तु पक्षिणी’ इति विज्ञाने-  
श्वरादयः ।

पराशरस्तु—( ३।४४ )

‘मृतं तु वैश्यमज्ञानात् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।

कृत्वा शौचं द्विशत्रं स प्राणायामान् षडाचरेत् ॥’ इति ।

एतदेव क्षत्रियस्य शूद्रानुयानेऽपीति ग्रन्थकृतः । तथैव दशश्लोक्यामपि ।

१ वस्तुतस्तु ब्राह्मोक्त एकाहः पित्रादेर्दाहमात्रकरणविषयः, प्रजापतिवचने  
तावत्कालमित्यस्य दशदिनरूपपिण्डदानकालमित्यर्थः । तेन कर्माधिकारलक्षणा-  
शौचेऽपि आशौचमध्य एव वाचनिके सन्ध्यावन्दनादिरूपतत्तत्कर्मणि स्नानादे-  
वाधिकारः आहिताग्नेरिवामिहोत्रहोमादौ । अतः कर्माङ्गमाशौचं ब्रह्मचारिणोऽपि  
दशाहमस्त्येव ।

अत्र विशेषः स्मृतिसारसमुच्चये—( २।५।२-३ ) ‘मातापित्रोस्तु मरणं  
व्रतमध्ये यदा पतेत् । बटुः सर्वं स्थापयित्वा वह्निं नत्वा बहिर्व्रजेत् ॥ यज्ञोपवीतं  
चामुञ्चन् वह्निसन्निधिमेत्य च । दशाहादुत्तरं पूर्वव्रतमेव समाचरेत् ॥’



पराशरः—( ३।४५-४६ )

‘प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।

अनुगच्छेन्नीयमानं स त्रिरात्रेण शुद्धयति ॥

त्रिरात्रे तु तत्तस्तीर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।

प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥ ’ इति ।

—ज्ञानदुर्बलः ज्ञानशून्यः । एवमज्ञानादित्यत्रापि ।

ब्राह्मे—‘ ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न करोति कदाचन ।

कामान्मोहाद्भयालौभात्कृत्वा तज्जातितान् व्रजेत् ॥ ’ इति ।

ब्राह्मणपदमुपलक्षणम् । वर्णानामिति सामान्यतो ग्रहणमपि हीन-  
जातिपरमेव । तत्प्राप्तेरेवानिष्टत्वात् ।

कामादिग्रहणाच्च धर्मार्थं द्विजस्य द्विजक्रियायां न दोष इति गम्यते ।

शुनःपुच्छः—

‘ शालिना सक्तुभिर्वाऽपि शाकेनाऽप्यथ निर्वपेत् ।

प्रथमेऽहनि यद्गव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम् ॥ ’

भविष्योत्तरे—( ग. पु. २।३४।३७ )

‘ गृहद्वारे श्मशाने च तीर्थे देवगृहे तथा ।

यत्रायो दीयते पिण्डस्तत्र सर्वान् समापयेत् ॥ ’

निगमे—

‘ एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकं च दीयते ।

द्वितीये द्वौ तृतीये त्रींश्चतुर्थे चतुरस्तथा ॥

पञ्चमे पञ्च षट् षष्ठे सप्तमे सप्त एव हि ।

अष्टमेऽष्टौ च नवमे नवैव दशमे दश ॥

येन स्युः पञ्चपञ्चाशत् तोयस्याञ्जलयः क्रमात् ।

तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि तिलादिभिः ॥

पञ्चभिः पञ्चभिस्त्वेति पात्रैरञ्जलिभिस्तथा ।

एकादशैवेन्द्रियाणि कर्षन्ते शास्त्रदर्शनात् ॥ ’ इति ।

१ अत्र घृतप्राशनस्य शुद्ध्यर्थत्वाभिधानात् भोजननिवृत्तिः इति प्रायश्चित्तमयूखे  
( पृ. २६२ ) ।



पिण्डश्च पुराणे—

‘तिलाः क्षीरं तथा तोयं धूपं दीपं तथा बलिः  
मधुसर्पिःसमायुक्तं पिण्डमाहुर्मनीषिणः ॥’ इति ।

तथा—

‘अर्घैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैस्तोयैश्च शीतलैः ।  
ऊर्णातन्तुमयैः शुद्धैर्वासीभिः पिण्डमर्चयेत् ॥’ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

‘भूमौ पिण्डप्रदानं च कर्षू कृत्वा विधानतः ॥’ इति ।  
—कर्षूस्तु प्रादेशमात्रदीर्घा चतुरङ्गुलविस्तारा तावदेव निम्ना गत-  
रूपा ।

अस्थिसञ्चयने संवर्तः—( ३८ )

‘प्रथमेऽहि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा ।  
अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ॥’

कचित् द्वितीयेऽप्युक्तम् । वैष्णवे तु —( ३१३११४ ) ‘चतुर्थे  
दिवसेऽस्थिसञ्चयनं कुर्यात्तेषां च गङ्गांभसि प्रक्षेपः’ इति ॥

प्रक्षेपो यथा—‘पट्टवस्त्र-कौशेय-माज्जिष्ठ-श्वेतवस्त्र-कंबल-शाणपट्टा-  
जिनैरष्टभिरुपर्युपरि संवेष्ट्य पंचगव्येन प्रक्षाल्य सांस्थिर्दश स्नानानि  
कृत्वाऽस्थीनि पलाशपत्रपुटे संस्थाप्य पुनर्मधुघृततिलहेमशकलैः सह  
मृत्पिण्डे निधाय कृतापसव्यो नाभिमात्रे जले मृतनामगोत्राद्युल्लेखपूर्वकं  
मृतश्राद्धपूर्वकं च प्रक्षिप्य रजतं ब्राह्मणाय दद्यात् । एवं गङ्गायां तत्क्षेपे  
स्वर्गः । प्रयागादौ तु मुक्तिरपीति फलम् ।’

वपनविषये देवलः—

‘दशमेऽहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्वहिर्भवेत् ।  
तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च ॥’

१ चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः ।—इति मूले ।

२ अस्थिसंस्कारासम्भवे त्वाश्वलायनः—( २०।५७-५८ ) ‘कर्तुं चेदस्थि-  
संस्कारं प्रमादाद्बहिः शक्यते । अस्थिशुद्धिकरान् मन्त्रान् धृत्वा दर्भानुदीरयेत् ॥  
दग्धस्य विधिनास्थीनि भावयित्वा जले क्षिपेत् । तिलाञ्जल्यादिकं सर्वं कुर्यात्  
प्रेतस्य कर्म च ॥’ इति ।



वपनादि च दशमपिण्डदानोत्तरम् ।

‘समाप्य दशमं पिण्डं यथाशास्त्रमुदाहृतम् ।’

इति ब्रह्मपुराणात् ।

‘भौमार्कमन्दवारमलिस्तुचशुक्रास्तादौ गंगायामस्थिप्रक्षेपं न कुर्यात्’  
इति त्रिस्थलीसेतौ ( ग. पु. २।३४।११३ ) ।

‘अस्थिप्रक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् ।

प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत कृते पितृसपिण्डने ॥’

‘यदि न स्यात्सपिण्डनम्’ इति कचित्पाठः ।

‘अस्थिप्रक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् ।

प्रथमेऽब्देऽपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान् सुतः ॥’ इति ।

‘दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं’ इति कचित्पाठः । अत्र पुत्र इत्येवोद्देश्य-  
समर्पकम् । भक्तिस्तु कर्माङ्गतया प्राप्ताऽनूद्यते । अतः सुतेनाद्याब्दे  
कार्यं नान्येन ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

‘द्वितीयेऽहि प्रकर्त्तव्यं क्षौरकर्म प्रयत्नतः ।

तृतीये पंचमे वाऽपि सप्तमे वा प्रदानतः ॥’ इति ।

—एकादशाहिकश्राद्धप्रदानादवर्गागित्यर्थः ।

आपस्तम्बः—( १।३।१०।६ ) ‘अनुभाविनां च परिवापनम्’ इति ।  
अनुभाविनः कनिष्ठाः सर्वे सपिण्डाः पुत्रा एवेति मिताश्वरायाम् ( ३।१७ ) ।

अनुपनीतपुत्रपत्न्योर्दाहाधिकारमाह कात्यायनः—

‘असंस्कृतेन पत्न्या च सामिदानं समन्त्रकम् ।

कर्त्तव्यमितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥’

कृतचौलस्तृतीयवर्षोत्तरं सर्वमौर्ध्वदैहिकं कुर्यात् ।

‘अनुपेतोऽपि कुर्वीत मन्त्रवत्पैतृमेधिकम् ।

यद्यसौ कृतचूडः स्याद्यदि च स्यान्निवत्तरः ॥’

इति सुमन्तूक्तेः । अत्र विशेषणद्वयमपि विवक्षितम्, विधेयकर्त्तृगतत्वात् ।

षट्पिण्डा अपि स्मृत्यन्तरे—( ग. पु. २।३५।३३—३४ )

‘स्थाने चार्द्धपथेऽतीते चितायां शवहस्तके ।

अमशानवालिभूतेभ्यः पञ्चमं प्रातिवेशकम् ॥



षष्ठः सञ्चयने प्रोक्तो दशपिण्डा दशाहिकाः ।

आद्धषोडशकं चैतत्प्रथमं परिकीर्तितम् ॥ ' इति ।

—प्रातिवेशिको द्वारदेशस्थः ।

कर्मप्रदीपेऽपि—

‘उत्क्रान्तौ द्वारदेशे च विश्रान्तौ शवहस्तके ।

स्तन्ये सञ्चयने चापि षट्सु पिण्डांश्च निर्वपेत् ॥ ’ इति ।

—स्तम्बस्थिता ! कुशमुष्टिरित्यन्ये ।

ब्रह्मपुराणे—

‘ छिन्नो वा दग्धदेहो वा श्वापदैर्भक्षितोऽपि वा ।

अङ्गमुत्पादयेत्तेषां पिण्डदानैर्दशाहिकैः ॥

आतिवाहिकदेहस्तु प्रेतपीडासमन्वितः ।

न हि मोक्षमवाप्नोति पिण्डांस्तत्रैव सोऽश्नुते ॥ ’

—आतिवाहिकदेहः प्रेतशरीरम् ।

‘ कृते सपिण्डीकरणे ततः संवत्सरात्परम् ।

प्रेतदेहं समुत्सृज्य भोगदेहं प्रपद्यते ॥

शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते तथा ।

द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकास्तु समासतः ॥

गलास्यभुजवक्षांसि तृतीयेन तथा क्रमात् ।

चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च ॥

ऊरू जङ्घे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा ।

सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः ॥

दन्तलोमान्यष्टमेन पूर्णत्वं क्षुद्रिपर्ययः ।

जायते तत्रमेनाथ दशमेन तथा क्रमात् ॥ ’ इति ।

१ अत्र—‘ एवं देही पूर्वदेहं समुत्सृजति तं यदा । भोगार्थमग्रे स्याद्देहो वायवीय उपस्थितः ॥ आतिवाहिकमित्येवं वायवीयं वदन्ति हि ॥ ८० ॥ पुत्रादिभिः कृताश्चेत् स्युः पिण्डा दश दशाहिकाः । पिण्डजेन तु देहेन वायुजैश्च कृतां प्रजेत् ॥ ८२ ॥ पिण्डजो यदि नैव स्याद् वायुजोऽर्हति यातनाम् ।’ (२।१०।७७) इति गारुडमनुसन्धेयं स्फुटार्थावगमाय ।



वृद्धवसिष्ठः—

‘अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्न विमुच्यते ।  
अर्वाक्तु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तरति दुष्कृतम् ॥’ इति ।

अङ्गिराः—

‘प्रथमेऽहि तृतीयेऽहि पञ्चमे सप्तमे तथा ।  
नवमैकादशे चैव नवश्राद्धं तदुच्यते ॥’

नागरखण्डे— ( २२५।२-४ )

‘त्रीणि सञ्चयनस्यार्वाक् तानि त्वं शृणु सांप्रतम् ।  
यत्र स्थाने भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥  
एकोद्दिष्टं ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः ।  
ततः संचयनस्थाने तृतीयं श्राद्धमुच्यते ॥  
पञ्चमे सप्तमे तद्वदष्टमे नवमे तथा ।  
दशमैकादशे चैव नव श्राद्धानि तानि च ॥’ इति ।

नवसङ्ख्याकान्युक्तानि भविष्यपुराणे—

‘नवसप्तविंशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् ।  
आद्यन्तयोर्वर्णयोस्तु षडित्याहुर्महर्षयः ॥’ इति ।

बह्वचपरिशिष्टे—

‘अनुदकमधूपं च गन्धमात्यविवर्जितम् ।  
नवश्राद्धममन्त्रं च पिण्डोदकविवर्जितम् ॥’

—अनुदकमध्यरहितम् । पिण्डोदकं प्रत्यवनेजनोदकम् ।

शातातपः—

‘सूतके मृतके प्राप्ते द्वितीयं मृतकं यदि ।  
पिण्डदानं प्रकर्त्तव्यं वृषोत्सर्गं तथैव च ॥  
आरब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये देज्जननं भवेत् ।  
तथैवांशौचपिण्डांस्तु शेषान्दद्याद्यथाविधि ॥’ इति ।

यत्तु स्मृत्यन्तरेऽपि—

‘न हन्यात्सूतकं कर्म द्वादशैकादशाहिकम् ।  
शुद्धो वा यदि वाऽशुद्धः कुर्यादेवाविचारयन् ॥’ इति ।  
तन्मूलं मृग्यम् ।

१ मूले त्वङ्गिरोवचनवदेव पाठः ।



दशाहमध्वे दर्शपाते ऋष्यशृङ्गः—

‘आशौचमन्तरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम् ।  
समाप्तिं प्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः ॥

भविष्यपुराणेऽपि—

‘प्रवृत्ताशौचतन्त्रस्तु यदि दर्शं प्रपद्यते ।  
समाप्य चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाचरेत् ॥’

—अशौचसमाप्तिपर्यन्तं प्रत्यहं स्नानमाचरेदित्यर्थः ।

पठनीसिरपि—

‘आद्यन्दावेव कर्तव्याः प्रेतपिण्डोदकक्रियाः ।  
द्विरन्दवे तु कुर्वाणः पुनः श्रावं समश्नुते ॥’

मातापितृविषये तु गालवः—

‘पित्रोराशौचमध्वेऽपि यदि दर्शः समापयेत् ।  
तावतैवोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येन्न्यहात्परम् ॥’

यत्तु गौतमः—

‘अन्तर्दशाहं दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् ।

पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डं जलाञ्जलीन् ॥’ इति ।

तथ्यहान्तर्दर्शपरम्—इति पितामहचरणाः । कालादर्शेऽप्येवम् ।

यत्तु—मदनो गौतमीयमौरसपुत्रपरं, गालवं त्वनौरसपरमिति; तत्र ।  
वैपरीत्यस्यापि संभवेन विनिगमनाविरहात् । यदपि स एव माधव-  
निर्णयामृतकारौ च गालवमापद्विषयमाहतुः, तदपि न; मानाभावात् ।  
अहमध्वे आपदि तदुत्तरं च तदभावे गौतमीयस्यापद्विषयतया वैपरीत्य-  
स्यापि सुवचस्त्वेन विनिगमनाविरहतादवस्थ्यात् ।

मत्स्यपुराणे—

‘दशाहानन्तरं पुत्रो वृषोत्सर्गस्य पूर्वकम् ।

आरभ्येत शुचिर्भूत्वा श्राद्धमेकादशेऽहनि ॥’

वृषोत्सर्गं कृत्वेत्यर्थः । वृषोत्सर्गप्रयोगस्तु श्राद्धमयूखे ( पृ. १३२-  
१३७ ) उक्तः । स्त्रीविषये—



‘पतिपुत्रवती नारी भर्तृरग्रे मृता यदि ।

वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां तु दद्यात्पयस्विनीम् ॥’

( ग. पु. २।६।१३१ ) इति विशेषः ।

वृषोत्सर्गादपि पूर्वं विष्णुतर्पणमुक्तं गारुडे—( २।४०।१६-१८ )

‘पूर्वं तु तर्पणं कार्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकैः ।

सर्वोपध्यक्षतैर्मिश्रं विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत् ॥

कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैरपि च वैष्णवैः ।

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन् ॥

अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।

अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमुक्तिप्रदो भव ॥’ इति ।

पैठीनसिः—

‘एकादशेऽहि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् ।

चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक् पृथक् ॥’

लौगाक्षिः—

‘आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि ।

कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः ॥’

आद्यं श्राद्धमिति सर्वैकोद्दिष्टप्रकृतिभूतम् ।

याज्ञवल्क्योऽपि—( १।२५६ )

‘सृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् ।

प्रातिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ॥’

—आद्यमेकादशेऽहनीत्यनेनाद्यदिनप्राप्तयोराद्यमासिकाद्यवार्षिकयो-  
रेकादशाह उत्कर्षो विधीयते ।

१ स्त्रीणां चैव वृषोत्सर्गं कुर्यादेकादशेऽहनि ॥ वृषोत्सर्गं विना प्रेतः पिशाच-  
त्वात् न मुच्यते । पुमांश्चाप्यथ वा नारी विधवा सधवापि वा ॥ (आश्व. २०।२६-  
२७) इत्याश्वलायनीयं तु बह्वचविषयम्, पतिपुत्रवतीभिन्नविषयं वा बोध्यम् ।

२ निर्णयसिंधौ स्मृतातपः—‘अन्तर्दशाहे मरणात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि ।  
प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदाने यथाविधि ॥’ मातुः पक्षिणीमध्ये पितुरेकादशाहं  
च कुर्यात् । इति प्रक्षिप्तमत्र दृश्यते ।



## अथ मृताग्निहोत्रप्रकारः ।

कारिकासु—

‘मृताग्निहोत्रं होतव्यं प्राग्दाहात्तत्र कथ्यते ।  
प्राचीनावीतिना सर्वं शंस्यमेवोद्धरेत् खरे ॥’

—शंस्य आहवनीयः ।

‘सादनाभावतः कूर्चस्थापनं न भवेदिह ।  
प्रागग्रैर्दक्षिणाग्रैश्च तृणैः शंस्यपरिस्तृतिः ॥  
पर्युक्षणं च तस्यैव कार्यमत्राप्रदक्षिणम् ।  
नय्यादक्षिणतो भस्म निरुह्योष्णं च सन्धिनीम् ॥  
दुग्धं भस्मन्यधिभित्त्यावज्येतासेकवर्जितम् ।  
उद्धासयेत्तदासाद्य दक्षिणा सुक्स्ववं ततः ॥  
प्रताप्य प्रैषरहितं तत्पयः सकृदुन्नयेत् ।  
धारयेत्समिधं त्वधो नय्यं दक्षिणतो नयेत् ॥  
तूष्णीं समिधमाधाय सव्यं जानु निपात्य च ।  
अपसव्यं सुचं कृत्वा सकृत्सर्वं विनिक्षिपेत् ॥  
ततः कृष्णाजिनेऽस्थीनि पुरुषाकारवज्र्यसेत् ।  
ऊर्णाभिश्छादयेत्तानि घृतेनाभ्यज्य पूर्ववत् ॥  
पात्राणि योजयित्वा तं दहेन्नेताग्निभिस्ततः ॥’ इति ।

इदं च मृताग्निहोत्रं देशान्तरान्मृतकलेवरागमनानन्तरं हुत्वा कलेवरं दग्धव्यमिति केचित् । अन्ये तु प्राकृताग्निहोत्रस्थाने मृताग्निहोत्रस्य श्रुत्यादावुपदिष्टत्वात् कलेवरस्यास्थनां वा गृहगमनपर्यन्तं प्रतिदिनं सायं-प्रातर्यथोपदिष्टं होतव्यमिति वदन्ति ।

दाहे यद्यपि ‘आहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्च’ इत्यविशेषणाभयः श्रुतास्तथापि ‘तयोर्यः पूर्वं म्रियते, तस्य त्रेतायां पितृमेधः संपद्यते’ इति सूत्रात्,

‘आहिताभ्योश्च दंपत्योर्यश्चादौ म्रियते शुचिः ।

तस्य देहः सर्पिडैस्तु दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ॥’ इति ।

१ खरो नाम दक्षिणस्य हविर्धानस्य पुरस्तान्मृदं प्रक्षिप्य निष्पादितो देश पात्रप्रयोगार्थः ( तै. सं. भा. १।४।२ ) । २ नय्यां गार्हपत्यः ।



‘पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकिकाग्निना ।

अनाहिताग्निदेहस्तु दाहो गृह्याग्निना द्विजैः ॥’

इति ब्रह्मपुराणवचनाच्च त्रेताया एव दाहसाधनता, न सम्भ्यावसंध्ययोः ।

सम्भ्यावसंध्यावाहिताग्नेर्देहनकर्मणि न प्रयुज्येते । ‘चिताप्रदेशात्प्रागुदीच्यां दिशि पंच प्रक्रमानतिक्रम्योत्सृजति’ इति शाट्यायनिवचनात् ।

स्त्रीमरणे छन्दोगपरिशिष्टे विशेषः—( ३।४।७ )

‘अनयैवावृता नारी दग्धव्याऽपि व्यवस्थिता ।

अग्निप्रदानमंत्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥’

—व्यवस्थिता साध्वी । आवृत्प्रकारः । असाध्वी तु केवलाग्निभिः ।

पात्राणि तु चितेरुत्तरतः समीपे तदग्न्येकदेशेन पृथग्दग्धव्यानि ।

‘अतिनिन्दिता तु केवलाग्निभिरपि न दग्धव्या’ इति तद्वृत्तौ ॥

एवं अनेकभार्यस्य ज्येष्ठायां जीवत्यां सहाहिताग्निर्द्वितीया तृतीयाऽपि स्त्री गार्हपत्यैकदेशेन त्रिभिर्वाऽग्निभिर्दग्धव्या,

‘तस्मान्नयैकदेशेन दग्धव्या पूर्वमारिणी ।

पत्नी ज्येष्ठेतरा वाऽपि यज्ञपाश्वे निरूपितम् ॥’

तथा—‘स्त्रीमात्रमविशेषेण दग्धव्यं वैदिकाग्निभिः ।’

इत्युभयथा वचनसद्भावात् ।

वैदिकाग्निभिर्दाहपक्षे च ततो ज्येष्ठया सह पुनराधानम् । आधानोत्तरकाले या विवाहिता स्त्री सा तु वैदिकाग्निभिर्न दग्धव्या; किंतु गार्हपत्यैकदेशेनेति केचित् । परे तु स्मार्त्ताग्निसत्त्वे तेन, तदभावे लौकिकेनेत्याहुः ।

विशेषमाह मंडनः—

‘अग्नावरण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि ।

प्रेतं स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वा चोपावरोहणम् ॥

घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रियाम् ॥’

‘उपावरोह जातवेद इमं प्रेतं स्वर्गाय लोकाय नय प्रेताहुती चात्य-  
जुष स्वाहा’ इत्युपावरोहणमन्त्रः ॥

अग्निनाशे यजमानमृतौ कारिकायां विशेषः—

‘अग्निनाशे मृतिश्चेत्स्यादाहिताग्नेस्तदोच्यते ।

नयोर्यत्मुक्तं मथित्वैनं संस्कुर्युस्तदभावतः ॥



तद्वस्मस्पृष्टकाष्ठेन मथित्वा निर्दहेच्च तम् ।  
नष्टेष्वाग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी भ्रियेत चेत् ॥  
आहरेदरणीद्वन्द्वमाधानोक्तं च तद्यथा ॥ '

अथ विच्छिन्नाग्नेरुत्सृष्टाग्नेश्चाधानमाह मंडनः—

' विच्छिन्नमग्निमुत्सृष्टपावकं विधुरानलम् ।  
आहिताग्निं मृतं दग्धुं त्रेताभ्युत्पत्तिसिद्धये ॥  
भारद्वाजादयः प्राहुः प्रेताधानविधिं पृथक् ॥  
प्राचीनावीतवान् कुर्यादग्न्यागारे तथा खरान् ।  
तत्राग्नीनां च संस्कृत्यै प्रेतं स्वाम्यासने क्षिपेत् ।  
नर्यालयेऽरणी स्थाप्य मन्थेद्यस्येति मंत्रतः ॥ '

' यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानस्य मांसम् ।  
ध्यायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु ॥ '

इति मन्थनमंत्रः ।

' तूष्णीमुद्धृत्य शंस्याग्निं संस्कृतेन च सर्पिषा  
शंस्ये हुत्वा सुचा तूष्णीं गृहीत्वा द्वादश सुवान् ॥  
दशिणाग्निं समुद्धृत्य निर्दहेत्पूर्ववच्छवम् ।

उत्सन्नाग्नेररणिसद्भावे एवम् । अरण्योरभावे तु—

' उत्सन्नाग्नेर्मृतस्याथ न स्तः पूर्वं यदारणी ।  
आनीयान्ये तयोः प्रेतपाणिं स्थाप्याथ दक्षिणम् ॥  
अयं त इति पुत्रादिः समारोप्य यजुर्जपेत् ।  
मृताभ्याधानवत्सर्वं कृत्वा तं पूर्ववद्देहत् ॥  
अनाहिताग्नेरप्येवं मृताधानं यथोदितम् ॥ '

अनाहिताग्नेरिति तु स्मार्ताग्निकातीयादिपरम्, तेषां स्मार्ताधाना-  
न्नानात् । यदि मृते भर्तरि भार्या भ्रियेत, तदाऽरणी संपाद्य मंत्रवदग्निं  
निर्मथ्य तेनाग्निना पात्रैर्विना दाहः । एवं भार्यामरणोत्तरकालं मृतस्य  
पुंसो निर्मथ्येनैव दाह इति कात्यायनानुसारिणः ।

अथ प्रेतक्रियायां निषिद्धकालः ।

तत्र गार्ग्यः—

' प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् ।  
आशौचमध्ये क्रियते पुनः संस्कारकर्म चेत् ॥



शोधनीयं दिनं तत्र यथासम्भवमेव तु ।  
 आशौचविनिवृत्तौ च पुनः संस्क्रियते मृतः ॥  
 संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि ।  
 प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् ॥  
 कृष्णपक्षस्तु तत्रापि वर्जयेच्च दिनक्षयम् ॥ ' इति ।

प्रेतश्राद्धं प्रकृत्य गार्गिः—

‘नंदायां भार्गवदिने चतुर्विंश्यां त्रिपुष्करे ।  
 तत्र श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ॥ ’

त्रिपुष्करयोगश्च रत्नमालायामुक्तः—

‘विषमचरणं धिष्ण्यं भद्रातिथिर्यदि जायते  
 सुरगुरुशनिक्षमापुत्राणां कथंचन वासरे ।  
 मुनिभिरुदितः सोऽयं योगस्त्रिपुष्करसंहित-  
 स्त्रिगुणफलदो वृद्धौ नष्टे हते च मृतेऽपि वा ॥ ’

प्रेतक्रियां प्रकृत्य महाभारते—

‘नक्षत्रेण न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः ।  
 न प्रौष्ठपदयोः कार्यं न चाग्नेये च भारत ॥ ’

१ नारदादिभिस्तु त्रिपुष्करयोगे गुरुवारस्थाने रविवार उक्तः, तथा च नारदः  
 —‘(ना. सं. ६।५५) अर्काकिंभौमवारे चेद्भद्रायां विषमांग्रिभम् । त्रिपुष्करस्त्रि-  
 गुणदो द्विगुणो यमलांग्रिभे ॥ ’ इति । युक्तं चैतत् शन्यारवारयोरिव तस्यापि  
 पापवारत्वात् । उक्तश्रीपतिवचसो मूलं तु—‘भद्रातिथिशनीज्यारवारे चेद्विषमां-  
 ग्रिभम् । त्रिपुष्करं त्रिगुणं द्विगुणं ह्यङ्ग्रिभे मृतौ ॥ ’ इति कश्यपवाक्यमेव । तत्र  
 कदाचित् ‘शनीनार’ इति पाठे श्रीपतिना भ्रमादीज्य इति दृष्टं स्यात्, रविरेव  
 वेज्यपदेनोक्तः स्यात्, अन्यथा त्वेकवाक्यता दुष्करैव ।

दैवादत्र मृतौ परिहारमाह वसिष्ठः—‘त्रितयं हि गवां दद्याद्दोषत्रितयापनुत्तये  
 विद्वान् । द्वितयं द्विपुष्करेऽपि च तिलपिष्टैर्विप्रमुख्येभ्यः । ’ इति ।



## प्रेतक्रियायां निषिद्धः कालः

५७

ज्योतिःपराशरः—

‘साधारणध्रुवोऽग्रे मैत्रेषु न शस्यते मनुष्याणाम् ।

प्रेतक्रियायां कथञ्चिन्निपुणक्रे यमलधिष्ण्ये च ॥’

—साधारणे कृत्तिकाविशाखे । ध्रुवाणि उत्तरात्रयं रोहिणी । उग्राणि  
पूर्वात्रयं भरणी मघा च । मैत्राणि मृगचित्रानुराधारेवत्यः । यमलधिष्ण्यं  
धनिष्ठा ।

वाराहपुराणे—

‘चतुर्थाष्टमगे चंद्रे द्वादशे च विवर्जयेत् ।

प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृते परिधे तथा ॥

करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिनेऽपि च ।

त्रयोदश्यां विशेषेण जन्मतारात्रये तथा ॥’

—जन्मतारात्रयमाद्यदशमैकोनविंशानि नक्षत्राणि ।

१ त्रिपुष्करे त्रिपादनक्षत्रे । तत्रान्येषामुक्तेष्वन्तर्भूतत्वात् पुनर्वसुरवशिष्टः ।  
यमलधिष्ण्ये द्विपादनक्षत्रे इति हेमाद्रिः । तेष्वप्यवशिष्टं धनिष्ठात्र गृह्यते ।

यद्यपि तिथिवारयोग एवोक्तदोषो न केवलत्रिपादद्विपादेषु, न दोषस्त्वक्ष-  
मात्रतः ( ६।५६ ) इति नारदवाक्यात्, तथापि ‘त्रिपातक्षत्रमरणे शान्ति  
यो न करोति च । न गेहं वा सन्त्यजति सकुटुम्बो विनश्यति ॥’ इति कश्यपा-  
युक्तदोषान्तरस्य सत्त्वात्तत्रापि परिहारः कर्तव्य एव । स च गृहावासत्यागोत्तर-  
मेव कार्यः । त्यागकालश्च मृत्युस्थानचक्रपूर्वकमेवं सङ्गृहीतः कैश्चित् ‘सूर्यक्षा-  
दीशदिक्तो विषमसमदिशः साभिजिद्वेदरामैः सव्यैरन्तर्बहिर्भैक्षिचरणवसुभात् पञ्चकं  
यत्र तिष्ठत् । मृत्योः स्थानं विदित्वा सकलतनुभृतस्तत्र वासं न कुर्युः षण्मासार्धा-  
र्धमासं तदुपरि विधिवच्छान्तिकात् स्वस्ति भूयात् ॥’ इति । अत्र मूलं स्मृतिसार-  
समुच्चये नारदः—‘आदित्याक्रान्तमं यत्र अन्तरा गणयेच्चतुः । बहिर्बहून् गणयेद्यत्र  
मृत्युरत्र प्रतिष्ठितः ॥ त्रिपातक्षत्रमत्र स्याद्गुणनायां यदान्तरा । तद्देहेऽरिष्टमुदितं  
मृते सति न संशयः ॥’ ( २।१।६०—६१ ) इति । एतेन मृत्योर्बहिः स्थाने न  
गृहावासत्यागः, किन्तु केवलं शान्तिरेव; अन्तःस्थाने तूभयमपीति ज्ञेयम् ।

शान्तिस्तत्रैव—‘परं मृत्यो भवेन्मन्त्रः समिदाज्यचरुत् हुनेत् । मृत्युशान्तिरियं  
प्रोक्ता गेहारिष्टं विनश्यति ॥ तिलान् जुहोति मंत्रेण त्र्यम्बकेण यथाविधि । क्रोधं  
च जुहोत्येव शं नः पर्जन्य इत्यपि ॥ कृसरानं जुहोत्यन्ते गेदानं च प्रयच्छति ।  
मृत्युर्नेश्यति तद्देहे मृत्युशान्तिर्यतो भवेत् ॥’ इति ।



कश्यपः—

‘भरण्यार्द्रा मघाऽऽश्लेषा मूलं त्रिचरणानि च ।  
प्रेतकृत्येऽतिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पंचकम् ॥  
फल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनुराधा पुनर्वसु ।  
जषाढे द्वे विशाखा च भानि द्विचरणानि च ॥  
एतानि किञ्चिद्दुष्टानि वर्जयेत्सति संभवे ।’ इति ।

यदा षोडशश्राद्धानि एकादशाहादिषु स्वस्वकालेषु क्रियन्ते, तदा  
नन्दादिकं न वर्जनीयमित्याह गोभिलः—

‘नन्दायां शुक्रवारे च चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु ।  
एकादशाहप्रभृति नैकोद्दिष्टं निषिध्यते ॥’ इति ।

प्रेतक्रियायामुपस्थितायां दैवाद्युगादिप्रभृतीनामुपनिपाते दिनशोधनं  
विनैव तत्र प्रेतक्रिया कार्या ।

तथा च स्मृत्यन्तरे—

‘युगमन्वादिसंक्रातिदर्शे प्रेतक्रिया यदि ।  
दैवादापतिता तत्र न नक्षत्रादिशोधनम् ॥’  
इति प्रेतक्रियायां निषिद्धकालाः ।

अथ प्रोषितमरणे विशेषमाह मदनरत्ने वृद्धमनुः—

‘प्रोषितस्य तथा कालो गतश्चेद्द्वादशाब्दिकः ।  
प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत् ॥  
पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव वा गतिः ।  
तस्य पूर्ववयस्कस्य विंशत्यब्दोर्ध्वतः क्रिया ॥  
ऊर्ध्वं पंचदशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता ।  
द्वादशाब्दत्तरादूर्ध्वमुत्तरे वयसि स्मृता ॥  
चांद्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत्कुच्छ्राणि वा सुतैः ।  
कुशैः प्रतिकृतिं तस्य दग्ध्वाऽऽशौचादिकाः क्रियाः ॥’ इति ।

कार्या इति शेषः । कुशैरित्यस्थनामभ्युपलक्षणम् ।

छंदोगपरिशिष्टे—( ३।४।२१३ )

‘विदेशमरणेऽस्थीनि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा ।  
दाहयेद्गर्हिषाऽऽच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥



अस्थनामलाभे पर्णानि शकलान्युक्त्या वृता ।  
दाहयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥ ' इति ।

अनाहिताग्नेस्तु विशेषो ब्राह्मे—

‘अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः ।  
तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि ॥  
शैतस्त्रिभिः षष्ट्यधिकैः शरवृन्तैर्विधानतः ।  
वेष्टितव्यस्तथा यत्नात्कृष्णसारस्य चर्मणा ॥  
ऊर्णासूत्रेण बध्वा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा ।  
सर्पिषैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाऽग्निना ॥  
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सर्वांधवैः ।  
एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ’ इति ।

—पर्णशरं पर्णः पलाशस्तस्य शरः पर्णत्रयवृन्तं तत्प्रतिरूपकमित्यर्थः ।  
इदं च त्रिरात्रं दशाहादिसंपूर्णाशौचकालानन्तरं कार्यम् । दशाहमध्ये  
तु तच्छेषेणैव । अनाहिताग्नेरतीतसंस्कारे दाहदिनात्सर्वेषां सर्पिष्ठादीनां  
संपूर्णमेव । अनाहिताग्नेस्त्वतीतसंस्कारे पत्नीपुत्रयोरगृहीताशौचयोः  
कर्माधिकारिणोस्त्रिरात्रम् ।

तथा च गृह्यपरिशिष्टे—( ३।१३ ) ‘अथातीतसंस्कारः । स चेदंत-  
र्दशाहं स्यात्तत्रैव सर्वं समापयेदूर्ध्वमाहिताग्नेर्दाहात्सर्वमाशौचं कुर्यात् ।  
गृहीताशौचयोः कर्माङ्गं त्रिरात्रम् ’ इति । मरणसंदेहे अगृहीताशौचत्वं,  
मरणानिश्चये गृहीताशौचत्वं बोध्यम् ।

अत्र केचित्—पत्नीपुत्रग्रहणात् ‘दग्ध्वा ’ इति क्त्वाप्रत्ययादाहकर्तृ-  
मात्रविषयत्वेन प्रतीयमानस्यापि त्रिरात्रस्य समानकर्तृकाविवक्षया पत्नी-  
पुत्रविषयत्वं कल्पनीयमित्याहुः । तन्न; गृह्यपरिशिष्टे कर्माङ्गत्वेनैव त्रि-  
रात्रविधानादाहकर्तुरेव त्रिरात्रं प्रतीयते । तेन दग्ध्वेति क्त्वाप्रत्ययोक्त-  
समानकर्तृकत्वविवक्षैव युक्ता । पत्नीपुत्रग्रहणं तु कर्तृमात्रोपलक्षणम् ।

अत एव विश्वादर्श—‘प्रतिकृतिदहने त्वग्निदे स्यात्त्रिरात्रम् ’ इत्युक्तम् ।  
अन्यथा मरणानिश्चये पुत्राभावे कृताशौचाया अपि पत्न्याः पुनःसंस्कारे  
त्रिरात्रम्, पौत्रादेर्दाहं कर्तुं शौचमिति सकलशिष्टाचारविरुद्धं चापद्येत ।



यत्तु-मम त्वेवं प्रतिभातीत्यादिना गृह्यपरिशिष्टानां श्रावसपक्षे गृहीता-  
शौचानां वा पुत्रादीनां सपिण्डानां त्रिरात्रमाशौचमित्युक्तं, तदप्य-  
युक्तम्, 'पितरौ चेत्' इत्यनेन पुत्राणां दशरात्रविधानात् ।

यद्यपि चेदं पर्णशरदाहातिरिक्ते सावकाशं, पर्णशरदाहनिमित्तं च  
त्रिरात्रं पुत्रातिरिक्तसपिण्डानां सावकाशमिति न परस्परं बाध्यबाधक-  
भावे विनिगमकमस्ति, तथापि त्रिरात्रसमुच्चितं दशरात्रं कार्यम् । समु-  
च्यस्तु दशाहेन त्रिरात्रस्य प्रसंगसिद्ध एव । एवं च शिष्टाचारोऽप्यनु-  
गुणीभवतीति । अगृहीताशौचानां सपिण्डानामपि त्रिरात्रम् ।

तदाहांगिराः—

‘देशान्तरमृतं श्रुत्वा नाशौचं चेत्कथञ्चन ।

कालात्ययेऽपि कुर्वीत दाहकाले दिनत्रयम् ॥’

समानदेशे त्वगृहीताशौचानां सपिण्डानां स्वाशौचकालोत्तरत्वमात्र-  
निर्णये ‘मासत्रयं त्रिरात्रं स्यात्’ इत्यादिना कालविशेषे विहितस्य  
त्रिरात्रैर्माससंख्याविशेषाज्ञानादप्राप्तावपि प्रथमोपस्थितं त्रिरात्रमेव  
कार्यम् । स्वाशौचकालोत्तरत्वानिश्चये दशाहान्तर्गसदिनविशेषजातत्व-  
निश्चये यच्छेषमित्येव । दिनविशेषानिश्चये तु शेषरूपापवादाप्रवृत्त्या  
दाहरूपोत्सर्गस्यैव प्रवृत्तिः । गृहीताशौचानां स्नानमात्रमिति ।

अमुकमेवार्थं प्रायः स्मृत्यर्थसारकारः संजग्राह—‘गृहीताशौचस्य  
पुत्रस्य पत्न्याश्च त्रिरात्रम् । पत्नीपुनःसंस्कारे पत्युश्चैवम् । अगृहीताशौ-  
चानां सपिण्डानां त्रिरात्रम् । गृहीताशौचानां स्नानमात्रम्’ इति दिक् ।

अथ पलाशप्रतिकृतिः ।

तत्र कल्पतरौ—

‘अस्थीनि चेन्न लभ्यन्ते प्रोषितस्याग्निहोत्रिणः ।

पलाशपत्रवृन्तानां षष्ठ्याधिकशतत्रयम् ॥

कृष्णाजिने नराकारं कृत्वा वेष्ट्याजिनेन तम् ।

ऊर्णासूत्रेण बध्नैव यवपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥

निर्दिश्य देवदत्तोऽयं नाम्नेत्याहाश्चलायनः ।

अङ्क्त्वाज्येन दहेत्कृत्वा मृदिगंधं संचयार्थतः ॥’ इति ।



मृद्भिर्ममिति यवपिष्टलेपोत्तरं मृदाऽप्यालिप्य दग्ध्वाऽस्थानां स्थाने तां  
दग्धां मृदं संचिनुयादित्यर्थः ।

अत्रेत्यं पलाशवृंतविभागः—

‘अशीत्यर्द्धं शिरःस्थाने ग्रीवायां दश योजयेत् ।

उरसि त्रिशतं दद्याद्विशतिं जठरे न्यसेत् ॥

बाहुभ्यां तु शतं दद्यादद्यादंगुलिभिर्वश ॥ ’

तृतीया सप्तम्यर्थे ।

‘द्वादशार्द्धं वृषणयोरष्टार्द्धं शिश्न एव तु ॥

ऊरुभ्यां तु शतं दद्याच्चिशतं जानुजंघयोः ।

पादांगुलीषु दशधा एतत्प्रेतेषु लक्षणम् ॥ ’ इति ।

तथा—( ग. पु. प्रे. खं. ४०।४९-६४ )

‘नालिकेरं शिरःस्थाने तुम्बं दद्याच्च तालुके ।

पञ्चरत्नं मुखे दद्याज्जिह्वायां कदलीफलम् ॥

आन्त्रेषु नालिकं दद्याद्वालकं घ्राण एव च ।

वसायां मृत्तिकां दद्याद्गोमूत्रेण तु मूत्रकम् ॥

गंधकं धातवो ज्ञेया हरितालं मनःशिला ।

पारदं रेतसः स्थाने पुरीषे पित्तलं तथा ॥

मनःशिला तथा गात्रे तिलकलकं च संधिषु ।

यवपिष्टं तथा मांसे मधु शोणितमेव च ॥

१ ‘अध्यर्घशतं काये सन्निधनी द्विपञ्चाशे च विंशे चोत्त द्विपञ्चविंशे शेषं तु  
शिरस्युपरि दध्यात् ’ ( ऐ. ब्रा. ३२।७-८ ) इति श्रुत्युक्तो विभागस्त्वाहिताग्नि-  
विषयः, ‘य आहिताग्निः प्रवसन् म्रियेत ’ इत्युपक्रमदर्शनात् ।

२ पञ्चरत्नं प्रयोगरत्ने—‘कनकं होरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् । पञ्चरत्न-  
मिति प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥ ’ इति ।

३ नालिकं कमलादिदण्डः, शाकविशेषो वा ‘पुंसि क्लीबेऽथ नालीकं नालिके  
नलिकं नलम् । ’ इति कल्पद्रुः । वालकमुशीरम् ।

४ कल्पयेदिति शेषः ।

५ वाते मनःशिलाम् । पित्ते हरितालम् । कफे समुद्रफेनम् ।—इति  
नारायणभट्टाः ।

६



केशेषु वै वटजटा त्वंचायां च मृगत्वचम् ।  
 कर्णयोस्तालपत्रं च स्तनयोश्चैव गुञ्जिकाः ॥  
 नासायां शतपत्रं च कमलं नाभिमंडले ।  
 वृन्ताकं वृषणद्वन्द्वे लिङ्गे स्याद्दर्जरं शुभम् ॥  
 घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात्कौपीने च त्रपु स्मृतम् ।  
 मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुङ्कुमेन विलेपनम् ॥  
 कर्पूरागुरुधूपैश्च शुभ्रैर्माल्यैः सुगंधिभिः ।  
 परिधानं पटुसूत्रं हृदये रुक्मकं तथा ॥  
 ऋद्धिवृद्धी भुजौ द्वौ च चक्षुर्भ्यां च कपर्दकौ ।  
 सिन्दूरं नेत्रकोणेषु तांबूलाद्युपहारकैः ॥  
 सर्वौषधियुतं प्रेतं कृत्वा पूजां यथोदिताम् ।  
 सामिके चापि विधिना यज्ञपात्रं न्यसेत् क्रमात् ॥  
 'शिरो मे श्रीः' 'पुनंतु मा' 'इमं मे वरुणेति' च ।  
 प्रेतस्य पावनं कृत्वा शालग्रामशिलाजलैः ॥  
 विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौः पयस्विनी ।  
 तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा ॥  
 सप्तधान्यं क्षितिर्गौश्च एकैकं पावनं स्मृतम् ।  
 तिलपात्रं ततो दत्त्वा पददानं तथैव च ॥  
 ततो वैतरणी देया सर्वाभरणभूषिता ।  
 कर्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्त्यर्थमात्मनि ॥  
 प्रेतमोक्षं ततः कुर्याद्भूदि विष्णुं प्रकल्प्य च ।  
 ॐ विष्णुरिति संस्मृत्य प्रेतं तं मृत्युमेव च ॥  
 अग्निदाहं ततः कुर्यात्सूतकं च दिनत्रयम् ॥'

१ 'आपं चैव हलन्तानाम्' इति भागुरिमतेनाम् ।

२ ऋद्धिवृद्धी गौडे प्रसिद्धे । तल्लक्षणं राजनिघण्टे ( १।२९-३० ) 'ऋद्धि-  
 वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले । श्वेतरोमान्वितः कन्दो लताजातः  
 सरन्ध्रकः ॥ तुल्यग्रन्थिसमा ऋद्धिर्वाभावर्तफला च सा । वृद्धिस्तु दक्षिणावर्तफला  
 प्रोक्ता महर्षिभिः ॥' इति ।

३ 'शिरो मे' ( माध्यं. सं. २०।५ ) 'पुनन्तु' ( मा. सं. १९।३९ )  
 'इमं मे वरुण' ( मा. सं. २१।१ ) ।



इत्थं प्रतिकृतिकरणानंतरं पात्रप्रतिपत्तिविषये क्रात्यायनः— 'केश-  
श्मश्रुलोमखनिकृन्तनानि कृत्वा विपुरीषं चेच्छन् केशादीन्निस्त्राय  
सर्पिषाऽन्तरङ्कत्वा चित्तवेनमादधाति । कृष्णाजिनमास्तीर्य प्राविशरसं  
सप्तसु प्राणायतनेषु सप्त हिरण्यशकलान्प्राश्रयति, मुखे प्रथमं दक्षिणहस्ते  
जुहू\* सादयति घृतपूर्ण\*, स्फ्यं चोपभृत\* सन्ध्ये, उरसि ध्रुवां,  
मुखेऽग्निहोत्रहवर्णी, नासिकयोः सुत्रौ, कर्णयोः प्राशित्रहरणे, शिरसि  
चमसप्रणीताप्रणयनं, कपालादि चैके, पार्श्वयोः शूर्पे, उदरे पात्री\*  
समवत्तधानीं पृषदाज्यवती\*, शिभ्रे शन्याम्, अरणी वृषणयोः,  
अंतरोरु यज्ञपात्राण्यन्यानि, अप्स्रवहरणं मृन्मयाश्ममयानाम्,  
अयस्मयानि ब्राह्मणाय दद्यात्' इति ।

केशश्मश्रुखलोमकृन्तनादिकं शवस्य । प्रतिकृतौ तु लोपः । सप्त  
प्राणायतनानि मुखनासाक्षिकर्णरंध्राणि ।

श्रौतपात्रप्रतिपत्तिस्तु—

‘एवमेवाहिताग्नेस्तु पात्रन्यासादिकं भवेत् ।’ ( २३।१ )

इति कातीयोक्तेः स्मार्त्तपात्रप्रतिपत्त्यनंतरं कर्त्तव्या । स्मार्त्तानां प्रति-  
पत्तिस्त्वेवम् — दक्षिणशिरसं शवं चित्तौ निधाय मुखे हिरण्यं, शिरसि  
चमसं, पार्श्वयोः शूर्पे, अण्डयोररणी उदगग्रे । प्रोक्षणीपात्रादीनामन्तरे-  
णोरुप्रक्षेपः । चैत्रोविलीकयोश्च । मृन्मयादीनामभसि । ततः शिरः-  
प्रदेशेऽग्निं दत्त्वा सुवेण ‘अस्मात्त्वं’ इत्याहुतिं हुत्वा दक्षिणनासिकायां  
सुवं प्रक्षिपेत् । स्फ्यं च दक्षिणहस्ते । शेषमाहिताग्निवदिति ।

मृताहाजाने दीपिकायाम्—

‘... अत्र ग्रस्य निधनं चान्यत्र चेज्जायते ।

ऊर्ध्वं पंचदशाब्दतः प्रतिकृतिं संस्कृत्य तस्याचरं—

दन्स्यं कर्म स एव दाहदिवसः स्यादाचिके कर्मणि ॥’ इति ।

१ पालाशप्रतिकृतिविधिविशेषश्च विधानमालायां द्रष्टव्यः ।

२ चत्रं वह्निमन्थनोपयुक्तो दण्डः, ओविलीकं तद्धारकस्तिर्यक्काष्ठविशेषः,  
‘अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चत्रं स्याद्वादशाङ्गुलम् । ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थन-  
यन्त्रकम् ॥’ ( १।७।५ ) इति कर्मप्रदीपे । स्फ्यः काष्ठखलः ।

३ कर्मप्र. ३।२।१३ माध्यं. सं. ३५।२२



मृताह्नाने तु पैठीनसिः—

‘अनभिमत उत्क्रान्तेराशौचाद्विज्ञादिषु ।

दाहादभिमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति ॥’

बृहस्पतिः— ( ग. पु. २।४५।१४ )

‘न ज्ञायेत् मृताहश्चेत्प्रमीते प्रोषिते सति ।

मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तदर्शे स्यान्मृताहिकम् ॥’

यत्कर्त्तव्यं तदिति शेषः ।

अत्रैव विषये—

‘आद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽह्नि ।

एकादश्यां तु कर्त्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥’

इति मरीचिवचनात् दर्शो वा एकादशी वा इति विकल्पः  
पक्षाज्ञाने कृष्णः । एकादशीज्ञाने तु तद्रतैकादश्येवेति विशेषः ।

मृताह्नाने मासाज्ञाने तु भविष्यपुराणे—

‘दिनमेव विजानाति मासं नैव तु यो नरः ।

मार्गशीर्षेऽथ वा भाद्रे माघे वाऽथ समाचरेत् ॥’

उभयाज्ञाने तु बृहस्पतिः— ( ग. पु. २।४५।१६ )

‘दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः ।

प्रस्थानदिनमासौ तु ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा ॥’ इति ।

तदज्ञानेऽपि भविष्योत्तरे— ( ग. पु. २।४५।१७ )

‘मृतवार्ताश्रुतेर्ग्राह्यौ तौ पूर्वोक्तक्रमेण तु ॥’ इति ।

पूर्वोक्तसर्वाज्ञाने प्रभासखण्डे— ( २०५।५२ )

‘मृताहं यो न जानाति मासं वाऽपि कथञ्चन ।

तेन कार्यममावास्यां आद्धं माघेऽथ मार्गके ॥’ इति ।

अथ धनिष्ठादिपञ्चकमृतौ शान्तिः ।

( गारुडे— २।४।१७६-७७ )

‘आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम् ।

रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं सर्वदा भवेत् ॥



दाहस्तत्र न कर्तव्यो विप्रादिसर्वजातिषु ।  
दीयते न जलं तत्र अशुभं जायते मृशम् ॥'

ज्योतिर्निबन्धादौ—

‘कुर्यान्न दारुतृणसङ्घमन्तकाशायानं मृतस्य दहनं गृहगोपनं च ।  
शय्यावितानमिहवासवपञ्चकेऽपितद्वदन्ति परतो वसुदैवताद्धात् ॥’ इति ।

—अन्तकाशायानं दक्षिणदिगमनम् । वसुदैवतं धनिष्ठा ।

‘अथवा ऋक्षमध्ये तु दाहश्च विधिपूर्वकः ।  
शवस्य च समीपे तु क्षिप्यन्ते पुत्तलास्ततः ॥  
दर्भमयाश्च चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः ।  
ततो दाहः प्रकर्त्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह ॥  
दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ।  
यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् ॥  
प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः ।  
प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतान्यनुक्रमात् ॥’

तत्रादौ ऋक्षमन्त्रैः पुत्तलानामभिमन्त्रणम् । ततो मृतस्य मुखे पञ्च-  
रत्नप्रक्षेपः । ततः पुत्तलमुखेषु ‘वह वपां जातवेद’ (माध्यं.सं. ३५।२०)  
इति मन्त्रेणाज्याहुतित्रयम् । ततः पुत्तलैः सह दाह इति ।

नक्षत्रमन्त्रास्तु ‘जमया अत्र वसवो रन्त देवाः’ (ऋ. ५।४।६)  
‘तत्त्वा यामि ब्रह्मणा’ (ऋ. १।२।१५) ‘उत नोऽहिर्बुध्न्य’  
(ऋ. ४।८।१०) ‘कद्रुद्राय’ (ऋ. १।३।४६) ‘पूषा गा अन्वेतु’  
(ऋ. ४।८।१९) ।

‘सूतकान्ते तदा पुत्रः कुर्याच्छान्तिकमुत्तमम् ।  
पञ्चकेषु मृतो योऽसौ लभते न गतिं नरः ॥  
तिलान् गाश्च हिरण्यं च तस्योद्दिश्य मृतं दहेत् ।  
भोजनोपानहौ छत्रं हैममुद्रे च वाससी ।  
दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी ॥



नालवृद्धस्य यूनश्च पञ्चकेषु मृतस्य हि ।

विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते ॥' इति ।

१ अत्रायं विशेषः—नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिरेव, न शान्तिकम् । पञ्चकमृतस्याश्विन्यां दाहप्राप्तौ शान्तिकमेव, न पुत्तलविधिः । शान्तिश्च लक्षहोम—रुद्रजपान्यतररूपा यथाविभवं कार्या ।—इति धर्मसिन्धुः । बृहत्प्रयोगरत्ने त्वन्य एव शान्तिविधिरुक्तः— 'एकादशेऽङ्घ्रि सम्प्राप्ते प्रातस्तथाय पुत्रकः । आहृत्य कलशान् पञ्च स्थापयेदक्षमन्त्रतः ॥ सौवर्णा राजतीर्वापि प्रतिष्ठा लक्ष्मणान्विताः । ऋक्षमन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य स्थापयेत् कलशोपरि ॥ पूजां तत्र विधानेन कारयेद्भक्तिपूर्वकम् । ऋक्षमन्त्रैश्च सम्पूज्य गन्धपुष्पैः सधूपकैः ॥ नैवेद्यं कारयेत्तत्र प्रेतोद्देशेन कल्पयेत् । आरात्तिकं ततः पञ्चाद्यथोक्तविधिना ततः ॥ कुम्भाग्रे स्थण्डिलं कृत्वा स्थापयेच्च विभावसुम् । आज्यस्य संस्कृतिं कृत्वा बहिरास्तरणं ततः ॥ ग्रहान् संस्थापयेत्तत्र ह्यधिदेवसमन्वितान् । प्रतिष्ठाप्य ग्रहांश्चैव आज्य-संस्थापनं तथा ॥ इध्माधानं ततः कुर्यादाधारान्तं च होमयेत् । ऋक्षमन्त्रैस्ततो हुत्वा सुवेणाज्याहुतीः पृथक् ॥ ततस्तिलाक्षतैर्होमं ग्रहर्क्षाणां च कारयेत् ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुम्बराय दधनाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै क्रमात् ॥ विधिना श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत् । प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा पूर्णं दद्याच्छुभावहाम् ॥ ग्रहान् सम्पूजयेत्तत्र गन्धपुष्पैश्च धूपतः । शुभेन नारिकेलेन अर्घ्यं दद्याद्विधानतः ॥ ततो दुग्धं समादाय सर्वांषधिसमन्वितम् । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तर्पयेदक्षमन्त्रतः ॥ प्रेताय तर्पणं तत्र ततः प्रेतगणाय च । ततस्तु दक्षिणा देया प्रेतस्य मुक्तिहेतवे ॥ अनेन विधिना वत्स ! कर्तव्यमृक्षपञ्चके । तस्य गेहे भवेच्छान्तिः सुखं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ पुण्याहवाचनं कृत्वा विधिना शान्तिकारकः । 'देवस्यत्वे'ति मन्त्रेण पावमान्या ततः परम् ॥ 'समुद्रज्येष्ठा' मन्त्रेण 'त्रायन्तामि'ति मन्त्रतः । ततः पौराणकैर्मन्त्रैरभिषिञ्चतु मूर्धनि ॥ ततः परं च विप्रैर्मन्यो दानं दद्याच्छुभाप्तये । तिलान् लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा ॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् । ताम्रपात्रस्थितं तैलमीक्ष्य दद्याद्विजन्मने ॥ पूर्वकुम्भे 'कृणुष्व पाज' ( तै. सं. १।२।१४ ) इत्यनुवाकः । दक्षिणे तस्यार्द्धम् । पश्चिमे 'ऋक्षं वाचं' ( माध्यं. सं. ३।६।१ ) । उत्तरे 'वसोः पवित्रं' ( माध्यं. सं. १।२-३ ) । ईशान्ये रुद्रजपः— इति । विधानान्तराणि च तत्रैव द्रष्टव्यानि



अथ रजस्वलापतिमरणे आग्रहेण सहगमनार्थं शुद्धिं न प्रतीक्षेत  
तदा विशेषोऽन्त्येष्टिपद्धतौ--

‘यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान् परित्यजेत् ।  
द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्धये ॥  
मुसलाघातैस्तदस्तृक् सव्रते योनिमण्डलात् ।  
विरजस्कां मन्यमाना स्वे चित्ते तदस्तृक्क्षयम् ॥  
दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्चमृत्तिकया पृथक् ।  
त्रिंशद्विंशति दश च गवां दद्यात्स्वहःक्रमात् ॥  
विप्राणां वचनं लब्ध्वा समारोहेद्ब्रुताशनम् ।  
नारीणां सरजस्काणामियं शुद्धिरुदाहृता ॥’ इति ।

तन्मूलं मृग्यम् ।

गारुडे- ( प्रे. खं. २५।४-२४ )

‘गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते ।  
परं च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥  
एकादशद्वादशाहवृषोत्सर्गविधिं विना ।  
महादानविहीनं च कुमारे कृत्यमाचरेत् ॥  
भूमिनिक्षेपणं बाले आवर्षद्वयमाशिखम् ।  
ततः परं खगश्रेष्ठ ! दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥  
शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखम् ।  
कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिवन्धनात् ॥  
चूडाकर्मणि संजाते विपत्तिस्तु यदा भवेत् ।  
सूतकांते प्रकर्त्तव्यं वृषस्योत्सर्जनं बुधैः ॥  
तत्र दाहः प्रकर्त्तव्य उदकं तत्र निश्चयः ।  
आ मौञ्जिवन्धनाद्विप्रः पञ्चमादिषु चेन्मृतः ।  
केचिदुत्सर्गमिच्छन्ति केचित्पिण्डक्रियां ध्रुवम् ॥  
पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते ।  
वृषोत्सर्गादिकं कर्म कर्त्तव्यमुदकं ततः ॥



अहन्यहनि संप्राप्ते कुर्याच्छ्लाघानि षोडश ।  
 पायसेन गुडेनैव पिंडं दद्याद्यथाक्रमम् ॥  
 व्रतार्वांगेव देयं तु ततः पितृगणस्य च ।  
 स्वाहाकारेण वै कुर्यादिकोद्दिष्टानि षोडश ॥  
 ऋजुर्धर्मैस्तिलैः शुक्लैः प्राचीनावीतिनिश्चितम् ।  
 अपसव्यं च कर्त्तव्यं कृते याति परां गतिम् ॥  
 सुखं दुःखं सदा वेत्ति देही सर्वगतस्त्वह ।  
 परित्यज्य तदाऽऽत्मानं जीर्णं त्वचमिवोरगः ॥  
 अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो वायुभूतः क्षुधार्दितः ।  
 तस्माद्देयानि दानानि मृते बाले सुनिश्चितम् ॥ ’  
 एतानि तु गारुडानि वचांसि शिष्टैर्नाद्रियन्ते ॥

अथ सहगमनविधिः ।

व्यासः—

‘यदि प्रविष्टो नरकं बद्धः पार्श्वैः सुदारुणैः ।  
 सम्प्राप्तो यातनास्थानं गृहीतो यमकिङ्करैः ॥  
 तिष्ठते विवशो दीनो वेष्टयमानः स्वकर्मभिः ।  
 व्यालप्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते विलात् ॥  
 तद्वदुद्धृत्य सा नारी तेनैव सह मोदते ॥ ’  
 ( ग. पु. २।४।९३ )

हारीतः— ( ग. पु. २।४।९४ )

‘ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः ।  
 पुनात्यविधवा नारी तमादाय म्रियेत या ॥ ’ इति ।  
 स एव—

‘तिलः कोट्योऽर्द्धकोटी च यावन्त्यङ्गरुहाणि वै ।  
 तावन्त्यब्दसहस्राणि स्वर्गे लोके महीयते ॥  
 मातृकं पैतृकं चापि यत्र चैव प्रदीयते ।  
 कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं याऽनुगच्छति ॥  
 अधिकारस्तु साध्वीनामदुष्टानां च भारत ! ॥



अथ प्रभृति या साध्वी पत्युः प्रियपरायणा ।  
ऊर्ध्वं गच्छति सा तत्र भर्त्राऽनुमरणं गता ॥' इति ।

तथा—

‘अवमन्य च याः पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा ।  
वर्त्तन्ते याश्च सततं भर्तृणां प्रतिकूलतः ॥  
भर्त्राऽनुमरणं काले याः कुर्वन्ति यथाविधि ।  
कामात् क्रोधाद्भयान्मोहात् सर्वाः पूता भवन्ति ताः ॥’ इति ।

इदं तु वचो भारतद्वित्रिपुस्तकेषु न दृश्यते ।  
कासाञ्चिदनधिकारोऽपि बृहन्नारदीये बाहुप्रियां प्रत्यौर्वः—(७।५३)

‘वालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टकृतवस्तथा ।  
नारोहन्ति चितां प्राज्ञे ! सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥’ इति ।

ब्राह्मण्या सहगमनेऽनधिकारः ।

‘मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् ।’

इति निषेधात् ।

कल्पतरौ—( ग. पु. २।४।९९ )

‘पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति ।’

इति वचोऽन्तरान्निषेधो भिन्नचितिपर इति विज्ञानेश्वरादयो युक्त-  
मुत्पश्यन्ति । सार्वजनीन आचारोऽप्यमुमेव पक्षमनुगृह्णाति ।

कथं तर्हि देशान्तरदाहे चितिभेदादस्थिभिः पलाशादिप्रतिकृत्या  
वा सहगमनम् ? । शृणु—चितिशब्दस्य यूपदिशब्दवत् दृष्टादृष्टकूट-  
वाचित्वात् अन्यदेशे काष्ठवदाहेऽपि संस्काराभावेन चितिभेदाभावः ।  
देशान्तरे मन्त्रादिना दाहे तु विप्राया अन्वारोहणं न भवत्येव ।  
क्षत्रियादीनां तु निषेधाभावाद्भवति ।

अथ सहगमनप्रयोगः— मासादि सङ्कीर्त्यात्मनो भर्तृश्रानेकजन्मो-  
पात्तसर्वपापक्षयपूर्वकस्वरोममिताब्दसहस्रावधिभर्तृसाहित्येन स्वर्ग-  
वासमातृपितृभर्तृकुलोद्धारकामा भर्त्रनुगमनं करिष्य इति सङ्कल्प्य—

१ रजस्वला राजसुते ! नारोहन्ति चितां शुभे । इति मूले ।



‘देवैः सम्पादितो मह्यं पतिस्त्वं सर्वदैवतः ।

त्वया सह गमिष्यामि भर्ता त्वं चान्यजन्मनि ॥’

इत्युक्त्वा स्नात्वा कुसुमकुङ्कुमादिना स्वशरीरमलङ्कृत्य पुत्रादिभ्यो  
बन्धुभ्यश्चाशिषो दत्त्वा—

‘चितिस्थो भगवानग्निर्विष्णुरूपी सनातनः ।

पतिलोकसमावाप्त्यै गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥’

इति विष्णुरूपिणेऽग्नयेऽर्घ्यं दत्त्वा—

‘एष चार्घ्यो मया दत्तः सूर्य ! साक्षिस्त्वदग्रतः ।

प्रसादं कुरु मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥’

इति सूर्याय च दत्त्वा—

त्वं ब्रह्मा त्वं च वै रुद्रस्त्वं रविस्त्वं प्रजापतिः ।

त्वमिन्द्रो वसवश्चाष्टौ परमात्मा त्वमेव हि ॥

त्वमेव शरणं विष्णो शरणं त्वं पतिर्मम ।

स्वर्गे वा नरके वाऽपि यत्र यत्र गमिष्यसि ॥

तत्र तत्र ह्यहं पृष्ठे गमिष्यामि तवाशु वै ॥

ब्रह्महत्यादिभिः पापैस्त्वां मोक्षयामि यमालयात् ।

अहं ब्रह्मा ह्यहं विष्णुरहं सूर्यश्च दिक्पतिः ॥

आदित्यचन्द्रावनलोऽनिलश्च द्यौर्भूमिरापोऽपि ब्रह्मर्निशा च ।

एते च सर्वे मम साहसेन तुष्यन्तु ते देवराश्च सर्वे ॥’

इति पठित्वा हरिद्राकुङ्कुमाञ्जनकञ्चुक्यादियुतानि पञ्च शूर्पाणि  
सुवासिनीभ्यो दद्यात् ।

‘लक्ष्मीनारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः ।

गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वायनैः परितोषितः ॥

सोपस्कराणि शूर्पाणि वायनैः संयुतानि च ।

लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम् ॥’ इति ।

ततो दाहार्थमेः समीपे गत्वा पञ्चरत्नानि नीलाञ्जनं च स्ववस्त्र-  
पल्लवे बध्वा मुक्ताफलं स्वमुखे क्षिप्त्वा—



‘स्वाहासंश्लेषनिर्वृणं सर्वगोत्र ! हुताशन ! ।

सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां पत्युरन्तिकम् ॥’

इत्यस्मि सम्प्रार्थ्य तत्रैवाज्येन दशाहुतीर्जुहुयात्— ‘अग्नये तेजो-  
ऽधिपतये स्वाहा १, कालाय धर्माधिपतये स्वाहा २, पृथिव्यै लोका-  
धिपतायै स्वाहा ३, अद्भ्यो रसाधिपतात्रीभ्यः० ४, वायवे बलाधिपतये०  
५, आकाशाय सर्वाधिपतये० ६, कालाय धर्माधिपतात्रे० ७, अद्भ्यः  
सर्वसाक्षिभ्यः० ८, ब्रह्मणे वेदाधिपतये० ९, रुद्राय श्मशानाधिपतये० १०,  
इति । ततः शिलां सम्पूज्य तामारुह्य फलपुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा त्रिरस्मि  
प्रदक्षिणीकृत्य प्रार्थयेत्—

‘त्वमग्ने ! सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत् ।

त्वमेव देव ! जानीषे न विदुर्यानि मानवाः ॥

अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभयपीडिता ।

सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥

इदं शरीरं सकलं मदीयं दग्ध्वा कृशानो ! कुरु दिव्यमाशु ।

तथा च भर्तुः कुरु दिव्यदेहं भर्तुः समीपं भगवन् ! ब्रजामि ॥

किं मया न कृतं साधु भवेद्यदि च तेऽनघ ! ।

इदं शरीरमालिङ्ग्य प्रविशामि हुताशनम् ॥’ इति ।

ततस्तृणकुटीं प्रविश्य श्रौतं स्मार्तं लौकिकं वाऽग्निमादाय स्वयमेव  
कुटीं प्रज्वालयेत् ।

तस्याः प्राणोत्क्रमणोत्तरं पुत्रादिरधिकारी द्वयोरपि दाहं कुर्यात् ।

इति सहगमनविधिः सहगमनप्रयोगश्च ।

अथाशौचसन्निपातादौ निर्णयः

तत्र केचित् — ज्ञातयोर्जन्ममृत्योर्जन्ममृतिज्ञानस्य वाऽशौच-  
प्रयोजकता, न स्वरूपतस्तयोः—

१ निर्वृणोति प्रीणनार्थकस्य तौदादिकस्य वृणते रूपम् । निर्विणोति पाठ-  
स्त्वज्ञानकल्पितः ।



‘निर्देशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।’ (मनुः ५।७७)  
इति लिङ्गदर्शनात्,

‘विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्देशम् ।

यच्छेषं दशरात्रस्य तावतैव शुचिर्भवेत् ॥’ (५।७५)

इति मानवानुपपत्तेश्च । स्वरूपतो मरणमात्रस्यैवाशौचप्रयोजकत्वे हि तत् एवाशौचप्रवृत्तेर्विनाऽप्येतद्वचनं दशाहशेषेणैव शुद्धिः स्यादित्य-  
नर्थकमेतद्वचः स्यात् । मरणज्ञानस्याज्ञातमरणस्य वा निमित्तत्वे तु  
ज्ञानप्रभृत्येवाशौचप्राप्तौ तदपवादाय सार्थकमेतद्वच इति निर्द्धारित-  
त्वाच्च मिताक्षरादौ ।

अहं तु ब्रुवे—आशौचं हि सपिण्डजन्मादिकरणकः ‘अशुद्धा  
बान्धवाः’ (मनुः ५।५८) इत्यादिवचःप्रतिपादितोऽशुद्ध्याख्यः  
सपिण्डगतः शक्तिरूपः पदार्थः । स च जननाद्यनन्तरमेव सपिण्डेषूपद्यते,  
न ज्ञानमपेक्षते ।

‘दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।’ (मनुः ५।५९) ।

‘जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ॥’ (मनुः ५।६१)

इत्यनेन हि शवसम्बन्धित्वेन मृतेर्जन्मनश्च निमित्तत्वमुक्तम् । तद-  
नन्तरमेवाशौचोत्पत्तिरविहता, सामग्र्यंतरानपेक्षत्वात् प्रतिबन्धका-  
भावाच्च । या तु ज्ञानस्य निमित्तत्वोक्तिः, सा प्रवर्तकनिवर्तकविधि-  
निषेधबोध्याशौचनिमित्तककटशय्यापञ्चयज्ञादिप्रवृत्तिनिवृत्तिपरा, ‘मरणं  
श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च’ (मनुः ५।७७) इत्यादिस्नानादिपुरुषव्यापार-  
समानकर्तृकतायां क्त्वाश्रुतेः । अतो मरणादिज्ञानं विना प्रवृत्तिनिवृत्त्य-  
योगात्कटशय्यासन्ध्यावन्दनादिप्रवृत्तिनिवृत्त्योर्निमित्ततया प्राप्तमेव  
ज्ञानमनूद्यते, न त्वाशौचनिमित्ततया प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्ततया वापूर्वं  
ज्ञाप्यते । अतोऽस्तु विधिनिषेधप्रवृत्तिर्ज्ञानात् ; आशौचं तु जन्म-  
मरणयोरेव निःपरिपन्थि प्रवर्तते, ज्ञानस्य तत्प्रवृत्तिसामग्रीत्वे माना-  
भावात् । अतोऽज्ञातेऽपि पूर्वं जाते जननमरणादावाशौचस्य प्रवृत्तत्वात्  
पश्चात् ज्ञातमप्येतत् न स्वतंत्रस्वाशौचावधिप्रयोजकम्, किन्तु पूर्व-  
प्रवृत्तजननमरणप्रयुक्तावधिकमेवाशौचमात्रं प्रयुज्ज इति ।

१ एतज्ज्ञानात् प्राक्-पाठः । २ उत्तरभाविजननमरणं वा ।



‘अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुद्धयति ।’ (३।२०) ।

इति याज्ञवल्क्योक्तेः अल्पकालपूर्वाशौचे बहुकालीनोत्तराशौचपाते तूत्तरशेषेणैव शुद्धिः;

‘अथवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् ।’ इति यमोक्तेः ।

—अथवृद्धिमदीर्घकालीनम् । बहुकालीनेनापि जन्माशौचशेषेणाल्प-  
कालीनमपि मृताशौचं नापगच्छति;

‘सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतकेऽप्यथ सूतकम् ।

तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतकम् ॥’

इत्यङ्गिरसोक्तेः ।

‘शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ।’

इति षट्त्रिंशन्मताच्च (ल. हा. ८०) ।

‘मातर्यग्रे प्रेमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता ।

पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥’ इति ।

मातरि पूर्वं मृतायां दशाहमध्ये पिता म्रियते तदा न पूर्वाशौचशेषेण  
शुद्धिः, किंतु पित्राशौचदिनैरेव । पित्राद्याशौचे मातृमृतौ पित्राशौचं  
समाप्य पक्षिणीमधिकां कुर्यादित्यर्थः । एवं पित्रतिरिक्ताशौचे पित्रो-  
र्मरणे कैमुतिकन्यायात् संपूर्णमेवाशौचं, न पूर्वशेषेण शुद्धिः ।

अत एव षडशीत्याम—(२२)

‘पूर्वशेषेण या शुद्धिः सूतके मृतकेऽपि च ।

सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि ॥’ इति ।

अयं चापवादो नैकाहोरात्रे शावयोः सन्निपाते प्रवर्तते; उत्सर्गाप-  
वादयोः समानविषयत्वेनान्तराशेषाहःपदगर्भितोत्सर्गस्य प्रवृत्त्या-  
भावात् किन्तु द्वितीयाद्यहोरात्र एव । मातृमरणनिमित्तपक्षिणी तु  
द्वितीयाद्यहोरात्रे सहगमनेऽपि प्रवर्तते एव ।

यत्तु पृथ्वीचन्द्रोदये लघुहारीतवचनम्—

‘यदा नारी विशेदग्निं भर्तुश्च प्रियवाञ्छया ।

तदाऽऽशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि ॥’

७



षडशीत्यामपि- ( २६ )

‘मृतं पतिमनुब्रज्य पत्नी चेदनलं गता ।

न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥’ इति ।

तत्सर्वनिबन्धकारैरलिखनादनाकरम् । इयं च पक्षिणी दशमरात्रि-  
पर्यन्तं मातृमरणे । ऊर्ध्वं तु ब्रह्मसमुच्चिता सा, अन्त्ययामे तु त्र्यह-  
समुच्चिता । समुच्चयस्तृभयस्या ब्रह्मत्र्यहसद्वयया पक्षिण्याः प्रसङ्ग-  
सिद्धिरूप एव । मातृविषये विशेषशिष्टत्वेऽपि पक्षिण्या रात्रिशेषेऽन्य-  
त्रापि च प्रवृत्त्या सामान्यरूपस्यापि सत्त्वात् पक्षिणीबाधकत्वमिति  
नैकस्य प्रवृत्तिर्नियमेनेति ।

एवं तत्र पितृमरणेऽपि दशाहमेव सम्पूर्णं, न ब्रह्माविति । अत एव  
तत्रान्यस्य मरणे ब्रह्मत्र्यहौ मातृमरणे पक्षिणीति नानौचित्यम् । मृता-  
शौचान्तरं मातृमृतौ तु पक्षिणीति तुर्यपादार्थः ।

अशौचान्तरात्रौ तद्वाच्यन्तयामे वाऽऽशौचान्तरपाते विशेषमाह  
शातातपः—

‘रात्रिशेषे ब्रह्मच्छुद्धिर्यामिशेषे शुचिरुग्रहात् ।’ इति ।

यत्तु केचित्— त्रिरात्रमात्रतादेशात्’ ( या. ३।२३ ) ‘दशाहं  
शावमाशौचम्’ ( मतुः ५।५९ ) इत्यादावाशौचप्रघटके रात्र्यहः-  
शब्दयोरहोरात्रे परिभाषणात् आशौचान्त्यदिनेऽप्याशौचान्तरपाते  
ब्रह्मवृद्धिमाहुः; तन्न, रात्रिशेषे’ इत्यत्र लक्षणायां मानाभावात् ।  
परिभाषणं तु त्रिरात्रदशाहादिपरम् । अन्यथा दशाहविधिना रात्रावा-  
शौचाभावेन पञ्चयज्ञायतुष्ठानावत्या ‘सन्ध्यां पञ्चमहायज्ञान्नेत्यकं  
स्मृतिकर्म च’ इत्यादिसन्ध्यादिपर्युदासवचसो बाधप्रसङ्गात् । ‘दशाहं  
शावमाशौचम्’ इत्यादिसमानार्थकानां ‘दशरात्रमतःपरम्’ इत्यादीनां  
प्रायशो दर्शनाच्च । तेन परिभाषणमपि न्यायमूलकम् ‘रात्रिशेषे  
ब्रह्मान्’ इत्यादौ तु न्यायाभावान्निर्मूलमेव स्यात् ।

१ षडशीतिव्याख्याता नन्दपण्डितस्तु— ‘मृतं पतिं समुद्दिश्य यदि पत्नी  
प्रसीयते ॥ आशौचं पिण्डदानं च युगपत्तु समापयेत् ॥’ इति किमपि स्मृति-  
वचनमेतन्मूलतयोदाहृतवान् ।



यच्च—‘पुनः पाते दशाहात्प्राक् पूर्वेण सह गच्छति ।

दशमेऽहि पतेद्यस्याहर्द्वयात्स विशुद्ध्यति ॥

प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं विधिः ॥ ’

इति देवलवचनम्, यच्च ‘अहःशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः’ इति शङ्खलिखितवचनम्, तदशमेऽहःशेषे चातीत इति व्याख्येयम् । ‘अथ यदि दशरात्राः सन्निपतेयुः—पुराघं दशरात्रमादिवसादत ऊर्ध्वं त्रिरात्रेण व्युष्टायां त्रिरात्रेण’ (१।५।१२४) इति बौधायनवचनं तु द्वितीयस्या नवमादिवसादिति व्याख्येयम् । एवं च रात्रिमात्रावशिष्ट इति मिताक्षराग्रन्थोऽपि लक्षणामन्तरेण सङ्गच्छत इत्यन्ये । वस्तुतस्तु अध्याहारादहोरात्रलक्षणैव ज्यायसीति दिक् ।

यत्र रात्रिशेषे यामशेषे वा त्र्यहाशौचपातस्तत्र शेषशुद्धिविधिप्रवृत्तेः तदपवादकव्यहत्र्यहाभ्यामेव शुद्धिः । पक्षिण्येकाहयोस्तत्र सन्निपाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः । तथा सति ‘रात्रिशेष’ इत्यादिः ‘पूषप्रपिष्टां’ न्यायेन लाघवाद्ब्रह्महत्र्यहयोः प्रतिप्रसवो भवति, अन्यथा पूर्वविधिः स्यात् । तथाहि—यत्र रात्रिशेषे दशाहपातस्तत्र व्यहत्र्यहयोः प्रसक्तत्वात्तयोः प्रतिप्रसवो युक्त एव । त्र्यहाशौचपातेऽपि शेषाहोरात्रं गहीत्वा त्र्यहे व्यहस्य प्रसक्तत्वात्तत्रापि प्रतिप्रसवो युक्त एव । एवं यामशेषेऽपि । येषां तु—‘यस्याहस्तस्य शर्वरी’ इति पक्षस्तेषां तदहोरात्रं

१ पूषप्रपिष्टेति—‘पूषा प्रपिष्टभागः’ (तै. सं. २।६।८।५) इति श्रुतं पेषणं पूषदैवत्ये चरौ, पशौ, पुरोडाशे वा विधीयते ? उत चरावेवेति चिन्तायाम्—पशुपुरोडाशयोराकृतिनाशान्यतःप्राप्तिभ्यां पेषणविधानानुपपत्तेः, अवदानोत्तरकालमन्यस्य पेषणविधेः कल्पनायां गौरवाच्च यथा चरौ चोदकप्राप्त-स्यापि प्रयोजनाभावात्निवर्तमानस्य पेषणस्य प्रतिप्रसवमात्रं लाघवादाश्रितं पूर्व-तन्त्रे, (३।३।१४); तथात्राप्यहोरात्रशेषे यामशेषे वा दशाहादिप्राप्तौ तन्मध्य-गतत्वेन प्रसक्तस्यैव द्व्यहत्र्यहादेः शेषाहःशुद्धिविधिबलान्निवर्तमानस्य प्रति-प्रसवमात्रं ‘रात्रिशेष’ इत्यादीति भावः ।

‘प्रसक्तप्राप्तिकस्य कारणान्तरेण निवृत्तिप्रसक्तौ विधिः प्रतिप्रसवः । तत्र चोत्पत्तिविनियोगाङ्गसम्बन्धादौ यथासम्भवं विधेर्व्यापाराभावाल्लाघवम्’—इति भाट्टदीपिका ।



गृहीत्स्वैव त्र्यहप्राप्तेर्त्यहमेवाधिकं प्राप्तं न त्र्यहमिति न तत्र प्रभाते तिसृभिरिति प्रतिप्रसवः सम्भवतीति । एवं पक्षिण्येकाहादीनां तत्र पाते व्यहत्र्यहप्राप्तेः प्रतिप्रसवविध्यसम्भवादपूर्वविधिरेव स्यादिति ।

कश्चित्तु-रात्रिशेषे वा त्र्यहाशौचपाते देवलवौधायनादिवचने दशाहा-दिपदबलाद्व्यहत्र्यहवृद्धेर्दशाहविषयत्वप्रतीते रात्रिशेषे ० त्र्यहपाते पूर्व-शेषेणैव शुद्धिरित्याह । तत्तुच्छम्, दशमशब्दस्य द्वादशाहाद्याशौच-सङ्ग्रहार्थं सम्पूर्णशौचचरमाहोरात्रोपलक्षणत्वावश्यमङ्गीकार्यत्वेन लाघवाद्याशौचासहोर्धे रात्रमात्रोपलक्षणत्वस्यैव युक्तत्वात् । अन्यथा 'पुनः पाते दशाहात्प्राक्' इति देवलवाक्यपूर्वार्धे 'दशरात्राः सन्निपतेयुः' ( १।५।१२४ ) इति बौधायनवाक्ये च दशरात्रस्योपलक्षणत्वानापत्त्या त्रिरात्रादिषु त्रिरात्रादिप्राप्तेः पूर्वशेषेण शुद्धिर्न स्यादिति । अत्र वर्द्धित-व्यहत्र्यहाशौचे तदधिकाशौचान्तरपाते तूत्तरेणैव शुद्धिर्न पूर्वेण, तस्य अल्पत्वात् ।

अत्र सर्वत्रापि पूर्वप्रवृत्ताशौचशेष एवोत्तराशौचशुद्धयापादको, न तु ज्ञातस्तज्ज्ञानं वा ।

पूर्वाशौचशेषेण शुद्धिस्तु सूक्तिकामिभिन्नसपिण्डानाम् ।

'सूक्तिकामग्निदं हित्वा पूर्वशेषेण शुद्धयति ।' इति स्मृतेः ।

अथ समानदेशे देशान्तरे वा अतिक्रान्ताशौचनिर्णयः ।

तत्राशौचमध्ये जननमरणयोः श्रवणे तच्छेषेणैव शुद्धिः । "प्रोषिते कालशेषः स्यात्" ( ३।२१ ) इति याज्ञवल्क्योक्तेः । आशौचमध्ये प्रोषितमरणश्रवणे आशौचकालशेषेण शुद्धिरित्यर्थः ।

'विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्देशम् ।

यच्छेषं दशरात्रस्य तावतैव शुचिर्भवेत् ॥'

इति मनूक्तेश्च ( ५-७४ ) ।

दशाहादूर्ध्वं ज्ञाने तु वृद्धवसिष्ठः-( ल. आश्व. २०।८६

'सासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासात्पक्षिणी भवेत् ।

अहस्तु नवमादवर्गदूर्ध्वं क्लानेन शुद्धयति ॥'



देवलः—

‘आ त्रिपक्षात्रिरात्रं स्यात् षण्मासात्पक्षिणी भवेत् ।

परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुद्ध्यति ॥’ इति ।

अनयोः संनिहितासंनिहितदेशभेदेन व्यवस्था ।

स्नानेनोदकदानमप्युपलक्ष्यते—

‘सर्वेषां वत्सरे पूर्णे प्रेते दत्त्वोदकं शुचिः ।’ ( ३।२१ )

इति याज्ञवल्क्योक्तेः ।

यत्तु मानवे—( ५।७५ )

‘संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्टैवापो विशुद्ध्यति ।’

इत्येवकारभ्रवणम्, तत्कालान्तरव्यावृत्त्यर्थम् ।

यत्तु — ‘श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणीम्’ ( २।५।१७ ) इति

गौतमीयम्, तदूर्ध्वं मासत्रयादर्वाक् ज्ञेयम् ।

यदपि—ऊर्ध्वं दशाहाच्छ्रुत्वैकरात्रम्’ ( ४।२९ ) इति वासिष्ठम् ;

तदूर्ध्वं षण्मासेभ्यो यावन्नव ।

यदपि—

‘निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।

सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥’ ( ५।७६ )

इति मानवम् ; तदूर्ध्वं नवमासेभ्यः । अस्मादेव मानवाज्जनना-

शौचातिक्रमे पितुः स्नानमात्रम् । सपिण्डानां नास्त्येव ।

अत एव देवलः—

‘नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्विति ।’

आशौचादूर्ध्वं तु माधवीये विष्णुः—

‘अर्वाक् त्रिपक्षाब्जिनशं षण्मासाच्च दिवानिशम् ।

अहस्तु नवमादर्वागदेशान्तरमृतेष्वपि ॥’ इति ।

मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षिणी भवेत् ।

अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुद्ध्यति ॥’

( ल. आश्व. २०।८६ )

१ ‘प्रोषिते कालशेषः स्यात्पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः’ इति पाठान्तरम् ।



इति आसिष्ठं त्वेकदेशपरमिति विज्ञानेश्वरः ।

इति समानदेशे ।

प्रसवे देशान्तरे मनुः- ( ५।७० )

‘निर्देशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।

सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥’ इति ।

—निर्देशमतिक्रान्तदशाहादिकालम् । पितुः स्नानसत्रविधानोत्स-  
पिण्डानां सुतरां जन्मशौचं नास्तीति ग्रन्थकृतः ।

अत एव देवलः—

‘नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्विति ।’

देशान्तरे तु माधवीये—

‘अर्वाक्षत्रपक्षात्रिनिशं षणमासात्तु दिवानिशम् ।

अहः संवत्सरादर्वाक् देशान्तरमृतेष्वपि ॥’ इति ।

अत्र दिवाशब्देनाहर्द्वयमुच्यते ।

‘आ त्रिपक्षात्रिरात्रं स्यात् षणमासात्पक्षिणी भवेत् ।

परमेकाहमा वर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुद्ध्यति ॥’

इति वैदलोक्तेरिति माधवः ।

सातचरणास्तु— ‘अहः संवत्सरात्’ इत्यनेन पौनरुक्त्यापातादेवा-  
हर्द्वयमुच्यत इति । संवत्सरशब्दश्च पादोनवत्सरपरः, तेन समानदेशे  
नवमादर्वाक् एकाहः । देशान्तरे तदूर्ध्वं स्नानमिति नानौचित्य-  
मित्याहुः ।

युक्तं तु— आशौचप्रकरणे दिवानिशादिशब्दानामहोरात्रलक्षणायाः  
क्लृप्तत्वात्रिंशदशब्द एव वर्तमानाहोरात्रलक्षकः । दिवाशब्देऽहर्द्वय-  
लक्षणा त्वाधुनिकी स्यादतो दिवाशब्दो यथाश्रुत एव । न च दिवा-  
शब्दस्यैवाहोरात्रलक्षणा कृतेति विनिगमनाविरहः शक्यः । तथा सति  
‘आगामिवर्तमानाहर्द्वयकायां निशि पक्षिणी ।’ ( अ.पु. ३६०।३७ )  
इत्येवंरूपायाः पक्षिण्या बाधकप्रसङ्गात् ।

या तु—‘देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैखानसे यतौ ।

मृते स्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्त्रावे तु गोत्रिणः ॥’ इति स्मृतिः,



यच्च—‘भृग्वग्निमरणे चैव देशान्तरमृते तथा ।

बाले प्रेते च संन्यस्ते सद्यःशौचं विधीयते ॥

देशान्तरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि ।

न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥’ (३।१०-११)

इति पराशरवाक्यद्वयम् , तत्संवत्सरोर्ध्वमवतिष्ठते । पूर्वोक्तविष्णु-  
वाक्यैकवाक्यत्वात् ।

यद्वा—‘बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ।

सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुद्ध्यति ॥ ’ ( ५।७७ )

इति मनुवाक्यैकवाक्यतया आद्यः श्लोकोऽसपिण्डविषयः । अन्य-  
श्लोकस्तु सगोत्रमात्रपर इति । ‘देशान्तस्थत्वेन वा सपिण्डो विशेष्यते’  
इति माधवः ।

मातार्पितृविषये पैठीनसिः—

‘पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः ।

श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ’

दशाहमिति स्वाशौचोपलक्षणम् ।

स्मृत्यन्तरे—

‘महागुरुनिपाते तु आर्द्रबल्लोपवासिना ।

अतीतेऽन्देऽपि कर्त्तव्यं प्रेतकर्म यथाविधि ॥ ’ इति ।

दम्पत्योः सवर्णोत्तमवर्णसपत्न्योश्च परस्परदेशान्तरे कालान्तरे  
च दशाहदिस्वजात्याशौचमेवेति स्मृत्यर्थसारे ।

सपत्नमातृविषये दक्षः—

‘पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्जं द्विजोत्तमः ।

संवत्सरे व्यतीते तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ’ इति ।

देशान्तरगतादिमृतावाशौचाभावेऽपि स्नानमात्रमस्त्येव ।

‘देशान्तरमृतं श्रुत्वा स्त्री वैखानसे यतौ ।

मृते स्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्त्रावे तु गोत्रिणः ॥ ’

इति स्मरणात् ।



देशान्तरं च—

‘महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः ।  
वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥  
देशान्तरं वदन्येके षष्टियोजनमायतम् ।  
चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च ॥’

इति स्मृतावनेकधोक्तम् । अत्र वाग्विभेदः सर्वपक्षेषु समुच्चीयते ।  
एतच्चातिक्रान्ताशौचमुपनीतमरण एव । तदपि वयोवस्थाशौचवत्सर्व-  
वर्णसाधारणम् ।

तथा च व्यात्रपादः—

‘तुल्ये वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च ।  
उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजम् ॥’

अयमर्थः—जन्मप्रभृत्युपनयनात्पूर्वं वयसि यदाशौचम् ‘आ दन्त-  
जननात्सद्यः’ इत्यादि, तत्सर्वेषां ब्राह्मणादीनां तुल्यम् । यच्च दशाहा-  
दिके अतिक्रान्ते तदपि तुल्यम् । उपनीते परमेकादशद्वादशेत्यादिरूपं  
विषमाशौचम् । तस्मिन्नेवोपनीतमरण एवातिकालजमतिक्रान्ताशौचं  
भवति, न पुनर्वयोवस्थाशौचाविक्रम इति ।

अत्र यद्यप्युपनीतग्रहणेनानुपनीतपर्युदासेऽपि आचार्यमातुलसोदका-  
दिमरणेऽप्यतिक्रान्ताशौचं प्रसज्यत एव, तथापि त्रिरात्रिपक्षिण्या-  
द्याशौचातिक्रमेऽपकर्षस्य त्रिरात्रविधानस्यानौचित्यात्, ‘अतिक्रान्ते  
दशाहे तु’ (५।७६) इति मनूक्तेश्चेद्दमतिक्रान्ताशौचं सम्पूर्ण-  
दशाहाद्याशौचविषयमेवेति ।

अत्र ‘मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्’ (मनुः ५।७५ क्षे. १०) इत्यादौ  
मासश्चान्द्रः त्रिंशत्तिथ्यात्मक एव । तेनान्तरा मलमासपाते तमादायैव  
गणनेति ज्ञेयम् । युक्त्यन्तरं श्राद्धमयूखे (पृ. १४०) द्रष्टव्यमिति दिक् ।

१ एतच्च पूर्वोक्तोक्तमहानद्यन्तरायभावेऽपि द्रष्टव्यम् । तत्सर्वे तु निकटेऽपि  
देशान्तरम् । तदाह बृहस्पतिः—‘देशनामनदीभेदानिकटोऽपि भवेद्यदि । तत्तु  
देशान्तरं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥’ इति ।



## अथ सोदकाशौचम् ।

मनुः—( ५।६२ )

‘ दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।

जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ॥

जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ’ ( ५।७० )

—एकोदकाः सोदकाः । इदं च त्रिरात्रं सम्पूर्णप्रसवे उपनीतमरणे च ज्ञेयम् ।

‘ दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके ।

त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुध्यन्ति गोत्रजाः ॥

त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते ॥

इत्यादिवाक्येषु दशरात्रतुल्यकक्षतया त्रिरात्रस्योक्तत्वात् । तेना-  
संपूर्णप्रसवे अनुपेतमरणे च सोदकानां स्नानमेव । एवमेव मातुलबन्धु-  
त्रयादीनां चोपनीतानामेव पक्षिण्याद्याशौचम् । अन्यथा दन्तजननादेः  
पूर्वं सोदकमातुलादेर्मृतौ त्रिरात्रपक्षिण्यादि, तादृशस्य भ्रात्रादेश्च  
नेत्यनौचित्यं स्यात् ।

सोदकानाह मनुः— ( ५।६० )

‘ सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।

समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ’

अत्रापि विनिवर्तत इत्यनुषजनीयम् । गोत्रजेष्वेकरात्रस्यापि मनु-  
नोक्तत्वात् । सप्तमादूर्ध्वं चतुर्दशपुरुषपर्यन्तं सोदकाः, तत ऊर्ध्वं  
गोत्रजा इति युक्तम् ।

तथोपाध्यायादिमृताशौचम् ।

त्र्यहरित्यनुवृत्तौ याज्ञवल्क्यः— ( ३।२४ )

‘ गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च । ’

—गुरुरुपाध्यायः । अन्तेवासी शिष्यः । अनूचानोऽध्यापकः ।

एकाचार्योपनीते समानग्रामवासिनि श्रोत्रिये चाश्वलायनः—  
( गृ. सू. ४।४।२६-२७ ) ‘ एकाहं सत्रह्यचारिणि । समानग्रामीये च  
श्रोत्रिये ’ इति ।



आचार्योपरमे मनुः- ( ५।७९ ) ।

‘ त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।

तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ’

बृहस्पतिः-

‘ अथहं मातामहाचार्यश्रोत्रियेष्वशुचिर्भवेत् । ’

तथा-‘ पित्रोरूपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत् ।

त्रिरात्रेणव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान्यमः ॥

अशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले ।

पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम् ॥ ’

तथा-‘ मातुले अशुरे मित्रे गुरौ गुर्वङ्गनासु च ।

आशौचं पक्षिणीं रात्रिं मृता मातामही यदि ॥ ’

चकाराद्वान्धवेष्विति ग्रन्थकृतः । तेच—आत्मनः पितृष्वसुर्मातृ-  
ष्वसुर्मातुलस्य च पुत्रा आत्मवान्धवाः । पितुः पितृष्वसुर्मातुलस्य च  
पुत्राः पितृवान्धवाः । मातुः पितृष्वसुर्मातुलस्य च पुत्रा मातृवान्धवा  
इति त्रिविधाः ।

बृहमनुः-

‘ संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते ।

संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ’ इति ।

विदेशस्थभगिन्यादिषु बृहवसिष्ठः—

‘ भगिन्यां संस्कृतायां च भ्रातर्यपि च संस्कृते ।

मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥

शालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ’

अत्र भ्रात्रपेक्षया भगिन्यास्तदपेक्षयैव भ्रातुः सद्यः स्नानेन शुद्धिः ।  
जामातृशालकतत्सुतानां तु सद्यः शुद्ध्यभिधानं समानदेशेऽपि । तथा  
शिष्यतपस्विश्रोत्रियकुलपतिग्रामेश्वराणां सन्निहितानां दिवा मृतौ नक्षत्र-  
दर्शनाच्छुद्धिः, रात्रौ चेत्सूर्यदर्शनात् । यावद्ग्राममध्ये शवस्तिष्ठति



तावद्भामस्याशौचं, निर्हते शुद्धिरेव । नगरे स्वस्ववीध्यायामाशौचं  
ज्ञेयम् । अत्रैकविषये उच्चावचा आशौचकल्पा गुणवद्गुणवत्त्वादिना  
व्यवस्थाप्याः ।

ते च—‘वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमधसङ्कोचनं तथा ।’

इत्यादिना कलौ प्रतिषिद्धाः । कलिवर्ज्यविचारश्च समयमयूखे  
(पृ. १८०-१८७) द्रष्टव्यः ।

अथाशौचापवादः ।

कौर्म—(ब्र. सं. २, २३, ६१)

‘नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।

नाशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च तथा मृते ॥’ इति ।

आशौचे सकलकर्माधिकारनिवृत्तौ केचन धर्माः प्रतिप्रसूयन्ते ।  
तत्र वैयाघ्रपादः—

‘स्मार्त्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके ।

श्रौते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥’

—श्रौत इत्यग्नित्रयसाध्यावश्यकानां नित्यनैमित्तिकानामग्निहोत्र-  
दर्शपूर्णमासादीनां पर्युदासः । ‘नित्यानि निवर्त्तेरन् वैतानवर्जम्,  
शालाग्नौ चैक’ इति पैठीनसिवचनाद् गृह्याग्निसाध्यानामप्यावश्यकानां  
वैकल्पिकः पर्युदासः ।

जातुकर्ण्योऽपि—

‘सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्त्तकर्म कथं भवेत् ? ।

पिण्डयज्ञं चरुं होमसगोत्रेण कारयेत् ॥’

—पिण्डयज्ञः पिण्डपितृयज्ञः । चरुः पार्वणस्थालीपाकः । श्रवणा-  
कर्माश्रयुज्यादिकर्म । होमो नित्यः । स्मार्त्ते द्रव्यत्यागमात्रं स्वयं कार्यम्,  
अन्यत्त्वसगोत्रेण कारयेत् । श्रौतेऽप्येवमिति मिताक्षरायाम् । सर्व  
कर्म स्वयं कार्यमिति तु बहवः । तत्रापि श्रौतस्मार्त्तहोमः शुष्कान्नफला-  
दिनैव कर्तव्यः; दुग्धादिना त्वसगोत्रेणैव कारयितव्य इति केचित् ।



अत एव—

‘सूतके च प्रवाते च अशक्तौ श्राद्धभोजने ।  
एवमादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥’ (दक्षः ६।१७)

इत्युक्तम् ।

यत्तु—‘दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ।’  
इति, तत्काम्यहोमपरम् । वैश्यदेवपरं वा ।

तथा—‘शिवविष्णवर्चनं दीक्षा यस्य त्वग्निपरिग्रहः ।  
स तत्कर्माणि कुर्वीत स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥’

जाबालिः—

अर्ध्यान्ता मानसी सन्ध्या प्राणायामविवर्जिता ॥’ इति ।  
‘अञ्जलिप्रक्षेपस्तु सावित्रीमुच्चार्य कार्ये’ इति पैठीनसिनोक्तम् ।  
तथा—‘सूतके मृतके । उभयत्र कुलस्यान्नं दशाहानि न भुज्यते ॥’  
इति यमोक्तेरसपिण्डैराशौच्यन्नं न भोक्तव्यम् । यद्यनापदि तदीयमन्नं  
भक्षयति, तदा तावदाशौचभाक् यावत्तेषामिति ।

आपदि तु—‘यावदन्नं समश्नाति तावदहान्यशुचिः स्यात्ततः प्राय-  
श्चित्तं चरेत्’ इति ।

अशौच्यन्नभोजनदोषश्च दातृभोक्त्रन्यतरस्याशौचज्ञान एव ।

तथा षट्त्रिंशन्मते—

‘उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत् ।

एकेनापि परिज्ञाते भोक्तृदोषमुपावहेत् ॥’

तथा—‘विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।

परैरन्नं प्रदातव्यं दातृन् भोक्तृश्च न स्पृशेत् ॥’ इति ।

—परैरसगोत्रैः । तथा विवाहादिष्वेव पूर्वसङ्कल्पितेऽपि न दोषः ।

तथा च बृहस्पतिः—(अत्रिः ४।४)

‘विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।

पूर्वसङ्कल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥’ इति ।

१ भोक्त्रा आशौचनिमित्तेऽज्ञातेऽपि दात्रा ज्ञाते दातुराशौचित्वात् तत्स्वामि-  
फान्नं निषिद्धम् । भोक्तुः प्रायश्चित्तं त्वल्पमज्ञानप्रवृत्तत्वात् । दात्रा ज्ञातेऽपि  
भोक्त्रा ज्ञाते तु तद्रव्यस्याशौचिस्वामिकत्वाभावेऽपि वचनात् निषिद्धमित्यर्थः ।  
भोक्तुरिति च तन्मात्रेण ज्ञातेऽपि तस्य दोषं वक्तुम्, न तु दातृमात्रेण ज्ञातस्य  
दाननिषेधातिक्रमनिमित्तदोषं निवर्तितुमपि, अर्थद्वयकरणे वाक्यभेदापत्तेः ।



तथा—‘भुञ्जानेषु तु विप्रेषु अन्तरा मृतसूतके ।

अन्यगेहोदकाचान्ताः शुद्धयन्ति ह्यसगोत्रिणः ॥’ इति ।

मरीचिः—

‘लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च ।

शाककाष्ठतृणेष्वप्यु दधिसर्पिष्यसु च ॥

तिलौषधाजिने चैव पक्वापके स्वयंग्रहः ।

पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके ॥’ इति ।

—पक्वं भक्ष्यम्, अपक्वं तण्डुलादि, स्वयंग्रहः स्वयमेव स्वाम्यनुज्ञात उपादद्यादित्यर्थः । पक्वापकपर्युदासोऽन्नसन्नप्रवृत्तादेव, नान्यस्मात् ।  
तथा चाङ्गिराः—

‘अन्नसन्नप्रवृत्तानामाममन्नमगर्हितम् ।

भुक्त्वा पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु पयः पिबेत् ॥’

—अत्र पक्वशब्द ओदनपरः ।

तथा—‘व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमार्चने जपे ।

प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥’

सूतकमिति मृतकस्याप्युपलक्षणम् । प्रारम्भश्च—

‘प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः ।

नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रियां ॥’ इति ।

नान्दीश्राद्धावधिश्च स्मृत्यन्तरे—

‘एकविंशत्यह्यज्ञे विवाहे दश वासराः ।

अहानि त्रीण्युपनये नान्दीश्राद्धं विधीयते ॥’

आशौचसंभावनायामेकविंशत्यादिदिनमध्ये प्रधानेनानेकदिनव्यवहितमपि नान्दीश्राद्धं कार्यमिति प्रयोगरत्ने पितामहचरणाः ।

१ नाशौचमिति पञ्चगव्येन प्रोक्षणमात्राच्छुद्धिरिति यावत् । ‘कदलं नारिकेलं च पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ।’ ‘माषं सुदं तण्डुलं च शावे वा जननेऽथ वा । सप्तमे दिवसे शुद्धं पञ्चगव्येन जायते ॥’ इति स्मृतिसारसमुच्यताम् ।

२ सम्प्रक्षालितपादस्य श्राद्धे विप्रस्य चैव हि । गृहानुव्रजपर्यन्तं न तस्याशौचमिष्यते ॥’ इत्याश्वलायनः ( २०।९१ ) ।



प्रचेताः—

‘कारवः शिल्पिनो वैद्या दासी दासास्तथैव च ।

राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः ॥’ इति ।

—सद्यःशौचं शिल्पिवैद्यानन्यसाध्यकर्मण्येव । न तु पञ्चयज्ञादा-  
विति मिताक्षरायाम् । तथा सूतकादौ नित्यस्नानशौचाचमनबलिदान-  
प्राणाहुतिपात्रकरणादयो भुजिनियमा अस्पृश्यस्पर्शनस्नानादिकं चेति  
सर्वं कर्तव्यमेवेति स्मृत्यर्थसारे । नित्यस्नानमङ्गवर्षणसहितमेव कार्यम् ।

‘अस्पृश्यस्पर्शने वान्ते अश्रुपाते क्षुरे भगे ।

स्नानं नैमित्तिकं कार्यं दैवपित्र्यविवर्जितम् ॥

उद्धृतैरुदकैः स्नायान्न कुर्याद्वस्त्रपीडनम् ।’

इति नैमित्तिकस्नान एव तर्पणाद्यङ्गपर्युदासात् ।

पितृमरणोत्तरं प्रथमाब्दे विशेषमाह देवलः—

‘स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाग्नितर्पणम् ।

प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥’

—स्नानं समावर्तनं काम्यस्नानं वा । महादानसाहचर्येण ‘विशये  
प्रायदर्शनात्’ (पू. मी. सू. २।३।१६) इति न्यायात् । स्वाध्यायः  
काम्यः । ब्रह्मयज्ञाध्ययनं वा । अग्नितर्पणं काम्यो होमः ।

देवलः—

‘प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् ।

न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णा न वत्सरः ॥’ इति ।

—दैवं स्नानादि । पित्र्यं गयापरपक्षनिमित्तमेकोद्दिष्टं पार्वणं च  
पित्रतिरिक्तस्य ।

अत एव त्रिस्थलीसेतौ— (ग. पु. २।३४।११३)

‘अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् ।

प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत कृते पितृसपिण्डने ॥’

१ विशये संशये सति प्रायदर्शनात् प्रायपाठात् निश्चयः । यथा— ‘वत्समा-  
लभेत’ इत्यग्निहोत्रदोहाधिकारे श्रुतो वत्सालम्भोऽग्निहोत्राङ्गसंस्कारः, तत्प्राये  
पठितत्वात्, इतरसंस्कारवत्—इति ।



‘यदि न स्यात्सपिण्डनम्’ इति कचित्पाठः ।

तथा—‘दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् ।

प्रथमेऽब्देऽपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान्सुतः ॥’ इति ।

—भक्तिमान् भक्त्याख्यश्राद्धवान् । तत्कृत्वा तानि कुर्यादिति केचित्, तत्र मूलं चिन्त्यम् । सुत इत्येव निमित्तं समर्पकम्, भक्ति-मत्त्वं तु कर्माङ्गत्वेन प्राप्तत्वादनुद्यते । अतः सुतेनाद्याब्दे कार्यं नान्येन इति तु युक्तम् ।

तथा—‘सर्वेषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने ।

कुर्यात् संवत्सरादर्वाक् श्राद्धमेकं तु वर्जयेत् ॥’

तथा—‘महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि ।

कुर्यात्संवत्सरादर्वाङ्गोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥’

अन्यदीयमित्यर्थः ।

भृगुः—

‘माता चैव तथा भ्राता भार्या पुत्रस्तथा स्नुषा ।

एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्या न पुनः पितुः ॥’

तथा—‘माता चैव सुतो भ्राता पत्नी चैव विपद्यते ।

तत्र श्राद्धानि कुर्वीत न कुर्याज्जनके मृते ॥’

—माता गौणी, न जननी; तन्मरणोत्तरं ‘प्रमीतौ पितरौ’ इति देवलीयेन दैवपित्र्ययोर्निषेधात् ।

एतत्पूर्णसांवत्सरिकपरमिति केचित्, तत्रापि मूलं मृग्यम् ।

अत्र पितरि मृतेऽन्यदीयं श्राद्धं न कुर्यादिति निषिध्यते । अन्य-मृतौ कुर्यादिति तु निष्प्रत्यूहं सामान्यवाक्यप्राप्तमेवानुद्यत इति दिक् ॥

इति श्रीमीमांसकशंकरभट्टात्मजभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्त-

भास्करे एकादशः शुद्धिमयूखः समाप्तः ॥

भट्टभूपकरानन्तयज्ञेश्वरविनिर्मिता ।

टिप्पण्येषा मयस्वस्य प्रीणानु परदेवताम् ।







श्रीभगवन्तभास्करे

मीमांसकश्रीनीलकण्ठभट्टविरचितः

# शान्तिमयूखः

( द्वादशः )

जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे, बी. ए., एल-एल. बी.

इत्येतेन संशोधितः



## चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७



## पाण्डुलिपिसङ्केतवर्णानि

अ—डेक्कन-कालेज-संग्रहात्प्राप्तं ६३ अनुक्रमाङ्केन चिह्नितम् ।

ब— " " " ८८ " "

क— " " " १२८ " "

घ— " " " २६२ " "

द— " " " २९८ " "

ध— " " " ४१८ " "

न— " " " १४३ " "

ड—सत्यपुरात् श्रीमद्बालाचार्यगजेन्द्रगडकर इत्येतैः प्रेषितं श्री माटे इत्येतेषाम् ।

र—कलिकाता-रॉयल-एशियाटिक-सोसायटीतः प्राप्तम् ।

ख—राजापुरपाठशालायाः संग्रहात्प्राप्तम् ।

इ—आनन्दाश्रम-संग्रहादानीतम् ३७०६ इत्यनुक्रमाङ्केन चिह्नितम् ।

य—श्री सरदारबिबलकर इत्येतेषां संग्रहात्प्राप्तम् १६६ इत्यनुक्रमाङ्केन चिह्नितम् ।

ट—पुण्यपत्तनस्थ श्रीसरदारमेहेदळे संग्रहात्प्राप्तम् ।

फ—फर्ग्युसनकॉलेज-मण्डलीक-विभागात्प्राप्तम् अपूर्णम् पृ० ४३ ।

क्ष— " " " " " ।

ज्ञ—श्री वाराणस्यां शिलाया मुद्रितम् ।

नमो भगवते वासुदेवाय

(अथवा नमो भगवते वासुदेवाय)

नमो भगवते वासुदेवाय

००००११



## विषयानुक्रमणिका

| विषयाः                                | पृष्ठाङ्काः | विषयाः                        | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------------|-------------|-------------------------------|-------------|
| शान्तिकपौष्टिककर्मणी                  | २           | ग्रहाणां वर्णजन्मनी           | २०          |
| परिभाषा                               | ३           | कर्मविशेषतः वर्णजन्मनी        | २०          |
| शिरःस्नातो दैवं पित्र्यं कर्म कारयेत् | ३           | दिग्विशेषः                    | २०          |
| प्राङ्मुखोदङ्मुखः श्मश्रुकर्म         | ३           | ग्रहादिषु देवादीनां विचारः    | २१          |
| मासपक्षतिथ्यादीनामुल्लेखः             | ३           | ग्रहस्थापने व्याहृतिभेदः      | २२          |
| अत्र शूद्राणामधिकारः                  | ३           | आवाहने विशेषाः                | २२          |
| पुण्याहवाचनविधिः                      | ४           | स्कान्दोक्ताः                 | २४          |
| मातृपूजा                              | ४           | अधिदेवताः तेषां स्थानानि      | २५          |
| स्वस्वशाखाऽऽश्रयणीया                  | ४           | चन्दनादि                      | २६          |
| ऋत्विक्पूजनम्                         | ४           | ओदनं                          | २७          |
| मण्डपप्रवेशः                          | ५           | समिधः                         | २८          |
| मण्डपप्रोक्षणम्                       | ५           | तत्र विशेषाः                  | २८          |
| गृह्योक्त कर्म                        | ५-६         | मन्त्राः                      | २८          |
| पात्र-विचारः                          | ६           | द्रव्याणि                     | ३०          |
| संस्कारतोऽग्नेर्नामविशेषाः            | ६           | होमसमाप्तिः                   | ३२          |
| होमे विशेषाः                          | ६           | ऋत्विग्भ्यो दक्षिणादानं       | ३२          |
| विनायकस्नपनं                          | ७           | होमानां प्रकृतिविकृतयः        | ३४          |
| तल्लक्षणानि                           | ७           | ग्रहादीनां लक्षणानि           | ३५          |
| दिनविचारः                             | ७           | अधिदेवताः प्रत्यधिदेवताः      | ३६          |
| सर्वौषधानि                            | ८           | विनायकादि                     | ३७          |
| मृदः                                  | ८           | लक्षहोमः                      | ३८          |
| अभिषेकमन्त्राः                        | ८           | कोटिहोमः                      | ४१          |
| इन्द्रादिभ्यो बलिदानम्                | ९           | तन्महिमा                      | ४४          |
| वर्णतो बलिद्रव्याणि                   | ९-१०        | शतमुखकोटिहोमः                 | ४५          |
| बलिदानमन्त्राः                        | १०          | एतेषां प्रकृतिविकृतयः         | ४८          |
| उपस्थानमन्त्रः                        | १०          | कुण्डाहुत्यादि                | ४९          |
| प्रयोगः                               | ११          | अग्निप्रणयनम्                 | ५०          |
| ग्रहयज्ञः                             | १६          | ऋत्विक्संख्या                 | ५२          |
| ग्रहदोषपीडा                           | १६          | वास्तुपूजा                    | ५२          |
| कुण्डम्                               | १७          | द्वारपूजा                     | ५६          |
| कुण्डमेखला                            | १७          | तोरणपूजा                      | ५६          |
| नवग्रहस्थानानि स्थण्डिलानि च          | १७          | इन्द्रादिदिक्पालावाहनादि      | ५७          |
| ग्रहाकाराः                            | १८          | भूतबलिदानम्                   | ६१          |
| ऋत्विजः                               | १९          | सर्वतोभद्रमण्डलदेवतास्थापनादि | ६२          |
| ऋत्विग्वरणम्                          | १९          | नवग्रहावाहनम्                 | ६४          |



| विषयाः                           | पृष्ठाङ्काः | विषयाः                               | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|--------------------------------------|-------------|
| अधिदेवतादिस्थापनम्               | ६५          | प्रयोगः                              | १२८         |
| तेषां पुष्पधूपवस्त्रादि          | ६८          | एकनक्षत्रजन्मशान्तिः                 | १३०         |
| होमे मन्त्राः                    | ६९          | प्रयोगः                              | १३०         |
| पूर्णाहुतिः                      | ७१          | ग्रहणोत्पत्तौ शान्तिः                | १३१         |
| अभिषेकमन्त्राः                   | ७१          | विषघटिकाशान्तिविधिः                  | १३२         |
| ग्रहयोगशान्तिः                   | ७३          | भगण्डान्तशान्तिः                     | १३४         |
| ग्रहस्थानानि                     | ७५          | दिनक्षयादिशान्तिः                    | १३४         |
| आदित्यशान्तिः                    | ७६          | त्रिकशान्तिः                         | १३५         |
| चन्द्रशान्तिः                    | ७७          | प्रसववैकृतशान्तिविधिः                | १३६         |
| मङ्गलशान्तिः                     | ७७          | यमलशान्तिविधिः                       | १३७         |
| बुधशान्तिः                       | ७८          | प्रयोगः                              | १३७         |
| गुरोः शान्तिः                    | ७८          | प्रथमदिनादिषु देवीगृहीतबालकरक्षणम्   | १३८         |
| गुरुपूजा                         | ७९          | बालग्रहस्तवः                         | १४०         |
| शुक्रशान्तिः                     | ८१          | कालानुसारतो रक्षाकरणं                | १४४         |
| प्रतिशुक्रादिशान्तिः             | ८२          | बलिदानयोर्विकल्पः                    | १४७         |
| शनिराहुकेतुशान्तयः               | ८३          | बौधायनोक्ता ज्वराद्युत्पत्तौ शान्तयः | १४९         |
| शनिव्रतम्                        | ८३          | आश्वलायनोक्ता वारशान्तयः             | १५१         |
| शनिपूजाविधिः                     | ८४          | नक्षत्रशान्तयः                       | १५२         |
| शनिस्तोत्रम्                     | ८५          | तिथिवारक्षेपु साधारणः प्रयोगः        | १५८         |
| अर्कविवाहः                       | ८६          | ग्रहणशान्तिः                         | १६०         |
| प्रयोगः                          | ८९          | जलाशयवैकृतशान्तिः                    | १६२         |
| रजोदर्शनशान्तिः                  | ९०          | वृष्टिवैकृतशान्तिः                   | १६३         |
| वस्त्रादीनां फलम्                | ९२          | अग्निवैकृतशान्तिः                    | १६३         |
| प्रयोगः                          | ९६          | प्रतिमादिवैकृतशान्तिः                | १६४         |
| चन्द्रार्कोपरागकालीने विशेषः     | ९८          | आकस्मिकप्रासादपतनादिशान्तिः          | १६५         |
| गोमुखप्रसवः                      | ९९          | वृक्षविकारशान्तिः                    | १६६         |
| प्रयोगः                          | १०१         | उत्पातशान्तिः                        | १६७         |
| सदन्तोत्पत्तिशान्तिः             | १०१         | पल्लीसरटशान्तिः                      | १६८         |
| कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः          | १०२         | ग्राम्यारण्यादिशान्तिः               | १६९         |
| सिनीवालीकुहूशान्तिः              | १०४         | कपोतशान्तिः                          | १७१         |
| सिनीवालीकुहूशान्तिप्रयोगः        | १०६         | काकवैकृत्यशान्तिः                    | १७२         |
| दर्शनजननशान्तिः                  | १०७         | काकमैथुनदर्शनशान्तिः                 | १७३         |
| दर्शनजननशान्तिप्रयोगः            | १०९         | काकरूपशान्तिः                        | १७३         |
| ज्येष्ठाशान्तिः                  | ११०         | अदमुतसागरे सिद्धप्रसूता गौरेवमादि    |             |
| ज्येष्ठाशान्तिप्रयोगः            | ११२         | शान्तयः                              | १७६         |
| मूलशान्तिः                       | ११४         | अश्वशान्तिः                          | १८०         |
| मूलाश्लेषाशान्तयोः प्रयोगः       | १२१         | गजशान्तिः                            | १८३         |
| वैधृतिव्यतीपातसङ्क्रान्तिशान्तयः | १२६         | महाशान्तिः                           | १८६         |



॥ श्रीः ॥

श्रीभगवन्तभास्करे

# शान्तिमयूखः

## मङ्गलाचरणम्

१ श्री गणेशाय नमः

२ यो लीलया सन्तनुतेऽत्र विश्वं तत्पालयत्यात्मनि विश्वरूपे ।  
लयं नयत्याशु च पूर्णरूपः शिवं तनोत्वाशु रविर्ममासौ ॥१॥

३ महोमहत्समाराध्य समाकर्ण्य गुरोर्गिरः ।

समुद्यतो नीलकण्ठो वक्तुं शान्तिकपौष्टिकम् ॥२॥

महोमयमुदाराभं लोकत्रयनमस्कृतम् ।

तमहं भास्करं वन्दे सतां सर्वार्थसिद्धिदम् ॥३॥

यज्ञे पितामहतनोः खलु कश्यपो य-

स्तस्मादजायत मुनिस्तु विभाण्डकाख्यः ।

तं पुत्रिणां ४ धुरमरोपयदृश्यशृङ्ग-

स्तस्यान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवराभिधानः ॥४॥

तस्मिन्वंशे महति वितते सेंगराख्ये नृपाणां

राजा कर्णः समजनि यथा सागरे शीतरश्मिः ।

कीर्त्या यस्य प्रथिततरया श्रोत्रजातेऽभिपूर्णं

कर्णस्याऽपि प्रविततकथा नावकाशं लभन्ते ॥५॥

विशोकाख्यदेवस्ततस्तत्सुतोऽभूत् विशोकी ५ कृता येन सर्वा धरित्री ।

ततोऽप्यास राजास्तशत्रुस्ततोऽभूत् रयाख्यो रयेणैव सर्वाहितघ्नः ॥६॥

बभूवाऽथ वैराटराजस्ततोऽभून्नृपो मेदिनीवल्लभो वीढराजः ।

नरब्रह्मदेवस्ततो मन्युदेवस्ततोऽभून्नृपश्चन्द्रपालाभिधानः ॥ ७ ॥

शिवगणाख्यनृपः समजन्यथो शिवगणाख्यपुरं प्रचकार यः ।

शिवगणेन समः सकलैर्गुणैः शिवशिवप्रथमो गणनासु यः ॥ ८ ॥

रोलिचन्द्र इति तत्तनयोऽभूत् कर्मसेननृपतिस्तमथानु ।

१. क्ष-श्री काशीविश्वेश्वराभ्यां नमः । श्री कालभैरवाय नमः । घ ख-  
श्री सरस्वत्यै नमः । ई-श्री रविर्जयति । फ-लक्ष्मीकेशवाय नमः २-३. ख ड य  
र द इ अ क क्ष-पाठः । ४. इ-करम् । ५. ई-विशेखी ।



लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजातः ॥९॥  
 यशोदेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्ततः ।  
 चक्रसेनस्ततो राजा <sup>१</sup>राजसिंहनृपो यतः ॥१०॥  
 ततोऽप्यभूद् भूपतिसाहिदेवः स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धसिन्धुः ।  
 अभूत्ततः श्रीभगवन्तदेवः सदैव भाग्योदयवान् क्षितीशः ॥११॥  
 यद्दानद्रविणाद्रिर्निर्जितवपू रत्नाचलो लज्जया  
 दूरेस्तब्ध इलावृते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः ।  
 किञ्च त्रस्यदरातिवामनयनानेत्राम्बुभिर्वद्धित-  
 स्तेजोग्निर्वडवामुखो <sup>२</sup>त्यहुतभुक्तुल्यः कथं नो भवेत् ॥१२॥  
 आज्ञप्तस्तेन राज्ञा विविधकुलमणिर्दाक्षिणात्यावतंसो  
 भट्टश्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृढमतिर्जैमिनीये द्वितीयः ।  
 आज्ञामादाय मूर्ध्ना सविनयममुना तस्य सर्वान्निबन्धान्  
 दृष्ट्वा सम्यक् विविच्य प्रविततकिरणस्तन्यते भास्करोऽयम् ॥१३॥  
<sup>३</sup>प्रतारकैरादृतमन्त्रकिञ्चिन्मया तु निर्मूलतया तदुज्जितम् ।  
 ऊनोक्ततातो न हि तेन काचित् खपुष्पहीनाऽपचितिर्न हीयते ॥१४॥  
 संस्काराऽऽचारकालाः समुचितरचनाः श्राद्धनीती विवादो  
 दानोत्सर्ग-प्रतिष्ठा जगति जयकराः सङ्गताथानुबद्धाः ॥  
 प्रायश्चित्तं विशुद्धिस्तदनु निगदिता शान्तिरेवं क्रमेण  
 ख्याता ग्रन्थेऽत्र शुद्धे बुधजनसुखदा द्वादशैते मयूखाः ॥१५॥  
 भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिन् शिष्टसम्मते <sup>४</sup> च ततः ।  
 शान्तिविवेकमयूखः प्रतन्यते नीलकण्ठेन ॥ १६ ॥  
 अस्पष्टपापनिदानकैहिकमात्रानिष्टनिवर्त्तकं पापाप्रयोजकं वैधं  
 कर्म शान्तिकम् । क्षयादि <sup>५</sup>हरदानादावति प्रसङ्गं वारयितुं निदानका-  
 न्तम् आमुष्मिकानिष्टनिवर्त्तकं <sup>६</sup> तं वारयितुमैहिकेति । प्रायश्चित्तं <sup>७</sup>  
 वारयितुं मात्रपदम् । प्रायश्चित्तं त्वामुष्मिकानिष्टनिवर्त्तकमपि,  
 अभिचारप्रत्यभिचारादौ वारयितुं पापाप्रयोजकमिति । तयोः फलतो  
 हिंसात्वेन तदनुष्ठाने प्रायश्चित्तोक्तेश्च पापप्रयोजकत्वात् । अनिष्ट-  
 निवर्त्तकत्वं च शान्तिकस्य तन्निदानपापनाशरूपसामग्रीविघटकत्वेन  
 पुष्टिफलकं वैधं कर्म पौष्टिकम् ।

१. ड-जय । २. ज-ख्यो । ३. य द क ख इ अ क्ष ज-पाठः । ४. ड-  
 विमले । शान्तिकपुष्टिमयूखः । ५. क्ष-ति । ६. क्ष ज य न च फ क इ  
 र-के । ७. ज-ते ।



## तत्र परिभाषा

मार्कण्डेयपुराणे—

शिरस्नातश्च कुर्वीत दैवपित्र्यमथाऽपि वा  
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥

तत्रैव— देवार्चनादिकर्माणि<sup>१</sup> तथा गुर्वभिवादनम् ।

कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः ॥

बृहन्मनुः—प्राणानायम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः ।

मार्कण्डेयः—सङ्कल्प्य विधिवत्कुर्यात् स्नानदानव्रतादिकम्<sup>२</sup> ॥

देवलः—मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः ।

उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभागभवेत् ॥ इति ।

मासपक्षतिथयः प्रयोगाधिकरणभूताः सर्वेऽपि । यत्तु अनेकदिन-  
साध्ये कर्मण्याद्यदिने सङ्कल्पकालीनां<sup>३</sup> तिथिमधिकरणत्वेनोल्लिख्य  
ज्योतिष्टोमेनाहं यक्ष्ये इत्यादिसङ्कल्पवाक्यं प्रयुञ्जते यायजूकाः ।  
तत्तु पदानामन्वयायोगादनादर्थव्यम् । यद्यपि केचित्तेन तेन रूपेण  
प्रयोगाङ्गतया विहितानामेव मासादीनामुल्लेख इति तदपि न, माना-  
भावात् । अविहितमासादिक आधानादौ मासपक्षतिथीनां ज्योति-  
ष्टोम एकादशीव्रतादौ च मासपक्षयोर्ल्लेखाभावप्रसङ्गाच्च । अतो  
ज्योतिष्टोमादावेकादश्यादिपूर्णिमान्तानामुल्लेखः । एवमन्यत्रापीति  
दिक् । अत्र शूद्राणामप्यधिकारः ।

श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ।

इत्यादिवाक्येषु श्रावणस्य वृत्त्यर्थतया रागप्राप्तत्वेन तद्विधौ  
वाक्यवैयर्थ्यापत्तेर्निजविवक्षया श्रवणविधानात्तेषां पुराणश्रवणे<sup>४</sup>ऽधि-  
कारेण<sup>५</sup>ज्ञानसद्भावात् ।

वैदिकमन्त्राभावे कथं तद्वत्सु कर्मस्वधिकार इति चेत्, शृणु ।

धर्मेऽसवस्तु धर्मज्ञाः सतां धर्ममनुष्ठिताः ।

मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥

इति मनुना मन्त्रवर्जनात् । यत्तु—<sup>७</sup>मेधातिथिर्मन्त्रवर्जितेषूप-

१. कार्याणीति मुद्रितपाठः । २. 'तद्वदन्नभुजिक्रियाम्' इत्यपरः पाठः ।  
३. ड क्ष ध—कालानां । ४. इ क य द ड क्ष—विधिना । ५. क्ष ण  
क य द ड—णाधिकारेण ६. य इ—अज्ञान । ७. पृ ८३१ पं. २०-३० ।



वासादिष्वधिकारार्थमिदं न तु समन्त्रकेषु मन्त्र<sup>१</sup>पर्युदासेनाधिकारार्थ-  
मिति तन्न । अमन्त्रकोपवासादिषु श्रवणविधिनैवाधिकारसिद्धावेत-  
द्वाक्यानर्थक्यापत्तेः । अत एव मोक्षधर्मेऽपि<sup>२</sup> ।

मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीं क्रियाम् ॥ इति ।

अत्रैतद्वाक्यस्य पौराणत्वेन तत्सामान्योपस्थितपौराणक्रियोद्देशेन  
मन्त्रवर्जनविधौ पौष्टिकीमित्यस्योद्देश्यविशेषणत्वेनाविवक्षितत्वम्<sup>३</sup> ।  
एवं मनुवाक्यस्यैतस्य चैकैव श्रुतिर्मूलत्वेन कल्प्यते ।

गृह्यपरिशिष्टे-आदौ विनायकः पूज्य अन्ते तु कुलदेवताः ।

शौनकः—पुण्याहवाचनविधिं वक्ष्यामोऽथ यथाविधि ।

प्रयोक्तुः कर्मणामादावन्ते चोदयसिद्धये ॥

कर्मप्रदीपे-कर्मादिषु तु सर्वत्र मातरः सगणाधिपाः ।

पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥

प्रतिमासु च शुद्धासु लिखित्वा वा पटादिषु ।

अपि वाऽक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥

कुड्यलम्बना वसोद्धाराः सप्तवारं घृतेन तु ।

कारयेत्पञ्च धारा वा नातिनीचा न चोच्छ्रिताः ॥

आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ।

षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्रद्धदानमुपक्रमेत् ॥ इति ।

षड्भ्य इति कातीयच्छन्दोगपरम् । अन्येषां तु नवदैवत्यम्—

अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽह्नि ।

अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥

इति वचनात् । सर्वत्राचार्यो यजमानसमशाखीय एव अन्यथा-  
ऽऽचार्यस्य यजमानशाख्यध्ययनाभावे तच्छाखीयपदार्थानां निर्वाह एव  
न स्यात् । स्वशाखयाननुष्ठाने<sup>४</sup> तु वैगुण्यम् । तथा च पराशरः—

यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत् ।

अप्रमाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धे तमसि मज्जति ॥ इति

ऋत्विजस्तु भिन्नशाखीया अपि । सर्वेऽप्याचार्यब्रह्मर्त्विजो मधु-  
पर्केण पूज्याः ।

१. ड य द अ क्ष क इ ध—पर्युदासार्थमिति । २. प ध न क इ द  
फ—ष्वपि । क्ष ड—ष्विति । ३. ड य क द ध फ—क्षितम् । ४. क्ष अ  
द क—यानुष्ठाने । ज्ञ फ न—यैवानुष्ठाने ।



## परिभाषा

५

ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत्—

इत्याश्वलायनोक्तेः ।

सम्पूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्म कारयेत् ॥  
 इति विश्वामित्रोक्तेश्च । यो ऋत्विक् यच्छाखीयं कर्म करोति तच्छा-  
 खोक्तेन प्रकारेण काण्डानु<sup>१</sup>समयेन मधुपर्कं कुर्वन्ति यायजूकाः केचित् ।  
 परे च<sup>२</sup> यजमानशाखोक्तेन । यजमानेन स्वशाखीया ऋत्विग्भिश्च  
 स्वस्वशाखीयाः पदार्थाः । अनेकेषु ऋत्विक्षु पदार्थानुसमयेनानुष्ठेया इति  
 तु युक्तम् । तत्तच्छाखाध्ययनजन्यज्ञानस्याङ्गत्वादेकप्रयोगविधिपरि-  
 ग्रहाच्च ऋत्विग्भ्यो देयमुक्तं लिङ्गपुराणे—

वस्त्रयुग्मं तथाऽप्यूरं केयूरं कर्णभूषणम् ।

अङ्गुलीभूषणं चैव मणिवन्धस्य भूषणम् ॥

कण्ठाभरणयुक्तानि प्रारम्भे धर्मकर्मणः ।

पुरोहिताय दत्त्वाऽथ ऋत्विग्भ्यश्चाऽपि दापयेत् ॥ इति

आपः पूर्यन्तेऽस्मिन्नित्यप्यूरं जलपात्रम् ।

मत्स्यपुराणे—यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।

पश्चिमद्वारमाश्रित्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥

संग्रहे— समन्ततश्च सिद्धार्थान् किरेद्र<sup>३</sup>क्षोघ्नमन्त्रतः ।

प्रतिष्ठासारे—सर्वतः पञ्चगव्येन प्रोक्षयेद्यागमण्डपम् ।

आपो हिष्ठा तृचेनैव ततः स्वस्त्ययनं जपेत् ॥

अत्र हेमाद्रौ वास्तुपूजाप्युक्ता—

समण्डपं प्रविश्याऽथ तोरणादि प्रपूज्य च ।

वास्तुयागं ततः कुर्यात् प्रासादे मण्डपेऽथ वा ॥

वास्तुमण्डलं<sup>४</sup> च नैऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माद्यांश्च समर्चयेत् ।

इति शारदाक्तेः । वास्तुहोमस्तु भिन्नस्थण्डिले कार्यः । मुखायतने वा ।

तत्राप्यादौ पृथक्प्रयोगतया प्रधानसमतन्त्रतया वा । शारदातिलके तु

होम एव नोक्तः । सर्वं च शान्तिकं पौष्टिकं महादानादिलौकिकाग्नौ

कार्यम् । श्रौतस्मार्त्ताग्निप्राप्तौ मानाभावात् । यत्तु मनुः—

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गार्ह्यं कर्म यथाविधि ।

पञ्चयज्ञविधानं च पंक्तिं वाऽज्वाहिकीं गृही ॥ इति

तत्स्पष्टं गृह्योक्तपरम् । वैवाहिक इति च दारदायाद्यकालिकयो-

१. मीमांसा अ० ५ । २. न—पाठः । ३. क्ष फ न घ क ख अ—राक्षोघ्न ।

४. ज—ले ।



रप्युपलक्षकम् । तत्सजातीयसंस्कारस्यैव साधनतावच्छेदकत्वात् ।

यदपि याज्ञवल्क्यः—स्मार्तं कर्म विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही ।

दायकालाहूते वापि श्रौतवैतानिकाग्निषु ॥ इति ।

तत्रापि सामान्यं स्मार्तपदं गाह्यं उपसंह्रियते । एतेनाहवनीया-  
दयो निरस्ताः । यदाहवनीये जुह्वतीत्यादावश्वप्रतिग्रहेऽष्टौ वैदिक-  
त्वसाम्येन वैदिकाश्वदानप्रतिग्रहोपस्थितिवत् वैदिकहोमोपस्थितेश्च ।  
यद्यप्यत्र गाह्यं स्मार्तं एव श्रौतं च वैतानिक एवेति नियमेन स्मृत्यु-  
क्तेऽपि कर्मणि श्रौतस्मार्ताग्नयोः प्राप्तिः सम्भाव्यते तथाऽपि न साह-  
वनीयावसथ्यत्वादिरूपेण किन्तु लौकिकसाधारणज्वलनत्वेनैव अवैधा-  
हुतिप्रक्षेपे आहवनीयत्वादिविधातापत्तेश्च । अत एव सर्वाधानिन  
औपासनाभावाद्वैतानिकाप्राप्तेश्च तेन गाह्यं लौकिक एव कार्यम् ।  
अमुमेव सर्वमर्थं स्मृत्यर्थसारकृदपि सञ्जग्राह—

गाह्यं मौपासने कुर्यात्सर्वाधानी तु लौकिके ।

स्मार्तं च लौकिके कुर्याच्छ्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ इति ।

यत्तु नारायणवृत्तौ “सर्वाधानिना सीमन्तोन्नयनादिगाह्यं कर्मार्थं  
स्मार्ताग्निरुत्पादनीयः” इति तत्र मूलमन्वेष्ट्यम् । यदपि विज्ञानेश्वरो  
ग्रहयज्ञ औपासन इत्युक्ते तत्रापि मूलमन्वेष्ट्यम् । कातीयपरं वा । तत्सूत्रे  
तथाप्नानात् अत एव स विनायकशान्तौ लौकिकाग्निमेवाऽवोचत् ।  
अतः मृत्युक्तं लौकिक एवेति । कृत्यरत्नाकरे—

शुभपात्रं तु कांस्यं स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद् बुधः ।

तस्याभावे शरावेण नवेनाभिमुखं च तम् ॥

गोभिलीये—आहूय चैव होतव्यो यो यत्र विहितोऽनलः ।

तथा— लक्षहोमे च वह्निः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ।

पूर्णाहुत्या मृडो नाम शान्तिके वरदः सदा ॥

अन्येषु संस्कारादिकर्मस्वग्नेनमिविशेषाः प्रयोगरत्ने ज्ञेयाः । होमे  
विशेषो गोभिलीये—

न मुक्तकेशो जुहुयान्नानु<sup>१</sup>पातितजानुकः ।

उत्तानेनैव हस्तेन अङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् ॥

संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविः ॥ इति ।



## विनायकस्तनपनम्

७

बहुकर्तृके होमे प्रत्याहुतित्यागाशक्तेर्होमारम्भ एव सर्वा देवता-  
श्चतुर्थ्यन्तेनोद्दिश्य सर्वाणि द्रव्याणि त्यजेदिति हेमाद्र्यादयः ।

इति परिभाषा ।

## अथ विनायकस्तनपनम्

याज्ञवल्क्यः—विनायकः कर्मविघ्नसिद्धयर्थं विनियोजितः ।

गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥

तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ॥

स्वप्नेऽवगाह्यतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च<sup>१</sup> पश्यति ।

काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ॥

अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्राऽवतिष्ठति ।

व्रजन्नपि तथाऽऽत्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ॥

उपसृष्टः उपद्रुतः । स्वप्ने स्रोतसाऽपह्नियते । तत्र मज्जति वा  
न त्ववगाहनमात्रं विवक्षितं, तस्य शुभसूचकत्वात् अन्त्यजैश्चाण्डालैः ।

प्रत्यक्षलक्षणान्याह—

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्तकः ।

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः ॥

कुमारी नैव भर्तारमपत्यं गर्भमङ्गना ।

आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ॥

वणिक् लाभं च नाप्नोति कृषिं चापि कृषीबलः ॥

संसीदति कारणं विना दीनमनस्को भवति । एतदुपलक्षणं यस्य  
यदिष्टं स चेदिष्टसामग्रीसत्वे तत्र प्राप्नोति तदा तदुपद्रुतो बोध्यः ।  
एतदुपद्रवपरिहारार्थं<sup>३</sup> कर्माह—

स्तनपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येह विधिपूर्वकम् ॥

अत्र पुण्येऽह्नीत्यविशेषेऽपि विशेषोऽपराकै<sup>४</sup> भविष्ये—

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां च वारेण धिषणस्य च ।

तिष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ॥ इति ।

अत्रादौ देवतापूजोक्ता तत्रैव—

व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भीमजं तथा ।

कृष्णस्य पितरे केतुम्<sup>५</sup> अर्कमारं सितं तथा ॥

१. ज्ञ—मुण्डांश्च । २. ज्ञ—प्रत्यदन । ३. ज्ञ—+ च । ४. फ इ न—हेमाद्रौ ।  
५. 'ताते' इति अपराकीयपाठः ।



## शान्तिमयूखः

धिषणं क्लेदपुत्रं च कोणं लक्ष्म च भारत ।

विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारणम् ॥ इति ।

व्योमकेशः शिवः । भीमजो गणेशः । आरो भौमः । सितः शुक्रः ।  
धिषणो गुरुः । क्लेदपुत्रो बुधः । कोणः शनैश्चरः । लक्ष्म तद्वाञ्छन्द्रः ।  
बाहुलेयः स्कन्दः । नन्दकधारी कृष्णः ।

गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च ।

सवौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा ॥

भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्ति वाच्या द्विजैः शुभाः ।

गौरसर्षपपिष्टेन गोघृतयुक्तेनोत्सादितस्योद्वर्तितस्य । सवौषधानि  
छन्दोगपरिशिष्टे—

कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा-शैलेय-चन्दनम् ।

वचा कर्चूर-मुस्ते च सवौषध्यः प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

सर्व-गन्धैश्चन्दन-कुङ्कुमाङ्गरु-कस्तूरिका-जातीफलादिभिः । वेद्यां  
सितवस्त्रप्रच्छादितश्रीपर्णीपीठं भद्रासनम् । स्वस्ति वाच्याः स्वस्ति  
वाचनीयाः । ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचनं कारयेदित्यर्थः ।

<sup>१</sup>अश्वस्थानाद् गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद् हृदात् ।

मृत्तिकां रोचनां गन्धं गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ॥

या आहता एकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्हृदात् ।

चर्मण्यानुडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं ततः ॥

आनडुहं चर्म च वेद्यां प्राग्ग्रीवमूर्ध्वलोम च स्थाप्यमिति विज्ञा-  
नेश्वरः<sup>२</sup> । या आपः ते चत्वारोऽपि कलशा भद्रासनात्पूर्वादिचतुर्दिक्षु  
स्थाप्या इति साम्प्रदायिकाः । पूर्वादिदिक्त्रया<sup>३</sup>वस्थितकलशोदकेना-  
भिषेकक्रमेण मन्त्रानाह—

<sup>४</sup>सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।

तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमानीः पुनन्तु ते ॥

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।

भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥

१. याज्ञवल्कीये आचारे २७९।२८० ।

२. पृ० ८३ पं २७-२८ ।

३. क्ष-दिक्त्रयम् । ४. या० आचारे २८१-२८३।५



## विनायकस्तनपनम्

६

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।

ललाटे केशयोरक्षणोरापस्तद् घ्नन्तु ते सदा<sup>१</sup> ॥

सहस्राक्षं बहुशक्तिकम् । पावमानी इत्यनन्तरमाप इति शेषः । भग्नं कल्याणम् । दौर्भाग्यमकल्याणम् । उदग्दिगवस्थितेनाभिषेके पूर्वोक्तास्त्रय एव मन्त्राः । सर्वैश्चतुर्थमिति विज्ञानेश्वरोक्तलिङ्गात्<sup>२</sup> । किञ्च—

<sup>३</sup>स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु ।

जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च ॥

सव्यपाणिगृहीतकुशान्तर्हिते सार्षपं तैलमुदुम्बरनिर्मितेन स्रुवेण यजमानमूर्द्धनि जुहुयादाचार्यः ।

<sup>४</sup>मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ ।

कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥

नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः ।

“नमः स्वस्ति स्वाहे”<sup>५</sup> इति चतुर्थी । एतानि षट् विनायकनामानि इति विज्ञानेश्वरः । अपरार्कस्तु शालकटङ्कट इत्येकवचनान्तं पपाठ । तेन तन्मते पञ्चैवाहुतयो भवन्ति । अत्र लौकिकेऽग्नौ स्थालीपाक-विधिना चरुं कृत्वा तेभ्य एवाहुतिषट्कं हुत्वेन्द्रादिदशलोकपालेभ्य-स्तन्नाम्ना बलिं दद्यात्—इति मिताक्षरायाम् ।

तत्र चरुहोमे इन्द्रादिभ्यो बलिदाने च मूलं चिन्त्यम् । अन्ते स्वाहा-समन्वितैर्नामभिर्जुहुयात् । नमस्कारसमन्वितैश्चेत्यादिभ्य एव बलिं दद्यादिति वक्ष्यमाणेन सम्बध्यत इति तु युक्तम्<sup>६</sup> ।

दद्याच्चतुष्पथे सूर्ये कुशानास्तीर्य सर्वशः ।

कृताकृतास्तण्डुलाश्च पललौदनमेव च ॥

मत्स्यान्पक्वास्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ।

पुष्यं चित्रं सुगन्धिं च सुरां च त्रिविधामपि ॥

मूलकं पूरिकापूपास्तथैवोण्डिरकसजः ।

दध्यन्नं पायसं चैव गुडपिष्टं समोदकम् ॥

एतान्सर्वान्समाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ।

कृताकृतान्सकृदवहतान् । पललौदनः । तिलपिष्टं मिष्ट ओदन

१. ‘सर्वदा’ इति याज्ञवल्कीये पाठः । २. पृ. ८५ पं १२ । ३. या० आचारे २८४ । ४. या० आ० २८५-२८६ । ५. व्याकरण अ. २. पा ३ सू. १६. । ६. या. आ. २८६-२८९ ।



इति मिताक्षरायाम् । अपक्वमांसं मिश्र ओदन इति तु युक्तम् । 'पल्लं  
क्रव्यमामिषमि'ति कोशात् । आमान् पक्वान् । मांसमेतावदेव तु ।  
पक्वमपक्वमांसमन्यदित्यर्थः । त्रिविधा सुरा गौडी पैष्टी माध्वी च ।  
मूलकं कन्दाकारो भक्ष्यविशेष इति मिताक्षरायाम् । स्वरूपत एव  
ग्राह्यमिति तु युक्तम् । उभयमपि ग्राह्यमिति महार्णवे । अपूपाः  
स्नेहपक्वा गोधूमविकारा इति विज्ञानेश्वरः । उण्डेरकाः पिष्टविकारा  
नानाविधास्ते स्रज इत्युच्यन्ते । गुडपिष्टं गुडमिश्रं शाल्यादिपिष्टम् ।  
अत्र सुरा मांसं चाऽब्राह्मणविषयम् । ब्राह्मणैस्तु मांससुरास्थाने तु  
सलवणं पायसं दुग्धं च ग्राह्यम् ।

पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् ।

दुग्धं लवणसम्मिश्रं सुरास्थाने प्रकल्पयेत् ॥

इति स्मरणादिति महार्णवादिषु । विनायकाम्बिकागायत्रीभ्यां विनाय-  
कमम्बिकां च नमस्कृत्य पूर्वोक्तद्रव्यजातं तयोरग्रत उपहृत्य तच्छेषं  
शूर्पे निधाय चतुष्पथे शूर्पं संस्थाप्य बलिं दद्यादेतैर्मन्त्रैः—

बलिं गृह्णन्त्विमं<sup>१</sup> देवा आदित्या वसवस्तथा ।

मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥

असुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरोरगाः ।

शाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतना शिवाः ॥

जम्भकाः<sup>२</sup> सिद्धगन्धर्वा नागा विद्याधरा नगाः ।

दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥

जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ।

मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥

सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ।

दद्यादित्यत्रापि देहलीदीपवदन्वेति ।

विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोम्बिकाम् ।

दूर्वासिर्षपपुष्पाणां दत्तार्धं पूर्णमञ्जलिम् ॥

अनन्तरं विनायकमम्बिकां च दूर्वाद्यञ्जलिमर्घं च दत्त्वोपतिष्ठेत् ।

उपस्थानमन्त्रमाह—रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।

पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥

१. क्ष ड फ इ—इमे । २. ड न इ क्ष ध फ—जम्भकाः ।



भगवन्नित्यूह्य विनायकमप्युपतिष्ठेतेति विज्ञानेश्वरः । अत्र मदनः—  
विनायकोपस्थानं कृत्वाऽम्बिकोपस्थानं कार्यमित्याह । किञ्च—

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमात्यानुलेपनः ।

ब्राह्मणान्भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥

गुरोराचार्याय । अपि शब्दादक्षिणामपि । एवंविधं कर्म कुर्वतः  
फलमुक्तम्—

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः ।

कर्मणां फलमाप्नोति श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥

अस्याः कर्माङ्गत्वेन पौष्टिकत्वेन च वर्णचतुष्टयस्याप्यत्राधिकारः ।  
शूद्रस्य तु मन्त्रवर्जं तान्त्रक्रम्य ।

मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीं क्रियाम् ॥ इति ।

मोक्षधर्मश्रवणादिति वदन्ति । महार्णवोऽपि यजमानस्तु शूद्रश्चेदिति  
वदन् तस्याधिकारमभिप्रैति ।

इति विनायकशान्तिनिर्णयः ॥

### अथ प्रयोगः

कर्ता देशकालौ सङ्कीर्त्य विनायकोपसर्गनिवृत्यर्थममुककर्मणो  
निर्विघ्नतासिद्धयर्थं वा विनायकस्तपनं करिष्य इति सङ्कल्पयेत् । ततः  
पुण्याहवाचननान्दीश्राद्धान्तं यथोक्तं कुर्यात् । अपरे पुण्याहवाचनं  
नेच्छन्ति । अग्रे तस्य कर्तव्यत्वात् । अथाचार्यः ऋत्विक्चतुष्टयं च  
वृणुयात् । ऋत्विजो न सन्तीति केचित् । तदाचार्य एव वक्ष्यमाणम-  
भिषेकं कुर्यात् । यजमानः प्रतिमास्वक्षतपुञ्जेषु वा शिवं, पार्वतीं,  
गणेशं, वसुदेवं, केतुम्, अर्कं, भौमं, शुक्रं, गुरुं, बुधं, शनिं, चन्द्रं, राहुं,  
स्कन्दं, कृष्णश्चावाह्य पूजयेत् । तथाऽऽचार्यः पञ्चवर्णचूर्णैः पूर्वादिचतुर्दिक्षु  
चत्वारि मध्यस्थवेद्यां चैकमिति<sup>२</sup> स्वस्तिकपञ्चकमालिख्य मध्यस्थ-  
स्वस्तिकोपरि अनुडुहं रक्तं चर्म प्राचीनग्रीवमूर्ध्वलोम संस्थाप्य  
तस्योपरि श्रीपर्णीपीठं संस्थाप्य सितेन वाससा सञ्छादयेत् । एतद्-  
भद्रासनमिति । अथ चतुर्षु स्वस्तिकेषु पूर्वादिदिक्षु चत्वारोऽपि  
ऋत्विजः संस्थापयेयुः । आचार्यो वा । तत्रायं प्रकारः । “मही

१. या. आचारे २९१ । २. ज क्ष य इ क ड फ द अ र—भगवति ।



द्यौः पृथिवी च नेति”<sup>१</sup> भूमिं स्पृशन्, सम्प्रार्थ्य “ॐ ओषधयः समिति”<sup>२</sup> यवान् क्षिप्त्वा “आकलशेष्विति”<sup>३</sup> तेषु कलशं संस्थाप्य “इमं मे गङ्गेति”<sup>४</sup> तीर्थोदकेनापूर्य “गन्धद्वारामिति” चन्दनागरुकस्तूरी-पूरकारोचनादीन् गन्धादीन् गुग्गुलं च निक्षिपेत् । “या ओषधीरिति” सर्वौषधीः । “ओषधयः समिति”<sup>५</sup> यवान् “काण्डात्काण्डादिति” दूर्वाः । “अश्वत्थेव”<sup>६</sup> इति पञ्चपल्लवान् । “स्योनापृथिवीत्यनेन” “उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥”

इत्यनेन पञ्चमृदः क्षिपेत् । “या फलिनीरिति” फलम् । “स हि रत्नानीति”<sup>७</sup> पञ्चरत्नानि । “हिरण्यरूप”<sup>८</sup> इति हिरण्यम् । “युवा सुवासा”<sup>९</sup> इत्यनेन वस्त्रेण रक्तसूत्रेण च वेष्टयेत् । “पूर्णादिवीति” धान्यपूर्णं पात्रं कलशोपरि निदध्यात् । अत्र च वरुणावाहनपूजने अपि केचिदाहुः । ततः कलशे “सर्वे १०समुद्रा” इति गङ्गाद्यावाहनम् । ततः कुम्भाभिमन्त्रणम् ।

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।

मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥

कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥” इति ।

ततः कुम्भप्रार्थना—

“देवदानवसम्वादे मथ्यमाने महोदधौ ।

उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भं विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥

त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।

त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥

शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ।

त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥

१. इ य द अ—आचार्यः । ऋ. सं. १।२।६। २. ऋ. सं. ८।५।११ ।  
 ३. ऋ. सं. ६।८।७ । ४. ऋ. सं. ८।३।६ । ५. ऋ. सं. ८।५।११ । ६. ऋ. सं. ८।५।८ । ७. ऋ. सं. ४।४।२५ । ८. ऋ. सं. २।७।२३ । ९. ऋ. सं. ३।१।३ । १०. अ ज फ क य इ र स—सप्त ।



त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ।

सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥” इति ।

तत ऋत्विज “आ नो भद्रा”<sup>१</sup> इति शान्तिसूक्तं पठेयुरिति केचित् ।  
आनो भद्रेति शान्तिसूक्तस्य राहूगणो विश्वेदेवास्त्रिष्टुप् आद्याः पञ्च  
पञ्च सप्तमी<sup>२</sup> च जगत्यः षष्ठी विराट् शेषास्त्रिष्टुभः शान्तिसूक्तजपे  
विनियोगः । आ नो भद्राः शन्नोवातः पवतामित्यादिको वा । तस्मिन्नेव  
समये आचार्यो भद्रासनस्योत्तरत ईशान्यां वा वस्त्राच्छादितपीठादौ  
विनायकप्रतिमामम्बिकाप्रतिमां चाग्न्युत्तारणपूर्व<sup>३</sup> प्रतिष्ठाप्य षोडशो-  
पचारैः पूजयेदिति निबन्धकृतः । तत्र विनायकमन्त्रः—

गणानां त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती गणपत्यावाहने विनियोगः ।  
ॐ “गणानां त्वा”<sup>४</sup> “ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो  
दन्तिः प्रचोदयात् ।” इति वा । गौर्यास्तु—गौरीमिमाय दीर्घतमा उमा  
जगती गौर्यावाहने विनियोगः । “गौरीमिमाय”<sup>५</sup> “सुभगायै विद्महे  
काममालिन्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।” इति ।

अत्र मिताक्षरायां होमोप्युक्तः ( पृ ८६ पं ८ ) शिष्टाश्च कुर्वन्ति ।  
तस्मिन् पक्षे आचार्यो गृह्योक्तविधिना कुण्डे स्थण्डिले वाग्निं प्रति-  
ष्ठाप्य प्रादेशमात्रं समिद्धयमादाय “अस्मिन् होमे देवतापरिग्रहार्थ-  
मन्वाधानं करिष्य” इति सङ्कल्प्य “चक्षुषी आज्येन” इत्यन्तमुक्त्वा,  
“अत्र प्रधानं मितं सम्मितं शालंकण्टं कटं कूष्माण्डं राजपुत्रमेताः  
प्रधानदेवता एकैकया चर्वाहुत्या यक्ष्ये । शेषेण स्विष्टकृतम्” इत्या-  
द्युक्त्वाऽग्नावादध्यात् । अपरार्कमते तु पञ्चैवाहुतयस्तन्मते त्वाधाने  
होमद्वये च तथैवानुसन्धेयम् । ततः परिसमूहनादि चरुश्रपणान्तं  
कृत्वा गोघृतलोलीकृतेन गौरसर्षपकल्केनोद्वृत्तिताङ्गं सर्वौषधिचूर्णैः  
कस्तूरिकागारुचन्दनादिभिर्विलिप्तशिरसं यजमानमाचार्यो भद्रासने  
उपवेशयेत् । ततो यजमानः स्वस्तिवाचनं कुर्यात् । अनन्तरं रूपशील-  
गुणशालिनीभिः सुवासिनीभिर्नीराजनं कारयेत् । ततो भद्रासनात्पूर्व-  
देशावस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः । मन्त्रश्च—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।

तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमानीः पुनन्तु ते ॥

१. ऋ. सं. १।६।१५ । २. ज ग ख घ—आज्ञाः सप्तमी । ३. क्ष ड य  
न ई—पूर्वकं । ४. ऋ. सं. २।६।२९ । ५. ऋ. सं. २।३।२२ ।



ततो दक्षिणदेशावस्थितं कलशमादाय

मन्त्रः— भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।

भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥

इत्यनेनाभिषिञ्चेत् । ततः पश्चिमदिगवस्थितं कलशमादाय

मन्त्रः— यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।

ललाटे केशयोरक्षणोरापस्तं घ्नन्तु ते सदा ॥

इति । तत उदक्देशावस्थितं कलशमादाय पूर्वोक्तैस्त्रिभिर्मन्त्रैरभिषि-  
ञ्चेत् । बृहत्पराशरेणाऽन्येऽपि मन्त्रा उक्ताः ।

मन्त्रः— एतद्वै पावनं स्नानं सहस्राक्षमृषिस्मृतम् ।

तेन त्वा शतधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥

शक्रादिदशदिक्पाला ब्रह्मशाः<sup>१</sup> केशवादयः ।

आपस्तं घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ॥

वेदमन्त्रः—ॐ सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु ।

दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

मन्त्रः— समुद्रा गिरयो नद्यो मुनयश्च पतिव्रताः ।

दौर्भाग्यं घ्नन्तु ते सर्वं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ॥

पादगुल्फोरुजङ्घादौ नितम्बोदरनाभिषु ।

स्तनोरुबाहुहस्ताग्रग्रीवा—अंसाङ्घ्रिसन्धिषु ॥

नासाललाटकर्णभ्रूकेशान्तेषु च यत्स्थितम् ।

तदापो घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ॥

इत्येतैरप्यभिषिञ्चेदिति केचित् । चतुर्थकलशाभिषेचन एवैते  
पठनीयाः ।

अथाचार्यो यजमानस्य पश्चिमतस्तिष्ठन् सव्यपाणिगृहीतकुशा-  
न्तर्हिते यजमानशिरसि औदुम्बरेण स्रुवेण सार्षपं तैलं जुहुयात् ।

मन्त्राः— ॐ मिताय स्वाहा । यजमानः—इदं मिताय न मम ।

ॐ सम्मिताय स्वाहा । इदं सम्मिताय न मम ॥

ॐ शालाय स्वाहा । इदं शालाय न मम ।

ॐ कटकटाय स्वाहा । इदं कटकटाय न मम ॥

ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा । इदं कूष्माण्डाय न मम ।

ॐ राजपुत्राय स्वाहा । इदं राजपुत्राय न मम ॥

अथाचार्योऽन्यर्चनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा चरुणा मितादिभ्य एव  
जुहुयाद्यजमानस्तु पूर्ववत्त्यजेत् । आचार्यः स्विष्टकृदादिप्रणीतावि-



मोकान्तं कर्मशेषं समापयेत् । यजमानस्त्वभिषेकशालायामिन्द्रादि-  
दशलोकपालेभ्यो नाम्ना दिक्षु विदिक्षु च वलीन् दद्यात् । एतानि  
अग्निस्थापन-चरुहोमदिकपाल-बलिदानानि मिताक्षरामनुरुध्योक्तानि ।  
ततो “मिताय एष बलिर्न ममे”ति पायसेन माषभक्तेन वा मितादिभ्यो  
बलिं दत्त्वा विनायकाम्बिकयोरग्रतः सकृदवहततण्डुलानां मांसेन  
तिलपिष्टेन वा मिश्रमोदनं मत्स्यमांसं पक्वमपक्वं गौडी पैण्टी माध्वीति  
त्रिविधां सुरां च । ब्राह्मणस्य मांसस्थाने सलवणं पायसं सुरास्थाने  
सलवणं दुग्धं चित्रं पुष्पं सुगन्धिद्रव्यं मूलकं पूरिकाः अपूपाः उंडेर-  
कस्रजः ॥ दध्यन्नं पायसं गुडमिश्रतण्डुलादिपिष्टं मोदकांश्च पात्रे  
संस्थाप्य “तत्पुरुषाय विद्मह” इति मन्त्रेण विनायकाय । “सुभगायै  
विद्मह” इति मन्त्रेण चाम्बिकायै निवेदयेत् । अथाचार्यो नूतनशूर्पे  
सर्वमुपहारशेषं संस्थाप्य चतुष्पथं गत्वा तत्र गोमयेनोपलिप्य  
कुशानास्तीर्य तत्र शूर्पं प्राङ्मुखं संस्थापयेत् । यजमानस्त्वेतैर्मन्त्रैर्बलिं  
दद्यात् ।

मन्त्रः— बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा ।

मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥

असुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरोरगाः ।

शाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥

जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा विद्याधरा नगाः ।

दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥

जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ।

मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥

सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥ इति ।

“देवादित्य-वसु-मरुदश्वि-रुद्र-सुपर्ण-पन्नग-ग्रहासुर-यातुधान-पिशाच-  
मात्रुरग-शाकिनी-यक्ष-वेताल-योगिनी-पूतना-शिव-जम्भक-सिद्ध-गन्धर्व-  
नाग-विद्याधर-नग-दिक्पाल-लोकपाल-विघ्नविनायक-जगच्छान्तिकर्तृ-  
ब्रह्मादिमहर्षिभूत-प्रेतेभ्य इदं न ममेति” त्यागः ।

ततः शिरसा भूमिं गत्वा पुष्पयुतमर्घ्यं “तत्पुरुषायै”ति मन्त्रेण  
विनायकमम्बिकां चोपतिष्ठेत् । मन्त्रस्तु—

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।

पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥

१. नफ—स्योनापृथिवीत्यनेन पञ्चमूदः क्षिपेत्, पृष्ठ ८५ ।



अस्मिन्मन्त्रे “भगं भगवन् देहि म” इत्यूह्य विनायकमुपतिष्ठेत् । अनन्तरं यजमानः प्राङ्मुखोपविष्ट उदङ्मुखानाचार्यादीन् पूजयित्वा आचार्याय वासोयुग्मरूपां ऋत्विग्भ्यश्चान्यां यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात् । तत “उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत” इत्यनेन “यान्तु देवगणा” इत्यनेन च विनायकमम्बिकां चोत्थाप्य<sup>१</sup> विसृज्य प्रतिमादिसर्वां सामग्रीमाचार्याय दद्यात् । ततो यथाशक्ति भूयसीं दक्षिणां दीनानाथेभ्यो दत्वा यथाशक्ति विनायकप्रीत्यर्थमम्बिकाप्रीतये च ब्राह्मणान् भोजयित्वा सङ्कल्प्य वा “यस्य स्मृत्ये”त्याद्युक्त्वा न्यूनातिरिक्तं सर्वं सम्पूर्णमस्त्विति तान् सम्प्रार्थ्य तैरनुज्ञातः सुहृद्युतो भुञ्जीत ।

इति श्रीमच्छङ्करभट्टसूरिसूनुभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे  
शान्तिमयूखे विनायकशान्तिपद्धतिः समाप्ता ॥

### अथ ग्रहयज्ञः

स्कान्दे— देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ।  
पीडयन्ते ग्रहपीडाभिः किं पुनर्भुवि मानवाः ॥  
शनैश्चरेण सौदासो नरमांसे नियोजितः ।  
राहुणा पीडितो राजा नलो भ्रान्तो महीतले ॥  
अङ्गारकविरोधेन रामो राष्ट्राग्निवासितः ।  
अष्टमेन शशाङ्केन हिरण्यकशिपुर्हतः ॥  
रविणा सप्तमस्थेन रावणो विनिपातितः ।  
गुरुणा जन्मसंस्थेन हतो राजा सुयोधनः ॥  
पाण्डवा बुधपीडायां विकर्मणि नियोजिताः ।  
षष्ठेनोशनसा युद्धे हिरण्याक्षो निपातितः ॥  
एते चान्ये च बहवो ग्रहदोषैस्तु पीडिताः ।  
याज्ञवल्क्यः—ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छ्रायाः पतनानि च ।  
भावाभावौ च जगत्स्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥  
प्रयोगपारिजाते उत्पलपरिमले—  
कार्यारम्भेषु सर्वेषु प्रतिष्ठास्वध्वरेषु च ।  
नव-वेश्मप्रवेशे च गर्भाधानादिकर्मसु ॥

१. क्षइर—चोपस्थाय, क—पस्थाय ।



आरोग्यस्नानसमये सङ्क्रान्तौ रोगसम्भवे ।  
 अभिचारे च यः कुर्याद् ग्रहपूजां विधानतः ॥  
 सोऽभीष्टफलमाप्नोति निर्विघ्नेन न संशयः ।  
 श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥  
 वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नपि ॥ इति ॥

मात्स्ये— ग्रहयज्ञास्त्रिधा प्रोक्ताः पुराणश्रुतिकोविदैः ।  
 प्रथमोऽयुतहोमश्च लक्षहोमस्ततः परः ॥  
 तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः ।  
 ग्रहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद् बुधः ॥  
 रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदक्प्लवम् ।  
 दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः ॥  
 तस्य द्वाराणि चत्वारि कर्त्तव्यानि विचक्षणैः ॥ इति ।

स्कान्दे— नवग्रहमखे कुण्डं हस्तमात्रं समं भवेत् ।

चतुरस्रमधोहस्तं योनिवक्त्रं समेखलम् ॥

योनिरेव वक्त्रं यस्य तत् । पुत्रादिकामनया तु योन्याद्याकारा अपि  
 भवन्ति ।

चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता ।

अत्र विशेषोपदेशादेकैव मेखला ।

मात्स्ये— वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता ।  
 कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रिता ॥  
 गजोष्ठसदृशी तद्वदायता च्छिद्रसंयुता ।  
 मेखलोपरि सर्वत्र अश्रत्थदलसन्निभा ॥

एवं कुण्डं च मण्डपेशानभागे उदीच्यां वेति हेमाद्रिः । अयुतादि-  
 होमं प्रकृत्य वशिष्ठस्तु—

कुण्डं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम् ।

कुण्डस्येशानभागे तु पूजावेदिं प्रकल्पयेत् ॥—इत्याह ।

अत्र चतुरस्रमित्यनेन क्षत्रियादिपुरस्कारेण विहितानामाकारविशे-  
 षाणां स्त्रीपुरस्कारेण विहितस्य योन्याकारस्य निवृत्तिः । योनौ पुत्राः  
 शुभं दलेन्द्राभ इत्याद्याः काम्यास्त्वाकारा भवन्त्येव । वेद्यां विशेषमाह-  
 गोभिलः—कुण्डस्य प्रागुदीच्यां वा प्राच्यामुत्तरतोऽपि वा ।

चतुरस्रं चतुर्द्वारं कर्त्तव्यं ग्रहपीठकम् ॥

श्रीकामः पूर्वतः कुर्यात्पुष्ट्यर्थं दक्षिणेन तु ।



पश्चाद् द्विजन्मसिद्धयर्थं शान्त्यर्थं चोत्तरेण तु ॥  
 ऐशान्यां सर्वकामाय त्वाग्नेय्यां त्वभिचारके ।  
 नैऋत्यां पुत्रलाभाय पुष्ट्यर्थं वायवेन तु ॥ इति ।

ग्रहवेदी तु स्थण्डिलपक्षेऽपि कार्या ।

वशिष्ठः—लिखेदष्टदलं पद्मं वेदिकोपरि तण्डुलैः ।

अत्रैकाग्निब्रह्माचार्यपक्षमुक्त्वा तेषां नवसंख्या<sup>१</sup> कुण्डेषु तत्तद्-  
 ग्रहाकारांश्चाह प्रयोगपारिजाते भगवान्—

मनोरमे शुचौ देशे होमशालामलङ्कृताम् ।  
 कृत्वा तु संवृतां प्राज्ञो ग्रहस्थानं प्रकल्पयेत् ॥  
 तन्मध्ये भास्करस्थानं भवेत्पूर्वोत्तरे बुधः ।  
 पूर्वस्मिन्भार्गवस्थानं सोमो दक्षिणपूर्वके ॥  
 दक्षिणस्यां कुजस्थानं राहोर्दक्षिणपश्चिमे ।  
 शनेस्तु पश्चिमे स्थानं केतोरुत्तरपश्चिमे ॥  
 उत्तरस्यां गुरोः स्थानमेवं च स्थण्डिलं भवेत् ।

स्थण्डिलमग्न्यर्थम् ।

भास्करस्य च वृत्तं स्याच्चन्द्रस्य चतुरस्रकम् ।  
 कुजस्य तु त्रिकोणं स्याद् बाणाकारं बुधस्य तु ॥  
 गुरोर्दीर्घचतुष्कोणं पञ्चकोणं सितस्य तु ।  
 चापाकारं शने राहोः सूर्पं केतोर्ध्वजाकृतिम् ॥  
 नवधा विभजेदग्निं श्रौतकर्मविधानतः ।  
 ऋत्विजश्च यथायोगं कुण्डेषु ब्राह्मणाः पृथक् ॥  
 अथ स्रुवेण जुहुयात्सूर्यपावकदासकान् ।  
 ऋत्विजो जुहुयुः सर्वे स्रुवेणैवं पृथक् पृथक् ॥  
 अष्टौ तु शकलान्<sup>२</sup> गृह्यसमारोपणमग्निषु ।  
 प्रधानाग्नौ निधायैमानित्थं होमं समाचरेत् ॥ इति ।

अत्र “एवं च स्थण्डिलं भवेत्” इत्यनेन स्थण्डिलानां कुण्डानां च सम  
 आकारस्तत्तद्विधु निवेशश्चोक्तः । ‘ब्राह्मणाः पृथक्’ इत्यनेन नवाऽऽचार्या  
 ब्राह्मणाश्च नवेत्युक्तम् । अत्रार्थसंक्षेपः प्रयोगपारिजाते—“मध्यकुण्डे  
 स्मार्ताग्निं प्रणीय ततो नवाचार्या अष्टसु कुण्डेष्वग्निं प्रणीयाऽऽज्य-  
 भागान्तेऽर्कादिसमिद्भिर्गुडैर्नादिहविर्भिराज्येन च ग्रहादिमन्त्रैर्हुत्वा



व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिश्च तिलान् हुत्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं कृत्वा पूर्णाहुतीर्जुहुयुः” इति ।

कुण्डमुक्त्वा स्कान्दे—

तस्य चोत्तरपूर्वेण स्थण्डिलं हस्तमात्रकम् ।

त्रिवप्रं चतुरस्रं च वितस्त्युच्छ्रायसम्मितम् ॥

स्थण्डिलं वेदिः । वप्रो मेखला ।

मात्स्ये— द्विरङ्गुलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः ।

व्यङ्गुलोच्छ्रायसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥

द्व्यङ्गुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथितो बुधैः ।

तत्र ग्रहानाऽऽह याज्ञवल्क्यः—

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः ।

शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥

स्कान्दे— नवग्रहमखे कुर्यादृत्विजश्चतुरः शुभान् ।

अथवा चैकमभ्यर्च्य विधिना ब्रह्मणा सह ॥

त्रिविधमपि नवग्रहमुपक्रम्य वसिष्ठस्तु—

षोडश ब्राह्मणान् शुद्धान् दम्भानृतविर्वर्जितान् ।

तेषां मध्ये श्रेष्ठतममाचार्यं तं प्रकल्पयेदिति ॥

अत्र पारिजाते नवाचार्या एको ब्रह्मा षडृत्विजः । “आचार्येभ्यो नवभ्यश्च ग्रहार्चनफलं तत” इत्युक्तेः । आचार्यः कर्म एव कुर्यात् । परे त्वारम्भमात्रम् । धेन्वाद्या ग्रहदक्षिणा अपि तेभ्य एव देया इत्याद्युक्तम्, तदयुक्तम् । उपक्रमे एकाचार्यं श्रुतेराचार्यानाचार्यसमुदाये प्राणभूत<sup>१</sup> उपदधातीति वल्लिङ्गसमवायमात्रेण नवभ्य इत्युपसंहारस्थपदोपपत्तेः । उपक्रमेऽपि यद्यप्याचार्यस्य संस्कार्यत्वेनैकत्वमविवक्षितम् । तथाप्याचार्यस्य भूतभाव्युपयोगाभावात्संस्कार्यत्वानुपपत्तेर्वृत आचार्यः स्वकर्म कुर्यादिति कल्पिते वाक्ये उपादेयत्वादाचार्यस्य भवत्येकत्वं विवक्षितम् । उपपादितं चेदमध्वर्युं वृणीते होतारं वृणीते पुराहितं वृणीते इत्यत्र मिश्रैः ।

जन्मभूर्गोत्रमग्निश्च वर्णस्थानमुखानि च ।

योऽज्ञात्वा कुरुते शान्तिं ग्रहास्तेनाऽवमानिताः ॥

१. क—एकस्य । २. क्ष इ ड क य—प्राणवत् ।



तत्र वर्णजन्मनि आह दामोदरीये वृद्धपराशरः—

रक्तः कश्यपजो भानुः शुक्लो ब्रह्मसुतः शशी ।  
 रक्तो रुद्रसुतो भौमः पीतः सोमसुतो बुधः ॥  
 पीतो ब्राह्मसुराचार्यः शुक्लः शुक्रो भृगूद्वहः ।  
 कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतेः ॥  
 कृष्णः केतुः कृशानूत्थः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी ।

स्कान्दे— उत्पन्नोऽर्कः कलिङ्गेषु यमुनायां च चन्द्रमाः ।  
 अङ्गारकस्त्ववन्त्यायां मगधायां हिमांशुजः ॥  
 सैन्धवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा ।  
 शनैश्चरस्तु सौराष्ट्रे राहुर्वैराठिनापुरे ॥  
 अन्तर्वेद्यां तथा केतुरित्येता ग्रहभूमयः ।  
 यस्य यस्य च यद्गोत्रं तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥  
 आदित्यः काश्यपे गोत्रे आत्रेयश्चन्द्रमा भवेत् ।  
 भरद्वाजोद्भवो भौमस्तथाऽऽत्रेयश्च सोमजः ॥  
 शक्रपूज्योऽङ्गिरो गोत्रः शुक्रो वै भार्गवस्तथा ।  
 शनिः काश्यप एवाढ्य-राहुः पैठीनसिस्तथा ॥  
 केतवो जैमिनेयाश्च ग्रहाग्निस्तदनन्तरम् ।  
 आदित्यः कपिलो नाम पिङ्गलः सोम उच्यते ॥  
 धूमकेतुस्तथा भौमो जाठराग्निर्बुधः स्मृतः ।  
 गुरोश्चैव शिखी नाम शुक्रो भवति हाटकः ॥  
 शनैश्चरो महातेजा राहुकेत्वोर्हुताशनः ।

एतानि ग्रहविशेषतोऽग्निनामानि । कर्मविशेषतोऽपि देवीपुराणे—

शुभो ग्रहविधौ ह्यग्निर्लक्षहोमे पराजितः ।  
 कोटिहोमे शिवो वह्निः सर्वकामप्रदायकः ॥

क्वचित्तु—लक्षहोमे तु वह्निः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ।

स्कान्दे— भास्कराङ्गारकौ रक्तौ श्वेतौ शुक्र-निशाकरौ ।  
 सोमपुत्रो गुरुश्चैव तावुभौ पीतकौ स्मृतौ ॥  
 कृष्णे शनैश्चरं विद्याद्राहुं चित्राश्च केतवः ।  
 मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे ॥  
 दक्षिणे लोहितं विद्याद् बुधं पूर्वोत्तरेण तु ।  
 उत्तरेण गुरुं विद्यात्पूर्वेणैव तु भार्गवम् ॥



पश्चिमेन शनिं विद्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे ।  
पश्चिमोत्तरतः केतुः स्थाप्यो वै शुक्लतण्डुलैः ॥  
अथवा वर्णकैः कार्याः कार्याः स्वर्णादिधातुभिः ।

याज्ञवल्क्यः—

ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णजादुभौ ।  
रजतादयसः सीसात्कांस्यात्कार्या ग्रहास्तथा ॥

वशिष्ठः—यथारुचिप्रमाणेन प्रतिमाः कल्पयेत्सुधीः ॥

अत्र सर्वत्र ग्रहाणां सूर्यादिः क्रमः स्पष्टः । बौधायनस्तु सूर्याङ्गारक-  
शुक्र-चन्द्र-बुध-गुरु-शनय इत्याह ।

स्कान्दे— भानुं तु मण्डलाकारं सोमं तु चतुरस्रकम् ।  
अङ्गारकं त्रिकोणं च बुधं बाणाकृतिं तथा ॥  
दीर्घचतुरस्रं गुरुं पञ्चास्रं भार्गवं तथा ।  
धनुस्तुल्यं शनिं विद्याद्राहुं शूर्पाकृतिं तथा ॥  
ध्वजाकाराः केतवश्च गणेशं तत्र रूपिणम् ।

रूपिणं हस्तपादाद्यवयवयुक्तम् । स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैर्वर्णकैर्लेख्या  
इत्येतत्पक्षयोर्मण्डलाद्याकारतेति हेमाद्रिः ।

तत्रैव— शुक्राकौ प्राङ्मुखौ ज्ञेयौ गुरु-सौम्यावुदङ्मुखौ ।  
प्रत्यङ्मुखौ शनिः सोमः शेषा दक्षिणतो मुखाः ॥

इदं च शुक्रादीनां प्राङ्मुखत्वादि 'आदित्याभिमुखाः सर्वे' इति  
मात्स्योक्तादादित्याभिमुखत्वेन विकल्पते । यत्तु हेमाद्रिविकल्पपरि-  
जिहीर्षया प्राङ्मुखावूर्ध्वदृष्टी उदङ्मुखौ वामदृष्टी प्रत्यङ्मुखोऽधो-  
दृष्टिर्दक्षिणतो मुखाः दक्षिणदृष्टय इति व्याचष्टे, तत्र मूलं चिन्त्यम् ।  
विरोधतादवस्थं च ।

वर्णरूपगुणैर्युक्तान् व्याहृत्यावाहयेत्तु तान् ।

मात्स्ये— पुण्येह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।  
अग्निप्रणयनं कृत्वा वेद्यामावाहयेत्सुरान् ॥  
देवानां<sup>२</sup> तत्र संस्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका ।  
आदित्याभिमुखाः सर्वे साधिप्रत्यधिदेवताः ॥

१. क्ष ख—विकल्प्यते । २—विकार्यते । २. अ. ९३ श्लो. ९. ।



विष्णुधर्मोत्तरे—

अतः परं प्रवक्ष्यामि यो देवो यो ग्रहः स्मृतः ।  
अग्निरर्कः स्मृतः सोमो वरुणः परिकीर्तितः ॥  
अङ्गारकः कुमारश्च बुधश्च भगवान् हरिः ।  
बृहस्पतिः स्मृतः शक्रः शुक्रो देवी च पार्वती ॥  
प्रजापतिः शनिश्चैव राहुर्ज्यो गणाधिपः ।  
विश्वकर्मा स्मृतः केतुर्ये ग्रहास्ते सुराः स्मृताः ॥

अत एवाग्न्यादिलिङ्गका मन्त्राः सूर्यादिस्थापने उक्ताः ।

स्कान्दे— <sup>१</sup>अग्निं द्रुतं दिनेशाय चन्द्रायाप्स्वन्तं <sup>२</sup>इत्यपि ।  
<sup>३</sup>स्यो ना पृथिवी भौमाय <sup>४</sup>इदं विष्णुर्बुधाय च ॥  
इन्द्र आसां सुरेज्याय <sup>५</sup>शुक्रज्योतिः सिताय च ।  
<sup>६</sup>प्रजापतेति सौराय आयं <sup>७</sup>गौरिति राहवे ॥  
केतवे ब्रह्मयज्ञानं स्वैस्वैर्मन्त्रैः प्रतिष्ठिताः ।

एतेषां च मन्त्राणां 'व्याहृत्याऽऽवाहयेत्तु तान्' इत्युक्ताभिव्याहृतिभिरावाहने विकल्पः । मदनस्त्वावाहन-स्थापनयोर्भेदाद् व्याहृतिभिरावाहनम्, एतैर्मन्त्रैः स्थापनमित्यूचे । पारिजाते वामनस्तु—

प्रणवं त्वादितः कृत्वा भूर्भुवः स्वस्ततः परम् ।  
चतुर्थ्या नामसंयुक्तं नमस्कारान्तयोजितम् ॥  
एष मन्त्रः समाख्यातो ग्रहपूजाविधायकः ।  
अनेनाऽऽवाहनं कुर्यादनेनैव विसर्जनम् ॥

इत्युचे । अत्रावाहनवाक्येषु विशेषमाह बौधायनः—

“किरीटिनं पद्मासनं पद्मकरं पद्मगर्भसमद्युतिं सप्ताश्वं सप्तखड्गं  
कलिङ्गदेशजं काश्यपगोत्रं विश्वामित्रार्षं त्रिष्टुप्छन्दसं रक्ताम्बरधरं  
रक्ताभरणभूषितं रक्तगन्धानुलेपनं रक्तच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूर-  
मणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्ट-  
मधिदेवताग्निसहितं प्रत्यधिदेवतेश्वरसहितं रक्तवृत्तमण्डले पूर्वमुखमा-  
दित्यमावाहयामि ॥

१. ऋ. सं. १।१।१२ । २. ऋ. सं. १।२।११ । ३. ऋ. सं. १।२।६ ।  
४. ऋ. सं. १।२।७ । ५. ऋ. सं. ८।५।२३ । ६. ऋ. सं. ८।८।४७ । ७. ऋ.  
सं. ८।८।४७ ।



“किरीटिनं रक्तमाल्याम्बरधरं रक्तशूलगदाधरं चतुर्भुजं मेषगमनमवन्तिदेशजं वाशिष्ठगोत्रजं जमदग्न्यार्षं जगतीछन्दसं रक्ताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितं रक्तगन्धानुलेपनं रक्तच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताभूमिसहितं प्रत्यधिदेवतास्कन्दसहितं त्रिकोणरक्तमण्डले दक्षिणामुखमङ्गारकमावाहयामि ॥

“किरीटिनं श्वेताम्बरधरं चतुर्भुजं दण्डिनं वरदं काव्यं साक्षसूत्रकमण्डलुं कीकटदेशजं भार्गवगोत्रजं शौनकार्षं पंक्तिच्छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेताभरणभूषितं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवतेन्द्राणीसहितं प्रत्यधिदेवेन्द्रसहितं शुक्लपञ्चकोणमण्डले प्राङ्मुखं भगवन्तं शुक्रमावाहयामि ॥

“किरीटिनं श्वेताम्बरधरं दशाश्वं श्वेताभूषणं पाशपाणिं द्विबाहुं वनायुदेशजमत्रिगोत्रमात्रेयार्षमनुष्टुप्छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताऽप्सहितं प्रत्यधिदेवतोमासहितं चतुरस्रमण्डले प्रत्यङ्मुखं सोममावाहयामि ॥

“किरीटिनं पीतमाल्याम्बरं पीतवर्णं कर्णिकारसमद्युतिं खड्गचर्मगदापाणिं सिंहस्थं वरदं मगधदेशजमत्रिगोत्रजं भारद्वाजार्षं बृहतीछन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिभूषितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताविष्णुसहितं प्रत्यधिदेवताविष्णुसहितं पीतवर्णमण्डले दक्षिणामुखं<sup>१</sup> बुधमावाहयामि ॥

“किरीटिनं पीतवर्णं चतुर्भुजं दण्डिवरदं साक्षसूत्रकमण्डलुं सिन्धुदेशजमाङ्गिरसगोत्रं वासिष्ठार्षमनुष्टुप्छन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिभूषितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवतेन्द्रसहितं प्रत्यधिदेवताब्रह्मसहितं पीतदीर्घचतुरस्रमण्डले उदङ्मुखं गुरुमावाहयामि ॥

“किरीटिनमिन्द्रनीलसमद्युतिं शूलधरं वरदं गृध्रवाहनं सबाणासनधरं<sup>२</sup> सौराष्ट्रदेशजं काश्यपगोत्रजं भृग्वार्षं गायत्रीछन्दसं कृष्णाम्बरधरं

१. ज्ञ-उदङ्मुखं २. ज्ञ-सबाणशरधरं ।



कृष्णाभरणभूषितं कृष्णगन्धानुलेपनं कृष्णच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुट-  
केयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले  
प्रविष्टमधिदेवताप्रजापतिसहितं प्रत्यधिदेवतायमसहितं कृष्णधनुर्मण्डले  
प्रत्यङ्मुखं शनैश्चरमावाहयामि ॥

“किरीटिनं करालवदनं खड्गचर्मशूलधरं सिंहासनस्थं पूर्वदेशजं  
पाटलिगोत्रमाङ्गिरसार्षमनुष्टुप्छन्दसं कृष्णाम्बरधरं कृष्णाभरणभूषितं  
कृष्णगन्धानुलेपनं कृष्णच्छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य  
रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवतासर्पसहितं  
प्रत्यधिदेवताकालसहितं कृष्णशूर्पमण्डले दक्षिणामुखं राहुमावाहयामि ।

“धूम्रान् द्विबाहून् पाशधरान् विकृताननान् गृध्रवाहनान् किरीटिनो  
मध्यदेशजान् जैमिनिगोत्रजान् गौतमार्षान् नानाछन्दश्चित्राम्बरधरां-  
श्चित्राभरणभूषितांश्चित्रगन्धानुलेपनान् कृष्णपिङ्गलध्वजपताकिनो  
मुकुटकेयूरमणिशोभितानारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणान् ग्रह-  
मण्डले प्रविष्टानधिदेवताब्रह्मसहितान् प्रत्यधिदेवताचित्रगुप्तसहितान्  
कृष्णपिङ्गलध्वजमण्डले दक्षिणामुखान् केतूनावाहयामि ॥

स्कान्दे— ईश्वरं भास्करे विद्यादुमां विद्यान्निशाकरे ।

स्कन्दमङ्गारके विद्याद्बुधे नारायणं विदुः ॥

गुरौ वेदनिधिं विद्यात् शुक्रे शक्रो विधीयते ।

शनैश्चरे यमं विद्याद्राहौ कालस्तथैव च ॥

चित्रगुप्तोधिपः केतोरित्येता ग्रहदेवताः ।

वेदनिधिर्ब्रह्मा । तत्रैव—

वक्ष्ये स्थानानि देवानामीश्वरादि यथाक्रमम् ।

सूर्यस्य चोत्तरे शम्भुमुमां सोमस्य दक्षिणे ॥

स्कन्दमङ्गारकस्यैव दक्षिणस्यां निवेशयेत् ।

सौम्यात्पश्चिमतो विष्णुं ब्रह्मा जीवस्य पूर्वतः ॥

इन्द्रमैन्द्र्यां सिताद्विद्धि मन्दादाग्नेयतो यमम् ।

राहोः पूर्वोत्तरे कालं सर्वभूतभयावहम् ॥

केतोर्नैऋतदिग्भागे चित्रगुप्तं निधापयेत् ।

स्कान्दे— अतः स्थापनमन्त्रांश्च कथयाम्यनुपूर्वशः ।

ईश्वरं त्र्यम्बकञ्चेति श्रीश्च ते चेति पार्वतीम् ॥



१यदक्रन्देति च स्कन्दं विष्णुं विष्णो रराडिति ।  
 आ ब्रह्मन्निति ब्रह्माणं २सजोषेन्द्रेति वासवम् ॥  
 यमाय त्वेति च यमं कालं कार्ष्णिरीसीति च ।  
 चित्रावस्विति मन्त्रेण चित्रगुप्तं निधापयेत् ॥  
 अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्रश्चैन्द्री प्रजापतिः ।  
 सर्पो ब्रह्मा च निर्द्दिष्टा अधिदेवा यथाक्रमम् ॥  
 ३अग्निन्दूतमिति त्वग्नेर्वरुणस्य उदुत्तमम् ४ ।  
 ५स्यो ना पृथिवि मेदिन्या ६इदं विष्णुस्तु विष्णवे ॥  
 इन्द्रायेन्दो ७ इतीन्द्रस्योत्तानपर्णे ८ शचीस्थितौ ।  
 ९प्रजापते प्रजेशस्य एष ब्रह्मेति वै विधेः ॥  
 मन्त्रो नमोऽस्तु सर्पेभ्यः सर्पाणां स्थापने मतः ।  
 ग्रहदेवाधिदेवानां नैवेद्यं कुसुमानि च ॥  
 ग्रहवच्चासनं दानं स्थापनं चानुपूर्वशः ।

सूर्यादयो ग्रहा ईश्वरादयो देवाः अग्न्यादयोऽधिदेवाः । तत्रेश्वरा-  
 दिदेवानां सूर्यस्यैवोत्तरे शम्भुमित्यादिना पूर्वं स्थलान्युक्तानि । अग्न्या-  
 दयोऽधिदेवास्तु ग्रहदेवयोर्मध्ये स्थाप्याः । तथा च मदनरत्ने गोभिल-  
 वसिष्ठौ—

ग्रहदेवतयोर्मध्ये अधिदेवान्निधापयेत् ।

तत्रैव संग्रहे तु—ईश्वरादयो देवा अधिदेवतात्वेन व्यवहृताः ।  
अग्न्यादयस्तु प्रत्यधिदेवतात्वेन । तेषां स्थानान्तरं चोक्तम्—

अधिदेवा दक्षिणतो वामे प्रत्यधिदेवताः ।

स्थापनीयाः प्रयत्नेन व्याहृतिभिः पृथक् पृथक् ॥

तत्रैव वासिष्ठीये तु देवतानां स्थानान्तरं क्वचिन्मन्त्रान्तरं चोक्तम्—

रुद्रं त्र्यम्बकमन्त्रेण रवेरुत्तरतो न्यसेत् ।

सोमस्याग्नेयदिग्भागे श्रीश्च ते मेनकात्मजाम् ॥

यदक्रन्देति भौमस्य स्कन्दं याम्ये प्रदापयेत् ।

विष्णुं विष्णो रराटेति यजेत्पूर्वं बुधस्य च ॥

१. ऋ. सं. २।३।११ । २. ऋ. सं. ३।३।११—सजोष इति । ३. ऋ. सं.  
 १।१।२२ । ४. ऋ. सं. १।२।१५ । ५. ऋ. सं. १।२।६ । ६. ऋ. सं. १।२।७ ।  
 ७. ऋ. सं. ७।१।४७ । ८. ऋ. सं. ८।८।३ । ९. ऋ. सं. ८।७।४ ।



गुरोस्तत्ततोऽभ्यर्च्यो ब्रह्मा ब्रह्मेतिमन्त्रतः ।  
 सजोषेन्द्रेति शुक्रस्य प्राच्यां शक्रं निधापयेत् ॥  
 शनेः पश्चिमतः स्थाप्यो यमाय त्वेत्यूचा यमः ।  
 कार्ष्णिरीसीति मन्त्रेण राहो कालं तथोत्तरे ॥  
 चित्रगुप्तं तु केतूनां चित्रायस्वेति नैऋते ।  
 ग्रहाश्च देवताः ख्याताः शृणुष्वतोऽधिदेवताः ॥  
 अग्निरापो धरा विष्णुरिन्द्रेन्द्राणी प्रजापतिः ।  
 सर्पो ब्रह्मा ज्ञ निर्विष्टा अधिदेवा यथाक्रमम् ॥  
 ग्रहदेवतयोर्मध्ये अधिदेवान्निवेशयेत्<sup>१</sup> ।

एतानि च वासिष्ठीयवचांसि कैश्चिन्नाद्रियन्ते—

पारिजाते-पद्म प्राग्दलमारभ्य दलाग्रेषु क्रमान्यसेत् ।  
 इन्द्रादिलोकपालांश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥  
 विनायकं तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च ।  
 आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥

एतेऽत्र विनायकाद्याः पञ्चग्रहेभ्य उत्तरतः स्थाप्या इति साम्प्र-  
 दायिकाः । दक्षिण-पश्चिम-वायव्योत्तर-पूर्वेषु यथाक्रममित्यन्ये ।

राहुमन्ददिनेशानामुत्तरस्यां यथाक्रमम् ।  
 गणेशो दुर्गा वायुश्च राहुकेत्वोश्च दक्षिणे<sup>२</sup> ॥  
 आकाशमश्विनौ चेति पञ्चैतान्स्थापयेद् बुधः ।

इति संग्रहवचनानुसारेणेति पितामहचरणा रूपनारायणश्च—  
 स्कान्दे— उत्तरे शनिसूर्याभ्यां गुरुकेत्वोश्च दक्षिणे ।

गणाधिपं प्रतिष्ठाप्य सर्वदेवनमस्कृतम् ॥

रवि-शनि-केतु-गुरुणां मध्य इति फलितोऽर्थः । विनायकपदमुप-  
 लक्षणम् । तेन दुर्गादयोऽप्यत्रैव स्थाप्या इति केचित् । चन्दनादि-  
 नियमस्तत्रैव ।

दिवाकर-कुजाभ्यां हि दापयेद्रक्तचन्दनम् ।  
 चन्द्रे च भार्गवे चैव सितवर्णं प्रदापयेत् ॥  
 कुङ्कुमेन तु संयुक्तं चन्दनं जीव-सौम्ययोः ।  
 अगुरुं चन्दनं दद्याद्राहुकेत्वर्कजेषु च ॥  
 ग्रहवर्णानि पुष्पाणि गायत्र्या धूपमादहेत् ।  
 रवेः कुन्दुरुकं धूपं शशिनस्तु घृताक्षताः ॥

१. क्ष ध र ड—निधापयेत् २. ड क्ष क—पश्चिमे ।



भौमे सज्जैरसं चैव अगुरुं च बुधे स्मृतम् ।  
सिल्लकं गुरवे दद्याच्छुक्रे विल्वागुरुं तथा ॥  
गुग्गुलं मन्दवारं तु लाक्षा राहोश्च केतवे ।

कुन्दुरुकः सल्लकीनिर्यासः । सिल्लकं सिल्ला इति मध्यदेशे  
प्रसिद्धम् । विल्वागुरुं विल्वफलनिर्याससहितमगुरुम् । मन्दवारः शनिः ।  
“उद्दीप्यस्वेति मन्त्रेण दीपं दद्यादतन्द्रितः ।” विहितगन्धधूपदीपादी-  
नामसम्भवे तु याज्ञवल्क्यः—

यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ।  
गन्धाश्च वलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलः ॥  
स्कान्दे— गुडोदनं रवेर्दद्यात्सोमाय घृतपायसम् ।  
लोहिताय हविष्यान्नं बुधाय क्षीरषाण्डिकम् ॥  
दध्योदनं गुरोर्दद्याच्छुक्राय च घृतोदनम् ।  
मिश्रितं तिलमाषैश्च नैवेद्यं तु शनैश्चरे ॥  
राहोर्मासोदनं दद्यात्केतोश्चित्रोदनं तथा ।

चित्रोदनम्—

तिलतण्डुलमिश्रं स्यादजाक्षीरं च शोणितम् ।  
कर्णनासागृहीतं स्यादेतच्चित्रोदनं स्मृतम् ॥ इति दामोदरः ।

एतैरेव द्रव्यैर्ब्राह्मणा अपि भोज्याः । तथा च याज्ञवल्क्यः—

गुडोदनं पायसं च हविष्यं क्षीरषाण्डिकम् ।  
दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च ॥  
दद्याद् ग्रहक्रमादेतद् द्विजेभ्यो भोजनं बुधः ।  
शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥  
वशिष्ठः— उपचाराणि सर्वेषामपि शुक्लाक्षतैः सदा ।  
गन्धाभावे शुक्लगन्धं पुष्पाभावे सुगन्धकम् ॥  
धूपाभावे गुग्गुलः स्याद् द्रव्याभावे तु मिश्रकम् ।  
पञ्चामृतं गवामेव मिश्रकं न कदाचन ॥ इति ।  
मात्स्ये— प्रागुत्तरेण तस्मान्च दध्यक्षतविभूषितम् ।  
चूतपल्लवसंयुक्तं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥  
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गयुतं तथा ।  
स्थापयेद्वरणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् ॥

१. ज्ञ-धूपदीपगन्धादीनां । २. इ य-ग्रहद्रव्यैः ।



गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।  
गजाश्चरथ्यावल्मीकसङ्गमाद् हृद्गोकुलात् ॥  
मृदमानीय विप्रेन्द्र ! सर्वौषधिसमन्विताम् ।  
स्तानार्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्य धर्मवित् ॥

याज्ञवल्क्यः—

अर्कः पलाशः खदिरः अपामार्गोऽथ पिप्पलः ।

१ उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥

ईश्वरादिदेवानां स्व-स्व-ग्रहसमिद्भिरेव होमः । हेमाद्रौ देवी-  
पुराणे—

गणाधिपतये देया प्रथमा तु वराहुतिः ।

अन्यथा विफलं विप्र ! भवतीह न संशयः ॥ इति ।

आश्वलायनः—

जुहुयात्समिदन्नाज्येनाभिर्ऋग्भिर्भयथाक्रमम् । इति

समित्सु विशेषमाह याज्ञवल्क्यः—

होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना क्षीरेण वा युता ।

इति । न चात्र सम्प्रतिपन्न देवताकानेकद्रव्याणामेकैवाहुतिः सान्ना-  
य्यवत्तदिति वाच्यम् ।

आदौ तु समिदन्नाज्यैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥

इति वाशिष्ठात् । अन्यत्रापि सम्प्रतिपन्नदेवताके स्मार्ते कर्मण्यनेकद्रव्यके  
पृथगेव होम इति साम्प्रदायिकाः । बहुषु कर्मसु प्रायो वचनान्यप्येवम् ।

स्कान्दे— आकृष्णेन<sup>२</sup> सहस्रांशोरिमं देवा तथेन्द्रवे ।

अग्निर्मूर्द्धेति<sup>३</sup> भौमाय उदुबुध्यस्व<sup>४</sup> बुधाय च ॥

बृहस्पतेति<sup>५</sup> च गुरोः शुक्रायाऽन्नात्परिश्रुतः<sup>६</sup> ।

शनैश्चरस्य मन्त्रोऽयं शन्नोदेवीरुदाहृतः<sup>७</sup> ॥

कयान<sup>८</sup> इति राहोश्च केतुं कृण्वंस्तु<sup>९</sup> केतवे ।

मात्स्ये— आवोराजेति<sup>१०</sup> रुद्रस्य बलिं होमं समाचरेत् ॥

१. याज्ञवल्कीये 'औदुम्बर' इति पाठः । २. ऋ. सं. १।३।६ । ३. ऋ. सं. ६।३।३९ । ४. ऋ. सं. ८।५।१८ । ५. ऋ. सं. २।५।३१ । ६. ऋ. सं. य इ-  
याशत्परस्तुते । ७. ऋ. सं. ७।६।५। ८. ऋ. सं. ३।६।२४ । ९. ऋ. सं.  
१।१।११ । १०. ऋ. सं. ३।४।२० ।



आपो हिष्ठे<sup>१</sup> त्युमायास्तु स्योनेति<sup>२</sup> स्वामिनस्तथा ।  
 विष्णोरिदं<sup>३</sup> विष्णुरिति <sup>४</sup>त्वमित्सेति स्वयम्भुवः ॥  
<sup>५</sup>इन्द्रमिद्वेतातय इतीन्द्रस्य प्रकीर्तितः ।  
 तथा यमस्य <sup>६</sup>चायङ्गौरिति होमः प्रकीर्तितः ॥  
 कालस्य ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते ।  
 चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति पौराणिका विदुः ॥  
<sup>७</sup>अग्निं दूतं वृणीमह इति <sup>८</sup>वह्नेरुदाहृतः ।  
<sup>९</sup>उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः ।  
 भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ॥  
<sup>१०</sup>सहस्रत्रशीर्षा पुरुष इति विष्णो रुदाहृतः ।  
<sup>११</sup>इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ॥  
<sup>१२</sup>उत्ताणपर्णे<sup>१३</sup>सुभगे इति शच्याः समाचरेत् ।  
 प्रजापतेः पुनर्होमं <sup>१४</sup>प्रजापत इति स्मृतः ॥  
 नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते ।  
 एष<sup>१५</sup> ब्रह्माय ऋत्विज इति ब्रह्मण्युदाहृतः ॥  
 विनायकस्य <sup>१६</sup>चातून इति मन्त्रो बुधैः स्मृतः ।  
 जातवेदसे<sup>१७</sup> सुनवाम दुर्गामन्त्रोऽत्र उच्यते ॥  
 पूर्णाहुतिं च <sup>१८</sup>मूर्द्धानं दिव इत्यभिपातयेत् ।  
 स्कान्दे— नैवेद्यशेषं हुत्वा च होममन्त्रादनन्तरम् ।  
 अथ व्याहृतिभिर्हुत्वा एकैकस्य यथाक्रमम् ॥  
 अष्टोत्तरं च साहस्रं शतमष्टादिकं तथा ।  
 अष्टाविंशतिरष्टौ वा एकैकस्य तु होमयेत् ॥  
 होतव्यं च घृतं तत्र चरुर्लक्षादिकं पुनः ।  
 मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमो व्याहृतिभिः स्मृतः ॥

अथेति अथवेत्यर्थः । गृहीत्वा तामथाम्बिका<sup>१९</sup>मिति वत् मदनस्त्व-

१. ऋ. सं. ७।६।५ । २. ऋ. सं. १।२।६ । ३. ऋ. सं. १।२।७ । ४. ऋ. सं. ५।८।३५ । ५. ऋ. सं. ५।७।२५ । ६. ऋ. सं. ८।८।४७ । ७. ऋ. सं. १।१।१२ । ८. ज्ञ-विष्णो । ९. ऋ. सं. १।२।१५ । १०. ऋ. सं. ८।४।१७ । ११. ऋ. सं. ७।१।४० । १२. ऋ. सं. ८।८।३ । १३. ज्ञ-णि । १४. ऋ. सं. ८।७।८ । १५. ज-पूष । १६. ऋ. सं. ७।२।२८ । १७. ऋ. सं. १।७।७ । १८. ऋ. सं. ४।५।९ । १९. मार्कण्डेयपुराणे ।



थवेत्येव पपाठ । तत्तन्मन्त्राणां व्याहृतीनां च परस्परं विकल्पः । अथा-  
ऽष्टोत्तरसहस्रादिसंख्या तु पक्षद्वयेऽपि नैवेद्यशेषहोमस्तु शाखाविशेषपर  
इत्यपि स एव । लक्षादिकः पुनर्व्याहृतिभिर्होमो मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा  
स्मृत इत्यन्वयः । मन्त्रैर्ग्रहमन्त्रैः । व्याहृतिभिर्व्यस्ताभिः समस्ता-  
भिश्च । तातचरणास्तु—अथ व्याहृतिभिर्हुत्वेति पृथग्वाक्यम् । एकै-  
कस्येति तु प्रतिदैवतमष्टादिसंख्यान्वयार्थम् । एकैकस्य तु होमयेदित्ये-  
कैकपदं तु चर्वादिद्रव्यपरम्, न देवतापरम् । अस्मिन्नेव होमे घृतचरु-  
द्रव्यविधिरग्रे । लक्षादिक इत्येतत्तु—अथ व्याहृतिविहिते होमे लक्षादि-  
संख्याविध्यर्थम् । मन्त्रैरित्यादि तु चरुहोमोत्तरं सोमं<sup>१</sup> राजानमिति  
मन्त्रेण यथाप्रकृतिस्विष्टकृद्घृत्वा सूर्यादिमन्त्रैर्द्दशदशाहुतीः प्रतिदैवतं  
लक्षहोमादिद्रव्येण हुत्वा व्याहृतिभिर्लक्षादिहोमः कार्य इत्याहुः ।  
यवाद्यन्यतमद्रव्येण ग्रहादिभिः प्रत्येकं दशाहुतीस्तत्तन्मन्त्रैर्हुत्वा तेनैव  
द्रव्येण व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिरयुतलक्षकोटचन्यतमसंख्यया जुहुयादिति  
हेमाद्रिमदनौ । तानि च द्रव्याणि देवीपुराणे—

यवव्रीहि-घृत-क्षीर-तिल-कंगु-प्रसारिकाः ।  
पङ्कजोशीर-बिल्वार्क-दला होमे प्रकीर्त्तिताः ॥  
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखा वा कुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ।  
मन्त्रवन्तश्च कर्त्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम् ॥  
हुत्वा च तांश्चरून् सम्यक् ततो<sup>२</sup> होमं समारभेत् ।

चर्वादिकं च घृताद्यक्तं<sup>३</sup> होतव्यम्—

होतव्यं च घृताद्यक्तं<sup>४</sup> चरुभक्ष्यादिकं पुनः ।  
इति मात्स्यात् । भक्ष्यं द्राक्षादि । चरुर्नैवेद्यशिष्टो गुडोदनादिः । तानि  
द्रव्याण्युक्त्वा 'इत्येतानि हवींषि स्युः समित्संख्यासमाहुतीः' इत्या-  
श्वलायनोक्तेः । अधिदेवताभ्योऽपि होमो हेमाद्रौ—

चरुणा च समिद्भिश्च सर्पिषा च तिलैः क्रमात् ।  
तत्तन्मन्त्रैश्च होतव्याः क्रमादत्राधिदेवताः ॥  
गृह्यपरिशिष्टे—'प्रधानदशांशेन पार्श्वदैवतयोः' इति अधिदेवतादि-  
होमे संख्या वाशिष्टे 'द्वित्राश्चैवाधिदेवताः पञ्चानां चैव पञ्चधाः' इति ।  
द्वित्राः पञ्च । पञ्चानां गणेशादीनां पञ्चधा प्रत्येकमित्यर्थः । केचित्तु  
द्वौ त्रयो वा द्वित्राः । विनायकादीनां पञ्चधा एकैकामिति केचित् ।

१. श्रु. सं. १।७।२९ । २. ज्ञ-कृती । ३-४. उ क्ष-घृताभ्यक्तं; ज्ञ-सह ।



प्रयोगपारिजाते—

इन्द्रादिलोकपालांश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।

तत्तन्मन्त्रैर्जपं कुर्यात्ततो होमं समारभेत् ॥

नृसिंहपुराणे—

ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुहुयाच्च तिलादिकम् ।

यावत्प्रपूज्यते संख्या लक्षं वा कोटिरेव वा ॥

वा शब्दादयुतमपि । ग्रहयज्ञश्च न नियतकालीनः । 'स्वेच्छायज्ञः स उच्यते' इति भविष्योत्तरात्—

ततो व्याहृतिभिः कुर्यात्तिलहोमं प्रयत्नतः ।

प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमो द्वितीयकः ॥

तृतीयः कोटिहोमः स्यात्त्रिविधो ग्रहयज्ञकः ।

एकरात्रं त्रिरात्रं वा पञ्चरात्रमथाऽपि वा ॥

शिवगाथां विष्णुगाथां शान्तिं ब्राह्मणभोजनम् ।

समापयेत्प्रतिदिनमेवं भक्तिसमन्वितम् ॥

इति । वासिष्ठेऽप्येकरात्रादिग्रहणं नियमानादरार्थम् । अत्र सूक्तादि-  
जपोऽपि तुलादानवदिति केचित् ।

वासिष्ठे—अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।

पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदङ्मुखैः ॥

अव्यङ्गावयवैर्ब्रह्मन् हैमस्रग्दामभूषितैः ।

यजमानस्य कर्तव्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः ॥

अभिषेकमन्त्राः प्रयोगे वक्ष्यन्ते ।

वासिष्ठः—स्वस्तिकं कल्पयेत्पश्चात्कुण्डस्येशानभागतः ।

यजमानाभिषेकार्थं तत्र भद्रासनं न्यसेत् ॥

प्राङ्मुखस्योपविष्टस्य यजमानस्य तत्र च ।

अभिषेकं ततः कुर्युः साचार्याः षोडशर्त्विजः ॥

विविधैर्मङ्गलैर्घोषैः सूतमागधजैः सह<sup>१</sup> ।

ततस्तस्याभिषिक्तस्य रक्षार्थं बलिमुत्क्षिपेत् ॥

दिग्विदिक्षु विचित्रान्नैर्दीपैर्नीराजयेत्ततः ।

शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥

ततो मण्डपमागत्य ध्यायेद्दिग्निं सुरान्यग्रहान् ।

प्रत्येकं प्रतिमन्त्रैश्च दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥ इति

१. ज्ञ-सहः ।



वामनः— आचार्यप्रभृतिभ्यश्च ग्रहार्चनफलं यतः ।  
 समिदाज्यचरूणां च तिलहोमफलं च तत् ॥  
 ब्रह्मत्वे कुम्भपूजायां चाऽर्चनस्य फलं च यत् ।  
 गणपक्षेत्रपाश्रीशदुर्गादेव्यङ्गदेवताः ॥  
 तासां जपफलं सम्यग् गृह्णीयाज्जलपूर्वकम् ।

एतानि च वामनवचांसि निर्मूलानीति पितामहचरणाः । वासिष्ठ-  
 गोभिलवचसामपि केचिदाहुः ।

वशिष्ठः— ततो जपादीन् जुहुयात्पूर्णाहुतिमथाऽऽचरेत् ।  
 तत्रैव— मन्त्रेण सप्त ते अग्ने इति पूर्णाहुतिं चरेत् ॥

अग्निपुराणे—

१मूर्धनि दिव मन्त्रेण संसवेण च धारया ।  
 दद्यादुत्थाय पूर्णा वै नोपविश्य कदाचन ॥ इति ।

मात्स्ये— पूर्णाहुतिं च मूर्धनि दिव<sup>२</sup> इत्यभिपातयेत् ।

अत्र भिन्नशाखागतैकादशद्वादशकपालभेदेऽप्येन्द्राग्न्यैक्यवदनेक-  
 मन्त्रयुक्ताया अनेकस्मृत्युक्ताया अपि पूर्णाहुतेरेकत्वान्मन्त्राणां विकल्पः ।  
 उपांशुयाज इव शाखाभेदभिन्नानां याज्यानुवाक्यानां समुच्चयेन तु  
 पठन्ति । वसोर्द्धारा त्वयुतहोमे नास्ति, प्रमाणाभावात् ।

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।  
 सवौषधैः सर्वगन्धैः स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥  
 यजमानः सपत्नीक ऋत्विजस्तान्समाहितः ।  
 दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद् गतविस्मयः ॥  
 सूर्याय कपिलां धेनुं दद्याच्छङ्खं तथेन्द्रवे ।  
 रक्तं धुरन्धरं दद्याद्भ्रौमाय ककुदाधिकम् ॥  
 बुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी ।  
 श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णां गामर्कसूनवे ॥  
 आयसं राहवे दद्यात्केतवे छागमुत्तमम् ।  
 सुवर्णेन समाः कार्या यजमानेन दक्षिणाः ॥

बुधप्रीत्यर्थं देयहेम्ना सह सर्वा मूल्यतः समा इति केचित् । अस्मि-  
 न्पक्षे षोडशमाषविशिष्टहेमवाचि सुवर्णपदाः सामञ्जस्यापत्तेस्तादृश-  
 सुवर्णमूल्यं प्रत्येकमिति परे । बह्वल्पमूल्येषु तथा हेमाऽपि देयं यथा सर्वाः  
 प्रत्येकं दशमाषसुवर्णेन समा भवन्तीति तु सम्यक् ।



सर्वेषामथवा गावो गुरुर्वा येन तुष्यति ।

स्वमन्त्रेण प्रदातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणाः ॥

स्कान्दे— केतवे छागमांसानि सर्वेषामेव काञ्चनम् । इति ।

तत्रैव— यस्तु पीडाकरो नित्यं स्वल्पवित्तस्य वा ग्रहः ।

तमेव पूजयेद्भूक्त्या दक्षिणाभिः स्वशक्तितः ॥

दानोद्योते आश्वलायनः—

यथाशक्ति ततो विप्रानृत्विजश्चेतरानपि ।

एकमेकाहुतौ विप्रं होमे त्वन्नेन भोजयेत् ॥

अत्यर्थो मध्यमश्चापि विप्रमेकं शताहुतौ ।

सहस्रस्य हुतेर्वैकं जघन्योऽपि प्रभोजयेत् ॥

तत्रैव— तस्माद्दातुमशक्तोऽपि दक्षिणां चान्नमेव वा ।

जपैः प्रणामैः स्तोत्रैश्च तोषयेत्तर्पयेद् गुरुम् ॥

स्कान्दे— यथा ग्रहो द्विजस्तद्विज्ञेयो वेदपारगः ।

तोषयन् मृदुवस्त्राद्यैस्तुष्टमेनं विसर्जयेत् ॥

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।

यजमानमदक्षिण्यो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ।

तत्रैव— यथा समन्वितं यन्त्रं यन्त्रेण प्रतिहन्यते ।

एवं समुच्छ्रितं घोरं शीघ्रं शान्त्या विनश्यति ॥

अहिंसकस्य दान्तस्य धर्माजितधनस्य च ।

नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ॥

ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।

पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥

ग्रहाणामिदमातिथ्यं कुर्यात्संवत्सरादपि ।

आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेच्च शरदां शतम् ॥

मात्स्ये— एवं समग्रान्निष्पाद्य सर्वान्देवान्विसर्जयेत् ।

तत्र मन्त्रः—यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् ।

इष्टकामप्रसिद्धार्थं<sup>१</sup> पुनरागमनाय च ॥

भविष्योत्तरे—

ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्तु महोत्सवम् ।

शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषरवेण च ॥

१. य इ-प्रदानार्थे, ज क स-र्थ ।



मात्स्ये— अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समारभेत् ।  
 सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गं महीयते ॥  
 स दैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखः स्मृतः ।  
 विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कम्मसु ॥  
 निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ ! तथोद्वेगाद्भुतेषु च ।  
 वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम् ॥  
 नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समारभेत् ।  
 अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित् ॥  
 तस्मादयुतहोमस्य विधानं तु समाचरेत्<sup>१</sup> ।

विवाहेत्यादिना च विवाहादिषु काम्येषु कर्मस्वङ्गत्वमुक्तम् । अत्र ग्रहस्वरूपवर्णदेशगोत्राग्निस्थानमुखाकारस्थापनहोममन्त्रचन्दनधूपदीप-  
 नैवेद्यसमिद्धक्षिणाधिदेवताप्रत्यधिदेवतोपदेशकवाक्येषु ग्रहाणां स्वरूप-  
 निर्देशस्थापनहोममन्त्रोपदेशकवाक्येषु वाधिदेवताप्रत्यधिदेवताविना-  
 यकादिपञ्चलोकपालानामनेकस्मृतिपुराणभेदेन भूयो विसंवादिभिरनेकैः  
 पर्यायशब्दैरुपस्थितेर्नात्रैकवैधशब्दनियमः । नापि मन्त्रवर्णनैकशब्दोप-  
 स्थितिः । शब्दविशेषैर्देवता अनूद्य तत्स्मारकतया<sup>२</sup> मन्त्रविनियोगेन  
 मन्त्राणां देवताप्रापकत्वायोगात् । तेषां बाहुल्येनास्पष्टलिङ्गत्वाच्च<sup>३</sup> ।  
 अतो द्रव्यत्यागादिषु स्वरूपातिनिर्देशकस्मृतिमन्त्रवर्णोपस्थितशब्दाना-  
 मन्यतमेन शब्देनोद्देशो ग्रहादीनामिति शिष्टाचारोऽप्येवम् । अत्र  
 व्याहृति-करणकेऽयुतहोमेऽग्निवायुसूर्यप्रजापतय एव देवताः । न नव-  
 ग्रहाः । ऐन्द्रादिवत्तत्प्रकाशकत्वेन विनियोगाभावात् । अत एव  
 पारिजाते—

ॐ भूर्भुवः सुवश्चेति तिस्रो व्याहृतयो जपेत् ।

आभिश्च होमे तिसृभिश्चतुर्थी स्यात्समासतः ॥

इति समस्ताभिरेव होमः । स चाग्नि-वायु-सूर्य-दैवत्य इति तु  
 मदनः । सर्वथा व्याहृतिहोमेन ग्रहा देवता इति । प्रधानं चात्र ग्रहपूजा  
 तद्धोमोऽयुतहोमादिश्च ।

“श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्”<sup>४</sup> । इत्यादिना  
 तत्पूजातद्धोमयोः फलसम्बन्धात् । ग्रहयज्ञस्त्रिधेत्युक्त्वा” प्रथमोऽयुतहोम  
 इत्यादिनाऽयुतलक्षकोटिहोमानां ग्रहयज्ञविशेष<sup>५</sup>त्वेनोपक्रमात् ।

१. क ड—समारभेत् । २. ड स—तस्मात्स्मारकतया । ३. ज्ञ—लिङ्ग-  
 कत्वाच्च । ४. ड—रभेत् । ५. ड—वत् । ६. ज्ञ—विशेषकत्वेन ।



## ग्रहादीनां लक्षणानि

३५

“तस्मादयुतहोमस्य विधानं तु समाचरेत्” इत्युपसंहाराच्च ।

ग्रहा ग्रहदैवत्यकर्मसमूहे “प्राणभृत उपदधाती”तिर्वल्लिगसमवायेन ग्रहयज्ञशब्दः । तातचरणास्त्वयुतहोमादीनामेव प्राधान्यं ग्रहहोमस्त्वङ्गमित्याहुः । तदाशयं न जाने । यो हि कामशब्देन फलसम्बन्धः । “श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्” इत्यादिः स तावद् ग्रहपूजाहोमयोरेवोचितः । ग्रहसम्बन्धप्राप्तेर्ग्रहयज्ञशब्दस्य तन्नामत्वात् । न चायुतहोमादीनां फलसम्बन्धे तत्प्रकरणपाठाद् ग्रहपूजाहोमयोरङ्गतेति वाच्यम् । वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् । अयुतहोमादिशब्दानां ग्रहयज्ञसामानाधिकरण्येन ग्रहयज्ञनामत्वं तु लिङ्गसमवायेन न तदङ्गत्वेन <sup>१</sup>आर्थवादिकः । फलसम्बन्धस्तु—

अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत् ।

सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥

इत्यत्र यजदेवपूजासंगतिकरणदानेष्वित्यनुशिष्टयोः पूजाहोमयोः सदैवायुतहोमोऽयमित्याद्युपक्रम्य निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ इत्यादिना त्वयुतहोमादीनामपि स्मृतिषु तु प्रायः आर्थवादिकमेव फलम् । अत्र कामशब्दोपनीते फले सत्यार्थवादिकं सम्बध्यते न वेति तु विचारान्तरम् । किं च याज्ञवल्क्यादिस्मृतिषु न तावदयुतहोमादीनां विधिर्नाप्यनुवादः । अतो ग्रहपूजाहोमयोः प्राधान्याभावे तत्रत्येतिकर्तव्यतासम्बन्धो न स्यात् । अतो ग्रहपूजाहोमयोरपि प्राधान्यं भाति । अत एव क्वचित्केवलग्रहमखेषु तदङ्गकेषु च शान्तिकादिकर्मस्वेकस्मृत्युक्ताङ्गप्रधानादरेण स्मृत्यन्तरोक्तप्रधानभूतायुतादिहोमं विनाऽपि शाखान्तरोक्तग्रहयोगाभ्यासं<sup>२</sup> विनैकशाखीयग्रहयागाभ्यासमात्राणामिव पूजा ग्रहदैवत्यहोमयोरेवानुष्ठानं कथञ्चित् शिष्टानां सङ्गच्छते । ग्रहपूजाहोमयोरङ्गत्वे त्वङ्गमात्रानुष्ठानमेव स्यात् ।

## अथ ग्रहादीनां लक्षणानि

मात्स्ये— पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।

सप्ताश्वरथसंस्थश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥

श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः ।

गदापाणिद्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥

१. अ ज्ञ—समवायेन आर्थवेदिकः । २. क्ष ड—( ग्रहया ) गान्तराभ्यासान्तरं ( विनैक ) ।



रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः ।  
 चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः ॥  
 पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः ।  
 खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥  
 देव-दैत्यगुरु तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ ।  
 दण्डिनौ वरदौ कायौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥  
 इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः ।  
 बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा ॥  
 करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः ।  
 नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥  
 धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।  
 गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥  
 सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः ।  
 अङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमण्डोत्तरं सदा ॥ इति ।

### अथाधिदेवताप्रत्यधिदेवतालक्षणानि

विष्णुधर्मोत्तरे—

पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः ।  
 कपाली शूलखट्वाङ्गी चन्द्रमौलिः सदाशिवः ॥  
 अक्षसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलुम् ।  
 उमा बिभर्ति हस्तेषु पूजिता त्रिदशैरपि ॥  
 कुमारः षण्मुखः कार्यः शिखण्डकविभूषणः ।  
 रक्ताम्बरधरो देवो मयूरवरवाहनः ॥  
 कुक्कुटश्च तथा घण्टास्तस्य दक्षिणहस्तयोः ।  
 पताका वैजयन्ती स्याच्छक्तिः कार्या च वामयोः ॥  
 विष्णुः कौमोदकी-पद्म-शङ्ख-चक्रधरः क्रमात् ।  
 प्रदक्षिणं दक्षिणाधः करादारभ्य नित्यशः ॥  
 पद्मासनस्थो जटिलो ब्रह्मा कार्यश्चतुर्भुजः ।  
 अक्षमालां स्रवं बिभ्रत्पुस्तकं च कमण्डलुम् ॥  
 चतुर्दन्तगजारूढो वज्री कुलिशभृत्करः ।  
 शचीपतिः प्रकर्त्तव्यो नानाभरणभूषितः ॥  
 ईषन्नीलो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजानता ।  
 रक्तदृक्पाशहस्तश्च महामहिषवाहनः ॥



## विनायकादिलक्षणानि

३७

कालः करालवदनो नीलाङ्गश्च विभीषणः ।  
 पाशहस्तो दण्डहस्तः कार्यो<sup>१</sup> वृश्चिकरोमवान् ॥  
 अवीच्य<sup>२</sup>वेषस्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम् ।  
 दक्षिणे लेखनीं चित्रगुप्तं वामे तु पात्रकम् ॥  
 पिङ्गलश्मश्रुकेशाक्षः पीनाङ्गजठरोऽरुणः ।  
 छागस्थः साक्षसूत्रोऽग्निः सप्तार्चिः शक्तिधारकः ॥  
 चिह्नितं चमरेणास्य करमन्यं प्रकल्पयेत् ।  
 आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ॥  
 दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ।  
 शुक्लवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ॥  
 चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चण्डांशुसदृशाम्बरा ।  
 रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ॥  
 पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन !  
 दिङ्नागानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥

विष्णोरिन्द्रस्य चोक्तम्—

वामे शच्याः करे कार्या सौम्या सन्तानमञ्जरी ।  
 वरदा मण्डिता कार्या द्विभुजा च तथा शची ॥  
 यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।  
 अक्षं स्रुवं स्रुचं विभ्रत्कुण्डिकां च प्रजापतिः ॥  
 अक्षं अक्षमालाम् । कुण्डिकां कमण्डलुम् ।

अक्षसूत्रधराः सर्पाः कुण्डिकापुच्छभूषणाः ।

एकभोगास्त्रिभोगा वा सर्वे कार्याश्च भीषणाः ॥

ब्रह्मलक्षणमुक्तम्—

ग्रहाणां दक्षिणे पार्श्वे स्थापदेयदधिदेवताः ।

ग्रहाणामुत्तरे पार्श्वे न्यसेत्प्रत्यधिदेवताः ॥

## अथ विनायकादिलक्षणानि

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च कर्तव्योऽत्र गजाननः ।

नागयज्ञोपवीतश्च शशाङ्ककृतशेखरः ॥

दक्षे दन्तं करे दद्याद् द्वितीये चाक्षसूत्रकम् ।

तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं तथा ॥

१. अ-कर्णे । २. क्ष-उदीच्य, ध ड ख द र ज अ य इ-अपीच्य ।



शक्तिं बाणं तथा शूलं खड्गं चक्रं च दक्षिणे ।  
 चन्द्रबिम्बमधो वामे खेटमूर्ध्वे कपालकम् ॥  
 सुकंकटं च बिभ्राणा सिंहारूढा तु दिग्भुजा<sup>३</sup> ।  
 एषा देवी समुद्दिष्टा दुर्गा दुर्गीर्त्तिहारिणी ॥  
 धावद्धरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः ।  
 वरदानकरो धूम्रवर्णः कार्यो विजानता ॥  
 नीलोत्पलाभं गगनं तद्वर्णाम्बरधारि च ।  
 चन्द्रार्कहस्तं कर्त्तव्यं द्विभुजं सौम्यखण्डवत् ॥  
 द्विभुजौ देवभिषजौ कर्त्तव्यौ रूपसंस्थितौ ।  
 तयोरोषधयः कार्या दिव्या दक्षिणहस्तयोः ॥  
 वामयोः पुस्तकौ कार्यौ दर्शनीयौ तथा द्विजाः ।  
 एकस्य दक्षिणे पार्श्वे वामे चान्यस्य यादव ॥  
 नारीयुगं प्रकर्त्तव्यं सुरूपं चारुदर्शनम् ।  
 रत्नभाण्डकरे कार्ये चन्द्रशुक्लाम्बरे तथा ॥

### अथ लोकपालरूपाणि

तत्रैन्द्राग्नियमरूपाण्यधिप्रत्यधिदेवोक्त्योक्तानि<sup>४</sup>—

खड्गचर्मधरो बालो निऋतिर्नरवाहनः ।  
 ऊर्ध्वकेशो विरूपाक्षः करालः कालिकाप्रियः ॥  
 नागपाशधरो रक्तभूषणः पद्मिनीप्रियः ।  
 वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकरवाहनः ।  
 वायुर्विनायकादिपञ्चके उक्तः । सोमो ग्रहेषु । अनन्तः<sup>५</sup> सर्पः । स  
 प्रत्यधिदेवतासु ।

इत्ययुतहोमः ।

### अथ लक्षहोमः

तत्र ग्रहपीडादीनि निमित्तान्युक्तान्ययुतहोमारम्भो देवीपुराणे  
 अपि<sup>६</sup>—

१. क्ष-सकटक । २. ख ध-सिंहेरूढा, ड-सिंहरूढा, इ-यं । ३. द य-  
 चतुर्भुज, इ-जां । ४. इ ज-हेशोक्तानि, क-देवतोक्तानि ध-देवतोक्तोक्तानि,  
 देवतोक्त्योक्तानि । ५. क्ष ड-अनन्तः सर्पः प्रत्यधिदेवतासु, इ द य ध-अनन्तः  
 प्रत्यधिदेवतासु । ६. ज ख-देवीपुराणे ।



## लक्षहोमः

३६

लक्षहोमं प्रवक्ष्यामि यथाप्रोक्तं तु शम्भुना ।  
 भूमिकम्पे दिशां दाहे ग्रहयुद्ध उपस्थिते ॥  
 केतुसन्दर्शने चैव आदित्यस्य च कम्पने ।  
 कृष्णवर्णोऽथवा सूर्ये तथा छिद्रसमन्विते ॥  
 रक्तवृष्टिस्तथा नद्यो विपरीतां वहन्ति च ।  
 निर्गतं गगनाद् धूमं वारिमध्ये च यत्स्थितम् ॥  
 उपसर्गस्तथा लोके रक्षन्तु क्षयकारकाः ।  
 यस्य राशौ ग्रहाः पञ्च अथ सप्त सुराधिप ॥  
 ग्रहणं चन्द्रसूर्यस्य ग्रहैर्वाष्टमसंस्थितैः । इत्यादि ।

तथा— कम्पनं स्वेदनं गात्रे अम्बुपानार्थजल्पनम् ।  
 देवतानां सुराध्यक्ष उत्पाताः क्षयकारकाः ॥  
 लक्षहोमं प्रकुर्वीत कोटिहोममथापि वा । इति ॥

मात्स्ये— अस्माद्दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा ।  
 आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥  
 द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायुतं पुनः ।  
 लक्षहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥

व्यासतो द्विहस्तविस्तृतं<sup>१</sup> फलतश्चतुर्हस्तायतं भवतीत्यर्थः । तथा—  
 तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसम्मितम् ।  
 प्रागुदक्प्रवणं तद्वच्चतुरस्त्रं समन्ततः ॥  
 विष्कम्भाद्धोर्च्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा ।  
 संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् ॥  
 तस्मिंस्त्वावाहयेद्देवान्पूर्ववत्पुष्पतण्डुलैः ।  
 गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता ॥  
 सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ।  
 विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

अयं गरुडावाहनमन्त्रः—

पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत् ।  
 सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्यादिकं पुनः ॥

१. ज्ञ-द्विहस्तं ।



पूर्ववदेव समिदाज्यचरुहोमं पूर्वोक्तैरेव मन्त्रैः कुर्यात् । गरुत्मतस्तु 'सुपर्णोऽसि गरुत्मानि'ति 'इन्द्रं मित्रमि'ति वा मन्त्रः ।

घृतकुम्भवसोद्धारां पातयेदनलोपरि ।  
उदुम्बरीमथार्द्रां<sup>२</sup> च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम् ॥  
बाहुमात्रां सुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि ।  
घृतधारां तथा सम्यग्गग्नेरुपरि पातयेत् ॥  
श्रावयेत्सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम् ।  
महावैश्वानरं सम्यग् ज्येष्ठसाम च पाठयेत् ॥  
स्तनं च यजमानस्य पूर्ववत्स्वस्तिवाचनम् ।  
दातव्या यजमानेन पूर्ववद्दक्षिणा पृथक् ॥  
कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा ।  
तद्वद् द्वादश चाष्टौ वा लक्षहोमेऽपि ऋत्विजः ॥  
कर्त्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चतुरो वा विमत्सराः ।

ब्रह्माचार्यसहितानामेवेयं संख्येति केचित्—

नवग्रहमखात्सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम् ।  
दद्याच्च मुनिशार्दूल ! भूषणान्यपि शक्तितः ॥  
शयनानि च वस्त्राणि हैमानि कटकानि च ।  
कर्णाङ्गुलीपवित्राणि कण्ठसूत्राणि शक्तितः ॥  
न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन<sup>३</sup> मानवः ।  
अदत्त्वा होमलोपाद्वा कुलक्षयमवाप्नुयात् ॥  
अन्नदानं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ।  
मन्त्रहीनं कृतो यस्माद् दुर्भिक्षफलदो भवेत् ॥

तथा— तस्मात्पीडाकरोऽतीव य एव भवति ग्रहः ।  
तमेव पूजयेद्भक्त्या द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि ॥

तथा— पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः ।  
यावत्कल्पशतान्यष्टौ अथ मोक्षमवाप्नुयात् ॥

तथा— पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।  
भार्यार्थी लभते भार्यां कुमारी च शुभं पतिम् ॥  
अष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् ।

१. ज्ञ-त्मतः । २. ज्ञ-र्द्रा, इ य द-समर्द्रा । ३. अ-शाक्येन ।



## कोटिहोमः

४१

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥  
 निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्म स गच्छति ॥  
 ॥ इति लक्षहोमः ॥

## अथ कोटिहोमः

तत्राप्ययुतलक्षहोमप्रकरण एव निमित्तान्युक्तानि ।  
 भविष्योत्तरेऽपि । संवरण उवाच—

भगवन् ! महदुत्पातसम्भवे भूप्रकम्पने ।  
 निघाति पांशुवर्षे च ग्रहभङ्गे तथैव च ॥  
 जन्मनक्षत्रपीडासु अनावृष्टिभयेषु च ।  
 क्रूरासु ग्रहपीडासु दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ॥  
 व्याधीनां सम्भवे जाते शरीरे चातिपीडिते ।  
 क्लेशे महति चोत्पन्ने किं कर्तव्यं नरोत्तमैः ॥  
 स्वर्गस्य साधनं यत्तत्कीर्तिदं धनदं तथा ।  
 प्रब्रूहि मनुजश्रेष्ठ ! तथाऽऽरोग्यप्रदं नृणाम् ॥

सनत्कुमार उवाच—

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि शान्तिकर्मण्यनुत्तमम् ।  
 कोटिहोमाख्यमतुलं सर्वकामफलप्रदम् ॥  
 ब्रह्महत्यादिपापानि येन नश्यन्ति तत्क्षणात् ।  
 उत्पाताः प्रशमं यान्ति महत्सम्पद्यते सुखम्<sup>१</sup> ॥  
 विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुष्वैकमना भव ।  
 देवागारे च भवने तीर्थे वा शिवसन्निधौ ॥  
 पर्वते वाऽथ कुर्वीत य इच्छेत्क्षेममात्मनः ।  
 शुभनक्षत्रयोगे च वारे सर्वगुणान्विते ॥  
 यजमानस्यानुकूले कोटिहोमं समाचरेत् ।  
 पूजयित्वा प्रयत्नेन ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥  
 वस्त्रैर्विभूषणैश्चैव गन्धमाल्यानुलेपनैः ।  
 प्रणम्य विधिवत्तस्मै चात्मानं विनिवेदयेत् ॥  
 त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् ।  
 त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे ! सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥

१. ज न-वे । २. ज-शुभम् । ३. ज-ह्ये ।



आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् ।  
 कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् ॥  
 पुरोहितस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।  
 ब्राह्मणैः संवृतः पुण्यैः संयुतः सुसमाहितैः ॥  
 भूमिभागे समे शुद्धे प्रागुदक्प्रवणे तथा ।  
 पुण्याहं वाचयेत् पूर्वं कृत्वा विप्रांस्तु पूजयेत्<sup>१</sup> ॥  
 ततः समाहितो विप्रैः सूत्रयेन्मण्डपं शुभम् ।  
 उत्तमं शतहस्तं तु तदर्द्धेन तु मध्यमम् ॥  
 अधमं तु तदर्द्धेन शक्तिकालाद्यपेक्षया ।  
 मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः ॥  
 अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च ॥  
 मेखलात्रितयं तस्य द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ।  
 तत्प्रमाणां तथा योनिं कुर्वीत सुसमाहितः ॥  
 कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदीं कुर्याद्विचक्षणः ।  
 चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रितां नृप ॥  
 स्थापनं च सदेवानां कुर्याद्यत्नेन बुद्धिमान् ॥  
 उपलिप्य ततो भूमिं मण्डपस्य प्रकल्पयेत् ।  
 स्थापयेद्दिक्षु सर्वासु तोरणानि विचक्षणः ॥  
 एवं सम्भृतसम्भारः पुरोधाः सुसमाहितः ।  
 पुण्याहजयघोषेण होमकर्म समाचरेत् ॥  
 स्थापयित्वा सुरान्वेद्यां वक्ष्यमाणानरिन्दम !  
 ब्रह्माणं पूर्वभागे तु मध्ये देवं जनार्दनम् ॥  
 पश्चिमे तु तथा रुद्रं वसूनुत्तरतस्तथा ।  
 ऐशान्यां च ग्रहान्सर्वानाग्नेय्यां मरुतस्तथा ॥  
 वायुं<sup>२</sup> सौम्यां तथैशान्यां लोकपालान् क्रमेण तु ।  
 एवं संस्थाप्य विबुधान्यथास्थानं नृपोत्तम ! ॥  
 पूजयेद्विधिवद्वस्त्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ।  
 वेदोक्तमन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुराणोक्तैः पृथक् पृथक् ॥  
 आदित्या वसवो रुद्रा लोकपालास्तथैव च ।  
 ब्रह्मा जनार्दनश्चैव शूलपाणिर्महेश्वरः ॥

१. अ ड क र क्ष-भोजयेत् । २. ध फ ज्ञ-भूम्यां ।



## कोटिहोमः

४३

अत्र सन्निहिताः सर्वे भवन्तु सुखभागिनः ।  
 पूजां गृह्णन्तु सर्वत्र मया भक्त्योपपादिताम् ॥  
 प्रकुर्वन्तु शुभं सर्वे यज्ञकर्तुः समाहिताः ।  
 एवं <sup>१</sup>सम्पूजयित्वा तान् देवान् यत्नेन शुद्धधीः ॥  
 नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैः फलैश्चैव सुशोभितैः ।  
 ततस्तु तैर्द्विजैः सर्वैः कुण्डस्य विधिपूर्वकम् ॥  
 कुर्यात्संस्कारकरणं यथोक्तं वेदवित्तमैः ।  
 ततः समाह्वयेर्द्विहोमनाम्ना <sup>२</sup>ख्यातं घृताचितम् ॥  
 नियोजयेद् द्विजांस्तत्र शतसंख्यान्नुपोत्तम ।  
 अलाभे <sup>३</sup>तु बहूनां च यथालाभं नियोजयेत् ॥  
 विद्यावित्तवयोवृद्धान् गृहस्थान् संयतेन्द्रियान् ।  
 स्वकर्मनिरतान् <sup>४</sup>शुद्धान् ज्ञानशीलान् प्रयत्नतः ॥  
 चिन्तयेत्तत्र देवेशं पञ्चास्यं नृप ! पावकम् ।  
 मुखानि तस्य चत्वारि सप्तजिह्वानि पार्थिव ! ॥  
 एकजिह्वमथैकं तु तत्समृतं सार्वकामिकम् ।  
 धूमायमाने न वृथा होतव्यं ज्वलितेऽनले <sup>५</sup> ॥  
 ऋग्भिः पूर्वमुखैः कार्यो यजुर्भिश्चोत्तरामुखैः ।  
 सामभिः पश्चिमे कार्यः पूर्ववदक्षिणामुखैः ॥  
 आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणाः ।  
 परितश्च परिस्तीर्णो कल्पिते च तथाऽऽसने ॥  
 ब्राह्मणाः पूर्वमेवं <sup>६</sup> तु सर्वं पश्चात्समाचरेत् ।  
 होमो व्याहृतिभिश्चैव सर्वस्तत्र विधीयते ॥  
 प्रणवादिभिश्च तल्लिङ्गैः स्वाहाकारान्तयोजितैः ।  
 जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चावकल्पिताः ॥  
 एवं प्रकल्पयेद्यज्ञं कोटिहोमाख्यमुत्तमम् ।  
 तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः <sup>७</sup> किञ्चिद्द्वित्रीहिसमन्विताः ॥

किञ्चिद्यवसमायुक्ताः इति क्वचित्पाठः ।

होतव्याः कोटिहोमे तु समिधः सुपलाशजाः ।

पूर्णे पूर्णे सहस्रे तु दद्यात्पूर्णाहुतिं शुभाम् ॥

१. ज-तु । २. ख-मा । ३. ज ध फ इ ड न य-च । ४. ज ड न-  
 बुद्ध्वा, र क ध म क्ष-वृद्धान् । ५. ध र क्ष फ ख क अ ड न-ते, ई-वे ।  
 ६. ज-वात्र, इ-ब्राह्मण, । ७. ड-भक्ता ।



पञ्चमे तन्मुखे राजन् ! सर्वकामार्थसिद्धये ।  
 पूर्णाहुत्यः समाख्याताः कोटिहोमे नराधिप ! ॥  
 सहस्राणि नृपश्रेष्ठ ! दशशास्त्रविशारदैः ।  
 प्रारम्भदिनमारभ्य ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥  
 होतव्यं यजमानैश्च अथवा सुपुरोहितैः ।  
 क्रोधलोभादयो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥  
 यजमानेन राजेन्द्र सर्वकामानभीप्सता ।

मात्स्ये— अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा ॥  
 आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च ।  
 पूर्ववद्ग्रहदेवानामावाहनविसर्जनम् ॥  
 होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नानदाने तथैव च ।  
 कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे ॥  
 कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं च सर्वशः ।  
 योनि<sup>१</sup>वक्त्र<sup>२</sup>द्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम् ॥

सर्वशः चतुर्हस्तमिति विस्तारायामखातेष्वित्यर्थः । योनिवक्त्र-  
 द्वयोपेतमित्येका योनिः पश्चिमतोऽन्या दक्षिणत इति हेमाद्रिः । वक्त्रं  
 कण्ठः । योनिकण्ठयुतमिति पितामहचरणाः ।

मात्स्ये— वेदिश्च कोटिहोमे स्याद्वितस्तीनां चतुष्टयम् ।  
 चतुरस्रा समाहृता त्रिभिर्वर्षैः समावृता ॥  
<sup>३</sup>वप्रप्रमाणं प्रोक्तं वै वेदिकायास्तथोच्छ्रयः ।

उक्तमयुतहोमे—

तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ।  
 पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम् ॥  
<sup>४</sup>याजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम् ।  
 अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद् बुधः ।  
 अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्ग<sup>५</sup>वेदिनः ॥  
 एवं द्वादश तान् विप्रान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।  
 पूर्ववत्पूजयेद्भक्त्या सर्वाभरणभूषितैः ॥

१. ख-हि । २. ड-क्त्रं । ३. ज-वप्रमानं मया प्रोक्तं । ४. ड इ ख क्ष-  
 यजुर्वेदं । ५. क्ष क अ-चङ्ग ।



## शतमुखकोटिहोमः

४५

रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम् ।  
 पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्त उदङ्मुखः ॥  
 शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च ।  
 पठेत्तु दक्षिणे द्वारि <sup>१</sup>याजुर्वेदिकमुत्तमम् ॥  
 सौपर्णमथ वैराजमाग्नेयं रौद्रसंहिताम् ।  
 ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे पठेत् ॥  
 शान्तिसूक्तं <sup>२</sup>चैव तथा तथा शाकुनकं शुभम् ।  
 पौष्टिकं च महाराजन्तुत्तरेणाऽप्यथर्ववित् ॥  
 पञ्चभिः सप्तभिर्वाऽथ होमः कार्योऽत्र पूर्ववत् ।  
 स्नाने दाने <sup>३</sup>च मन्त्राः स्युस्त एव मुनिसत्तम ! ॥  
 वसोद्धाराविधानं तु लक्षहोमवदिष्यते ।  
 अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत् ॥  
 सर्वान्कामानवाप्नोति ततो विष्णुपदं व्रजेत् ।  
 यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि ग्रहशान्तित्रयं नरः ॥  
 सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छति ।  
 अश्वमेधसहस्राणि दश वाऽष्टौ <sup>४</sup>च धर्मवित् ॥  
 कृत्वा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते ।  
 ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्याऽर्बुदानि च ॥  
 नश्यन्ति कोटिहोमेन यथावच्छिति <sup>५</sup>भाषितम् ।

इति कोटिहोमः ।

## अथ शतमुखकोटिहोमः

संवरण उवाच—

बहुत्वात्कर्मणो ब्रह्मन् ! कोटिहोमः सुदुष्करः ।  
 कालेन महता चैव कर्तुं शक्यः कथञ्चन ॥

१. क्ष ख ध न—वेदिकं, इ—यजुर्वेदक । २. ज्ञ—च तथा । ३. क्ष ड—  
 स्नानदाने, क—स्नानं दाने । ४. क्ष फ र ड अ क—वाष्टौ च, इ—दृष्ट  
 वाष्टौ च । ५. ड क अ क्ष र—दव, ज्ञ—दव ।



नियमा<sup>१</sup> ब्रह्मचर्याद्या दुष्करा इति मे मतिः ।  
 निरोधो ब्राह्मणानाञ्च भूशय्यादि सुदुष्करः<sup>२</sup> ॥  
 कार्याणामलघीयस्त्वात्पूर्वकालाद्यपेक्षया ।  
 एतद्विज्ञाय तं ब्रह्मन् ! सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥  
 कोटिहोमस्य संक्षेपं वद मे ब्रह्मसम्भव ! ।

सनत्कुमार उवाच—

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुख<sup>३</sup>स्तथा ।  
 चतुर्विधो महाराज ! कोटिहोमो विधीयते ॥  
 कार्यस्य गुरुतां ज्ञात्वा नैकट्यमथ पर्वणः ।  
 यथा संक्षेपतः कार्यः कोटिहोमस्तथा शृणु ॥  
 कृत्वा कुण्डशतं दिव्यं यथोक्तं मानसमितिम् ।  
 एकैकस्मिन्स्तथा कुण्डे दश<sup>४</sup> विप्रान्नियोजयेत् ॥  
 सद्यः पक्षे तु विप्राणां सहस्रं परिकीर्तितम् ।  
 एकस्थान<sup>५</sup>प्रणीतेऽग्नौ सर्वतः परिभाविते ॥

एकस्थानात्सर्वतः<sup>६</sup> सर्वस्मिन्कुण्डे परिभाविते संस्कृतेऽग्नौ प्रणीत  
 इत्यर्थः ।

होमं कुर्युर्द्विजाः सर्वे कुण्डे कुण्डे यथोदितम् ।  
 यथा कुण्डबहुत्वेऽपि राजसूये महाक्रतौ ॥  
 न<sup>७</sup>चाप्यग्निबहुत्वं स्यान्न च यज्ञोऽपि<sup>८</sup> भिद्यते ।  
 तथा कुण्डशतेऽप्यत्र घृतार्चिषि नियोजिते<sup>९</sup> ॥  
 एक एव भवेद्यज्ञः कोटिहोमो न संशयः ।  
 एवं यैः<sup>१०</sup> क्रियते क्षिप्रं व्याकुलैः कार्यगौरवात् ॥  
 शताननः स विज्ञेयः कोटिहोमो न संशयः ।  
 स्वल्पैरहोभिः कार्यः<sup>११</sup> स्याद्दीर्घकालादिकेऽपि वा<sup>१२</sup> ॥

१. क्ष ड न—नियमाद्ब्रह्मचर्यादा, ध—नियमात्र । २. ज्ञ—दि—रम्, न र  
 अ—दिसुदुष्करः । ३. क्ष क ड अ—खा । ४. क ड—दश । ५. क्ष ड—स्थाने ।  
 ६. ज्ञ—सर्वतः सर्वतः, फ—सर्वतः स्या.....भावितेऽग्नौ । ७. फ ड न—  
 चाग्निबहुलत्वं स्यात्, न ख—नवाग्निबहुलत्वं स्यात्, ध—तत्राग्निबहुलत्वं  
 स्यात् । ८. ज्ञ—न च यज्ञादि, भिद्यते, ख—न च यज्ञोऽपि भाषते । ९. क ड इ—  
 नियोजते, अ—नियोजयेत् । १०. र क य न इ ड अ द ब—यः । ११. ज्ञ—यैः ।  
 १२. न ध ड य ई अ—च ।



## शतमुखकोटिहोमः

४७

तदा दशमुखः कार्यः कोटिहोमः शुभे मते ।  
 विप्राणां द्विशते तत्र प्रविभज्य नियोजयेत् ॥  
 तेऽपि विज्ञातशीलाः स्युर्वृत्तवन्तो जितेन्द्रियाः ।  
 यत्र कुण्डद्वयं कृत्वा विभज्य च विभावसुम् ॥  
 होमं कुर्युर्द्विजा भूयः संस्कृत्य विधिपूर्वकम् ।  
 शतं तत्र नियोज्यं च विप्राणां प्रविभज्य वै ॥  
 मासेऽथ वाऽर्द्धमासे वा कार्यः काले ह्युपस्थिते ।  
 तदापि द्विमुखः कार्यः कोटिहोमो विचक्षणैः ॥  
 यदा तु<sup>१</sup> स्वेच्छया यज्ञं यजमानः समापयेत् ।  
 कालेन बहुना राजंस्तदा चैकमुखो भवेत् ॥  
 एककुण्डस्थितो वह्निरेकचित्तैः समाहितैः ।  
 यथालाभस्थितैर्विप्रैर्ज्ञानशीलैर्विचक्षणैः ॥  
 न संख्यानियमश्चाऽत्र ब्राह्मणानां नरोत्तम !  
 न कालनियमश्चैव स्वेच्छायज्ञः स उच्यते ॥  
 आवृत्त्या कर्तुं कामस्य चातुर्मास्यादिकर्मवत् ।  
 तदा प्रसक्तः कर्त्तव्यो यज्ञोऽयं<sup>२</sup> सार्वकामिकः ॥  
 अयमेकमुखो राजन् ! कालेन बहुना भवेत् ।  
 बहुविघ्नश्च कालो वै तस्मात्संक्षेपमाचरेत् ॥  
 यतो वै वित्तमायुश्च चित्तं<sup>३</sup> चैवाऽस्थिरं सदा ।  
 अतः संक्षेपतः कार्यं धर्मकार्यं प्रशस्यते ॥  
 ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्सुमहोत्सवम् ।  
 शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषरवेण च ॥  
 ततस्तु<sup>४</sup> दक्षयेद्विप्रान् ऋत्विजः श्रद्धयान्वितः ।  
 एकैकं कनकैश्चैव कुण्डलैर्विविधैर्नृप ! ॥  
 गोशतं चैव दातव्यमश्वानां च शतं तथा ।  
 सहस्रं तु सुवर्णस्य सर्वेषामपि दापयेत् ॥  
 ग्रामैर्गजै रथैरश्वैः पूजयेच्च पुरोहितम् ।  
 दीनान्धकृपणान्सर्वान्विस्त्रान्नेश्चाऽपि पूजयेत् ॥

१. ख अ र य फ ध—तदा तु, क्ष क ड न—तदानु, ज्ञ—तदनु । २. र न  
 ज क—सर्व । ३. क्ष र ध फ न—वित्तं । ४. ध—दक्षये विप्रान्, इ—ततस्त्व-  
 भ्यर्चयेत् ।



ततश्चावभृथे स्नायात्तैर्घटैः पूर्वकल्पितैः ।  
 लक्षहोमोक्तमन्त्रेण सदा विजयकारिणा ॥  
 एवं समापयेद्यस्तु कोटिहोममखं शुभम् ।  
 तस्यारोग्यं प्रियाः पुत्रा आयुर्वृद्धिस्तथैव च ॥  
 सर्वपापक्षयश्चैव जायते नृपसत्तम<sup>१</sup> ! ।  
 अनावृष्टिभयं चैव उत्पातभयमेव च ॥  
 दुर्भिक्षग्रहपीडाश्च प्रशमं यान्ति भूतले ।  
 एतत्पुण्यं पापहरं सर्वकामफलप्रदम् ॥  
 सनत्कुमारमुनिना पार्थिवाय निवेदितम् ।  
 सर्वोपसर्गशमनं भवनाशनं वा

ये कारयन्ति मनुजा नृपकोटिहोमम् ॥

भोगानवाप्य मनसोऽभिमतान् प्रकामं

ते यान्ति शक्रसदनं भुवि शुद्धसत्त्वाः ॥

अथ यथैते साहस्राः साद्यस्क्रा इत्येकसंज्ञयोपक्रान्तेषु क्रमास्नातेषु च निकायिसंज्ञकेषु यागेषु प्रथमस्यास्नातधर्मकस्य धर्मा उत्तरेष्वनास्नातधर्मकेषु निकायित्वाऽवान्तरसामान्यात्साहस्र<sup>२</sup>साद्यस्क्राद्येकनामकत्वाच्च प्रवर्तन्त इत्यष्टमे निकायिनां तु पूर्वस्योत्तरेषु प्रवृत्तिः स्यादित्यत्र निरणायि । तथेह 'चतुर्विधो महाराज कोटिहोम' इति चतुर्णां कोटिहोमनाम<sup>३</sup>त्वावान्तरे<sup>४</sup> सामान्येन आस्नात<sup>५</sup>धर्मकस्यैकमुखस्य धर्मा अनास्नातधर्मकेषु द्विमुखादिषु प्रवर्तन्ते तेन तेषां विकृतित्वम् । तत्र द्विमुखे तावत्कुण्डद्वयं प्रकृतिप्राप्तेषु शतपञ्चाशत्पञ्चविंशतिहस्तमण्डपेषु मध्यमनवमांशे कार्यम् । तस्यैव—“मध्यमे नवमांशे तु कुण्डं, कुर्याद्विचक्षणः” इति प्रकृतौ वचनेनात्रापि तथा प्राप्तेः । तच्च कुण्डद्वयं षड्हस्तम् । “दशलक्षमिते होमे षट्करं सम्प्रचक्षत” इति भविष्यत्पुराणात् । पञ्चहस्तं वा । “कुण्डं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलक्षाहुतौ क्रमात्” इति<sup>६</sup> तत्रान्तराच्च । दशलक्षोत्तरमेकोनकोटिपर्यन्तं पञ्चषट्करे इत्यर्थः । अयुतहोमतः प्राप्तं<sup>७</sup> एकहस्तत्वं प्राकृतं परिमाणं त्वदृष्टार्थत्वापत्त्याऽप्राकृतकार्यत्वाद् बाध्यते । अर्थात्परिमाणमिति कात्या-

१. ड—नन्दन । २. य ड क द अ इ—सहस्र । ३. फ क्ष ख ध र ड य अ फ इ द—होमत्वावोत्तर । ४. ज्ञ क ड न अ ध र ख भ फ—र । ५. अ ध ख ज्ञ—सधर्मकस्य, द य—अधर्मकस्य । ६. ज्ञ—तत्त्वां । ७. र क्ष इ य अ द ड—एकहस्तत्वमयुतहोमीयं प्राकृतं ।



## शतमुखकोटिहोमः

४६

यनोक्तेश्च । तत्र पञ्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यनवांशे दक्षिणोत्तरयोः कुण्डद्वयं<sup>१</sup> निविशते, कथञ्चित् प्रकृतितो द्वादशाङ्गुलमेखलाप्राप्तेः । इतरयोस्तु मण्डपयोः सुगम एव निवेशः । एवं दशमुखेऽपि प्राकृतैक-हस्तत्वबाधेन पञ्चकराणि षट्कराणि वा दशकुण्डानि । तेषु प्रत्येकं दशलक्षा आहुतयः । तत्र पञ्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यमांशे<sup>२</sup> पूर्वादिषु<sup>३</sup> चतुर्षु<sup>४</sup> दिक्षु मध्ये संलग्नानि चत्वारि कुण्डानि । प्राकृतमध्यमांशाधिकरणत्वस्य यावत्सम्भवमनुग्रहस्य न्याय्यत्वात् । प्राञ्चि<sup>५</sup> नवमांशे तु प्राकृती<sup>६</sup> चतुःकरा वेदी सप्तस्वंशेषु षट्कुण्डानि, यः कश्चिदेकोऽंशस्तु रिक्त एव । कुण्डद्वयममध्यमांशे । अष्टस्वंशेष्वष्टावित्यपि<sup>७</sup> केचित् ।

शतमुखेऽपि पञ्चविंशतिहस्ते तावन्मण्डपे शतकुण्डा<sup>८</sup> निवेशो बाधित एव । पञ्चाशद्वस्ते यद्यपि सम्भवति तथापि सहस्रविप्राणां सुखेन निवेशो बाधितः । अतः शतहस्त एव निवेश उच्यते । तत्र मध्यमांशे प्राग्भागे उदक्संस्था पञ्चानामेका पंक्तिः । तेषां च कुण्डानां प्रत्येकमन्तरं सार्द्धसप्तहस्ताः<sup>९</sup> सप्ताङ्गुलानि च<sup>१०</sup> । ततः प्रतीच्यामेतादृशमेवान्यत्पंक्तित्रयं कार्यम् । पंक्तीनामन्तरञ्चाष्टौ हस्ताः<sup>११</sup> सप्ताङ्गुलानि<sup>१२</sup> च । एवं विंशतिकुण्डानि मध्यभागे अन्येष्वष्टसु भागेषु मध्ये द्वे द्वेष्टसु दिक्ष्वष्टावष्टाविति । प्रत्येकं दशदशेति ।

ननु शतकुण्डेषु प्रत्येकं लक्षाहुतिप्राप्तिः । न चैतत्सद्यःकोटिहोमपक्षे सम्भवति । “कृत्वा कुण्डशतं दिव्यं यथोक्तं हस्तसम्मितमि”ति शतमुखप्रकरणे कुण्डानां हस्तपरिमाणोक्तेरिति चेत्तत्र केचित् हस्तसम्मितमित्यत्र हस्ताभ्यां हस्तैर्वा सम्मितमिति विग्रहेण त्रिचतुर्हस्ततापि युज्यते । द्विहस्तेऽपि तु लक्षमाहुतयः समान्त्येव<sup>१३</sup> ॥ अत एव हेमाद्रौ—अयुते त्वथ होतव्ये कुण्डं स्याद्वस्तमात्रकम् ।

द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ॥ इति ।

यद्यप्यौत्सर्गिक एकवचनान्तेनैव विग्रहस्तथाऽप्यनुपपत्त्या द्विबहुवचनान्तेनापि क्रियते । यथा “सप्तदश प्राजापत्यान्पशूनालभत” इत्यत्र

१. ड—कुण्डं निविशते । २. ज्ञ—+षु । ३. ड—पूर्वादि । ४. र क्ष ख क ड—चतुर्दिक्षु । ५. ड—प्राचीन । ६. ज्ञ—प्राकृता, न—प्राकृतः, य द—प्राकृत, ध—प्रकृति । ७. ज्ञ—हति । ८. ज्ञ—डा, य इ द—ड । ९. क—प्रहस्ता । १०. क्ष र ड—पञ्चहस्ताश्चत्वर्यङ्गुलानि च । ११. घ द य इ—हस्तान् । १२. पञ्चाङ्गुलीनि च, ड क र य क्ष—अष्टाङ्गुलीनि च । १३. क्ष फ ख ड न—समान्त्येव, द य इ—समान्त्येव ।



चोदकप्राप्तैकपशुनिष्पन्नहृदयाद्येकादशावदानगणानुरोधेन<sup>१</sup> प्रजापति-  
देवता यस्यासौ प्राजापत्यः प्राजापत्यश्च प्राजापत्यश्च प्राजापत्य इति  
३कृततद्धितानामेकशेष एव योगो न तु “अयञ्चायञ्चैक” इत्येकशेषोत्तरं  
तद्धितं चोदकबाधापत्तेरित्युक्तम् । एवं द्विचतुर्हस्तकुण्डं सम्पत्त्या युज्य-  
न्त एकैकस्मिन्कुण्डे लक्षमाहुतय इत्याहुः । तातचरणास्तु—व्यासतुल्य-  
खातेन षट्पञ्चचतुस्त्रिंशद्व्यङ्गुलानां पञ्चमेखलानां विशत्यङ्गुलोच्च-  
तया च मध्यावकाशविवृद्ध्या एकैकहस्तेष्वपि शक्या एव लक्षमाहुतयः  
कर्तुम् । अनारभ्याम्नातपञ्चमेखलापक्षेण प्राकृतमेखलात्रयबाधस्तूप-  
दिष्टैकहस्तत्वानुरोधेनेति युक्तमाहुः ।

अत्रैकस्मिन्कुण्डे आज्यभागान्तं कृत्वाऽन्यकुण्डेष्वग्निप्रणयनमिति  
केचित् । तन्न । वारुण<sup>२</sup>प्राघासिकदक्षिणोत्तरवेद्योरनुष्ठीयमानायामाहुत्या-  
माणेयद्यष्टहविषु<sup>३</sup> चाधाराज्यभागप्रयाजाद्यङ्गानां पृथगनुष्ठानवदाज्य-  
भागान्तं स्विष्टकृदाद्यङ्गानुष्ठानवदिहापि तिस्र<sup>४</sup> आहुतीर्जुहोतीति-  
वत्संख्यया भिन्नेषु कोटिसंख्याकेषु होमेषु लक्षशः शतकुण्डेष्वनुष्ठीय-  
मानेष्व्राज्यभागान्तस्विष्टकृदाद्यङ्गानुष्ठानभेदस्यैव न्याय्यत्वात् । किं  
च अप्रमादार्थेन दीक्षाकालीन<sup>५</sup>जागरणेन दीक्षोपयुक्तसम्भारसंरक्षणे-  
ऽपि प्रायणीया<sup>६</sup>द्यर्थसम्भारसंरक्षणार्थातिदेशिकजागरणावृत्तिवदिहाप्य-  
ग्निसमिन्धनार्थेध्माधानावृत्तिः कथमप्यवार्यैव<sup>७</sup> । न हि आचार्यकुण्ड-  
स्थेऽग्नौ<sup>८</sup> समिद्धे कुण्डान्तरस्थानां समिन्धनं भवति । अत एवायुतहोमे  
पूर्वलिखित<sup>९</sup>०तद्ग्रहाकार<sup>१०</sup>कुण्डीपक्षे प्रधानायतनादग्निं विभज्य नव-  
कुण्डेषु<sup>११</sup>प्रणीय नवाचार्या आज्यभागान्तं कृत्वेत्यादिना होमशेषं समाप्य  
पूर्णाहुतीर्हुत्वेत्यन्तेनाज्यभागान्तानां स्विष्टकृदादीनां चाङ्गानामावृत्ति-  
लिखनं प्रयोगपारिजातीयं सङ्गच्छते, तदेव च कोटिहोमे चोदकात्प्राप्तं  
प्राकृताष्टसंख्याबाधेन<sup>१२</sup>नवनवतिसंख्यामात्रं विधीयते । यद्यपि प्रणय-  
नान्तरं<sup>१३</sup> तथापि तद्धर्मकमेव सर्वथाङ्गानामावृत्तिरेव । एतावान् परं  
विशेषः<sup>१४</sup> । शतसंख्यया कुण्डेषु नवसंख्याग्रहाद्याकाराः स्थलविशेषाश्च  
निवर्तन्ते । अतोऽग्निसंस्थापनोत्तरमेव प्रणयनम् ।

१. क्ष ड अ क—गणनानुरोधेन । २. ज ख ध फ य इ अ द—कृतद्विता-  
नाम् । ३. अ ज—वारुण । ४. ज अ द य—वा । ५. ज—तिस्र आहुतीनिवत् ।  
६. क्ष र क ड न—कालीनेन, फ—कालिनेन । ७. क्ष—प्रायणीयाच । ८. ज—  
अनिवार्यैव । ९. ड क्ष—कुण्डेऽग्नौ । १०. क्ष—तं । ११. ज—वच्च । १२. ज—  
आचार्यकुण्डेषु । १३. क्ष ज—नवतिसंख्या, इ—नवतिसंख्यान्यामात्रं । १४. ड क्ष—  
प्रणयनान्तरं । १५. ज—एतावान् विशेषः ।



## ग्रहसखप्रयोगः

५१

यत्तु पारिजाते मध्यकुण्डात्प्रणयनमुक्तं तन्न । प्रागुदगपवर्गप्रचार-  
बाधात् । तेन तत्संरक्षणार्थं नैऋत्यकुण्डादेव प्रणयनं कार्यम् । अस्तु  
वा कथञ्चिदयुतहोमे मध्यकुण्डसङ्ख्यावात्तस्य च सर्वप्रधानभूतसूर्यदैवत्य-  
त्वात्कथञ्चित्ततः प्रणयनम् । शतमुखे तु मध्ये कुण्डनिवेशाभावात् ततोऽ-  
ग्निप्रणयनं, मध्यस्थलसमीपवर्तिष्वनेककुण्डेषु तु विनिगमनाविरहः<sup>१</sup> ।  
सर्वोऽप्ययं, कोटिहोमविचारस्तातचरणैर्द्वैतनिर्णये सुविवृत इति नेह  
विस्तरः ।

अथ प्रायो मत्स्यानुसारिणीं भट्टकृतां पद्धतिमनुसृत्य

## ग्रहसखप्रयोगः

कर्ता प्रारम्भदिनात्पूर्व<sup>२</sup> सुदिने दानमयूखीयास्मदुक्तप्रकाराणा-  
मन्यतमप्रकारेण प्राचीं संसाध्य तत्र वितस्त्युच्छ्रायं मण्डपनिवेशयोग्यं  
चतुरस्रं चत्वरं कृत्वा पूर्वाह्णे देशकालौ स्मृत्वाऽमुककर्म कर्तुं मण्डपं  
करिष्य इति संकल्प्य गणेशं कूर्मं शेषं वसुधां<sup>३</sup> द्विजांश्च सम्पूज्य—

आगच्छ सर्वकल्याणि वसुधे लोकधारिणि ।

उद्धृतासि वराहेण सशैलवनकानना ॥

मण्डपं कारयाम्यद्य त्वदूर्ध्वं शुभलक्षणम् ।

गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं प्रसन्ना शुभदा भव ॥

इति वसुधाया अर्घ्यं दत्त्वा “स्यो ना पृथिवी<sup>४</sup>”ति तां प्रार्थ्य मण्डपं  
तदुदीच्यां मध्ये वा कुण्डं वेदिं च कुर्यात् । मण्डपश्चायुतहोमेऽष्टहस्तो  
दशहस्तो वा कुण्डं हस्तमितं<sup>५</sup> चतुरङ्गुलैकमेखला<sup>६</sup> वेदीमण्डपोत्तरभागे  
हस्तविस्तृता वितस्त्युच्छ्रिता वप्रत्रयवती कार्या । तत्र प्रथमो वप्रत्र्य-  
ङ्गुलोच्छ्रायः । तदुपरितनौ प्रत्येकं द्व्यङ्गुलोच्छ्रितौ । विस्तारस्तु  
सर्वेषामपि प्रत्येकं त्र्यङ्गुलः । लक्षहोमे तु मण्डपो द्वादशचतुर्दशषोडश-  
हस्तोऽपि कुण्डं क्षेत्रफलतश्चतुःकरम्<sup>७</sup> । तदेव व्यासतो द्विकरम् ।  
द्वित्रिचतुरङ्गुलोच्चत्रिमेखलम् । तत्रोपरि<sup>८</sup>तनी चतुरङ्गुलविस्तारा

१. ध-निगमनाविरहः । २. ड इ-पूर्वसुदिने । ३. ज्ञ-वासुकि ।

४. ऋ. सं १।२।६ । ५. क्ष इ न ड अ-हस्तमात्रं, य द-हस्तमात्र । ६. क्ष य  
अ ड न-मेखलां, ज्ञ ध र ख फ-मेखलं । ७. क्ष-चतुष्करम् । ८. क्ष-परी ।



अधोगते द्वे अपि प्रत्येकं द्वचङ्गुल<sup>१</sup> विस्तारे । कुण्डादीशान्यां सार्द्धहस्त-  
विस्तृता तदद्धोच्छ्रितेशानप्रवणा पूर्ववत्त्रिव्रा वेदी । कोटिहोमे तु  
शततदद्धतदद्धषोडशान्यतमहस्तो मण्डपः । कुण्डं तु अष्टहस्तं दशहस्तं  
षोडशहस्तं वा फलतः । तच्च व्याससमखातं मण्डपमध्ये तस्य दक्षिण-  
पश्चिमयोर्योनिद्वयम् । वेदी च प्राच्यां द्विहस्तविस्तृतेति विशेषः ।  
द्विमुखदशमुखशतमुखेषु तु निर्णयावसरे<sup>२</sup> सन्निवेश उक्तः । कर्ता सुदिने  
मासपक्षादि सङ्कीर्त्य श्रीकामादिर्ग्रहपीडानिवारणकामो वाऽयुतहोमं  
लक्षहोमं वा करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजा-  
वृद्धिश्राद्धाचार्यादिवरणानि कुर्यात् । तत्रायुतहोमे चत्वार ऋत्विजो द्वौ  
वा । लक्षहोमे द्वादशाष्टौ चत्वारो वा । कोटिहोमेऽष्टौ होमार्थं चत्वारो  
द्वारजापका इति द्वादश । अयुतलक्षकोटिहोमेषु त्रिष्वपि षोडश वा ।  
ब्रह्माचार्याविष्येतन्मध्य एव सर्वत्र ।

वरणमन्त्रास्तु—

आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः  
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ॥  
यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा स्वर्गलोके पितामहः ।  
तथाऽस्मिन्मम यज्ञे त्वं ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥  
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया ।  
सुप्रसन्नाः प्रकुर्वन्तु शान्तिकं विधिपूर्वकम् ॥

कोटिहोमे तु गुरुप्रार्थना—

त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् ।  
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे ! सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥  
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् ।  
कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् इति ॥

ततः सर्वनाचार्यादीन् स्वशास्त्रीयानामृत्विक्शास्त्रीयानां च पदार्था-  
नामनुसमयेन मधुपर्केण सम्पूज्य शुक्लमाल्याम्बरानुलेपनः सपत्नीक  
ऋत्विक्सहितो “भद्रं कर्णेभिः” इति वेदघोषेण मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य  
पश्चिमद्वारेण प्रविशेत् । तत आचार्यो—

यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा ।  
स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥



अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।

सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारम्भे ॥

इति सर्षपान्विकीर्य 'शुची वो हव्येति'<sup>१</sup> 'एतोन्विन्द्रमिति'<sup>२</sup> च तृचाभ्यां 'आपो<sup>३</sup> हिष्ठे'त्यादिभिश्च भुवं प्रोक्ष्य स्वस्त्ययनं ताक्ष्यमिति ऋग्वेदं पठेत् । ततो मण्डपनिर्ऋतिभागे हस्तमितां वेदिं कृत्वा तस्यां वस्त्रं प्रसार्य तत्र सुवर्णादिशलाकया नवरेखाः प्राक्पश्चिमायता नव च दक्षिणोत्तरायताः कृत्वा मध्यकोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य प्रतिकोणं त्रिषु पदेषु सूत्रं दद्यात् । तथा चतुर्विंशतिरर्द्धपदानि सम्पद्यन्ते । मण्डलस्याग्नेयादिषु कोणेषु शङ्कुचतुष्टयं—

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः ।

मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा ॥

इति मन्त्रेण निखाय,

अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः<sup>४</sup> ।

तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥

नैऋत्याधिपतिश्चैव नैऋत्यां ये च राक्षसाः ।

बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वे गृह्णन्तु मन्त्रितम् ॥

ॐ नमो वायुरक्षोभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः ।

बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥

रुद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः ।

बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्णन्तु सततोत्सुकाः ॥

इति मन्त्रैः शङ्कुपार्श्वेषु यथाक्रमं प्रतिमन्त्रं<sup>५</sup> माषभक्तबलीन्दत्वा, 'शान्तिर्यशोवती कान्तिर्विशाला प्राणवाहिनी सती सुमना नन्दा सुभद्रा' इति नव प्रागायतरेखादेवताः पूजयित्वा ।

'हिरण्या सुप्रभा लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया । जया काला विशोका' इति नवदक्षिणोत्तरायतरेखादेवताश्च सम्पूज्य । मध्ये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्वास्तुपुरुषमावाह्य वास्तोष्पते प्रतीति सम्पूज्य बलिं च दत्वा मध्य<sup>६</sup>पदचतुष्टये वास्तोर्हृदये ब्रह्माणमावाह्य पूजयित्वा,

'ॐ ब्रह्माणे नमो बलिं समर्पयामि' ॥

१. ऋ. सं. ५।४।२४ । २. ऋ. सं. ६।२।१८ । ३. ऋ. सं. ७।१।५ ।

४. क्ष ड ध-तत्समाश्रिताः । ५. क्ष र फ ड न अ क-मन्त्रेण । ६. ड-मध्ये, इ अ द क-पदचतुष्टये ।



इति पायसबलिं दद्यात् ।

ततः पूर्वपदद्वये दक्षिणस्तनेऽर्यम्णे नमः ॥

दक्षिणपदद्वये जठरदक्षिणभागे विवस्वते नमः ॥

पश्चिमपदद्वये जठरवामभागे मित्राय नमः ॥

वामस्तने पृथिवीधराय नमः इत्युदकपदद्वये ॥

आग्नयकोणसूत्रद्विधाकृतब्रह्मपदसंलग्नपदद्वयोत्तरार्द्धद्वये

दक्षिणहस्ते सावित्राय नमः ॥

दक्षिणार्द्धद्वये सवित्रे च ॥

एवं नैऋत्यपदद्वयपूर्वार्द्धपदद्वये वृषणयोर्विबुधाधिपायः ॥

तत्पश्चिमार्द्धद्वये मेन्द्रे जयन्तायः ॥

वायव्यपदद्वयदक्षिणार्धे वामहस्ते राजयक्ष्मणेः ॥

उत्तरार्द्धे रुद्रायः ॥

ईशानपदोत्तरार्द्धद्वये उरसि अदभ्यः ॥

दक्षिणार्द्धद्वये मुखे आपवत्सायः ॥

ततोऽन्त्यपङ्क्तिगते ईशानपददक्षिणार्द्धे शिरसि शिखिनेः ।

तद्दक्षिणसार्धे पदे दक्षिणनेत्रे पर्जन्यायः ॥

तद्दक्षिणपदयोर्दक्षिणश्रोत्रे जयन्तायः ॥

तद्दक्षिणपदयोर्दक्षिणांसे कुलिशायुधाय ॥

तद्दक्षिणयोर्दक्षिणबाहौ सूर्यायः ॥

तद्दक्षिणयोर्दक्षिणबाहवे च सत्यायः ॥

तद्दक्षिणस्यार्द्धे दक्षिणकूर्परे भृशायः ॥

तद्दक्षिणाग्नेयपदार्धे दक्षिणप्रवाहौ आकाशायः ॥

तत्पश्चिमार्द्धे दक्षिणप्रवाहावेव वायवेः ॥

तत्पश्चिमसार्द्धे दक्षिणमणिबन्धे पूष्णेः ॥

तत्पश्चिमयोर्दक्षिणपार्श्वे वितथायः ॥

तत्पश्चिमयोर्दक्षिणपार्श्वे एव गृहक्षतायः ॥

तत्पश्चिमद्वये दक्षिणोरौ यमायः ॥

तत्पश्चिमयोर्दक्षिणजानौ गन्धर्वायः ॥

तत्पश्चिमे सार्द्धे पदे दक्षिणजङ्घायां भृङ्गराजायः ॥

तत्पश्चिमे नैऋत्यपदार्द्धे दक्षिणस्फिचि मृगायः ॥

१. ज इ-द्विधाकृतपदद्वयोत्तरार्धे, क्ष-पदमदलसंलग्ने, क र अ-पदोत्तरार्द्धे ड-पदमपद-पदोत्तरार्धे ।



तदुत्तरार्द्धे पादयोः पितृभ्यः० ॥

तदुत्तरे सार्द्धपदे वामस्फिचि दौवारिकाय० ।

तदुत्तरयोर्वामजङ्घायां सुग्रीवाय० ॥

तदुत्तरयोर्वामजानौ पुष्पदन्ताय० ॥

तदुत्तरयोर्वामोरौ वरुणाय० ॥

तदुत्तरयोर्वामपार्श्वेऽसुराय० ॥

तदुत्तरे सार्द्धे पदे वामपार्श्वे शोषाय० ॥

तदुत्तरे वायव्यार्द्धे वाममणिबन्धे पापाय० ॥

तत्प्रागर्द्धे वामप्रवाहौ रोगाय० ॥

तत्प्राक्-सार्द्धे वामप्रवाहावेव अह्ये० ॥

तत्प्राक्द्वये वामकूर्परे मुख्याय० ॥

तत्प्राक्द्वये वामबाहौ भल्लाटाय० ॥

तत्प्राक्द्वये वामबाहावेव सोमाय० ॥

तत्प्राक्द्वये वामांसे सर्पाय० ॥

तत्प्राक्सार्द्धे वामश्रोत्रे अदित्यै० ॥

तत्प्रागर्द्धे वामनेत्रे दित्यै० ॥

तत उत्तरे वास्तोष्पत इति वास्तोष्पतये० ॥

ततो मण्डलाद् बहिरीशानादिषु चरक्यै० विदाविदार्यै० पूतनायै० पापराक्षस्यै० । ततः पूर्वादिषु स्कन्दाय० अर्यम्णे० जृम्भकाय० पिलिपिच्छाय० ॥ पुनः पूर्वादिषु इन्द्रादीन् ॥ ततो मण्डलादीशाने कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं 'तत्त्वायामी'<sup>१</sup>त्यावाह्यं पूजयेत् ।

यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा ।

तथा ब्रह्मादिदेवानां मम यज्ञे स्थिरो भव ॥

इति प्रार्थयेत् । तत उदुम्बरादिसमित्तिलाज्यैः स्वतन्त्रस्थण्डिलेऽष्टाविंशतिरष्टौ वा प्रत्येकं तत्तन्नाममन्त्रैर्हुत्वा 'वास्तोष्पत'<sup>२</sup> इति चतुर्भिश्च हुत्वा ॐ वास्तोष्पते इति मन्त्रेण पञ्चबिल्वफलानि हुत्वा स्विष्टकृदादिपूर्णाहुत्यन्तं कुर्यात् । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसर्वालं दत्त्वा 'कृणुष्व पाज'<sup>३</sup> इति सूक्तादिना मण्डपं त्रिसूत्र्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशेन यजमानमभिषिच्य पुनः सम्पूज्य यथाशक्तिदक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणान्भोजयेदिति । शारदातिलके तु होमो नोक्तः । तिलाज्यादिद्रव्याणां विकल्प इति ग्रन्थान्तरे । इति वास्तुपूजा ।

१. ऋ. सं. १।२।२५ । २. ऋ. सं. ५।४।२१ । ३. ऋ. सं. ३।४।२३ ।



मात्स्ये— उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमधिवासनम् । इति ।

पाद्मे— उपवासी भवेदेवमशक्तौ नक्तमिष्यत । इति ।

सद्योऽधिवासनं चाथ कुर्याद्यो विकलो नरः ॥

इति तत्रैवोक्तम् । अधिवासनं चैवम् ।

तत्र द्वारपूजा । पूर्वद्वारे द्वारश्रियै नमः । ऊर्ध्वं देहल्यै० । अधः वामदक्षिणस्तम्भयोर्गणेशाय० । स्कन्दाय नमः । द्वारस्थितकलशद्वये गंगायै० यमुनायै० । दक्षिणद्वारे द्वारश्रियै नमः । ऊर्ध्वं देहल्यै० । अधः स्तम्भयोः पुष्पदन्ताय० कपर्दिने० । कलशद्वये गोदावर्यै० कृष्णायै० इति । पश्चिमे द्वारश्रियै० । ऊर्ध्वं देहल्यै० । अधः स्तम्भयोर्नन्दिने० । चन्द्राय<sup>१</sup> नमः । कलशद्वये रेवायै० ताप्यै० । उत्तर<sup>२</sup>द्वारे द्वारश्रियै० । ऊर्ध्वं देहल्यै० । अधः स्तम्भयोर्महाकालाय नमः । भृङ्गिणे नमः । कलशद्वये वाण्यै० वेण्यै० ।

इति द्वारपूजा ॥

### अथ तोरणपूजा

तत्र पूर्वे बहिर्हस्तमात्रे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुदृढनामकं सुशोभन-  
नामकं वा शंखाङ्कितम् 'अग्निमीले<sup>३</sup>' इति मन्त्रेण न्यस्य सम्पूज्य राहु-  
बृहस्पती तत्र न्यसेत् पूजयेच्च । तत्रैकः कलशः स्थाप्यः । तत्र 'मही<sup>४</sup>  
द्यौरिति भूप्रार्थना । 'ओषधयः समिति'<sup>५</sup> यवप्रक्षेपः । 'आकलशेष्वि<sup>६</sup>ति  
कलशनिधानम् । 'इमं मे गङ्गा'<sup>७</sup> इति जलपूरणम् । 'गन्धद्वारामि'ति  
गन्धं प्रक्षिपेत् । 'या ओषधीरि'<sup>८</sup>ति सवौषधीः । 'ओषधयः समि'ति  
यवान् । 'काण्डात्काण्डादि'ति दूर्वा । 'अश्वत्थेव'<sup>९</sup> इति पञ्चपल्लवान् ।  
'स्यो ना पृथिवी'<sup>१०</sup>ति पञ्चमृदः । 'याः फलिनीरि'<sup>११</sup>ति फलम् । स हि  
रत्नानी'<sup>१२</sup>ति पञ्चरत्नानि । 'हिरण्यरूप'<sup>१३</sup> इति हिरण्यम् । 'युवा  
सुवासा'<sup>१४</sup> इति वस्त्रादिना वेष्टयेत् । 'पूर्णादर्वी'ति धान्यपूर्णपात्रमुपरि

१. ज्ञ-चण्डाय । २. उ क्ष-पाठः, अपरपुस्तकेषु-‘उत्तरे’ इति । ३. ऋ.  
सं. १।१।१ । ४. ऋ. सं. १।२।६ । ५. ऋ. सं. ८।५।११ । ६. ऋ. सं. ६।८।७ ।  
७. ऋ. सं. ८।३।६ । ८. ऋ. सं. ८।५।८ । ९. ऋ. सं. ८।५।८ । १०. ऋ. सं.  
१।२।६ । ११. ऋ. सं. ८।५।१० । १२. ऋ. सं. ४।४।२५ । १३. ऋ. सं.  
२।७।२३ । १४. ऋ. सं. ३।१।३ ।



निदध्यात् । तत्र ध्रुवावाहनं पूजनं च । ततो दक्षिणे औदुम्बरं प्लाक्षं वा सुभद्रं विकटं वा चक्राङ्किततोरणम् 'इषेत्वोज्ज्वल'¹ इति निधाय चन्दनादिना² चर्चितं कृत्वा सूर्यमङ्गारकं च तत्र न्यसेत् । ततः पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र धरामावाह्य पूजयेत् । ततः पश्चिमे प्लाक्षमौदुम्बरं वा सुकर्म सुभीमं वा गदाङ्कितं तोरणम् 'अग्न आयाही'³ इति न्यस्य सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत् । ततः पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र वाक्पत्यावाहनपूजनादि । तत उत्तरे न्यग्रोधमाश्रयं पालाशं वा सुहोत्रं सुप्रभं वा पद्माङ्किततोरणं 'शन्नो देवीरि'⁴ इति निधाय पूजितं कृत्वा सोमं केतुं शनिं च तत्र न्यसेत् । ततः कलशं स्थापयित्वा तत्र विघ्नेशावाहनपूजनादि । ततः पूर्वद्वारशाखाद्वये कलशद्वयं दध्यक्षतादियुक्तं पूर्ववत्स्थापयेत् । ऐरावतं कलशद्वये न्यस्यार्चयेत् । तत्र पूर्वस्मिन् ऋग्वेदिनावृत्तिजौ द्वौ एकं वा शान्ति-सूक्तजपार्थत्वेन त्वामहं वृणे इति प्रत्येकम् ।

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः ।

अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥ इति ।  
इति वृत्वा 'अग्निमीले'⁵ इति पूजयेत् ।

एह्ये हि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।

संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेतीन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं द्वारकलशे आवाह्य 'त्रातारमिन्द्रमि'⁶ इति पूजयित्वा 'आशुः शिशान'⁷ इति पीतां पताकां पीतं ध्वजं चोच्छ्रयेत् । तत ऐरावतस्थं पीतवर्णं सहस्राक्षं दक्षिणवामहस्तस्थवज्रोत्पलमिन्द्रं ध्यात्वा—

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः ।

शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । आचम्याऽऽग्नेयकोणे पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र पुण्डरीकममृतं च सम्पूज्य—

एह्ये हि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवर्यैरभितोभिजुष्ट ।

तेजोवता लोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥

१. तै. सं. १।१।१ । २. ज ख क्ष-चन्दनादि, न-चन्दना । ३. ऋ. सं. ४।५।३२ । ४. ऋ. सं. ७।६।५ । ५. ऋ. सं. १।१।१ । ६. ऋ. सं. ४।७।३२ । ७. ऋ. सं. ८।५।२२ ।



‘भो अग्ने इहागच्छेह तिष्ठे’ति साङ्गादिकमग्निं कलशे आवाह्य  
‘त्वन्नो अग्ने’<sup>१</sup>त्यग्निं सम्पूज्याग्निं दूतमिति रक्तां पताकां रक्तं ध्वजं  
चोच्छ्रयेत् । तत छागस्थं रक्तं दक्षिणवामकरधृतशक्तिकमण्डलं यज्ञोप-  
वीतिनमग्निं ध्यात्वा—

आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः ।

धूमकेतुरजोध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा ‘अग्नये साङ्गाय एतं माषभक्तबलिं समर्पयामी’ति बलिं  
दद्यात् । ततः कृताचमनो दक्षिणे गत्वा प्रतिद्वारशाखं पूर्ववत्कलशद्वयं  
स्थापयित्वा वामनं दिग्गजं तत्रार्चयेत् । ततो यजुर्वेदिनौ द्वावेकं वा  
दक्षिणद्वारे शान्तिसूक्तजपार्थत्वेन त्वामहं वृण इत्युक्त्वा—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः ।

काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥

इति प्रत्येकं सम्प्रार्थ्य ‘इषे त्वोज्ज्वे’ति पूजयेत् । ततः—

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वमिरैरर्चितधर्ममूर्ते ।

शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥

‘भो यम इहागच्छेह तिष्ठे’ति साङ्गादि<sup>२</sup>यममावाह्य ‘यमाय सोमम्’<sup>३</sup>  
मिति सम्पूज्य कृष्णां पताकां कृष्णं ध्वजं “चायं गौ”<sup>४</sup>रित्युच्छ्रयेत् ।  
ततो महिषारूढं धृतदण्डपाशं दक्षिणवामकरमञ्जनपर्वततुल्यरूपमग्नि-  
समलोचनं यमं ध्यात्वा—

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम् ।

आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति नत्वा ‘साङ्गाय यमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामी’ति बलिं  
दद्यात् । तत आचम्य नैऋत्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा कुमुददिग्गजं  
दुर्जयं च सम्पूज्य—

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः ।

ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥

‘भो निऋते इहागच्छेह तिष्ठे’ति साङ्गा<sup>५</sup>मावाह्यामुन्वन्त<sup>६</sup>मिति  
सम्पूज्य नीलां पताकां ध्वजं च ‘मोषुण’ इत्युच्छ्रित्य नरारूढं खड्ग-  
हस्तं नीलवर्णं महाबलं महाकायं बहुराक्षससंयुतं निऋतिं ध्यात्वा—

१. ऋ. सं. १।१।२२ । २. क्ष न-सांगादि, य इ ड-सांगादिकं । ३. ऋ.  
सं. ७।६।१६ । ४. ऋ. सं. ८।८।४७ । ५. ऋ. सं. २।४।१९ ।



निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकपावनम् ।  
 आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥  
 इति नत्वा 'साङ्गाय निर्ऋतये एतं माषभक्तर्बलिं समर्पयामी'ति बलिं  
 दद्यात् । तत आचम्य पश्चिमे प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं निधायाञ्जन-  
 दिग्गजं न्यस्यार्चयेत् । ततः सामगावृत्तिजावृत्तिजं वा वृत्वा—

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः ।

भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र ! शान्तिपाठं मखे कुरु ॥

इति प्रार्थ्य 'अग्न आयाही'<sup>१</sup>ति पूजयित्वा । ततः—

एह्ये हि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः ।

विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥

इत्युक्त्वा 'भो वरुणेहागच्छेह तिष्ठे'ति साङ्गं वरुणमावाह्य  
 'तत्वायामी'<sup>२</sup>ति सम्पूज्य श्वेतां ध्वजं च 'इमं मे वरुणे'<sup>३</sup>त्युच्छ्रित्य  
 मकरस्थं पाशहस्तं किरीटिनं श्वेतवर्णं वरुणं ध्यात्वा—

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां पतिमीश्वरम् ।

आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्वरुणाय नमो नमः ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय वरुणायैतं माषभक्तर्बलिं समर्पयामी'ति बलिं  
 दद्यात् । ततोऽप उपस्पृश्य वायव्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा पुष्पदन्तं  
 सिद्धार्थं च तत्र पूजयित्वा—

एह्ये हि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः ।

प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

॥ 'भो वायो इहागच्छेह तिष्ठे'ति साङ्गं वायुमावाह्य 'तव वायवृत्-  
 स्पत'<sup>४</sup> इति सम्पूज्य 'वायो शत'<sup>५</sup>मिति धूम्रां पताकां ध्वजं चोच्छ्रित्य  
 मृगारूढं चित्राम्बरधरं युवानं वरध्वजधरं दक्षिणवामहस्तं वायुं  
 ध्यात्वा—

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवद्गतिम् ।

आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

अनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि ।

तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि ते ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय वायवे एतं माषभक्तर्बलिं समर्पयामी'ति बलिं  
 दद्यात् ।

१. ऋ. सं. ४।५।२२ । २. ऋ. सं. १।२।१५ । ३. ऋ. सं. १।२।१९ ।

४. ऋ. सं. ६।२।३० । ५. ऋ. सं. ३।७।२४ ।



तत आचम्योत्तरे गत्वा प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं स्थापयित्वा सार्व-  
भौमं दिग्गजं न्यस्य पूजयित्वाऽथर्वविदावृत्तिजावुत्तरद्वारे शान्तिसूक्त-  
जपार्थत्वेनाऽहं वृण इत्युक्त्वा—

वृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदेवतः ।

वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥

इति प्रार्थ्य 'शन्नो देवीरि' १ ति पूजयेत् ।

एह्ये हि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।

सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

'भो सोम इहागच्छेह तिष्ठे'ति साङ्गं सोममावाह्य 'वयं सोमे' २ ति सम्पूज्य हरितां पताकां ध्वजं 'चाप्यायस्वे' ३ ति न्यस्य । नरयुतं ४ पुष्प-  
कविमानस्थं कुण्डलहारकेयूरसंशोभितं वरदगदाधरदक्षिणवामहस्तं  
मुकुटिनं महोदरं स्थूलकायं ह्रस्वं पिङ्गलनेत्रं पीतविग्रहं शरसखायं  
कुबेरं ५ च ध्यात्वा—

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः ।

तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः ॥

इति सोमं नत्वा 'साङ्गाय सोमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामी'ति बलिं  
दद्यात् ।

तत ईशान्यां गत्वाऽऽचम्य पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा सुप्रतीक-  
नामानं दिग्गजं मङ्गलं च तत्र पूजयित्वा—

एह्ये हि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।

लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्धये गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

'ईशानेहागच्छेह तिष्ठे'ति तमावाह्य 'तमीशानमि' ६ ति सम्पूज्य  
श्वेतां सर्ववर्णां वा पताकां ध्वजं च 'आभित्वा देवसवितरि' ७ त्युच्छ्रित्य  
वृषारूढं वरदत्रिशूलयुतदक्षिणवामहस्तद्वयं त्रिनेत्रं स्फटिकवर्णमीशानं  
ध्यात्वा—

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम् ।

आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्ल ईश्वरः ।

शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

१. ऋ. सं. ७।६।५ । २. ऋ. सं. ८।१।१९ । ३. ऋ. सं. १।६।२२ ।

४. ज्ञ-नरपुष्प । ५. ज्ञ-सोमं । ६. ऋ. सं. १।६।१५ । ७. ऋ. सं. १।२।२३ ।



इति नत्वा 'साङ्गायेशानायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामी'ति बलिं दद्यात् ।

तत आचम्य ईशानपूर्वयोर्मध्ये गत्वा

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।

यक्षोरोन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥

'भो अनन्त इहागच्छेह तिष्ठे'ति साङ्गमनन्तमावाह्य 'आयं गौरि'ति सम्पूज्य मेघवर्णां श्वेतां वा पताकां ध्वजं च 'आयं गौरि'त्युच्छ्रित्य अनन्तं<sup>१</sup> शयनासीनं फणासप्तकमण्डितं । पद्मशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षिणकरद्वयम् चक्रगदाधरोर्ध्वाधो वामकरद्वयं नीलवर्णमनन्तं ध्यात्वा—

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।

पुष्पवद्वारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवारायानन्तायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामी'ति बलिं दद्यात् ।

तत आचम्य नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये गत्वा—

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।

सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

'भो ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठे'ति ब्रह्माणमावाह्य 'ब्रह्मजज्ञानमि'ति सम्पूज्य रक्तां पताकां ध्वजं च 'ब्रह्मजज्ञानमि'त्युच्छ्रित्य चतुर्मुखं हंसारूढमक्षमालाकुशमुष्टिधरोर्ध्वाधो दक्षिणकरद्वयं सुवकमण्डलधरोर्ध्वाधो वामकरद्वयं श्मश्रुलं जटिलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा

पद्मयोनिश्चतुर्भुविर्देवावासः पितामहः ।

यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ ॥

इति नत्वा 'साङ्गाय सपरिवाराय ब्रह्माणे एतं माषभक्तबलिं समर्पयामी'ति बलिं दद्यात् ।

<sup>२</sup>नैऋत्यपश्चिमान्तरालेऽनन्तबलिदानमीशानपूर्वान्तराले ब्रह्मबलिदानं चेति रूपनारायणः ।

तत आचम्य मण्डपमध्येऽत्युच्चदण्डो दशहस्तदीर्घस्त्रिहस्तविस्तृतः पञ्चहस्तदीर्घोहस्तविस्तारो<sup>४</sup> वा महाध्वजः किङ्किण्यादियुक्तं 'इन्द्रस्य वृष्णम्'<sup>५</sup> इति स्थाप्यः । तत्रैव ब्रह्मपूजनं च । ततो मण्डपषोडशस्तम्भेषु

१. ऋ. सं. ८।८।४७ । २. ड इ क्ष न द य—अनन्तशयनासीनं । ३. ड—नैऋत । ४. ज्ञ—पञ्चहस्तविस्तारे । ५. ऋ. सं. ८।५।२३, ज्ञ—इन्द्रस्य वृक्ष ।



सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः । पृष्ठे पन्नगेभ्यो नमः  
इत्यर्चयेत् । ततः पूर्वभागे उपलिप्तभूमावुपविश्य—

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

ब्रह्माविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।

ऋषयो मुनयो<sup>१</sup> गावो देवमातर एव च ॥

सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालगणैः सह ।

रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः ॥

इति पठित्वा त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्त्रैलोक्य-  
स्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ब्रह्माणे विष्णवे शिवाय देवेभ्यो दान-  
वेभ्यो गन्धर्वेभ्यो राक्षसेभ्यः पन्नगेभ्य ऋषिभ्यो मनुष्येभ्यो गोभ्यो  
देवमातृभ्यो नमः । इति प्रत्येकं सम्पूज्य भूमौ माषभक्तर्वालं दद्यात् ।

ततो यजमानः सर्वैर्ऋत्विभिः सह प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य  
दक्षिणद्वारपश्चिमदेशे उपविश्य गुर्वादयो यथाविहितं कर्म कुरुध्वमिति  
वदेत् । प्रतिकुण्डमेकैकः कलश ऋत्विग्भिः स्थाप्य इति केचित् ।  
गुरुणा स्थाप्य इत्यन्ये । ततो ऋग्वेदादिक्रमात्प्रागादिकुण्डेषु ऋत्विजो-  
र्ऽग्निं स्थापयेयुः । ततो गुरुर्यजमानान्वितो ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्र<sup>२</sup>मण्डल-  
देवताः स्थापयेदिति पितामहचरणाः ।

यथा—<sup>३</sup>अद्येत्यादिमण्डलदेवतास्थापनं करिष्य इति सङ्कल्प्य  
स्थापयेत् । तत्र मध्ये ब्रह्माणम् । ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा  
त्रिष्टुप् स्थापने पूजने च विनियोगः । एवमुत्तरत्र ॥ ॐ ब्रह्मयज्ञानं  
॥ १ ॥ तत उदीचीमारभ्य वायव्यपर्यन्तं कुबेरादीन्वायवन्तानष्टौ  
लोकपालान् । तत्राप्यायस्व गौतमः सोमो गायत्री ॥ ॐ आप्यायस्व<sup>४</sup>  
॥ २ ॥ अभित्वाऽजीर्गतः शुनःशेष ईशानो गायत्री ॥ ॐ अभित्वा देव-  
सवितः<sup>५</sup> ॥ ३ ॥ इन्द्रं वो मधुच्छन्दा<sup>६</sup> इन्द्रो गायत्री ॥ ॐ इन्द्रं वो  
पश्यत ॥ ४ ॥ अग्निं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री ॥ ॐ अग्निं दूतं  
वृणीमहे<sup>७</sup> ॥ ५ ॥ यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्टुप् ॥ ॐ यमाय सोमं<sup>८</sup>

१. ज्ञ क अ-मनवो, क्ष ध ख र-मानवो । २. ज्ञ ध ख र इ य-सर्वतोभद्रे  
मण्डलदेवताः । ३. ज्ञ-अद्येहेत्यादि । ४. ऋ. सं. १।६।२२ । ५. ऋ. सं.  
१।२।१३ । ६. ज्ञ-छन्दो । ७. ऋ. सं. १।१।२५ । ८. ऋ. सं. ७।६।१६ ।



॥ ६ ॥ मोषुणो घोरः कण्वो निऋतिर्गायत्री ॥ ॐ मोषुणः<sup>१</sup> ॥ ७ ॥  
 तत्त्वायामि शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप् ॥ ॐ तत्त्वायामि<sup>२</sup> ॥ ८ ॥  
 वायो शतं गौतमो वामदेवो वायुरनुष्टुप् ॥ ॐ वायो शतं<sup>३</sup> ॥ ९ ॥  
 वायुसोममध्येऽष्टौ वसून् जमया अत्र मैत्रावरुणो वसिष्ठो वसवस्त्रि-  
 ष्टुप् ॥ ॐ जमया अत्र<sup>४</sup> ॥ १० ॥ सोमेशानमध्ये एकादशरुद्रान् ॥  
 आरुद्रासः श्यावाश्व एकादशरुद्रा जगती ॥ ॐ आ रुद्रासः<sup>५</sup> ॥ ११ ॥  
 ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशादित्यान् ॥ त्यान्तु साम्मदो मत्स्यो द्वादशादित्या  
 गायत्री ॥ ॐ त्यान्तु क्षत्रियान्<sup>६</sup> ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्येऽश्विनौ राहूगणो  
 गौतमोऽश्विनावृष्णिक् ॥ ॐ अश्विनावर्त्तिः<sup>७</sup> ॥ १३ ॥ अग्नियममध्ये  
 विश्वेदेवान्सपैतृकान् । ओमासोमभुच्छन्दा<sup>८</sup> विश्वेदेवा गायत्री ॥ ओमासः  
 ॥ १४ ॥ यमनिऋतिमध्ये सप्तयक्षान् । अभित्यं वामदेवः सप्तयक्षाः  
 प्रकृतिः । अभित्यं देवं सवितारमोण्योः कविकृतुमर्चामि सत्यसवं रत्न-  
 धामभिप्रियं मर्तिं कविम् । ऊर्ध्वयिस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि  
 हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपाश्वः<sup>९</sup> ॥ १५ ॥ निऋति<sup>१०</sup>वरुणमध्ये  
 भूतनागान् ॥ आयं गौः सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री । ॐ आयगौः<sup>११</sup> ॥ १६ ॥  
 वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः । अप्सरसामैतश<sup>१२</sup>ऋष्यशृङ्गो गन्धर्वा-  
 प्सरसोऽनुष्टुप् । ॐ अप्सरसां गन्धर्वाणाम्<sup>१३</sup> ॥ १७ ॥ ब्रह्मासोममध्ये  
 स्कन्दनन्दीश्वरशूलमहाकालान् ॥ कुमारस्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ॐ कुमारं  
 माता<sup>१४</sup> ॥ १८ ॥ ऋषभमृषभो वैराजो ऋषभोऽनुष्टुप् । ॐ ऋषभं  
 मा<sup>१५</sup> ॥ १९ ॥ ब्रह्मेशानमध्ये दक्षादीन् सप्त । अदितिलौक्यो बृहस्पति-  
 र्दक्षोऽनुष्टुप् । ॐ अदितिऽर्ह्यजनिष्ट<sup>१६</sup> ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये  
 दुर्गा विष्णुं च । तामग्निवर्णां सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् । ॐ तामग्निवर्णां  
 ॥ २२ ॥ इदं विष्णुः काण्वो मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥ ॐ इदं विष्णुः<sup>१७</sup>  
 ॥ २३ ॥ ब्रह्माग्नेयमध्ये स्वधाम् । उदीरतां शङ्खः स्वधा त्रिष्टुप् । ॐ  
 उदीरतां सूनृताः<sup>१८</sup> ॥ २४ ॥ ब्रह्मायममध्ये मृत्युरोगान् । परं मृत्योः

१. ऋ. सं. १।३।१६ । २. ऋ. सं. १।२।१५ । ३. ऋ. सं. ३।७।२४ ।  
 ४. ऋ. सं. २।४।६ । ५. ऋ. सं. ४।३।२९ । ६. ऋ. सं. ६।४।५१ ।  
 ७. ऋ. सं. १।६।२७ । ८. ज्ञ-छन्दासि । ९. ध ख र ह ण-कृफस्वः ।  
 १०. ज्ञ ध अ इ-निन्दति । ११. ऋ. सं. ८।८।७७ । १२. ख-मैतत्रशः । ज्ञ-  
 मैतस । १३. ऋ. सं. ८।७।२४ । १४. ऋ. सं. ३।८।१४ । १५. ऋ. सं. ८।८।२४,  
 ड इ-लौक्यो । १६. ऋ. सं. ८।३।१ । १७. ऋ. सं. १।२।७ । १८. २।१।५ ।  
 र क्ष क द य ड-अवर ।



संकुसुको मृत्युरोगा-स्त्रिष्टुप् । ॐ परं मृत्यो<sup>१</sup> अनु ॥ २५ ॥ ब्रह्म-  
निऋतिमध्ये गणपतिम् ॥ गणानान्त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती ॥ ॐ  
गणानान्त्वा<sup>२</sup> ॥ २६ ॥ ब्रह्मवरुणमध्ये अपः ॥ <sup>३</sup>शन्नोदेवीराम्बरीर्षः  
सिन्धुद्वीप आपो गायत्री । ॐ शन्नो देवीः ॥ २७ ॥ ब्रह्मवायुमध्ये मरुतः ।  
मरुतो यस्य राहुगणो गौतमो मरुतो गायत्री ॥ ॐ मरुतो यस्य<sup>४</sup> ॥ २८ ॥  
ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः पृथिवीम् ॥ स्योना मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री ॥  
ॐ स्योना पृथिवि<sup>५</sup> ॥ २९ ॥ तत्रैव गङ्गादिनद्यः ॥ इमं मे सिन्धुक्षित्<sup>६</sup>  
<sup>७</sup>प्रेयमेधो गङ्गायमुनासरस्वत्यो जगती । ॐ इमं मे गङ्गे<sup>८</sup> ॥ ३० ॥  
तत्रैव सप्तसागरान् । धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुणं नो मुञ्च ॥  
यदापो अध्न्या इति वरुणेति शयामहे ततो वरुणं नो मुञ्च । मयि  
वापो<sup>९</sup> मोषधीर्हिंसी<sup>१०</sup>रतोविश्वव्यचा<sup>११</sup>भूस्त्वेतो वरुण नो मुञ्च । तदुपरि  
मेरुं नाम्नावाह्य<sup>१२</sup>सोमादिसमीपे क्रमेणायुधानि । गदां त्रिशूलं वज्रं  
शक्तिं दण्डं खड्गं पाशं अंकुशम् । तद्बाह्ये उत्तरादितः गौतमं भर-  
द्वाजं विश्वामित्रं कश्यपं जमदग्निं वसिष्ठं अत्रिं अरुन्धतीम् । तद्बाह्ये  
पूर्वादि—ऐन्द्री कौमारीं ब्राह्मीं वाराहीं चामुण्डां वैष्णवीं माहेश्वरीं  
विनायकीमित्यष्टौ<sup>१३</sup>शक्तीः प्रतिष्ठाप्य प्रत्येकं सहावाह्य<sup>१४</sup>पूजयेत् ।  
ततस्तस्यामेव वेद्यां वस्त्रलिखितवक्ष्यमाणमण्डलेष्वादित्यादिदेवताः  
स्थापयेत् पूजयेच्च । अस्मिन्कर्मणि ग्रहादिस्थापनं पूजनं च करिष्ये<sup>१५</sup>  
इति संकल्प्य प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्माग्निर्देवता देवी गायत्री-  
छन्दः व्याहृतीनां क्रमेण जमदग्नि<sup>१६</sup>भरद्वाज-भृगव<sup>१७</sup>ऋषयः अग्नि-  
वायुसूर्या देवताः दैवी गायत्री दैवी उष्णिक् दैवी बृहत्यश्छन्दांसि सूर्या-  
द्यावाहने विनियोगः ॥ केचिन्मन्त्रानप्यावाहने आहुः । तत्र ग्रहपीठमध्ये  
वर्तुले<sup>१८</sup>प्राङ्मुखं सूर्यं रक्तपुष्पाक्षतैः<sup>१९</sup>आ कृष्णेन हिरण्यस्तूपः सविता  
त्रिष्टुप् सूर्यावाहने विनियोगः ॥ ॐ आकृष्णेन रजसा<sup>२०</sup>॥ ॐ भूर्भुवः

१. ऋ. सं. ७।६।२६ । २. ऋ. सं. २।६।२९ । ३. अ ध ख र य द न इ  
क क्ष ड-शन्नोम्बरीव । ४. ऋ. सं. १।६।११ । ५. ऋ. सं. १।२।६ । ६. क्ष-  
क्षिन् । ७. ऋ. सं. ८।३।६ । ८. अ ड न इ कु द ज्ञ-यो । ९. ज्ञ-सि ।  
१०. ज्ञ-श्च्यवा । ११. ज्ञ-नाम । वाह्ये, अ र द य वाह्ये, न-नाम्नावाह्ये ।  
१२. भ-अष्टा शक्तीः, द अ क न क्ष ख र-शक्तयः । १३. ज्ञ-सह चावाह्य,  
य इ द-आवाह्य । १४. अ क न क्ष ड-पाठः । १५. य द ह-र्भ । १६. न  
ज्ञ अ-वो । १७. ड ध क्ष-वर्तुलं । १८. ज्ञ-रक्ताक्षतैः । १९. ऋ. सं. १।३।६ ।



स्वः कलिङ्गदेशोद्भवः काश्यपगोत्र सूर्य ! इहागच्छेत्यावाह्ये ह तिष्ठेति  
स्थापयेत् । एवं सर्वत्र मन्त्रान्ते व्याहृतीरुक्त्वेहाच्छेह तिष्ठेति स्थाप-  
येत् । तत आग्नेये चतुरस्रे प्रत्यङ्मुखं सोमं श्वेतपुष्पाक्षतैः आप्यायस्व  
गौतमः सोमो गायत्री सोमावाहने । यमुनातीरोद्भव आत्रेयगोत्र सोम०  
॥ २ ॥ ततो दक्षिणे त्रिकोणे दक्षिणामुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैरग्निर्मूर्द्धा  
विरूपोङ्गारको गायत्री अङ्गारकावाहने । अवन्तीसमुद्भव भारद्वाज-  
सगोत्र<sup>१</sup> भौम ॥ ३ ॥ तत ईशाने बाणाकारे उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पा-  
क्षतैरुदबुध्यध्वं बुधः सौम्यो बुधस्त्रिष्टुप् बुधावाहने । मगधदेशोद्भव  
आत्रेयसगोत्र बुध ॥ ४ ॥ तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे उदङ्मुखं बृहस्पतिं  
पीतपुष्पाक्षतैर्बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् । सिंधुदेशोद्भव आंगि-  
रसगोत्र बृहस्पते ॥ ५ ॥ ततः पूर्वे पञ्चकोणे प्राङ्मुखं शुक्रं शुक्लपुष्पा-  
क्षतैः शुक्रः पाराशरः<sup>२</sup> शुक्रो द्विपदा विराट् ॥ भोजकटदेशोद्भव भार्गव-  
सगोत्र शुक्र ॥ ६ ॥ ततः पश्चिमे धनुषि प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पा-  
क्षतैः शमग्निरिं विठिः शनिरुष्णिक् सौराष्ट्रज<sup>३</sup> काश्यपगोत्र शनै-  
श्चर ॥ ७ ॥ ततो नैऋत्ये शूर्पाकारे दक्षिणामुखं राहुं कृष्णपुष्पाक्षतैः  
कया नो वामदेवो राहुर्गायत्री राह्वावाहने ॥ राठिनापुरोद्भव पैठीनसि-  
सगोत्र राहो ॥ ८ ॥ ततो वायव्ये ध्वजाकारे दक्षिणामुखं केतुं धूम्र-  
पुष्पाक्षतैः केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री । अन्तर्वेदिसमुद्भव<sup>४</sup>  
जैमिनिसगोत्र केतो इहागच्छेह तिष्ठेति ॥ ९ ॥ सर्वे वा आदित्या-  
भिमुखाः । अथाधिदेवताः श्वेतपुष्पाक्षतैः क्रमात्सूर्यादीनां दक्षिणतः  
स्थाप्याः । त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् । “विनियोगः सर्वत्र ज्ञेयः ।  
त्र्यम्बकं ॐ भूर्भुवः स्वः ईश्वरम् ॥ १ ॥ गौरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा  
जगती । सोमदक्षिणे उमाम् ॥ २ ॥ यदक्रन्दो दीर्घतमास्कन्दस्त्रिष्टुप् ।  
स्कन्दः<sup>५</sup> ॥ ३ ॥ विष्णोर्नु कं विष्णोर्दीर्घतमाविष्णुस्त्रिष्टुप् विष्णो  
॥ ४ ॥ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् । ब्रह्मयज्ञानम् ॥ ५ ॥  
इन्द्रं वो मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री । इन्द्रं वो ॥ ६ ॥ यमाय सोमं यमोऽनु-  
ष्टुप् । यमाय ॥ ७ ॥ मोषुणो घोरः कण्वः कालो गायत्री । मोषुणः परा

१. ज्ञ-भारद्वाजगोत्र । २. ध-पाराशरः, ड क्ष-पाराशरः । ३. क्ष ड इ  
द य-सौराष्ट्रदेशोद्भव । ४. ज्ञ-वा...त्रा...केतको । ५. ध-+ रुद्रावाहने  
विनियोगः, सर्वत्र दोषः द य-+ त्र्यम्बको वा सर्वत्र ज्ञेयः । ६. क्ष-पाठः,  
ड-यदक्रन्दः ।



॥८॥ उषो वाजं प्रस्कण्वश्चित्रगुप्तो बृहती । उषो वाजम् ॥ ९ ॥ एव-  
मेव शुक्लपुष्पाक्षतैर्ग्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहृतीरिहागच्छेह तिष्ठेति  
चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् । अग्निं काण्वो मेघातिथिरग्निर्गायत्री ।  
ॐ अग्निं दूतं ॥ १ ॥ अप्सु मे मेघातिथिरापोऽनुष्टुप् ॥ २ ॥ स्यो ना  
मेघातिथिर्भूमिर्गायत्री ॥ ३ ॥ इदं विष्णुर्मेघातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥  
इन्द्रश्चेष्टानि गृत्समद इन्द्रस्त्रिष्टुप् ॥ ५ ॥ इन्द्राणीं वृषाकपिरिन्द्राणी  
पक्तिः ॥ ६ ॥ प्रजापतेर्हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ ७ ॥ आयं गौः  
सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री ॥ ८ ॥ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मास्त्रि-  
ष्टुप्<sup>१</sup> ॥ ९ ॥ ततः शुक्लपुष्पाक्षतैर्विनायकादीन् पञ्च गणानान्त्वा  
गृत्समदो गणपतिर्जगती । राहोरुत्तरतो विनायकम् ॥ १ ॥ जातवेदसे  
कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् । शनेरुत्तरतो दुर्गम् ॥ २ ॥ तव वायवृतस्पते  
व्यश्व आङ्गिरसो वायुर्गायत्री<sup>२</sup> । रवेरुत्तरतो वायुम् ॥ ३ ॥ एतान्  
मन्त्रान्पठन्ति साम्प्रदायिकाः । तत्र केषु चिन्मन्त्रेषु मूलं चिन्त्यम् ॥ ४ ॥  
आदित्प्रत्नस्य वत्स आकाशो गायत्री । राहोर्दक्षिणे आकाशम् ॥ ५ ॥  
एषो उषाप्रस्कण्वोऽश्विनौ गायत्री । अश्विनाविहागच्छत<sup>३</sup>मिह तिष्ठत-  
मिति केतोर्दक्षिणेऽश्विनौ ॥ ६ ॥ एतानि विनायकादि स्थानानि  
चिन्तामणौ । विनायकादीन् पञ्च उत्तरत एवेति सम्प्रदायः । एवं  
द्वात्रिंशदेव देवता<sup>४</sup> इति रूपनारायणादयः । हेमाद्रौ तु लोकपालादीना-  
मपि सूर्याभिमुखानां दिक्षु स्थापनमुक्तम् । तद्यथा । इन्द्रं विश्वा<sup>५</sup>जेता  
माधुच्छन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप् । इन्द्र इहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वं इन्द्रम् । एव-  
मुत्तरत्र ॥ १ ॥ अग्निं मेघातिथिरग्निर्गायत्री ॥ २ ॥ यमाय सोमं  
यमो यमोऽनुष्टुप् ॥ ३ ॥ मोषुणो घोरः कण्वो निऋतिर्गायत्री ॥ ४ ॥  
त्वन्नो अग्ने वामदेवो<sup>६</sup> वरुणस्त्रिष्टुप् ॥ ५ ॥ तव <sup>७</sup>वायो व्यश्वो<sup>८</sup>  
वायुर्गायत्री ॥ ६ ॥ सोमो धेनुं गौतमः सोमस्त्रिष्टुप् ॥ ७ ॥ तमीशानं  
गौतम ईशानो जगती ॥ ८ ॥ सहस्रशीर्षा नारायणोऽनन्तोऽनुष्टुप् ।  
ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम् ॥ ९ ॥ ॐ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा  
त्रिष्टुप् ॥ नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणम् ॥ १० ॥ तत उत्तरे क्षेत्रस्य

१. ज फ-स्त्रिष्टुप् । २. ज- + छन्दः । ३. ज-ता । ४. फ ज र-त्रिंश-  
देवता, क प-त्रिंशदेवता । ५. ज-विश्वो । ६. तत्वायामि शुनःशेषो ।  
७. द य-वायोवश्वो वायुर्गायत्री । ८. ज- + वांगिरसो ।



## तोरणपूजा

६७

वामदेवः क्षेत्रपालोऽनुष्टुप् । वास्तोष्पते वसिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रि-  
ष्टुप् । ततो लक्षहोमश्चेदिन्द्रं<sup>१</sup> मित्रमित्यनेन ।

सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ।

विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इत्यनेन चोत्तरे । गरुत्मन्तमावाह्य रवेः पूर्वं शेषं सोमस्याग्रे वासु-  
किं भौमाग्रे तक्षकं बुधोत्तरे कर्कोटकम् । बृहस्पतेरग्रे पद्मं शनिपश्चिमे  
शङ्खपालं राहोः पुरः कम्बलं केतोः पुरः कुलिकम् । पीठात्प्राच्यामश्वि-  
न्यादिसप्तनक्षत्राणि । विष्कुम्भादि-सप्तयोगान् । बव-बालवकरणे<sup>२</sup> ।  
सप्तद्वीपानि ऋग्वेदञ्च । दक्षिणे पुष्यादि सप्तनक्षत्राणि । धृत्यादिसप्त-  
योगान् । कौलव-तैतिलकरणे । सप्तसागरान् । यजुर्वेदञ्च । पश्चिमे  
स्वात्यादिसप्तनक्षत्राणि । वज्रादिसप्तयोगान् । गर-वणिजकरणे ।  
सप्तपातालानि सामवेदञ्च । उत्तरे—अभिजिदादिसप्तनक्षत्राणि  
साध्यादिषट्योगान् । विष्टिकरणम् । भूरादीन् सप्तलोकान् । अथर्व-  
वेदञ्च । वायव्ये ध्रुवं सप्तर्षीश्च । अथ यथावकाशं गङ्गादिसप्त-  
सरितः । सप्तकुलाचलान् । अष्टौ वसून् । द्वादशादित्यान् । एकादश-  
रुद्रान् । एकोनपञ्चाशन्मरुतः । षोडशमातृः । षडृतून् । द्वादश मासान् ।  
द्वे अयने । पञ्चदश तिथीः<sup>३</sup> । षष्टिसम्बत्सरान् । सुपर्णान् । नागान् ।  
सर्पान् । यक्षान् । गन्धर्वान् । विद्याधरान् । अप्सरसः । रक्षांसि ।  
भूतानि । मनुष्यानि । कोटिहामे तु वेदः पूर्वं ब्रह्माणम् । मध्ये जना-  
र्दनम् । पश्चिमे रुद्रम् । उत्तरे स्कन्दमित्येतानप्यावाहयेत् पूजयेच्च<sup>४</sup> ।  
ततोऽस्मिन्कर्मणि देवतापरिग्रहार्थम् अन्वाधानं करिष्ये इति सङ्कल्प्य  
चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा सूर्यादीन्ग्रहादीन् समिदाज्यनैवेद्यशेषचरु-  
भिरंष्टसहस्रांष्टशताष्टाविंशत्याष्टान्यतमसंख्ययाऽधिदेवताप्रत्यधिदेवता-  
विनायकादीन् लोकपालांश्चामुकसंख्यया एतैरेव द्रव्यैः क्षेत्रपालादी-  
श्चामुकसंख्यया सूर्याद्याः सर्वा देवता दशसंख्याकतिलाहुतिभिः । अग्निं  
वायुं सूर्यं प्रजापतिं च प्रत्येकं पञ्चविंशतिशतमिताभिस्तिलाहु-  
तिभिर्यक्ष्ये । लक्षहोमे—पञ्चविंशतिसहस्रमिताभिः ॥ कोटिहोमे—  
पञ्चविंशतिलक्षमिताभिरिति विशेषः । ततः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि  
यक्ष्ये इत्यन्तमुक्त्वा समिद्द्वयमादाय निर्वापादिक्रमेण गुडोदनादीन् नवा-

१. ऋ. सं. ३।८।९ । २. क्ष-कौलवतैतिलकरणे । ३. इ न अ ज ख फ  
र द य-तिथीन् । ४. ड न अ क ध क्ष-पाठः । ५. ड क्ष-विंशतिशत ।



न्यांश्च शुद्धांस्त्रयोविंशतिरिति द्वात्रिंशत् नवैव वा चरुन् श्रपयित्वा  
पञ्चभिः षोडशभिर्वोपचारैः सम्पूजयेत् । तत्र वस्त्राणि ग्रहवर्णानि ।  
रविभौमयो रक्तचन्दनम् । चन्द्रशुक्रयोः श्वेतचन्दनं । बुधगुर्वोः कुङ्कुम-  
युतम् । शनि-राहु-केतूनां कृष्णागुरुम् । पुष्पाणि तत्तद्वर्णानि । धूपास्तु ।  
सल्लकीनिर्यासम् ॥ घृताक्ताः ॥ रालमगुरुं सिल्लकं वित्वयुतागुरुं  
गुग्गुलम् । लाक्षां भक्षः क्रमाद् गायत्र्या दत्त्वा उद्दीप्यस्वेति सर्वेभ्यो  
दीपात् दत्त्वा गुडौदनं पायसं नीवारौदनं क्षीरयुतपाण्डिकौदनं दध्यौदनं  
घृतौदनं तिलमाषयुतमोदनं मांसौदनं<sup>१</sup> चित्रौदनं च क्रमान्निवेदयेत् ॥  
अधिदेयतादिभ्यस्तु वासोगन्धपुष्पाणि श्वेतानि । गुग्गुलुर्धूपः । नैवेद्यं  
पायसादि यथालाभम् ॥ सूर्यादिद्वात्रिंशतामन्येषां च सर्वेषां पूजा पदार्था-  
नुसमयेनैव ।

ततो वेदीशान्यां कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणमावाह्य सम्पूज्याभि-  
मन्त्रयेत् ॥ तद्यथा—

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।  
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥  
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।  
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥  
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥  
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ।  
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।  
देवदानवसम्वादे मथ्यमाने महोदधौ ।  
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ।  
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।  
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥  
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।  
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥  
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥  
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव !  
सान्निध्यं कुरु मे देव ! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ इति ।

ततः फलपुष्पमालोपशोभितं वितानं बृहस्पतिदेवतं सूर्यादिभ्य इदं  
न ममेत्युत्सृज्य ग्रहवेद्युपरि बध्नीयात् । ततश्चर्वासादनाद्याज्यभागान्ते



यजमानः सर्वा आवाहिताः सूर्यादिदेवताः अग्निवायुसूर्यप्रजापतीश्रोद्दिश्य  
 समिदाज्यचरुतिलान् होतुमुत्सृजे न ममेति त्यजेत् । ततो ऋत्विजः  
 समिदाज्यनैवेद्यशेषचरुन् क्रमेणावाहिताभ्यो देवताभ्योऽष्टसहस्राद्यन्य-  
 तमसंख्यया समस्तव्याहृतिभिर्वक्ष्यमाणतत्तन्मन्त्रैर्वा हुत्वा घृताक्ततिलैः  
 ताभ्य एव देवताभ्यः प्रत्येकं दशदशाहुतीर्हुत्वा सोमं राजानमिति  
 स्विष्टकृतं हुत्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिस्तिलैरयुतं लक्षं कोटिं वा  
 जुहुयुः । तत्र होमे ऋग्वेदिनस्तावदावाहनोक्तानेव मन्त्रान्पठन्ति ।  
 यजुर्वेदिनां तूच्यन्ते । आकृष्णेन हिरण्यस्तूपः सविता त्रिष्टुप् सूर्यप्रीतये-  
 तिलाज्यहोमे विनियोगः । ॐ आकृष्णेन० पश्यन् स्वाहा । इदं  
 सूर्याय० ॥१॥ एवं सर्वत्र ॥ इमं देवा वरुणः सोमो यजुः ॥ ॐ इमं  
 देवा० राजा ॥२॥ अग्निर्मूर्द्धा विरूपोऽङ्गारको गायत्री ॥३॥  
 उद्बुध्यस्व परमेष्ठी बुधस्त्रिष्टुप् ॥४॥ बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पति-  
 स्त्रिष्टुप् ॥५॥ अन्नात्प्रजापति अश्विसरस्वतीन्द्राः शुक्रो जगती ॥६॥  
 शन्नो दध्यङ्ङाथर्वणः शनिर्गायत्री ॥७॥ कया नो वामदेवो  
 राहुर्गायत्री ॥८॥ केतुं मधुछन्दाः केतवो गायत्री ॥९॥

अथाधिदेवतानाम् ॥ त्र्यम्बकं वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् ॥ १ ॥ अत्र  
 प्रणीतोदकं स्पृशेत् । श्रीश्रुतेत्युत्तरनारायण उमा त्रिष्टुप् ॥२॥ यद-  
 क्रन्दो भास्कर-जमदग्नि-दीर्घतमावेस्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ३ ॥ विष्णोरराट-  
 मुत्थ्यो विष्णुर्यजुः ॥ ॐ विष्णो रराट० त्वा ॥ ४ ॥ आ ब्रह्मन् प्रजा-  
 पतिर्ब्रह्मा यजुः ॥ ॐ आ ब्रह्मन्० कल्पतां ॥५॥ सजोषा विश्वामित्र  
 इन्द्रस्त्रिष्टुप् ॥ ॐ सजोषा इन्द्रः ॥६॥ असियमो भास्कर-जमदग्नि-  
 दीर्घतमसो यमस्त्रिष्टुप् ॥७॥ अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत् । कार्ष्णि-  
 रसि दध्यङ्ङाथर्वणः कालोऽनुष्टुप् ॥८॥ अत्रापि प्रणीतोदकं स्पृशेत् ।  
 चित्रावसोऽर्षयश्चित्रगुप्तो जगती ॥ ॐ चित्रावसोः० शीय ॥९॥

अथ प्रत्यधिदेवतानाम् ॥ अग्निं द्रुतं विरूपोऽग्निर्गायत्री ॥ १ ॥  
 अप्सवन्तर्बृहस्पतिरापः पुर उष्णिक् ॥ २ ॥ स्योना मेधातिथिः पृथिवी  
 गायत्री ॥३॥ इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥४॥ त्रातारं गार्ग्यं  
 इन्द्रस्त्रिष्टुप् ॥ अदित्यै दध्यङ्ङाथर्वण इन्द्राणी यजुः ॥ अदित्यै-  
 रास्तासि० णीषः ॥ ६ ॥ प्रजापते वरुणः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ ७ ॥  
 नमोऽस्तु देवाः सर्पानुष्टुप् ॥८॥ ब्रह्मप्रजापतिर्ब्रह्मा त्रिष्टुप् ॥९॥

१. अ उ क-आवाहनमन्त्रानेव । २. उ ज्ञ-अश्विना ।



अथ विनायकादिपञ्चानाम् ॥ गणानां त्वा प्रजापतिर्गणपतिर्यजुः ।  
ॐ गणानान्त्वा० मम ॥ १ ॥ अम्बे प्रजापतिर्दुर्गाऽनुष्टुप् ॥ २ ॥ वातो  
वा गन्धर्वा वात उष्णिक् ॥ ५ ॥ प्रमाणत आवाहने विनियुक्तानप्येतान्  
होमे पठन्ति । तत्र ग्रहाणां सप्रमाणका<sup>१</sup> एव ।

अन्येषां तूच्यन्ते । आवो राजानं वामदेवो रुद्रस्त्रिष्टुप् । आपो हि ष्ठा  
आम्बरीषः सिन्धुद्वीपाउमा<sup>२</sup> गायत्री । स्यो ना मेधातिथिः स्कन्दो  
गायत्री । इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री । त्वमित्सप्रथा गौतमो  
ब्रह्मा बृहती । <sup>३</sup>इन्द्रामिदेवतातय उक्त<sup>४</sup>स्रगिन्द्रस्त्रिष्टुप्<sup>५</sup> । आयं गौः  
सार्पराज्ञी यमो गायत्री । ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवः कालस्त्रिष्टुप् ।  
यदाज्ञातं कौशिकः चित्रगुप्तोऽनुष्टुप् । अग्निं दूतं काण्वो मेधातिथि-  
रग्निर्गायत्री । उदुत्तमं गौतमो वामदेव आपस्त्रिष्टुप् । पृथिव्यन्तरिक्षं  
विष्णुः पृथिव्युष्णिक् । सहस्रशीर्षा नारायणो विष्णुरनुष्टुप् । इन्द्रा-  
येन्दो मरुत्वत उत्तानपर्णे सुभगे प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ।  
नमोऽस्तु सर्पेभ्यो देवाः सर्वानुष्टुप् । एष ब्रह्मा प्रजापतिर्ब्रह्मा द्विपदा  
गायत्री । आतून इन्द्रः कुसीदः काण्वो गणपतिर्गायत्री । जातवेदसे  
कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् । आदिद्वत्स आकाशो गायत्री । क्राणात्रितो वायु-  
रुष्णिक् ।

आकाशादिभ्यस्तु स्थापनमन्त्रा एव । शेषवासुक्यादिभ्यस्तु  
प्रणवाद्याः स्वाहान्ता नाममन्त्रा एव । लक्षकोटिहोमयोरिन्द्रं  
मित्रमित्यनेन गरुत्मद्धोमः । कोटिहोमे तु ब्रह्मजनार्दनरुद्रस्कन्देभ्योऽपि  
नाममन्त्रैर्होमः । ततो यजमानो मण्डपप्राग्द्वारकलशसमीपे त्रातार-  
मिन्द्रं गर्ग इन्द्रस्त्रिष्टुप् । इन्द्रप्रीत्यर्थं बलिदाने<sup>६</sup> विनियोगः ।  
त्रातारमिन्द्रं इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्ति-  
कायामुं सदीपमाषभक्तबलिं समर्पयामि नम इति सदीपमाषभक्तबलिं  
दत्त्वा भो इन्द्र दिशो<sup>७</sup> रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्यायुःकर्ता क्षेमकर्ता  
शुभकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता भवेति प्रार्थयेत् । एव-  
माणेयादिषु<sup>८</sup> होमोक्ताऽग्न्यादिमन्त्रैर्बलिदानं प्रार्थनं च । एवमधि-  
देवताप्रत्यधिदेवतासहितेभ्यः सूर्यादिग्रहेभ्योऽपि होमोक्तेस्तत्तन्मन्त्रै-

१. ड-समाणका एव । २. ड अ ख-आपो । ३. ज-इन्द्राग्निर्देवतातय ।  
४. न-सुगिन्द्र, अ क-सुगिन्द्र, य द ख-स्तुगिन्द्र । ५. ड-उष्णिक् । ६. ज-  
प्रदाने । ७. ड क्ष-दिशं, इ य द-त्रिदश । ८. ड-दि ।



विनायकदुर्गा-वाय्वाकाशाश्विवास्तोष्पतिक्षेत्राधिपतिभ्यश्च तत्तन्मन्त्रै-  
र्होमोक्तैरेव ।

तत आचार्यो यजमानान्वारब्धः स्रुचिस्रुवेण द्वादशवारं नारिकेलादि  
फलयुक्ताज्यं गृहीत्वा पूर्णाहुतिं जुहुयात् । तत्र मन्त्राः—समुद्रादूर्मि-  
रिति तृचस्य गौतमो वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् पूर्णाहुतौ विनियोगः ।  
एवमग्रेऽपि विनियोगः । मूर्द्धानं दिवो भरद्वाजो वैश्वानरस्त्रिष्टुप् ।  
पुनरग्निर्वसुरुद्रादित्यास्त्रिष्टुप् । पूर्णादिवि विश्वेदेवाः शतक्रतुरनुष्टुप् ।  
सप्त ते अग्ने सप्तवानग्निर्जगती । धामं ते वामदेव आपो जगती ।  
धामं ते० स्वाहेति । यजमानस्तु इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः  
शतक्रतवे सप्तवते अग्नयेभ्यश्च न ममेति त्यजेत् ।

कातीयानां तु मूर्द्धानं दिव इत्येव पूर्णाहुतिमन्त्रः । अग्नय इदं न  
ममेति त्यागः । सामगानां तु प्रजापतिऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता  
यशस्कामस्य यजमानस्य यजनीयप्रयोगे विनियोगः । पूर्णहोमं यशसा  
जुहोमि योऽस्मै जुहोति वरमस्मै ददाति । वरं वृणे यशसा मामि लोके  
स्वाहेत्यनेन स्रुवेणैव होमः । इन्द्रायेदं न ममेति त्यागः ।

ततो वसोद्धरिया होष्यामीति सङ्कल्प्य यजमानो वसोद्धरि  
जुहुयात् । मन्त्रास्तु—अग्निमीळ इति नवानां मधुच्छन्दा अग्निर्गायत्री-  
वसोद्धरियां विनियोगः । विष्णोर्नुकमिति षण्णां दीर्घतमा विष्णु-  
स्त्रिष्टुप् । आ ते पितरिति पञ्चदशानां गृत्समदो रुद्रस्त्रिष्टुप् ।  
स्वादिष्ठयेति नवानां मधुच्छन्दः पवमानसोमो गायत्री । महावैश्वानर-  
साम्नो महावैश्वानर ऋषिवैश्वानरो देवता पथ्याबृहती छन्दः ज्येष्ठ-  
साम्नो भरद्वाज ऋषिवैश्वानरो देवता त्रिष्टुप्छन्दः । वसोद्धरां जुहोती-  
त्यनुवाकमपि पठन्ति शिष्टाः । एवं वसोद्धरां हुत्वा पूर्णपात्रविमोकादि  
च यथाशाखं समाप्याऽऽचार्यसहिता ऋत्विजः सर्वौषधीभिरनुलिप्ताङ्गं  
पत्निपुत्रादिसहितं यजमानं स्वस्वशाखीयैर्मन्त्रैर्वग्रहणीठसमीपस्थ-  
कलशोदकेन सम्पातकलशोदकेन वाऽभिषिञ्चेयुः । पौराणैश्च । ते च—  
ते च— सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।  
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥  
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।  
आखण्डलोऽग्निर्भगवाद् यमो वै निऋतिस्तथा ॥



वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।  
 ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥  
 कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मैधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।  
 बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥  
 एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ॥  
 आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुध-जीव-सितार्कजाः ।  
 ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥  
 देव-दानव-गन्धर्वा यक्ष-राक्षस-पन्नगाः ।  
 ऋषयो मनवो<sup>१</sup> गावो देवमातर एव च ॥  
 देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ।  
 अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥  
 औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ।  
 सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नगाः ॥  
 एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ इति ।

तच्छंयोरावृणीमह इति । ततो यजमानः स्नात्वा शुक्लमाल्याम्बर-  
 धर आचार्यादीन् प्रणम्य<sup>२</sup> सम्पूज्य तेभ्यो दक्षिणां दद्यात् । तत्राऽऽ-  
 चार्याय धेनुः<sup>३</sup> । ब्रह्मणे कृष्णोऽनड्वान्<sup>४</sup> । एवं सदस्यत्विग्द्वारपाला-  
 दिभ्यो यथाशक्ति । तथा—

धेनुः शंखस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयः क्रमात् ।

कृष्णा गौरायसश्छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥

ग्रहानुद्दिश्य देयाः । ततः शक्त्या ब्राह्मणान् भोजयेत्, सङ्कल्पयेद्वाऽ  
 शक्तौ । ततो दीनानाथेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दत्त्वा मण्डपदेवतानां  
 ग्रहपीठदेवतानां चोत्तरपूजां कृत्वा 'यान्तु देवगणाः' 'अभ्यारमिद-  
 द्रयो'<sup>५</sup> 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत'<sup>६</sup> इति ता<sup>७</sup> उत्थाप्य विसृज्य मण्डपादीन्  
 प्रतिमादींश्च सर्वान् सम्भारानाचार्याय प्रतिपाद्य, 'यस्य स्मृत्या च  
 नामोक्तया', 'प्रमादात्कुर्वतामिति' पठित्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा विप्रा-  
 शिषो गृहीत्वा तान् नमस्कृत्य सुहृद्युतो भुञ्जीतेति सर्वं शिवम् ।

इति श्रीभट्टशङ्करात्मजनीलकण्ठकृते शान्तिपरिभाषाप्रयोगः ।

१. क-मानवो, दय-मानवा, ड-मुनयो । २. ड-पाठः । ३. ज-धेनुम्  
 ४. ज-कृष्णमनड्वाहम् । ५. ऋ. सं. ६ । ५ । १६ । ६, ऋ. सं. १।३। २० ।  
 ७. क्ष ड-तान्, इ ध ख द य-इति उत्थाप्य ।



## ग्रहयोगशान्तिः

७३

## अथ ग्रहयोगशान्तिः

यामले— दुर्भिक्षादि भयं चैव चतुर्ग्रहसमन्वये ।  
 महारोगभयं राष्ट्रक्षयो वृष्टिविनाशनम् ॥  
 पञ्चग्रहसमायोगे दुर्भिक्षं संकरादिकम् ।  
 नृपवैरं गर्भनाशो जायते जननाशनम्<sup>१</sup> ॥  
 ग्रहषट्कसमायोगे मन्त्रिणो मरणं भवेत् ।  
 पञ्चश्वादिभयं सर्वं सङ्करादिजनक्षयः ॥  
 पट्टराज्ञीविनाशो वा महाभयमथाऽपि वा ।  
 सप्तग्रहसमायोगे क्षितीशमरणं ध्रुवम् ॥  
 जगत्प्रलयमेवाऽपि तदा निर्मानुषं जगत् ।  
 अत ऊर्ध्वं महोत्पातनानादुःखमहाकुलम् ॥  
 सूर्यः स्याद् व्यतिरिक्तश्चेत्तदा योगो महादुःभुतः ।  
 विना चन्द्रेण योगोऽपि जगत्प्रलयकारणम् ॥  
 तदृक्षजातजन्तूनां महारोगो महाभयम् ।  
 अर्थनाशः स्थाननाशो मानहानिर्नृपीडनम् ॥  
 वातपित्तादिसम्भूतमहापीडा महद्भयम् ।  
 समा योगग्रहा नृणां दोषान्कुर्वन्ति सर्वदा ॥  
 षण्मासाभ्यन्तरे वाऽपि आयुर्हानिः श्रियस्तथा ।  
 जन्माष्टद्वादशे राशौ चतुर्थे पञ्चमेऽपि वा ॥  
 पूर्वोक्तफलमेवात्र तस्माच्छान्तिं प्रयत्नतः ।  
 कुर्याद्दोषानुसारेण वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥  
 तत्तद्ग्रहाकृतिं कृत्वा सौवर्णेन प्रयत्नतः ।  
 सुवर्णेन तदद्धेन पादेनाऽपि कनीयसीम् ॥  
 वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कर्तव्यं शक्तितो नरैः ।  
 पूर्वोक्तलक्षणेनैव ग्रहमूर्तिं च कारयेत् ॥  
 ग्रहस्यैकैकलक्षं ग्रहयोगप्रमाणतः ।  
 कारयेत्कुम्भमेकं वा निर्ब्रणं सुदृढं नवम् ॥  
 ग्रहस्येशानदिग्भागे शुद्धदेशे समस्थले ।  
 कुण्डे वा स्थण्डिले वाऽपि होमं कुर्याद् विधानतः<sup>२</sup> ॥

१. ज्ञ-जनक्षयो नृपवैरं गर्भनाशो जननाशनम् ।  
 विचक्षणः ।

२. उ इ फ य द-



तस्य पूर्वोत्तरे देशे पूजास्थानं प्रकल्पयेत् ।  
 चतुरस्रं हस्तमात्रं स्थण्डिलं तण्डुलेन तु ॥  
 लिखेद् ग्रहाकृतिं तत्र स्थापयेत्प्रतिमां ततः ।  
 अधिप्रत्यधिदेवादीन् दक्षिणोत्तरतः क्षिपेत् ॥  
 उक्तगन्धैस्तथा पुष्पैस्तत्तन्माल्यैः फलैरपि ।  
 तत्तद्ग्रहोक्तमन्त्रेण पूर्वोक्तेनैव पूजयेत् ॥  
 स्वस्तिवाचनपूर्वेण<sup>१</sup> आचार्यऋत्विजैः सह ।  
 ग्रहपूजादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं समर्पयेत् ॥  
 ततो होमं प्रकुर्वीत स्वगृह्योक्तविधानतः ।  
 चतुर्थ्यन्तं प्रकुर्वीत कलशस्थापनं ततः ॥  
 पूर्वोक्तेन विधानेन शुद्धतोयेन पूरयेत् ।  
 पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चत्वक् पञ्चपल्लवम् ॥  
 तत्र मन्त्रैर्विनिक्षिप्य औषधानि विनिक्षिपेत् ।  
 तत्तद्ग्रहोक्तविधिना मूलान्यादाय निःक्षिपेत् ॥  
 अब्लिङ्गैर्वारुणैर्वाऽपि कलशं पूरयेद् गुरुः ।  
 तत्तद्ग्रहोक्तविधिस्तत्तन्मन्त्रैर्हुनेदथ ॥  
 चर्वाज्ये जुहुयात्पश्चात्तिलाहुतिमथाचरेत् ।  
 अथ स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥  
 भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजैः ।  
 कलशस्योदकेनैवमभिषेकं समाचरेत् ॥  
 योगग्रहोक्तमन्त्रैश्च अधिप्रत्यधिमन्त्रतः ।  
 नवग्रहोक्तमन्त्रैश्च जातवेदादिपञ्चकैः ॥  
 त्रियम्बकेन<sup>२</sup> मन्त्रेण क्षेत्रस्य पतिना अपि ।  
 यत इन्द्रद्वयेनैव लोकपालाष्टकैरपि ॥  
 सुरास्त्वा इति मन्त्रेण येन देवादयः क्रमात् ।  
 अन्यैश्च पुण्यसूक्तैश्च अभिषेकं समाचरेत् ॥  
 अभिषेकाप्लुतं वस्त्रमाचार्याय निवेदयेत् ।  
 ततः शुक्लाम्बरधरः कुर्यादाज्यावलोकनम् ॥  
 ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्धेनुं शङ्खादिकानपि ।  
 तदभावे यथाशक्ति हिरण्यमपि दापयेत् ॥

१. अतः परं फ-पुस्तके खण्डितमेव, २. ध ड-त्रयम्बकेन च, क र-  
 त्रयम्बकने, अ-त्रयम्बकेन ।



## ग्रहस्नानानि

७५

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाविभवसारतः ।  
 एवं यः कुरुते भक्त्या ग्रहदोषविर्वर्जितः ॥  
 पूर्वोक्तसर्वदोषैश्च विमुक्तः पुत्रवान् सुखी ।  
 आयुरैश्वर्यसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥  
 इह लोके सुखी भूत्वा पश्चाच्छिवपुरं व्रजेत् ।  
 इति ग्रहयोगशान्तिः ॥

## अथ ग्रहस्नानानि

विष्णुधर्मोत्तरे—

मंजिष्ठा-मदमातङ्गं<sup>१</sup> कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ।  
 पूर्णकुम्भे कृतं ताम्रे सूर्यस्नानं विधीयते ॥  
 मदमातङ्गं गजमदः ।

उशीरं च शिरीषं च कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ।  
 शङ्खन्यस्तमिदं स्नानं चन्द्रदोषविनाशनम् ॥  
 खदिरं देवदारुं च तिलानामलकानि च ।  
 पूर्णकुम्भे कृतं रौप्ये भौमपीडाविनाशनम् ॥  
 नदीसङ्गमतोयानि तन्मृदा सहितानि च ।  
 न्यस्तानि कुम्भे माहेये बुधपीडाविनाशनम् ॥

माहेये मृन्मये ।

औदुम्बरं तथा बिल्वं वटमामलकं तथा ।  
 न्यस्तं तु कुम्भे सौवर्णे जीवपीडाविनाशनम् ॥  
 गोरोचना नागमदः शतपुष्पा शतावरी ।  
 विन्यस्ता राजते कुम्भे शुक्रपीडाविनाशनम् ॥  
 तिलान् माषान् प्रियङ्गुं च गन्धपुष्पं तथैव च ।  
 न्यस्तं कार्णायसे कुम्भे सौरि<sup>२</sup>पीडाविनाशनम् ॥  
 गुग्गुलं हिङ्गुलं तालं शुभां चैव मनःशिलाम् ।  
 शृङ्गे च माहिषे न्यस्येद्राहुपीडाविनाशनम् ॥

१. ड-मंजिष्ठमत्तमातङ्गं । २. ड इ क न द य-सौरी, र-सौरा



तालं हरितालं ।

वराहनिहतां राजन् ! पर्वताग्रमृदं तथा ।

छागक्षीरं खड्गपात्रे केतुपीडाविनाशनम् ॥

वराहनिहतो वराहोत्खातः खड्गो गण्डकः ।

उक्तं ग्रहस्नानमिदं सर्वपीडाविनाशनम् ।

इति ग्रहस्नानानि ॥

### अथादित्यशान्तिः

भविष्ये—

आदित्यवारं<sup>१</sup> हस्तेन पूर्वं गृह्य विचक्षणः ।

मन्त्रोक्तविधिना सर्वं<sup>२</sup> कुर्यात्पूजादिकं रवेः ॥

प्रत्यर्कं सप्तनक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ।

ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥

भास्करं शुद्धसौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ।

ताम्रपात्रे स्नापयित्वा रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥

रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ।

घृतेन स्नापयित्वा च लड्डुकान् विनिवेद्य च ॥

होमं घृततिलैः कुर्याद्रवि<sup>३</sup>नाम्ना च मन्त्रवित् ।

समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव च ॥

होतव्या मधुसर्पिभ्यां<sup>४</sup> दध्ना चैव घृतेन च ।

मन्त्रेणाऽनेन विदुषे ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ॥

“आदिदेव ! नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते ! दिवाकर ! ।

त्वं रवे ! तारयस्वाऽस्मांस्तस्मात्संसारसागरात् ॥”

व्रतेनाऽनेन राजेन्द्र ! भवेदारोग्यमुत्तमम् ।

द्रव्य-सम्पत्सुतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ॥

अपि संवादिनी चेयं शान्तिः पुष्टिः सदा नृणाम् ।

सूर्यपीडासु घोरासु कृता शान्तिः शुभप्रदा ॥

इत्यादित्यशान्तिः ॥

१. न ड-वार । २. इ-सर्वे । ३. इ-द्रव्य । ४. अ-पाठः इतरस्तकेषु  
'सर्पिभ्यां' इति पाठः ।



## मङ्गलशान्तिः

७७

## अथ चन्द्रशान्तिः

तत्रैव—

तद्वच्चित्रासु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः ।  
 अनेनैवोक्तविधिना कुर्यात्पूजादिकं विभोः ॥  
 सप्तमे तु ततः प्राप्ते कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।  
 कांस्यपात्रेऽथ संस्थाप्य सोमं रजतसम्भवम् ॥  
 श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं श्वेतपुष्पैः प्रपूजितम् ।  
 पादुकोपानहच्छत्रं भोजनासनसंयुतम् ॥  
 होमं घृततिलैः कुर्यात्सोमनाम्ना च मन्त्रवित् ।  
 समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव च ॥  
 होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।  
 दध्यन्नशिखरे कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्र ! सम्यग्भक्त्या समन्वितः ।  
 महादेवजातिवल्लीपुष्पगोक्षीरपाण्डुर ॥  
 सोम ! सौम्यो भवाऽस्माकं सर्वदा ते नमो नमः ॥

इति चन्द्रशान्तिः ॥

## अथ मङ्गलशान्तिः

स्वात्यामङ्गारकं गृह्य क्षमायां नक्तभोजनम् ।  
 सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते हैमं ताम्रे<sup>१</sup> निवेश्य वै<sup>२</sup> ॥  
 क्षमा भूः ।  
 रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं कुंकुमेनानुलेपितम् ।  
 निवेद्य भक्तकं सारं पुष्पधूपाक्षतादिभिः ॥  
 होमं घृततिलैः कुर्यात्कुजनाम्ना च मन्त्रवित् ।  
 समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥  
 होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।  
 मन्त्रेणाऽनेन तं दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥  
 कुज ! कुप्रभवोऽपि त्वं मङ्गलः परिपठ्यसे ।  
 अमङ्गलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मङ्गलम् ॥

१. ड-ताम्र । २. ड क्ष-च ।



## शान्तिमयूखः

एवं कृते भौमकृतं दुष्कृतं शान्तिमाप्नुयात् ।  
कर्त्तव्यं भौमपीडासु तस्मात्प्रयतमानसैः ॥

इति मङ्गलशान्तिः ॥

## अथ बुधशान्तिः

विशाखासु बुधं गृह्य<sup>१</sup> सप्तनक्तान् यथाऽऽचरेत् ।  
बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ॥  
शुक्लवस्त्रयुगच्छन्नं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।  
गुंडौदनोपसंहारं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
बुध ! त्वं बुद्धिजननो बोधवान् सर्वदा नृणाम् ।  
तत्त्वावबोधं कुरु मे सोमपुत्र ! नमो नमः ॥  
होमं घृततिलैः कुर्याद् बुधनाम्ना च मन्त्रवित् ।  
समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥  
होतव्या मधुसर्पिभ्यर्घ्या दध्ना चैव घृतेन च ।  
बुधशान्तिरियं प्रोक्ता बुधवैकृतनाशिनी ॥  
बुधदोषेषु कर्त्तव्या तथा शान्तिकपौष्टिके ॥

इति बुधशान्तिः ॥

## अथ गुरोः शान्तिः

गुरुं चैवानुराधासु पूजयेद्भक्तितो नरः ।  
पूर्वोक्तविधियोगेन सप्तनक्तान्यथाचरेत् ॥  
हैमं हेममये पात्रे स्थापयित्वा बृहस्पतिम् ।  
पीताम्बरयुगच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतिनम् ॥  
पादुकोपानहच्छत्रकमण्डलुविभूषितम् ।  
पूजयेत्पीतकुसुमैः कुङ्कुमेन विलेपितम् ॥  
धूपदीपादिभिर्दिव्यैः फलैश्चन्दनतण्डुलैः ।  
खण्डखाद्योपहारैश्च गुरोरग्रे निवेदयेत् ॥  
धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! ज्ञानविज्ञानपारग ! ।  
विबुधार्त्तिहराचिन्त्य देवाचार्य ! नमोऽस्तु ते ॥



## गुरुपूजा

७६

होमं घृततिलैः कुर्याद् गुरुनाम्ना च मन्त्रवित् ।  
 समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥  
 समिधोत्राऽश्वत्थस्य

होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।  
 एतद्व्रतं महापुण्यं सर्वपापहरं शिवम् ॥  
 तुष्टिपुष्टिकरं नृणां गुरुवैकृतनाशनम् ।  
 विषमस्थे गुरौ कार्या महाशान्तिरियं नृभिः ॥

इति गुरुशान्तिः ॥

## अथ गुरुपूजा

स्कान्दे —

कन्याविवाहकाले तु शुद्धिर्यस्या<sup>१</sup> न विद्यते ।  
 ब्राह्मणस्योपनयने यस्य स्याद् दुःस्थिता<sup>२</sup> गतः ॥

दुःस्थितिं प्राप्तः ।

एभिः पूजा गुरोः कार्या विधिवद्भक्तिभावितैः<sup>३</sup> ।  
 मदन्तीकामपुष्पाणि पात्रं पालाशसर्षपाः ॥

मदन्ती यूथिका । कामो मदनवृक्षाख्यः ।

गुडूची वा<sup>४</sup> त्वपामार्गं विडङ्गं शङ्खिनी वचा ।  
 सहदेवी विष्णुक्रांता सर्वौषध्यः शतावरी ॥  
 कुष्ठं मांसं हरिद्रे द्वे मुराशैलेयचन्दनम् ।  
 वचा<sup>५</sup> कर्चूरमुस्तं च सर्वौषध्यः प्रकीर्तिताः ॥  
 तथैवाऽश्वत्थभृङ्गा च<sup>६</sup> पञ्चगव्यं जलं तथा ।  
 नूतनं सोदकुम्भं च पीतवस्त्रसमन्वितम् ॥  
 पञ्चरत्नैः समायुक्तमीशान्यां स्थापितेऽनलात् ।  
 या ओषधीति मन्त्रेण सर्वास्त्वस्मिन्वितिक्षिपेत् ॥

१. इ-यस्मान्न । २. ज-दुत्थितोगतः । उत्थितः प्राप्तः, क्ष ड-दुःस्थितं प्राप्तः, र-दुःस्थितागमितिः, दुःस्थित प्राप्तः, द य-दुःस्थित गतः । दुःस्थितः प्राप्तः, ( इ-दुःस्थित ) । ३. ड-भावित । ४. घ ढ इ अ क न य द-न्यपा-मार्ग । ५. थ क्ष ड-कर्चूर, द य-कर्पूर, क्ष-कर्चूर । ६. ड ध-पञ्चगव्यजलं ।



कुम्भस्योपरि भागे तु स्थापयित्वा बृहस्पतिम् ।  
 सुवर्णपात्रे सौवर्णीं प्रतिमां तु युधिष्ठिर ! ॥  
 कारयेत्तु यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविर्वजितः ।  
 पीतवस्त्रयुगच्छन्नां पीतयज्ञोपवीतिनीम् ॥  
 पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैस्ततो होमं समाचरेत् ।  
 समिधोऽश्वत्थवृक्षस्य होतव्याऽष्टोत्तरं शतम् ॥  
 तिलव्रीहियवोन्मिश्रं होतव्यं च यथाक्रमम् ।  
 बृहस्पतेति मन्त्रेण ऋषिच्छन्दः समन्वितः ॥  
 मन्त्रेणाऽनेन जुहुयाद्धान्यपूर्वं च यत्नतः ।  
 ततो होमावसाने तु पूजयेच्च बृहस्पतिम् ॥  
 पीतगन्धैस्तथा पुष्पैर्धूपैर्दीपैश्च भक्तितः ।  
 दध्योदनं च नैवेद्यं फलताम्बूलसंयुतम् ॥  
 मन्त्रेणाऽनेन कौन्तेय ! समभ्यर्च्य पुनः पुनः ।  
 नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ ! वाक्पतेऽथ बृहस्पते ! ॥  
 क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ।  
 पूजयित्वा सुराचार्यं पश्चादर्थं निवेदयेत् ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

गम्भीरदृढरूपाङ्ग ! देवेज्य ! सुमते ! प्रभो !  
 नमस्ते वाक्पते ! शान्त ! गृहाणाऽर्घ्यं बृहस्पते ! ॥१५॥

संकल्पमन्त्रः ।

अर्घ्यं दत्वा सुरेशस्य जपहोमं समापयेत् ।  
 भक्त्या यत्ते सुराचार्य ! होमपूजादिसंस्कृतम् ॥  
 तत्त्वं गृहाण शान्त्यर्थं बृहस्पते ! नमो नमः ।  
 मन्त्रेणाऽनेन संकल्प्य पश्चात्सम्प्रार्थयेन्नृप ! ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

जीवो बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः ।  
 वाक्स्पतिर्देवमन्त्री शुभं कुर्यात्सदा मम ॥  
 एवं सम्प्रार्थयेद्देवमाचार्यं च प्रपूजयेत् ।  
 सर्वोपचारसंयुक्तां प्रतिमां तां युधिष्ठिर ! ॥  
 प्रणम्य च गवा युक्तामाचार्याय निवेदयेत् ।  
 अथाऽऽचार्यस्तु नियतो वेदवेदाङ्गपारगः ॥

१. ज-पूगं । २. ज इ-र्वं ।



## शुक्रशान्तिः

८१

यजमानं सपत्नीकं शान्तचित्तं जितेन्द्रियम् ।  
 कुम्भोदकं गृहीत्वा तु मन्त्रैरेतैः प्रसिञ्चयेत् ॥  
 इदमापोथमन्त्रेण तामग्निमृचा तथा ।  
 या ओषधीरश्वावतीः कूष्माण्डैश्चाभिषेचयेत् ॥  
 पश्चात्सम्भोजयेद्विप्रान् यथाशक्त्या युधिष्ठिर !  
 एवं कृत्वा गुरोः पूजां सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥  
 सङ्क्रान्तावपि कौन्तेय ! तथा स्वाभ्युदयेषु च ।  
 कुर्वन् बृहस्पतेः पूजामभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥  
 सङ्क्रान्तौ गुरुसङ्क्रान्तौ ।

इति गुरुपूजा ।

## अथ शुक्रशान्तिः

भविष्ये—

शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य क्षमायां नक्तभोजनम् ।  
 क्षमा भूः ।

गुरूत्क्रममार्गेण द्विजसन्तर्पणेन च ॥  
 सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते रौप्यं शुक्रं तु कारयेत् ।  
 वंशपात्रे च संस्थाप्य पूजयेत्सितपङ्कजैः ॥  
 तदभावे सितैः पुष्पैस्ताम्बूलैश्चन्दनेन वा ।  
 अग्रे तस्य प्रदातव्यं पायसं घृतसंप्लुतम् ॥  
 दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
 भार्गवो भर्गशुक्रस्य शुचिः श्रुतिविशारदः ॥  
 हित्वा ग्रहकृतान्दोषानायुरारोग्यदोऽस्तु सः ।  
 होमं घृततिलैः कुर्याच्छुक्रनाम्ना च मन्त्रवित् ॥  
 समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ।  
 होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ॥

इति शुक्रशान्तिः ।



## अथ प्रतिशुक्रादिशान्तिः

तत्रैव मात्स्ये—

अथास्तः शृणु भूपाल ! प्रतिशुक्रप्रशान्तये ।  
 यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये सति ॥  
 शुक्रपूजा प्रकर्तव्या तां निशामय भारत !  
 राजते वाऽथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथ वा पुनः ॥  
 शुक्लपुष्पाम्बरयुते श्वेततण्डुलपूरिते ।  
 निधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम् ॥  
 महाश्वेतसमायुक्तं सामगाय निवेदयेत् ॥  
 नमस्ते सर्वलोकेश ! नमस्ते भृगुनन्दन !  
 देव ! सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥  
 दत्त्वैवमर्घ्यं कौन्तेय ! प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥  
 एवं शुक्रोदये कुर्याद्यात्रादिषु च भारत !  
 तद्वद्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर ! ॥  
 सौवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ।  
 पीतपुष्पाम्बरधरं कृत्वा स्नात्वाऽथ सर्षपैः ॥  
 पालाशाश्वत्थभङ्गेन पञ्चगव्यतिलेन तु ।  
 भङ्गः पल्लवः ।

पीताङ्गरागवसनो घृतहोमं तु कारयेत् ।  
 प्रणम्य तां गवा सार्द्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ ! वाक्पते ते बृहस्पते !  
 क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ॥ इत्यर्घ्यमन्त्रः<sup>३</sup> ।  
 सङ्क्रान्तावपि कौन्तेय ! यात्रास्वभ्युदयेषु च ।  
 कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते ॥  
 अथवा मौक्तिकान्येव सुवृतानि बृहन्ति च ।  
 भार्गवाङ्गिरसौ चिन्त्य<sup>४</sup> तान्येव प्रतिपादयेत् ॥  
 इति प्रतिशुक्रादिशान्तिः ।

१. ध क्ष ड अ—कवे । २. ड—पलाशा । ३. ड क्ष ध—पाठः ।  
 ४. क्ष—चित्य, ध—वन्त्य ।



## अथ शनि-राहु-केतुशान्तयः

भविष्ये—

शनैश्चरं राहु-केतू लोहपात्रेषु निक्षिपेत् ।  
 कृष्णागुरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा च स्वशक्तितः ॥  
 यथाक्रमं शमीदूर्वाकुशानां समिधः स्मृताः<sup>१</sup> ।  
 सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते नवार्णान्<sup>२</sup> वाऽथकारयेत् ॥  
 कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नमेकैकं कारयेद् बुधः ।  
 मृगनाभ्या समालभ्य कृसरान्विनिवेद्य च ॥  
 होमावसाने तत्सर्वं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥  
 शनैश्चर ! नमस्तेऽस्तु नमस्ते राहवे तथा ।  
 केतवे च नमस्तुभ्यं सर्वे शान्तिं प्रयच्छतु ।  
 एवं कृते भवेद्यत्तु तन्निबोध नृपोत्तम ! ॥  
 यदि भौमो रविसुतो भास्करो राहुणा सह ।  
 केतुश्च मूर्त्तौ तिष्ठन्ति सर्वे पीडाकरा ग्रहाः ॥  
 अनेन कृतमात्रेण सर्वे शाम्यन्त्युपद्रवाः ।  
 इति शान्यादिशान्तिः ।

## अथ शनिव्रतम्

भविष्योत्तरे—

ततो मन्दस्य दिवसे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।  
 कार्यं देयं च विप्राय तैलमभ्यङ्गहेतवे ॥  
 यस्तु सम्बत्सरं यावत्प्राप्ते शनिदिने रतः ।  
 तैलं ददाति विप्राणां स्वशक्त्याऽभ्यज्यतेऽपि वा<sup>३</sup> ॥  
 ततः सम्बत्सरस्यान्ते प्राप्ते तस्य दिने पुनः ।  
 लौहं घटार्पितं सौरिं तैलकुम्भे विनिक्षिपेत् ॥  
 लौहे वा मृन्मये वाऽथ कृष्णवस्त्रयुगान्वितम् ।  
 कृष्णगोदक्षिणायुक्तं कृष्णकम्बलशायितम्<sup>४</sup> ॥  
 स्वयमभ्यङ्गतः स्नात्वा कृष्णपुष्पैस्तमर्चयेत् ।  
 सुगन्धिगन्धपुष्पैश्च कृसरान्नैस्तिलोदनैः ॥

१. ड-क्रमात् । २. इ य-नवर्णान् । ३. ड-च । ४. ड-शायिनं,  
 इ य द-शोभितं ।



पूजयित्वा सूर्यपुत्रं क्षमस्वेति पुनः पुनः ।  
 कृष्णाय द्विजमुख्याय तदभावे नराय च ॥  
 देयः शनैश्चरो भक्त्या मन्त्रेणाऽनेन वै द्विज ! ।  
 क्रूरावलोकनवशाद्भवनं नाप्नोति यो ग्रहो रुष्टः ।  
 तुष्टो धनकनकसुखं ददाति सोऽस्मान् शनैश्चरः पातु ॥  
 यः पुनर्नष्टराज्याय नराय परितोषितः ।  
 स्वप्ने ददौ निजं राज्यं स मे सौरिः प्रसीदतु ॥  
 कोणं नीलाञ्जनप्रख्यं मन्द<sup>१</sup>चेष्टाप्रसारिणम् ।  
 छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम् ॥  
 नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय ।  
 श्रुत्वा रहस्यं भव कामदस्त्वं फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र ! ॥  
 नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृशदेहाय वै नमः ।  
 शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने ॥  
 य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टिं ददात्यसौ ।  
 तदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति ॥  
 इति शनिव्रतम् ।

### अथ शनिपूजाविधिः

स्कान्दे—श्रावणे मासि संजाते शोभने शनिवासरे ।  
 लोहरूपं शनिं कृत्वा स्नाप्य पञ्चामृतैर्नवैः ॥  
 पुष्पैरष्टविधैर्धूपैः फलैश्चैव विशेषतः ।  
 नामभिः<sup>२</sup> प्रपूजयेदेतैः क्रमेण ग्रहमुत्तमम् ॥  
 कोणस्थः<sup>३</sup> पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः<sup>४</sup> ।  
 सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः ॥  
 शन्नो देवीति सर्वत्र वैदिकेन च पूजयेत् ।  
 पूजयित्वा च नैवेद्यं ततः कुर्यात्क्रमेण तु ॥  
 समाषभक्तं प्रथमे द्वितीये पायसं शुभम् ।  
 तृतीये त्वम्बिली कार्या चतुर्थे पूरिका शुभा ॥  
 अम्बिली तक्रतण्डुलपिष्टादिनिर्मितो लेह्यविशेषः ।

१. ड-मन्दं । २. ज्ञ-मन्त्रैः । ३. अ न ध र ख ज्ञ क-स्तु । ४. ज्ञ ध  
 ख-यमोऽन्तकः ।



## शनिस्तोत्रम्

८५

## अथ शनिस्तोत्रम्

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुतिं चक्रे स बालकः ।  
 पिप्पलादो द्विजश्रेष्ठः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥  
 नमस्ते कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमोऽस्तु ते ।  
 नमस्ते बभ्रुरूपाय कृष्णाय च नमोऽस्तु ते ॥  
 नमस्ते रौद्रदेहाय नमस्ते चान्तकाय च ।  
 नमस्ते यज्ञसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभो ! ॥  
 नमस्ते मन्दसंज्ञाय शनैश्चर ! नमोऽस्तु ते ।  
 प्रसादं कुरु देवेश ! दीनस्य प्रणतस्य च ॥

शनैश्चर उवाच-

परितुष्टोऽस्मि ते वत्स ! स्तोत्रेणाऽनेन साम्प्रतम् ।  
 वरं वरय मे वत्स ! येन यच्छामि वाञ्छितम् ॥

पिप्पलाद उवाच-

अद्य प्रभृति नो पीडा बालानां रविनन्दन !  
 त्वया कार्या महाभाग ! न स्वकीया कथञ्चन ॥  
 यावद्वर्षाष्टकं जातं मम बाल्येन सूर्यज !  
 स्तोत्रेणाऽनेन योऽन्यस्त्वां ब्रूयात्प्रातरुपस्थितः ॥  
 तस्य पीडा न कर्तव्या त्वया भास्करनन्दन !  
 तस्य पीडा न कर्तव्या देयो लाभो महाभुज ! ॥  
 अर्द्धाष्टमिकया योगे तावके संस्थिते नरः ॥

सार्द्धसप्तवर्षपर्यन्तं द्वादशजन्मद्वितीयराशिभिर्यः शनैश्चरयोगः  
 सोऽर्द्धाष्टमिकया योग इत्युच्यते ।

तव वारे तु सम्प्राप्ते यस्तिलान् होमसंयुतान् ।  
 शक्त्या ददाति नो तस्य पीडा कार्या त्वया विभो !  
 कृष्णां गां यस्तु विप्राय तवोद्देशेन यच्छति ।  
 अर्द्धाष्टमिकया पीडा तस्य कार्या त्वया न च ॥  
 शमीसमिद्धिर्यो होमं तवोद्देशेन निर्वपेत् ।  
 तथा कृष्णतिलैश्चैव कृष्णपुष्पानुलेपनैः ॥  
 पूजां करोति यस्तुभ्यं धूपं वै गुग्गुलं दहेत् ।  
 कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य त्याज्या तस्य त्वया व्यथा ॥



सूत उवाच-एवमुक्तः शनिस्तेन वाढमित्यवजल्प्य च ।  
 नारदं समनुज्ञाय जगाम निजसंश्रयम् ॥  
 इति शनैश्चरशान्तिः ॥

### अथार्कविवाहः

प्रयोगरत्ने मात्स्ये—

तृतीयां मानुषीं नैव चतुर्थीं यः समुद्वहेत् ।  
 पुत्रपौत्रादिसम्पन्नः कुटुम्बी साऽग्निको वरः ॥  
 उद्वहेद्रतिसिद्धयर्थं तृतीयां न कदाचन ॥  
 मोहादज्ञानतो वाऽपि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ।  
 नश्यत्येव न सन्देहो गर्गस्य वचनं यथा ॥ इति ।  
 तत्रैव संग्रहे-तृतीयां यदि चोद्वहेत्तर्हि सा विधवा भवेत् ।  
 चतुर्थ्यादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत् ॥  
 आदित्यदिवसे वाऽपि हस्तर्के वा शनैश्चरे ।  
 शुभे दिने वा पूर्वाह्णे कुर्यादर्कविवाहकम् ॥  
 व्यासः— स्नात्वाऽलङ्कृतवासास्तु रक्तगन्धादिभूषितम् ।  
 'सपुष्पफलशाखैकमर्कगुल्मं समाश्रयेत् ॥  
 सल्लक्षणेन संयुक्तमर्कं संस्थाप्य यत्नतः ।  
 अर्ककन्याप्रदानार्थमाचार्यं कल्पयेत्पुरा ॥  
 अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत् ।  
 नान्दीश्राद्धे हिरण्येन अष्टवर्गान्त्रिपूजयेत् ॥  
 पूजयेन्मधुपर्केण वरं विप्रस्य हस्ततः ।  
 यज्ञोपवीतं वस्त्रं च हस्तकर्णादिभूषणम् ॥  
 उष्णीषगन्धमाल्यादि वरायाऽस्मै प्रदापयेत् ।  
 स्वशाखोक्तप्रकारेण मधुपर्कं समाचरेत् ॥  
 ब्राह्मे— ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा सुपुष्पफलसंयुतम् ।  
 परीक्ष्य यत्नतोऽधस्तात्स्थण्डिलादि यथाविधि ॥  
 कुर्यादिति शेषः ।



## अर्कविवाहः

८७

कृत्वा कं पुरतस्तिष्ठन् प्रार्थयेत्तद्विजोत्तमः ।  
 त्रिलोकवासिन् ! सप्ताश्व ! छायाया सहितो रवे ! ।  
 तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥  
 तत्राऽध्यारोप्य देवेशं छायाया सहितं रविम् ।  
 वस्त्रैर्माल्यैस्तथा गन्धैस्तन्मन्त्रेणैव पूजयेत् ॥  
 तत्रैव श्वेतवस्त्रेण तथा कार्पासतन्तुभिः ।  
 गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य अबिलङ्गैरभिषिच्य च ॥  
 गुडौदनं तु नेवेद्यं ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥

व्यासः—अर्कं प्रदक्षिणीकुर्वन् जपेन्मन्त्रमिमं बुधः ।

मम प्रीतिकरा येयं मया सृष्टा पुरातनी ।  
 अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु ॥  
 पुनः प्रदक्षिणीकुर्यान्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।  
 नमस्ते मङ्गले देवि ! नमः सवितुरात्मजे !  
 त्राहि मां कृपया<sup>१</sup> देवि ! पत्नी त्वं मे इहागता ॥  
 अर्कं त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च ।  
 वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः ॥  
 तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ।  
 ततश्च कन्यावरणं त्रिपुरुषं कुलमुद्धरेत् ॥  
 आदित्यः सविता चार्कः पुत्री पौत्री च नप्त्रिका ।  
 गोत्रं काश्यप इत्युक्तं लोके लौकिकमाचरेत् ॥  
 सुमुहूर्ते निरीक्षेत स्वस्तिसूक्तमुदीरयन् ।  
 आशीर्भिः सहितैः कुर्यादाचार्यप्रमुखैर्द्विजैः ॥  
 अथाचार्यं समाहूय विधिना तन्मुखान्च ताम् ।  
 प्रतिगृह्य ततो होमं गृह्योक्तविधिना चरेत् ॥

व्यासः—अर्ककन्यामिमां विप्र ! यथाशक्तिविभूषिताम् ।  
 गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र ! समाश्रय<sup>२</sup> ॥  
 अञ्जल्यक्षतकर्माणि कृत्वा कङ्कणपूर्वकम् ।  
 यावत्पञ्चवृता सूत्रं तावदर्कं प्रवेष्टयेत् ॥  
 स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण गायत्र्या<sup>३</sup> वाऽथ वा जपेत् ।  
 पञ्चीकृत्य पुनः सूत्रं स्कन्धे बध्नाति मन्त्रतः ॥

१. ड श—मंगले । २. क ख न र द य अ—समाश्रयेत् । ३. ड—पाठः ।



बृहत्सामेति मन्त्रेण सूत्ररक्षां प्रकल्पयेत् ।  
 अर्कस्य पुरतः पश्चादक्षिणोत्तरतस्तथा ॥  
 कुम्भांश्च निक्षिपेत्पश्चादाग्नेयादिचतुष्टये ।  
 सवस्त्रं प्रतिकुम्भं च त्रिसूत्रेणैव वेष्टयेत् ॥  
 हरिद्रा-गन्धसंयुक्तं पूरयेच्छीतलं जलम् ।  
 प्रतिकुम्भं महाविष्णुं सम्पूज्य परमेश्वरम् ॥  
 पाद्यार्घादिनिवेद्यान्तं कुर्यान्निम्नैव मन्त्रवित् ।

अत्र शौनकोक्तो होमप्रकारः—

तृतीये स्त्रीविवाहे तु सम्प्राप्ते पुरुषस्य तु ।  
 आर्क<sup>१</sup> विवाहं वक्ष्यामि शौनकोऽहं विधानतः ॥  
 अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत् ।  
 नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत स्थण्डिलं च प्रकल्पयेत् ॥  
 अर्कमभ्यर्च्य सौर्या च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।

सौर्या सूर्यदैवत्यया । आकृष्णेनेत्यनया ।

स्वयं वालङ्कृतस्तद्वत् वस्त्रमाल्यादिभिः शुभैः ।

अर्कस्योत्तरदेशे तु समन्वारब्ध एतया ॥

एतया अर्ककन्यया ।

उल्लेखनादिकं कुर्यादाधारान्तमतः परम् ।  
 आज्याहुतिं च जुहुयात्संगोभिरनयैकया ॥  
 यस्मै<sup>२</sup> त्वाकामकामायेत्येतयर्चा ततः परम् ।  
 व्यस्ताभिश्च समस्ताभिस्ततश्च स्विष्टकृद्भवेत् ॥  
 परिषेचनपर्यन्तमयाश्चेत्यादिकं क्रमात् ।

प्रार्थनामन्त्रादिविशेषमाह व्यासः—

पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।  
 मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ॥  
 अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।  
 इत्युक्त्वा शान्तिसूक्तानि जप्त्वा तं विसृजेत्पुनः ॥  
 गोयुग्मं दक्षिणां दद्यादाचार्याय च भक्तितः ।  
 इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यो दक्षिणां चाऽपि शक्तितः ॥  
 तत्सर्वं गुरवे दद्यादन्ते पुण्याहमाचरेत् ।

१. ड इ ज न य द-अर्क । २. इ क र न य द-कस्मै ।



## अर्कविवाहप्रयोगः

८६

## अथ प्रयोगः

तृतीयोद्वाहात्प्राग्दिनचतुष्टयाधिकव्यवहिते रविवारे शनिवारे हस्तनक्षत्रे शुभदिनान्तरे वा ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा पुष्पफलयुतार्का-  
धस्तात्स्थण्डिलं कृत्वाऽर्कपश्चिमत उपविश्य मासपक्षाद्युल्लिख्य मम  
तृतीयमानुषीविवाहजदोषापनुत्यर्थमर्कविवाहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य  
गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजन-वृद्धिश्राद्धाचार्यवरणानि कुर्यात् ।  
'तत्र वृद्धिश्राद्धं हेम्ना । अथाचार्येण पूजितो वरः—

त्रिलोकवासिन् ! सप्ताश्र ! छायाया सहितो रवे !

तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥

इत्यर्कं सम्प्रार्थ्यर्कं 'आकृष्णेने'ति छायासहितं रविमावाह्य श्वेत-  
वस्त्रसूत्राभ्यामावेष्ट्य सम्पूज्याऽऽपो हि ष्ठेत्यादिभिरभिषिच्य गुडौ-  
दनताम्बूलादि समर्प्य प्रदक्षिणीकुर्वन्—

मम प्रीतिकरा येयं मया सृष्टा पुरातनी ।

अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु ॥

इति पठेत् । द्वितीयप्रदक्षिणायां तु—

नमस्ते मङ्गले ! देवि ! नमः सवितुरात्मजे !

त्राहि मां कृपया देवि ! पत्नी त्वं मे इहागता ॥

अर्क ! त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च ।

वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः ॥

तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ॥ इति ।

तत आचार्येण मासपक्षाद्युल्लिख्य काश्यपगोत्रामादित्यस्य पुत्रीं  
सवितुः पौत्रीमर्कस्य प्रपौत्रीमिमामर्ककन्यामित्युक्ते वरः 'स्वस्ति न  
इन्द्रो वृद्धश्रवा' इति सूक्तं पठन्नर्कं निरीक्षेत । तत आचार्यो विप्रैः  
सहाशिषो दत्त्वाऽमुकगोत्रामुकशर्मणे सम्प्रददे । इत्यर्ककन्यां दत्त्वा—

अर्ककन्यामिमां विप्र ! यथाशक्तिविभूषिताम् ।

गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र ! समाश्रय ॥

इति पठेत् । वरस्तु यज्ञो मे कामः समृद्धयतामिति प्रथमां धर्मो मे इति  
द्वितीयां यशो मे इति तृतीयाम् इति त्रीनक्षताञ्जलीनर्कोपरि क्षिप्त्वा  
गायत्र्या परित्वेत्यादिना वा पञ्चावृता सूत्रेणार्कमावेष्ट्य तत्सूत्रं पुनः  
पञ्चगुणं कृत्वाऽर्कस्य स्कन्धे बद्ध्वा बृहत्सामेति रक्षां परिकल्प्यार्कस्य



दिग्विदक्षवष्टौ कुम्भान् संस्थाप्य वस्त्रेण त्रिसूत्रेण चावेष्ट्य हरिद्रा-  
गन्धाद्यन्तःक्षिप्त्वा तेषु नाम्ना महाविष्णुमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य  
स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य आधारावाज्येनेत्यन्तमुक्त्वाऽत्र प्रधानं बृह-  
स्पतिमग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेणेत्याद्युक्त्वाऽऽधारान्ते  
संगोभिरङ्गिरा बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् अर्कविवाहहोमे विनियोगः ।

ॐ 'सङ्गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।

जने मित्रोनदम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजया शूरिवाजौ स्वाहा ॥  
बृहस्पतय इदं न ममेति त्यजेत् । यस्मै त्वा वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप्  
विनियोगः प्राग्वत् ।

ॐ यस्मै त्वा कामकामाय वयं सम्म्राड्यजामहे ।

तमस्मभ्यं कामं ददस्व यथेदं त्वं घृतं पिब ॥ स्वाहा ।  
अग्नय इदं न मम । ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा स्विष्टकृदादि  
कर्मशेषं समाप्यार्कं प्रदक्षिणीकृत्य ।

मया कृतमिदं कर्म स्थावरेण जरायुणा ।

अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ इति ।

संप्रार्थ्याचार्याय गोयुग्ममन्येभ्यश्च विप्रेभ्यो यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा  
शान्तिसूक्तं जप्त्वा पूज्योपस्करानाचार्याय दत्त्वा दिनचतुष्टयमग्निं  
कुम्भांश्च रक्षेत् । कुम्भेषु महाविष्णुं पूजयेच्च । पञ्चमदिनकृत्यं ब्राह्मे-

चतुर्थे दिवसेऽस्तीते पूर्ववत्तां प्रपूज्य च ।

विसृज्य होममग्निं च विधिना मानुषीं पराम् ॥

उद्वहेदन्यथा नैव पुत्रपौत्रसमृद्धिमाप्नु ॥

इति श्रीभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखेऽर्कविवाहः ।

### अथ रजोदर्शनशान्तिः

नारदः— कुलीर-वृष-चापान्त्य-नृ-युक्-कन्या-तुला-घटाः ।

राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्त्तवे ॥

कुलीरः कवर्कटः । चापस् धनुः । अन्त्यः मीनः । नृयुङ् मिथुनम् ।

घटः कुम्भः ।



## रजोदर्शनशान्तिः

८१

स्मृतिचन्द्रिकायाम्—

शुक्लपक्षे सुशीला स्यात्कृष्णे सा कुलटा भवेत् ।  
 कृष्णस्य दशमीं यावत् मध्यमं फलमादिशेत् ॥  
 तथा तत्रैव-अमा-रिक्ताऽऽष्टमी-षष्ठी-द्वादशी-प्रतिपत्स्वपि ।  
 परिघस्य च पूर्वाद्धै व्यतीपाते च वैधृतौ ॥  
 सन्ध्यासूपप्लवे विष्ट्यामशुभं प्रथमार्त्तवम् ।  
 रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी ॥  
 पतिव्रता क्लेशयुक्ता सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥  
 कश्यपस्तु-अष्टमी-षष्ठ्यमा-रिक्ता-द्वादशी-सङ्क्रमेऽपि वा ।  
 वैधृतौ व्यतीपाते च ग्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः ॥  
 विष्ट्यां सन्ध्यासु निद्रायां दुर्भगा प्रथमार्त्तवा ।

नक्षत्रफलमाह गर्गः—

शुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता ।  
 धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसन्तानमोदिनी ॥  
 सुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा ।  
 दीना प्रज्ञावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥  
 साध्वी पतिव्रता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी ।  
 स्वकर्मनिरता हिंसा पुण्या पौत्रादिसंयुता ॥  
 नित्यं धनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता ।  
 'मूर्खार्थाढ्या' 'गुणवती' दस्रक्षादिः क्रमात्फलम् ॥  
 स्मृतिरत्ने-शुभं चैव तु पूर्वाह्णे मध्याह्णे मध्यमं फलम् ।  
 अपराह्णे तु वैधव्यं पूर्वरात्रे शुभं भवेत् ॥  
 मध्यरात्रे तु मध्यं स्यात्पररात्रे शुभान्विता ॥  
 कश्यपः—मलिना मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव च ॥ इति ।  
 स्मृत्यन्तरे-मध्याह्णे तु भवेद्वन्ध्या<sup>३</sup> निशीथे विधवा भवेत् ॥  
 तथा—अमा-सङ्क्रान्ति-विष्ट्यां च व्यतीपाते च वैधृतौ ।  
 परिघस्य तु पूर्वाद्धै षट् षट् गण्डातिगण्डयोः ॥  
 व्याघाते नवशूले तु नाड्यः पञ्च चतुर्दश ।  
 वैधव्यमर्थहानिं च सुतनाशं महद्भयम् ॥  
 वैधव्यं शत्रुवृद्धिं च दारिद्र्यं क्षीणजीवनम् ।  
 तेजोहानिं समायाति सदा पुष्पवती क्रमात् ॥

१. ज्ञ-मूका । २. ज्ञ-धनवती । ३. ज्ञ ध ख-वेश्या ।



स्थलभेदे फलभेदमाह वसिष्ठः—

ग्रामाद् बहिः परग्रामे वा चेत्स्याद् व्यभिचारिणी ।  
पतिव्रता पतिस्थाने सुशीला गृहमध्यके ॥  
ग्राममध्ये तु वृद्धिश्च विधवा च दिगम्बरा ।  
परागारे च दुःशीला आयुष्यं जलसन्निधौ ॥  
वनमध्ये तु कन्याया धनधान्यसमृद्धिदा ।

परागार इत्यनेनैव पितृभ्रातृगृहं<sup>१</sup> निषिद्धम् । तथा च शिष्टाचारः ।  
विशेषनिषेधस्तु न दृश्यते । तथा । “चन्द्रे सदगुणसंयुक्ते देवरातमता-  
च्छुभम् ।” शावाशौचेऽपि अशुभमिति गुरवः । वस्त्रफलमाह वसिष्ठः—

सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद् दृढवस्त्रा पतिव्रता !  
क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥  
दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा ।  
नीलाम्बरधरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ॥  
मलिनाम्बरतो नारी दरिद्रा स्याद्रजस्वला ।

रजोबिन्दुफलमाह स एव—

वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् ।  
समाश्चेत्कन्यका चेति फलं स्यात्प्रथमार्त्तवे ॥

देवरातः—सम्माज्जनी-काष्ठ-तृणा-ऽग्नि-शूर्पान्

हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् ।

तलपोपभोगे तपसि स्थिता चेद्

दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ॥

नारदः— तिथ्यृक्षवारा निन्द्याश्चेत् शेफः कर्म निवारयेत् ।

दोषाधिके गुणाल्पत्वे तत्तथाऽपि न कारयेत् ॥

दोषाल्पत्वे गुणाधिक्ये शेफः कर्म समाचरेत् ।

निन्द्यर्क्ष-तिथिवारेषु यदि पुष्पं प्रदृश्यते ॥

तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृत-दूर्वा-तिलाक्षतैः ।

प्रत्येकं शतमष्टौ च गायत्र्या जुहुयात्ततः ॥

स्वर्ण-गो-भूतिलान् दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये ।

भर्ता तत्राभिगमनं वर्जयेच्छस्तदर्शनात् ॥

वसिष्ठोऽपि—प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं ततः शान्तिकर्म कार्यम् ।

विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यघस्त्रे ॥



## रजोदर्शनशान्तिः

६३

शौनकः—आर्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनकः ।  
 तिथिवारर्क्षयोगेभ्यो लग्नेशसनवांशकात् ॥  
 ग्रहेभ्यो दुःस्थितेभ्यश्च तत्तद्दोषक्षयाय च ।  
 अत्र पुत्रस्य लाभाय दम्पत्योरभिवृद्धये ॥  
 पञ्चमेऽह्नि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरः ।  
 तस्मिन्नहनि कर्त्तव्यमृतुहोमं विधानतः ॥  
 आचार्यं वरयेत्प्रातर्भुवनेश्चरितुष्टये ।  
 होमार्थं च जपार्थं च वरयेदृत्विजो बहून् ॥  
 यजमानो द्विजैः सार्द्धं शान्तिहोमं समाचरेत् ॥  
 गृहादीशानदिग्भागे देवतापूजनाय च ।  
 द्रोणप्रमाणधान्येन व्रीहिराशित्रयं भवेत् ॥  
 कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादि-वेष्टितम् ।  
 पूरयेत्तीर्थसलिलैः प्रतिकुम्भं पृथक् पृथक् ॥  
 सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव<sup>१</sup> आप इत्यथ ।  
 ऋचायाः प्रवतस्तद्वद् गायत्र्या<sup>३</sup> च ततः क्रमात् ॥  
 मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च ।  
 ततश्च पञ्चरत्नानि गन्धपुष्पाक्षतायुतान् ॥  
 औषधानि च वक्ष्यन्ते मुनिभिः शान्तिकारणात् ।  
 औदुम्बरं कुशा दूर्वा राजीवं चम्पबिल्वकाः ।  
 विष्णुक्रान्ताऽथ तुलसी बर्हिषं शङ्खपुष्पिका ॥  
 शतावर्यश्चगन्धा च निगुण्डी सर्षपद्वयम् ।  
 अपामार्गः पलाशश्च पनसो जीवनस्तथा ॥  
 प्रियङ्गुवश्च गोधूमा व्रीहयोऽश्वत्थ एव च ।  
 क्षीरान्नदधिसर्पिश्च पर्णं चैव तथोत्पलान् ॥  
 कुरण्टकश्च गुञ्जा च वचा मुस्तकभद्रकाः ॥ इति ।  
 द्वात्रिंशदौषधानीह गायत्र्या सर्वमाहरेत् ॥  
 गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्धदगोकुलात् ।  
 राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥  
 कुम्भस्थापनमित्याह तत्तन्मन्त्रेण कारयेत् ।  
 मृत्तिका चौषधादीनि मन्त्रेण प्रक्षिपेत् क्रमात् ॥



कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं वा ताम्रमेव वा ।  
 मृण्मयं वेणुपात्रं वा स्वस्ववित्तानुसारतः ॥  
 पात्रोपरि न्यसेद्वस्त्रं प्रतिमां भुवनेश्वरीम् ।  
 तन्मूल्यं वा न्यसेत्पात्रे इन्द्राणीं च पुरन्दरम् ॥  
 आचार्यः पूजयेद्देवीमङ्गाद्यावरणानि च ।  
 अन्यो वा पूजनं कुर्याद् गायत्र्या मन्त्रसारया ॥  
 इन्द्राणीं पूजयेद्देवीमिन्द्राणीमासु<sup>१</sup> नारिषु ।  
 क्रमेण पूजयेदिन्द्रं<sup>२</sup> इन्द्रं त्वा वृषभं वयम् ॥  
 अनेन विधिना चाथ पूजयेद्देवतात्रयम् ।  
 आवाहनादिसकलैरुपचारैः पृथक् पृथक् ॥  
 तन्मध्यमं स्पृशन् कुम्भं मन्त्रेण भुवनेश्वरीम् ।  
 जपेदाचार्य आहोमाच्छ्रीसूक्तं च जपेत्ततः ॥  
 स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भमृत्विगेको जपेदथ ।  
 चत्वारि रुद्रसूक्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च ॥  
 संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया ।  
<sup>३</sup>शन्न इन्द्राग्नीसूक्तं च तत्र चैवं स्पृशन् जपेत् ॥  
 कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाचरेत् ।  
 अन्वाधानं ततः कुर्याद्धोमतन्त्रं समाचरेत् ॥  
 पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा कार्यं द्विजैः सह ।  
 दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च ॥  
 पायसं श्रपयेत्तत्र सावित्रं च हविश्च तत् ।  
 कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं हविरुद्धासनादिकम् ॥  
 तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका वाहुतिर्भवेत् ।  
 आभिर्मन्त्रप्रयुक्ताभिर्गायत्रीं जुहुयात् क्रमात् ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं तु शतमष्टोत्तरं तु वा ।  
 तिलमिश्रैश्च गोधूमैर्द्रव्येणाऽप्याहुतीर्हुनेत् ॥  
 जुहुयात्पायसेनैव आज्येन च हुनेत्क्रमात् ।  
 हविश्चतुष्टयेनैव प्रत्येकं शतसंख्यया ॥  
 गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् ।  
 ततः स्विष्टकृतं हुत्वा रज्जुप्रहरणं तथा ॥



## रजोदर्शनशान्तिः

६५

अयाश्चेत्यादिभिर्हुत्वा समुद्राद्गमिसूक्ततः<sup>१</sup> ।  
 सन्ततामाज्यधारान्ता पूर्णाहुतिमथाचरेत् ॥  
 परिषेचनपर्यन्तं होमशेषं समापयेत् ।  
 सहौषधिस्थितैस्तत्र प्रतिकुम्भस्थितोदकैः ॥  
 ऋतुमत्याः स्त्रियः शान्तिं दम्पतीभ्यां सुखाय च ।  
 अथाऽभिषेकमन्त्राश्च प्रोच्यन्ते शौनकादिभिः ॥  
<sup>२</sup>आपो हि ष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् ।  
<sup>३</sup>इन्द्रो अङ्गुतृचेनैव पावमानीः क्रमेण तु ॥  
 उभयं <sup>४</sup>शृणवच्च नः स्वस्तिदाविश<sup>५</sup> एकया ।  
 त्रैयम्बकेन<sup>६</sup> मन्त्रेण जातवेदस<sup>७</sup> एकया ॥  
 समुद्रज्येष्ठा<sup>८</sup> इत्यादि चतुर्भिश्च प्रसिद्धकैः ।  
<sup>९</sup>त्रायन्तामिति मन्त्रैश्च त्रिभिश्चापि यथाक्रमम् ॥  
 इमा आपस्तृचेनैव देवस्य त्वेति मन्त्रतः ।  
 मन्त्रेणाऽथ <sup>१०</sup>तमीशानं त्वमग्ने रुद्र<sup>११</sup> इत्यथ ॥  
<sup>१२</sup>तमुष्टुहीति मन्त्रेण <sup>१३</sup>भुवनस्य पितुस्तथा ।  
 या ते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसङ्कल्पमन्त्रतः<sup>१४</sup> ॥  
<sup>१५</sup>इन्द्र त्वा वृषभं वयं मन्त्रैश्चैवाभिषेचयेत् ।  
 सा च वस्त्रान्तरं धृत्वा पुनश्चैवोपवासिनी ॥

उपवासोऽत्र समीपावस्थानम् ।

विप्रानभ्यर्च्य विधिवद् गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।  
 धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणैः ॥  
 सदक्षिणमनङ्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने ।  
 ऋत्विग्भ्यश्चाथ सर्वेभ्यो दद्याद्वै दक्षिणां ततः ॥  
 महाशान्तिं प्रयच्छाऽथ विप्राशीर्वचनं ततः ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्चैव भुञ्जीयात्स्वजनैः सह ॥

१. ऋ. सं. ३।८।१० । २. ऋ. सं. ७।६।५ । ३. ऋ. सं. २।८।८। ४. ऋ.  
 सं. ६।४।३६। ५. ऋ. सं. ८।८।१०। ६. ऋ. सं. ५।४।३०। ७. ऋ. सं. १।७।७  
 ८. ऋ. सं. ५।४।१६। ९. ऋ. सं. ८।७।२५। १०. ऋ. सं. १।६।१५। ११. ऋ.  
 सं. २।५।१८। १२. ऋ. सं. ४।२।१९। १३. ऋ. सं. ४।८।६। १४. उ-  
 मन्त्रविन् । १५. ऋ. सं. ३।३।१।



स्मृतौ— ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दैवज्ञं भोजयेत्ततः ।  
 एवं यः कुरुते शान्तिं शौनकोक्तप्रकारतः ॥  
 तदनिष्टं तु सकलं सर्वं चाऽपि विनश्यति ॥ इति ।  
 इति शौनकोत्तरजोदर्शनदोषशान्तिः ।

### अथ प्रयोगः

कर्ता देशकालौ स्मृत्वा 'मम पत्न्याः प्रथमरजोदर्शनेऽमुकदुष्टमासा-  
 दिसूचितारिष्टनिरसनार्थं शान्तिं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य गणेशपूजन-  
 स्वस्तिवाचन-मातृकापूजनाभ्युदयिकाचार्यैर्विवरणानि कुर्यात् । अथा-  
 ऽऽचार्यो गृहेशान्यां प्रत्येकं मन्त्रावृत्त्या पदार्थानुसमयेन कुम्भत्रयं स्थाप-  
 येत् । तद्यथा । ॐ महीद्यौरिति<sup>१</sup> मध्ये तदक्षिणोत्तरश्च स्पृष्ट्वा ॐ  
 ओषधयः<sup>२</sup> इति स्पर्शक्रमेण तेषु स्थानेषु द्रोणप्रमाणान् ब्रीहीन् राशीकृत्य  
 तेनैव क्रमेण राशित्रये आकलशेष्विति<sup>३</sup> कुम्भत्रयं संस्थाप्य मध्ये प्रसुव  
 आप<sup>४</sup> इति नवर्गिभः तदक्षिणे यः प्रवतं<sup>५</sup> इत्यृचा तदुत्तरे गायत्र्या जलं  
 क्षिप्त्वा, त्रिष्वपि गन्धद्वारामिति गन्धम् । या ओषधीरिति<sup>६</sup> सर्वौ-  
 षधीः 'ओषधयः समिति'<sup>७</sup> यवान् क्षिप्त्वा । मध्यम एव यव-ब्रीहि-तिल-  
 माष-कङ्गुश्यामाक-मुद्गान् क्षिप्त्वोदुम्बर-कुश-दूर्वा-रक्तोत्पल-पञ्च-  
 बिल्व-विष्णुकान्ता-तुलसी-वर्हिष-शङ्खपुष्पी-शतावर्यश्चगन्धा-निर्गुण्डी-  
 रक्तपीत-सर्षपाऽपामार्ग-पलाश-पनस-जीवक-प्रियङ्गु-गोधूम-ब्रीह्य-  
 श्वत्थ-दधि-दुग्ध-घृत-पद्म-नीलोत्पल-सितरक्तपीत-कुरंतक-गुञ्जा-वचा-  
 भद्रकमुस्तकाख्यानि द्वात्रिंशदौषधानि यथासम्भवं वा गायत्र्या क्षिप्त्वा  
 त्रिषु दूर्वा-पञ्चपल्लव-सप्तमृत्तिका-फल-पञ्चरत्न-सुवर्णानि क्षिप्त्वा ।  
 युवा सुवासा<sup>८</sup> इति वाससा सूत्रेण वा कुम्भकण्ठान् वेष्टयित्वा  
 गन्धादिभिरलङ्कृत्य 'पूर्णादिवीति' यवादिपूर्णपात्राणि निधाय तेषु  
 साष्टदलं श्वेतं वस्त्रत्रयं न्यस्य मध्यमे गायत्र्या विश्वामित्रो  
 भुवनेश्वरी गायत्री भुवनेश्वर्यावाहने विनियोगः । ॐ तत्सवितुरिति<sup>९</sup>  
 भुवनेश्वरीम् । तदक्षिणकुम्भे इन्द्राणीं वृषाकपिरिन्द्राणी पंक्तिः

१. ऋ. सं. १।२।६। २. ऋ. सं. ८।५।११। ३. ऋ. सं. ६।७।७। ४. ऋ.  
 सं. ८।३।६। ५. ऋ. सं. ५।४।१७। ६. ऋ. सं. ८।५।११। ७. ऋ. सं. ८।५।८।  
 ८. ऋ. सं. ३।१।३। ९. ऋ. सं. ३।४।१० ।



इन्द्राण्यावाहने विनियोगः । इन्द्राणी मास्वितीन्द्राणीम् । उत्तर-  
कुम्भे इन्द्र त्वा विश्वामित्र इन्द्रो गायत्री इन्द्रावाहने विनियोगः ।  
इन्द्रत्वेतीन्द्रं प्रतिमासु स्थाप्य षोडशभिः पञ्चभिर्वोपचारैरभ्यर्च्य मध्य-  
मेऽष्टसहस्रमष्टशतं वा गायत्रीं श्रीसूक्तं च जपेत् । तत एकत्विक्  
दक्षिणकुम्भे रुद्रसूक्तानि जपेत् । तानि च कद्रुद्रायेत्येकादशर्चम् ।  
इमा रुद्राय तव स इत्येकादशर्चम् । इमा रुद्राय स्थिरधन्वन इति  
पञ्चर्चम् । आ ते पितरिति पञ्चदशर्चम् । तमुष्टुहीत्येका<sup>१</sup> । भुवनस्य  
पितरित्येका<sup>२</sup> । अथान्यश्चत्विगुत्तरकुम्भे एकादशावृत्तिभी रुद्रं शन्न  
इन्द्राग्नीति<sup>३</sup> पञ्चदशर्चं च जपेत् । अथाऽऽचार्यः कुम्भपश्चिमेऽग्नि-  
प्रणीय तदीशान्यां ग्रहस्थापनादिपूजान्तं कृत्वा तदीशान्यामेकं कुम्भं  
संस्थाप्य तत्र वरुणावाहनादिपूजान्तं कृत्वाऽन्वादध्यात् । तत्राऽस्मिन्न-  
न्वाहितेऽग्नावित्यादि चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा भुवनेश्वरीमिन्द्राणी-  
मिन्द्रं च प्रत्येकममुकसंख्यया दूर्वा-तिलमिश्रगोधूमपायसाज्यैर्ग्रहांश्चा-  
ऽमुकसंख्यया समिच्चर्वाज्यैः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि यक्ष्य इत्यन्त-  
मुक्त्वा परिस्तरणाद्याज्यभागान्तं कृत्वा यजमानेनाऽङ्गप्रधानदेवता  
उद्दिश्यैताभ्य इदं न ममेत्युक्ते ऋत्विग्भिः सहान्वाधानोक्तक्रमेण जुहु-  
यात् । अन्ये तु—‘गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् ।’ ततः स्विष्ट-  
कृतं हुत्वेत्यत्रेन्द्राणीन्द्रयोर्होमानभिधानान्न तयोर्होमोऽन्वाधाने<sup>१०</sup> वा कीर्त्तन-  
मित्याहुः । ततः स्विष्टकृदादि-बलिदानान्तं कृत्वा समुद्रादूमिरिति<sup>११</sup>  
तृचेन पूर्णाहुतिं हुत्वा प्रणीताविमोकं कृत्वा ऋत्विग्भिः सह सभार्यं  
यजमानं कुम्भोदकैरभिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः । आपो हि ष्ठेति<sup>१२</sup> नवर्चः ।  
य एक इद्विदं यत<sup>१३</sup> इत्येका त्रिभिष्ट्वंदेवेति<sup>१४</sup> ऋचः । उभयं शृणवच्च-  
नेति<sup>१५</sup> स्वस्तिदाविशो यमिति<sup>१६</sup> । त्र्यम्बकमिति<sup>१७</sup> । जातवेदस<sup>१८</sup> इति ।  
समुद्रज्येष्ठा<sup>१९</sup> इति चतस्रः । त्रायन्तामिति<sup>२०</sup> तृचः । इमा आप तृचः ।

१. ऋ. सं. ८।४।३ । २. ऋ. सं. ३।३।१ । ३. ऋ. सं. १।३।२६ ।

४. ऋ. सं. १।८।५ । ५. ऋ. सं. ५।४।१३ । ६. ऋ. सं. २।७।२६ । ७. ऋ.

सं. ४।२।१९ । ८. ऋ. सं. ४।८।६ । ९. ऋ. सं. ५।३।२८ । १०. ज-चा ।

११. ऋ. सं. ३।८।१० । १२. ऋ. सं. ७।६।५ । १३. ऋ. सं. १।६।६ ।

१४-१५. ऋ. सं. ७।२।१८, ६।४।३६ । १६. ऋ. सं. ८।८।१० । १७. ऋ. सं.

५।४।३० । १८. ऋ. सं. १।७।७ । १९. ऋ. सं. ५।४।३६ । २०. ऋ. सं.

८।७।२५ ।

७ शा०



देवस्य त्वेति मन्त्रैः । तमीशानं जगतः<sup>१</sup> । त्वमग्ने रुद्र<sup>२</sup> इत्येकं यजुः । तमुष्टुहीति<sup>३</sup> । भुवनस्य पितरम्<sup>४</sup> । या ते रुद्रेति । यज्जाग्रत इति षट् । एते याजुषाः । इन्द्र त्वा वृषभं वयमिति<sup>५</sup> ऋचः । सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त्वित्याद्याः पौराणाः । एवमभिषिक्तः सुस्नातो धृतशुक्लवासाः सपत्नीको यजमानोऽग्निमाचार्यादींश्च सम्पूज्याऽऽचार्याय धेनुं ब्रह्मणे ऋत्विग्भ्यश्च यथाशक्ति दक्षिणां रुद्रजापिने सदक्षिणमनङ्वाहं भूयसीं च दत्त्वा ग्रहपीठदेवतानां भुवनेश्वर्यादीनां चोत्तरपूजां कृत्वा यान्तु देवगणा इति विसृज्याऽऽचार्याय प्रतिपाद्य गच्छ गच्छेत्यग्निं विसर्जयेत् । ततो ब्राह्मणाः शान्तिं पठेयुः । तत्र मन्त्राः । आ नो भद्रा<sup>६</sup> इति ऋचः । स्वस्ति नो मिमीतामिति<sup>७</sup> ऋचः । त्यमूष्विति<sup>८</sup> ऋचः । तच्छंयोरिति च । ततो यजमानो द्वादशब्राह्मणान् भोजयित्वा सङ्कल्प्य वा विप्राशिषो गृहीत्वा सुहृद्युतो भुञ्जीत ।

### अथ चन्द्रार्कोपरागकालीनाद्यरजोदर्शने विशेषः

कर्त्तोक्तकाले मासपक्षाद्युल्लिख्य 'मम पत्न्याश्चन्द्रस्य सूर्यस्य वा उपरागे प्रथमरजोदर्शनसूचितानिष्टनिरासार्थं शान्तिं करिष्य' इति सङ्कल्प्य प्राग्वत् ऋत्विक्पूजान्तं कुर्यात् । अथाचार्यो गोमयोपलिप्ते देशे पञ्चवर्णैरष्टदलं कृत्वा तत्र श्वेतवस्त्रमुदग्दिशं प्रसार्य तत्र चन्द्रोपरागे आप्यायस्वेति<sup>९</sup> राजत्यां प्रतिमायां चन्द्रसूर्योपरागे तु आकृष्णेनेति<sup>१०</sup> सौवर्ण्यां वा सूर्यं प्रतिमायामावाह्य तदुत्तरतः स्वर्भानो इति सैस्यां प्रतिमायां राहुमावाह्य यस्मिन् नक्षत्रे ग्रहणं तन्नक्षत्रदेवतां सौवर्णप्रतिमायां तत्तन्मन्त्रैः प्रणवादिनमोन्तैर्नाममन्त्रैर्वाऽऽवाह्य काण्डानुसमयेन षोडशोपचारैः पूजयेत् । तत्र चन्द्राय नक्षत्रदेवताभ्यश्च श्वेतानि गन्धादीनि । सूर्याय रक्तानि । राहवे कृष्णानि । ततः पश्चिमतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य पक्षे ग्रहावाहनादि-पूजान्तं कृत्वाऽन्वादध्यात् । तत्र चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा चन्द्रं सूर्यं वा राहुं नक्षत्रदेवतां पक्षे ग्रहांश्चामुकसंख्यया समिदाज्यचरुतिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि समित्सु

१. ऋ. सं. १।६।१५ । २. ऋ. सं. २।५।१८ । ३. ऋ. सं. २।४।१३ । ४. ऋ. सं. ४।८।६ । ५. ऋ. सं. ३।३।१ । ६. ऋ. सं. १।६।१५ । ७. ऋ. सं. ४।३।७ । ८. ऋ. सं. ८।८।३६ । ९. ऋ. सं. ६।८।२१ । १०. ऋ. सं. १।३।६ ।



## गोमुखप्रसवः

६६

विशेषः । चन्द्रर्क्षदेवतयोः पालाशः, सूर्यस्यार्कः, राहोर्दूर्वा, ताश्च तिस्र एकाऽऽहुतिः । अथाज्यभागान्तं कृत्वा यजमानेन द्रव्ये त्यक्तेऽन्वाधान-  
क्रमेण त्विभिः सह हुत्वा स्विष्टकृदादिपूर्णाहुत्यन्तं प्राग्वत्कृत्वैकस्मिन्कुम्भे  
जल-पञ्चगव्य-रत्न-त्वक्-पल्लव-सवौषधिकल्क-दूर्वा-कुशात् निक्षिप्य  
सर्त्विक् दम्पती पूर्ववदभिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः । आपो हि ष्ठेति<sup>१</sup> तृचः ।  
इमं मे गङ्गे<sup>२</sup> इत्येका । <sup>३</sup>तत्त्वायामीत्येका । अन्येऽपि समुद्रज्येष्ठा<sup>४</sup>  
सुरास्त्वामित्यादयश्च । शेषं पूर्ववत् ।

इति दुष्टरजोदर्शनशान्तिप्रयोगः ।

## अथ गोमुखप्रसवः ।

गर्गः— पितरिष्टे सुतारिष्टे मात्ररिष्टे तथैव च ।

प्रायश्चित्तं तदा कुर्यात्तत्तद्दोषस्य<sup>१</sup> शान्तये ॥

तादृशनक्षत्रोत्पत्त्या सूचिते पित्राद्यरिष्टे प्रायश्चित्तमित्यत्रापि  
तत्तदित्यन्वेति देहलीदीपवत् । तत्तद्दोषशान्त्यै तत्तत्प्रायश्चित्तं कुर्या-  
दित्यर्थः ।

पूषाश्विनोर्गुरौ सर्पमघाचित्रेन्द्रमूलभे ।  
एषु ऋक्षेषु जातस्य कुर्याद्गोजननं तथा ॥  
जन्मर्क्षे वा त्रिजन्मर्क्षे शुभवारे शुभे दिने ।  
कृत्वाऽभ्यङ्गादिकं सर्वं गृहालङ्कारपूर्वकम् ॥  
गोमयेनोपलिप्याऽथ गृहस्येशानभागके ।  
पङ्कजं कर्णिकायुक्तं रजोभिः श्वेतवर्णकैः ॥  
ब्रीहीस्तत्र विनिक्षिप्य यथावित्तानुसारतः ।  
नवसूर्पं तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं प्रसारयेत् ॥  
स्थापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत् ।  
प्राङ्मुखं तमवाक्पादं तिलगर्भगतं शिशुम् ॥  
गोमुखं दर्शयित्वाऽथ पुनर्जातिं तु गोमुखात् ।  
विष्णुर्योनिमिति<sup>२</sup> सूक्तेन गव्येन स्नपयेच्छिशुम् ॥  
गवामङ्गेति मन्त्रेण गवामङ्गेषु संस्पृशेत् ।  
विष्णोः श्रेष्ठेन मन्त्रेण गोप्रसूतं तु बालकम् ॥

१. ऋ. सं. ७।६।५ । २. ऋ. सं. ८।३।६ । ३. ऋ. सं. १।२।१५ । ४.

ऋ. सं. ५।४।१६ । ५. ज-तत्र दोषस्य । ६. ऋ. सं. ६।६।४२ ।



आचार्यस्तु समादाय पश्चान्मात्रे ददेत्तथा ।  
 माता जघन्यभागस्था शिशुमानीय तं मुखात् ॥  
 ततः पित्रे तदा दद्यात्ततो मात्रे प्रदापयेत् ।  
 वस्त्रे स्थाप्य पिताऽथाऽस्य<sup>१</sup> पुत्रस्य मुखमीक्षयेत् ॥  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च संयुतम् ।  
 आपो<sup>२</sup> हि ष्ठादिभिर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत्ततः शिशुम् ॥  
 मूर्ध्नि चाघ्राय तत्पुत्रं तन्मन्त्रेण तदा पिता ।  
 अङ्गादङ्गात्सम्भवसि<sup>३</sup> हृदयादधि<sup>४</sup>जायसे ॥  
 आत्मा वै पुत्रनामाऽसि सञ्जीव शरदः शतम् ।  
 मूर्द्धनि त्रिरवघ्राय तं शिशुं स्थापयेत्ततः ॥  
 पुण्याहं वाचयेत्पश्चाद् ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।  
 दरिद्रायाऽथ विप्राय तां गामभ्यर्च्य दापयेत् ॥  
 गो-वस्त्र-स्वर्ण-धान्यानि दद्यादर्कादितः क्रमात् ।  
 यथाशक्ति धनं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तदा पिता ॥  
 ततो होमं प्रकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः ।  
 उल्लेखनादिकं कृत्वा चाज्यभागान्तमाचरेत् ॥  
 होमस्यैशानदिग्भागे धान्योपरि शुभं घटम् ।  
 पञ्चगव्यं घटे स्थाप्य तिलांस्तत्र विनिक्षिपेत् ॥  
 क्षीरिद्रुमकषायांश्च पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् ।  
 वस्त्रयुग्मेन सञ्छाद्य गन्धादिभिरथार्चयेत् ॥  
 विष्णुं वरुणमभ्यर्च्य प्रतिमां च विधानतः ।

प्रतिमां यक्ष्महणः<sup>५</sup> अग्रे तद्देवत्यहोमविधानात् । चकाराच्च—

यत इन्द्रादिभिर्मन्त्रैः<sup>६</sup> कुम्भं स्पृष्ट्वाऽभिमन्त्रयेत् ।  
 दधि-मध्वाज्ययुक्तेन होमं कुर्याद्विधानतः ॥  
 आपो हि ष्ठेति<sup>७</sup> तिसृभिरप्सु मे सोम<sup>८</sup> इत्यथ ।  
 तद्विष्णोः<sup>९</sup> परमं पदमक्षीभ्यां<sup>१०</sup> तेऽथ सूक्ततः ॥

१. ज्ञ-स्याथ । २. ऋ. सं. ७।६।५ । ३. ऋ. सं. १।१५।११ । ४. ज्ञ-  
 भि । ५. ड क्ष-यक्ष्मघ्नः, ध-यक्ष्मणः । ६. ऋ. सं. ६।४।३८ । ७. ऋ. सं.  
 ७।६।५ । ८. ऋ. सं. १।२।११ । ९. ऋ. सं. १।२।७ । १०. ऋ. सं. ८।८।२१ ।



## सदन्तोत्पत्तिशान्तिः

१०१

ऋग्भिराभिः प्रत्यूचं वाऽष्टाविंशतिसंख्यया ।  
 अशक्तश्चाष्टसंख्यं वा दधि-मध्वाज्यसंयुतम् ।  
 आदित्यादिग्रहाणां च होमं कुर्यात्समन्त्रकम् ॥  
 इति गोमुखप्रसवविधिः ।

## अथ प्रयोगः

मासपक्षाद्युल्लिख्यास्य शिशोरमुकक्षोत्पत्तिसूचिताऽरिष्टशान्तर्थं  
 गोमुखप्रसवं करिष्ये, इत्युक्त्वा गणेशपूजनाचार्यवरणे कुर्यात् । अथा-  
 चार्यः श्वेताष्टदले ब्रीहिस्थशूर्पे रक्तवस्त्रं विन्यस्य तिलान्विकीर्य तत्र  
 प्राङ्मुखं शिशुं संस्थाप्य सूत्रेणाऽऽवेष्ट्य गोमुखात् प्रसवं विचिन्त्य  
 विष्णुर्योनिमिति<sup>१</sup> सूक्तेन पञ्चगव्येन शिशुं संस्थाप्य गवामङ्गेष्विति गां  
 स्पृष्ट्वा विष्णोः श्रेष्ठेनेति शिशुं गृहीत्वा मात्रे दद्यात् । माता पित्रे  
 दद्यात् । पित्रा च मात्रे दत्त्वा तन्मुखं समीक्ष्य पञ्चगव्येनाऽऽपो हि ष्ठेति<sup>२</sup>  
 तिसृभिरभिषिच्याङ्गादिति मूर्ध्नि त्रिरवघ्राय मात्रे दत्त्वा पुण्याहं वाच-  
 यित्वा गामाचार्याय दत्त्वा ग्रहप्रीत्यर्थं गोवस्त्रस्वर्ण-धान्यादि दत्त्वा  
 भूयसीं दद्यात् । अथाऽऽचार्योऽग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते  
 अप आपो हि ष्ठेति<sup>३</sup> तृचेन अप्सु म<sup>४</sup> इत्युक्त्वा च विष्णुं तद्विष्णोरि-  
 त्युक्त्वा<sup>५</sup> यक्षमहणम<sup>६</sup>क्षीभ्यामिति सूक्तेन ग्रहांश्च प्रत्येकमष्टादिसंख्यया  
 दधिमध्वाज्यैः शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्युक्त्वाऽऽज्यभागान्तं कृत्वाऽग्नेरी-  
 शान्यां कुम्भं संस्थाप्य तत्र पञ्चगव्य-तिल-ब्रीहि-क्षीर-दुग्ध-कषायान्  
 क्षिप्त्वा वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्ट्य पूर्णपात्रोपरि तद्विष्णोरिति<sup>७</sup> विष्णोस्त-  
 त्वावामीति<sup>८</sup> वरुणस्यामिति यक्षमहणश्च प्रतिमा अभ्यर्च्य यत इन्द्रेति<sup>९</sup>  
 षडृचो जप्त्वाऽन्वाधानक्रमेण हुत्वा कर्मशेषं समापयेत् ।

इति गोमुखप्रसवप्रयोगः ।

## अथ सदन्तोत्पत्तिशान्तिः ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः ।

दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥

१. ऋ. सं. ८।८।४२ । २-३. ऋ. सं. ७।६।५ । ४. ऋ. सं. १।२।११ ।

५. ऋ. सं. १।२।७ । ६. ऋ. सं. ८।८।२१ । ७. ऋ. सं. १।२।७ । ८. ऋ.  
 सं. १।२।१५ । ९. ऋ. सं. ६।४।३८ ।



१०२

शान्तिमयूखः

द्विजाः दन्ताः ।

मातरं पितरं वाऽथ खादेदात्मानमेव वा ।  
 तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि तां मे निगदतः शृणु ॥  
 गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्नापयेद् द्विज !  
 तदभावे च सर्वज्ञ ! काञ्चने च वरासने ॥  
 सर्वौषधैः सर्वबीजैः सर्वपुष्पैः फलैस्तथा ।  
 पञ्चगव्येन रत्नैश्च मृत्तिकाभिश्च भार्गव ! ॥  
 सर्वौषधानि सर्वगन्धाश्च विनायकस्नपनविधौ दर्शिताः ।

स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ।  
 सप्ताहं चात्र कर्तव्यं ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥  
 अष्टमेऽह्नि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा ।  
 काञ्चनं राजतं गाश्च भुवमागारमेव तु ॥  
 दन्तजन्मनि सामान्ये शृणु स्नानमतः परम् ।  
 भद्रासने निवेश्यैनं मूर्ध्नि मूलैः फलैस्तथा ॥  
 सर्वौषधैः सर्वगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव च ।  
 स्नापयेत्पूजयेच्चाऽत्र वह्निं सोमं समीरणम् ॥  
 पर्वतांश्च तथा ख्यातान् देवदेवं च केशवम् ।  
 एतेषामेव जुहुयाद्धुतमग्नौ यथाविधि ॥  
 ब्राह्मणानान्तु दातव्या यथाशक्त्या तु दक्षिणा ।  
 ततस्त्वलङ्कृतं बालमासने चोपवेशयेत् ॥  
 आसीनं सूर्यसन्तानबीजैः सुस्नापयेत्ततः ।  
 सुविप्रबालकानां च तैश्च कार्यं च पूजनम् ॥  
 पूज्यश्च विधिनाऽऽचार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ।

इति सदन्तोत्पत्तिशान्तिः ।

अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः ।

गर्गः— कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् ।  
 चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादाद्यं शुभं स्मृतम् ॥  
 द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं स्मृतम् ।  
 चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् ॥



## कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः

१०३

षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥  
 आचार्यं वरयेद्धीमान् पुत्रदारसमन्वितम् ।  
 स्वकर्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् ॥  
 सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ।  
<sup>१</sup>प्रतिमां कारयेत् शम्भोः कर्षमात्रसुवर्णतः ॥  
<sup>२</sup>तदर्धाधेन वा कुर्यात् सर्वलक्षणसंयुतम् ।  
 वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिनम् ॥  
 शुद्धस्फटिकसङ्काशं श्वेतमाल्याम्बरान्वितम् ।  
<sup>३</sup>त्र्यम्बकेन च मन्त्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः ॥  
 स्थापयेच्चतुरः कुम्भांश्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।  
 पुण्यतीर्थजलोपेतान् धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥  
 तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतछिद्रसमन्वितम् ।  
 पञ्चमृत्पञ्चरत्नानि पञ्चत्वक् पञ्चपल्लवान् ॥  
 पञ्चधान्यं सुवर्णं च तत्तन्मन्त्रैर्विनिक्षिपेत् ।  
 सवौषधानि निक्षिप्य श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥  
 सुरभीणि च पुष्पाणि श्वेतानि परिवेष्टयेत् ॥  
 सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।  
 आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥  
 आवाह्य वारुणैर्मन्त्रैरनेन च विधानतः ।  
 इमं मे<sup>४</sup> वरुणेत्यनया तत्त्वायामि<sup>५</sup> ऋचा तथा ॥  
 त्वन्नो अग्न<sup>६</sup> इत्यनया स त्वन्न<sup>७</sup> इति मन्त्रतः ।  
 आग्नेयकुम्भमारभ्य पूजां कुर्याद्यथाक्रमम् ॥  
 आ नो भद्रा<sup>८</sup>ख्यसूक्तं च भद्रा<sup>९</sup> अग्नेश्च सूक्ततः ।  
 जप्त्वा तु पौरुषं <sup>१०</sup>सूक्तं कद्रुद्रं<sup>११</sup> तु क्रमाज्जपेत् ॥  
 ईश्वरस्याऽभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत् ।  
 पूजाकर्मसु निर्वर्त्य होमं कुर्याद्विधानतः ॥

१-२. ड-पाठः । ३. ऋ. सं. ५।४।३० । ४. ऋ. सं. १।२।१९ । ५. ऋ. सं. १।२।१५ । ६-७. ऋ. सं. ३।४।१२ । ८. ऋ. सं. १।६।१५ । ९. ऋ. सं. ८।२।१९ । १०. ऋ. सं. ८।४।१७ । ११. ऋ. सं. १।३।२६ ।



गृहादीशानदिग्भागे कुण्डं कार्यं विधानतः ।  
 विस्तारायामखातं च अरत्निद्वयसम्मितम् ॥  
 समिदाज्य-चरुश्चैव तिल-माषांश्च सर्षपैः ।  
 अश्वत्थ-प्लक्ष-पालाश-समिद्धिः खादिरैः शुभैः ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।  
 अष्टाविंशतिमेतैश्च होमं कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥  
 त्रैयम्बकेन<sup>१</sup> मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः क्रमात् ।  
 कृत्वा होमांश्च कर्त्तव्या अस्मदुक्तविधानतः ॥  
 एवं क्रमेण कर्त्तव्यं होमशेषं समापयेत् ।  
 सर्वालङ्कारयुक्तानां त्रयाणामभिषेचनम् ॥  
 त्रयाणाम् माता-पितृ-शिषूनाम् ।

चतुर्भिः कलशैरद्भिर्बृहत्कुम्भसमन्वितम् ।  
 धौताम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यादाज्याऽवलोकनम् ॥  
 पूर्णाहुतिं च जुहुयाद्यजमानः समाहितः ।  
 तत्सर्वं परया भक्त्या ईश्वराय निवेदयेत् ॥  
 सर्वालङ्कारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम् ।  
 प्रतिमां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् ॥  
 अन्येषां चैव सर्वेषां कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम् ।  
 तस्मादेतेन विधिना वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥  
 एवं यः कुरुते शान्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 सर्वान्कमानवाप्नोति स्थिरजीवी सुखी भवेत् ॥  
 इति कृष्णचतुर्दशीशान्तिः ।

### अथ सिनीवालीकुहशान्तिः ।

गार्ग्यः—सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा ।  
 गजाऽश्वा महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥  
 ये सन्ति सकलाः पश्चात्तत्प्रसादोपजीविनः ।  
 वज्जयेत्तानशेषांस्तु पशु-पक्षि-मृगादिकान् ॥  
 कुहूप्रसूतिरत्यर्थं<sup>२</sup> सर्वदोषकरी स्मृता ।  
 यस्य प्रसूतिरेतेषां तस्यायुर्धननाशनम् ॥

१. ऋ. सं. ५।४।३० । २. ड-शान्त्यर्थं ।



## सिनीवालीकुहशान्तिः

१०५

सर्वगण्डसमस्तत्र दोषस्तु प्रबलो भवेत् ।  
 तत्र शान्तिविशेषेण परित्यागो विधीयते ॥  
 परित्यागात्तत्र शान्तिं कुर्याद्धीमान् विचक्षणः ॥  
 परित्यागादिति ल्यबलोपे पञ्चमी । परित्यागं कृत्वेत्यर्थः ।  
 तत्कालं तत्क्षणाद्धेन पुनरेवाऽनुलेपनम् ॥  
 न त्यजेत्पण्डितो मोहादथदिज्ञानतोऽपि वा ।  
 तद्योगं नाशयेत्किञ्चित्स्वयं वा नाशमश्नुते ॥  
 कल्पोक्तशान्तिः कर्त्तव्या शीघ्रं दोषापनुत्तये ।  
 रुद्रः शक्रश्च पितरः पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ।  
 कर्षमात्रसुवर्णेन तदद्धाद्धेन वा पुनः ॥  
 अथवा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥  
 प्रतिमां कारयेच्छम्भोश्चतुर्भुजसमन्विताम् ।  
 त्रिशूलखड्गवृदाभयहस्तां यथाक्रमम् ॥  
 श्वेताम्बरधरां श्वेताम्बरवृषस्थिताम् ।  
 त्रियम्बकेन मन्त्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥  
 इन्द्रश्चतुर्भुजो वज्राङ्कुशचापः ससायकः ।  
 रक्तवर्णो गजारूढो यत इन्द्रेति मन्त्रतः ॥  
 पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्हस्ता विमानगाः ।  
 गदाऽक्षसूत्र-कमण्डल्वभयस्यैव धारिणः ॥  
 ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्याद्विनाशम् ।  
 आग्नेयीं दिशमारभ्य कुम्भान् कोणेषु विन्यसेत् ॥

ये सत्यासो हविरद<sup>१</sup> इत्यादिमन्त्र श्रृग्वेदे प्रसिद्धः ।

तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् ।  
 निक्षिपेत्पञ्चगव्यादींस्तत्तन्मन्त्रैश्च निक्षिपेत् ॥  
 कल्पोक्तशान्तिः कर्त्तव्या कुर्याच्छीघ्रं स्वशक्तितः ।  
 गोदानं वस्त्रदानं च सुवर्णं वोर्वरां शुभाम् ॥  
 दशदानानि चोक्तानि क्षीरमाज्यं गुडं तथा ।  
 आज्यावेक्षणपात्राणि तत्तन्मन्त्रैश्च कारयेत् ॥  
 समिदाज्यं च होमं च तिलहोमं च सर्षपैः ।  
 अश्वत्थ-प्लक्ष-पालाशसमिद्धिः खादिरैः शुभैः ॥



अष्टोत्तरशतं मुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद् द्विजः<sup>१</sup> ।  
 त्रैयम्बकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः पुनः ॥  
 चतुर्भिः कलशैर्युक्तं बृहत्कुम्भसमन्वितम् ।  
 शान्तिवत् सकलं कार्यमभिषेकं च कारयेत् ॥  
 शान्तिवत् पूर्वोक्तशान्तिवत् ।

माता-पितृ-शिशूनां च अभिषिञ्चेत्तु वारुणैः ।  
 शङ्करस्याऽभिषेकं च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥  
 अन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च तर्पणम् ।  
 यथाशक्त्यनुसारेण द्विजवाचनपूर्वकम् ॥

### अथ प्रयोगः

तत्र चतुर्दश्याः षडंशेषु द्वितीय-तृतीय-षष्ठांशेषु जन्म चेद् गोमुख-  
 प्रसवोऽपि कार्यः । कर्ता मासपक्षाद्युल्लिख्याऽस्य शिशोश्चतुर्दश्याद्य-  
 भागादिषु सिनीवाल्यां कुह्वां वोत्पत्त्या सूचितस्याऽनिष्टस्य निरासार्थं  
 शान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजा-  
 वृद्धिश्राद्धाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात् । तत आचार्यः सर्षपविकिरणादि  
 कृत्वा पीठादौ वरदाभयहस्तां वृषस्थां हैमीं रुद्रप्रतिमां त्र्यम्बक<sup>२</sup>मन्त्रेण  
 सम्पूजयेत् । सिनीवालीकुह्वोस्तु रुद्रेन्द्रपितरः । तत्र रुद्र ईशानोर्ध्वकर-  
 क्रमात् त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तो वृषस्थः त्र्यम्बकमन्त्रेण, इन्द्रो  
 वज्रांकुशधनुः शरकरो रक्तो गजस्थो यत इन्द्रेति<sup>३</sup> मन्त्रेण, पितरः कृष्ण-  
 वर्णा गदाक्ष-सूत्र-कमण्डलवभयकरा विमानस्था ये सत्या इति मन्त्रेण  
 पूज्या इति विशेषः । ततस्तत्प्राच्यामीशान्यामुदीच्यां वाऽऽग्नेयादिषु  
 चतुरः कुम्भान् मध्ये च शतच्छिद्रं संस्थाप्य तेषु पञ्चामृत-पञ्चरत्न-  
 पञ्चत्वक्-पञ्चपल्लव-धान्यानि सुवर्णं सवौषधीश्च क्षिप्त्वा श्वेतवस्त्रमाला-  
 भिरावेष्ट्य सर्वे समुद्रा इत्यभिमृश्य इमम्मे वरुण<sup>४</sup> तत्त्वायामि<sup>५</sup> त्वन्नो  
 अग्ने<sup>६</sup> स त्वन्न<sup>७</sup> इति क्रमेण वरुणमावाह्य सम्पूज्य क्रमेण आ नो  
 भद्रा<sup>८</sup> भद्रा अग्ने<sup>९</sup> सहस्रशीर्षा<sup>१०</sup> कद्रुद्राये<sup>११</sup>ति सूक्तानि क्रमाज्जप्त्वा

१. ज-जै । २. ऋ. सं. ५।४।३० । ३. ऋ. सं. ६।४।३८ । ४. ऋ. सं.  
 १।२।१९ । ५. ऋ. सं. १।२।१५ । ६-७. ऋ. सं. ३।४।१२ । ८. ऋ. सं.  
 १।६।१५ । ९. ऋ. सं. ८।२।१९ । १०. ऋ. सं. ८।४।१७ । ११. ऋ. सं.  
 १।३।२६ ।



## दर्शनजननशान्तिः

१०७

महादेवं यथाशक्ति रुद्राध्यायादिनाऽभिषिच्य ग्रहानावाह्य सम्पूज्य  
गृहेशान्यामग्निं संस्थाप्याऽन्वादध्यात् । तत्र चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते  
चतुर्दशीशान्तौ रुद्रमश्वत्थ-प्लक्ष-पलाश-खदिर-समिद्धिराज्य-चरु-  
तिल-माष-सर्षपैः प्रत्येकममुकसंख्यया व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिस्तिलै-  
श्रामुकसंख्यया यक्ष्य इत्यादि सिनीवाल्यां कुह्वां च रुद्रमिन्द्रं पितरश्च  
प्रधानदेवताः त्र्यम्बकमन्त्रेण<sup>१</sup> च शक्तितस्तिलहोमोऽधिक इति  
विशेषः । तत आज्यभागान्तेऽन्वाधानोक्तक्रमेण होमः । सिनीवाली-  
कुह्वोस्तु गो-वस्त्र-सुवर्ण-भू-क्षीराऽऽज्य-गुडान् दत्त्वा गो-भू-तिल-हिरण्या-  
ऽऽज्यवस्त्र-धान्य-गुड-रूप्य-लवणदानानि च दश कृत्वा होमः कार्य इति  
विशेषः । ततो बलिदानान्ते कलशोदकैः शतछिद्रेणाऽब्देवत्यमन्त्रैः पत्नी-  
शिशु-सहितोऽभिषिक्तो यजमान आज्यमवेक्ष्य पूर्णाहुतिं हुत्वा गुरवे  
धेनुं वासोयुग्मं ऋत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दत्त्वा स्वस्तिवाच्यकर्मेश्वरार्पणं  
कुर्यात् ।

इति कृष्णचतुर्दशीसिनीवालीकुहूशान्तिप्रयोगः ।

## अथ दर्शनजननशान्तिः ।

नारदः-अथाऽतो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता ।  
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं वक्ष्यामि नारदः ॥  
पुण्याहं वाचयित्वाऽऽदौ क्रतुसङ्कल्पपूर्वकम् ।  
कुण्डं वा मण्डलं कुर्यात्तद्देशे स्यापयेत् घटम् ॥  
मण्डलम् स्थण्डिलम् ।

तत्कुम्भे निक्षिपेद् गव्यं दधि-क्षीर-घृतादिकम् ।  
न्यग्रोधोदुम्बराऽश्वत्थाः सचूताः प्लक्षकस्तथा ॥  
एतेषां वृक्षमूलानां त्वचादीन् पल्लवांस्तथा ।  
पञ्चरत्नानि निक्षिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥  
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।  
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥  
आपो हि ष्ठे<sup>२</sup>ति तृचेनाऽथ कयानश्चित्र<sup>३</sup> इत्यृचा ।  
यत्किञ्चेदमृचा चैव समुद्रज्येष्ठ<sup>४</sup> इत्यृचा ॥

१. ऋ. सं. ५।४।३० । २. ऋ. सं. ७।६।५ । ३. ऋ. सं. ३।६।२४ ।

४. ऋ. सं. ५।४।१६ ।



अभिमन्त्र्योदकं पश्चादग्नेः पूर्वप्रदेशके ।  
 हारिद्रं रक्तकं चैव कृष्णं श्वेतं च जीरकम् ॥  
 एतेषां तण्डुलैश्चैव सर्वतोभद्रमुद्धरेत् ।  
 दर्शस्य देवतायाश्च सोम-सूर्यस्वरूपकम् ॥  
 प्रतिमां स्वर्णजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा ।  
 सर्वतोभद्रमध्ये तु स्थापयेद्दर्शदेवताः ॥  
 ग्रहवर्णं वस्त्रयुग्मं तद्वर्णं गन्धपुष्पकम् ।  
 आप्यायस्वेति मन्त्रेण सविता<sup>१</sup>पश्चात्तथैव च ॥  
 उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत् ।  
 कृत्वा वर्त्तिं प्रतिष्ठाप्य क्रतुसङ्कल्पमीदृशम् ॥  
 आयुरारोग्यसिद्धयर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।  
 पुत्रस्य दर्शजननदोषनिर्हरणाय च ॥  
 मातापित्रोः कुमारस्य सर्वारिष्टप्रशान्तये ।  
 तेषामायुः श्रियं चैव शान्तिहोमं करोम्यहम् ॥  
 समिधश्च चरुद्रव्यं क्रमेण जुहुयात्कृती ।  
 हुनेत्सवितृ<sup>२</sup>मन्त्रेण सोमो धेनुं च मन्त्रतः ॥  
 एतैर्मन्त्रैश्च प्रत्येकं हुनेदष्टोत्तरं शतम् ।  
 दर्शस्य देवताहोमं अष्टाविंशतिसंख्यया ॥  
 होममेवं तु कृत्वाऽथ कुर्याद्द्वाराऽभिषेचनम् ।  
 श्रीसूक्तमायुष्यसूक्तं च समुद्रज्येष्ठ इत्यृचा ॥  
 एतैर्मन्त्रैरभिषेकं मातापित्रोः शिशोस्तथा ।  
 ततः स्विष्टकृतं दद्याद्धोमशेषं समापयेत् ॥  
 हिरण्यं रजतं चैव कृष्णां धेनुं सदक्षिणाम् ।  
 अन्येभ्योऽपि यथाशक्त्या दातव्या दक्षिणा तथा ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेदत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम् ॥

इति दर्शजननशान्तिः ।

अत्र सिनीवालीकुहोर्दर्शो चोक्तयोः शान्त्योर्व्यवस्थोक्ता छन्दोग-  
 परिशिष्टभाष्ये 'चतुर्दश्या अन्त्योऽमायाश्चाऽष्टावि'ति नवप्रहराश्चन्द्र-  
 क्षयकालः ।



चतुर्दश्यष्टमे यामे क्षीणो भवति चन्द्रमाः ।

अमावास्याऽष्टमे यामे पुनः किल भवेदणुः ॥ इति वाक्यात् ।

अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागो<sup>१</sup> न कलावशिष्टः ।

तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नं एवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति ॥

इति च वाक्यात् । अत्र चतुर्दश्यन्त्यामाद्ययामयोरणुश्चन्द्रः शास्त्रस्य चक्षुषोर्वा गोचरो भवति, स कालो दृष्टचन्द्रत्वात् सिनीवाली । अमान्त्योपान्त्ययामयोः शास्त्रचक्षुषोरगोचर इति क्षीणश्चन्द्रः स कालः कुहूर्मध्यमाः पञ्चयामा दर्श इति व्यवस्थया शान्तिव्यवस्थेति ।

परे तु चतुर्दशीमात्रयुक्तेऽहोरात्रे वर्तिन्यमा सिनीवाली प्रतिपन्मात्रयुतेति कुहूः । वारत्रयस्पर्शिमध्यमाऽहोरात्रे वर्तिन्यमा दर्शः । तस्मिन् चतुर्दशीप्रतिपदोरभावेनोभयलक्षणानाक्रान्तत्वात् । तथा<sup>२</sup>ऽवमवती चामा दर्शः । केवलचतुर्दशी-केवलप्रतिपद्युक्तत्वाभावात् । अतस्त्रि-स्पर्शिन्यामवमत्यां वा सिनीवाली कुहूशान्तिप्राप्त्यभावाद् दर्शशान्ति-प्राप्तिरिति युक्तमाहुः ।

### अथ दर्शनजननशान्तिप्रयोगः

कर्त्ताऽस्य कुमारस्य कुमार्या वा दर्शनजन्मसूचितानिष्टनिवृत्त्यर्थं शान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचनाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात् । अथाऽऽचार्यः सर्षपविकिरणप्रोक्षणादि कृत्वा शुद्धभूमौ जलपूर्णं पञ्चगव्य-पल्लवत्वक्-रत्नयुतं वासोयुग्मवेष्टितं कुम्भं धान्योपरि संस्थाप्य सर्वे समुद्रा इति तीर्थान्यावाह्याऽऽपो हि ष्ठेति तृचेन कयानश्चित्र इत्यृचा यत्किञ्चेदमित्यृचा समुद्रज्येष्ठा इति तृचेन चाभिमन्त्र्य तन्नैऋत्यदेशे पञ्चरङ्गरञ्जितैस्तण्डुलैः सर्वतोभद्रं कृत्वा स्वर्णप्रतिमयोर्ये सत्यास इति पितॄन् तद्दक्षिणे रूप्यप्रतिमायामाप्यायस्वेति सोमं तदुत्तरे ताम्रप्रतिमायां सविता पश्चात्तादिति सूर्यं चावाह्य सम्पूज्य—

आयुरारोग्यसिद्धयर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।

तेषामायुः श्रिये चैव शान्तिहोमं करोम्यहम् ॥

इत्युक्त्वा तत्पश्चिमे कुण्डे स्थण्डिले वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य तदीशान्यां

१. ज्ञ-गे । २. ड-भवतां वा अमा दर्शः ।



ग्रहान् सम्पूज्याञ्वाधान आधारावाज्येनेत्युक्त्वा पितृन् समिच्चरुभ्या-  
मष्टाविंशतिवारं सोमं सूर्यं वाऽष्टोत्तरशतवारं शेषेणोत्पाद्याज्य-  
भागान्तेऽन्वाधानक्रमेण पूजामन्त्रैर्हुत्वा माता-पितृ-शिश्नून् हिरण्यवर्णा-  
मिति पञ्चदशर्चेनायुष्यं वर्चस्यमिति दशर्चेन समुद्रज्येष्ठा इत्यृचा च  
जलधारयाऽभिषिच्य स्विष्टकृदादि समापयेत् । यजमानो बलिदान-  
पूर्णाहुत्यन्ते हेम-रूप्य-कृष्णधेनुराचार्याय ऋत्विग्भ्यश्च यथाशक्ति  
दक्षिणां दत्त्वा विप्रान् संभोज्य स्वस्तिवाचनं कुर्यादिति दर्शशान्तिः ।

### अथ ज्येष्ठाशान्तिः

घटिकैका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम् ।  
तयोः सन्धिरिति ज्ञेयं शिशुगण्डं समीरितम् ॥  
प्रथमे च द्वितीये च ज्येष्ठर्क्षे च तृतीयके ।  
पादत्रये जातनरो ज्येष्ठोऽप्यत्र प्रजायते ॥  
ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य विनाशकः ।  
जायते नात्र सन्देहो दशाहाभ्यन्तरे तथा ॥  
ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम् ।  
तच्छान्तिं तस्य वक्ष्यामि गण्डदोषप्रशान्तये ॥  
सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ।  
सूतकान्ते तथा कुर्याज्ज्येष्ठाशान्तिं विधानतः ॥  
वज्राङ्कुशधरं देवम् ऐरावतगजान्वितम् ।  
कुर्याश्छिचीपतिं रम्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥  
कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षाद्धेनाथ पादतः ।  
तद्विधानं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥  
शालि-तण्डुलसम्पूर्णं कुम्भस्योपरि पूजयेत् ।  
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति मन्त्रेण वाग्यतः ॥  
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नाभिभक्ष्यनिवेदनैः ।  
पूजयेद्विधिना विप्र ! लोकपालगणान्वितम् ॥  
रक्तवस्त्रद्वयोपेतं पूजयेत् सुरनायकम् ।  
तत्र संस्थापयेत् कुम्भांश्चतुर्दिक्षु विशेषतः ॥  
तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं शतछिद्रसमन्वितम् ।



पुण्योदकसमायुक्तान् वस्त्रयुग्मेन वेष्टितान् ॥  
 कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान् पञ्चगव्यं समन्त्रकम् ।  
 पञ्चामृतं पञ्चरत्नं मृत्तिकाः पञ्चसंख्यकाः ॥  
 पञ्चवृक्षकषायांश्च पञ्चपल्लवकांस्तथा ।  
 सुवर्ण-कुश-दूर्वाश्च शतौषधिविनिक्षिपेत् ॥  
 पूजयेद्धारुणैर्मन्त्रैः कुम्भान् धीमान् प्रयत्नतः ।  
 त्वन्नो अग्ने<sup>१</sup> जपेदादौ स त्वन्नोऽपि द्वितीयकम् ॥  
 समुद्रज्येष्ठा<sup>२</sup> इति च इमं मे गङ्गे<sup>३</sup> चतुर्थकम् ।  
 पूजयेद्वस्त्रयुग्माढ्यैश्चतुरःकलशानपि ॥  
 जपं कुर्युः प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिर्द्विजोत्तमाः ।  
 आ नो<sup>४</sup> भद्रा जपं<sup>५</sup> चादौ भद्रा अग्ने<sup>६</sup> द्वितीयकम् ॥  
 इन्द्रसूक्तं रुद्रजाप्यं जपं मृत्युञ्जयं ततः ।  
 इत्थं सम्पूज्य देवेशं वरुणं कुम्भसंस्थितम् ॥  
 सुसङ्कल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत् ।  
 समिद्धिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं तथा ॥  
 सर्पिषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः ।  
 हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत<sup>७</sup> इन्द्रमयेति च ॥  
 तिलान् व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक् ।  
 भार्या-शिशु-समोपेतं यजमानं विशेषतः ॥  
 अभिषेकं प्रकुर्वीत सूक्तेर्वारुणसंज्ञितैः ।  
 समुद्रज्येष्ठादिभिर्मन्त्रैरिमं मे<sup>८</sup> वरुणस्तथा ॥  
 द्यौः शान्त्ये<sup>९</sup>त्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत् ।  
 अभिषेकनिवृत्तौ तु यजमानः समाहितः ॥  
 शुक्लाम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यादाज्यावलोकनम् ।  
 रूपं रूपेति<sup>१०</sup> मन्त्रेण चित्रं तच्चक्षुरेव<sup>११</sup> च ॥  
 देवतापुरतः स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम् ।  
 दद्याच्चाचमनं सम्यक् ताम्बूलाऽर्घ्यं तथैव च ॥  
 नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते !

१. ऋ. सं. ३।४।१२ । २. ऋ. सं. ५।४।१६ । ३. ऋ. सं. ८।३।६ ।  
 ४. ऋ. सं. १।६।१५ । ५. ड-जपेदादौ । ६. ऋ. सं. ८।२।१९ । ७. ऋ. सं. ४।३८ । ८. ऋ. सं. १।२।१९ । ९. ऋ. सं. ४।७।३३ । १०. ऋ. सं. १।८।७ ।  
 ११. ऋ. सं. ५।५।११ ।



गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये ॥  
 कार्यं तत्पूजकादीनां कारितं यत्फलं शुभम् ।  
 लब्ध्वा<sup>१</sup> तु तत्फलं सर्वं देवेन्द्राय समर्पयेत् ॥  
 आचार्याय च गां दद्यात् सुशीलां च पयस्विनीम् ।  
 रक्तवर्णां वस्त्रयुतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥  
 वस्त्रयुग्माभिधानां च यथाविभवसारतः ।  
 यक्ष-गन्धर्व-सिद्धैश्च पूजितोऽसि शचीपते ! ॥  
 दानेनाऽनेन देवेश ! गण्डदोषं विनाशय ।  
 अष्टोत्तरशतं संख्यां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥  
 तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।  
 इमां कृत्वा ज्येष्ठाशान्तिं यथाविध्युक्तमार्गतः ॥  
 गण्डदोषं विनिर्जित्य आयुष्मान् जायते नरः ।  
 इत्युक्तं वृद्धगार्ग्येण शौनकाय विशेषतः ॥  
 ज्येष्ठानक्षत्रसम्भूतगण्डदोषप्रशान्तये ।  
 अज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वैकल्याद्वा नरस्य च ॥  
 यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।

### अथ प्रयोगः

गोमुखप्रसवं कृत्वा अस्य शिशोज्येष्ठाजननसूचितसकलारिष्टनिर-  
 सनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शान्तिं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य, गणपति-  
 पूजन-पुण्याहवाचन-नान्दीश्राद्धाचार्यऋत्विक्चतुष्टयवरणानि कुर्यात् ।  
 तत आचार्यः सर्षपविकिरणभूमिप्रोक्षणे कृत्वा मही द्यौश्चित्यादि-विधिना  
 शालितण्डुलपूर्णं कुम्भं संस्थाप्य पूर्णपात्रोपरि हैमीमिन्द्रप्रतिमां इन्द्रा-  
 येन्दो मरुत्वत<sup>२</sup> इति मन्त्रेण रुक्तवस्त्रद्वयेन गन्धादिभिश्च वाग्यतः पूज-  
 येत् । तत इन्द्रभिन्नान् लौकपालान् समन्तादावाह्य पूजयेत् । ततः  
 पर्वादिदिक्षु चतुरः कुम्भान्मध्ये शतछिद्रं पुण्योदकवस्त्रमाल्ययुतं  
 संस्थाप्य दिक्कुम्भेषु पञ्चगव्य-पञ्चामृत-पञ्चरत्न-पञ्च-मृत्तिका-

१. ड-दोषोपशान्तये । २. ध क्ष र न अ द य-जप्त्वा । ३. ऋ. सं.  
 १।२।६ । ४. ऋ. सं. ७।१।४०, ज्ञ-इमं मे वरुण इति पश्चिमे तत्त्वाया-  
 मीत्युत्तरे ।



पञ्चवृक्षकषाय-पञ्चपल्लव-सुवर्ण-कुश-दूर्वा-शतौषधींश्च दत्त्वा पूर्व-  
कलशे त्वन्नो अग्न<sup>१</sup> इति स त्वन्नो अग्न इति दक्षिणे समुद्रज्येष्ठा<sup>२</sup>  
इति पश्चिमे इमं मे गङ्गे<sup>३</sup> इत्युत्तरे च वरुणमावाह्य वस्त्रपुष्पाद्यैः पूज-  
येत् । ततश्चत्वार ऋत्विजः आ नो भद्रा भद्रा<sup>४</sup> अग्ने पुरुषसूक्तं<sup>५</sup>  
कद्रुद्रायेति<sup>६</sup> सूक्तानि जपेयुः । आचार्यो मूलमन्त्रम् इन्द्रं विश्वा अवीवृध-  
मि<sup>७</sup>त्यष्टर्चम् इन्द्रसूक्तं रुद्रं मृत्युञ्जयं च जपेत् । ततोऽग्निं ग्रहांश्च  
प्रतिष्ठाप्याऽन्वादध्यात् ।

अत्र प्रधानमिन्द्रं पलाशसमिदाज्यचरुद्रव्यैरष्टशतसंख्ययाऽष्टसहस्र-  
संख्यया वा प्रजापतिं तिलद्रव्येणाऽष्टशतसंख्यया व्याहृतिभिः शेषेण  
स्विष्टकृतमित्यादिबल्यन्ते पूर्णाहुतिं पूर्णपात्रविमोक्तं च कृत्वा सभार्यं  
सशिशुं यजमानं वारुणैः सूक्तैः समुद्रज्येष्ठा<sup>८</sup> इमं मे वरुण<sup>९</sup> द्यौः शान्त्ये-  
त्यादिभिरभिषिञ्चेत् । ततो रूपं रूपमि<sup>१०</sup>त्याज्यमवलोक्य तत्पात्रं सद-  
क्षिणं ब्राह्मणाय दत्त्वा इन्द्रं सम्पूज्य—

नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते !

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये ॥

इत्यर्घ्यं दत्त्वाऽऽचार्यत्विगादिभ्यः श्रेयो गृहीत्वा इन्द्राय समर्प्याऽऽचा-  
र्याय पयस्विनीं गां रक्तवस्त्रद्वयं च दत्त्वोत्तरपूजान्ते इन्द्रं विसृज्य  
प्रतिमाम्—

यक्ष-गन्धर्व-सिद्धैश्च पूजितोऽसि शचीपते !

दानेनाऽनेन देवेश ! गण्डदोषं विनाशय ॥

अज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वैकल्याद्वा धनस्य च ।

यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

इति मन्त्रेण आचार्यायैव दत्त्वा ऋत्विग्भ्योऽपि यथाशक्ति दक्षिणां  
दत्त्वाऽग्निं विसृज्याऽष्टशतं ब्राह्मणान् भोजयेत् ।

इति ज्येष्ठाशान्तिः

१. ऋ. सं. ३।४।१३ । २. ऋ. सं. ५।४।१६ । ३. ऋ. सं. ८।३।६ । ४. ऋ.  
सं. १।६।१५ । ५. ऋ. सं. ८।४।७ । ६. ऋ. सं. १।३।२६ । ७. ऋ. १।१।२६ ।  
८. ऋ. सं. ५।४।१६ । ९. ऋ. सं. १।२।१९ । १०. ऋ. सं. ४।७।३३ ।



## अथ मूलशान्तिः

शौनकः— अथास्तः सम्प्रवक्ष्यामि मूलजातहिताय वै ।  
 माता-पित्रोर्धनस्यापि कुलज्ञातिहिताय च ॥  
 त्यागो वा मूलजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम् ।  
 अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते ॥  
 अदर्शनाद्वाऽपि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् ।  
 एवं दुहितरि प्रोक्तं मूलजायां फलं बुधैः ॥

कन्यायां तु विशेषः—

न बाला हन्ति मूलर्क्षे पितरं मातरं तथा ।  
 मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम् ॥  
 माहेन्द्रजाऽग्रजं हन्ति देवरं च द्विदैवजा ।  
 व्याल आश्लेषा । माहेन्द्रं ज्येष्ठा । द्विदैवं विशाखा ।  
 शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तर्हि दोषो न कश्चन ॥ इति ।  
 मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमजपं ततः ।  
 जातस्य द्वादशाहे च जन्मर्क्षे वा शुभे दिने ॥  
 समाष्टके द्वादशाब्दे कुर्याच्छान्तिकमादरात् ।  
 यदैव शान्तिकं कुर्यात् कर्म तत्र प्रचक्ष्महे ॥  
 संस्कृते पुण्यदेशे तु मण्डपं कारयेद् बुधः ।  
 पुण्यर्गिभर्मन्त्रितैस्तोयैः प्रोक्षितायां क्षितौ ततः ॥  
 तत्रोदकुम्भं सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणविवर्जितम् ।  
 सुवर्तुलं च निर्णिक्तं पूरयेन्निर्मलाम्भसा ॥  
 वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा ।  
 कूर्चं हेमसमायुक्तं चूतपल्लवसंयुतम् ॥  
 स्वस्तिकोपरि विन्यस्य सक्षीरद्रुमपल्लवैः ।  
 द्रोणं व्रीहींश्च निक्षिप्य ईशाने च निधापयेत् ॥  
 पञ्चरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम् ।  
 अर्चितं पुष्पगन्धाद्यैः श्रीरुद्रं च पृथग् जपेत् ॥  
 षडङ्गसहितं सम्यक् जपेद्वै रुद्रसंख्यया ।  
 बहवृचा रुद्रसूक्तैर्वा छन्दोगा रुद्रसामभिः ॥  
 सूक्तानि सामानि च त्रीण्येव । कपिञ्जलन्यायात् ।  
 एकादशाष्टत्रिद्व्येकसंख्यया शक्तितो जपेत् ।



तत्राऽप्रतिरथं सूक्तं शतरुद्रानुवाककम् ॥  
 रुद्रानुवाकं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशञ्जपेत् ।  
 त्रैयम्बकं जपेत्सम्यक् अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥  
 एकवारं तथा चाऽपि<sup>१</sup> पावमानीः<sup>२</sup> स्पृशञ्जपेत् ।  
 जपस्य पञ्चकुम्भाः स्युर्द्वयं वा तदलाभतः ॥  
 श्रीरुद्रस्यैककुम्भश्च सर्वसूक्तानि तत्र तु ।  
 तथाऽन्यं च शुभं कुम्भं पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ॥  
 चतुःप्रस्रवणं कुर्यात्पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेत् ॥

अत्राऽयं साम्प्रदायिकोऽर्थः । आद्यपक्षे षट् कुम्भाः । एको रुद्रस्य तस्मिन् शतरुद्रियं रुद्रसूक्तानि सामानि वा जप्यानि । अभिषेकार्थं पञ्च कुम्भाः । तत्र पूर्वोक्तकुम्भचतुष्टये तत्राऽप्रतिरथमित्यादिना क्रमात्सूक्तचतुष्टयविधिः । मध्ये च त्रैयम्बकमन्त्रपावमानीजपविधिः । एवं पञ्चकुम्भाशक्तौ चतुःप्रस्रवण एक एव । द्वयमिति द्वित्वं तु रुद्रकुम्भमादाय । अत एव श्रीरुद्रस्येति श्लोकार्द्धेन रुद्रकुम्भ एव पूर्वोक्तो द्वित्वसंख्यापूरणायानूद्यते । चतुःप्रस्रवण एव तु पञ्चकुम्भस्थाने विधीयते । एवं पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेदिति पञ्चवक्त्रतोक्तिरपि पञ्चकुम्भस्थानापत्त्या सङ्गच्छते ।

वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात् पूरयेत्तीर्थवारिणा ।  
 पञ्चरत्नसमायुक्तमा<sup>३</sup> म्रपल्लवसंयुतम् ॥  
 गजाश्वरथ्यावल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।  
 राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥  
 कुम्भस्य नैऋते देशे होमदेशं प्रकल्पयेत् ।  
 गोमयालेपिते देशे कुर्यात् स्थण्डिलमुत्तमम् ॥  
 कृत्वाऽग्निमुखपर्यन्तमुल्लेखादि स्वशक्तितः ।  
 पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥  
 नक्षत्रदेवतारूपं सुवर्णेन प्रयत्नतः ।  
 निष्क्रमात्रेण वाऽर्द्धेन पादेनाऽथ स्वशक्तितः ॥  
 प्रतिमां लक्षणोपेतां कारयित्वा विचक्षणः ।  
 यद्वा मूलं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ॥

१. ध क्ष ई भ क ड न य द-वापि । २. ज-नीं, ध र-नी । ३. ज-  
 दायता ।



मूलं मूलाकारं मूल्यमिति क्वचित्पाठः । तदा प्रतिमामूल्यमित्यर्थः ।

सुवर्णं सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनलः ।

सर्वदेवात्मको विप्रः सर्वदेवमयो हरिः ॥

संस्मरेन्निर्ऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम् ।

रक्षोधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥

प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं प्रकल्पयेत् ।

पङ्कजं कारयेद् भूमौ रक्ताभैर्त्रीहितण्डुलैः ॥

चतुर्विंशदलोपेतं शुक्लैर्वा कर्णिकान्वितम् ।

तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्वर्णं वा रौप्यमृन्मयम् ॥

शुद्धवस्त्रेण सञ्छाद्य<sup>१</sup> तत्र मूलानि निक्षिपेत् ।

मूलानि शतमूलानि । तानि च वक्ष्यन्ते ।

स्वयमुत्पाटयेत्प्राज्ञो मूलानां च शतं पिता ।

मङ्गल्याश्च पवित्राश्च ओषध्यः कथयाम्यहम् ॥

लक्ष्मणा शतमूला च शिरीषो वेतसस्तथा ।

सहाका श्वेतमूला च विष्णुक्रान्ताऽथ शङ्खिनी ॥

सर्पाक्षी मीननेत्रा च पुत्रयाची<sup>२</sup> कृताञ्जली ।

पालाशो बिल्वकश्चैव रोचना चन्दनद्वयम् ॥

कृष्ण<sup>३</sup>भांसी मुरोशीरं बालकं च तथाऽऽमली<sup>४</sup> ।

गोजिह्वा तुलसी ईर्ष्या शतपुष्पी सलाङ्गली ॥

ब्रह्मदण्डी द्रोणपुष्पी प्रियङ्गुः सितसर्षपाः ।

पिप्पली काकजङ्घा च त्रायमाणा हुहूस्तथा ॥

ज्योतिष्मती च गन्धारी निर्गन्धा पूर्णकोशिका ।

भगक्षमा सुभद्रा च गुडूची सेन्द्रवारुणी ॥

अलम्बुकाऽरुदन्ती<sup>५</sup> च कदली केतकी तथा<sup>६</sup> ।

गोक्षुरं शतपर्वा च अरिष्टिकाऽपराजिता ॥

छिन्नरुद्धा शतपर्वा निकुम्भा च सुवर्चला ।

अश्वगन्धा हस्तिकर्णा हरिद्राद्वितयं तथा ॥

१. ड-संस्थाप्य । २. ज-पारी, ध-पुष्पयावी, र अ-पुत्रयावी । ३. ज-  
कृष्णा । ४. ख र य द इ क-मलाः, ड-तमालकी । ५. क्ष ड-रिदन्ती ।  
६. क्ष-स्तथा ।



उष्ट्रवो मधुकारश्च अश्वत्थो वकुलस्तथा ।  
 सर्पक्षीरा ह्यपामार्गो मन्दारश्चाऽतिमुत्तकः ॥  
 मालती स्वर्णपुष्पा च श्रीपर्णी श्रीफलं तथा ।  
 दर्भमूलं करवीरं मदयन्ती विकङ्कतः ॥  
 पाटलासुरदारश्च अर्द्धसूदनिकस्तथा ।  
 फलं मन्मथवृक्षस्य पलाशस्य च पल्लवाः ॥  
 रास्नानदीवृक्षमूलं सुरदारुविदारिका ।  
 श्वेतवीर्या श्वेतपाका नीलोत्पलं तथैव च ॥  
 नागकेशरमन्दारी<sup>१</sup> कुमारी चैव निक्षिपेत् ।  
 तीर्थाम्बु पञ्चगव्यं च सर्वौषध्यश्च काञ्चनम् ॥  
 यथासम्भवतो वाऽपि ग्राह्यं मूलं शतं शुभम् ।  
<sup>२</sup>वीरत्वचा समेतं च शतच्छिद्रे घटे न्यसेत् ॥

शतमूला शतावरी । वेतसो वज्जुलः । सहका सहदेवी । श्वेतमूला पुनर्नवा । मीननेत्रा मत्स्याक्षी । पुत्रपारा पुत्रजीवा । कृताञ्जली अञ्जलिनी, 'हाथा जोडा'<sup>३</sup> इति प्रसिद्धा । बिल्वको बिल्वः । चन्दन-द्वयं श्वेतं पीतं च । आमला भूम्यामलकी । गोजिह्वा गजजिभीति<sup>४</sup> प्रसिद्धा । लाङ्गली कलिहारीति प्रसिद्धा । ब्रह्मदण्डी अधःपुष्पा ।<sup>५</sup> द्रोणपुष्पी करम्बुकः । काकजङ्घा काकाङ्गी । ज्योतिष्मती कङ्गुला ।<sup>६</sup> गान्धारी देवगान्धारी । पूर्णकौशिका कोशातकी । भगक्षमा शिग्रुः । सुभद्रा सारिका । अलम्बुका तुम्बी । विशाखपर्वा वचा । अरिष्टका नागबला । छिन्नरुहा पिण्डगुडूची । शतपत्रा कमलिनी । निकुम्भा दन्तीभेदः । सुवर्चला सूर्यभक्ता । हस्तिकर्णा एरण्डः । उष्ट्रवः पीलुः । मधुकारः मधूकः । सर्जरा बीजकः । अतिमुत्तको माधवी । मालती जाती । स्वर्णपुष्पा कुशली । श्रीफलम् बिल्वम् । मदयन्ती यूथिका । विकङ्कतः स्रुववृक्षः । अर्द्धसूदनिका पालव्या<sup>७</sup> । मन्मथवृक्षः आम्रः । सुरदारुर्देवदारुः । विदारिका भूकूष्माण्डी । श्वेतवीर्या गिरिकर्णी । श्वेतपाका गुञ्जा । शेषाणि स्पष्टानि ।

विष्णुक्रान्ता सहदेवी तुलसी तु शतावरी ।

मूलानीमानि गृह्णीयाच्छताऽलाभे विशेषतः ॥

१. ज-शरमिन्दरी । २. क्ष ड-चीर, इ य द-क्षीर । ३. ज-होडा ।

४. ज-लिभीति । ५. ज-पुष्पी । ६. ज-का । ७. क्ष-लाढ़या, अ इ य द ख ध-लंघा ।



स्थापयेत्कर्णिकामध्ये वस्त्रगन्धाद्यलङ्कृतम् ।  
 १कूर्चं हेमजलोपेतं कुङ्कुमौषधिसंयुतम् ॥  
 कुम्भोपरि न्यसेद्विद्वान् मूलं नक्षत्रदैवतम् ।  
 अधि-प्रत्यधिदेवौ च दक्षिणोत्तरदेशयोः ॥  
 अधिदेवं यजेदादौ ज्येष्ठानक्षत्रदैवतम् ।  
 उत्तराषाढऋक्षादि अनुराधान्तमर्चयेत् ॥  
 ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं पूजयेत् स्व-स्वनामतः ।  
 स्वलिङ्गोक्तैश्च मन्त्रैश्च प्रधानादीन् प्रपूजयेत् ॥  
 पञ्चामृतेन संस्नाप्य<sup>२</sup> आवाह्याऽथ समर्चयेत् ।  
 उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥  
 रक्तचन्दनगन्धाढ्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः ।  
 मेषशृङ्गादि-धूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च ॥  
 सुरापोलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यैरोदनादिभिः ।  
 मत्स्य-मांस-सुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् ॥  
 सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैन्धवमिश्रितम् ।  
 पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् ॥  
 उक्तगन्धाद्यलाभे तु यथालाभं समर्चयेत् ।  
 पुष्पान्तं तु समभ्यर्च्य होमं कुर्याद्यथोदितम् ॥  
 निर्वापप्रोक्षणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि ।  
 हविर्गृहीत्वा विधिवन्तैर्ऋत्यैव ऋचा हुनेत् ॥  
 मोषुणः<sup>३</sup> परापरेति या ते देवीति वा पुनः ।  
 पायसं घृतसम्मिश्रं हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥  
 समिदाज्य-चरुन् पश्चाच्छान्तितः संख्यया हुनेत् ।  
 अधिदेवतयोश्चापि जुहुयात् स्व-स्वमन्त्रतः ॥  
 चतुर्थ्यन्तेर्नमोऽन्तैश्च स्वाहान्तैः स्व-स्वमन्त्रकैः ।  
 नक्षत्रदेवताभ्यश्च पायसेन तु होमयेत् ॥  
 ४कृष्णुष्वेति पञ्चदशभिर्जुहुयात्कृशरं ततः ।  
 गायत्र्या<sup>५</sup> जातवेदसे<sup>६</sup> त्रैयम्बकमि<sup>७</sup>ति क्रमात् ॥

१. ज-कूर्म, ड-होम । २. ज-स्थाप्य । ३. ऋ. सं. १।३।१६ ।

४. ऋ. सं. ३।४।२३ । ५. ऋ. सं. ३।४।१० । ६. ऋ. सं. १।७।७ । ७. ऋ. सं. ५।४।३० ।



सीरा युञ्जन्ति<sup>१</sup> तामग्निं<sup>२</sup> वास्तोष्पत्यग्निमेव च ।  
 क्षेत्रस्य पतिना<sup>३</sup> गृणाना<sup>४</sup> मग्निं दूतं<sup>५</sup> तथैव च ॥  
 श्रीसूक्तेन तथा विद्वान् समिदाज्यचरून् क्रमात् ।  
 अष्टोत्तरशतैर्वाऽपि अष्टाविंशतिभिः क्रमात् ॥  
 अष्टाष्टसंख्यया वाऽपि जुहुयाच्छक्तितो बुधः ।  
 त्वन्नः सोमेन पायसं जुहुयात्तु त्रयोदश ॥  
 चतुर्गृहीतमाज्यं च या ते रुद्रेति मन्त्रतः ।  
 सुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृतिभिः क्रमात् ॥  
 हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चात्प्रायश्चित्ताहुतिर्हुनेत् ।  
 आचार्यो यजमानो वा अग्नौ पूर्णाहुतिं हुनेत् ॥  
<sup>६</sup>समुद्रादिति सूक्तेन प्राजापत्यऋचा तथा ।  
 पूर्णादिवि सप्त ते एतैः पूर्णाहुतिं हुनेत् ॥  
 होमशेषं समाप्याऽथ वह्निमारोपयेद्बुधः ।  
 कुम्भाऽभिमन्त्रणं कुर्यादक्षिणेनाऽभिमर्शयेत् ॥  
 मृत्युप्रशमनार्थाय जपेत्त्रैयम्बकं शतम् ।  
 रुद्रकुम्भोक्तमार्गेण रुद्रमन्त्रं स्पृशन् जपेत् ॥  
 धूपं दीपं च नैवेद्यं कुम्भयुग्मे निवेदयेत् ।  
 प्रसादयेत्ततो देवमभिषेकार्थमादरात् ॥  
 तस्मिन् काले गृहातिथ्यं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।  
 पृथक् प्रशस्तं तेनैव नक्षत्रेष्टया सहैव च ॥  
 अभिषेकविधिं वक्ष्ये पूर्वाचार्यैरुदाहृतम् ।  
 भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः ।  
 दारपुत्रसमेतस्य कुर्युः सर्वेऽभिषेचनम् ॥  
 अक्षीभ्यामि<sup>७</sup>ति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ।  
 आपो हि ऽष्ठेति नवभिर्यत इन्द्रद्वयेन<sup>८</sup> च ॥  
 सहस्राक्षतृचेनाऽपि देवस्य त्वेति मन्त्रकैः ।  
 शिवसङ्कल्पमन्त्रैश्च वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रकैः ॥

१. ऋ. सं. ८।५।१९ । २. ऋ. सं. ५।४।२१ । ३. ऋ. सं. ३।८।९ ।  
 ४. ऋ. सं. ३।४।११ । ५. ऋ. सं. १।१।२२ । ६. ऋ. सं. ३।८।१० ।  
 ७. ऋ. सं. ८।८।२१ । ८. ऋ. सं. ७।६।५ । ९. ऋ. सं. ६।४।३८ ।



योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ।  
 मूलजातशिशोर्दोषं माता-पित्रोर्व्यपोहतु ॥  
 योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुङ् मेषवाहनः ।  
 सप्तजिह्वः स देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु ॥  
 योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मो महिषवाहनः ।  
 मूलजातशिशोर्दोषं व्यपोहतु यमस्तथा ॥  
 योऽसौ खड्गधरो देवो निऋती राक्षसाधिपः ।  
 प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शान्तिदः ॥  
 योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः ।  
 नक्रवाहः प्रचेताह्वो मूलोत्थाघं व्यपोहतु ॥  
 योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः ।  
 प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गण्डान्तसम्भवम् ॥  
 योऽसौ निधिपतिर्देवो गदाभृन्नरवाहनः ।  
 माता-पित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु ॥  
 योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः ।  
 आश्लेषा-मूल-गण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु ॥  
 विघ्नेशः क्षेत्रपो देवो पिनाकी वृषवाहनः ।  
 आश्लेषा-मूल-गण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु ॥  
 सर्वदोषप्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः ।  
 तच्छंयोरषिभेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम् ॥  
 सर्वकामप्रदं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।  
 वस्त्रान्तरितकुम्भाभ्यां पश्चात्तु तर्पयेद् बुधः ॥  
 ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।  
 यजमानो दक्षिणाभिस्तोषयेद्दृत्विगादिकान् ॥  
 धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् ।  
 निऋतिप्रतिमां वस्त्रं कुम्भं हेम च दापयेत् ॥  
 ग्रहार्थवस्त्रप्रतिमां तत्तद्गो-भूश्च दापयेत् ।

ग्रहहोतृषु दापयेदिति क्वचित्पाठः ।

श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनङ्वान् प्रयत्नतः ।  
 तत्कुम्भवस्त्रप्रतिमां तस्मै दद्यात् प्रयत्नतः ॥



इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यः शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥  
 उक्ताऽलाभे ततो दद्यादाचार्य-ब्रह्म-ऋत्विजाम् ॥  
 तत्तन्मूल्यं प्रदातव्यं शक्त्या वाऽथ प्रदापयेत् ।  
 आचार्याय च यद्दत्तं तदद्धं ब्रह्मणे भवेत् ॥  
 सदस्याय ब्रह्मणोऽद्धं ऋत्विग्भ्यश्च तदद्धकम् ॥  
 गृह्णीयादाशिषस्तेभ्यः प्रणम्याऽथ क्षमापयेत् ॥  
 दद्यादन्नं पायसादि ब्राह्मणान्भोजयेच्छतम् ।  
 अलाभे सति पञ्चाशद्दशकं तदभावतः ॥  
 सर्वशान्तेश्च पठनं ब्राह्मणैराशिषस्तथा ।  
 गृह्य क्षमापयेद्विप्रान् निऋतिः प्रीयतामिति ॥  
 विधाने चरितेऽस्मिस्तु ततो शान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।  
 गण्डान्तेष्वेवमेवं स्यात्पुष्पाद्येष्वेवमेव तु ॥  
 समाष्टके द्वादशाहे कुर्याद्वै शान्तिमादरात् ॥

### अथ मूलाश्लेषाशान्त्योः प्रयोगः

तत्र कर्तोक्तकाले मासपक्षाद्युल्लिख्य 'ममाऽस्य शिशोः कुमार्या वा मूलाद्यपादादिष्वाश्लेषायां वा जन्मना सूचितपित्राद्यरिष्टशान्त्यर्थं शान्तिं करिष्ये' इत्युक्त्वा गणेशपूजन-स्वस्तिवाचन-मातृकापूजनाभ्युदयिकानि कृत्वाऽऽचार्यब्रह्मसदस्यान् ऋत्विजश्चाष्टौ षट् चतुरो वा वृत्वा यथा-विभवमर्चयेत् । आचार्य 'आचार्यकर्म करिष्य' इत्युक्त्वा यदत्र संस्थितमिति सर्षपान्विकीर्याऽऽपो हि<sup>१</sup> ष्ठेत्यादिभिर्भुवं प्रोक्ष्यैशान्यां मही<sup>२</sup> द्यौरिति स्पृष्ट्वौषधयः<sup>३</sup> समिति द्रोणपरिमितं ब्रीह्यादि क्षिप्त्वा आकलशेष्विति<sup>४</sup> रुद्रकुम्भं संस्थाप्येमं मे 'गङ्गा' इत्युदकेनापूर्य गन्धद्वारामिति गन्धं या ओषधीरि<sup>५</sup>त्यौषधीरोषधयः<sup>६</sup> समिति यवान् काण्डादिति दूर्वा अश्वत्थे व<sup>७</sup> इति पञ्च पल्लवान् रुवती भीम<sup>८</sup> इति पञ्च त्वचः, स्योना पृथिवीति<sup>९</sup> सप्त मृदो याः फलिनीरिति<sup>१०</sup> फलं स हि रत्नानीति<sup>११</sup> पञ्च रत्नानि हिरण्यरूप<sup>१२</sup> इति हिरण्यं गायत्र्या गोमूत्रं

१. ऋ. सं. ७।६।५ । २. ऋ. सं. १।२।६ । ३. ऋ. सं. ८।५।११ । ४. ऋ. सं. ६।८।७ । ५. ऋ. सं. ८।३।६ । ६. ऋ. सं. ८।५।८ । ७. ऋ. सं. ८।५।११ । ८. ऋ. सं. ७।२।२४ । ९. ऋ. सं. ८।५।८ । १०. ऋ. सं. १।२।६ । ११. ऋ. सं. ८।५।१० । १२. ऋ. सं. ४।४।२५ । १३. ऋ. सं. २।७।२३ ।



पुनर्मनेति गोमयमाप्यायस्वेति<sup>१</sup> पयः दधिक्राव्ण<sup>२</sup> इति दधि तेजोसी-  
 त्याज्यं देवस्य त्वेति कौशं कूर्चं मधुवातेति मधु स्वादुरिति शर्करां  
 क्षिप्त्वा युवा सुवासा<sup>३</sup> इति वस्त्रेण सूत्रेण वा कुम्भकण्ठमावेष्ट्य  
 पूर्णाद्विरिति पूर्णपात्रेण पिधाय ततः प्रागुदग्वा चतुर्दिक्षु चतुरः कुम्भान्  
 मध्ये चैकं कुम्भं प्रत्येकं मन्त्रावृत्त्या पदार्थानुसमयेन जपार्थं संस्थाप्य  
 रुद्रकुम्भे सौवर्णप्रतिमायां त्र्यम्बकं वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् रुद्रावाहने  
 विनियोगः । त्र्यम्बकमिति<sup>४</sup> रुद्रमावाह्य पूजयेत् । ततो रुद्रकुम्भं  
 स्पृष्ट्वैकत्विक् याजुषश्चेद्रुद्रैकादशिनीं बह्वृचश्चेत् त्रीणि रुद्रसूक्तानि  
 छन्दोगश्चेद्रुद्रसामानि जपेत् । सूक्तसाम्नामेकद्वित्र्यैकादशावृत्तिः शक्तितो  
 ज्ञेया । कद्रुद्राय घोरः कण्वो रुद्रो गायत्री । इमा रुद्राय कुत्सरुद्र-आद्या  
 नव जगत्योऽन्तेऽनुष्टुभौ आ ते पितर्गृत्समदो रुद्रस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः ।  
 सामानि तु<sup>५</sup> आ वो राजानं वामदेवो रुद्रस्त्रिष्टुप् तमुष्टुहि भौमोऽत्री  
 रुद्रस्त्रिष्टुप् भुवनस्य पितरमृजिश्चरुद्रस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । ततो-  
 ऽन्य ऋत्विक् जपार्थं कुम्भपञ्चके प्राक् क्रमेण जपेत् । आशुः शिशानेति  
 त्रयोदशर्चस्येन्द्रोऽप्रतिरथ ऋषिरिन्द्रो<sup>६</sup> देवता चतुर्थ्या बृहस्पतिस्त्रिष्टुप्  
 जपे विनियोगः । त्वमग्ने रुद्र इत्यनुवाकस्य हव्यवाट् रुद्रो जगती जपे  
 विनियोगः । त्वमग्ने वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । रक्षोहण-  
 मिति पञ्चविंशर्चस्याङ्गिरसः वायुरग्निस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । ततो  
 मध्यकुम्भे जपेत् त्र्यम्बकं वसिष्ठोऽनुष्टुप् जपे विनियोगः । अत्रैव  
 पवमानमपि सकृज्जपेत् । एवं षट्कुम्भाशक्तौ रुद्रकुम्भं चतुःप्रस्रवणं  
 चेति कुम्भद्वयं संस्थाप्य रुद्रैकादशिन्यादि रुद्रकुम्भे जप्त्वाऽप्रतिरथा-  
 दीनि चत्वारि प्रस्रवणेषु त्र्यम्बकमन्त्रं पावमानीश्च मध्यमुखे जपेत् ।  
 अथाचार्यो रुद्रकुम्भान्नैर्ऋत्ये स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य तदीशान्यां नव-  
 ग्रहस्थापनं कृत्वाऽन्वादध्यात् । तद्यथा । समिद्ध्वयमादायाऽस्यां मूल-  
 शान्तौ देवतापरिग्रहार्थमन्वाधास्येऽस्मिन्नन्वाहितेऽग्नावित्यादि चक्षुषी  
 आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा नवग्रहानधिदेवताप्रत्यधिदेवता-लोकपालान् विना-  
 यकादींश्च प्रत्येकममुकसंख्यया समिच्चवर्ज्यैर्निऋतिं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तर-  
 शतसंख्यया इन्द्रमपश्च प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यया घृताक्तपायस-समि-  
 दाज्यचरुभिर्विश्वेदेवाद्याश्चतुर्विंशति-ऋक्षदेवता अष्टाष्टसंख्यया पाय-  
 सेन रक्षोहणं कृणुष्वेति पञ्चदशभिः कृसरान्नेन सवितारं दुर्गां जात-

१. ऋ. सं. १।६।२२ । २. ऋ. सं. ३।७।१३ । ३. ऋ. सं. ३।१।३ ।

४. ऋ. सं. ५।४।३० । ५. ज्ञ-ति । ६. ड-रुद्रो ।



वेदाग्निं रुद्रं ऋत्विक् श्रुतिं दुर्गां वास्तोष्पतिमग्निं क्षेत्राधिपतिं मित्रा-  
वरुणौ अग्निमेताश्चाऽऽष्टाऽष्टसंख्यया कृसरान्नेन श्रियं तामग्निवर्णा-  
मिति पञ्चदशभिः प्रत्यृचमष्टसंख्यया समिदाज्यचरुभिः सोमं त्रयोदश-  
वारं पायसेन रुद्रं चतुर्गृहीतेनाज्येन अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं बृहस्प-  
तिमिन्द्रं विश्वान्देवान्महाव्याहृतिभिराज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि  
सद्यो यक्ष्य इत्यन्तमुक्त्वा समस्तव्याहृतिभिः समिद्वयमग्नावादध्यात् ।  
आश्लेषाशान्तौ तु सर्पप्रधानदेवतामधिदेवतां बृहस्पतिं प्रत्यधिदेवतान्  
पितॄन् भगादित्याद्यन्तर्क्षदेवताश्चेति विशेषः । ततः परिसमूहनादिपूर्ण-  
पात्रनिधानान्तं कृत्वाऽग्नेः प्रागुदग्वा रक्तैः शुक्लैर्वा तण्डुलैश्चतुर्विंशदलं  
पद्मं कृत्वा तत्र प्राग्वत्कुम्भं संस्थाप्य तस्मिन् या ओषधीरिति<sup>१</sup> शत-  
मूलानि तदलाभे विष्णुक्रान्ता-सहदेवी-तुलसी-शतावरी-कुशमूलानि  
क्षिप्त्वा पूर्णपात्रं निधाय तत्र साष्टदलं वासो वितत्य तत्कर्णिकायां  
निष्कं तदद्वैमितां निऋतिप्रतिमामग्न्युत्तारणपूर्वकं पञ्चामृतस्नापितां  
मोषुणो घोरः कण्वो निऋतिर्गायत्री मोषुण इति संस्थाप्य—

संस्मरेन्निऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम् ।

रक्षोधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥

इति ध्यात्वा । तदक्षिणत इन्द्रं वो मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्रीतीन्द्रस्य  
तदुत्तरतश्चाऽप्सु मे मेधातिथिरापोऽनुष्टुबित्यपां च सौवर्णप्रतिमे  
संस्थाप्य पर्दार्यानुसमयेन स्वस्वमन्त्रैस्ताः पूजयेत् । तत्र वस्त्रयुग्मम्,  
रक्तचन्दनम्, कृष्णपुष्पाणि, मेषशृङ्गस्य धूपः, आज्यस्य दीपः, पोलिको-  
दनादि नैवेद्यं, ब्राह्मणानां सुरास्थाने सैन्धवमिश्रं क्षीरं मांसस्थाने  
लवणयुक्तं पायसम् । क्षत्रियादीनां तु मुख्यमेव । ततः चतुर्विंशदलेषु  
प्रागादितो विश्वेदेवाः, विष्णुः, वसवः, वरुणः, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्यः,  
पूषा, अश्विनौ, यमः, अग्निः, प्रजापतिः, सोमः, रुद्रः, अदितिः, बृह-  
स्पतिः, सर्पः, पितरः, भगः, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायुः, इन्द्राग्नी,  
मित्र इत्येताश्चतुर्थ्यन्तनमोऽन्तैर्नामभिः क्रमेणाऽऽवाह्य पूजयेत् ।  
आश्लेषाशान्तौ तु सर्पप्रतिमां 'नमोऽस्तु सर्पेभ्य' इत्यावाह्य—

सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विभुजः पीतवस्त्रकः ।

फलकासिधरस्तीक्ष्णो दिव्याभरणभूषितः ॥

इति ध्यात्वा । तदक्षिणतो बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुबिति



बृहस्पतिम् । तदुत्तरतश्चोदीरतां शङ्खः स्वधा त्रिष्टुबिति पितृनावाह्य  
चतुर्विंशतिदलेषु प्रागादितो भगाद्यदित्यन्तर्क्षदेवता आवाह्य पूजयेत् ।  
ततोऽन्वाधानक्रमेण पायस-चरु-कृसरान् श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्तं कृत्वा  
यजमानेन सर्वदेवतोद्देशेन द्रव्ये त्यक्ते सत्त्विगन्वाधानोक्तक्रमेणर्क्षदेवतां  
तत्तन्मन्त्रैर्हुत्वा रक्षोहाद्यान् वक्ष्यमाणर्गिभर्जुहुयात् । ताश्च, कृणुष्वेति  
पञ्चदशर्चस्य वामदेवो रक्षोहा त्रिष्टुप् कृसरहोमे विनियोगः । एवं  
सर्वत्र । गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री । जातवेदसे कश्यपो दुर्गा  
त्रिष्टुप् । त्र्यम्बकं वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् । सीरा युञ्जन्ती बुध ऋत्विक्  
श्रुतिर्गायत्री । तामग्निवर्णां सौभरिदुर्गा त्रिष्टुप् । वास्तोष्पते वसिष्ठो  
वास्तोष्पतिस्त्रिष्टुप् । अग्ने नयागस्त्योऽग्निस्त्रिष्टुप् । क्षेत्रस्य वामदेवः  
क्षेत्रपालोऽनुष्टुप् । गृणाना जमदग्निमित्रावरुणौ गायत्री । अग्नि दूतं  
काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री । हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्चस्य कर्द्द-  
मानन्दचिकिलतेन्दिरासुता ऋषयः श्रीदेवता आद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः तुर्या  
प्रस्तारपङ्क्तिः पञ्चमी-षष्ठ्यौ त्रिष्टुभौ ततोऽष्टावनुष्टुभावन्त्या  
प्रस्तारपङ्क्तिः प्रत्यृचं समिदाज्यचरुहोमे विनियोगः । त्वन्नः सोमेति  
त्रयोदशर्चस्य प्रगाथः सोमस्त्रिष्टुप् पायसहोमे विनियोगः । या ते रुद्रेति  
कश्यपो रुद्रस्वराडनुष्टुप् चतुर्गृहीताज्यहोमे विनियोगः । सप्तमहाव्या-  
हृतीनां विश्वामित्रादय ऋषयोऽग्न्यादयो देवताः । गायत्र्यादीनि छन्दांसि  
आज्यहोमे विनियोगः । एवं हुत्वा स्विष्टकृदादिप्रायश्चित्ताहुत्यन्तं  
कृत्वा लोकपाल-नवग्रह-विनायकादिभ्यो निऋतीन्द्राद्भ्यो रुद्रक्षेत्र-  
पालयोश्च बलीन् दत्त्वा पूर्णाहुतिं जुहुयात् । तत्र मन्त्राः । समुद्रादूर्मि-  
रित्येकादशर्चस्य वामदेव आपस्त्रिष्टुप् । अन्त्या जगती प्रजापते हिरण्य-  
गर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् । पूर्णादर्वि विश्वेदेवाः शतक्रतुरनुष्टुप् । सप्त ते  
अग्ने सप्तवानग्निर्जगती पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः । एवं सर्वत्र । ततो  
होमशेषं समाप्य प्रधानकुम्भं दक्षिणतः स्पृष्ट्वा शतवारं त्र्यम्बकमन्त्रं  
जप्त्वा तथैव रुद्रकुम्भं च स्पृष्ट्वाऽनुक्तरित्या रुद्रैकादशिन्यादि जप्त्वा  
गन्धादिभिः कुम्भद्वयगतनिऋतिरुद्रावभ्यर्च्य सत्त्विगाचार्यः सर्वकुम्भो-  
दकैर्भद्रासनोपविष्टं सापत्यकलत्रं यजमानमभिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः ।  
अक्षीभ्यामिति षण्णां काश्यपो यक्षमहाऽनुष्टुप् अभिषेके विनियोगः ।  
एवमुत्तरत्र । पवस्वविश्वचर्षण इति त्रिंशर्चस्य शतं वैखानसाः पवमान-  
सोमो गायत्री । आपो हि ष्ठेति नवर्चस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो  
गायत्र्यन्त्ये द्वेऽनुष्टुभौ पञ्चमी वर्द्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा । यत इन्द्रेति



द्वयोः सप्तर्षयो विश्वेदेवा अनुष्टुप् सहस्राक्षेणेति तृचस्य प्राजापत्यो  
यक्षमनाशनो यक्षमहा त्रिष्टुप् । द्वयोरन्त्यानुष्टुप् । देवस्य त्वेति त्रिभि-  
र्यजुर्भिश्च यज्जाग्रतेति षण्णां शिवसङ्कल्पमन्त्राणां प्रजापतिर्मनस्त्रि-  
ष्टुप् । तत्तत्पुराणोक्तमन्त्राः—

योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ।  
मूलजातशिशोर्दोषं माता-पित्रोर्व्यपोहतु ॥  
योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुक् मेषवाहनः ।  
सप्तजिह्वश्च देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु ॥  
योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मो महिषवाहनः ।  
मूलजातशिशोर्दोषं यमो मम व्यपोहतु<sup>१</sup> ॥  
योऽसौ खड्गधरो देवो निर्वृती राक्षसाधिपः ।  
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गण्डान्तसम्भवम् ॥  
योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः ।  
नक्रवाहः प्रचेताख्यो मूलोत्थाघं व्यपोहतु ॥  
योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः ।  
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शान्तिदः ॥  
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गभृद्वाजिवाहनः ।  
मातापित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु ॥  
योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः ।  
आश्लेषा-मूल-गण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु ॥  
विघ्नेशः क्षेत्रपो दुर्गा लोकपाला नवग्रहाः ।  
सर्वदोषप्रशमनं सर्वं कुर्वन्तु शान्तिदाः ॥

आश्लेषाशान्तौ तु—

आश्लेषाऋक्षजातस्य माता-पित्रोर्धनस्य च ।  
भ्रातृजातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु ॥  
योऽसौ वागीश्वरो नाम अधिदेवो बृहस्पतिः ।  
माता-पित्रोः शिशोश्चैव गण्डान्तस्य व्यपोहतु ॥  
पितरः सर्वभूतानां रक्षन्तु पितरं सदा ।  
सर्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबान्धवान् ॥

इति विशेषः । ततः तच्छंयोः शंयुर्विश्वेदेवाः शक्वरी अभिषेके

१. ज्ञ-मातापित्रोर्व्यपोहतु ।



विनियोगः । ततो वस्त्रान्तरितनिर्ऋतिरुद्रकुम्भोदकेन स्नापितो यज-  
मानो धृतधौतवासाः साऽपत्यकलत्रः कांस्यपात्रस्थाऽऽज्यं रूपं रूपमित्य-  
वेक्ष्य विप्राय दत्त्वाऽऽचार्यादीनभ्यर्च्यर्चाचार्याय गां ब्रह्मणे वृषं सदस्या-  
याऽश्वं रुद्रजापिने कृष्णवृषं धेन्वाद्यलाभे तत्तन्मूल्यं वा दत्त्वा स्वशक्त्या  
ऋत्विग्भ्यो भूयसीं च दत्त्वोत्तरपूजां कृत्वा यान्तिवति विसृज्याऽऽचा-  
र्याय निर्ऋतिग्रहप्रतिमाकुम्भादिरुद्रजापिने रुद्रप्रतिमाकुम्भादि सङ्कल्प-  
पूर्वकं दत्त्वाऽग्निमभ्यर्च्य गच्छ गच्छेति विसृज्य शतं तदर्द्धं दश वा  
ब्राह्मणान्भोजयित्वा शान्त्याशीर्वाचयित्वा यस्य स्मृत्येत्याद्युक्त्वा स-  
स्वजनो भुञ्जीत ।

इति श्रीभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखे  
मूलाश्लेषाशान्तिप्रयोगः ।

### अथ वैधृति-व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्तिः ।

शौनकः—कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः ।  
सङ्क्रमश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः ॥  
दरिद्राणां महादुःखं व्याधिपीडासमुद्भवम् ।  
अश्रियो मृत्युमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥  
स्त्रीणां च शोकं दुःखं च सर्वनाशकरो भवेत् ।  
शान्तिर्वा पुष्कला कार्या तस्य दोषो न कश्चन ॥  
गोमुखप्रसवं कुर्याच्छान्तिं कुर्यात्प्रयत्नतः ।  
जपाऽभिषेकदानैश्च होमादपि विशेषतः ॥  
नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषोपशान्तये ।  
प्रथमं गोमुखं जन्म ततः शान्तिं समाचरेत् ॥  
गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनाऽनुलिप्य च ।  
अलङ्कृते सुदेशे तु व्रीहिराशिं प्रकल्पयेत् ॥  
पञ्चद्रोणमितं धान्यं तदर्द्धं तण्डुलेन च ।  
तदर्द्धं तु तिलैः कुर्यादन्योऽन्योपरि कल्पयेत् ॥  
द्रव्यत्रितयराशौ तु अष्टपत्रं लिखेद् बुधः ।  
पुण्याहं वाचयित्वा तु आचार्यं वृणुयात्पुरा ॥  
आचारवन्तं धर्मज्ञं कुलीनं च कुटुम्बिनम् ।  
मन्त्रतत्त्वार्थतत्त्वज्ञं शान्तिकर्मणि कोविदम् ॥



## वैधृति-व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्तिः

१२७

पञ्चाङ्गभूषणं दद्यात्पट्टवस्त्राङ्गुलीयकम् ।  
 राशौ प्रतिष्ठितं कुम्भमव्रणं सुमनोहरम् ॥  
 तीर्थोदकेन सङ्गृह्य समृदौषधिपल्लवम् ।  
 सगव्य-गन्ध-रत्नं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥  
 तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सूक्ष्ममव्रणसंयुतम् ।  
 प्रतिमां स्थापयेद्धीमान्साधि-प्रत्यधिदैवताम् ॥  
 चन्द्राऽऽदित्याऽऽकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत् ॥  
 एवमेव व्यतीपाते शान्तौ सङ्क्रमणस्य तु ।  
 भानोरुत्तरतो रुद्रमग्निं दक्षिणतो यजेत् ॥  
 निष्कमात्रेण वार्द्धेन पादेनाऽपि स्वशक्तितः ।  
 प्रतिमां कारयेद्धीमान् तत्तल्लक्षणलक्षिताम् ॥  
 प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् ॥  
 अधिदेवो भवेत्सूर्यश्चन्द्रः प्रत्यधिदैवतम् ।  
 ततो व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मन्त्रेण पूजयेत् ॥  
 त्रैयम्बकेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां यजेत् ।  
 तत्सूर्य इति मन्त्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् ॥  
 आप्यायस्वेति<sup>१</sup> मन्त्रेण सोमपूजां समाचरेत् ।  
 उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥  
 अर्चित्वा गन्धपुष्पाद्यैः फलं नैवेद्यमर्पयेत् ।  
 मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां स्पृशेत् ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।  
 अष्टाविंशति वा चाऽथ पूजायां च स्वशक्तितः ॥  
 सर्वसौरं प्रजप्याऽथ सोमोऽथ सोममन्त्रतः ।  
 आ नो भद्रेति<sup>२</sup> सूक्तं च भद्रा अग्नेश्च<sup>३</sup> सूक्तकम् ॥  
 जपेत्तु पौरुषं<sup>४</sup> सूक्तं त्रैयम्बक<sup>५</sup>मतः परम् ।  
 कुम्भं स्पृष्ट्वा चतुर्दिक्षु जपं कुर्युस्त्वथर्त्विजः ।  
 कुम्भस्य पश्चिमे देशे स्थण्डिलेऽग्निं प्रकल्पयेत् ।  
 स्वगृह्योक्तविधानेन कारयेत् संस्कृताऽनलम् ॥  
 त्रैयम्बकेन मन्त्रेण समिदाज्यचरून् हुनेत् ।  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ॥

१. ऋ. सं. १।६।२२ । २. ऋ. सं. १।६।१५ । ३. ऋ. सं. ८।२।१९ ।

४. ऋ. सं. ८।४।१७ । ५. ऋ. सं. ५।४।३० ।



अष्टाविंशति वा कुर्यात्स्वस्य शक्त्यनुसारतः ।  
 मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण तिलहोमं समाचरेत् ॥  
 ततः स्विष्टकृतं हुत्वा अभिषेकं च कारयेत् ॥  
 समुद्रज्येष्ठा<sup>१</sup>सूक्तेन आपो हि <sup>२</sup>ष्ठा तृचेन च ॥  
 अक्षीभ्यामिति<sup>३</sup> सूक्तेन पावमानीभिरेव च ।  
 त्रैयम्बकेन तत्सूर्य आप्यायस्वेति<sup>४</sup> मन्त्रतः ॥  
 सुरास्त्वामिति मन्त्रेण अभिषेकं समाचरेत् ॥

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त्वित्यादिकोऽभिषेकमन्त्रसमुदायोऽयुतहोमविधाने  
 द्रष्टव्यः ।

अभिषेकाप्लुतं वस्त्रमाचार्याय निवेदयेत् ।  
 श्वेतवस्त्रधरो भूत्वा भूषणाद्यैरलङ्कृतः ।  
 यजमानः स्त्रिया युक्त आज्याऽवेक्षणमाचरेत् ॥  
 आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रहेमाङ्गुलीयकैः ।  
 गोदानं वस्त्रदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ॥  
 तद्दोषशमनार्थाय आचार्याय प्रदापयेत् ।  
 प्रच्छादनपटं दद्यात्ततः शान्तिर्भवेदिति ॥  
 जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणाः प्रतिपादयेत् ।  
 दीनान्धकृपणेभ्यश्च प्रदद्याद् भूरिदक्षिणाम् ॥  
 ब्राह्मणान् शतसंख्याकान् मिष्टान्नैर्भोजयेच्च तान् ।  
 बन्धुभिः सह भुञ्जीत यथाविभवसारतः ॥  
 एवं यः कुरुते मर्त्यो नैव दुःखमवाप्नुयात् ।  
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं माता-पित्रोः शिशोरपि ॥

### अथ प्रयोगः

कर्ता गोमुखप्रसवं कृत्वा मासपक्षाद्युल्लिख्याऽस्य शिशोर्वैधृतौ  
 व्यतीपाते सङ्क्रान्तौ वोत्पत्तिसूचितस्याऽनिष्टस्य निरासार्थं शान्तिं  
 करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृकापूजा-वृद्धिश्राद्धा-  
 चार्यादिवरणानि कुर्यात् । अथाचार्यः सर्षपविकरणादि कृत्वा प्राच्यां  
 गोमयोपलिप्तभुवि पञ्चद्रोणतदर्द्धमितव्रीहि-तण्डुल-तिलानन्योऽन्योपरि-

१. ऋ. सं. ५।१।१६ । २. ऋ-ष्टेत्यु, ऋ. सं. ७।६।५ ३. ऋ. सं.  
 ८।८।२१ । ४. ऋ. सं. १।६।२२ ।



राशीकृत्य तत्राऽष्टदलं विरच्य तत्कर्णिकायां कुम्भं संस्थाप्य तीर्थोद-  
केनाऽऽपूर्य तत्र सप्तमृत्-पञ्चपल्लव-रत्न-गव्याष्टगन्ध-सर्वौषधीः  
क्षिप्त्वा वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्ट्य पूर्णपात्रं निधाय तत्र वैधृतिव्यती-  
पातयोः<sup>१</sup> शान्तौ मध्ये त्र्यम्बकमिति रुद्रं तदक्षिणत उत्सूर्यं<sup>२</sup> इति सूर्य-  
मुत्तरतश्चाप्यायस्वेति<sup>३</sup> सोमं सङ्क्रान्तिशान्तौ<sup>४</sup> तु मध्ये सूर्यं तद-  
क्षितोऽग्निं दूतमि<sup>५</sup>त्यग्निमुत्तरतो रुद्रं तत्तत्प्रतिमास्वावाह्य षोडशभिः  
पञ्चभिर्वोपचारैः सम्पूज्य रुद्र-सूर्य-सोमप्रतिमाः स्पृष्ट्वाऽष्टसहस्रा-  
ष्टशताष्टाविंशत्यन्यतरसंख्यया मृत्युञ्जयमन्त्रमुद्यन्नद्येत्यादिसर्वसौर-  
मन्त्रानाप्यायस्वेति च क्रमाज्जपेत् । सङ्क्रान्तिशान्तौ<sup>६</sup> तु पूर्वं सौर-  
जपस्ततो मृत्युञ्जयजपः । ततो ऋत्विजः प्रागादिदिक्चतुर्षु क्रमेण  
आ नो भद्रा<sup>७</sup> भद्रा अग्ने<sup>८</sup> सहस्रशीर्षा कद्रुद्रायेति<sup>९</sup> सूक्तानि त्र्यम्बक-  
मन्त्रं च जपेयुः । आचार्यस्तु कुम्भात्पश्चिमेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य ग्रहावाह-  
नादि पूजनान्तं कृत्वाऽन्वादध्यात् । तत्र चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते रुद्र-  
सूर्यसोमान् समिच्चर्वाज्यैस्तत्तन्मन्त्रैर्मृत्युञ्जयमन्त्रेण च तिलाहुति-  
भिरष्टसहस्राष्टशताष्टाविंशतिः अन्यतरसङ्ख्यया शेषेण स्विष्टकृत-  
मित्यादि । सङ्क्रान्तिशान्तौ तु<sup>१०</sup> सूर्याग्निरुद्रानिति विशेषः । तत आज्य-  
भागान्तेऽन्वाधानोक्तक्रमेण हुत्वा बलिदानान्ते कलशोदकैः समुद्रज्येष्ठा  
इति सूक्तेन आपो हि<sup>११</sup> ष्ठेति तृचेनाऽक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमा-  
नीभिः प्रधानाधिप्रत्यधिदेवतामन्त्रैः सुरास्त्वेत्यादिपौराणैश्चा-  
भिषिक्तो यजमानोऽभिषेकवस्त्रमाचार्याय निवेद्याऽऽज्यमवेक्ष्य पूर्णाहुतिं  
हुत्वाऽऽचार्याय धेनुं वस्त्रयुग्माङ्गुलीयकादि ऋत्विग्भ्यश्च दक्षिणां  
दत्त्वाऽन्येभ्यश्च भूरिदक्षिणां दत्त्वा शतं शक्त्या वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा  
बन्धुभिः सह भुञ्जीत ।

इति वैधृति-व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्तयः

१. ज्ञ-वैधृतिशान्तौ । २. ऋ. सं. ५।५।४ । ३. ऋ. सं. १।६।२२ ।  
४. ज्ञ-व्यतीपातसङ्क्रान्तिशान्त्योस्तु । ५. ऋ. सं. १।१।२२ । ६. ज्ञ-व्यती-  
पातसङ्क्रान्तिशान्त्योस्तु । ७. ऋ. सं. १।६।१५ । ८. ऋ. सं. ८।२।१९ ।  
९. ऋ. सं. १।१।२६ । १०. ज्ञ-व्यतीपातसङ्क्रान्तिशान्त्योस्तु । ११. ऋ. सं.  
७।६।५ ।



## अथैकनक्षत्रजन्मशान्तिः ।

गर्गः—एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृ-पुत्रयोः ।  
 प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयः ॥  
 तद्दोषनाशाय तदा प्रशस्तां शान्तिं च कुर्यादभिषेचनं च ।  
 सम्पूज्य ऋक्षप्रतिमां तदग्रे दानं च कुर्याद्विभवानुरूपम् ॥  
 तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु ।  
 शुभर्क्षे शुभवारे च चन्द्र-ताराबलान्विते ।  
 रिक्ता-विष्टीविवर्ज्ये तु प्रारभेद्विभवे सुधीः ॥  
 आचार्यं वरयेत्पूर्वं चतुरश्रं द्विजोत्तमान् ।  
 पुण्याहं वाचयित्वा तु शान्तिकर्म समाचरेत् ॥  
 अग्नेरीशानदिग्भागे नक्षत्रप्रतिमां ततः ।  
 तन्नक्षत्रोक्तमार्गेण अर्चयेत् कलशोपरि ॥  
 रक्तवस्त्रेण सञ्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ।  
 स्वशाखोक्तेन मार्गेण कुर्यादिग्निमुखं ततः ॥  
 अनेनैव तु मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ।  
 प्रत्येकं समिदन्नाज्यैः प्रायश्चित्तान्तमेव च ॥  
 अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः ।  
 वस्त्रालङ्कारगोदानैराचार्यं पूजयेत्पुनः ॥  
 ऋत्विजां दक्षिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ।  
 देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह ॥  
 यान-शय्याऽऽसनादीनि दद्यात्तद्दोषशान्तये ।  
 भोजयेद् ब्राह्मणान्सर्वान् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥

## अथ प्रयोगः

कर्ता मास-पक्षाद्युल्लिख्याऽस्य कुमारस्य पित्राद्येकक्षोत्पत्तिसूचिता-  
 रिष्टशान्त्यर्थमेकनक्षत्रशान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजन-  
 स्वस्तिवाचनाऽऽभ्युदयिकाऽऽचार्यत्विग्वरणानि कुर्यात् । अथाऽऽचार्यो-  
 ऽग्नेरीशान्यां कुम्भं संस्थाप्य रक्तवस्त्रयुग्मेनाऽऽञ्छाद्य तस्मिन् पूर्ण-  
 पात्रोपरि तत्तन्नक्षत्रोक्तमन्त्रेण प्रतिमायां तत्तन्नक्षत्रदेवतामावाह्य  
 सम्पूज्य, अग्निं प्रतिष्ठाप्याऽन्वाधायाज्यभागान्तं कृत्वा तत्तन्नक्षत्रमन्त्रेण  
 समिच्चर्वाज्यानि प्रत्येकमष्टोत्तरशतं हुत्वा होमशेषं समाप्य शिशुं



## ग्रहणोत्पत्तौ शान्तिः

१३१

तत्पित्रादींश्चाऽभिषिञ्चेत् । ततः कर्तोत्तरपूजां कृत्वा विसृज्य प्रतिमा-  
दिकं गवादि चाऽऽचार्याय दत्त्वा ऋत्विग्भ्यश्च प्रत्येकं सौवर्णमाष-  
त्रयात्मिकां यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा यथाविभवं यान-शय्या-ऽऽसनादीनि  
च दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयं भुञ्जीत ।

इत्येकनक्षत्रशान्तिप्रयोगः ।

## अथ ग्रहणोत्पत्तौ शान्तिः ।

शौनकः—ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते ।  
व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥  
इत्थं सञ्जायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः ।  
व्याधिपीडा च दारिद्र्यं शोकश्च कलहो भवेत् ॥  
शान्तिं तेषां प्रवक्ष्यामि नराणां हितकाम्यया ।  
यस्मिन् ऋक्षे विशेषेण ग्रहणं सम्प्रजायते ॥  
तद्दृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ।  
यथाशक्त्यनुसारेण वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥  
सूर्यग्रहे सूर्यरूपं सुवर्णेन विशेषतः ।  
चन्द्रं चन्द्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः ॥  
राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः ।  
शुचौ देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् ॥  
नागेन सीसेन ।

तस्योपरि न्यसेद्धीमान्नववस्त्रं सुशोभनम् ।  
त्रयाणां चैकरूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् ॥  
रक्ताक्षतं रक्तगन्धं रक्तपुष्पाम्बराणि च ।  
सूर्यग्रहे प्रदातव्यं सूर्यप्रीतिकराय च ॥  
श्वेतवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतगन्धाक्षतादिभिः ।  
चन्द्रग्रहे प्रदातव्यं चन्द्रप्रीतिकराय च ॥  
राहवे चैव दातव्यं कृष्णपुष्पाम्बराणि च ।  
दद्यान्नक्षत्रनाथाय श्वेतगन्धानुलेपने ॥  
सूर्यं सम्पूजयेद्धीमान्नाकृष्णेनेति मन्त्रतः ।  
चन्द्रग्रहे च पालाशैः समिद्धिर्जुहुयान्नरः ॥



दूर्वाभिर्जुहुयाद्धीमान् राहोः सम्प्रीणनाय च ।  
 समिद्भिर्जलवृक्षोत्थैर्भेशाय जुहुयाद् बुधः ॥  
 भेशाय नक्षत्राधिपतये ।

आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः ।  
 पञ्चगव्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवैः ॥  
 जलैरौषधकल्कैश्च सहितैः कलशोदकैः ।  
 औषधकल्कैः सर्वौषधिकल्कैः ।

अभिषेकं प्रकुर्वीत यजमाने प्रयत्नतः ।  
 मन्त्रैर्वरुणदैवत्यैरापो हि ष्ठादिभिस्त्रिभिः ॥  
 इमं मे गङ्गे<sup>१</sup> पितरस्तत्त्वायामीति<sup>२</sup> मन्त्रकैः ।  
 अभिषेके निवृत्ते तु यजमानः समाहितः ॥  
 आचार्यं पूजयेत्पश्चात् सुशान्तो नियतेन्द्रियः ।  
 तस्मै दद्यात्प्रयत्नेन भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् ॥  
 दक्षिणाभिश्च संयुक्तं यथाशक्त्यनुसारतः ।  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥  
 तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद्यजमानः समाहितः ।  
 अनेन विधिना शान्तिं कृत्वा सम्यग्विशेषतः ॥  
 अकालमृत्युशोकं च व्याधिपीडां न चाप्नुयात् ।  
 सौख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः ॥  
 इत्थं ग्रहणजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् ।  
 कथितं भार्गवेणेदं शौनकाय महात्मने ॥  
 इति चन्द्र-सूर्यग्रहणप्रसूतिशान्तिः ।

### अथ विषघटिकाशान्तिविधिः

तत्र वृद्धगार्ग्यः—

विषनाडीषु सञ्जातः पितृ-भ्रातृ-धनात्मनाम् ।  
 नाशकृद्विषशस्त्राद्यैः क्रूरलग्नेऽष्टमेऽपि वा ॥  
 तद्दोषपरिहाराय शान्तिकर्म समारभेत् ।  
 रुद्रो यमोऽग्निर्मृत्युश्च देवताः परिकीर्तिताः ॥

१. ऋ. सं. ८।३।६ । २. ऋ. सं. १।२।१५ ।



## विषघटिकाशान्तिविधिः

१३३

सुवर्णेन यथाशक्त्या तत्तल्लक्षणसंयुताः ।  
 प्रतिमाः कारयित्वा तु आढकव्रीहिभिः स्थले ॥  
 स्थण्डिलं परिकल्प्याऽथ कुम्भमोषधिसंयुतम् ।  
 जलैः सम्पूर्य संस्थाप्य मृदादि प्रक्षिपेत् ततः ॥  
 वस्त्रद्वयेन संवेष्ट्य पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् ।  
 कुम्भोपरि तु संस्थाप्य चतस्रः प्रतिमास्तथा ॥  
 तत्तन्मन्त्रैश्च सम्पूज्य गन्धपुष्पोपहारकैः ।  
 कद्रुद्रायेति<sup>१</sup> मन्त्रेण यमाय सोममि<sup>२</sup>त्यथ ॥  
 अग्निर्मूर्द्धेति<sup>३</sup> मन्त्रेण परं मृत्यो इति त्वथ ।  
 एतैश्चतुर्भिर्मन्त्रैस्तु क्रमादर्चेद्दधुनेत्तथा ॥  
 समिच्चरुघृतद्रव्यैः प्रत्येकं च यथाक्रमम् ।  
 ऋत्विग्भिश्च सहाचार्यो हुनेदष्टसहस्रकम् ॥  
 अष्टोत्तरशतं वाऽथ अष्टाविंशतिमेव वा ।  
 ततस्तिर्लङ्घनेद्देवांस्तत्तन्मन्त्रैश्च कल्पवित् ॥  
 ततोऽभिषिञ्चयेदेनं मन्त्रैः पौराणिकैः क्रमात् ।  
 प्रार्थ्यतां भगवानीशः पिनाकी सर्वतोमुखः ॥  
 तव मूर्तिप्रदानेन समस्ताऽभीष्टदो भव ।  
 ईषत्पीनो यमः कालो दण्डहस्तः प्रशान्तधीः ॥  
 रक्तदृक् पाशभृत्कृष्णो महिषस्थः शिवं कुरु ।  
 पिङ्गलश्मश्रुकेशाक्षः पिङ्गाक्षचतुरोहणः ॥  
 छागस्थः साक्षसूत्रश्च सप्तार्चिः शक्तिधारकः ।  
 तव मूर्तिप्रदानेन मम पापं विनाशय ॥  
 दंष्ट्राकरालवदनो नीलाञ्जनसमाकृतिः ।  
 वृक-खड्ग-गदापाणिर्मृत्युर्मा पातु सर्वदा ॥  
 इत्थमेवंविधैर्मन्त्रैर्यथाविधिसमाहितः ।  
 गो-भू-हिरण्यवस्त्रैश्च आचार्य पूजयेत्सुधीः ॥  
 एवं कुर्यात्प्रदानेन विषदोषः प्रशाम्यति ॥  
 इति विषघटीशान्तिः ।



## अथ भगण्डान्तशान्तिः ।

गर्गः—अश्विनी-मघ-मूलादौ त्रिवेदनवनाडिका ।  
 रेवतीसर्पशक्रान्ते मास-रुद्र-रसाः क्रमात् ॥  
 अश्विनी-मघ-मूलादौ नाडिकाद्वितयं तथा ।  
 अश्विनी-मघ-मूलानां पूर्वाद्धे बाध्यते पिता ॥  
 पूषादिसर्पपश्चाद्धे जननी बाध्यते शिशोः ।  
 पितृघ्नश्च दिवाजातो रात्रिजातस्तु मातृहा ॥  
 आत्महा सन्ध्ययोजातो नास्ति गण्डे निरामयः ।  
 सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ॥  
 वर्जयेद्दर्शनं यावद्वर्षं षाण्मासिकं भवेत् ।  
 तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि सोममन्त्रेण भक्तिमान् ॥  
 कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम् ।  
 अष्टभिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां वा शोभनं तथा ॥  
 तन्मध्ये पायसं शुभ्रं नवनीतेन पूरितम् ।  
 राजतं चन्द्रमर्चेत सितपुष्पसहस्रकैः ॥  
 दैवज्ञः क्षौमवासाश्च शुक्लमाल्याम्बरार्चितः ।  
 सोमोऽहमिति सञ्चिन्त्य पूजां कुर्यादतन्द्रितः ॥  
 जपेत्साहस्रकं मन्त्रं श्रद्धानः समाहितः ।  
 आप्यायस्वेति<sup>१</sup> मन्त्रेण पूजां कुर्यात्समाहितः ॥  
 दद्याद्द्वै दक्षिणामिष्टां गण्डदोषप्रशान्तये ।  
 शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम् ॥  
 गण्डदोषोपशान्त्यर्थं दद्याद्वेदविदे शुचिः ।  
 इति भगण्डान्तशान्तिः ।

## अथ दिनक्षयादिशान्तिः ।

गर्गः—दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टि-वैधृतौ ।  
 मूले गण्डेऽतिगण्डे च परिघे यमघण्टके ॥  
 कालदण्डे मृत्युयोगे दुष्टयोगे सुदारुणे ।  
 तस्मिन् गण्डदिने प्राप्ते प्रसूतिर्यदि जायते ॥



## त्रिकशान्तिः

१३५

अतिदोषकरी प्रोक्ता तत्र पापयुते सति ।  
 विचार्य तत्र देवज्ञं शान्तिं कृत्वा यथाविधि ॥  
 यजमानो देवतानां ग्रहाणां चैव पूजनम् ।  
 दीपं शिवालये भक्त्या घृतेन परिदीपयेत् ॥  
 अभिषेकं शङ्करस्य अश्वत्थस्य प्रदक्षिणम् ।  
 आयुर्वृद्धिकरं जाप्यं सर्वारिष्टविनाशनम् ॥  
 गुरुदैवत-विप्राणां पूजनं गोश्व वर्द्धनम् ।  
 पुष्टचायुस्तुष्टिशान्त्यर्थमभीष्टफलसिद्धये ॥  
 सर्वारिष्टहरार्थाय ग्रहयज्ञं समाचरेत् ।  
 शिवाय विधिवद्भक्त्या दीपदानं करोति यः ॥  
 अखण्डं गोघृतेनैव स वै मृत्युं जयेन्नरः ।  
 विष्णुमूर्तिं महापुण्यमश्वत्थं श्रीकरं सदा ॥  
 प्रदक्षिणं नरो भक्त्या कृत्वा मृत्युं जयेन्नरः ।  
 सर्वसम्पत्समृद्धयर्थं नित्यं कल्याणवृद्धये ॥  
 अभीष्टफलसिद्धयर्थं कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।  
 अभिषेकं शिवे शान्तिं कृत्वा भक्त्या नरोत्तमः ॥  
 अकालमृत्युं निर्जित्य दीर्घायुर्जायते नरः ॥  
 गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं शुभम् ।  
 शान्तिजाप्यं रुद्रजाप्यं कृत्वा मृत्युञ्जयो भवेत् ॥  
 मूले वा सर्पगण्डे वा कुर्यादेतानि यत्नतः ।  
 आयुर्वृद्धिकरार्थाय गण्डदोषप्रशान्तये ॥  
 इति गर्गोक्तगण्डजननशान्तिः ।

## अथ त्रिकशान्तिः ।

शान्तिसर्वस्वे—

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि ।  
 माता-पित्रोः कुलस्यापि तदाऽनिष्टं महद्भवेत् ॥  
 ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् ।  
 तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥

१. ई-धन ।



जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने ।  
 आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥  
 सह वा ग्रहयज्ञः स्यात्स्वस्य वित्तानुसारतः ।  
 ब्रह्म-विष्णु-महेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः ॥  
 पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि शक्तितः ।  
 पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्बुद्धसङ्ख्यया ॥  
 रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः ।  
 द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिः समाहितः ॥  
 आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् ।  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा विंशतिं तु वा ॥  
 देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ।  
 ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्र भयामहे ॥  
 ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ।  
 अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाऽऽचार्यं प्रपूजयेत् ॥  
 हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः ।  
 प्रतिमा गुरवे देया उपस्कारसमन्विताः ॥  
 कांस्यास्यवीक्षणं दत्त्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् ॥  
 एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं विलीयते ॥  
 इति त्रिकशान्तिः ।

### अथ प्रसववैकृतशान्तिविधिरुच्यते ।

अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा ।  
 विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनास्तथा ॥  
 अमानुषा अखण्डाश्च अजातव्यञ्जनास्तथा ।  
 हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥  
 पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः ।  
 विनाशं तस्य देहस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥  
 निर्वासयेत्तां नृपतिः स्वराष्ट्रात्स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः ।  
 चिकित्सनैर्ब्राह्मणतर्पणैश्च ततोऽस्य शान्तिं समुपैति पापम् ॥



## अथ यमलशान्तिविधिः ।

अत्र ब्राह्मणं “तदाहुयं आहिताग्निर्यस्य भार्या गोर्वा यमौ जनयेत्का तत्र प्रायश्चित्तिरिति । सोऽग्नये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् तस्य याज्यानुवाक्ये मरुतो यस्य हि क्षयेऽरा इ वेद चरमा अहे-वेत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये मरुत्वते स्वाहेति सा तत्र प्राय-श्चित्तिरिति ।”

कारिका—अथ यस्य वधूगौर्वा जनयेच्चेद्यमौ ततः ।

समरुद्भ्यश्चरुं कुर्यात् पूर्णाहुतिमथापि वा ॥

कात्यायनगृह्ये—“अथातो यमलजनने विधिं व्याख्यास्यामो यस्य भार्या गौर्वा दासी वा वडवा विकृतिं प्रसवेत्स प्रायश्चित्ती भवेत् पूर्णो दशाहे चतुर्णां क्षीरवृक्षाणां काष्ठमाहरेत् । प्लक्षवटौदुम्बराश्वत्थशमी-देवदारुगौरसर्षपास्तेषामपो हिरण्यदूर्वाङ्कुरैः सपल्लवैरष्टौ कलशान् प्रपूर्य सर्वौषधीभिर्दम्पती स्नापयित्वाऽलङ्कृत्य तौ दर्भेषूपविशति मारुतं स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागावष्टाहुतीर्जुहोति, पूर्वोक्तैः स्नपनमन्त्रैः स्थालीपाकस्य जुहोत्यग्नये स्वाहा, सोमाय० पवमानाय० पावकाय० मारुताय० मरुद्भ्यः० यमाय० अन्तकाय० मृत्यवे० अग्नये० स्विष्टकृते स्वाहेत्येतदेव गृहीत्वाऽऽज्येषु उलूकः कपोतो वा गृध्रः श्येनो वा प्रविशेत् । १यस्त्वम्भो वा प्ररोहेद्वल्मीकं वल्मीकं मधुजालं वा भवेत् । उदकुम्भप्रज्वलने आसनशयनभङ्गे गृहगोधिकाकृकलाससरी-सृपसर्पणे छत्रध्वजविनाशेष्वन्येषु भूकम्पोल्कापातकाकसर्पसङ्गमप्रेक्षणा दिष्टेतदेव प्रायश्चित्तम् । ग्रहशान्तिं चोक्तविधिना कृत्वाऽऽचार्याय वरणं दत्त्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वास् वस्ति वाच्या, आशिषः प्रतिगृह्णी-यात्” इति । पञ्चैन्द्राणि पदानि यस्मिन्नसौ पञ्चेन्द्रो मन्त्रः । एवं पञ्चवारुणोऽपि । तौ च प्रयोगे वक्ष्येते १ ।

## अथ प्रयोगः

“मम भार्याया यमलजननसूचितारिष्टशान्तिद्वारा श्री परमेश्वर-प्रीत्यर्थं कात्यायनपरिशिष्टोक्तां सग्रहमखां यमलजननशान्तिं करिष्ये”

१. र-पाठः, क्ष य ड-कथामुपाहरेत्, द प ह-कषायामुपाहरेत् । २. र-पाठः, क्ष य ह द प ड-स्वभावो प्ररोहे वल्मीकमधुनलम्बाभावेदु । ३. क्ष घ ड-वक्ष्यते ।



१३८

शान्तिमयूखः

इति सङ्कल्प्य गणेशपूजनाचार्यवरणान्तं कुर्यात् । तत आचार्यो 'यदत्र संस्थितमिति' सर्षपान् विकीर्य पूर्वस्यां पूर्वादिक्रमेणाष्टौ कलशान् 'मही द्यौरि'त्यादिना क्षीरवृक्षकषायप्लक्षवटौदुम्बराश्वत्थशमीदेवदारु-शाखागौरसर्षपहिरण्यदूर्वाङ्कुरपञ्चपल्लवसर्वौषधियुतान् स्थापयित्वा तज्जलेन यजमानं सपत्नीकं स्नापयेत् । तत्र मन्त्राः । आपो हि ष्ठेति तिसृणामम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री अभिषेके विनियोगः । वरुणस्य क्षत्रसदनमसि वरुणस्यज्ञ तत्पदन्यमासीत् अभिषेके० । इदमाप इत्यस्य सिन्धुद्वीप आपोऽनुष्टुप् । अपाघमपकित्विषमपकृत्यामयोरपः । अपोमार्गत्वमस्मदपदुःस्वस्थं सुव । अभिषेके विनियोगः । तत ईशान्यां गृहस्थापनान्तेऽन्वाधानम् । अस्मिन्नन्वाहितेगनावित्याद्युक्त्वाऽत्र प्रधानं गृहान् समिच्चर्वाज्यैः आपस्तिसृभिः इन्द्रं तिसृभिः वरुणमेकया अपो द्वाभ्यामाज्येन अग्निं० सोमं० पवमानं० पावकं० मारुतं० मरुतः० यमं० अन्तकं० मृत्युं० एकैकया चर्वाहुत्या शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि । ततोऽन्वाधानादिक्रमेण होमं समाप्य बलिदानपूर्णाहुतिभिरभिषेक-दक्षिणादानान्तं कृत्वा यथाशक्त्या ब्राह्मणान् भोजयित्वा 'स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्ति'ति वाचयित्वा तैः 'स्वस्ती'त्युक्ते तेभ्य आशिषो गृह्णीयात् ।

इति यमलशान्तिः ।

अथ प्रथमदिनादिषु देवीगृहीतबालकरक्षणम् ।

मदनरत्ने योगसागरे—

प्रथमेऽहनि गृह्णाति बालकं बालिनी ग्रही ।

'पापिनी ग्रहीति' नारायणीये पाठः । गन्धिनीति पुराणोत्तरे ।

तया गृहीतमात्रस्य चेष्टितान्युपलक्षयेत् ।

गात्रोद्वेगो निराहारो लालाग्रीवानिवर्तम् ॥

लिम्पेत धातकी-लोध्र-मज्जिष्ठा-ताल-चन्दनैः ।

धूपयेन्महिषाक्षेण ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥

लेपनधूपने बालस्य नारायणीये बलिदानानुवृत्तौ—

मत्स्य-मांस-सुराभक्ष्य-गन्धा-ऽसृक्-धूप-दीपकैः ।

बलिं दद्यादिति शेषः ।



बलिमन्त्रः प्रयोगसारे—ॐ नमश्चामुण्डे भगवति विद्युज्जिह्वे  
हां हां हीं हीं<sup>१</sup> अपसरन्तु दुष्टग्रहा हुं । तद्यथा—गच्छन्तु यातान्यतः  
स्थाने रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा । विद्युज्जिह्वे हां हीं हुं हुं मुञ्च मुञ्च  
स्वाहेति ।

बालग्रहाणां विद्येयं शस्ता बलिनिवेदने ।  
बलिश्च रवेरुदयेऽस्ते दिनाद्धे वा देयः । बलिस्थानानि प्रयोगसारे—  
कदम्बश्च करञ्जश्च विनीतो<sup>२</sup> निम्ब एव च ।  
अश्वत्थोदुम्बरश्चैव श्लेष्मान्तकवटौ तथा ॥  
मातृवृक्षाः क्रमेणोक्ताः पूर्वादीशान्तदिग्गताः<sup>३</sup> ।  
तेषामेकं समाश्रित्य बलिं दद्याद्यथोदितम् ॥ इति ।  
प्रतिस्थूलं प्रत्युदकं प्रतिवृक्षमथाऽपि वा ।

स्थूलम् तटम् । क्वचित्तु कूलमित्येव पाठः ।  
अत्राशायामनुक्तायां प्राक्प्रोक्तानामनुसारतः ॥  
यत्र वा रोचते तत्र मातृणां बलिमाहरेत् ।  
कृत्वा नीराजनान्तं बलिमिति विधिवद्बालमाहूय संस्पृश्या-  
द्भिस्तत्सर्वगात्रं शिरसि सकुसुमैरक्षतैर्भूमियित्वा ।  
क्षिप्त्वाऽग्रे देवताया विधिवदुपहितैस्तत्र गीतैः सुमन्त्रैः  
कुर्याद्रक्षां समीक्ष्य क्षणमिव विलयं याति दुष्टग्रहार्तिः ॥

नीराजनमन्त्रोद्धारो नारायणीये—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणस्तथा ।  
रक्षन्तु त्वरितं बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥

कालगुणोत्तरे—

पलाशाऽश्वत्थकपित्थबिल्वौदुम्बरपल्लवाः ।  
पञ्चभङ्गाः स्मृता ह्येते बालानां हितकारकाः ॥  
स्नापितं भूषितं बालं ततो मुञ्चति सा ग्रही ।

प्रयोगसारेऽपि—

पलाशोदुम्बराऽश्वत्थबिल्वन्यग्रोधपल्लवाः ।  
क्वथितेन कषायेन परिषिञ्चेत्प्रशान्तये ॥

१. ज क्ष ड य द इ र—हाहाहीही । २. ड क्ष ध—विभीतो । ३. ड क क्ष  
म र ध—गजाः । ४. ज—क्तान्नानु, स ध र ख अ फ न—क्तानानु ।



परिषञ्चेत् स्नापयेदिति मदनः ।

अथ मन्त्रः—ॐ नमश्चामुण्डे इत्यादिर्बलिदाने पूर्वमुक्तः ।

रक्षामन्त्रः प्रयोगसारे—

रक्ष रक्ष महादेव ! नीलग्रीव ! जटाधर !

ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥

अमुं मन्त्रं भूर्जपत्रे विलिख्य तत्पत्रं भुजे बध्नीयादिति मदनः । बालकशिखास्पर्शपूर्वकं जपे मन्त्र उक्तः प्रयोगसारे—ॐ सर्वमातर इमं ग्रहं संहर्न्तु हुं रोदय स्फोटय स्फोटय स्वाहा गर्ज गर्ज सर सर गृह्ण गृह्ण आमर्दय आमर्दय हिम हिम हन हन । एवं सिद्धि रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा । अत्र होमोऽपि प्रयोगसारे—ॐ कूष्माण्ड भगवति ! सुरा-गिणि ! संमुण्डिते ! मुञ्च मुञ्च दह दह पच पच सर सर गच्छ गच्छ स्वाहा ।

कृत्वा चतुष्पथे कुण्डं मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सहस्रं जुहुयात्तिलैः ॥

यान्ति दुष्टग्रहाः शान्तिं बलिना चाऽनुमोदिताः ।

बालरोदनपरिहारार्थं <sup>१</sup>यन्त्रमुक्तं प्रयोगसारे—षडक्षमध्ये ह्रींकार-स्तन्मध्ये शिशोर्नाम विलिख्य षट्सु अक्षेषु ॐ लुलुव स्वाहेति मन्त्रस्य षडक्षराणि विलिख्य तद्बहिरेव द्वितयं <sup>२</sup> विलिख्य तद्बहिरधोमुखै-रर्द्धचन्द्रैरावेष्टय पञ्चोपचारैः सम्पूज्य बालहस्ते बध्नीयादिति ।

### अथ बालग्रहस्तवः

प्रयोगसारे—

प्रणम्य शिरसा शान्तं गणेशाऽनन्तमीश्वरम् ।

बालग्रहस्तवं वक्ष्ये समस्ताऽभ्युदयप्रदम् ॥

तपसा यशसा दीप्त्या वपुषा विक्रमेण च ।

निर्दिष्टो यः सदा स्कन्दः स नो देवः प्रसीदतु ॥

१. ड—मन्त्र । २. ज्ञ—बहिर्नेमिव द्वितयं, ड इ द य न—वृत्तद्वयं, अ स ख र—बहिर्नेव, र—दन्तद्वये ।



रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ।  
 रक्तादित्योज्ज्वलः शान्तः स नो देवः प्रसीदतु ॥  
 यो नन्दनः पशुपतेर्मतिृणां पावकस्य च ।  
 गङ्गोमाकृतिकानां च स नो देवः प्रसीदतु ॥  
 देवसेनापरिवृतो देवसेनाऽर्चितः सदा ।  
 देवसेनापतिः श्रीमान् स नो देवः प्रसीदतु ॥  
 शक्तिः शक्तिधरापूरः कुमारः शिखिवाहनः ।  
 सुरारिहा महासेनः स नो देवः प्रसीदतु ॥  
 प्रकृत्या सुन्दरो दान्तो देवैश्वर्योदयान्वितः ।  
 नानाविनोदसम्पन्नः स नो देवः प्रसीदतु ॥  
 प्रबोधा सुप्रबोधा च बोधना सुप्रबोधना ।  
 प्रबुद्धा च प्रबोधा च सुप्रीता सुमनास्तथा ॥  
 मनोन्मनीति विख्याता योगिन्यः पान्तु बालकम् ।  
 सुव्रता रुक्मिणी चैव मन्दवेगा विभीषणा ॥  
 विद्युज्जिह्वा महानासा शतानन्दा तथा परा ।  
 बालदा प्रमदा चेति योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥  
 हरिणी चाऽथ वाराही वानरी क्रोष्टुकी तथा ।  
 कुबेरी कोटराक्षी च कुम्भकर्णा च चण्डिनी ॥  
 बलाद्विकारिणी चेति योगिन्यः पान्तु बालकम् ।  
 शुद्धा विशुद्धा श्रद्धा च योगसिद्धा मितम्बदा ॥  
 सुभगा शुभदा गौरी बलाविकरिणीति च ।  
 नानाविज्ञानविख्याता योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥  
 लम्बा प्रलम्बा च तथा लम्बकर्णा च लम्बिका ।  
 ज्वालाकराली कालिन्दी कालिकेति यथोदिताः ॥  
 स्वच्छन्दाऽऽचारसम्पन्ना योगिन्यः पान्तु बालकम् ।  
 प्रणीता सुप्रणीता च मालिनी विश्वमालिनी ॥  
 विमला कमला माली लोला रौद्री च विश्वदा ।  
 विचरन्त्यो यथाकामं योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥  
 वायुवेगा महावेगा सुवेगा वेगवाहिनी ।  
 शशिनी हंसिनी दृष्टिः पुष्टिः पौष्टिकसिद्धिदा ॥  
 दिव्यानुभावा बाहिन्यो योगिन्यः पान्तु बालकम् ।  
 भ्रमिनी भामिनी नित्या निर्भिन्ना सुभगा गुहा ॥



क्लेदिनी द्राविणी वामा योगिन्यः पान्तु बालकम् ।  
 रुद्रशक्तिविनिष्क्रान्तमेकाशीतिक्रमोदितम् ॥  
 योगिनीवृन्दमेतद्धि सिद्धविद्याधराऽर्चितम् ।  
 स्कन्दग्रहाधिदैवं तद् बालकं पातु सर्वदा ॥  
 शङ्कुनी रेवती देवी शिखा च मुखमण्डिका ।  
 प्रलम्बा पूतनाख्या च कटपूतनिका पुनः ॥  
 विजया गोमुखी धूम्रा मुण्डमाला तथाऽपरा ।  
 अधोलम्बा च पद्मा च कुमुदाऽप्यथ चाऽम्बिका ॥  
 मानिनी चैव काली च देवी प्रेतमुखी तथा ।  
 ऐन्द्री मार्जारिका भूयः कुरुणी च शुभा कृशा ॥  
 कालरात्रिश्च माया च लोहिता पिलिपिञ्चिका ।  
 भीतारणी चक्रवादा भीषणा दुर्जयापरा ॥  
 तापनी कटकोली च मुक्तकेशी महाबला ।  
 अहङ्कारी जया तद्वदजमेषा त्रिदण्डिका ॥  
 रोदनी मुकुटाभिख्या ललाटा पिङ्गला तथा ।  
 शीतला बालिनी चैव तापसी पापराक्षसी ॥  
 मानसा धनदा देवी बलानावर्त्तिनी तथा ।  
 यमुना जातवेदा च मानिनी कलहंसिनी ॥  
 बालिका देवदूती च वायसी यक्षिणी तथा ।  
 स्वच्छन्दा पालिका चैव वासिनी चाम्बिकेति च ॥  
 पञ्चाशत्तु कुलोत्पन्नाश्चतुष्षष्टिसमीरिताः ।  
 योगिन्यो नित्यसन्तुष्टाः स्कन्दाऽपस्मारदेवताः ॥  
 नानारक्षाधिकारस्था बालकं पान्तु सर्वदा ।  
 महालक्ष्मीर्महातङ्गा महासेना महाबला ॥  
 महाकम्पा महाभीमा महातेजा महोत्सवा ।  
 महासेना महाचण्डा मोहिनी वीरनायका ॥  
 एकवीरा विशालाक्षी सुकेशी सुमनास्तथा ।  
 सुकेशिनी च सन्तुष्टा दण्डिनी च विलम्बिनी ॥  
 भामिनी चाऽथ सौवर्णी सिंहवक्त्रा कटङ्किनी ।  
 भ्रमरा चञ्चला चम्पा सिद्धिदा च तथाऽपरा ॥  
 शातोदरी धृतिः स्वाहा स्वधाख्या च सनातनी ।  
 शम्बरा च तथा देवी नीलग्रीवा तथाऽम्बिका ॥



वितला गन्धिनी वामा क्रीडन्ती चैव वाहिनी ।  
 कर्षिणी मालती फुल्ला कालकर्णी च चण्डिका ॥  
 चित्रानना गुहा चेति पार्वती सङ्गतिर्गता ।  
 पञ्चाशन्नवसम्पन्ना शकुनी दैवतप्रिया ॥  
 योगिन्यः कामरूपिण्यो बालकं पान्तु सर्वदा ।  
 विश्वन्तपा प्रभावज्ञा सर्वज्ञा सर्वगा गुहा ॥  
 दुर्गा सरस्वती ज्येष्ठा श्रेष्ठा पद्मा पराऽपरा ।  
 प्रमदा रोहिणी शीता प्रह्वी प्रह्लादिनी विभा ॥  
 विभूतिविततिः प्रीतिः प्रकृतिः प्रमतिर्यथा ।  
 एता भगवता सृष्टा योगिन्यो योगसिद्धिदाः ॥  
 पञ्चविंशतिराख्याता रेवती शक्तिगोचरा ।  
 जगदाध्यायनकरा बालकं पान्तु सर्वदा ॥  
 नन्दश्चैवोपनन्दश्च गोमतिः सुमतिस्तथा ।  
 विद्युज्जिह्वो महाकालः करालस्तिमिलोचनः ॥  
 तेजहोडा विरूपाक्षो गोमुखो वडवामुखः ।  
 कालाननः करालश्च शङ्कुकर्णो विभीषणः ॥  
 एते शकुन्दनोत्पन्ना वीराः षोडश राक्षसाः ।  
 पूतना देवता जुष्टा बालकं पान्तु सर्वदा ॥  
 वज्रिणी शक्तिनी चाढ्या दण्डिनी खड्गिनी तथा ।  
 पाशिनी ध्वजिनी देवी गदिनी शूलिनी परा ॥  
 पविनी चक्रिणी चेति सर्वाकारा भयप्रदाः ।  
 एता दिङ्निर्मिता देव्यो योगिन्यो देवकीतिताः ॥  
 अधिभूतप्रधाना या पायात्सा शान्तपूतना ।  
 प्रसन्ना मातरः सर्वा बालकं पान्तु सर्वदा ॥  
 अर्थको जलको भूमा उग्रः स्कन्दश्च कीर्तितः ।  
 वीरेशः पितृभिः सृष्टा नैजमेषाधिदेवताः ॥  
 पञ्चशक्तिप्रधानास्ते बालकं पान्तु सर्वदा ।  
 भैरवा वीरमाता<sup>१</sup> च क्षेत्रपाला विनायकाः ।  
 डाकिन्यो रुद्रशाकिन्यो यक्षरक्षांसि पन्नगाः ॥  
<sup>२</sup>वराश्चावान्तरा भूता मनुष्याः पशवो मृगाः ।  
 सरीसृपाश्च सन्तुष्टा बालकं पान्तु सर्वदा ॥



आदित्या वसवो रुद्राः पितरो मरुतस्तथा ।  
 मुनयो मनवः काला ग्रहयोगाः सनातनाः ॥  
 सिद्धाः साध्याश्च गन्धर्वा देव्यश्चाऽप्सरसां वराः ।  
 विद्याधरा महादैत्या बालकं पान्तु सर्वदा ॥  
 सहजा योगजा चैव वीरजा मन्त्रजा तथा ।  
 योगिन्यो योगवनिता नानाविभवगोचराः ॥  
 भवानी नाम सन्तुष्टा बालकं पान्तु सर्वदा ।  
 भूलोके च भुवलोके स्वलोके याश्च मातरः ॥  
 अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च क्रीडन्त्योऽनन्तमूर्तयः ।  
 प्रसन्नयोगसम्पन्ना दिव्यैश्वर्यसमन्विताः ॥  
 स्वच्छन्दपदसम्भूतैर्भैरवैः परिवारिताः ।  
 रक्षन्तु बालकं प्रीताः शान्तिर्नयतु चेतसा ॥  
 दिव्यं स्तोत्रमिदं पुण्यं बालरक्षाधिकारकम् ।  
 जपेत्सन्तानरक्षार्थं बालद्रोहोपशान्तिदम् ।

इति बालस्तवः ।

इदं च स्तवान्तं कृत्यमाद्यमासवर्षयोर्द्वितीयादिदिन-मासवर्षेष्वपि  
 कार्यं विशेषस्तूच्यते कुमारतन्त्रे—

प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा योगिनी तदा ।  
 अथवा नन्दिनी नाम्ना पूतनाऽऽक्रमते शिशुम् ॥  
 तद्गृहीतस्य बालस्य ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ।  
 गात्रशोषश्च वैवर्ण्यं नाऽऽहारेच्छा भृशं भवेत् ॥  
 छर्दि-मूर्च्छा च कम्पश्च हीनज्वरयुतस्तदा<sup>१</sup> ।  
 विधानं तत्र वक्ष्यामि येन मुञ्चति पूतना ॥  
 नदी मृत्तिकया कुर्याच्छोभनां पुत्रिकां ततः ।  
 शुक्लौदनं शुक्लगन्धस्तथा शुक्लाऽनुलेपनम् ॥  
 शुक्लपुष्पाणि वै पञ्च ध्वजाः पञ्च प्रदीपिकाः ।  
 स्वस्तिकाः पञ्च पूर्वाह्णे पूर्वस्यां दिशि संयतः ॥  
 बलिं दद्यादथोशीरश्चेतसर्षपमेव<sup>२</sup> वा ।  
 शिवनिर्माल्य-मार्जार-नृकेशान्निम्बपत्रकम् ॥

१. अ ज्ञ न-तथा । २. ज्ञ-दथोश्चेतसर्षपोशीरमेव वा ।



गव्यं घृतं चेत्येतेन धूपयेच्चैव बालकम् ।  
 एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे शान्तिवारिणा ॥  
 स्नापयेद् बालकं पश्चाद्भोजयेच्चापि भिक्षुकम्<sup>१</sup> ।  
 क्षीरेण भोजयेदेवं सुस्थो भवति बालकः ॥

शान्तिवारिणेति शन्न इन्द्राग्नी शन्नो वात इत्यादिकैः स्व-स्वशाखा-  
 पठितैर्मन्त्रैरभिमन्त्रितं वारि शान्तिवारि । अथवा वक्ष्यमाणमन्त्रेण  
 शतकृत्वोऽभिमन्त्रितं वारि शान्तिवारि ।

द्वितीयदिवसे मासे हायने वा सुनन्दना ।  
 गृह्णाति पूतना बालं योगिनी स्वस्तनाऽपि वा ॥  
 ततो भवेज्ज्वरः पूर्वं सङ्कोचो हस्त-पादयोः ।  
 दन्तान्प्रखादत्यनिशं निमीलयति चक्षुषी ॥  
 आहारं च न गृह्णाति दिवारात्रं च रोदिति ।  
 अक्षिरोगं छर्दनं च भवेद्भ्रीतिः पुनः पुनः ॥  
 कृशत्वं च प्रजायेत इत्येतच्छुलक्षणम् ।  
 तण्डुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम् ॥  
 त्रयोदशध्वजा दीपाः स्वस्तिकाय बलोदना ।  
 प्रस्थप्रमाणपिष्टेन सिद्धापूपाश्च मत्स्यकाः ॥  
 मांसं चेत्येतदखिलं पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।  
 पश्चिमायां च सन्ध्यायामेतद् दद्याद् दिनत्रयम् ॥

धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ।

तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा पूतनाऽभिधा ।  
 गृह्णीयाद्योगिनी बालं ततः पूर्वं ज्वरो भवेत् ॥  
 प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां कारयेत्ततः ।  
 रक्तौदनं ध्वजो रक्तः स्वस्तिको रक्त एव च ॥  
 रक्तपुष्पं रक्तगन्धस्तथा रक्ताऽनुलेपनम् ।  
 पश्चिमायां च सन्ध्यायामुदीच्यां निक्षिपेद् बलिम् ॥

धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ।

चतुर्थेऽहनि मासे तु वर्षे<sup>२</sup> गृह्णाति बालकम् ।  
 तुषमण्डनिका नाम पूतना चाऽथ योगिनी ॥

१. ड-बालकम् । २. ड-वर्ष ।



भीषणाख्या ततस्तस्य जायते प्रथमं ज्वरः ।  
 गात्रभङ्गो स्थितिर्मूर्द्धो वैवर्ण्यं चाऽक्षिमीलनम् ॥  
 वैकल्यं श्यामता श्वासः कासोऽरुचिरितीङ्गितम् ।  
 तिलपिष्टमयैः कृत्वा पुत्रिकां बिल्वकण्टकैः ॥  
 अष्टाङ्गं रचयेत्पुष्प-युक्तं शुक्लध्वजोऽर्जुनः ।  
 स्वस्तिकोऽर्द्धप्रस्थसिद्धं भक्तं तावदपूपकाः ॥  
 त्रिसन्ध्यं पश्चिमाऽऽशायां बलिं दद्यात्प्रयत्नतः ॥  
 तावदपूपका इति अर्द्धप्रस्थपरिमितेनाऽन्नेन कृता इत्यर्थः ।  
 गोशृङ्गं सर्पनिर्मोकं लशुनं निम्बपत्रकम् ।  
 मनुष्यकेश-मार्जार-लोमान्याज-घृतं तथा ॥  
 एतैश्च धूपयेदेकनिशि सन्ध्यात्रयेऽपि च ॥

एकनिशि एकस्मिन्नेव दिने बलिरित्यर्थः । शान्तिस्नानमन्त्र-  
 ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ।

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा पूतना शिशुम् ।  
 विडालिकाख्या गृह्णीयात्प्रथमं जायते ज्वरः ॥  
 हिकका श्वासश्च शूलं च गात्रभङ्गोऽरुचिस्तथा ।  
 तण्डुलप्रस्थपिष्टेन निर्मायाऽथोऽपुत्रिकाम् ॥  
 शुक्लोदनं ध्वजाः पञ्च स्वस्तिकाः पञ्च चोज्ज्वलाः ।  
 पञ्च दोषास्त्रशुक्लानि कुसुमानि च चन्दनम् ॥  
 अपराह्णे वृक्षमूले पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।

धूपस्तु गोशृङ्गं लशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानमन्त्रब्राह्मण-  
 भोजनानि च पूर्ववत् ।

षष्ठेऽहनि तथा मासे हायने चापि बालकम् ।  
 पूतना शकुनिर्नाम गृह्णीयात्तदनन्तरम् ॥  
 ज्वर उद्वेजनं गात्रे शोषः श्वासोऽरुचिस्तथा ।  
 कासश्च हस्त-पादाऽक्षिसङ्कोचश्चेति लक्षणम् ॥  
 तण्डुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम् ।  
 कृष्णोदनं ध्वजाः पञ्चकृष्णाः स्वस्तिकपञ्चकम् ॥  
 कृष्णमेवाऽथ मत्स्यांश्च पायसं दुग्धमेव च ।  
 मांसं चाऽपूपकास्त्वर्द्धप्रस्थपिष्टविनिर्मिताः ॥



## प्रथमदिनादिषु देवीग्रहीतबालकरक्षणम्

१४७

अपराङ्गले पश्चिमायां निक्षिपेद् बलिपुत्रिकाम् ।  
 पुत्रिकां पूर्ववत्कृत्वा पललं शूलपाचितम् ॥  
 मत्स्याः पर्पटिकाश्चैव रक्तं च प्रस्थसम्मितम् ।  
 उदीच्यां पूर्वसन्ध्यायां बलिर्देयः प्रशान्तये ॥

अत्र बलिदानयोर्विकल्पः । तयोरेव कालयोर्बालकस्य धूपो देयः  
 गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । तथा शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च । बलि-  
 दानपूजायां मन्त्रस्तु—ॐ फट् फट् स्वाहा ।

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा शुक्लरेवती ।  
 गृह्णाति पूतना बालं ततः स्यात्प्रथमं ज्वरः ॥  
 गात्रभङ्गोऽथ विद्वेष आहारे कम्परोदने ।  
 इत्येतल्लक्षणं तत्र बलिर्देयः प्रशान्तये ॥  
 प्रस्थसम्मितपिष्टेन सम्यक् कृत्वाऽथ पुत्रिकाम् ।  
 सप्तध्वजाः सप्तदीपाः स्वस्तिकाः सप्त वै तथा ॥  
 पुष्पाणि मत्स्य-मांसं च भक्तं चेत्युदगाहरेत् ।

धूपस्तु गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनम् ।  
 मन्त्रस्तु—ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे चाऽऽक्रमते शिशुम् ।  
 बिडालिका नामधेया पूतनाऽस्य ततो ज्वरः ॥  
 गात्रभेदोऽत्र रुदितं रोदनं नेत्रमीलनम् ।  
 जिह्वाशोषः शिरस्फोट आहारद्वेष एव च ॥  
 अक्षिरोगो भवेदेतदिङ्गितं तद्ग्रहाच्छिशोः ।  
 तण्डुलप्रस्थपिष्टेन पुत्तलां कारयेत्ततः ॥  
 पायसं मधु-सर्पिश्च क्षीर-लाजाश्च शङ्कुली ।  
 गुग्गुलुं मेषमांसं च तथा पर्पटिका अपि ॥  
 ध्वजा दीपाश्च चत्वारो गन्धा नानाविधा अपि ।  
 सुमनांसि च रक्तानीत्येवं मन्त्रोदितो बलिः ॥  
 अमुं समाहरेत्पूर्वं सन्ध्यायां दक्षिणादिशि ।  
 कृष्णाऽष्टम्यां वक्ष्यमाण-मन्त्रेणाज्जेन संयतः ॥

ॐ नमो नारायणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय । ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।  
 अनेनैव च मन्त्रेण पूजादिबलिहरणान्तं कर्म कुर्यात् । धूपस्तु गोशृङ्ग-  
 लशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च । अत्र कृष्णाष्टम्यां

१. न इ ट-शुष्क ।



बलिहरणमिति न नियमार्थम् । किन्तु सति सम्भवे प्राशस्त्यार्थम् ।  
अन्यथा तत्प्रतीक्षायां शिशुविनाशापत्तेः ।

नवमे दिवसे मासे हायने वाऽपि बालकम् ।  
गृह्णाति मदना नाम्नी पूतना तदनन्तरम् ॥  
ज्वरश्छर्दिर्नृणाऽऽधमानं कास-श्वासश्च तृष्णता ।  
गात्रभङ्गश्च शूलं च चिह्नान्येतानि बालके ॥  
प्रस्थमात्रेण पिष्टेन विनिर्मयि च पुत्रिकाम् ।  
ओदनं मत्स्य-मांसं च पर्पटीं चक्षुमूलिकाम् ॥  
निक्षिपेत्पूर्वसन्ध्यायामुत्तरस्यां बलिं दिशि ।

अत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय कृष्णमण्डले बलिमादाय  
हर हुं फट् स्वाहा । धूपस्तु गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं  
ब्राह्मणभोजनं च ।

दशमे दिवसे मासे हायने वाऽथ बालकम् ।  
पूतना रेवती नाम्नी गृह्णीयाद् बालकं ततः ॥  
ज्वरः छर्दिः कास-श्वासौ शूलं चेत्येतदीरितम् ।  
यत्र द्वेषश्च तत्राऽयं बलिर्देयो विचक्षणैः ॥  
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां तत्र प्रकल्पयेत् ।  
अष्टाङ्गं लेखयेत्तत्र बिल्ववृक्षस्य कण्टकैः ॥  
गुडोदनं च सर्पिश्च ध्वजानां पञ्चविंशतिः ।  
स्वस्तिकानां प्रदीपानां पञ्चविंशतिरेव च ॥  
चत्वारि रक्तपुष्पाणि ह्येतदक्षिणदिग्गतः ।  
सन्ध्यात्रये वक्ष्यमाण-मन्त्रेणाऽनेन निक्षिपेत् ॥

अत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हनं, हुं फट् स्वाहा । धूपो  
गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ।

एकादशदिने मासे हायने पूतनाऽर्चिका ।  
गृह्णाति बालकं पञ्चाज्ज्वरस्तस्य प्रजायते ॥  
अत्रद्वेषो मुखे शोषो गात्रभङ्गश्च रोदनम् ।  
ऊर्ध्वदृष्टिरपीत्येतल्लक्षणं तद्गृहाच्छिशोः ॥  
पुत्रिका माषपिष्टेन रचित्वा शुक्लमोदनम् ।  
पुष्पाण्यपि च शुक्लानि ध्वजानां पञ्चविंशतिः ॥  
स्वस्तिकानां प्रदीपानां पञ्चविंशतिरेव च ।  
एतत्सर्वं यमाशायां सन्ध्यायां प्रातराहरेत् ॥



बौधायनोक्ता ज्वराद्युत्पत्तौ शान्तयः

१४६

अत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते ताराय चन्द्रहास-वज्रहस्ताय ज्वल-  
दुष्टग्रहाय ॐ फट् स्वाहा । धूपस्तु-गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्ति-  
स्नानं ब्राह्मणभोजनं च । प्रथमदिवस-मास-वर्षगृहीतपूतनाहरोक्तं  
द्रष्टव्यम् ।

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे या पूतना शिशुम् ।  
अद्भुताख्या प्रगृह्णाति ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ॥  
रोदनं सर्वदा दन्त-खादनं रक्तनेत्रता ।  
रोमाञ्चस्ताप इत्येतदखिलं तस्य लक्षणम् ॥  
तण्डुलप्रस्थपिष्टेन कृत्वा तन्नामपुत्रिकाम् ।  
त्रयोदशस्वस्तिकाश्च ध्वजा दीपास्त्रयोदश ॥  
अपूपा मत्स्य-मांसं च तथा पर्पटिका अपि ।  
एतत्सर्वं दक्षिणस्यां दिशि मन्त्रेण निक्षिपेत् ॥

मन्त्रस्तु—ॐ नमो नारायणाय प्रज्वलद्बज्रहस्ताय हर हर शोषय  
शोषय मर्दय मर्दय पातय पातय हन हन दुष्ट सत्त्वानां हुं फट् स्वाहा ।  
गोशृङ्गमित्यादिको धूपः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ।

अथ बौधायनोक्ता ज्वराद्युत्पत्तौ शान्तयः ।

प्रतिपदि कष्टं सन्देहो वा दिनान्यष्टादश, अग्निदेवता, अग्निर-  
स्मीति पूजामन्त्रः, हैमी प्रतिमा, घृतधूपो घृतदीपश्च, यथासम्भवं  
नैवेद्यं घृतं होमद्रव्यं शान्तिर्भवति । अत्र सर्वत्र प्रथमं तत्तत्तिथिदेवता-  
मन्त्रजपः सहस्रादिसङ्ख्याकः । पश्चात्पूजा-होमदानादि होमसंख्या  
चाऽष्टोत्तरशतादिव्याधितारतम्येन कल्प्या । सहस्रं मृत्युनिर्देशः ।  
द्वितीयायां दिनानि षोडश, ब्रह्मा देवता, ब्रह्मजज्ञानमिति जप-पूजा-  
होममन्त्रः, अगुरुर्धूपः, घृतदीपः, सर्वत्र शर्करानैवेद्यं, तिल-यवाऽऽज्यानि  
होमद्रव्यं प्रतिमा च हैमी । तृतीयायां दिनानि नव, पार्वतीदेवता  
गौरीमिमायेति मन्त्रः, दूर्वाभिः पूजा, कुङ्कुम-धूपः, गुग्गुलुर्वा धूपो घृत-  
दीपः, द्राक्षा-क्षीराऽऽज्यं नैवेद्यम्, गायसं मधुराक्तं दूर्वाश्च होमद्रव्यं,  
प्रतिमा हैमी । चतुर्थ्यां दिनानि षोडश, गणपतिदेवता, गणानान्त्वेति  
पूजा-होमादिमन्त्रः, हैमी प्रतिमा, कुङ्कुमं रक्तचन्दनं गन्धः, करवीरादीनि  
पुष्पाणि, अगुरुर्धूपो घृतदीपो लङ्डुका इक्षुखण्डानि नैवेद्यं, नारिकेर-  
शकलानि कदलीफलानि च होमद्रव्यम् । पञ्चम्यां दिनान्येकविंशतिर्नागा



देवताः, हैमी प्रतिमा, नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति मन्त्रः, चन्दनं गन्धः, सुरभि-  
 पुष्पाणि, घृत-धूपः, पयो नैवेद्यं, तिल-यवाऽऽज्यपायस-शर्करा-मधूनि  
 यथायोगं होमद्रव्यम् । षष्ठ्यां दिनानि द्वादश, स्कन्दो देवता, 'द्रप्सश्च  
 स्कन्दे'ति पूजामन्त्रः, पीतं चन्दनं रक्तं वा गन्धः, रक्तानि पुष्पाणि  
 जातीपुष्पाणि वा, जटामांसी धूपः, लड्डुकादि नैवेद्यं, फलानि वा  
 तिल-यवाऽऽज्यं होमद्रव्यं, हैमीप्रतिमा शान्तिर्भवति । सप्तम्यां  
 दिनान्यष्टौ, दिननाथो देवता, आसत्येन आकृष्णेनेति वा मन्त्रः, हैमी  
 ताम्रजा वा प्रतिमा, कुङ्कुमं गन्धः, करवीरादीनि पुष्पाणि, गुग्गुलो  
 धूपः, शर्कराघृतसंयुतं पायसं, नानाफलानि च नैवेद्यमर्कसमिधः पायसं  
 होमद्रव्यम् । अष्टम्यां दिनानि त्रयोदश, ईश्वरो देवता तमीशानमिति  
 पूजामन्त्रः, राजती प्रतिमा, कर्पूरमिश्रितं चन्दनं गन्धः, बिल्वदलानि  
 अर्कपुष्पाणि नालोत्पलानि च पुष्पाणि, जटामांसी धूपः, पायसं नाना-  
 भक्षाश्च नैवेद्यं, मधुराक्तास्तिला होमद्रव्यं साङ्गशान्तिर्भवति । नवम्यां  
 दिनान्यष्टादश, भगवती दुर्गा देवता, जातवेदस<sup>१</sup> इति पूजामन्त्रः, हैमी  
 प्रतिमा, रक्तं चन्दनं, गन्धः कुङ्कुमादिकं वा, जपाकुसुमादिकं पुष्पं,  
 गुग्गुलुधूपः, घृतपक्वं नैवेद्यं त्रिमधुराक्तं पायसं होमद्रव्यं देव्यै दधि-  
 भक्त<sup>२</sup>पात्रदानं तद्भक्त्या वा । दशम्यां दिनानि पञ्चविंशतिः, यमो  
 देवता, हैमी लौही वा प्रतिमा, यमाय त्वेति पूजामन्त्रः, चन्दनं मृग-  
 मदश्च गन्धः मधुसर्ज्जरसश्च धूपः, तिलतैलदीपः, बिल्वपत्राणि कृष्ण-  
 तिलाश्च पूजाद्रव्यं, कृसरान्नं नैवेद्यं, घृतं मधु-तिलमुद्गा होमद्रव्यम् ।  
 एकादश्यां दिनानि सप्त, विश्वेदेवा देवता, विश्वेदेवास इति मन्त्रः,  
 हैमी प्रतिमा, श्वेतचन्दनगन्धः, कृष्णाऽगुरुधूपः, घृतदीपः, तुलसीपत्राणि,  
 पूजायां यवमोदकं नैवेद्यं, तिल-यव-मध्वाज्यं होमद्रव्यम् । द्वादश्यां  
 दिनानि दश, रुद्रो देवता, या ते रुद्रेति मन्त्रः, हैमी प्रतिमा, चन्दनं  
 श्रीखण्डं, अगुरुधूपो घृतदीपः, पायसं नैवेद्यं, चम्पकं पुष्पं कमलं वा,  
 पूजायां तिल-यवाऽऽज्य-त्रीहिमधूनि होमद्रव्यं, शान्तिर्भवति । त्रयोदश्यां  
 दिनान्यष्टौ, शशी देवता, रौक्मी राजती वा मूर्तिः, आप्यायस्वेति<sup>३</sup>  
 मन्त्रः, पूजादौ श्वेतचन्दनं गन्धः, चन्दनधूपः, घृतदीपः, दधि-शर्करा-  
 नैवेद्यं, तिलयवास्त्रिमध्वक्तहोमद्रव्यं, शान्तिर्भवति । चतुर्दश्यां दिनानि  
 द्वाविंशतिः, शम्भुर्देवता, शम्भवायेति मन्त्रः, रौक्मी राजती वा मूर्तिः,

१. ऋ. सं. १।७।७ । २. ज्ञ-नक्त ।

३. ऋ. सं. १।६।२२।



श्वेतचन्दनं गन्धः, अर्कपुष्पं विल्वदलानि वा, अगुरुर्धूपः, पायसं नैवेद्यं त्रिमध्वक्तास्तिला होमद्रव्यम् । अमायां दिनान्यष्टादश शची देवता होता यक्षदिति<sup>१</sup> मन्त्रः, हैमी प्रतिमा, कुङ्कुमादि गन्धः, नाना सुगन्ध-पुष्पाणि, कृष्णाऽगुरुर्धूपः, फेणिका-पूरिकादिनैवेद्यं, शर्कराघृतपायसं होमद्रव्यम् । पूर्णिमायां दिनानि षोडश, चन्द्रो देवता, दमनकं पूजार्थ-मन्यत्सर्वं त्रयोदशीशान्तावुक्तं ग्राह्यम् ।

इति तिथिदोषशान्तिः ।

### अथाऽऽश्वलायनोक्ता वारशान्तयः ।

आदित्यवारस्य रुद्रो देवता, या ते रुद्रेति मन्त्रः, हैमी राजती वा मूर्तिः, चन्दनं गन्धः, अगुरुर्धूपः, घृतदीपः, पायसं नैवेद्यं, होमद्रव्यं च । सोमवारस्य पार्वती देवता, गौरीमिमायेति<sup>२</sup> मन्त्रः, हैमी राजती वा मूर्तिः, कुङ्कुमगन्धः, सुगन्धिपुष्पम्, अगुरुर्धूपः, घृतदीपः, नानाभक्ष्याणि नैवेद्यं, तिलयवा होमद्रव्यं देवभक्तसन्तर्पणं च । भौमस्य स्कन्दो देवता-ऽन्यत्सर्वं षष्ठीशान्तिवत् । बुधवारस्य विष्णुर्देवता, विष्णो रराटमसीति मन्त्रः, हैमं स्वरूपं, पीतचन्दनं, पीतपुष्पाणि, कमलानि, अगुरुर्धूपो घृतदीपः, यवलङ्गुका नैवेद्यं, तिल-यवा-ऽऽज्यहोमः । गुरुवासरस्य ब्रह्मा देवता, ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः, हैमी प्रतिमा, कुङ्कुमगन्धः, पर्ण-पुष्पं, गुग्गुलुर्धूपः, शर्कराऽऽज्यं नैवेद्यं, तिल-यव-धाना घृतं होमद्रव्यम् । शुक्रवारस्य इन्द्रो देवता, त्रातारमिन्द्रमिति<sup>३</sup> मन्त्रः, हैमी राजती वा मूर्तिः, चन्दनं गन्धः, चम्पकं पुष्पम्, अगुरुर्धूपः, घृतपक्वं नैवेद्यं, तिल-यवाऽऽज्यमधूनि<sup>४</sup> होमद्रव्यम् । शनिवारस्य यमो देवता, यमेन दत्तमिति<sup>५</sup> मन्त्रः, हैमी लौही वा मूर्तिः, ताम्रजेति केचित्, चन्दनं गन्धः, पुष्पं कृष्णं, मधु धूपः, तिलतैलदीपः, मधु-मत्स्याश्च नैवेद्यं, तिला मधु च होमद्रव्यं, शान्तिर्भवति ।

इति वारशान्तयः ।

१. ऋ. सं. २।२।४ । २. ऋ. सं. २।३।२२ । ३. ऋ. सं. ८।७।३२।  
४. उ क्ष-मधुनि । ५. ऋ. सं. २।३।११ ।



## अथ नक्षत्रशान्तयः ।

वृद्धवशिष्ठः—

रोगशान्तिं प्रवक्ष्यामि रोगार्त्तानां शरीरिणाम् ।  
 बलिपूजाङ्गहोमैश्च<sup>१</sup> जपब्राह्मणभोजनैः ॥  
 यस्मिन् धिष्ण्ये यदा नृणां रोगः सञ्जायते तदा ।  
 तद्धिष्ण्यपूजा कर्त्तव्या तत्तदीश्वरतुष्टये ॥  
 सुवर्णेन प्रमाणेन तदर्द्धाऽर्द्धेन वा पुनः ।  
 धिष्ण्येशप्रतिमा कल्प्या यथावित्तानुसारतः ॥  
 ईशान्यामथवा प्राच्यामुदीच्यां दिशि संलिखेत् ।  
 तण्डुलोपर्यष्टदलं पद्मं गोमयमण्डले ॥  
 पञ्चामृतैः सलेपैश्च तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ।  
 स्नाप्य कल्पोक्तमन्त्रेण प्रतिमां स्थापयेत् पुनः ॥  
 कर्णिकायां सुसंस्थाप्य ध्यात्वा देवं समर्चयेत् ।  
 तद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यै रक्तधूपोपहारकैः ॥  
 आरक्तवर्णं कुम्भं च पञ्चत्वक्पल्लवैर्युतम् ।  
 शुक्लवस्त्रस्वर्णरत्नसवौषधिसमन्वितम् ॥  
 मृत्पञ्चगव्यसद्वीज-फलक्षौद्र-कुशान्वितम् ।  
 देवस्य पूर्वतः स्थाप्यं जलमन्त्रैः समर्चयेत् ॥  
 प्रतीच्यां स्थण्डिले विहितं विधिवत्स्थापयेत्ततः ।  
 मुखान्ते जुहुयादुक्त-द्रव्येणाऽष्टसहस्रकम् ॥  
 तिलहोमं व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रकम् ।  
 पूर्णाहुतिं च जुहुयात्सम्यक्-जपादिपूर्वकम् ॥  
 ततः शुद्धोपविष्टस्य रोगिणः प्राङ्मुखस्य च ।  
 मन्त्रपूतैः कुम्भजलैरब्लिङ्गैर्वारिमन्त्रकैः ॥  
 मार्जनं कारयेत्तस्य सम्यक् सङ्कल्पपूर्वकम् ।  
 नीराजनं च शुद्धात्मा पूजास्थानं समागतः ॥  
 देवं हुताशनं भक्त्या प्रणम्य प्रार्थयेदिति ॥  
 अमृतोद्भव धिष्ण्येश ! यतस्त्वं शङ्करात्मकः ।  
 रोगादस्माच्च मां रक्ष तव वश्यश्च धिष्ण्यपः ॥  
 इति प्रार्थ्य ततो दद्यात्प्रतिमां वस्त्रसंयुताम् ।



दक्षिणासहितां भक्त्या आचार्याय कुटुम्बिने ॥  
 ब्राह्मणाय यथाशक्त्या ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।  
 कृत्वा नक्षत्रपूजान्तं तिथिवासरयोरपि ॥  
 सर्वान्कामानवाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते ।  
 अश्विन्यामुत्थितो व्याधिर्नवरात्रेण मुञ्चति ॥  
 देवस्य त्वेति मन्त्रस्य गायत्री कश्यपोऽश्विनौ ।  
 श्वेतवर्णौ सुधापूर्ण-कुम्भाम्भोजधरौ पृथक् ॥  
 चन्दनोत्पल-पुष्पा-ऽऽज्य-गुग्गुलौ तु गुडप्रियौ ।  
 क्षीर-लड्डूकभोक्तारौ समिधः क्षीरवृक्षजाः ॥  
 गुडोदनबलिं दद्याद्दीपैः सार्द्धं निशामुखे ।  
 भरण्यामुत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः ॥  
 मासेन मुञ्चत्यथवा देवस्य कुटिला गतिः ।  
 त्रैयम्बकस्य मन्त्रस्य प्रोक्ताश्छन्दर्षिदेवताः ॥  
 गन्धोऽगरु करवीरं पुष्पं धूपश्च गुग्गुलुः ।  
 अष्टदीपं च सर्वेषां नैवेद्यं च गुडोदनम् ॥  
 पाशदण्डधरो रक्तस्त्वाज्य-मध्वाक्षतैर्हविः ।  
 महिषीनायकारूढः कृसरान्नं बलिं हरेत् ॥  
 वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बलिं सम्यक् प्रदापयेत् ।  
 कृत्तिकासूत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ॥  
 सुक् सुवाभयवरदः स्ववर्णो मेषवाहनः ।  
 मेधातिथिर्जगत्यग्नी पुनन्तु मामित्यस्य च ॥  
 चन्दनं यूथिकापुष्पं घृत-दीपः सगुग्गुलुः ।  
 नैवेद्यं तिलमाषान्नं वरकान्नेन संयुतम् ॥  
 गुडोदनं हविस्तत्र पायसेन बलिं हरेत् ।  
 रोहिण्यामुत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ॥  
 नमो ब्रह्मणमन्त्रस्य गायत्रीविधिरीश्वरः ।  
 शुक्लः कमण्डलुस्त्वक्षसूत्राभयवरप्रदः ॥  
 चन्दनं कमलं पुष्पं सदशाङ्गं च गुग्गुलुम् ।  
 नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं सर्वदा तैर्हविर्भवेत् ॥  
 दधि-क्षीर-घृत-क्षौद्र-शाल्यन्नेन बलिं हरेत् ।  
 चन्द्रभे चोत्थितो व्याधिः पञ्चरात्रेण मुञ्चति ॥



गदावरदपाणिश्च श्वेतोऽसौ रथवाचनः ।  
 नवो नवो भवत्यस्य गायत्री गौतमः शशी ॥  
 चन्दनं कुमुदं पुष्पं दशाङ्गं पायसोदनम् ।  
 नैवेद्यं मण्डका-स्पृष्ट-घृत-क्षौद्रसमन्वितम् ॥  
 शक्करा-दधिमिश्रेण शुक्लान्नेन बलिं हरेत् ।  
 आर्द्रायामुत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः ॥  
 मासेन मुञ्चत्यथवा दैवस्य कुटिला गतिः ॥  
 शुद्धस्फटिकसङ्काश-शूलखड्गाभयेष्टदः ।  
 नमः शङ्करायेत्यस्य बृहतीशो विधी ऋषिः ॥  
 चन्दनं सौरभं पुष्पं दशाङ्गं पायसोदनम् ।  
 समध्वाज्यं हविस्तत्र दध्योदनबलिं हरेत् ॥  
 पुनर्वसौ भवेद्व्याधिर्नवरात्रेण मुञ्चति ।  
 कमण्डल्वक्षसूत्रेध्मदर्भास्तुक्स्वभृत् सदा ॥  
 अदितिर्द्यौश्च मन्त्रस्य त्रिष्टुभो द्रुहिणोऽदितिः ।  
 हरिद्रा-कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं सेवन्तिकाह्वयम् ॥  
 धूपो मलयजं पिष्टं घृतान्नं पीतवर्णकम् ।  
 घृताक्ततण्डुलहविः पीताऽन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 पुष्ये समुत्थितो व्याधिः सप्तरात्रेण मुञ्चति ।  
 पीतो दण्ड-कमण्डल्वक्षसूत्राभयवरोद्यतः ॥  
 बृहस्पते परीत्यस्य त्रिष्टुप् जीवोऽङ्गिरा ऋषिः ।  
 कुङ्कुमं वारिजं पुष्पं नैवेद्यं घृतपायसम् ॥  
 मण्डका-गुडसंयुक्तमेतदेव हविर्भवेत् ।  
 समण्डक-घृतान्नेन बलिं तत्र प्रदापयेत् ॥  
 आश्लेषासूत्थितो व्याधिः क्लेशान्मासेन मुञ्चति ।  
 नमो अस्त्विति मन्त्रस्य विराडग्निश्च सर्पराट् ॥  
 मधुवर्णो भोगयुक्तः खड्गचर्मधरः शुभः ।  
 सकुङ्कुमाऽगरुगन्धपुष्पं चाऽगस्तिसम्भवम् ॥  
 घृत गुग्गुलु-धूपोऽत्र नैवेद्यं क्षीर-सर्पिषा ।  
 हविः साज्यं सुदध्यन्नं दध्योदनबलिं हरेत् ॥  
 मघायां चोत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः ।  
 अथवा सार्द्धमासेन धूम्रो दण्डपवित्रधृक् ॥



आयन्तु नस्त्विति चाऽस्य जगती पितरोक्षजः ।  
 चन्दनं चम्पकं पुष्पं धूपः सघृतगुग्गुलः ॥  
 नैवेद्यं घृतपिष्टान्नं तिलाज्यं सघृतं हविः ।  
 सतिलान्नं च मुद्गान्नं बलिं च पितृतृप्तये ॥  
 पूर्वाफाल्गुनभे व्याधिरर्द्धमासेन मुञ्चति ।  
 भग एव भगवानित्यस्याऽनुष्टुप् भगो विधिः ॥  
 यथा भयंकरः पद्म-वर्णः सिंहासने स्थितः ।  
 चन्दनं मालतीपुष्पं बिल्व-दीपो घृतोदनम् ॥  
 नैवेद्यं शर्करापूप<sup>१</sup>लङ्गुलाभिश्च संयुतम् ।  
 घृतोदनं हविस्तत्र पायसेन बलिं हरेत् ॥  
 अर्यमर्क्षे भवेद् व्याधिरर्द्धमासेन मुञ्चति ।  
 पद्मवर्णः पद्मसंस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ॥  
 अर्यमायाति मन्त्रस्य अर्यमा त्रिष्टुबब्जयः<sup>२</sup> ।  
 कर्पूरं कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं धूपकसंज्ञकम् ॥  
 घृत-गुग्गुल-धूपोऽत्र नैवेद्यं घृतपायसम् ।  
 होमद्रव्यं घृताऽन्नं स्याच्छाल्यन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 हस्ते समुत्थितो व्याधिर्नवरात्रेण मुञ्चति ।  
 उदुत्यमिति हिरण्यस्तूपो गायत्र्याऽदितिर्जपेत् ॥  
 रक्तगन्धं कुङ्कुमं च पुष्पं राजीवसंज्ञकम् ।  
 स-गन्धगुग्गुलो धूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ॥  
 मधुपुष्पं तिलाऽऽज्यान्नं दूर्वाभिः सहितं हविः ।  
 गुड-शर्कर-मध्वाज्यपिष्टाऽन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 चित्रायामुत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।  
 चित्रं देवानामित्यस्य त्वष्टाऽनुष्टुप् पितामहः ॥  
 अक्षसूत्राभयकरश्चित्रवर्णः शिवे रतः ।  
 स-कुङ्कुमाऽगरुगन्ध-कुसुमं चित्रवर्णकम् ॥  
 नैवेद्यं मोदकान्नाऽऽज्यं चित्राऽन्नं सघृतं हविः ।  
 तदन्नेन बलिं दद्यात्सर्वरोगापनुत्तये ॥  
 स्वात्पृक्षे चोत्थितो व्याधिः सर्वदा निधनप्रदः ।  
 एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चमासैर्वाऽपि विमुञ्चति ॥



स नः पितेति मन्त्रस्य गायत्री मरुदङ्गिराः ।  
 खड्गचर्मधरः कृष्णो गन्धः कृष्णाऽगरुर्भृशम् ॥  
 पुष्पं दमनकं धूपः चन्दनाऽगुरुगुगुलुः ।  
 नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं हविस्तेन बलिं हरेत् ॥  
 द्विदैवभे<sup>१</sup> भवेद् व्याधिर्मसिनेकेन मुञ्चति ।  
 इन्द्राग्नी आगतमिति गायत्री वाऽस्य चैव हि ॥  
 मधुच्छन्द ऋषीन्द्राग्नी तयोर्ध्यानिं च पूर्ववत् ।  
 श्रीखण्डकुङ्कुमं गन्धं तयोः पुष्पं सरोरुहम् ॥  
 देवदारुस्तयोर्धूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ।  
 तदेवाऽन्नं हविस्तत्र चित्राऽन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 मित्रभे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।  
 मित्रस्य चर्षणीरिति<sup>२</sup> गायत्री चाऽस्य चैव हि ॥  
 ऋषिर्हिरण्यस्तूपाख्यस्तत्र मित्रोऽधिदेवता ।  
 द्विभुजः पद्मगर्भाभिः पद्मभृत् पद्मसंस्थितः ॥  
 कुङ्कुमं पुण्डरीकाख्यं पुष्पं धूपं च चन्दनम् ।  
 नैवेद्यं पायसं साज्यं हविः कन्दं च सूरणम् ॥  
 बलिस्तत्र प्रदातव्यो मधु-शर्कर-पायसम् ।  
 घृत-पूरक-माषाऽन्नं मुद्गगर्भैश्च संयुतम् ॥  
 ज्येष्ठायामुत्थितो व्याधिर्मृत्युरेव न संशयः ।  
 अथवा मासमेकं वा मुञ्चत्येव न संशयः ॥  
 इन्द्रं च इति मन्त्रस्य गायत्रीन्द्रोऽङ्गिरा ऋषिः ।  
 इन्द्राय पूर्ववद् गन्धं चन्दनं कुङ्कुमं शुभम् ॥  
 कर्पूरधूपो नैवेद्यं चित्राऽन्नं सुमनोहरम् ।  
 हविस्तु सूरणं कन्दं मधु-कन्दं सुपायसम् ॥  
 विचित्र-पुष्पगन्धेन दध्यन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 मूलभे चोत्थितो व्याधिर्मासाऽर्द्धेन विमुञ्चति ।  
 खड्गचर्मधरः कृष्णः करालवदनः प्रभुः ।  
 मोषुणोऽस्य च गायत्री घोरः कण्वोऽथ नैऋतिः ॥  
 गन्धः कृष्णाऽगरुः पुष्पं पद्मं नीलोत्पलं शुभम् ।  
 धूपः कृष्णाऽगरुमर्षिमिश्रान्नमुपहारकम् ॥

१. न अक्ष-दैवते । २. ज्ञ-रेति ।



तदेवाऽन्नं हविस्तत्र माषाऽन्नेन<sup>१</sup> बलिं हरेत् ।  
 वारिभे चोत्थितो व्याधी रोगिणो निधनप्रदः ।  
 विमुञ्चत्यथवा मासैर्द्वि-त्रि-षड्-नव-सप्तभिः ॥  
 आप्यायस्वेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो जलम् ।  
 सुवर्णो द्विभुजः पद्म-पाणिर्गन्धस्तु चन्दनम् ॥  
 पद्मं शैलेय-धूपोऽत्र नैवेद्यं घृतपायसम् ।  
 हविर्मसूरपिष्टान्नं तदन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 विश्वभे चोत्थितो व्याधिः सार्द्धमासेन मुञ्चति ।  
 विश्वदेवास इत्यस्य गायत्र्या विश्वदेवता ॥  
 कमण्डल्वभयाम्भोजवरदश्च कुशासनः ।  
 चन्दनं कमलं पुष्पं धूपं सघृतगुग्गुलुः ॥  
 नैवेद्यं पायसाऽऽज्यान्नं हविरप्येतदेव हि ।  
 समिद्धिनिचुलैः सार्द्धं तदन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 श्रवणे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।  
 अतो देवेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो हरिः ॥  
 पीताम्बरः कृष्णवर्णः शङ्खचक्रगदाम्बुजः ।  
 चन्दनं मालतीपुष्पं धूपः कर्पूरगुग्गुलुः ॥  
 शाल्यन्नं षड्रसोपेतं भक्ष्यभोज्यादिभिः सह ।  
 नैवेद्यं हविरप्येतत्पायसेन बलिं हरेत् ॥  
 वसुभे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।  
 त्रायन्तामिति मन्त्रस्याऽनुष्टुब् व्यासो वसुस्ततः ॥  
 चाप-बाणधरः शुल्कगन्ध-कर्पूर-चन्दनम् ।  
 वारिजं गुग्गुलुधूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ॥  
 हविश्चोदुम्बरसमिद्गुडपायससंयुतम् ।  
 लङ्ङुकापूपमध्वाज्यतिलपिष्टबलिं हरेत् ॥  
 वारुणे चोत्थितो व्याधिरष्टरात्रेण मुञ्चति ।  
 इमं मे वरुण इत्यस्य गायत्री कण्ववारिपः ॥  
 नागपाशधरः श्रीमान् वररत्नविभूषितः ।  
 मकरस्थो गुरुर्गन्धः पुष्पं च कमलोत्पलम् ॥  
 कर्पूरं चन्दनं धूपो नैवेद्यं घृतपोलिका ।  
 हविरश्वत्थसमिधश्चित्राऽन्नेन बलिं हरेत् ॥



अजपाद्भे भवेद् व्याधिः सर्वदा निधनप्रदः ।  
 अथवा बहुभिर्मासैर्दिवसैर्वा विमुञ्चति ॥  
 वामपादकरं भूम्यामाकाशे त्वपरद्वयम् ।  
 प्रसार्य प्राञ्जलिः साक्षादीश्वरं चिन्तयेत्स्थितः ॥  
 शमग्निरित्यस्याऽजपाद्गायत्रीचतुराननः ।  
 कुङ्कुमं चन्दनं गन्धं पुष्पं श्वेतार्कसम्भवम् ॥  
 धूपः शतौषधीमिश्रो नैवेद्यं दधि-पायसम् ।  
 हविः कूष्माण्ड-गन्धः स्याद्ध्यन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 अहिर्बुध्न्ये भवेद् व्याधिः सार्द्धमासेन मुञ्चति ।  
 नमस्ते रुद्र इत्यस्य सर्वं तत्रैव संस्थितम् ॥  
 गन्ध-चन्दन-कर्पूरैः पुष्पं पद्मोत्पलं शुभम् ।  
 स-वित्त्व-गुग्गुलु-धूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ॥  
 मुद्ग-माष-तिलान्नाज्य-यव-व्रीहिमयं हविः ।  
 पूषा च देवताम्भोज-वर्णो भोजधरं शुभम् ॥  
 रक्तचन्दनगन्धोऽत्र पुष्पं मन्दार-संज्ञकम् ।  
 धूपस्तु गुग्गुलुः साज्यो नैवेद्यं घृतपायसम् ॥  
 हविस्तदेव सजलं दध्यन्नेन बलिं हरेत् ॥  
 भूतेशानुगतो यस्माद्रोगनाथमहाज्वरः ।  
 रोगादस्माच्च मां त्राहि त्वं गृहीत्वोत्तमं बलिम् ॥

जन्मसन्धिषु नक्षत्र-राशि-लग्नेषु यमघण्टेषु प्रहारेनैधनतारकेऽष्टम-  
 चन्द्रे रोगोत्पत्तौ मृत्युः । रवि-मघा-द्वादशी-सोम-विशाखैकादशीनां  
 भौमाऽऽर्द्राष्वमीनां बुधोत्तराषाढातृतीयानां गुरु-शतभिषक्-षष्ठीनां  
 शुक्राऽश्विन्यष्टमीनां शनिपूर्वाषाढानवमीनां च यागे मृत्युः । भरण्यानु-  
 राधा वा चन्द्रे, आर्द्रोत्तराषाढा वा सोमे, मघा शतभिषग्वा भौमे,  
 अश्विनी विशाखा बुधे, ज्येष्ठा मृगशिरो वा गुरौ, श्रवण आश्लेषा वा  
 भृगौ, पूर्वाभाद्रपदा शनौ चेन्मृत्युयोगः । अतोऽत्रोक्तास्तिथि-वार-नक्षत्र-  
 शान्तयो विस्तृताः कार्याः ।

### अथ तिथिवारक्षेपु साधारणः प्रयोगः

मासपक्षाद्युल्लिख्य ममोत्पन्नस्य व्याधेर्जीवच्छरीराविरोधेन समूल-  
 नाशार्थममुकनक्षत्राऽमुकदेवताख्यं जपं करिष्ये इति सङ्कल्प्याऽष्टशता-



षट्सहस्रायुताऽन्यतमसंख्यया तत्तद्देवतामन्त्रस्य जपं कृत्वाऽन्येन कार-  
यित्वा वा मासपक्षाद्युल्लिख्य ममोत्पन्नव्याधेर्जीवच्छरीराविरोधेन  
समूलनिवृत्तयेऽमुकशान्तिं करिष्ये इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-ऽऽचार्य-  
वरणान्तं कृत्वाऽऽचार्यं पूजयेत् । तत आचार्यो भूमौ तण्डुलैश्चतुरस्रं  
मण्डलं कृत्वा तत्र हैमीं तत्तन्नक्षत्रदेवतां वस्त्रद्वयपरिवृत्तां वक्ष्यमाण-  
तत्तद्गन्ध-धूपादिभिः पूजयेत् । तदीशान्यां धान्ये कुम्भं संस्थाप्य  
जलेनाऽऽपूर्य्य गन्ध-सवौषधि-दूर्वापल्लव-पञ्चत्वक्-सप्तमृत्-फलं पञ्चरत्न-  
पञ्चगव्य-हिरण्यानि तत्तन्मन्त्रैः क्षिप्त्वा वस्त्रद्वयेनाऽऽवेष्ट्य सर्वे समुद्रा  
इति तत्र तीर्थान्यावाह्य तत्त्वायामीति तत्र वरुणमावाह्य सम्पूज्याऽग्निं  
ग्रहांश्च प्रतिष्ठाप्याऽऽज्यभागान्ते तत्तन्नक्षत्रदेवतामन्त्रेण तत्तद्द्रव्येण  
चाऽष्टोत्तरसहस्राऽष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यन्यतरसङ्ख्यया होमं कृत्वा  
शान्तिकलशेन यजमानाऽभिषेके विहिते तां प्रतिमां रोगी ब्राह्मणाय  
दद्यात् । उक्तगन्धाभावे चन्दनं पुष्पाभावे शतपत्रं धूपाभावे गुग्गुलुः ।  
नैवेद्याभावे घृतोदनम् । होमद्रव्याभावे तिलाः । मन्त्राविज्ञाने गायत्री  
अष्टोत्तरसहस्रं मृत्युनिर्देशेऽष्टोत्तरशतमन्यद्वा<sup>१</sup> जुहुयात् । ततः कुशोद-  
कैर्वरुणसूक्तैः पुराणमन्त्रैश्चाऽभिषेकं कुर्यात् । पूर्णाहुतिं वसोद्धारां च  
कृत्वा शान्तिपाठं कृत्वाऽऽशिषं दद्यात् । अतः सर्वशान्तिर्भवति । तत  
आचार्याय सुवर्णप्रतिमां वस्त्रयुग्मेन वेष्टितां सवत्सां गां साऽलङ्कारां  
दद्यात् । इतरेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद् ब्राह्मणांश्च भोजयेत् ।

इति रोगोत्पत्तिशान्तिप्रयोगः ।

मदनरत्ने अत्रिस्तु-सर्वनक्षत्रशान्तिषु गायत्र्या यमोद्देशेन होमोऽ-  
ष्टोत्तरशतसङ्ख्यः बलिश्च तत्तन्नक्षत्रदेवतायै । सोऽपि होमावशिष्ट-  
द्रव्येण क्वचिदन्येन । तच्च तत्र तत्र वक्ष्यते । अत्र रोहिणीपुष्याऽऽश्लेषा  
पूर्वा-हस्त-स्वाती-विशाखाऽनुराधा-ज्येष्ठा-मूलोत्तराषाढा-पूर्वाभाद्रपदो-  
त्तराभाद्रपदासु घृतमेव होमद्रव्यमनुराधासु बलिर्पि तेनैव । अन्यत्र  
तु होमे बलौ च विशेषस्तत्र वक्ष्यते । द्रव्ये तु विशेषोऽश्विन्यादिक्रमेण  
दुग्धाक्ताः क्षीरवृक्षसमिधो होमे दध्योदनं बलौ मध्वक्तास्तिलाः । घृतं  
दध्योदनं च क्षीरान्नं बलौ मुद्ग-तिला घृतमधु-घृताक्ता अक्षताः । होमे  
गन्धं शाल्योदनं बलौ गन्ध-माल्योदनं बलौ भिक्षाग्रं बलौ घृताक्ता  
अक्षत-तिला होमे अक्षत-तिला बलौ गन्ध-पुष्पाणि बलौ तिल-माषाः



गन्धपुष्पं बलौ जलयुतं होमे सघृता मुद्गा बलौ गन्धपुष्पाणि बलौ  
 दुग्धाक्ताऽन्नगन्धमाल्यानि बलौ गन्धमाल्यं बलौ पायसं बलौ शालयो  
 होमे । पायसं बलौ होमे पायसं बलौ बीजाऽक्षता होमे गन्धपुष्पाणि  
 बलौ अश्वत्थसमिधो होमे । घृताक्तमुद्गा बलौ जलपुष्पाणि होमे ।  
 पायसं बलौ गन्ध-माल्योदनं बलौ गन्धपुष्पाणि बलौ घृताक्तामलका  
 होमे । गन्धपुष्पाणि बलौ । अयं च नक्षत्रेषु ज्वराद्युत्पत्ताविष्टानिष्ट-  
 कालः । तत्राश्विन्यादिषु पञ्चविंशतिः (२५), एकविंशतिः (२९) एक-  
 विंशतिः (२९) नव (९) नव (९) दश (१०) मृत्युः (१) विंशतिः (२०)  
 एकविंशतिः (२९) एकविंशतिः (२९) विकल्पतो मासाब्दौ सप्तविंशतिः  
 (२७) सप्त (७) अष्टौ (८) दश (१०) अष्टौ (८) अष्टाविंशतिः  
 (२८) एकविंशतिः (२९) विंशतिः (२०) विंशतिः (२०) पञ्चविंशतिः  
 (२५) विकल्पतः पक्षत्रयोदशदिनमासाः द्वादश (१२) दश (१०) दश  
 (१०) अष्टाविंशतिः (२८) दिनानि क्रमात्पीडाऽन्ते सुखम् । आश्लेषा-  
 मघापूर्वा-पूर्वाभाद्रपदासु पक्षे मृत्युरपि सम्भाव्यते ।

### अथ ग्रहणशान्तिः

मत्स्यपुराणे—

होरायां ग्रस्यते यस्य नक्षत्रे वा निशाकरः ।  
 प्राणसन्देहमाप्नोति स वा मरणमृच्छति ॥  
 यस्याऽत्र जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशि-भास्करो ।  
 तज्जनानां भवेत्पीडा ये जनाः शान्तिर्वर्जिताः ॥  
 यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्भवः ।  
 तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥  
 चन्द्रोपरागे सम्प्राप्ते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।  
 सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्याऽनुलेपनैः ॥  
 पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् ।  
 स्थापयेच्चतुरः कुम्भानग्रतः सागरानिव ॥  
 गजाऽश्वरथ्या-वल्मीक-सङ्गमाद् हृद-गोकुलात् ।  
 राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥  
 पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्चत्वक् पञ्चपल्लवम् ।  
 रोचकं पद्मकं शङ्खं कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ॥



## ग्रहणशान्तिः

१६१

शुद्धस्फटिकतीर्थाम्बु-सितसर्षपगोकुलान् ।  
 मधुकं देवदारुं च विष्णुकान्तां शतावरीम् ॥  
 बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च ।  
 एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्ववाहयेत्सुरान् ॥  
 सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।  
 आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥  
 योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ।  
 सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥  
 मुखं यः सर्वदेवानां सप्तर्चिरमृतद्युतिः ।  
 चन्द्रोपरागसम्भूतां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥  
 यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ।  
 यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥  
 रक्षोगणाधिपः साक्षी नीलाञ्जनसमप्रभः ।  
 खड्गहस्तोऽतिभीदश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥  
 नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ।  
 चन्द्रोपरागकलुषं वरुणो मे व्यपोहतु ॥  
 प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः ।  
 वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥  
 योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।  
 चन्द्रोपरागदुरितं धनदो मे व्यपोहतु ॥  
 योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।  
 चन्द्रोपरागपापानि निवारयतु शङ्करः ॥  
 त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
 ब्रह्म-विष्ण्वर्क-रुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् ॥  
 एवमावाहयेत् कुम्भान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः ।  
 एतानेव तथा मन्त्रान् स्वर्णपट्टे विलेखयेत् ।  
 ताम्रपट्टेऽथ वाऽलेख्य नव्यवस्त्रे तथैव च ।  
 मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः ॥  
 कलशान् द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमन्वितान् ।  
 गृहीत्वा स्थापयेद् गूढं भद्रपीठोपरि स्थितम् ॥  
 पूर्वोक्तैरेव मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः ।  
 अभिषेकं ततः कुर्युर्मन्त्रैर्वरुणसूक्तकैः ॥



## शान्तिमयूखः

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्याऽनुलेपनः ।  
 आचार्यं वरयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेशयेत् ॥  
 आचार्यदक्षिणां दद्याद् गोदानं च स्वशक्तितः ।  
 गन्ध-माल्यै-र्धूप-दीपैः पूजयेद्देवतुष्टये ॥  
 होमं चैव प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा ।  
 निवृत्ते ग्रहणे सर्वं ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥  
 दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् ।  
 सूर्यग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मन्त्रांश्च कीर्तयेत् ॥  
 चन्द्रपदस्थाने सर्वत्र सूर्यपदमूहनीयमित्यर्थः ।  
 अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत् ।  
 न तस्य ग्रहणे दोषः कदाचिदपि जायते ॥  
 इति ग्रहणशान्तिः ।

## अथ जलाशयवैकृतशान्तिः ।

गर्गः— नगरादुपसर्पन्ते समीप उपयान्ति च ।  
 नद्यो ह्रदप्रस्रवणा विरसा वै भवन्ति च ॥  
 विवर्णं कलुषं तप्तं फेनवज्जन्तुसङ्कुलम् ।  
 क्षीरं स्नेहं सुरां रक्तं वहन्ते व्याकुलोदकम् ॥  
 षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं विदुः ।  
 जलाशया नदन्ते च प्रज्वलन्ति क्वथन्ति च ॥  
 विमुञ्चन्ति तथा ब्रह्मन्!ज्वालां धूमं रजांसि च ।  
 अखाते वा जलोत्पत्तिः ससत्त्वा वा जलाशयाः ॥  
 सङ्गीतिशब्दा दृश्यन्ते जनमारभयं विदुः ।  
 दिव्यं महाभयं विद्धि मधुमात्राऽवसेचनम् ॥  
 जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत् ॥  
 मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र देयं द्विजानामथभोजनार्थम् ।  
 गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्तास्तथोदकुम्भाः सकलाश्च शान्त्यै ॥  
 इति जलाशयवैकृतशान्तिः ।



## अथाऽग्निवैकृतशान्तिः

१६३

## अथ वृष्टिवैकृतशान्तिः ।

गर्गः— अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादौ भयं मतम् ।  
 अनृतौ तु दिवाऽनन्ता वृष्टिव्याधिभयाय तु ॥  
 अनभ्रवैकृता मेघमन्तरे गर्ज्जितादयः ।  
 शीतोष्णानां विपर्यासे ऋतूनां रिपुजं भयम् ॥  
 शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत् ।  
 अङ्गारपांशुवर्षेण नगरं तद्विनश्यति ॥  
 मज्जाऽस्थि-स्नेह-मांसानां जनमारभयं भवेत् ।  
 फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणाऽतिभयाय तु ॥  
 पांशुजं तूपलानां च वर्षतो रोगजं भयम् ।  
 छिद्रावात्रप्रवर्षेण सस्यानामीति<sup>१</sup>वर्द्धनम् ॥  
 विरजस्के रथौ व्यभ्रे यदा छाया न दृश्यते ।  
 दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशे भयं भवेत् ॥

प्रतीपा प्रतिकूला छाया, विपरीतछायेत्यर्थः ।

निरभ्रे वा तथा रात्रौ श्वेतं याम्योत्तरेण तु ।  
 इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च ॥  
 दिग्दाहो परिघोषौ च गन्धर्वनगरं तथा ।  
 परचक्रभयं विन्द्यादेशोपद्रवमेव च ॥  
 सूर्येन्दु-पर्जन्य-समीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद् द्विजेन्द्र ! ।  
 धान्यानि गो-काञ्चन-दक्षिणाश्च देया द्विजानामघनाशहेतोः ॥  
 इति वृष्टि-वैकृतशान्तिः ।

## अथाऽग्निवैकृतशान्तिः ।

गर्गः— अग्निः प्रदीप्यते यत्र राष्ट्रे भृशमनिन्धनः ।  
 न दीप्यते वेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीडयेन्नृप ! ॥  
 ज्वलेदारद्रश्च वंशो वा तथाऽऽर्द्रान्तिं मृदः सुधा ।  
 प्रासाद-तोरणं द्वारं नृप-वेश्म सुरालयम् ॥  
 एतानि यत्र दह्यन्ते तत्र राजभयं वदेत्<sup>३</sup> ।  
 विद्युता वा प्रदह्यन्ते तत्राऽपि नृपतेर्भयम् ॥

१. ज्ञ-ज्ञ । २. क्ष ध-सस्यानीति, ख क-सस्यामीतितवर्धन । ३. इ य  
 द क्ष-भवेत् ।



अनैशानि तमांसि स्युर्विना पांशुरजांसि च ।  
 धूमश्चाऽनग्निजो यत्र तत्र विद्यान्महाभयम् ॥  
 तडिद्विनाऽभ्रं गगने भयं स्याद् वृष्टिर्वर्जिते ।  
 दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत् ॥  
 ग्रह-नक्षत्र-वैकृत्ये ताराविकृतिदर्शने ।  
 पुत्रवाहनदारेषु चतुष्पदगृहेषु च ॥  
 स्वभावाद्वाऽपि हीयेत धेनु-वत्सादिकं च यत् ।  
 लोहायुधविकारः स्यात्तत्र सङ्ग्राममादिशेत् ॥  
 त्रिरात्रोपोषितस्तत्र पुरोधाः सुसमाहितः ।  
 समिद्धिरर्कवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च ॥  
 होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत् ॥  
 दद्यात्सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च ।  
 एवं कृते तत्समुपैति नाशं यदग्निवैकृत्यभयं द्विजेन्द्र ! ॥  
 इत्यग्निवैकृत्यशान्तिः ।

### अथ प्रतिमादिवैकृत्यशान्तिः ।

गर्गः— देवताद्याः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति वा ।  
 आरटन्ति च रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च ॥  
 उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति रमन्ति च ।  
 भजन्ति विकृतिं भूम्ना मानुषाणां भयावहाः ॥  
 अवाङ्मुखावतिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं भ्रमन्ति च ।  
 वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहरक्ते तथा वसाम् ॥  
 एवमादीनि दृश्यन्ते विकाराः सहजोत्थिताः ।  
 लिङ्गायतनचित्रेषु तत्र वासं न रोचयेत् ॥  
 राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति ।  
 देवयात्रासु चोत्पातान् दृष्ट्वा देशभयं वदेत् ॥  
 देवयात्रोत्पाता वराहसंहितोक्ता ज्ञेयाः ।  
 विना साहसधर्मेण तत्र वासं न रोचयेत् ।  
 पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥  
 रुद्रजम् रुद्रप्रतिमासूतपन्नं वैकृत्यं पशुभयदमित्यर्थः । एवं सर्व-  
 त्राऽपि ज्ञातव्यम् ।



ज्ञेयं सेनापतीनां च यत्स्यात्स्कन्दविशाखजम् ।  
 लोकानां विष्णु<sup>१</sup>वस्विन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम् ॥  
 विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां सेवकाय च ।  
 देवदूते च याः प्रेष्याः देवस्त्रीषु नृपस्त्रियः ॥  
 वासुदेवेषु विज्ञेयं गृहाणामेव नाज्यथा ॥  
 देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ।  
 देवताऽर्चा तु गत्वा वै स्नातामाच्छाद्य भूषयेत् ॥  
 पूजयेत्तां महाभाग ! गन्धमाल्याऽन्नसम्पदा ।  
 मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम् ॥  
 तल्लिङ्गेण च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि ।  
 पुरोधो जुहुयाद् वह्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥  
 विप्राश्च पूज्या मधुरान्नपानैः सदक्षिणैः सप्तदिनं नरेन्द्र ! ।  
 प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि क्षिति-गो-प्रदानैः सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम् ॥  
 इत्यद्भुतशान्तिषु देवताप्रतिमा-वैकृत्यशान्तिः ।

### अथाकस्मिकप्रासादपतनादिशान्तिः ।

गर्गः— प्रासाद-तोरणा-ऽट्टाल-द्वार-प्राकार-वेश्मनाम् ।  
 अनिमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे ॥  
 रजसा वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः ।  
 आदित्यश्चन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये ॥  
 राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः ।  
 ऋतवश्च विपर्यस्ता अपूज्यं पूजयेज्जनः ॥  
 नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम् ।  
 केतूदयोपरागौ च छिद्रं वा शशि-सूर्ययोः ॥  
 ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्राऽपि भयमादिशेत् ।  
 स्त्रियश्च कलहायन्ते बाला निघ्नन्ति बालकान् ॥  
 क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र दृश्यते ।  
 अग्निर्यत्र न दृश्येत हूयमानोऽथ शाम्यति ॥  
 क्रव्यादा वायसा वाहा यान्ति चोत्तरतस्तथा ।  
 पूर्णकुम्भाः स्रवन्ते च वह्नयो वा विलुम्पते ॥



मङ्गल्यध्वनयो यत्र न श्रूयन्ते समन्ततः ।  
 क्षवथुर्बाधते वाऽथ प्रोत्साहे सति निन्दितोः ॥  
 न दैवतेषु वर्तन्ते यथा ब्रह्महर्षेषु च ।  
 मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते वि-स्वराणि च ॥  
 गुरु-मित्र-द्विषो यत्र शत्रुषूपरताः सदा ।  
 ब्राह्मणान् सुहृदोऽमात्यान् जनो यत्राऽवमन्यते ॥  
 शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र मन्यते ।  
 राजा वा म्रियते तत्राऽथवा देशो विनश्यति ॥  
 राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबोध मे ।  
 ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणांश्च विनिन्दति ॥  
 ब्राह्मणस्वानि चाऽऽदत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।  
 नैतान् स्मरति कृत्येषु योऽन्वितश्चाभ्यसूयति ॥  
 रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाऽभिनन्दति ।  
 अपूर्वं तु करं लोभात्तथा पातयते जने ॥  
 एतेष्वभ्यर्चयेत्सम्यक् सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ।  
 भोज्यानि चैव कर्त्तव्या सुराणां बलयस्तथा ॥  
 गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्यो भुवं तथा काञ्चनमम्बराणि ।  
 होमं च कुर्याद् द्विजपूजनं च एवं कृते शान्तिमुपैति पापम् ॥  
 अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः प्रजायते ।  
 सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं विफलं हि तत् ॥  
 इत्याकस्मिकप्रासादपतनादिशान्तिः ।

### अथ वृक्षविकारशान्तिः ।

गर्गः— रुदतो व्याधिरभ्येति हसतो देशविभ्रमः ।  
 शाखाप्रपतने कुर्यात्सङ्ग्रामं योधपातनम् ॥  
 बालानां मरणं कुर्याद् बालानां फलपुष्पतः ।  
 स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनार्त्तवम् ॥  
 क्षीरं सर्वत्र गम्भीर-स्नेहं दुर्भिक्षलक्षणम् ।  
 वाहनाऽपचयं मद्ये रक्ते सङ्ग्राममादिशेत् ॥  
 मधुस्रावे भवेद् व्याधिर्जलस्रावे च वर्षति ।  
 अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन् ! दुर्भिक्षलक्षणम् ॥



## उत्पातशान्तिः

१६७

शुष्केषु सम्प्ररोहत्सु वीर्यमन्तं च हीयते ।  
 उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत् ॥  
 स्थानात्स्थाने तु गमने देशभङ्गं तथाऽऽदिशेत् ।  
 अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः ॥  
 आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत् ।  
 वृक्षोपरि तथा छत्रं कुर्यात्पापप्रशान्तये ॥  
 शिवमभ्यर्चयेद्देवं<sup>१</sup> पशुं चाऽस्मै निवेदयेत् ।  
 मूलेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत्ततः ॥  
 मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात् ।  
 गीतेन नृत्येन तथाऽर्चयेत्तं देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥  
 इति वृक्षोत्पातशान्तिः ।

## अथोत्पातशान्तिः ।

नारदसंहितायां चतुस्त्रिंशोऽध्याये—

उत्पाता विविधा लोके दिव्य-भौमाऽन्तरिक्षगाः ।  
 तेषां नामानि शान्तिं च सम्यक् वक्ष्ये पृथक् पृथक् ॥  
 देवताद्याः प्रनृत्यन्ति पतन्ति प्रज्वलन्ति वा ।  
 मुहुर्गयन्ति रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च ॥  
 वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम् ।  
 अधोमुखं तु तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति वा ॥  
 एवमाद्याश्च दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमादिषु ।  
 गन्धर्वनगरं चैव दिवा-नक्षत्रदर्शनम् ॥  
 महोत्कापतनं कण्ठं नृणां रक्तप्रवर्षणम् ।  
 गान्धर्वगेहं दिग्दाहं भूमिकम्पं दिवानिशि ॥  
 अनग्नौ च स्फुलिङ्गाः स्युर्ज्वलनं च विनेन्धनम् ।  
 निशीन्द्रचापं मण्डूकशिखरं<sup>२</sup> श्वेतवायसम् ॥  
 दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गा ये गो-गजाऽश्वोष्ट्रगास्ततः ।  
 जन्तवो द्वि-त्रि-शिरसो जायन्ते<sup>३</sup> वा वियोनिषु ॥  
 प्रतिसूर्याश्च तिसृषु स्युर्दिक्षु युगपद्रवेः ।  
 जम्बूको ग्रामसंवेशः केतूनां च प्रदर्शनम् ॥

१. अक्ष-देवं । २. ज्ञ-शिखरे । ३. ज्ञ-चा ।



काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि ॥  
 एवमेते महोत्पाता बहवः स्थाननाशकाः ।  
 केचिन्मृत्युप्रदा केचिच्छत्रुभ्यश्च भयप्रदाः ॥  
 देवालये स्वगेहे वा ऐशान्यां पूर्वतोऽपि वा ।  
 कुण्डं लक्षणसंयुक्तं कल्पयेन्मेखलायुतम् ॥  
 गृह्योक्तविधिना तत्र स्थापयेच्च हुताशनम् ।  
 जुहुयादाज्यभागान्तमथवाऽष्टोत्तरं शतम् ॥  
 यत इन्द्र भयामहे स्वस्ति येन च मन्त्रकैः ।  
 समिदाज्य-चरु-ब्रीहि-तिलैर्व्याहृतिभिस्ततः ॥  
 कोटिहोमं तदर्द्धं वा लक्षहोममथायुतम् ।  
 यथावित्तानुसारेण पादहोममथापि वा ॥  
 एकविंशतिरात्रं वा पक्षं पक्षाद्धमेव वा ।  
 त्रिरात्रमेकरात्रं वा होमकर्म समाचरेत् ॥  
 गणेश-क्षेत्रपाला-ऽर्क-दुर्गख्या अङ्गदेवताः ।  
 तासां प्रीत्यै जपः कार्यः शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥  
 ऋत्विभ्यो दक्षिणां दद्याद् षोडशेभ्यः स्वशक्तितः ॥  
 इति उत्पातशान्तिः<sup>१</sup> ।

### अथ पल्लीसरटशान्तिः ।

गर्गः<sup>२</sup>— पल्याः प्रपातस्य फलं सरटस्य तथैव च ।  
 शीर्षे राज्यं श्रियः प्राप्तिर्भलिं चैश्वर्यवर्द्धनम् ॥  
 कर्णयोर्भूषणावाप्तिर्नेत्रयोर्बन्धुदर्शनम् ।  
 नासिकायां तु सौभाग्यं वक्त्रे मिष्टान्नभोजनम् ॥  
 कण्ठे नित्यं प्रियाऽऽश्लेषः स्कन्दयोर्विजयो ध्रुवम् ।  
 धनलाभो बाहुयुग्मे करयोरर्थसंक्षयः ॥  
 जङ्घयोश्च निरुद्योगः पादयोर्भ्रमणं भवेत् ।  
 एवं पल्याः प्रपातस्य फलं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥  
 एतदेव फलं विन्द्याच्छरटस्य प्ररोहणे ।  
 पल्याः प्रपतने चैव सरटस्य प्रपातने ।  
 पञ्चरात्रं भवेत्तस्य व्याधिपीडा विशेषतः ॥

१. ज्ञ-नानोत्पातशान्तिः । २. ज्ञ वृद्धगर्गः ।



## ग्रामारण्यादिशान्तिः

१६८

पतनानन्तरं तस्य रोहणं यदि जायते ।  
 पतने फलमुत्कृष्टं रोहणेऽल्पफलं भवेत् ॥  
 आरोहणं चोर्ध्ववक्त्रे अधोवक्त्रे निपातनम् ।  
 भवेद्यदि सुशीघ्रेण तत्फलं जायते ध्रुवम् ॥  
 मृत्युयोगे दग्धयोगे<sup>१</sup> पाते च यमघण्टके ॥  
 चन्द्राऽष्टमे नैधने च जन्मर्क्षे विषनाडिके ।  
 क्रूरलग्ने क्रूरयुते क्रूरेण च निरीक्षिते ॥  
 अष्टमे ते क्रूरयुते विष्टि-वैधृतिसंयुते ।  
 दुर्निमित्तं तयोः पाते निधनं जायते ध्रुवम् ।  
 तयोः स्पर्शनमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ।  
 गव्यं पञ्चविधं प्राश्य कुर्यादाज्याऽवलोकनम् ॥  
 शस्ते वाऽप्यथवाऽशस्ते यदीच्छेदात्मनः शुभम् ।  
 पुण्याहं वाचयित्वा तु शान्तिकर्म ततश्चरेत् ॥  
 प्रतिरूपं तयोः कुर्यात्सुवर्णेन स्वशक्तितः ।  
 रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य गन्ध-पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥  
 कलशे वस्त्रयुग्मेन पूजयेद् विधिना ततः ।  
 अग्निसंस्थापनं कृत्वा होमं कुर्याद्विधानतः ॥  
 मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण समिद्धिः खादिरैः शुभैः ।  
 तिलैर्व्याहृतिहोमं च अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥  
 महाव्याहृतिहोमं च सर्पिः क्षीरेण कारयेत् ।  
 अभिषेकं ततः कुर्याद्यजमानस्य मूर्द्धनि ॥  
 पुण्यैर्वारुणसूक्तैश्च घोषैः<sup>२</sup> शान्तादिकमन्त्रकैः ॥  
 इत्थं मन्त्रविधानेन यः कुर्याच्छान्तिमुत्तमाम् ।  
 तस्याऽऽयुर्विजयो लक्ष्मीः कीर्तिः पुष्टिश्च जायते ।  
 इति पल्यादिपतनशान्तिः ।

## अथ ग्रामारण्यादिशान्तिः ।

गर्गः— प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ।  
 अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः ॥

१. ज न-दग्धदिने, ख-दाहयोगे । २. ज न-घोः ।



स्थलजा वा जलं यान्ति घोरं वा सन्ति निर्भयाः ।  
 राजद्वारे पुरद्वारे शिवाश्चाप्यशिवप्रदाः ॥  
 दिवा रात्रिञ्चरा वाऽपि रात्रौ वाऽपि दिवाचराः ।  
 ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं वा तच्चोत्पातस्य निर्दिशेत् ॥  
 उत्पातस्य लक्षणमिति शेषः ।

दीप्ता वा सन्ति सन्ध्यासु मण्डलानि च कुर्वते ।  
 वासन्ते विस्तरं यत्र तदा प्रेतफलं लभेत् ॥  
 प्रदोषे कुक्कुटो वासेद्धेमन्ते वाऽपि कोकिलः ।  
 अर्कोदयेऽर्काभिमुखस्तदाऽमात्यभयं वदेत् ॥  
 गृहं कपोतः प्रविशेत् क्रव्याद्यनुविलीयते ।  
 मधु वा मक्षिकाः कुर्यान्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत् ॥  
 प्राकार-द्वार-गेहेषु तोरणा-ऽऽपण-वीथिषु ।  
 केतुच्छत्रायुधाग्रेषु क्रव्यात्संश्रयते यदि ॥  
 जायते वाऽथ वल्मीको मधु वा दृश्यते यदि ।  
 स देशो नाशमायाति राजा च म्रियते तदा ॥  
 मूषिकाः शलभान् दृष्ट्वा प्रभूतं क्षुब्धयं वहेत् ।  
 काष्ठोलमुकाऽस्थिशृङ्गास्या श्वानो मरकवेदिनः ॥  
 दुर्भिक्षवेदिनो ज्ञेयाः काकाधान्यशये<sup>१</sup> यदि ।  
 जनानभिभवन्तश्च निर्भया रणवेदिनः ॥  
 काको मैथुनयुक्तश्चेत् श्वेतः स यदि दृश्यते ।  
 राजा च म्रियते तत्र तदा देशो विनश्यति ॥  
 उलूको वासते यत्र निपतेद्वा गृहे यदि ।  
 ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च ॥  
 वासते शब्दं करोति ।

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सदक्षिणम् ।  
 देवाः कपोत इति च जप्तव्यं पञ्चभिर्दिनैः ॥  
 सुदेव इति वैकेन देया गावस्तु दक्षिणा ।  
 जपेच्छाकुनसूक्तं च नमो वेदशिरांसि च ॥  
 'देवाः कपोत' इत्यादयो मन्त्रा ऋग्वेदे प्रसिद्धाः । नमो नमो ब्रह्मणे  
 नम इति । वेदशिरांसि उपनिषदः ।

१. अ य न क इ-क्षय, क्ष-क्षयो, ज्ञ-क्षुपे ।



## कपोतशान्तिः

१७१

गावश्च देया विधिवद् द्विजानां सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः ।  
 एवं कृते शान्तिमुपैति पापं मृगैर्द्विजैर्वाऽपि निवेदितं यत् ॥  
 इति ग्राम्यारण्यादिशान्तिः ।

## अथ कपोतशान्तिः ।

नारदः— आरोहयेद् गृहं यस्य कपोतो वा प्रवेशयेत् ।  
 स्थानहानिर्भवेत्तस्य यद्वाऽनर्थपरम्परा ॥  
 दोषाय धनिनां गेहे दरिद्राणां<sup>१</sup> शिवाय च ।  
 तस्य शान्तिश्च कर्त्तव्या जपहोमविधानतः ॥  
 ब्राह्मणान् वरयेत् तत्र स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।  
 षोडशद्वादशाष्टौ वा श्रौतस्मार्त्तक्रियापराः ॥  
 देवाः कपोत<sup>२</sup> इत्यादि ऋचाभिः पञ्चभिर्जपम् ।  
 लक्षं कृत्वा प्रयत्नेन स्वगृह्योक्तविधानतः ॥  
 ऐशान्यां स्थापयेद्बलिं मुखान्तेऽष्टोत्तरं शतम् ।  
 प्रत्येकं समिदाज्यान्नैः प्रतिप्रणवपूर्वकम् ॥  
 मुखान्ते अग्निमुखान्ते ।

यत इन्द्र भयामहे<sup>३</sup> स्वस्तिदेति<sup>४</sup> त्रियम्बकैः ।  
 त्रिभिर्मन्त्रैश्च जुहुयात् तिलान् व्याहृतिभिस्तथा ॥  
 जयाहुतीस्ततो हुत्वा कुर्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ।  
 विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात् द्यौः शान्तिं च ततो जपेत् ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।  
 एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते ॥  
 पिङ्गलायाः स्वरेऽप्येवं मधु-वल्मीकयोरपि ।  
 सम्पूर्णे मन्दिरे हानिः शून्यसद्गानि मङ्गलम् ॥  
 प्राकारे च पुरद्वारे रथ्यादिषु च वीथिषु ।  
 ग्रामस्य तत्फलं चैव गुरुकल्पनया ततः ॥  
 शान्तिकर्माऽखिलं कार्यं पूर्वोक्तेन क्रमेण तु ॥  
 इति कपोतादिशान्तिः ।

१. ज्ञ-दरिद्राय । २. ऋ. सं. ८।८।२३ । ३. ऋ. सं. ६।४।३८ ।  
 ४. ऋ. सं. ८।८।१० ।



## अथ काकवैकृत्यशान्तिः ।

गर्गसंहितायाम्—

काकस्य मैथुनं पश्येत् काकः शिरसि चेद्विशेत् ।  
 शिरस्युरसि वा कुर्यात्पक्षघातं नखैस्तथा ॥  
 विदारणं च कुरुते शयानं च स्पृशेद्यदि ।  
 तदा वदेत्तु मरणं महारिष्टमथापि वा ॥  
 मध्यरात्रे यदा काको वाशते<sup>१</sup> हेतुना विना ।  
 तद्ग्रहारिष्टमाचष्टे ग्रामारिष्टमथापि वा ॥  
 शान्तिं तत्र प्रकुर्वीत विधानेन यथोदिताम् ।  
 उद्दिश्याऽरिष्टशमनं कुर्यात्सङ्कल्पमादितः ॥  
 शुचौ देशे रत्निमात्रे स्थण्डिलेऽग्निं निधाय च ।  
 तदीशानेऽष्टदले कुम्भोपरि स्वशक्तितः ॥  
 हिरण्यनिर्मितं त्विन्द्रं लोकपालसमन्वितम् ।  
 पूजयित्वा स्वशाखोक्तविधिना श्रपयेच्चरुम् ॥  
 कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं जुहुयात्क्रमशो हविः ।  
 पालाशीः समिधो व्रीहीश्चरुमाज्यमिति क्रमात् ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।  
 यत इन्द्रेति मन्त्रेण लाकपालेभ्य एव च ॥  
 शक्त्या हुत्वा स्वशाखोक्त-प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत् ।  
 लोकपालबलिं दत्त्वा इन्द्राग्रे चरुशेषतः ॥  
 वायसेभ्यो बलिं दद्यादैन्द्रवारुणमन्त्रतः ।  
 ऐन्द्रवारुणवायव्यां याम्यां वै नैऋताश्च ये ॥  
 ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु भूम्यां पिण्डं मयाऽर्पितम् ।  
 पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा आचार्यं पूजयेत्ततः ॥  
 कुम्भोदकेनाऽभिषेको यजमानस्य विस्तरात् ।  
 आचार्यायिन्द्रप्रतिमां दद्यात्सोपस्करां ततः ॥  
 शक्त्या च भूयसीं दद्यात् द्विजानां भोजनं दिशेत् ।  
 शतं तदर्द्धमर्द्धं वा शक्त्यभावे दशाऽपि वा ॥  
 सर्वशान्तिं पाठयित्वा गृह्णीयाच्च द्विजाशिषः ।  
 एवं कृते भवेच्छान्तिः काकारिष्टविनाशिनी ॥  
 इति काममैथुनदर्शनादिशान्तिः ।



## काकस्पर्शशान्तिः

१७३

## अथ प्रकारान्तरेण काकमैथुनदर्शनशान्तिः

नारदः— दिवा वा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम् ।  
 स नरो मृत्युमाप्नोति ह्यथवा स्थाननाशनम् ॥  
 काकघातव्रतं यद्वा विदधीताऽथ वत्सरम् ।  
 पितृवद्वै द्विजान् भक्त्या प्रत्यहं चाऽभिवादयेत् ॥  
 जितेन्द्रियो जितक्रोधः सत्यधर्मपरायणः ।  
 तद्दोषशमनार्थाय शान्तिकर्म समारभेत् ॥  
 गृहस्येशानदिग्भागे होमस्थानं प्रकल्पयेत् ।  
 गृह्योक्तविधिना तत्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम् ॥  
 मुखान्ते समिदाज्यान्नैर्हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥  
 प्रतिमन्त्रं त्र्यम्बकेन अथ मृत्युञ्जयेन च ।  
 व्याहृतिभिर्व्रीहितिलैर्जपाद्यन्तं प्रकल्पयेत् ॥  
 पूर्णाहुतिं च जुहुयात्कर्त्ता शुचिरलङ्कृतः ।  
 स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कृष्णां धेनुं पयस्विनीम् ॥  
 वस्त्रालङ्कारसंयुक्तां निष्कद्वादशसंयुताम् ।  
 तदर्द्धेन तदर्द्धेन दद्याद्दक्षिणया युतम् ॥  
 यथावित्तानुसारेण न्यूनाधिक्यस्य कल्पना ।  
 आचार्याय श्रोत्रियाय तां गां दद्यात्कुटुम्बिने ॥  
 यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो ! वै कृष्णसन्निभे ! ।  
 सर्वमृत्युहरे ! नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥  
 ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यो यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम् ॥  
 एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते ॥  
 इति काकमैथुनशान्तिः<sup>१</sup> ।

## अथ काकस्पर्शशान्तिः ।

नारदः— सूर्यास्तमनवेलायां वायसः संस्पृशेद्यदि ।  
 निःशब्दो वा सशब्दो वा पुंसो मृत्युप्रदायकः ॥  
 अङ्गनां च स्पृशेत् काको वैधव्यं तत्र निर्दिशेत् ॥

१. एतत्प्रकरणं तु जेताराखिलपुस्तकेषु काकस्पर्शशान्त्यनन्तरं दृश्यते ।



नदीतीरे गवां गोष्ठे क्षीरवृक्षे सुरालये ।  
 नरो वायससंपृष्टो वधबन्धनमाप्नुयात् ॥  
 प्रतिचन्द्रं प्रतिसूर्यं वायसः स्पृशते यदि ।  
 अर्थहानिं तथा मृत्युं शस्त्रेण च विनिर्दिशेत् ॥  
 मासैः पञ्चभिरेवाऽस्य निशाभिः फलमादिशेत् ॥  
 तद्दिनादिफलं सद्भिः प्रोक्तमत्र शुभाऽशुभम् ।  
 शान्तिं तत्र प्रकुर्वीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥  
 महानद्यम्भसि स्नात्वा शिवलिङ्गं निरीक्षयेत् ।  
 नत्वा सम्पूज्य लिङ्गं तु स्तुत्वा च दिक्पतीनपि ॥  
 आरभ्य तद्दिनादेव वायसेभ्यो बलिं क्षिपेत् ।  
 शनैश्चरदिने प्राप्ते एकान्ते शुभमन्दिरे ॥  
 कृष्णानि नववस्त्राणि अहतानि नवानि च ।  
 पूर्वदिक्क्रमयोगेन स्थापयेच्च पृथक् पृथक् ॥  
 माषप्रस्थप्रमाणेन स्थापयेत्तत्र वायसान् ।  
 पूर्वस्यां कपिलं तत्र स्थापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥  
 नीलग्रीवमथाऽग्नेय्यां याम्यां च विकृतस्वरम् ।  
 नैऋत्यां च न्यसेत्क्रौञ्चमपमृत्युविनाशनम् ॥  
 विद्युज्जिह्वं च वारुण्यां वायव्यां कृष्णकर्बुरम् ।  
 कौबेर्यां कालनामानमीशान्यां कालमेव च ॥  
 अहते कृष्णवस्त्रे तु यमं मध्ये प्रपूजयेत् ।  
 महिषं कृष्णवर्णं च यमं माषैश्च पूजयेत् ॥  
 रक्तोत्तमाङ्गं सर्वत्र आयुधैश्च<sup>२</sup> समन्वितम् ।  
 लोहदण्डं चतुर्बाहुं पूजयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥  
 यस्मिन् वृक्षे परेयिवासं सुगन्धः पन्थानमेव च ।  
 एते मन्त्राः समाख्याताः शूद्राणां नाम-मन्त्रतः ॥  
 अकालकलशं तत्र स्थापयेत् तस्य सन्निधौ ।  
 जलपूर्णं रत्नगर्भं पूर्णपात्रसमन्वितम् ॥  
 स्थापयेत्तत्र देवेशं शूलपाणिं महेश्वरम् ।  
 प्रतिष्ठाप्य च तान् सर्वानथ मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥  
 कपिलस्त्वं च वर्णेन शुभाऽशुभनिवेदकः ।  
 गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं भवाऽशुभविनाशनः ॥



## काकस्पर्शशान्तिः

१७५

नीलग्रीव ! गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं खगेश्वर !  
 अल्पमृत्युविनाशाय ददामि बलिमुत्तमम् ॥  
 क्रूरस्त्वं पापिनां नित्यं सौम्यस्त्वं धार्मिके जने ।  
 विकृतस्वर ! गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं शुभायनः ॥  
 क्रूरस्त्वं पापिनां नित्यं वधशुम्भं न ऋच्छसि ।  
 गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं क्रौञ्च ! सौम्यप्रदो भव ॥  
 विद्युज्जिह्व ! नमस्तेऽस्तु शोकव्याधिविनाशन ! ।  
 बलिपूजां मया दत्तां गृहाण सुखदो भव ॥  
 कृष्णकर्बुरनामा त्वं भूतभव्यनिवेदक !  
 गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं भव वैधव्यनाशन ॥  
 काक ! त्वं कालनामाऽसि दुष्टकालनिवेदक !  
 गृहाण बलिपूजां मे दत्तां दुःखविनाशिनीम् ॥  
 श्वेतस्त्वं सितपर्णोऽसि मृत्युभावस्य सूचक !  
 गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं भव मृत्युविनाशनः ॥  
 तन्मध्ये पूजयेद्देवं धर्मराजं चतुर्भुजम् ।  
 यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चाऽन्तकाय च ॥  
 वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।  
 औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥  
 वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।  
 नीलग्रीवाय लोकेश ! दण्डहस्ताय ते नमः ॥  
 पाशहस्ताय सायुधाय सपरिवाराय ते नमः ।  
 चन्दनैश्च सुगन्धैश्च वासोभिः पूजयेद् यमम् ॥  
 आदौ त्र्यम्बकमन्त्रेण ईश्वरं च प्रपूजयेत् ।  
 मृत्युविनाशिनीं विद्यां कुम्भे चैव नियोजयेत् ॥  
 शतमष्टोत्तरं चैव आचार्यो हृष्टमानसः ।  
 स्वगृह्योक्तविधानेन चरुं च यमदैवतम् ॥  
 संश्रय्य जुहुयाद्वह्नौ समिदाज्यचरूस्तिलान् ।  
 तदैवत्या समित्कार्या शतमष्टोत्तरं तथा ॥  
 समित्क्रमेण जुहुयात्प्रतिद्रव्यं शतं हुनेत् ।  
 सुगन्तुपन्थामन्त्रेण होतव्यं सर्वमत्र तु ॥  
 भद्रासनं प्रकर्त्तव्यं पञ्चवर्णकसंयुतम् ।  
 तस्योपरि न्यसेत्पट्टं यजमानमथाह्वयेत् ॥



निवेश्याऽऽच्छादिते पट्टे अभिषेकं च कारयेत् ।  
पावमानीभिस्तु तल्लिङ्गैर्मन्त्रैर्वारिणसम्भवैः ॥  
तल्लिङ्गैः सुगन्तपन्थामित्यादिभिः ।

तत्र स्नानं प्रकर्त्तव्यं तीर्थाऽऽनीतेन वारिणा ।  
सहस्राक्षादिभिर्मन्त्रैः स्नानं कार्यं द्विजोत्तमैः ॥  
ततोऽन्यद्वस्त्रमादाय धर्मराजं तु पूजयेत् ।  
उक्तैः षोडशभिर्मन्त्रैः सुगन्निवत्यर्घं प्रदापयेत् ॥  
तत उत्थाय सम्प्रार्थ्य भक्तिभावसमन्वितः ।  
रक्ष मां पुत्र-पौत्रांश्च रक्ष मां पशु-बान्धवान् ॥  
रक्ष पत्नीं पतिं चैव पितरं मातरं धनम् ।  
अग्नितो मे भयं माऽस्तु रोगाच्च व्याधिबन्धनात् ॥  
शस्त्रतो विषतोऽघौघाद्भयं नाशय मे सदा ।  
प्रार्थना च प्रकर्त्तव्या नमस्कारसमन्विता ॥  
काकस्पृष्टं च यद्वस्त्रे स्नानविलोभं च यद्भवेत् ।  
सहिरण्यं च तत्कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
मन्त्रः— यत्किञ्चित्स्पर्शदोषोत्थं<sup>१</sup> दुष्कृतमपि विद्यते ।  
तत्सर्वं नाशमायातु वस्त्रदानेन सूर्यज ॥  
वायसांस्तान् यमं चैतमाचार्याय निवेदयेत् ।  
माषान् वासांसि कृष्णां तु धेनुं चैव पयस्विनीम् ॥  
शनिवारे च तत्कार्यं रविवारेऽथवा पुनः ।  
घृतपात्रे ससौवर्णं दर्शयेदात्मनस्तनुम् ॥  
ब्राह्मणेभ्यो ददेदन्नं भूयसीं चैव शक्तितः ।  
यथोक्तां दक्षिणां दद्यात् वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥  
स्थाने यत्र स्पृशेत्काकस्तत्स्थानं पूजयेत्तदा ।  
एवं कुर्यात्प्रदानेन ध्वांक्षदोषः प्रशाम्यति ॥  
इति काकस्पर्शशान्तिः ।

अथ अद्भुतसागरे सिंहप्रसूता गौरेवमादिशान्तिः ।

नारदः— भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते ।  
मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥



## अद्भुतशान्तयः

१७७

ततः शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।  
 प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥  
 ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः ।  
 आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात् ततः ॥  
 सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद् विप्राय दक्षिणाम् ।  
 वस्त्रयुग्मं यवं चैव ससुवर्णं प्रदापयेत् ॥  
 इष्टदैवतमन्त्रेण ततः शान्तिर्भवेद् द्विज ! ॥

गर्गः—

दिवा प्रसूता वडवा श्रावणे च विशेषतः ।  
 माघमासे बुधे चैव प्रसवेन्महिषी यदि ॥  
 सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ।  
 जङ्गमे स्थावरं जातं स्थावरे वाऽथ जङ्गमम् ॥  
 तस्मिन् योनिविपर्यासे परचक्रागमे भवेत् ।  
 त्यागो विवासो दानं वा कृत्वाऽप्याशु शुभं लभेत् ॥  
 वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ।  
 विजात्यं विकृतं वाऽपि षड्भिर्मसैर्म्रियेत वै ॥  
 वियोनिषु च गच्छन्ति मैथुने देशनाशनम् ।  
 अन्यत्र वेसरोत्पत्तेर्नृणां वा जातिमैथुनात् ॥  
 सर्प-मूषक-मार्जार-मत्स्य-श्वान-विवर्जिताः ।  
 ज्ञेया दुर्भिक्षकर्तारः स्वजातिपिशिताशनाः ॥  
 अकालजो मदो घोरश्च पुष्पान्मृगपक्षिणः ।  
 अन्यजातिभयं तस्मात् धेनु-श्वानौ विशेषतः ॥  
 अथाऽनङ्वाननङ्वाहं धेनुर्धेनुं पिबेद्यदि ।  
 शुनी वा धयते धेनुं शुनी धेनुरथाऽपि वा ॥  
 तिर्यग्योनौ मानुषी वा परचक्रागमो भवेत् ॥  
 अमानुषा मानुषाणि जल्पन्ति प्राणिनो यदि ।  
 विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रागमं वदेत् ॥  
 त्यागो विवासो दानं वा तेषां कार्यं विजानता ।  
 तर्पयेद् ब्राह्मणांश्चैव जप-होमांश्च कारयेत् ॥

मृदङ्गवाद्यैः पटहैः सुशोभनैः पूजा च कार्या त्रिदिवौकसानाम् ।  
 धातुस्तथेज्या विधिना च कार्या देयं तथाऽन्नं बहु च द्विजेभ्यः ॥

गर्गः—

वृत्तं वा मुशलं वाऽपि स्फुटते वाऽप्युलूखलम् ।  
 भूतानां चैव बिभ्येत गृहे देवकुलेऽथवा ॥

१२ शा०



वृत्तम् दलनयन्त्रम् ।

दृषद्वा भद्रपीठं वा आसनं शयनं तथा ।  
अकस्मात्स्फुटते यत्र कम्पते वा वसुन्धरा ॥  
इत्यादीनि निमित्तान्युक्त्वा शान्तिरप्युक्ता तेनैव ।  
अश्वत्थ-समिधो हुत्वा घृताक्तमधुसंयुताः ।  
सावित्र्यष्टसहस्रेण प्राजापत्यास्तु मन्त्रयेत् ॥  
प्राजापत्याः प्राजापतिदैवत्याः ।

पायसं भोजयेद् विद्वान् हुतान्ते भूरिदक्षिणा ।  
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ॥  
स एव — कृष्णाः पिपीलिका यत्र ग्रामेषु नगरेषु वा ।  
अतिमात्रं तु दृश्यन्ते ऊर्ध्ववंशकृतालयाः ॥  
शान्तिगृहे देवगृहे तथा नरपतेर्गृहे ।  
उपर्युपरिमात्रं तु दृश्यते वेश्मवत्तदा ॥  
मक्षिका मशका दंशा अतिमात्रं भयावहाः ।  
ईदृशैर्लक्षणोत्पातैर्महाचौरभयं भवेत् ॥  
द्रव्याणां हरणं ब्रूयात्परचक्रस्य चाऽऽगमम् ।  
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि विश्वामित्रोपदर्शिताम् ॥  
अश्वत्थसमिधश्चैव हुत्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।  
पूर्णपात्राणि दातव्या हुतान्ते भूरिदक्षिणा ॥  
दासी-दाससमायुक्तं गृहं दद्याद् द्विजातये ।  
तिलपात्रं प्रदातव्यं तिलान् जुह्वीत संयतः ॥  
मृतः श्मशानं यो नीतः पुनर्जीवति मानवः ।  
गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥  
अचिराच्छून्यतां याति हृतदारपरिग्रहः ।  
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥  
सक्षीराणां घृताक्तानामग्नौ हुत्वा सुखं बुधः ।  
उदुम्बरीणां विविधवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥  
सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत् ।  
रक्तानामेकेत्यादिवक्ष्यमाणा क्षीरशान्तिः ।

कपिलं च तथा कांस्यं हुतान्ते भूरि दक्षिणा ।  
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ॥



स एव— अनारोग्यमनावृष्टिर्दुर्भिक्षं जनमारकम् ।  
 ज्वरः कासस्तथा श्वासः कण्डूदर्दूविकोचिकाः ॥  
 शिरोरोगोऽक्षिरोगश्च पाण्डुरोगो गलग्रहः ।  
 व्याधयश्च प्रवर्तन्ते दुर्दृष्टैः स्वप्नलक्षणैः ॥  
 तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि बृहस्पतिमतं यथा ॥  
 त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा हविष्याशी पुरोहितः ।  
 सक्षीराणां घृताक्तानां समिधानां शतं दहेत् ॥  
 पलाशस्येति शेषः ।

ततस्तच्छाम्यते पापं बृहस्पतिमतं यथा ॥  
 स एव— वज्रमिन्द्राऽशनिर्वाऽपि ज्वलन्नापतते यदि ।  
 पुरे जनपदे वाऽपि तत्र विद्यान्महद्भयम् ॥  
 संवत्सरे ततो घोरे विन्द्याच्चैव जनक्षयम् ।  
 राजाऽमात्यविनाशं च निर्दिशेन्नाऽत्र संशयः ॥  
 तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि इन्द्राग्निवचनं यथा ।  
 अपामार्गस्य समिधां सहस्राष्टोत्तरं भवेत् ॥  
 पायसं भोजयेद्विप्रान् क्षीरशान्तिं च कारयेत् ।  
 रक्तानामेकवर्णानां गवां क्षीरं समादिशेत् ॥  
 समादिशेद्धोमार्थं सम्पादयेत् ।

हुत्वाऽऽहुतिशतं विप्रो महेन्द्रेणैव मन्त्रवित् ॥  
 महेन्द्रेण महान् इन्द्रो य ओजसेत्यादिना ।  
 सुवर्णमणिसङ्काशा हुतान्ते भूरिदक्षिणा ।  
 गौरिति शेषः ।

ततस्तच्छाम्यते पापमिन्द्राग्निवचनं यथा ॥

शौनकः—अथ यदाऽस्य मणिककुम्भस्थालीदरण्यमायासो राज-  
 कुलविवादो वा यान-च्छत्र-शय्या-ऽऽसनावसथध्वजगृहैकदेशप्रभञ्जने ।  
 गजवाजिमुख्याः प्रमीयन्ते वा हस्तिनो वा माद्यन्ति । इत्येवमादीनि ।  
 तान्येतानि सर्वाणि इन्द्रदैवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति । इन्द्रो  
 देवता कर्त्ता हर्त्ता च येषां तानीन्द्रदैवत्यानि अद्भुतानि तेषु प्रायश्चि-  
 त्तान्यपीन्द्रदैवत्यानि भवन्ति । इन्द्रं विश्वेति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्च-  
 भिराज्याहुतीर्जुहोति । इन्द्राय स्वाहा । शचीपतये स्वाहा । वज्रपाणये



स्वाहा । ईश्वराय स्वाहा । सर्वपापशमनाय स्वाहेति व्याहृतिभिश्च  
 पृथक् पृथक् । स एव । गृहद्वारेण वा सर्पो गच्छति कपोतं प्रविशति  
 शरीरे रोहति कृष्णस्त्रीदर्शनमेवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि यमदैव-  
 त्यानि अद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति । नाके सुवर्णमिति स्थालीपाकं  
 हुत्वा पञ्चभिराज्याहुतीर्जुहुयात् । यमाय स्वाहा । प्रेताधिपतये स्वाहा ।  
 दण्डपाणये स्वाहा । ईश्वराय स्वाहा । सर्वपापनाशनाय स्वाहेति  
 व्याहृतिभिश्च पृथक्-पृथक् जुहोति । स एव । दिशो दश दहन्ति ।  
 केतवश्चोत्तिष्ठन्ति । गवां शृङ्गाद्रुधिरं स्रवति अत्यर्थं हिमांशुस्तपति ।  
 इत्येवमादीनि सर्वाणि सोमदैवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति ।  
 सोमं राजानमिति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिरभिजुहोति ।  
 सोमाय स्वाहा । नक्षत्राणां पतये स्वाहा । सीरपाणये स्वाहा । ईश्वराय  
 स्वाहा । सर्वपापशमनाय स्वाहा । व्याहृतिभिश्च पृथक् पृथक् जुहोति ।

इत्यद्भुतशान्तयः ।

### अथाऽश्वशान्तिः ।

गर्गः— अश्वशान्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु शौनक ! यत्नतः ।  
 अश्वशालासमीपे तु कुण्डं कुर्याद् विधानतः ॥  
 उत्खातं हस्तमात्रं च आयामं च तथा भवेत् ।  
 मेखलात्रयसंयुक्तं योनिरश्वत्थपत्रवत् ॥  
 कुण्डस्योत्तरपूर्वे तु वेदिं कुर्यात्सुशोभनाम् ।  
 सार्द्धहस्तं तथाऽऽयाममुत्सेधं हस्तमात्रकम् ॥  
 वर्तुलां चतुरस्यां च देवानां स्थापनाय च ।  
 कुर्यादष्टदलं पद्मं तण्डुलैर्वेदिकोपरि ॥  
 तन्मध्ये पूजयेद्देवं सुवर्णेन प्रकल्पितम् ।  
 अश्वारूढं महातेजः सप्तहस्तं महाबलम् ॥  
 अश्वारिष्टहरं शूरं देवं तं हयवल्लभम् ।  
 देवेन्द्रं च धराधीशं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ॥  
 वरुणं च तथेशानं रजतेन प्रकल्पितम् ।  
 यमं च काललोहेन ताम्रेणाऽपि तथैव च ॥  
 निऋतिं च तथा वायुं नागेनैव प्रकल्पयेत् ।  
 सोमं च रजतेनैव कल्पयेत्सुसमाहितः ॥



कृत्वैवं लोकपालांश्च स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत् ।  
 आवाहनार्घपाद्याद्यैर्गन्ध-पुष्पादिकैः शुभैः ॥  
 धूप-दीपैश्च नैवेद्यैः पूजयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।  
 पञ्चामृतेन स्नपनं कुर्यादेव स्वमन्त्रकैः ॥  
 त्यमूषुवाजिनमिति मन्त्रेणाऽऽवाहनं चरेत् ॥  
 अश्वस्तूपरोगविति कुर्यात्संस्थापनं बुधः ।  
 मानस्तोकेति मन्त्रेण स्नानं सम्यक् प्रकल्पयेत् ॥  
 युवं वस्त्राणीति तथा वस्त्रं चैव प्रदापयेत् ।  
 यज्ञोपवीतं दातव्यं देवस्य त्वेति मन्त्रतः ॥  
 वित्तदायेति मन्त्रेण अर्चयेत्सुसमाहितः ।  
 गन्धद्वारेति वै गन्धं पुष्पं श्रीश्च तथैव च ॥  
 धूरसीति तथा धूपं दीपं चाऽपि विशेषतः ।  
 अन्नपतेति मन्त्रेण नैवेद्यं बहु कल्पयेत् ॥  
 एवं सम्पूज्य विप्रेन्द्र ! रविपुत्रं हयाधिपम् ।  
 ततः सम्पूजयेद् धीमान् लोकपालान् 'स्वमन्त्रतः ॥  
 इन्द्रं वो विश्वतः शक्रं अग्निं दूतेति पावकम् ।  
 यमाय सोमेति यमं निऋतिं मोषुणेति च ॥  
 त्वन्नो अग्नेति वरुणं तव वायेति चाऽनिलम् ।  
 सोमो धेनुं तथा सोमं कद्रुद्रेति तथा शिवम् ॥  
 पूजयेद् गन्ध-पुष्पाद्यैर्धूप-दीपनिवेदनैः ।  
 क्रमेण पूजयेदित्थं देवान् सम्पूजयेत् ततः ॥  
 अश्वारूढ महावीर ! तुरङ्गेश ! महाबल ! ।  
 अश्वारूढं च रेवन्तं शक्त्या चाऽऽशु विनाशय ॥  
 आखण्डल गजारूढ ! वज्रहस्त सुरेश्वर ! ।  
 वज्रेण तुरगारिष्टं भिन्नं कुरु शचीपते ! ॥  
 मेषारूढ ! महातेजोज्ज्वलज्वालाविभूषितः ।  
 तीक्ष्णाऽसिना हुतवह ! अश्वारिष्टं विनाशय ॥  
 कालदण्डधरो देव ! महामहिषवाहन ! ।  
 कालण्डेन दण्डोत्थमश्वारिष्टं विनाशय ॥  
 खड्गहस्त महाभीम ! निऋते प्रेतवाहन !  
 छिन्नं कुरु ह्यारिष्टं तीक्ष्णखड्गेन शीघ्रतः ॥



पाशहस्त ! जलाधीश ! सदा मकरवाहन !  
 पाशेन च हयारिष्टं भिन्नं कुरु जलाधिप ! ॥  
 ध्वजहस्त ! महाकाय ! मृगारूढ ! महाबल !  
 ताडयस्व हयारिष्टं ध्वज-दण्डेन वाऽनिल ! ॥  
 शक्तिहस्त ! महाराज ! कुबेर ! नरवाहन !  
 अश्वारिष्टं च यक्षेश ! शक्त्या चाऽऽशु विनाशय ॥  
 शूलहस्त ! महारौद्र ! पिनाकिन् ! वृषवाहन !  
 नाशयाऽऽशु हयारिष्टं त्रिशूलेन त्रिलोचन ! ॥  
 एवं सम्प्रार्थ्य विप्रेन्द्र ! लोकपालक्रमेण च ।  
 अग्नेः संस्थापनं कृत्वा कुण्डे होमं च कारयेत् ॥  
 तिल-त्रीहि-यवैश्चैव प्रत्येकं चाऽऽढकाऽऽढकम् ।  
 होमं कुर्यादश्वकामश्चरुणा घृतपूर्वकम् ॥  
 स्थापयित्वाऽऽज्यसंस्थालीं तत्स्थेनाज्येन यत्नतः ।  
 इत्थं सर्वैश्च मन्त्रैश्च देवमुद्दिश्य कारयेत् ॥

अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । वायवे स्वाहा । विष्णवे स्वाहा ।  
 सर्वज्ञाय स्वाहा । सर्वदुरितनाशाय स्वाहा । रेवन्ताय स्वाहा । सर्व-  
 कामफलप्रदाय<sup>१</sup> स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । सर्वत्र होमः कार्यः ।  
 अग्निरन्नादोऽन्नपतिरन्नाद्यमस्मिन् यज्ञे यजमानाय ददातु स्वाहा । सोमो  
 राजा राजपति । एवं सर्वत्र होमविधिः ।

इत्थं कृत्वा होमकर्म आचार्यो विधिवत्ततः ।  
 शन्नो भवन्तु मन्त्रेण अश्वशालां प्रवेशयेत् ॥  
 पवित्रं तेति<sup>२</sup> मन्त्रेण अश्वान् सम्प्रोक्षयेद् द्विजः ।  
 एष वाजीति<sup>३</sup> मन्त्रेण तथाऽश्वांश्च विसर्जयेत् ॥  
 मा नो मित्रेति<sup>४</sup> मन्त्रेण तुरङ्गान् स्थापयेत् सुधीः ।  
 पूर्णाहुतिं च जुहुयादच्छिन्नघृतधारया ॥  
 भूतेभ्यश्च बलिं दद्यात् छिन्नान्तं मन्त्रपूर्वकम् ।  
 असुराः पन्नगा यक्षा यातुधानाश्च राक्षसाः ॥  
 पिशाचाः सिद्धगन्धर्वा वेताला योगिनी शिवा ।

१. ज्ञ-कामप्रदाय । २. ऋ. सं. ७।३।८ । ३. ऋ. सं. ६।८।१८ । ४. ऋ.  
 सं. २।३।७ ।



डाकिनी लाकिनी चैव शाकिन्या जम्बुकादयः ।  
 अश्वारिष्ट-प्रशान्त्यर्थं बलिं गृह्णन्त्वमे<sup>१</sup> ग्रहाः ॥  
 इत्थं दत्त्वा बलिं सम्यक् भूतेभ्यश्च विधानतः ।  
 अश्वं च दक्षिणायुक्तं प्रतिमां वत्ससंयुताम् ॥  
 उद्दिश्य भास्करं देवमाचार्याय प्रदापयेत् ।  
 आकृतिर्देवतानां च द्विजेभ्यो वस्त्रसंयुताः ।  
 दद्यात्ता दक्षिणायुक्ताः श्रद्धापूतः समाश्रितः ॥  
 आकृतीः प्रतिमाः । देवानाम् इन्द्रादीनाम् ।

अनेन विधिना कृत्वा हयानां शान्तिकं महत् ।  
 अश्वानां नीरुजत्वं च बलं पुष्टिबलं तथा ॥  
 लक्ष्मी स्थिता मनूनां च सङ्ग्रामे विजयो भवेत् ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्ततः शान्तिर्भविष्यति ॥  
 इत्यश्वशान्तिः ।

### अथ गजशान्तिः ।

सनत्कुमार उवाच—

अथ राजा प्रकुर्वीत चतुर्थ्यां गज-वाजिनाम् ।  
 शान्तिमामयतप्तानां तदुत्पातोदये सति ॥  
 कवलानि च नाऽऽदत्ते यदा त्वश्रूणि मुञ्चति ।  
 सद्यः<sup>२</sup> प्रशान्तो निर्वेदाद्यदा स्यान्मदवर्जितः<sup>३</sup> ॥  
 विहीनमतिरत्यर्थं परिक्षीणतनुद्विषः ।  
 विमानात् स्रस्तसर्वाङ्ग-गुप्तो नष्टपरक्रमः ॥  
 नष्टशोभः सदा हीनो नष्टसंज्ञो रुषान्वितः ।  
 नानाव्याधिसमुत्थाभिः पीडाभिः पीड्यते यदा ॥  
 अरिष्टोपनिपातेषु तथोत्पातभयेषु च ।  
 तदा शान्तिं प्रकुर्वीत गजरक्षापरो नृपः ॥  
 अरिष्टाद्यशुभं त्वेवं वाजिनां लक्ष्यते यदा ।  
 युद्धारम्भेषु च तथा तेषां शान्तिं च कारयेत् ॥

१. ज्ञ-त्वमी । २. ज्ञ-स्तब्धः । ३. ज्ञ-निर्वेदो स्यान्मदेन विवर्जितः ।



शान्त्यर्थं गज-वाजिनां<sup>१</sup> मण्डपं चतुरस्रकम् ।  
 द्वादशाऽरतिमानेन सम्मितं कारयेत् सुधीः ॥  
 बाहुप्रमाणं मध्ये तु योनिनाभिसमुज्ज्वलम् ।  
 कुण्डं त्रिमेखलं कुर्यात् वृत्तं वा चतुरस्रकम् ॥  
 तत्पुरस्तादक्षिणतः पश्चिमे चोत्तरे तथा ।  
 चतुरस्रं ततः कुर्यात् कुण्डं हस्तप्रमाणकम् ॥  
 कोणेषु च तथा कुर्याद् वृत्तं चाऽष्टत्रिकोणकम् ।  
 अर्क-खादिर-पालाश-बिल्वाऽश्वत्थ-वटैरपि ॥  
 औदुम्बर-अपामार्ग-समिद्धिस्तत्र तत्र च ।  
 मध्ये सर्वसमिद्धिर्वा पालाशैर्वाऽऽज्यबिल्वकैः ॥  
 तिल-तण्डुल-लाजाभिः सक्तसिद्धार्थशालिभिः ।  
 यवैरेभिस्त्रिमध्वक्तैर्मध्ये सर्वमिति स्थितिः ॥  
 दत्त्वा च पयसा चैव घृतेन मधुनाऽपि वा ।  
 कोणेषु च तथाऽऽज्येन मध्ये तु कलशैरपि ॥  
 स्थापयेत् ततः कुम्भानष्टावष्टासु दिक्षु च ।  
 वस्त्रयुग्मेन सञ्छन्नान् सर्वौषधि-समन्वितान् ॥  
 सर्वरत्नयुतान् युग्मान् गन्ध-पुष्पोदकैरपि ।  
 हस्तावरप्रमाणं तु बृहत्कुम्भं तु मध्यमे ॥  
 तीर्थोदकेन सम्पूर्णं सर्वरत्नौषधैरपि ।  
 चतुरः कलशांस्तत्र चतुर्थस्य समं ततः ॥  
 कोणेषु च यथान्यायं जल-वस्त्रादिकैर्युतान् ।  
 स्मरेत् प्रधानं कुम्भे तु नरसिहाकृतिं हरिम् ॥  
 शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-चर्माऽसि-शर-शक्तयः ।  
 पूर्वादिक्रमयोगेन ध्यातव्यं कलशेष्वपि ॥  
 बहिः शक्रादि-दिक्पालांस्तत्र तत्र च संस्मरेत् ।  
 प्रधानकुम्भात्पुरतः कुर्याच्चक्रं तु मण्डलम् ॥  
 तत्र सम्पूज्य देवेशं पश्चाद्धोमादि साधयेत् ।  
 मण्डलाग्रे तदा कुम्भं कुम्भाग्रे कुण्डमेव च ॥  
 सर्वत्राऽनलसंस्कारान् स्वगृह्योक्तेन कर्मणा ।  
 जुहुयादग्निसिद्ध्यर्थमाज्याऽऽहुतिसहस्रकम् ॥



आनुष्टुभेन मन्त्रेण गुरुर्वाऽस्य पुरोहितः ।  
 आनुष्टुभो नृसिंहमन्त्रो दशसाहस्रमिष्यते ॥  
 समिद्द्रव्यचरूप्येवं हुत्वा मन्त्री समाहितः ।  
 'संयत्याऽऽज्याऽऽहुतीनां च सहस्रं वाऽयुतं चरेत् ॥  
 ततः स्विष्टकृदित्यादि-समापनविधिः क्रमात् ।  
 एवं समाप्य विधिवद्धोमं तत्र पुरोहितः ।  
 संस्पृशेदुदकुम्भं च जपेद् दशसहस्रकम् ॥  
 पर्यन्तकलशान् स्पृष्ट्वा जपेत्तत्र सहस्रकम् ।  
 अनन्तरेषु कुण्डेषु गायत्र्या प्रणवेन वा ॥  
 ऋत्विग्भिर्युगपत्कार्यं होमतन्त्रं तु पूर्ववत् ।  
 प्रतिकुम्भं सहस्रं च जपेत्तानप्युपस्पृशन् ॥  
 पूजयेल्लोकपालादीन् गन्धादिभिरलङ्कृतः ।  
 अथ राजानमाकार्यस्वास्तीर्णे सिंहविस्तरे ।  
 समाप्य च शुचिस्नानं सर्वाऽलङ्कारसंयुतम् ॥  
 कुम्भोदकेन देवाग्रे तन्मन्त्रेणाऽभिषेचयेत् ।  
 पर्यन्तकलशैश्चाऽपि नृपं पश्चाद् गजादिकम् ॥  
 अन्यांश्च वाहनान् पूज्य दिव्यलक्षणसंयुतान् ।  
 गजादिनाऽवशिष्टेन तोयेन स्नापयेद् बुधः ॥  
 अन्यवाहान् द्विपायातान् सर्वानिव समाहितः ।  
 बाह्यकुम्भोदकेनैव स्नापयेच्छत्रसाधकः ॥  
 राज्ञो नीराजनं कुर्याद्वाहनेषु च मन्त्रवित् ।  
 अन्येष्वेवं विधिः कार्यः स हि रत्नकरः परः ॥  
 राजानं वाहनादींश्च तथाऽन्यांश्च पुरोहितः ।  
 सर्वाऽलङ्कारसंयुक्तान् सर्वमङ्गलसंयुतान् ॥  
 कृत्वा तु वाचयेत् पश्चाद् ब्राह्मणैराशिषो बहु ।  
 दक्षिणामप्यलं दत्त्वा ऋत्विग्भ्यो गुरवे नृपः ॥  
 वाहनं वस्त्र-भूषाणामाचार्याय निवेदयेत् ।  
 दास-दासीषु भृत्येषु ग्रामादिषु च सर्वशः ॥  
 सर्वालङ्कारसंयुक्तं राजवाहोपरि स्थितम् ।



आरोहैश्चापि संयुक्तं राजानं वाहसंस्थितम्<sup>१</sup> ॥  
 मन्त्री<sup>२</sup> द्वीपैर्हयैश्चैव ब्राह्मणैः स्वस्तिवाचनैः ।  
 साऽऽनन्दश्चैव ऋत्विग्भिर्वृद्धैर्मन्त्रवरैस्तथा ॥  
 आचार्यो राजभवने नृपं संवेशयेत्स्वयम् ।  
 पूर्वं स्नानाऽवशिष्टेन कुम्भतोयेन मन्त्रवित् ॥  
 गजशालां च सम्प्रोक्ष्य वाजिशालां तथैव च ।  
 सिद्धार्थतण्डुल-तिलैः पुष्पैर्वाऽप्यवकीर्य च ॥  
 शालामध्ये नृसिंहं<sup>३</sup> वा सुदर्शनमनामयम् ।  
 पूजयेद् गन्ध-पुष्पाद्यैः सर्वाऽलङ्कारसंयुतैः ॥  
 सक्तुभिः कृसरान्नेन कुर्याद् भूतबलिं बहिः ।  
 ततः शालासु सर्वासु ब्राह्मणान् भोजयेद् बलिम् ।  
 ततः संवेशनं कुर्यादाचार्यो गज-वाजिनाम् ॥  
 एवं शान्तिं प्रकुर्वीत निमित्ते सति तद्गुरुः<sup>४</sup> ।  
 सपरिच्छदस्य नृपतेर्मन्त्रवित् सुसमाहितः ॥  
 सर्वकल्याणसम्पूर्णः सर्वबाधाविर्वर्जितः ।  
 सपुत्रो राजमन्त्रस्तु नृपस्तेन महीयते ॥  
 इति गजशान्तिः ।

### अथ महाशान्तिः ।

श्रीकृष्ण उवाच—

महाशान्तिं प्रवक्ष्यामि महादेवेन भाषिताम् ।  
 पार्थिवानां हितार्थाय महादुस्तरतारिणीम् ॥  
 नृपाऽभिषेके सा कार्या यात्राकाले नृपस्य तु ।  
 दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते च ग्रहवैगुण्यसम्भवे ॥  
 विद्युदुल्कानिपाते च जन्मर्क्षे ग्रहभेदने ।  
 केतूदये च निघाति क्षितिकम्पस्य सम्भवे ॥  
 प्रसूतौ मूलगण्डान्ते यमलस्य च सम्भवे ।  
 छत्राणां च ध्वजानां च स्वस्थानात्पतने भुवि ॥

१. जेतुरपुस्तकपाठः । २. ज-मन्त्र । ३. ज-नृपः सिंह । ४. न-  
 सद्गुरुः ।



काकोलूक-कपोतानां प्रवेशे वेश्मनस्तथा ।  
 क्रूरग्रहाणां चक्रेषु जन्मादिषु विशेषतः ॥  
 जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थे वाऽष्टमे तथा ।  
 यदा स्युर्गुरु-मन्दाराः सूर्यश्चैव विशेषतः ॥  
 मन्दः शनिः । आरो भौमः ।

युद्धे ग्रहाणां सर्वेषां सूर्य-शीतांशु-कीलके ।  
 वस्त्रायुध-गवाश्वेषु संस्मृते शयनासने ॥  
 यद्यग्निः परिदृश्येत रात्राविन्द्रधनुस्तथा ।  
 वेश्मनश्च तुलाभङ्गे गर्भेष्वश्वतरीषु च ॥  
 रविबिम्बद्वये दृष्टे महाशान्तिः प्रशस्यते ।  
 सर्वाणि दुर्निमित्तानि प्रशमं यान्ति सर्वथा<sup>१</sup> ॥  
 तां क्युर्ब्राह्मणाः पञ्च कुल-शील-समन्विताः ।  
 चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च द्विवेदाश्चापि पाण्डव ! ॥  
 आथर्वणा विशेषेण बह्वृचाश्च<sup>२</sup> सुसंयताः ।  
 शुचयः श्रुतसम्पन्ना जपहोमपरायणाः ॥  
 कृच्छ्रोपवासनक्ताद्यैः कृतकायविशोधनाः ।  
 पूर्वमाराध्य मन्त्रांस्तु प्रारभेत ततः क्रियाः ॥  
 मन्त्रान् विनियोज्यमाणान् ।

दश-द्वादशहस्तं वा मण्डपं कारयेच्छुभम् ।  
 तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥  
 आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ।  
 मेखलात्रयसंयुक्तं योन्या चाऽपि समन्वितम् ॥  
 रवीन्द्रो<sup>३</sup>रूपरागेषु महोल्कापतनेषु च ।  
 उत्पातेषु तथाऽन्येषु निमित्तेषु च सर्वशः ॥  
 सर्वारिष्टोपशमनी<sup>४</sup> महाशान्तिः प्रशस्यते ।  
 चारुचन्दन-माले च तोरणाऽलङ्कृते तथा ॥  
 गोमयेनोपलिप्ते च मण्डपे ते द्विजातयः ।  
 शुक्लाम्बरधराः स्नाताः शुक्लमाल्याऽनुलेपनाः ॥  
 कर्म कुर्यरिति शेषः ।

ततश्च पञ्च कलशास्तस्यां वेद्यां निवेशयेत् ।  
 आग्नेयादिषु कोणेषु पञ्चमं मध्यतस्तथा ॥

१. ज्ञ-सर्वशः । २. ज्ञ-स्तु । ३. ज्ञ-रवीन्द्रो । ४. ज्ञ ध-शमना ।



अष्टपत्रकृते पद्मं चूतपल्लवधारिणम् ।  
 ब्रह्मकूर्चविधानेन पञ्चगव्यं तु कारयेत् ॥  
 ब्रह्मकूर्चविधानं गोमूत्रं ताम्रवर्णाया इत्यादिना ब्रह्मकूर्चप्रकरणे  
 प्रोक्तम् ।

ओषधीः पञ्चरत्नानि रोचनां चन्दनं तथा ।  
 सिद्धार्थकान् शमीं दूर्वां कुशान् ब्रीहि-यवांस्तथा ॥  
 अपामार्गं फलवतीं न्यग्रोधोदुम्बरौ तथा ।  
 प्लक्षा-ऽश्वत्थ-कपित्थांश्च प्रियङ्गूश्चूतपल्लवान् ॥  
 हस्तिदन्तमृदं चैव कोणकुम्भेषु विन्यसेत् ।  
 फलवती गन्धप्रियङ्गुः । प्रियङ्गुः कङ्गुः ।  
 पुण्यतीर्थोदकोपेतं पञ्चगव्यं च मध्यमे ।  
 ऋचं वाचमितीदं च वह्निकुम्भाऽभिमन्त्रणम् ॥  
 आशुः शिशानं नैऋत्ये यद्देवा वायुगोचरे ।  
 ईशावास्यं चतुर्थस्य कुम्भस्य त्वभिमन्त्रणम् ॥  
 मध्यमे त्वथ जप्तव्या रुद्राः कुम्भे यजुर्भवाः ।  
 गन्ध-पुष्पा-ऽक्षतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ॥  
 फलैश्च नालिकेराद्यैर्दीपकैः कुम्भपूजनम् ।  
 स्वस्तिवाचनकं चैव कारयेत् तदनन्तरम् ॥  
 क्रमेणाऽनेन शनकैरग्निकार्यं च योजयेत् ।  
 अनेन वक्ष्यमाणेन ।

अग्निं दूतमिहाग्निं च पूर्वमेव निधापयेत् ॥  
 पूर्वं कलशस्थापनात् ।

हिरण्यगर्भः समिति ब्रह्मासननियोजने ।  
 कयानसा प्रणीताश्च मन्त्रेण विनिवेशयेत् ॥  
 कृत्वा चास्तरणं वह्नौ राज्यसंस्कारमेव च ।  
 अथवा सादयेदन्नं द्रव्यं यस्य प्रयोजनम् ॥  
 ततः पुरुषसूक्तेन पायसश्रपणं भवेत् ।  
 अभिघार्याऽथ संसिद्धं पायसं स्थापयेद् भुवि ॥  
 अष्टादशप्रमाणेध्मान् दद्यादथ शमीमयान् ।  
 पालाशीः समिधः सप्त सप्त ते इति दापयेत् ॥

१. न-चोक्तम् ।



आधारावाज्यभागौ तु हुत्वा पूर्वक्रमेण तु ।  
 जुहुयादाहुतीः सप्त जातवेदस इत्यृचा ॥  
 स्थालीपाकस्य जुहुयात्पुनर्वं जातवेदसे ।  
 तरत्समन्दीसूक्तेन चतस्रो जुहुयात् ततः ॥  
 यमायेति सप्ताऽन्याः स्वाहान्ता जुहुयात् ततः ॥  
 स्वाहान्ता इति सर्वत्र योज्यम् ।

इदं विष्णुस्ततः सप्त जुहुयादाहुतीर्नृप !  
 नक्षत्रेभ्यस्ततः स्वाहा सप्तविंशतिराहुतीः ॥  
 नक्षत्राहुतयश्च कृत्तिकाभ्यः स्वाहेत्यादिभिर्मन्त्रैः कार्याः । तत्र  
 रोहिणीद्वय-पुष्यहस्तादित्रयाऽनुराधादित्रयाऽभिजिद्द्वयशतभिषक्रेवती-  
 ष्वेकवचनम् । पुनर्वसु-फाल्गुनीद्वय-विशाखाऽश्विनीषु द्विवचनम् । शेषेषु  
 बहुवचनम् ।

यत्कर्मणेति जुहुयात् ततः स्विष्टकृतं पुनः ।  
 ग्रहहोमस्ततः कार्यस्तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥  
 अत्र तिलविधानं वैकल्पिकायवादिनिवृत्त्यर्थम् ।  
 प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा होमकर्म समापयेत् ।  
 ततस्तु तूर्यनिर्घोषैः काहला-शङ्खनिस्वनैः ।  
 यजमानस्य कर्त्तव्यो ह्यभिषेको द्विजोत्तमैः ॥  
 काश्मर्यवृक्षसम्भूते समे भद्रासने स्थितम् ॥  
 काश्मर्यवृक्षः श्रीपर्णी ।

वेदीमध्यगतं कृत्वा दुर्निमित्तप्रशान्तये ।  
 पञ्चभिः कलशैः पूर्णैर्मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम् ॥  
 सहस्राक्षेण प्रथमं ततश्चैव शतायुषा ।  
 सजोषसा इन्द्र इति च विश्वानि वरुणेति च ॥  
 द्रुपदा दिवेति च ततः स्नापयेयुः समाहिताः ।  
 ततो दिशां बलिं दद्याद् विचित्राऽन्नसमाश्रितान् ॥  
 नमोऽस्तु सर्वऋक्षेभ्य इति मन्त्रमुदाहरेत् ।  
 स्नातस्य ब्राह्मणाः सर्वे पठेयुः शान्तिमुत्तमाम् ॥  
 शान्तितोयेन धारां च पातयित्वा समन्ततः ।  
 पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समापयेत् ॥  
 तीर्थं देवालये वाऽपि गोदोहं कारयेद् बुधः ।  
 क्षितिं हिरण्यं वासांसि शयनान्यासनानि च ॥



विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या विमत्सरः ।  
 दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच्चैव युधिष्ठिर ! ॥  
 भोजनं चाऽनिशं दत्त्वा ततः सर्वं प्रसिद्धयति ।  
 आयुश्च लभते दीर्घं शत्रून् विजयते क्षणात् ॥  
 दुर्गाणि चाऽस्य सिद्धयन्ति पुत्रांश्च लभते शुभान् ।  
 यथा शस्त्रप्रहाराणां कवचं वारणं भवेत् ॥  
 तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ।  
 अहिंसकस्य दान्तस्य धर्माजितधनस्य च ॥  
 दया-दाक्षिण्ययुक्तस्य सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः ।  
 अर्थान् समर्द्धयति वर्द्धयते च धर्मं  
 कामं प्रसाधयति तस्य पिनष्टि पापम् ।  
 यः कारयेत् सकलदोषहरीं महार्थां  
 शान्तिं प्रशान्तहृदयः पुरुषः सदैव ॥  
 इति महाशान्तिः ।

चर्मण्वती-तरणिजाशुभसङ्गमस्य  
 सान्निध्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे ।  
 ख्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा  
 राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥  
 इति श्रीसैगरवंशावतंस-महाराजाधिराज-श्रीभगवन्तदेवोद्योजिते  
 मीमांसकभट्टशङ्करात्मज-भट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे  
 शान्तिमयूखो द्वादशः समाप्तः ।

क्ष र द य इ अ ड क व —

श्रीनीलकण्ठरचितः स्मृतिभास्कराख्यो, ग्रन्थः पपार रसखर्षिकुसम्मितेऽब्दे ।  
 चैत्रे सिते रवितिथौ रविपादपद्मे, पद्मीकृतो विकसतां जनतोपकृत्ये ॥  
 चेन्नादतः कतिपयैरपि दुष्टभावाः, किं तेन भावनिपुणाः खलु सन्ति सन्तः ।  
 विट्दिग्धचञ्चुवटकाकदम्बकेन, पक्वं रसालफलमुज्जितमेव सम्यक् ॥

ड-पुस्तकेऽधिकः श्लोको दृश्यते ।

गण्डान्तेन्द्रभसूलपातपरिघव्याघातगण्डावभे,  
 सङ्क्रान्तिव्यतिपातवैधृतिसनीवालीकुहदशके ।  
 वज्रं कृष्णचतुर्दशेषु यमघण्टे दग्धयोगे मृतो,  
 विष्टौ सोदरभेजनिर्नपितृभे शस्ताशुभा शान्तिः ॥







५







